श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

मोक्षशास्त्र प्रवचन

(१३, १४, १५, १६, १७ व १८ भाग)

प्रवक्ता
अध्यात्मयोगी सिद्धान्त न्यायसाहित्यशास्त्री न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१५८-ए, रणजीतपुरी, सदर, मेरठ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९८७ [लागत मूल्य १४)

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रो मे गागर मे सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलकदेव, श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजो ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ सस्कृत मे होने के कारण जनसामान्य के उपयोग मे नही आती।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओ से निवेदन है कि इस प्रवचन मे सजोये रत्नो का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग मे प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मगलाकाक्षी
मत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

त्रयोदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु०, मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

वर्तमान प्रसग से पूर्व कथित आवश्यक जीवतत्त्वविषयक घटनाओ का स्मरण—इस ग्रन्थ का नाम तत्त्वार्थ सूत्र इस कारण सही है कि इसमे तत्त्व सहित वस्तु स्वरूप सहित पदार्थो का वर्णन किया गया है और इसका दूसरा नाम है मोक्षशास्त्र। यह भी सार्थक नाम है। ससार के जीवो को ससार के सकटो से छूटने का इसमे उपदेश दिया गया है इसलिए मोक्षशास्त्र का नाम सार्थक है तब ही तो इस ग्रन्थ मे सबसे पहले यह ही कहा गया कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है। न मोक्ष की बात कही और न ससार सकटो की बात कही और न यह कहा कि तुम कैसे रोगी हो, क्या तुमको दु ख है, कैसे भ्रमते आये हो! यह कुछ न कहा, एकदम मोक्ष के उपाय की बात कह दिया। तो ऋषिजन बड करुणावन्त होते हैं। वे पहले ससार भ्रमण की बात बताकर इस जीव को हैरान नही करना चाहते। ये घबडा न जाए, परेशान न हो जाये। और, मोक्ष की बात पहले इसलिए नही की कि सब जीव मोक्ष मानते है, मोक्ष चाहते है, दु खो से छूटना चाहते हैं। तो एकदम मोक्ष के उपाय की बात कही। उसमे बताया है कि तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यक् दशन है और वे तत्त्वार्थ हैं सात। जीव, अजीव, आस्रव, बध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। वैसे तो बिल्कुल सीधी सी बात है, जीव और अजीव ये अलग-अलग रहे आते तो बहुत बढिया बात थी मगर ऐसा तो नही है, अनादि से जीव और अजीव दोनो एक जगह सयोग से चले आ रहे हैं, सम्बन्ध बने आ रहे हैं। तब देखो जीव मे अजीव का आना आश्रव है। अजीव मायने कर्म और जीव मायने जीव। जीव मे अजीव का आना आश्रव, जीव मे अजीव बध जाए बध, जीव मे अजीव न आये सवर। आये हुये अजीव जीव से निकल जाये—निर्जरा और पूरी तरह से निकल जायें तो मोक्ष। किसका मोक्ष हो गया? जीव का भी हो गया और अजीव का भी। कर्म छूट गये तब वे भी अपनी असली स्थिति मे आ गए, अकर्मरूप हो गए। उनमे जान नही, लेकिन परेशानी तो कर्मो को बहुत है। जीव से भी ज्यादह परेशानी है कर्मो को। जीव को क्या? झलक रहा। उपयोग लग गया पर वहाँ तो देखो सारा अनुभाग पडा है, क्रोध का, मान का, माया का, लोभ का, स्थिति बधी पडी है, उनमे ही प्रकृति पडी भई है। तो सारा यह कर्म का छायारूप है। वह फैक्टरी तो कर्मो मे ही चल रही है हर तरह से। तो जब मोक्ष हुआ तो कर्मो का भी मोक्ष हुआ, जीव का भी मोक्ष हुआ। पर कर्मो को शरम नही। मोक्ष के बाद फिर ज्यो के त्यो हो जायेंगे, और के साथ लग बठेंगे। जीव जरा पानीदार तत्त्व है। तो एक बार छूटने के बाद फिर समार अवस्था मे नही आता। तो इन ७ तत्त्वो मे सबसे प्रथम जीव तत्त्व का वर्णन किया है। इस दूसरे अध्याय मे जीव के बारे मे योग और उपयोगकृत बहुत वर्णन हो चुका।

जीव के जिज्ञासित स्थानो के विवरण मे अधोलोक के विवरण का प्रारम्भ—अब इतना वर्णन सुनने के बाद जिज्ञासा होती है कि यह जीव रहता किस-किस जगह है। किसी भी मनुष्य से परिचय करना है तो पहले तो यह कहते हैं कि आप कौन हैं फिर कहते हैं कि आप कहाँ रहते हैं ये दो प्रश्न इस ढग से हुआ करते हैं। सबसे पहले यह कोई नही पूछता कि आप कहाँ रहते है। थोडा यह परिचय पाते कि आप कौन हैं ? फिर कहते है कि आप कहाँ रहते हैं ? बस यही पद्धति यहाँ आयी है, दूसरे अध्याय मे कहा गया कि जीव कौन है ? तीसर अध्याय मे पूछा जा रहा है कि यह जीव रहता कहाँ है ? तो यह जीव रहता कहाँ है ? लोक मे, जिसके कि तीन विभाग हैं—(१) अधोलोक, (२) मध्यलोक और, (३) उर्ध्वलोक इन तीनो लोको मे जीव रहता है। तो अब जीवो के स्थान का वर्णन करना है तो अटपट वर्णन ठीक नही है। एक सिलसिले से वर्णन ले। तो बोलो सिलसिला कहाँ से लायेंगे ? क्या मध्य लोक से ? उसके बाद फिर किसका वर्णन करेंगे ? क्या उर्ध्व लोक का ? उसका वर्णन करने के बाद अधोलोक का वर्णन करने के लिये बडी लम्बी खीच करनी पडेगी। वह निकट न रहा वर्णन इसलिये भाई अधोलोक का वर्णन करो। अधो-लोक का वर्णन किया, मध्यलोक का किया फिर उर्ध्व लोक का किया। ऐसे क्रम से वर्णन करते हैं तो सबसे पहले अधोलोक का वर्णन किया जाएगा और अधोलोक का वर्णन करने का एक रहस्य यह है कि वह तो पहले एकदम जीवो को सान्त्वना देने के लिये, आलम्बन देने के लिए एकदम मोक्ष के उपायो का वर्णन किया, लेकिन थोडा सिलसिले मे लेने के बाद अब जीव को सभी तरह की बात बताना चाहिये ना। तो सबसे पहले नरको की बात बतायेंगे ताकि पापो से भय हो, वैराग्य मे यह आगे बढे और यह अपना कल्याण करे। इस कारण सबसे पहले अधोलोक का वर्णन किया जा रहा है। इस अध्याय मे सर्वप्रथम अधोलोक की भूमियाँ बताते हैं।

रत्नशर्कराबालुका पङ्कधूमतमोमहातम प्रभा भूमयो।
घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा सप्ताधोध ॥३॥१॥

अधोलोक की सात भूमियो के अवस्थान का वर्णन—सूत्र का अर्थ है—रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पक प्रभा, धूम प्रभा, तम प्रभा और महातम: प्रभा। इन ७ नामो की भूमियाँ एक के नीचे एक हैं और वे सब भूमियाँ घनोदधि वातवलय के आधार पर हैं। घनोदधि वातवलय, घन वातवलय के आधार पर है, घन वातवलय, तनु वातवलय के आधार पर है, और तनु वातवलय आकाश के आधार पर है। आकाश को अन्य आधार की आवश्यकता नही। कल्याण चाहने वाले पुरुषो को तत्त्व ज्ञान का मार्ग एक मुखी नही होता। उनको साधारणतया बहुमुखी ज्ञान हो तब ही उनका वैराग्य टिक सकता है। कोई कहे कि खाली वस्तु के द्रव्य गुण पर्याय की खूब चर्चा कर ले और उसी का खूब ज्ञान कर लो तो करते जायें, सम्भव है कि वह तोतारटत की बात बन जाएगी, अथवा जैसे बर्तन बनाने वाले के कारखाने मे कोई कबूतर रह रहा वही बैठा रहता है खूटे पर और वहा आवाज कितनी आ रही है। बर्तनो की ठुकठुककी बहुत आवाज आती है, मगर अचरज है कि वह कबूतर उन आवाजो से घबडाता नही, और खूटे पर बैठा रहता है जब कि चिडिया, कबूतर आदि जरा सी ताली ही बजा दो तो उडकर भाग जाते हैं। क्यो नहीं भाग रहा वह कबूतर, बर्तन की ठन-ठन की आवाज होने पर भी। उसको अभ्यास बन गया उस आवाज के सुनने का। तो इस तरह एक-मुखी एक सकोच दायरे का कोई ढग का तत्त्व ज्ञान बनाये तो उससे स्पष्ट बात नहीं होती। थोडा दुनिया का भी ज्ञान चाहिए। लोक कितना बडा हैं। किस-किस जगह है, जीव कहाँ-कहाँ रहताहै, जगह

का भी ज्ञान हो, उनके देहो का भी ज्ञान हो, तो जीव के अस्तित्त्व के बारे मे श्रद्धा मे ही दृढता बढती है नही तो ऐसा लगता कि जैसा औरो ने ब्रह्म कह दिया, एक ब्रह्म है जगत मे और कुछ नही है। वह कूटस्थ है अपरिणामो है, पर समझ मे क्या आया, हाथ क्या लगा ? तो कोई कुछ नही कह सकता। तो एकमुखी याने किसी एक विषय का जो ज्ञान है वह स्पष्ट ज्ञान नही होता। तो हमे सब कुछ जानना चाहिये कि जीव कहाँ रहते हैं, कैसे रहते हैं, क्या उनका ढग है। जीवो का विशेष परिचय पाने के लिये आचार्य सन्तो ने मार्गणा और गुण स्थानो का आधार बताया है। सबसे सुन्दर उपाय है जीवो के बारे मे सब तरह का ज्ञान पाने के लिये। इससे बढिया और कोई उपाय नही। परखते जाओ सब मार्गणा और गुणस्थानो को जानो। तो उन्ही मे से एक विवरण है यह सब को बताया जा रहा है।

सात भूमियों की रचना का प्रकार—सर्वप्रथम कहाँ-कहाँ रहते हैं जीव, उनमे से अधोलोक का वर्णन यहा किया जा रहा है। सूत्र मे जितने शब्द दिये हैं ये सब आवश्यक शब्द हैं।, ७ नाम गिनाये ही थे—रत्न प्रभा, शर्करा प्रभा आदिक। और ये सब सार्थक नाम हैं। जैसे पहले नरक मे कितना उजेला है। बहुत तेज तो नही, पर इतना प्रकाश है जैसे कि कुछ रत्नो का प्रकाश होता है। दूसरे नरक मे उतनी आभा है जैसे शक्कर की। तो कुछ प्रकाश तो नही मगर कुछ सफेद जैसा होता। तीसरे नरक मे रेत जैसे रग का प्रकाश है, चौथे नरक मे कीचड जैसी प्रभा है। ५वे मे धुआ जितना। प्रभा का अर्थ प्रकाश न लेना किन्तु जो जिसमे है वह लेना और ६टे नरक मे अन्धकार जैसा और ७ वे नरक मे महान् अन्धकार जैसा। वहाँ रहते हैं ये नारकी, तो पहले तो स्थान से ही समझ जायेंगे कि कितना दु खप्रद स्थान है। और ये सातो नरक क्रमश एक के बाद एक नीचे है, पहले रत्न प्रभा, दूसरा शर्करा प्रभा आदि। ये भूमिया है, ठोस और उन ठोस भूमियो के बीच-बीच नारकियो के रहने के बिल के ढग के स्थान है। जैसे कि पृथ्वी मे चूहे के बिल होते है तो चूहे के बिल फिर भी अच्छे हैं, उनके ऊपर से रास्ता तो है पर इन बिलो का रास्ता किसी जगह से नही है, और इसको इस दृष्टान्त से समझ सकते हैं कि जैसे कोई एक फुट का लम्बा चौडा मोटा काठ हो और उसके बीच मे सैकड़ो छेद पडे हो और ऊपर से किसी भी तरफ बिल्कुल नही मालूम पडते, यह अन्दाज भी नही हो पाता कि इसके अन्दर छेद हैं, ऐसी लकडी बाजार मे बहुत मिल सकती है, तो ऐसे ही उन जमीनो मे भीतर ऐसी पोल है कि जिनमे कोई बाहर के लिये स्थान नही कि कही उसका मुख हो, ऐसे बिलो मे ये नारकी जीव रहते हैं। सो एक भूमि है, उसके बीच मे नारकी है और उसके नीचे कुछ नही, आकाश है बहुत सा उसके नीचे फिर एक भूमि है उसमे नारकी रहते, उसमे नीचे आकाश, फिर भूमि है। तो कोई शब्द को पकडने वाला यह शका करे कि तुम तो कह रहे कि सातो नरक एक के नीचे नीचे हैं, मगर बीच मे तो आकाश का अन्तराल आ गया, तो वह एकदम नीचे नीचे कैसे कहलाया ? तो भाई नीचे-नीचे ही कहलाता है, आकाश की कोई विवक्षा नही है, या उस अन्तराल को भी मान लो, पहले नरक के नीचे पहले दूसरे के अन्तराल वाला आकाश है। मतलब ये सब नरक एक के नीचे एक चले गए हैं। तो ये सातो भूमियाँ अलग-अलग हैं, जुडी-जुडी नही। ये भूमियाँ तीन प्रकार की वायु के आधार पर हैं सबसे पहले घनोदधि वातवलय याने किसी पानी का मिक्सचर वाला पवन अधिक मोटा होता है उसके बाद घन वातवलय जहाँ पानी का मिश्रण नही किन्तु घन वायु है। उसके बाद तनु वातवलय उसके बाद आकाश ही आकाश। भूमि का आधार यहाँ वायु है। जिस जमीन पर हम आप चलते-फिरते

हैं यह रत्न प्रभा भूमि है मगर नरक यहाँ ऊपर नही है। रत्नप्रभा भूमि के तीन हिस्से है भीतर। हम आप तो ऊपर रहते हैं, तो ऊपर के दो भागो मे तो खोटे देव रहते हैं भवनवासी और व्यन्तर और शेष के तीसरे भाग मे नारकी रहते हैं तो यह भूमि वायु के आधार पर स्थिर है।

भूमियों के आधार व स्थिरत्व के विषय मे कुछ आशकाओं का दिग्दर्शन—देखिए वैज्ञानिक लोगो के सामने एक शका आज के समय मे ही नही बल्कि अब से हजारो वर्ष पहले की उठी हुई है कि यह जमीन गोल है और ऊपर नीचे सब तरफ से घूमती रहती है और नक्षत्र सब स्थिर हैं। यह चर्चा बहुत पहले समय से चल रही है। यह तो एक ज्ञान की बात है। ज्ञानीजन पहले भी होते थे पहले भी चर्चा चलती थी। तो एक शंकालु यहाँ एक बात कहता है कि जमीन तो गोल है और वह ऊपर नीचे इस तरह घूमती रहती है और ये नक्षत्र ये मेरूको प्रदक्षिणा रूप मे स्थित हैं जहाँ के तहा। बस यह भूमि घूमती है और उसमे कभी नक्षत्र दिखते, कभी नही दिखते, इस तरह चलता रहता है। तो फिर यह बात कहना कि ये भूमियां सब स्थिर है यह बात तो सही न बनी। एक यह आशका वैज्ञानिको की है। उसका समाधान देंगे। पर उस समाधान से पहले थोडा और प्रकार के लोगो की भी बात सुनो। कोई लोग कहते हैं कि यह जमीन तो कछुवा की पीठ पर सधी है, ऐसे कुछ धार्मिक दार्शनिक हैं जो यह कहते हैं कि कूर्म याने कछुवा के ऊपर भूमि सधी भई है। कुछ लोग उसमे आशका रखते हैं कि यह भूमि वायु के आधार पर कैसे है और है तो यह वायु किसके आधार पर है। यह इसके आधार पर है, तनु वातवलय आकाश के आधार पर है तो आकाश का आधार बताओ। जब आधार बताने मे घुन लग गयी तो बताओ किस आधार पर आकाश टिका है ? ऐसी कुछ लोग शका रख सकते। पर इन सब शकाओ का जरा प्रतिलोम (उल्टा) पद्धति से समाधान सुनो।

वायुओ मे भूमि की आधारता सिद्ध करते हुए तृतीय आशका का समाधान—अन्त मे कौन सी शका रखी कि कैसे यह भूमि इस हवा के आधार पर है, यह हवा इस हवा के आधार पर है। वह तनु वातवलय के आधार पर है तो इसके लिये यह अनुमान सिद्ध करना है। पहले तो यह देखो कि आकाश किसी के आधार पर नही है क्योंकि वह व्यापक द्रव्य है। आकाश अपने आपके आधार पर है व्यापक द्रव्य होने से। जो अपने आधार पर नही है वह व्यापक द्रव्य न मिलेगा। जैसे यह तख्त, यह घडी, यह दरी, हम आप लोग ये सब छोटे-छोटे पदार्थ हैं, व्यापक नही हैं इसलिये इनका आधार चाहिए। जो सर्व व्यापक पदार्थ है उसको आधार की जरूरत नही। आकाश से अधिक सर्वव्यापक कोई और पदार्थ है क्या ? है कोई आकाश से बडा लम्बा चौडा क्या क्षेत्र दृष्टि से ? तो आकाश से बडा कोई पदार्थ नही इसलिए आकाश निराधार स्वाधार है, उसको किसी अन्य के आधार की जरूरत नही। जरा इस प्रसग मे एक बात सुनो—जो प्रश्न किया गया कि आकाश से बडा कुछ नही तो हम बतायें कि है कोई आकाश से बडा। आप लोग सोचो कौन सी चीज है जो आकाश से भी बडी हो ? वह चीज है ज्ञान। ज्ञान व्यापक है। निश्चयनय मे तो व्यापक नही, क्योकि ज्ञान भी जीव के प्रदेशो मे ही रहता है, अगर विषय की दृष्टि देखें तो ज्ञान ने सब जीव द्रव्यो को जाना, पुद्गल को, धर्म, अधर्म, आकाश, काल को जाना और फिर यदि इतनी चीजे और और भी अनगिनतें होती तो उन्हे भी जानता। इतना व्यापक है ज्ञान का स्वरूप। और देखिये एक युक्ति से भी सोचो—एक बात बतलाओ कि सूक्ष्म स्थूल मे समायेगा कि स्थूल मे सूक्ष्म ? तो लोग तो प्राय यही उत्तर देंगे कि स्थूल मे सूक्ष्म समा जाएगा, पर बात इसके विपरीत इस समय कही जा रही है। सूक्ष्म मे स्थूल समाया

करता है। इसके लिये कुछ उदाहरण ले लों। देखो—पृथ्वी स्थूल है और जल सूक्ष्म है, पर जल मे पृथ्वी समायी हुई है। यह बात तो सभी लोग मानते हैं। जल का क्षेत्र ज्यादह है और सिद्धान्त के अनुसार भी मध्य लोक मे जल का क्षेत्र ज्यादह है। एक ही स्वयभू रमण समुद्र इतना बडा है कि असख्याते द्वीप समुद्र मिलकर भी उतना बडा नही है, तो देखो जल सूक्ष्म है, पृथ्वी स्थूल है, तो जल मे पृथ्वी समायी हुई है। अब जल और हवा की बात देखो—जल स्थूल है हवा सूक्ष्म है, तो हवा मे जल समाया है जल के क्षेत्र से हवा का क्षेत्र ज्यादह व्यापक है। अब हवा और आकाश मे मे देखो—हवा से आकाश सूक्ष्म है तो आकाश मे हवा समायी हुई है। और आकाश से सूक्ष्म है ज्ञान, तब ही तो ज्ञान मे आकाश समाया है, और दुनिया की सारी चीजे समायी हैं तथा इनसे असख्यात गुणे ये और होते तो वे भी समा जाते। तो एक आत्मधुनिया की ओर से जरा चर्चा बीच मे छेड़ दी। प्रसग तो यहाँ यह है कि आकाश किसी अन्य के आधार पर नही है। आकाश आधार है और तनु वातवलय आधय है। कोई चीज अगर हवा के बल पर टिकी है तो उसके निकट मोटी हवा होगी, उसके बाद कुछ कम हवा होगी और अन्त मे बिल्कुल कम हवा होगी। यह तो विधि होती तो ये भूमियाँ घनोदधि वातवलय के आधार पर है। घनोदधि वातवलय पर टिका है तनु पर तनु वातवलय आकाश मे टिका हुआ है।

कछुआ आदि के आधार का निराकरण करते हुए द्वितीय आ[illegible] **स्थानो के बारे में कुछ व्यावहारिक छटनी की चर्चा**—यदि ऐसा [illegible]
पर टिकी है तो वही प्रश्न आयेगा कि फिर वह कछुआ किस [illegible]
असम्भव है कि जमीन कछुआ पर टिकी है जमीन [illegible]
कछुओ को देखते है उन पर क्या टिक रहा है ? [illegible]
वायु के आधार पर टिकी हुई है, यह बत[illegible]
कहाँ हैं। कहाँ-कहाँ रहते हैं ये जीव [illegible]
बढिया है वहाँ ठहर जाओ। [illegible]
बनी हुई हवेली मे, जिस[illegible]
नही पसन्द करते [illegible]
जन्म स्था[illegible]
प्रयत्न [illegible]
हट नही, [illegible]
घबडाहट [illegible]
उनकी आ[illegible]
उन्ही आत[illegible]
जीव निगो[illegible]
सत्ता न्यार[illegible]
भी अक्ल [illegible]
भी निगोदि[illegible]
छटनी करे[illegible]

अपने आप मे शान्त रहेगे, केवली बनेंगे, अनन्त आनन्द के धाम मे रहेगे, उस ही की छटनी करें। यह सारा लोक सब वायु के आधार पर है, ऐसी ही प्राकृतिक रचना है, घनवायु है जहाँ कभी फर्क नही पड सकता। तो जितनी वातवलय के आधार पर ये भूमियाँ टिकी हैं ये धाम नरक एक के नीचे दूसरा, दूसरे के नीचे तीसरा, इस तरह से एक के नीचे एक चले गए हैं। अब कैसी-कैसी उनकी रचना है, कैसा विस्तार है, कैसे विल हैं, अगुल-२ की बात बतायी जायेगी। जहाँ लोक का वर्णन है, जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे, स्वर्गों का, पर्वतो का, एक-एक अगुल का और कोई-कोई तो एक अगुल भी पूरा नही है तो उसके बारे मे बता दिया। इतना बडा ज्ञान उन सन्तो का निर्मल था कि सब तरह से सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें भी दिखाया है।

प्रकृत विषय का स्मरण—जीव का स्वरूप जाने विना इस जीव को प्रकाश कैसे मिलेगा। हमे किस तरह रहना चाहिये, क्या चिन्तन करना चाहिये, यह मार्ग तत्त्व ज्ञान मिलने पर ही होता है। इसी सिलसिले मे जीव के बारे मे दूसरे अध्याय मे बहुत कुछ वर्णन किया है मोक्षशास्त्र मे, कि जीव के कैसे-कैसे परिणाम हैं, क्या लक्षण हैं, कैसी क्रिया है, कैसा शरीर है, कैसी उनकी आयु है, सभी बातो का विवरण बताया, अब वे जीव रहते कहाँ हैं, ऐसी जिज्ञासा होने पर एक लोक का स्वरूप बताया जा रहा है कि दुनिया क्या है ? कितनी बडी है। तो सारा लोक तीन भागो मे बटा हुआ है—(१) अधोलोक, (२) मध्य लोक और (३) उर्ध्व लोक। अधोलोक मेरु पर्वत की जड से नीचे जितना भी स्थान है वह सब अधोलोक कहलाता है। अधोलोक मे ७ पृथ्वियाँ हैं, जिनमे नारकी जीव रहते हैं। इसी को नरक कहते हैं। तो वे भूमियाँ किस बात पर स्थिर हैं, उनको कौन रोके हुये है ? यह भूमियाँ जहाँ की तहाँ अवस्थित हैं। तो बताया गया कि भूमियो के सब तरफ एक ऊपरी भाग छोडकर याने ५ तरफ, चारो दिशाओ मे और एक नीचे, तीन प्रकार की वायु है। जिन वायुवो पर ये भूमियाँ स्थिर हैं। इस विषय पर एक शका यह हुई थी कि हम तो जानते हैं कि पृथ्वी गेंद की तरह गोल है और वह ऊपर नीचे घूमती रहती है। नक्षत्र मण्डल जहाँ का तहाँ स्थिर है, इसमे तो दर्पण के आकार की तरह, थाली के आकार की तरह पृथ्वी नही मालूम होती। उसके समाधान मे आज कुछ विचार करना।

भूगोल व भूभ्रम की एक आशका—शकाकार यह मानता है कि भूमि के चारो तरफ जो वायु है उस वायु की प्रेरणा से यह जमीन ऊँचे-नीचे घूमती रहती है। भूगोल वालो का एक इस प्रकार का प्रस्ताव है कि जमीन गेंद की तरह गोल है और उसके चारो तरफ जो वायु है वह स्वय बहने वाली है तो उसके सहारे यह पृथ्वी भी ऊपर नीचे घूमती रहती है। ऐसा शकाकार का कहना है, मगर इसका ठीक प्रमाण नही दिया जा सकता। शास्त्र और पुस्तक की बात तो यह है कि सब कोई अपने-अपने विचार के अनुसार लिख सकता है, जब उसके साथ-साथ कोई दूसरा प्रमाण भी ठीक बैठता हो तो पुस्तको को भी प्रमाण माना जा सकता है। पर इस बात को सिद्ध करने मे कोई प्रमाण नही है कि यह जमीन गोल है गेंद की तरह और उसके चारो तरफ हवा है, वह इस भूमि मे ऊपर नीचे घूमती रहती है। शकाकार कहता है कि है तो हमारे पास प्रमाण। देखो एक अनुमान है, पत्ते ऊपर नीचे घूमते रहते हैं और उसका कारण है हवा। देखो जो पुरुष की चेष्टा के बिना घूमता हो तो समझना चाहिये कि उसमे कारण हवा है जैसे यहाँ-वहाँ के पत्ते जब डोलते रहते हैं और कोई पुरुष उन्हे फेंक नही रहा तो सिद्ध हो रहा ना कि वायु हिला रही इसलिए पत्ते उड

रहे। तो पुरुष की चेष्टा के बिना अगर कोई चीज घूमती है तो उसका कारण वायु ही होता है और इस तरह यह पृथ्वी यह पुरुष की चेष्टा बिना घूमती रहती है। कोई पुरुष इस पृथ्वी को घुमा रहा हो ऐसा नही है। तो पुरुष की चेष्टा के बिना यह पृथ्वी घूम रही है तो इसमे कारण हवा होना चाहिये, ऐसा शकाकार अपनी बात रख रहा है। और बता रहा है कि हेतु बिल्कुल सही है कि इस जमीन को घुमाने मे कोई न ईश्वर कारण है न पुरुष कारण है और घूमती रहती है तो इससे सिद्ध होता कि इसके चारो तरफ ऐसी हवा चलती है कि उससे यह पृथ्वी घूमती है। शकाकार ही कहे जा रहा है कि यह भू गोल है गेंद की तरह और यह ऊपर नीचे घूमता है तब ही तो कभी चन्द्र दिख गया, सूर्य दिख गया, तारे दिख गये, कभी नही दिख रहे तो पृथ्वी घूम-घूमकर जिसके सामने हुई वही चीज दिख जाती है। दूसरी बात जब सूर्य या चन्द्रमा का उदय होता तो ऐसा लगता है कि जमीन से चिपककर उदय हो रहा हो, जब अस्त होता तो ऐसा लगता कि जमीन के पास से जा रहा, यह बात तब ही हो सकेगी जब कि गेंद की तरह पृथ्वी गोल हो जाये। यह सब बात शकाकार की ओर से कह रहे है, शकाकार अपनी बात सिद्ध करने मे कितनी दलील दे सकता है। उसका कहना है कि सूर्य, चन्द्र तो स्थिर हैं और यह भूमि डोलती है, गोल गोल फिरती है।

भूभ्रमण का भ्रम तथा बाधक घटनाये बताते हुए भूभ्रमण की शका का समाधान—अब उक्त शका के समाधान मे सोचो कि जो-जो बात उसने कहा, देखिये, वह सब भ्रम हो गया कि जमीन चलती है और चन्द्र नक्षत्र सूर्य ये सब स्थिर हैं। देखो गणित की बात तो यह है कि अगर ऐसा मानते कोई कि भूमि चलती है, नक्षत्र स्थिर हैं तो वह ही गणित लग जाएगा जो ऐसा माने कोई कि नक्षत्र मण्डल चल रहे हैं और भूमि ज्यो की त्यो स्थिर है ऐसा मानने पर भी वही गणित लग बैठेगा रात दिन का होना सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण का होना आदि, इसलिए उस गणित के कारण यह नही माना जाता है कि भूमि चलती है। अब और विचार करना होगा, देखो पहली बात—भूमि अगर चलती है तो ऊपर से कोई चीज फेंकी जाए तो फिर उस चीज को उसी जगह नही गिरना चाहिये। वह तो और ही जगह गिरना चाहिये क्योकि बीच मे कुछ समय लगेगा, पर ऐसा तो नही देखा जाता। कितनी ही ऊपर से चीज गिराई जाए, पृथ्वी भाग के ऊपर से गिरायी जाए तो वह उसी जगह गिरती है। चाहे पानी गिरे, चाहे कोई लोहा का गोला गिरे, गिरेगा उसी जगह। अगर भूमि चलती है तब, तो वह चीज दूसरी जगह गिर जाना चाहिए। इसका उत्तर ये वैज्ञानिक यह दे सकते हैं कि वह भूमि तो प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खीचती है। जो लोग पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के विषय मे कहते हैं उनका कोरा भ्रम है, कैसे कि वस्तु को जमीन नही खीचती किन्तु वस्तु अगर घन है तो उसकी प्रकृति है कि वह नीचे गिरती है। याने अधः पात शक्ति है पदार्थ मे, तो पदार्थ नीचे की ओर गिरता है, जमीन खीचती हो यह बात नही। बहुत निष्पक्ष रीति से विचार करें तो सब बात समझ मे आयेगी। जो गुरु चीज है उसका नीचे की ओर गिरने का स्वभाव है और जमीन स्थिर है तो जब वह चीज नीचे गिरती है तो अध पात प्रकृति के कारण ठीक उसी जगह गिरती है। इसी तरह जल की भी बात देखो है, जमीन अगर चलती है तो जब ऊपर का भाग नीचे हो जाएगा तो, वहाँ जल गिर जाएगा। इसका उत्तर यदि वे यह दें कि नही, भूमि मे एक वायु है ऐसी जल धारण वायु जो उस वायु के कारण वही जमीन पर पानी रहता है और गोल घूमने पर भी वह पानी समुद्र का कही अगल-बगल गिरता नही, तो जरा यह विचार

करो कि वायु अब दो प्रकार की माननी पड़ेगी—एक तो जल धारक वायु और एक जल प्रेरक वायु। जैसे समुद्र मे लहर उठती है तो यह प्रेरक वायु की चोट से उठती है, जब जल धारक वायु आती और पृथ्वी मे आकर्षण शक्ति है तो उस जल को तो बिल्कुल ठीक-ठीक रहना चाहिये उसमे तरग क्यो उठती कि जो जल प्रेरक हवा चलती है उसकी प्रेरणा पाकर वह जल चल उठता है तो बतलाओ उस प्रेरक वायु के द्वारा जल धारक वायु क्यो नही तिरस्कृत हो जाती। सारा पानी फिर कही भी गिर जाए। तो जमीन को गोल मानने वाले एक किसी ने कोई दृष्टि दी सो आज कल कोई उल्टी दृष्टि दे तो उसमे दिल बहुत लगता है। सीधी बात मे कोई बुद्धिमानी नही समझता। कोई टेढी बात मिले, टेढी बात बने उसमे लोग समझते हैं कि हमारी कला है। तो पृथ्वी को गोल माना और चक्कर लगाने वाली माना, पर एक बात ये बतायें कि वायु अगर घुमाती है तो वायु तो अटपट चलाने वाली चीज है। कभी किसी दिशा मे कभी किसी दिशा मे चलाती है। फिर तो पृथ्वी का घूमना सही नही हो सकता। पृथ्वी तो अटपट चलेगी। उसका ऐसा ही घूमने का स्वभाव है। तो जब अटपट वायु चलने का स्वभाव है, वायु के चलने मे जब नाना विविधताए है तो पृथ्वी इस ही ढग से चले एक जो ढग बताया है कि उस धुरी से चले, इस ही ढग से चले, यह बात सम्भव नही हो सकती। वायु की वजह से अगर चीजे चलती हैं तो वह चीज सही एक रूप से नही चलती, कभी कही चल दे, कभी किसी ढग मे चल दे। मगर नियम्ना की बात एक ही ढग की होती है। घन वायु है तो उसकी वजह से कोई चीज स्थिर है तो वह स्थिर ही है तो वायु का भ्रमण होना, वायु से पृथ्वी का भ्रमण होना यह बात सिद्ध नही होती है। इसमे बहुत विचार करना होगा, क्योकि एक विषय यह ऐसा है कि कक्षाओ मे भी भूगोल चलता, मास्टर लोग भी खूब पढाते, और कुछ अनुसधान शालायें भी बन गई जिनमे यत्र वगैरह रखकर इन बातो को सिद्ध करने का प्रयास किया जाता।

दृष्टिदोष से अन्यथा परिचय भूभ्रम की भ्रान्ति का कारण—एक रेलगाडी मे बैठा हुआ पुरुष पास मे दूसरी रेलगाडी भी खडी है तो जब एक रेलगाडी चलती जिसमे वह खुद बैठा है तो उसे बहुत देर तक यह भ्रम रहता कि कौन सी गाडी चल रही। अब इतनी देर मे कोई कही पहुँचा कोई कही इतने मे रेल वाले मुसाफिरो से कितनी दूरी हो गई ? यह सब हिसाब अपनी रेल चलती है मानो तो लगा लेंगे और दूसरी रेल चलती है मानो तो लगा सकते। चलती रही अपनी रेल और मान लिया कि उसकी रेल चलती है या उस रेल वाले मानें कि हम चल रहे तो दोनो का सही लग जायेगा लेकिन चलता कौन है सो देखो और भी देखो यह एक दृष्टि का फेर है। हम आँख से देखते हैं तो बाहर की चीजें सकुचित दिखती हैं। वे चीजें सकुचित हो गई सो बात नही, मगर आँख द्वारा बाहर का दिखाव ऐसा है कि पास की चीज अपने आप भारी मालूम होगी और बाहर की चीज सिकुडी मालूम होगी। अभी आप यही देख लो—जहाँ रेल की पात भी सीधी है, वहाँ आप एक जगह खडे होकर देखें तो पाँत से भिन्न दूसरी पाँत ऐसी लगती है कि यह तो ३-४ फिट के फासले पर है, पर आगे आप देखें तो ३-४ फर्लांग की जो पाँत है वह लगता कि मिली हुई सी है। बतलाओ वह पाँत मिली हुई है क्या ? नही, पर दिखती है मिली हुई। तो इसी तरह जब चन्द्र, सूर्य का उदय होता है तो हम आप को लगता है कि जमीन से मिलकर उदय हुआ। जमीन मे से निकलकर उदय हुआ है। वह सब दृष्टि का दोष है। चीज तो वहाँ बहुत दूर है पृथ्वी और चूंकि चन्द्र, सूर्य

स्वय भ्रमण करते है तो भ्रमण करते-करते जब ये चन्द्र सूर्य बहुत दूर पहुँच गये उदय की दिशा मे, अस्त की दिशा मे तो बहुत दूर होने के कारण पृथ्वी से चिपटा सा लगता है। यह दृष्टि का दोष है। कही ऐसी ही बात वहाँ हो गई सो बात नही, पृथ्वी थाली की तरह गोल है अथवा बर्फी की तरह चौकोर है, मध्य लोक है गोल तिर्यक लोक, पर पृथ्वी तो बर्फी की तरह छ दिशा वाली है और उसके ५ ओर घनी वायु है। उस वायु से यह जमीन सधी भई है।

नरकगति मे जन्म लेने की तैयारी का भाव—जिस जमीन के ऊपर हम आप रहते है यह पहली पृथ्वी का ऊपरी हिस्सा है। नारकी जाव इस पर नही रहते। इस पृथ्वी के तीन हिस्से और अन्दर हैं—ऊपर से नीचे को, उनमे जो नोच तीसरा हिस्सा है, उनमे बडे-बडे बिल हैं हजारो कोश के लम्बे चौडे, उनमे नारकी जीव रहते हैं। यह सब नारकियो का वर्णन चलेगा। ये नारकी जीव बन कैसे जाते हैं ? हैं तो हम आप की तरह के ही तो ये भी जीव है, कोई उनका ढग स्वरूप अलग नही है कि ये ही जीव नारकी बनते हो। जो अपने भाव खराब रखता, अज्ञान भाव रखता, लडाई दगें के भाव रखता, दूसरो के साथ अन्याय करता ऐसा जीव मरकर नरकगति मे उत्पन्न होता है। एक कथानक है कि एक बाल्मीकि ऋषि हुए हैं, वे पहले तो बहुत प्रसिद्ध डाकू हुए। उनका मुख्य पेशा था चोरी, डाका, राहजनी आदि के काम करने का। बहुत से लोगो का धन उन्होने लूटा। एक बार किसी जगल मे एक सन्यासी दीखा तो उसके पास भी जो कुछ था—लाठी, झोली, कमण्डल आदि के वह सब छीन लिया। वहाँ वह सन्यासी बोला—देखिये ! मैं सन्यासी हूँ, मेरे ऊपर आप विश्वास करें। मैं यहा से कही जाऊगा नही, यह सब सामान रखाये हुये मैं यही बैठा रहूगा, तुम घर जाओ और घर के सभी लोगो से एक प्रश्न का उत्तर लेकर मेरे पास आवो फिर खुशी-खुसी से हमारा सब सामान ले जाओ बालमीकि को उस सन्यासी की बात पर विश्वास हो गया और कहा कहो—किस प्रश्न का उत्तर लेकर आयें ? तो सन्यासी बोला—देखो तुम अपने परिवार के लोगो से पूछना कि हम जो तुम सबके लिए बडे-बडे अन्याय करके, पाप करके घन लाते है तो उस पाप का फल तुम लोग भी बाँट लोगे या नही ? ठीक है। बाल्मीकि अपने घर पहुच, अपने परिवारजनो के सामने वही प्रश्न रखा तो परिवार का कोई भी व्यक्ति पाप का फल बाँटना तो दूर रहा, पाप की बात सुनना भी पसन्द न किया। वहाँ बाल्मीकि को ज्ञान जागा। लौटकर जगल आये। बडे विचारो मे निमग्न थे—ओह मैने बड-बडे अन्याय करके पाप करके परिवार को सुखी रखा पर पाप का फल तो खुद को ही भोगना होगा। आखिर बाल्मीकि उस सन्यासी के पास आते है और सन्यासी से कह सुनाते हैं - महाराज परिवार के सभी लोगो ने यही उत्तर दिया कि हम लोग पाप का फल न बाँटेंगे, पाप का फल तो जो पाप करेगा वही भोगेगा। फिर सन्यासी बोला—अच्छा लो अब ले लो यह सब सामान। तो बाल्मीकि बोले—महाराज मुझे अब अन्य कुछ न चाहिये। यहाँ का सारा सग समागम बेकार है। मुझे तो आप अपना जैसा ही बना लीजिये। लो बाल्मीकि ऋषि हो गये। तो अन्याय करना, दूसरो का दिल दुखाना, झूठ बोलना, चोरी करना, पर निन्दा करना, कुशील सेवन करना, तृष्णा करना आदि पाप कार्य करने का फल है नरक गति मे जन्म लेना।

नरकगति मे जन्म लेने कारणो मे बहु आरम्भ परिग्रहकी कारणत्व की प्रधानता-नरक जाने के जितने भी कारण है उन सबमे प्रधान कारण परिग्रह बताया गया है। सूत्रजी मे कहा भी है—"बह्वारम्भप रिग्रहत्व नारकस्य" बहुत-बहुत आरम्भ परिग्रह लालच (तृष्णा) होना नरक आयु के बन्ध का प्रधान कारण

है। आज का मानव परिग्रह की तृष्णा मे बहुत-बहुत दौड लगा रहा है। बस उसे पैसा ही पैसा दिखता है। पैसे के प्रति, इतना अधिक लगाव है कि वह पैसे के आगे किसी को कुछ नही समझता। उसका त्याग नही कर सकता, परोपकार मे नही लगा सकता। हाँ अपने परिजनो के लिये तो चाहे कर्ज भी लेना पडे पर सब कुछ लगाने को तैयार हैं, पर कोई धर्म का काम आ जाये तो उसके लिये बडी सोच विचारी करनी पडती है। लेकिन ध्यान रहे कि घर के लोगो के ऊपर जो कुछ भी व्यय किया जा रहा है वह कोई पुण्य का (धर्म का काम नही है, वह तो मोहवश किया जा रहा है। वह तो पाप का ही प्रोग्रामवाला काम है, तृष्णा मे ही शामिल है। तृष्णा से वह अलग नही होता। तो जो बहुत-बहुत आरम्भ परिग्रह रखता है ऐसा पुरुप नरक गति मे उत्पन्न होता है और नरक मे कैसा दु ख है वह सब इस अध्याय मे बताया जायेगा। जिसको सुनकर रोगटे खडे हो जायेंगे, ऐसा कठोर दु ख है। तो ऐसे नारकी जीव कहाँ रहते हैं उसकी चर्चा चल रही है। ये रहते है पहली पृथ्वी मे, नीचे के तीसरे भाग मे। उसके नीचे दूसरी पृथ्वी है उसमे भी रहते हैं बीचो बीच पोल मे। ऐसी ऐसी ७ पृथ्वियाँ है जिनमे नारकी जीव रहा करते हैं। तो इस पृथ्वी की ही बात चल रही है।

भूभ्रम की मिथ्या बात को सिद्ध करने के लिए अनेक मिथ्या प्रलापो के सग्रह की आवश्यकता—पृथ्वी के बारे मे शकाकार मानता है कि पृथ्वी ऊपर नीचे घूमती, वायु घूमती, तो यह बतलाओ कि वायु अटपट क्यो नही घूमती ? यदि यह कहा जाये कि इस जमीन मे रहने वाले जो लोग हैं उन सबका ऐसा ही भाग्य है कि जिनकी वजह से वायु वडे ढग से घूमती है, अटपट नही घूमती, तो अब दो प्रकार की बातें सामने खडी हो गई। मगर यह बात देखो कि तुम अदृष्ट कैसे सिद्ध करोगे ? इसमे तो इतरेतराश्रय दोष है। जब अदृष्ट सिद्ध बने तो यह कल्पना करो कि प्राणियो के भाग्य के अनुसार जमीन बढिया ढग से घूमती है और जब बहुत बढिया ढग से घूम रही जमीन, यह बात सिद्ध हो तो प्राणियो का भाग्य सिद्ध हो। जैसे यहाँ के लोगो के सुख और दु ख देखे जाते हैं तो उससे भाग्य सिद्ध होते है, याने प्राणियो के भाग्य लगा है। प्रसग के अनुकूल इस बात की सिद्धि भी तो चाहिये। तो यहाँ सुख दु ख देखे जाते हैं उससे प्राणियो का भाग्य सिद्ध होता। तो ऐसे ही अगर जमीन का पहले ढग से घूमना सिद्ध हो तो प्राणियो का भाग्य सिद्ध हो। प्राणियो का भाग्य तो इसके परिणाम रचने मे कारण है। सुख मिले, दुःख मिले, ज्ञान मिले, अज्ञान मिले। शकाकार के ये कोई हेतु सही नही है। जैसा प्रतीति सिद्ध है, हम आप जाग रहे हैं उस तरह की बात है। यह कल्पना करना बिल्कुल गलत है कि जमीन मे आकर्षण शक्ति (गुरुत्वाकर्षण) है इस लिए मनुष्यो को खीचे रहती है। अब भला बतलाओ जब पृथ्वी के ऊपर कोई मनुष्य खडा है और पृथ्वी को गोल-गोल घूमना मान रहे तो ऊपर से नीचे आने मे उस मनुष्य की क्या हालत हो जायेगी ? वह तो नीचे आकर गिर जायेगा। उसके लिये कहते हैं कि जमीन खीचे रहती है। अब खीचे रहती है तो वे बतावें कि मनुष्य अपना पैर ऊपर कैसे उठा लेता है ? चलता कैसे है ? अगर खीचे रहती है तो दोनो पैर एकदम खीचे ही रहे, सारे के सारे मनुष्य पुतला से बने रहे। तो उनकी यह बात अटपट है। इस समय हम आप जो कुछ पृथ्वी पर बैठे, खडे, चीजें रखी देख रहे हैं वह सब पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण नही किन्तु वस्तु की प्रकृति ऐसी है कि जो वजनदार वस्तु है वह नीचे गिरने का स्वभाव रखती है। यही देख लो और फिर यह पृथ्वी की ग्रहण शक्ति कैसा होवा है कि यह वजनदार

चीज का तो ग्रहण कर लेती और जो हल्के पत्ते, कागज, गुब्बारे वगैरह हैं उनको नही खीच पाती। वे तो जरा सी हवा चलने पर ही ऊपर उड जाते है। क्या उन्हे खीचने मे पृथ्वी समर्थ नही ? तो बात यह है कि एक झूठ बात सही सिद्ध करने के लिए उनको अनेक झूठ बातें मिलानी पडी। और फिर सही बात को सिद्ध करने के लिए युक्तियाँ भी न ढूढो तो अनुभव बता देता है कि सच तो यह है वास्तविकता तो यह है। यहाँ यह बताया जा रहा है कि यह लोक किस प्रकार का है, जीव किस-किस ढग से रहते हैं। जीवो की क्या स्थिति है। देखो कोई किसी दूसरे का मित्र नही, शत्रु नही, सब अपने-अपने भावो के अनुसार अपना काम करते है। लेकिन जो मोह रखेगा पर पदार्थों मे तो उस ममता और तृष्णा का फल है नरक गति मे उत्पन्न होना। ममता न रखे, अहकार न रखें, धन वैभव को, समस्त बाह्य पदार्थों को गले से मत चिपकायें, उनमे आसक्ति मत बनावें। वैभव सम्पदा कुटुम्ब परिजन को ही अपना सर्वस्व न समझें। ये सब मिट जाने वाली चीजे हैं। जो अमिट है आत्मा का ज्ञान स्वरूप उसका अर्जन करने के लिए यत्न करना चाहिए।

धारक वायु द्वारा भूमि की स्थिरता—जो लोग भूमि को गेंद की तरह गोल मानते हैं वे दृष्टान्त मे प्रयोग करके देखें कि यदि कोई गोल पाषाणखण्ड है और वह गोल घूम रहा है तो उस पर पानी डालेंगे तो स्थिर न रह सकेगा, तो इसी प्रकार यदि यह भूमि गोल है और बडे वेग से ऊपर-नीचे चलती है तो पानी गिरता है। पानी ठहर न सकेगा। लेकिन देखा जाता है कि पानी बडी गम्भीरता से ठहरा ही रहता है। इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वी गेंद की तरह गोल नही किन्तु थाली की तरह गोल है। अब यहाँ कोई एक आशका और रखता है कि ये भूमियाँ है जिनको बताते हैं कि वायु के बल पर टिकी हैं तो वायु तो कोई जिम्मेदार चीज नही है, वह तो कही को चल जाए, तो फिर जमीन सब टपक जानी चाहिए। फिर स्थिर कैसे है यह ? तो समाधान इसका यह है कि वायु दो प्रकार की होती है—(१) गतिशील और (२) स्थानशील। कितनी ही वायु स्थानशील हैं, चलती नही हैं, जहाँ की तहाँ रुकी हैं जैसे वायु यहा भी रुकी हुई मिलती है, ऐसे ही इस भूमि को साधने वाली जो वायु है वह गतिशील नही है, इस कारण धारक वायु होने से पृथ्वी की स्थिरता सिद्ध होती है। जैसे मेघो की धारक वायु है। मेघ ऊपर टगे होते हैं। अब मेघ जो कभी-कभी गमन करते हैं तो वे प्रेरक वायु द्वारा गमन करते हैं। वे मेघ है आदिमान इसलिए वहाँ इस प्रकार की बात देखी जाती और ये पृथ्वियाँ हैं अनादि, तो अनादि से ही धारक वायु स्थिर है और उसके कारण यह पृथ्वी स्थिर रहा करती है। तो जो सब समय अनादि है, पृथ्वी और उसको धारने वाली वायु सदा न मानी जाये याने उस वायु मे सदा धारण करने की शक्ति है ऐसा न माना जाए तो यो तो किसी भी वस्तु के बारे मे कुछ से कुछ कहा जा सकता है। जैसे कोई कह दे कि आदमी आकाश आदिक मे भी सदा मूर्त नही रहे, उनमे इन धर्मों के धारण का विरोध हो जाएगा। यदि कहो कि आत्मा और आकाश मे और आधेय रूप अमूर्तत्व एव व्यापकपना इनका अनादि सम्बन्ध है इस कारण वहाँ शका नही है तो यही बात तो इस भूमि और भूमि को धारण करने वाली वायु का भी अनादि सम्बन्ध है अतएव यहाँ भी कोई विरोध नही है। अनादि से ऐसा ही चला आया है कि चारो ओर घनवायु है और उस पर भूमि स्थिर है, तो न तो भूमि गिरती है और न भूमि तिरछी भी चलती है, न ऊपर नीचे चलती याने भूमि मे गतिशीलता बिल्कुल नही है। यह सदा स्थिर रहा करती है।

भूमियो की साकारता व समीपता—अब यहाँ एक आशका और की जा सकती है कि ये सब भूमियाँ अन्य भूमि के आधार से मानी जानी चाहिये, क्योकि भूमि है। जैसे यहाँ हमारे ऊपर की भूमि किसी भूमि के आधार पर है तो वह भूमि भी अन्य भूमि के आधार पर होना चाहिए। इस तरह से कितनी भूमियाँ माननी पडेंगी, और फिर भी अनवस्था दोष न मिटेगा और इस तरह यह भूमि से भूमि लगी हुई सिद्ध हो जाने से यहाँ भूमि का कोई अन्त न आएगा। जब एक भूमि दूसरी भूमि के आधार पर है तो वहाँ कोई अलग बात तो न रही कि यह एक भूमि लगी, अब दूसरी भूमि लगी। जब एक एकदम आधार पर है तो कितनी हो भूमि लग जाए वह सब एक बात हुई और फिर उसका कभी अन्त न आएगा। तो भूमि असीम है, भूमि की म्याद न होगी चाहिए चाहिए क्योकि भूमि को भूमि का आधार चाहिए और उसका आधार न मिला तो भूमि का अन्त न रहा। तो उसके उत्तर मे कहते हैं कि यह भूमि असीम नही है, आकाश की तरह असीम होना चाहिए सो बात नही क्योकि जिसमे आकार का भेद है वह चीज असीम नही हुआ करती। तो जब इस भूमि मे आकार पाया जाता है तो यह असीम नही हो सकती है। जैसे पर्वत एक आकार वाला है तो पर्वत सीमा रहित नही हो सकता। जो सस्थान वाला न हो वही सीमा रहित होगा, जैसे आकाश। आकाश का आकार नही है तो वह सीमा रहित है। जिस-जिस चीज का आकार है वह कैसे सीमा रहित होगा ? अन्यथा आकार नही बन सकता। तो ये पृथ्वियाँ चू कि आकारवान हैं इसलिये ये सीमारहित हैं और इनका आधार वायु है ही। तो इस प्रकार ये ७ भूमियाँ हैं जिनमे नारकी जीव रहते हैं।

नीचे नीचे पापाधिक फल योगियों की विशेषता का सूचक नरको का नीचे नीचे होना—ये सब नीचे-नीचे भूमियाँ हैं और जितनी जो नीचे भूमियाँ हैं उनमे उत्पन्न होने वाले नारकी विशेष दु ख पाते हैं और उनके पाप अधिक हैं, पाप का फल अधिक है यह सब जीवो की गति की विचित्रता है जो नाना प्रकार के दु खो के धाम मे इस जीव को बसना पडता है। नरक भूमि का नीचे-नीचे सिद्ध होना इस कारण भी युक्त बैठता है कि प्राणियो के पाप विशेष को विचित्रता है और जैसे लोक व्यवहार मे भी कहते हैं कि यह अधोगति को प्राप्त हो तो नीचे जन्म लेता उसको पाप का फल माना जाता। तो जिसके और विशेष पाप हैं वे और नीचे जन्म लेंगे, और अधिक पाप वाले और नीचे जन्म लेंगे, तो पाप की विचित्रता होने से नीचे-नीचे की भूमियो मे इन प्राणियो का नारकभाव रूप मे जन्म होता है।

नरक भूमियों की प्रभा और सख्या—अब सूत्र मे जो शब्द दिया गया है उनमे जो प्रथम पद है वह तो एक नरक के अधेरा उजेता प्रभा को बताने मे सार्थक नाम वाला है। जैसे पहले ही कहा कि पहले नरक मे रत्न जितनी प्रभा है, दूसरे नरक मे शक्कर जितनी प्रभा है। तीसरे नरक मे रेत जितनी आभा, चौथे नरक मे कीचड जितनी, ५ वें नरक मे धुआ जितनी, छठे नरक मे अन्धकार जितनी और ७ वें नरक मे घनघोर अन्धकार जितनी प्रभा है। ये सब भूमियो के नाम हैं और इन भूमियो के ये प्राकृतिक नाम हैं, याने एक तो सम्हाल कर नाम बोलते और एक सीधा प्राकृतिक जैसे बच्चो के भी लोग दो नाम रख देते, घर मे कहने का और नाम व स्कूल मे पढने का और नाम। जैसे घर का नाम है पप्पू, मुन्ना आदि और स्कूल का नाम है प्रवीण कुमार, कोमल चन्द आदि। तो ऐसे ही उन ७ नरको के भी ये सम्हले हुये नाम हैं, और उन नामो मे कुछ नाम तो ऐसे लगते कि

मानो यह कोई बडी अच्छी जगह होगी। जैसे एक बार एक साधु जो घर-घर मे भिक्षा वृत्ति लेते थे स्थानकवासो साधु थे जिसने खुद घटना सुनायी कि एक साधु भिक्षा लेने गया तो वहाँ घर की स्त्री ने मना कर दिया कि अभी हम काम कर रही हैं भिक्षा देने की हमे फुरसत नही है, कही दूसरी जगह जाओ। तो उस समय उस साधु को कुछ गुस्सा सा आया और कह उठा कि अरे तू तो रत्नप्रभा जाएगी। यह बेचारी नासमझ स्त्री कुछ न समझी लेकिन रत्न प्रभा नाम सुनकर उसने समझा कि वह तो कोई अच्छी जगह होगी, सो बोली—महाराज हमारा ऐसा भाग्य कहाँ है कि हम रत्नप्रभा जाये, वहाँ तो आप ही जैसे भाग्यशाली जा सकते हैं। अब रत्नप्रभा नाम तो है पहले नरक का, सो वह साधु बडा शर्मिन्दा हुआ उस स्त्री का जवाब सुनकर। तो जो ७ नरको के नाम लिए गए वे बिल्कुल सम्हले हुए नाम हैं, भूमियो की सख्या ७ बतायी गई है, अगर इन भूमियो का कोई सक्षेप करना चाहे तो कह दो कि एक ही है क्योकि करक-नरक सब एक प्रकार के कहलाते हैं और कोई इनका विस्तार बनाना चाहे तो प्रत्येक नरक मे उत्तम मध्यम जघन्य विभाग है। लेश्यावा की अपेक्षा, आयु की अपेक्षा सभी दृष्टियो से उनके तीन-तीन विभाग हैं, नरको मे रहने वाले नारकियो के शरीर की अवगाहना भी भिन्न-भिन्न प्रकार है तो यो कह सकते कि २१ नरक है पर न सक्षेप रखा, न विस्तार रखा ऐसी सख्या यहाँ ७ बतायी गई है।

नरक भूमियो की दु खरूपता—ये भूमियाँ ऐसी दु खमयी हैं कि जिनका स्पर्श होते ही हजार विच्छुओ के द्वारा डसे जाने जितनी वेदना हुआ करती है, अथवा जैसे किसी कमरे मे फर्श पर बिजली का करेन्ट आ जाए तो उसके छूने से कष्ट होता है ऐसे ही करेन्ट जैसी नरको की सारी भूमि है। वहाँ कौन सा स्थान छोडकर जाये ? पर एक बात भी अनहोनी देखी जाती कि उन नरक की भूमियो मे कोई असुरकुमार नाम के देव दयावश नारकियो को समझाने आ जावे, या उन्हे भिडाने आ जावे तो उन देवो को वह भूमि दु खदायी नही बनती। तो ठीक है, ये सब कर्म के भेद वाले है। यहाँ भी तो कोई अगर रबड की चप्पलें पहने हो या काठका खडाऊ पहने हो तो उस पर बिजली के करेन्ट का असर नही होता, और लोगो के करेन्ट का असर हो जाता। तो उन भूमियो मे भी कैसी ऐसी विचित्रता है कि नारकियो के लिए तो वह करेन्ट का जैसा काम करती है और देवो के लिए किसी प्रकार के दु ख का कारण नही बनती। तो जिनके पाप का उदय है उनके लिए यह सब दुःख की सामग्री बन जाया करती है। ऐसी भूमि ही क्या, प्राकृतिक दु ख के सारे साधन वहाँ हैं। वहा वृक्षो के जो पत्ते गिरते वे भी तेज धार वाले होते हैं। कोई नारकी यदि किसी पेड की छाया मे आराम करने पहुँच जाये तो उस पेड के पत्तो के गिरने से उसका शरीर छिद जाता। उन नारकी देवो का वह वैक्रियक शरीर तिल-तिल बराबर खण्ड हो जावे पर भी पारे की तरह जुड जाता है, यही प्रक्रिया उनकी हरदम चलती रहती है। उनकी बीच में मृत्यु नही होती। तो इस तरह इन ७ भूमियो का सर्वप्रथम विवरण बताया गया।

आठ भूमियो का विश्लेषण—ये ७ भूमियाँ बरफी के आकार वाली छहो दिशाओ मे एक समान समान भाग को लिए हुए हैं। इनकी दिशाओ मे और नीचे घनो वायु है। जो स्थिर वायु है, जिस पर यह भूमि सधी हुई है, यह भूमि भ्रमण नही करती किन्तु सदा स्थिर रहती है किन्तु जैसे लोगो को प्रतीति है कि सूर्य, चन्द्र नक्षत्र दिखते हुये नजर आते हैं, ये मेरू पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं और मानो इसीलिए प्रदक्षिणा करते हो कि मेरू पर्वत का स्थान पवित्र माना गया है। तीर्थंकरो

का जन्म कल्याणक होता है, पाण्डुशिला बनती हैं, जिन-शिलाओ पर इन्द्रदेव उनका अभिषेक करते हैं और मेरू पर्वत की प्रदक्षिणा करते ये नक्षत्र नजर आते हैं। कोई तारे ऐसे भी होते हैं जो ध्रुव रहते हैं। जहां है वहां स्थिर रहते हैं, उनकी गति नही होती। तो यह भी एक आशका हो सकती है कि फिर तो हर समय वे ध्रुव तारे एक ही रूप से दिखने चाहिए, पर ऐसा तो नही देखने मे आता। यो अनेक प्रकार से यह सिद्ध हुआ कि वे सब भूमियाँ स्थिर हैं और वे भूमियां कुछ कुछ अन्तराल के बाद ७ प्रकार की हैं। सिद्धान्त मे भूमियां ८ कही गई हैं—७ तो नरक वाली और एक सिद्ध शिला। सिद्ध शिला पर सिद्ध नही हैं मगर सिद्धशिला के बाद थोडा ही अन्तर रहता है जहाँ सिद्ध भगवान विराजे रहते हैं। इन ८ भूमियो मे अष्टम भूमि की बडी पूज्यता मानी गई है। उसकी पूजा भी है लोग आदर से देखते भी हैं, सर्वार्थ सिद्धि से ऊपर है यह सिद्ध शिला है। और ये ७ भूमियां ये नरको के स्थानभूत हैं। इस प्रकार ये ७ प्रकार की भूमियाँ बतायी गई हैं तो यहा एक यह जिज्ञासा बनती है कि उन भूमियो मे ये नारकी जीव क्या इसी तरह रहते हैं जैसे कि यहाँ मनुष्य और तिर्यञ्च रहा करते हैं ? खुला हुआ स्थान है। आकाश सारा लम्बा चौडा असीम नजर आता है और इसमे ये जीव भ्रमण करते हैं एक इस तरह के उनके स्थान हैं या अन्य प्रकार से ? उनके उत्तर मे सूत्र कहते हैं।

तासु त्रिंशत्पञ्चविंशति पञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैक।
नरक शत सहस्राणि पञ्चचैव यथा क्रमम् ॥२॥

नरक की सात भूमियो मे बिलो की सख्या—उन सातो भूमियो मे क्रम से ३० लाख, २५ लाख, १५ लाख, १० लाख, ३ लाख, ५ कम एक लाख और ५ बिल है। इन्हे बिल तो कहा गया है लेकिन इनका प्रमाण लाखो,करोडो कोसो का और कितने ही का तो अनगिनते कोशो प्रमाण है। बिल नाम इसलिए रखा गया है कि इन बिलो का जमीन के किसी ओर भी मुख नही है। जैसे लम्बे चौडे, मोटे काठ मे बीच मे कई छेद हो और ऊपर से न दिखते हो इस तरह के स्थान इन बिलो के होते है। ये बिल भी किस प्रकार के सस्थान मे रचे गए हैं कि पहले नरक मे १३ जगह बिलो की रचना है ऊपर से नीचे की ओर। इसे कहते हैं प्रस्तारपटल। प्रत्येक पटल मे दिशाओ मे तिरछे सरव श्रेणी-बद्ध अथवा फैलफूट अनेक बिल पाये जाते हैं। इन बिलो मे ऊपर कुछ घटाकार कुछ खोटे आकार के स्थान बने हुए हैं। जिनमे से नारकी जीव टपक कर गिरते हैं और गिरते ही अनेक बार गेंद की तरह उछलते हैं और जब स्थिर होते हैं तो चारो ओर से नारकी मारपीट करने के लिए घेर लेते हैं। यह नारकी जीव भी समर्थ हो जाता है तो यह भी उनको मारने पीटने मे समर्थ हो जाता है। इस तरह वहां का प्रोग्राम केवल कलह, विवाद, लडाई, यही रहता है। उन स्थानो मे भी कोई ज्ञानी सम्यग्दृष्टि नारकी हो तो मारपीट से तो छुट्टी नही मिलती किसी को, वह तो एक कर्म की प्रेरणा है उसे तो करना ही पडेगा, लेकिन जिनको अन्तर्दृष्टि जगी है निज आत्मा मे अन्त प्रकाशमान सहज चैतन्यस्वरूप का बोध किया है वह पुरुष अन्त निराकुल रहता है आकुलता व्यग्रता तो वहां भी है मगर तत्त्वज्ञान के बल पर अन्त धैर्य रखता है और वह वहां भी अपनी योग्यतानुसार कुछ कर्मो की निर्जरा करता है, पर ऐसे जीव बिरले ही हैं। उन नारको मे तो सदा उपद्रव ही उपद्रव रहा करता है। इनके बिल हैं और उनकी बडी खोटी रचना है, उनमे प्राणियो को जन्म लेना पडता है, इसका कारण उन पुरुषो का अदृष्ट विशेष है। पहले जो पाप कमाया है उनके फल मे

ऐसे-ऐसे बिलो मे उन नारकियो को जन्म लेना होता है। जन्म स्थान से ही किसी जीव के जीवन का सब परिचय मिल जाता है। जैसे यहाँ भी मनुष्य किसी के आवास स्थान को परखकर, कही उसमे यह जरूरी नही कि महल ही हो, झोपडी न हो। चाहे झोपडी हो चाहे महल हो, उसकी सजावट, उसमे किस प्रकार के चित्र हैं, किस प्रकार की कोई सामग्री रखी है उससे यह जान लिया जाता है कि इसमे रहने वाला यह मनुष्य किस प्रकार के अभिप्राय का है और कैसा पुण्यवान है या पापोदय वाला है। तो नारकियो के तो ये सारे बिल, इनकी रचना, अधेरा ये सारी बातें इसको सिद्ध करती हैं कि उनके दुर्भाग्य के बहुत अतिशय हैं।

प्रथम नरक की रचना का प्रारम्भ स्थान—पहली पृथ्वी का नाम रत्न प्रभा है। इसकी मोटाई १८०००० योजन की है। उसके तीन भाग हैं। ऊपर से जो पहला भाग है उसका नाम खर-भाग है। दूसरे का नाम पकबहुल भाग है। तीसरे का नाम अब्बहुल भाग है, जो ये तीन नाम रखे गये है वे किस रूढि से रखे गये है ? उसमे इस रूढि का आधार है कि यदि कोई कुआ खोदे तो सबसे पहले खर पृथ्वी बनती है याने कडी-कडी सूखी पृथ्वी। इसके बाद फिर कीचड वाली जमीन निकलने लगती है और सबसे नीचे पानी मिलता है। सो रत्न प्रभा के जो तीन भाग किये हैं उनमे यह बात तो नही है मगर इस आधार पर ये रूढि शब्द हो गये है, इन तीन भागो मे सो जो पहला भाग है उसमे रत्नमयी भूमियाँ अधिक हैं और उस भाग का विस्तार मोटाई १६ हजार योजन है। खर पृथ्वी भाग मे ऊपर से एक हजार योजन छोडकर और नीचे का एक हजार योजन छोडकर जो बीच का हिस्सा १४ हजार योजन का बचता है इस हिस्से मे ७ प्रकार के व्यन्तरो के निवास स्थान हैं और ९ प्रकार के भवनवासियो के निवास स्थान हैं। व्यन्तर सब ८ प्रकार के होते हैं जिनमे राक्षस नाम के व्यन्तरो का निवास इस पहल भाग मे नही है शेष ७ प्रकार के व्यन्तरो का निवास इस पहले भाग मे है। ये सात प्रकार के व्यन्तर ये हैं—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गधर्व, यक्ष, भूत और पिशाच। इन ७ प्रकार के व्यन्तरो का निवास पहले भाग मे है और जिन भवनवासियो का निवास स्थान इस पहले भाग मे है वे भवनवासी ये हैं—नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुवर्ण कुमार, अग्नि कुमार, वात कुमार, स्तनित कुमार, उदधि कुमार, द्वीप कुमार, दिक्कुमार। ये आवास बहुत लम्बे चौड हैं, इनमे बडे-ऊँचे महल बने हैं और उनमे चैत्यालय भी बने हुए हैं और अकृत्रिम हैं। इस रत्न प्रभा भूमि के दूसरे भाग मे जिसका कि नाम रखा है पकबहुल भाग। उसमे असुर जाति के भवनवासी देव राक्षस जाति के व्यन्तर देव रहते हैं। उनके बहुत बड-बडे आवास स्थान हैं। अब इस रत्नप्रभा के तीसरे भाग मे जिसका कि नाम अब्बहुल भाग है इस अब्बहुल भाग मे ये सब पहिली पृथ्वी के नरक १३ पटलो मे है।

पहिले नरक के बिलो की रचना—प्रथम नरक के प्रत्येक पटल की रचना इस प्रकार है कि बीच मे तो इन्द्रकबिल है और चारो दिशाओ की ४ श्रेणियो मे पक्तिबद्ध बिल हैं जिनकी संख्या अलग-अलग नियत है और चार विदिशाओ मे भी पक्तिबद्ध श्रेणियाँ हैं। जो दिशाओ के बिल मे एक-एक कम है। अब बीच मे जो स्थान बचता है दिशा और विदिशा की पक्ति के बीच मे जो भी खाली स्थान हैं, उनमे प्रकीर्णक बिल हैं याने फैलफुट बिल है। जो कोई पक्तिबद्ध नही हैं, किंतु यत्र-तत्र अटपट लाइन मे बिल हैं ये। इस तरह एक पटल की रचना है। उसमे कुछ नीचे चलकर दूसरा अन्य पटल बनता है। उसमे भी इसी ढग से रचना है। इस तरह से एक से एक नीचे पटल हैं, उनमे ये बिल

है इन सब १३ पटलो मे बिल ३० लाख हैं जोकि सूत्र मे बताये गये हैं कि पहले नरक मे ३० लाख बिल हैं। उन ३० लाख बिलो का फैलाव इस तरह है कि पहले पटल के बीच मे सीमतक नाम का इन्द्रक बिल है और चारो दिशाओ मे ४९-४९ पक्ति बद्ध बिल हैं और विदिशाओ मे ४८-४८ बिल हैं। तो इस तरह इन्द्रक और श्रेणी बद्ध बिलो की कुल सख्या पहले पटल मे ३८९ हैं। अब उसके नीचे दूसरा पटल है। उस दूसरे पटल के बीच मे निरय नाम का इन्द्रक बिल है और श्रेणियो मे दिशाओ मे ४८-४८बिल और विदिशाओ मे ४७-४७ बिल हैं। तो दूसरे पटल के इन्द्रक और श्रेणी बद्ध बिल मिलकर ३८१ हो जाते हैं। पहले पटल से ये बिल ८ कम हैं ४ दिशाओ के, ४ विदिशाओ के, ये ८ कम हो जाती है। फिर तीसरे पटल मे जिनके बीच मे रौरव नामक इन्द्रक बिल है और उसी विधि से एक-एक कम होकर श्रेणीबद्ध बिल ३७२ हैं, ये कोई ३७३ बिल हुए। अभी इन सब पटलो मे प्रकीर्णक बिल नही बताये जा रहे हैं जो फैलफुट अटपट ढग से जहाँ चाहे बने हुए हैं उनकी गिनती नही कही जा रही। अभी पटलो के इन्द्रक और श्रेणी बद्ध बिल ही बताये जा रहे हैं। इन पटलो का नाम जो इस इन्द्रक बिल का नाम है वही पटलो का नाम समझिये—चौथे पटल मे जिसके इन्द्रक बिल का नाम है भ्रात उसमे ये ३६५ बिल हैं। उद्भ्रांत नाम के पटल मे ३५७ इन्द्रक श्रेणिबद्ध बिल हैं। सभ्रात नाम के पटल मे ३४९, असभ्रात पटल मे ३४१, निभ्रात पटल मे ३३३, तप्त पटल मे ३२५, त्रस्त पटल मे ३१७, व्युत्क्रात इन्द्रक बिल वाले पटल मे ३०९, अवक्रात बिल वाले पटल मे ३०१ और विक्रात नाम से इन्द्रक बिल वाले १३वें पटल मे २९३ हैं। इन सब १३ पटलो मे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिल मिलकर ४४३३ होते हैं। बाकी सब प्रकीर्णक बिल हैं सभी पटलो मे, जिनकी सख्या २९९५५६७ है। ये सब मिलकर ३० लाख बिल हो जाते हैं। ये बिल बहुत बडे विस्तार वाले हैं। कोई सख्यात हजारो योजन के विस्तार के हैं कोई अनगिनते हजार योजन के विस्तार के हैं। बिल नाम इसलिए रखा है कि इनका मुख, आने जाने का रास्ता पृथ्वी के किसी भी बाहरी हिस्से मे नही है। चूहे के बिल का तो फिर भी बाहर से प्रवेश द्वार रहता है लेकिन इनमे प्रवेश द्वार भी नही है। अपने-अपने बिल के ऊपरी भाग मे घटाकार जैसे छोटी-छोटी रचना के उपपाद स्थान होते हैं, उनमे से नारकी टपक कर नीचे गिरते हैं, ऐसी कठिन वेदनायें जीवो को उनके बाँधे हुए पाप कर्म के फल मे प्राप्त होते हैं। जो जीव अपने विशुद्ध स्वरूप की सुध नही रखते और शरीर को ही अपना सर्वस्व जानकर उस शरीर के पोषण और विषयो मे आसक्त रहकर जो अन्याय करता है। दूसरे जीवो को सताता है, अत्यन्त सक्लेश और कषाय परिणाम रखता है उसका फल है ऐसे बिलो मे जन्म लेना।

द्वितीय नरक के बिलों की रचना—यह रत्नप्रभा नाम की पहली पृथ्वी नीचे जहाँ समाप्त होती है उससे दूसरी पृथ्वी की मोटाई से कम एक राजू का आकाश रहता है वहाँ से शर्करा प्रभा पृथ्वी शुरू होती है, जहाँ केवल शक्कर की भाँति सफेद-सफेद आभा मात्रा है उजेला नही। जैसे कभी अधेरी रात्रि मे शक्कर थोडी दिख भर जाये, अन्दाज हो जाए कि यहाँ शक्कर रखी है बस इतनी ही प्रभा इस शर्करा प्रभा नाम की दूसरी पृथ्वी मे है। शर्करा प्रभा नाम की भूमि की मोटाई ३२ हजार योजन है। इस बीच मे ११ पटल हैं। जैसे कि पहले नरक मे पटलो की रचना थी उसी प्रकार इन पटलो की रचना है। बीच मे है इन्द्रक बिल और दिशावोकी श्रेणियो मे बिल हैं, विदिशाओ मे बिल हैं, इस दूसरे नरक के पहले पटल के बीच मे सम्तन नाम का इन्द्रक बिल है जिसके दिशाओ मे ३६-

३६ बिल हैं, विदिशाओ मे ३५-३५ बिल हैं। इस तरह इस पहले पटल मे यह श्रेणी और इन्द्रक बिल २८५ हैं । बनक नामके इन्द्रक बिल वाले दूसरे पटल मे कुल २७७ इन्द्रक समेत श्रेणीबद्ध बिल हैं । श्रेणियो मे एक-एक बिल कम होते जा रहे हैं और इसी प्रकार विदिशाओ की श्रेणी मे भी एक-एक बिल कम होते जा रहे है । मनक इन्द्रक बिल वाले पटल मे २६६ श्रेणी इन्द्रक वाले बिल हैं । घाट इन्द्रक बिल वाले पटल मे श्रेणी इन्द्रक के २६१ बिल हैं । सघात के पटल मे २५३. जिह्व के पटल मे २४५, उज्जिह्वक वाले पटल मे २३७, अलोल इन्द्रक बिल वाले पटल मे २२६, लोलुक वाले पटल मे २२१, स्तन लोलुक वाले पटल मे श्रेणी वाले २०५ बिल हैं। ये सब २६९५ बिल हुए । शेष सब २४९७३०५ प्रकीर्णक बिल है, जो सब मिलकर २५ लाख बिल होते है। पहली पृथ्वी की अपेक्षा दूसरी पृथ्वी के बिलो मे रहने वाले नारकी विशेष दुखी रहते है और उनके परिणाम क्रिया अधिक खोटी रहती है।

तीसरे नरक के बिलो की रचना—इस शर्करा प्रभा पृथ्वी के नीचे आकाश है खाली, उसके नीचे तीसरी पृथ्वी है, जिसका नाम है बालुका प्रभा। बालुका प्रभा नाम की पृथ्वी २८००० योजन की मोटी है। इस पृथ्वी मे कुल ९ पटल हैं । पहले पटल मे तप्त नाम का इन्द्रक बिल है, इसमे श्रेणी बद्ध बिल २५-२५ दिशाओ मे हैं। २४-२४ विदिशाओ मे हैं ये सब मिल कर १९७ हुए। त्रस्त वाले पटल मे १८९, तपन वाले पटल मे १८१, आतपन वाले पटल मे १७३, निदाघ वाले पटल मे १६५, ज्वलित वाले पटल मे १५७ जाज्वलित वाले पटल मे १४९, सज्वलित वाले पटल मे १४१, सप्रज्वलित वाले पटल मे १३३ है । ये सब श्रेणीबद्ध बिल और इन्द्रक बिल मिलकर १४८५ है। शेष १४९८५१५ प्रकीर्णक बिल हैं । जिनको मिलाकर इस तीसरी पृथ्वी मे १५ लाख बिल हो जाते हैं । सभी नरको मे इन्द्रक बिल के जो नाम हैं वे नाम सुनने मे भी जब इतने कटु लगते है जैसे तप्त, त्रस्त, ज्वलित आदिक नाम हैं । तो ये सब सही ढग से नाम हैं । इन नरको मे रहने वाले नारकियो की वेदना दूसरे नरक वाले नारकियो से अधिक कठिन है ।

चौथे नरक मे बिलो की सख्या—तीसरी पृथ्वी मे नीचे बहुत सा आकाश छोडकर पक प्रभा नाम की चौथी पृथ्वी आती है। जिसकी मोटाई २४ हजार योजन की है। इस पृथ्वी मे ७ पटल हैं, जिन पटलो के इन्द्रक बिलो के नाम आर, मार, तार, वर्चस्क, वैमनस्क, खाट और अखाट नाम के हैं । इन पटलो मे इन्द्रक सहित श्रेणी वाले बिल क्रम से १२५, ११७, १०९, १०१, ९३, ८५ और ७७ हैं । ये सब बिल ७०७ होते हैं । इनमे जो प्रकीर्णक बिल हैं वे ९९९२९३ हैं। ये सब मिलकर १०००००० (दस लाख) बिल होते हैं। बिल का प्रमाण सभी बिलो की तरह है । सख्यात हजार योजन का और असख्यात हजार योजन का विस्तार है । जो सख्यात हजार योजन के विस्तार वाले बिल हैं, उनकी मोटाई तो उन विस्तार के पचम भाग प्रमाण है । और, जो असख्यात योजन विस्तार वाले बिल हैं उनके चतुर्थ भाग प्रमाण उनकी मोटाई है। इन बिलो मे प्रभा ऐसी है जैसे कि कीचड की प्रभा होती है । कीचड एक अन्धकार को लिए हुये ही है, लेकिन अन्धकार से कुछ कम अन्धकार होता है कीचड मे । तो कीचड जैसी प्रभा होने के कारण इस चौथी पृथ्वी का नाम पक प्रभा रखा है। इतना अन्धेरा है तिस पर भी इन नारकियो को दूसरे नारकी साफ दिखते है। यहाँ भी तो बिल्ली शेर वगैरह जानवरो को अन्धेरे मे सब दिख जाता है। ऐसे ही उन नारकियो को अन्धेरे मे सब दिखता है और फिर उनके कुअवधिज्ञान है । उस कुअवधिज्ञान के द्वारा वे सब खोटी खोटी बातो

का स्मरण रखते हैं। जैसे मानो माता ने बेटे की आखो में पूर्व भव मे अजन लगाया था और वे दोनो माता, बेटा, मरकर नरक पहुँच जायें और उनका आमना-सामना हो जाए तो बेटे को कुअवधि ज्ञान के द्वारा ऐसा ही ज्ञान बनेगा कि इसने मेरी आँखें फोडने को आँखो मे सलाई डाली थी, तो कुअवधि ज्ञान मे खोटी-खोटी बातो का स्मरण होता है और मिथ्या बातो का स्मरण होता है, जिस स्मरण के कारण उनमे क्रोध अधिक बढे, और एक दूसरे नारकी को अधिक दु'ख दे सकें। इस तरह परस्पर एक दूसरे को दु ख दे ऐसी आदत वाले नारकी वहाँ अपने सारे जीवन भर जिनकी आयु सागरो पर्यन्त की है, ऐसे ही दु ख मे यों खोटी करतूत मे जीवन गुजारते हैं, यह सब पूर्व जन्म मे किए हुए पाप, अन्याय, अत्याचारो का फल है।

पाचवे, छठे व सातवें नरक के बिलों की सख्या—धूम प्रभा नाम की ५ वी भूमि मे ५ पटल हैं जिनके नाम हैं तम, भ्रम, झष, अध और तमिस्र। इन सब पटलो मे एक-एक इन्द्रक बिल है और पहले-पटल को दिशाओ मे ६-६ बिल, विदिशाओ मे ८-८ बिल, ऐसे नीचे एक-एक कम होते गए हैं, उन सबकी सख्या २६५ है और इस भूमि मे प्रकोर्णक बिलो की सख्या २९९७३५ है। ये सभी मिलकर ३००००० (तोन लाख) बिल होते हैं। इन सब बिलो मे धुए की तरह प्रभा है, जैसे धुआँ एक काला अधेरा जैसा है वैसी ही वहाँ स्थिति है। तम प्रभा नाम की छठवी पृथ्वी मे केवल ३ पटल हैं, जिनमे एक-एक इन्द्रक बिल है, जिनके नाम हैं हिम. वर्दल और लल्लक। पहले पटल मे दिशाओ मे श्रेणी बिलो की सज्ञा ४-४ है, विदिशाओ मे श्रेणी बिल ३-३ हैं, दूसरे पटल मे दिशाओ मे ३-३ विदिशाओ मे २-२ और तीसरे पटल मे दिशाओ मे २-२ और विदिशाओ मे १-१, ये सब मिलकर ६३ बिल होते हैं, और इन दिशाओ विदिशाओ के बीच मे प्रकीर्णों की सख्या ९९९३२ है। ये सभी बिल मिलकर ५ कम ३००००० हो जाते हैं। वहाँ अन्धकार ही अन्धकार है। महातम प्रभा नाम की ७ वी भूमि में केवल एक ही पटल है, जिनमे एक इन्द्रक बिल है और दूसरी दिशाओ मे एक-एक बिल है। यों सब मिलकर ५ बिल हैं जिनका नाम है—पूर्व दिशा के बिल का नाम है काल और शेष दिशाओ के क्रमश नाम हैं महाकाल, रौरव, महारौरव। सातो नरको मे समस्त पटलो की श्रेणी बिल और इन्द्रक बिलो की सख्या ९६५६ है और प्रकीर्णक बिलो की सख्या ८४९०३४७ है।

नरक जन्म तीव्र पाप दण्ड—इन सब बिलो में अशुभ विक्रिया के धारी नारकी जीव निरन्तर एक दूसरे पर प्रहार करते हुये दु खी रहा करते हैं। ये नरक बडे अशुभ संस्थान वाले हैं। बिल भी अच्छे सस्थान के नही हैं। टेढ-मेढे, ऊँट, गधो जैसे आकार के हैं और उन बिलो के नाम नरको के नाम सोचन, रोदन, आक्रन्दन जैसे खोटे-खोटे नाम हैं, इन सब नरको मे प्राणी पापकर्म के वश से उत्पन्न होते हैं। यहाँ कोई पाप करे और यहाँ ही दण्ड मिले तो उसे इतना दण्ड नही मिल पाता जैसे कि पाप किया। जैसे मानो किसी मनुष्य ने अन्याय, अत्याचार करके सैकडो आदमी मार डाला तो यहाँ दण्ड मिलेगा तो मानो एक फाँसी मिल गई। एक बार मरण हो गया, पर इतने कठिन पाप का फल यहाँ के दण्डो से पूरा नही पडता। उनका उदय होता है और जीवो को नरक गति मे जन्म लेना पडता है और वहाँ इन पाप फलो को भोगता है। पाप के भाव होते ही उसी समय उस ही प्रकार के कार्माण वर्गणाओ का बध होता और जब वे कर्म बध गये तो उनका उदयकाल जब आएगा तो उनका अनुभाग खिलेगा, उस समय मे फिर यह जीव अपने उपयोग के परिणाम से खोटा भाव करेगा। इस तरह जीवो की इन खोटी गतियो मे वृत्ति हुआ करती है। पूर्व जन्म मे ये नारकी जीव

चाहे बहुत भले मित्र रहे आये हो, और दूसरे की सेवा मे तत्पर रहे हो और यदि वे पाप कर्म के वश से नरक मे जन्म ले लें तो वहाँ किसी की, किसी पर कृपा नही होती। जिसे जो दीखा वह उसको पीडा देता है। और उस आपसी पीडा, उत्पादन मे सभी नारकी दु.खी हो जाते है। मित्रता का वहाँ नाम नही। भले ही वहाँ अनेक सम्यग्दृष्टि नारकी जीव भी हैं लेकिन कर्म विपाक ऐसा अशुभ है कि वे भी व्यवहारित एक दूसरे पर दया नही कर पाते, रक्षा नही कर पाते। जैसा वहाँ वातावरण चल रहा है उसी वातावरण मे वह सम्यग्दृष्टि नारकी भी ढल जाता है। भले ही सम्यक्त्व का उदय होने से अतरग में कुछ धैर्य रहता है फिर भी नरक गति का जो प्रभाव है वह सब नारकियो पर छा जाता है।

नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणाम देहवेदना विक्रिया ॥३॥

नारकी जीवो के अशुभता लेश्या आदि का कथन— नारकी जीव नित्य अशुभतर लेश्या वाले, अशुभतर परिणाम वाले, अशुभतर देह वाले, अशुभतर वेदना वाले और अशुभतर विक्रिया वाले होते हैं। अशुभतर का अर्थ है अधिक खोटे। लेश्या कहते है, कषाय के उदय से सहित योग की परिणति को। परिणाम का अर्थ भाव अभिप्राय आदिक है, देह मायने शरीर, वेदना अर्थात् पीडा, और विक्रिया कहते है, शरीर से कुछ हथियार आदिक बना लेने को, सबके सब नारकी जीवो मे ये खोटी चीजें होती हैं। यहाँ शब्द दिया है अशुभतर। जिससे सिद्ध होता है कि अमुक की अपेक्षा विशेष खोटे तो यहाँ वे अपेक्ष्य कौन हैं जिनकी अपेक्षा ये सब खोटे बताये गए हैं। नारकियो के अशुभ लेश्यायें होती है तो किसकी अपेक्षा ज्यादह अशुभ है। तो तिर्यञ्चो मे अशुभ लेश्या पायी जाती है, उनकी लेश्यावो की अपेक्षा प्रथम नरक के जीवो मे अशुभपना ज्यादह है, और प्रथम नरक के नारकियो से दूसरे नरक के नारकियो के लेश्या विशेष अशुभ हैं। इस तरह नीचे-नीचे के नरको मे अधिक से अधिक अशुभ लेश्याये बढती चली जाती हैं। ऐसी ही बात परिणाम आदिक मे भी लगाना। ये भी नीचे-नीचे नरको मे विशेष-विशेष अशुभ होते जाते हैं।

नित्य का वाच्य अभीक्ष्ण—इस सूत्र मे यह बताया गया है कि ये अशुभतर लेश्यादिक नित्य होते हैं। तो नित्य शब्द सुनकर यह शका की जा सकती है कि नित्य तो उसे बोलते हैं जो कभी मिटे ही नही। जैसे आकाश नित्य है, वह कभी मिट नही सकता ऐसे ही नित्य अशुभतर लेश्या है तो इसके मायने है कि यह कभी मिट ही नही सकती, याने लेश्या कभी कम अशुभ बन ही न पाएगी। तो ऐसी अवस्था मे फिर यह जीव नरक से निकल ही न सकेगा। समाधान इसका यह है कि नित्य कहने का अर्थ यह नही है कि निरन्तर ऐसा ही बना रहे किन्तु नित्य शब्द का प्रयोग अभीक्ष्ण अर्थ मे है। जैसे किसी पुरुष के बारे मे कहा जाए कि यह पुरुष नित्य हँसने वाला है तो क्या वह रात-दिन सोते मे भी हँसता ही रहता है ? अरे वहाँ नित्य हँसने का अर्थ है कि जब जरा भी कारण मिले तो वह तुरन्त हँस देता है। ऐसे ही जब तक नारकादिक भाव के कारण मिले हुए हैं तब तक ये अशुभतर लेश्या आदिक है, इसी तरह यहाँ तक नित्य कहा।

नारकी जीवो के अशुभतर लेश्या आदि का विवरण—अशुभ लेश्याये तीन कहलाती हैं—(१) कृष्ण लेश्या, (२) नील लेश्या, (३) कापोत लेश्या। इनमे सबसे अधिक खोटी है कृष्ण लेश्या, उससे कम खोटी है नील लेश्या और उससे कम खोटी है कापोत लेश्या। तो इन नरको मे प्रथम और दूसरे नरक मे तो कापोत लेश्या होती है। तीसरे नरक मे ऊपर तो कापोत लेश्या और नीचे

नील लेश्या होती है। चौथे नरक मे नील लेश्या होती है। ५ वें नरक मे ऊपर तो नील लेश्या होती है और नीचे कृष्ण। छठे मे कृष्ण लेश्या और ७ वें मे अत्यन्त कृष्ण लेश्या। ये लेश्यायें द्रव्य देह की बतायी गई हैं। याने नारकियो मे अपनी आयु प्रमाण जो द्रव्य लेश्यायें रहती हैं उनके देह मे भी बतायी गई हैं ये। भाव लेश्या भी ऐसी ही रहती है, किन्तु वह अन्तर्मुहूर्त मे परिवर्तन करती रहती है। यो नारकी जीव अशुभतर लेश्या वाले होते हैं। इन नारकियो का परिणाम भी अशुभतर है। देह मे तो स्पर्श, रस, गध, वर्ण, शब्द ये परिणाम अशुभतर है। उनका क्षेत्र ऐसा ही खोटा है कि जिनकी वजह से अत्यन्त दु ख के हेतु मिलते रहते हैं और उसी से परिणाम खोटा चलता है। तो यो नारकियो के अशुभतर परिणाम कहे गये हैं। नारकी जीवो के देह अशुभतर होते है, क्योकि अशुभ-नामकर्म का उदय है। अशुभ ही अगोपाग रहते हैं, अशुभ ही स्पर्श, रस, गध, वर्ण हैं, अशुभ ही स्वर है, सस्थान उनका अटपट हुँडक है। उनका आकार जैसे कटा छिदा कोई अडज पक्षी है ऐसे ही शरीर के आकार वाला है। जिनका भयानक रूप है। दिखने से ही वडा भय उत्पन्न हो जाए ऐसा उनका अशुभ-तर देह है। वेदना उनकी बहुत खोटी है। शीत की वेदना, उष्ण की वेदना जैसी जिन नरको मे जिस प्रकार को वेदनायें है वे वेदनायें उनकी खोटी हैं। विक्रिया उनकी बहुत खोटी है। यद्यपि शरीर तो वैक्रियक है मगर विक्रिया उससे खोटी हुआ करती है। वह शरीर भी तो बहुत अशुभ है, यहाँ कफ, मल, मूत्र, खून, चर्बी, पोप, मास, केस, हड्डो, चमडी आदिक जो-जो भी अशुभ पाये जाते हैं औदा-रिक शरीर मे उससे भी अत्यन्त अशुभ वैक्रियक शरीर मे अपवित्रता है। इनके देह उत्तरोत्तर नीचे-नीचे अधिक-अधिक ऊँचा, लम्बा चौडा देह होता जाता है। रत्न प्रभा नाम की पहली पृथ्वी मे नारकियो के शरीर की लम्बाई ७ धनुष, तीन हाथ और ६ अगुल है। एक धनुष चार हाथ का होता है। नीचे-नीचे इसके दुगने-दुगने होते चले जाते हैं, याने प्रथम नरक के नारकी का शरीर जितना ऊँचा है उससे दूना ऊँचा है दूसरे नरक के नारकी का, उससे दूना तीसरे का। इस तरह उत्तरोत्तर नीचे नीचे के नारकी जीवो के देह दुगने होते चले जाते हैं और यह दुगनापन सप्तम नरक मे ५०० धनुष प्रमाण वन जाता है, ऐसा उनका अशुभ देह है। वेदना भी उनकी अशुभ है। अन्तरग मे असा-ता वेदनीय का उदय है और बाहर मे शोत उष्ण का बाह्य निमित्त है उससे उन नारकियो के तीव्र वेदना हो जाती है।

नरको मे उष्णता की वेदना व सर्दी की वेदना का विवरण—नरको मे पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे नरक मे गर्मी की वदनायें हैं। ५ वें नरक मे ऊपर के २००००० (दो लाख) बिलो मे गर्मी की वेदना है और नीचे के १००००० (एक लाख) बिलो मे सर्दी की वेदना है। छठे और ७ वें नरक मे सर्दी की ही वदना है। वहाँ ऐसी कठिन वेदना है कि जिसका अनुमान यहाँ के वेदनाग्रस्त मनुष्यो से की जा सकती है याने अधिक से अधिक गर्मी की वेदना मनुष्यो को जैसी हो सकती है उससे अनन्त गुणी गर्मी की वेदना नरको मे है, जैसे ज्येष्ठ मास के दिन हो, खूब दोपहर हो, आकाश मे बादल जरा भी न हो, सूर्य की किरणो से सारी दिशायें अत्यन्त सतप्त हो गयी हो, जहाँ शीतल वायु का नाम तक नही है, वन का अग्नि की दाह के समान जहाँ दाह हो रहा हो, सूखा देश हो वहाँ कोई ऐसा मनुष्य बैठा हो कि जो चारो तरफ की अग्नि की लपटो से घिरा हो, प्यास से व्याकुल हो, पित्त ज्वर का रोग बढ गया हो। कोई उपाय न हो, ऐसे मनुष्य के जिस प्रकार का गर्मी से होने वाला दु ख है उससे भी अनन्त गुना दु ख उन उष्ण वेदना वाले नरको मे है ऐसे ही शीतवेदना का भी

अनुमान यहाँ के मनुष्यों से किया जा सकता है, माघ का महीना हो, जबकि वर्फ, तुषार खूब गिर रहा हो और नीचे भी जल से भरे हुये कीचड के अनेक स्थान हो उन दिनो रात्रि मे जबकि खूब झञ्झा शीतल वायु चल रही हो, शरीर के रोमाञ्च हो गए हो, जिससे कि दांत भी आपस मे टकराकर बजते हो ऐसे समय में जिसको शीत ज्वर चढा हो और ओढने के लिये भी कोई चीज न हो, ऐसे मनुष्य के जिस प्रकार का शीत से उत्पन्न होने वाला दु ख होता है उससे भी अनन्त गुणा कष्ट शीत वाले नरको मे होता है। या यो कहो कि हिम्मान पर्वत सरीखा तावे का पर्वत अगर उष्ण नरको मे फेंक दिया जाए तो तुरन्त ही वह गीला होकर द्रव के रूप मे बहने लगेगा और ऐसा ही बहता हुआ द्रव (तांब्र गिरि का रस) अगर शीत के नरको मे फेंक दिया जाए तो आखो की पलक मात्र मे ही वह एकदम घन कडा हो जाएगा। ऐसी उष्ण और शीत की वेदनायें उन नरको मे हैं। तो ऐसी अशुभ वेदना वाले वे नारकी जीव होते हैं।

नारकियो की अशुभ विक्रिया—इन नारकियो की विक्रिया भी बहुत अशुभ होती है। वे चाहे ऐसा सकल्प करे कि मैं शुभ विक्रिया को करू पर करेंगे तो अशुभ विक्रिया बन जाएगी। उन विक्रियाओ मे क्या अशुभ बात है कि वे दु ख के कारणभूत ही होंगे। विक्रिया से ही वे हथियार बना लेते हैं। विक्रिया से ही वे सर्प आदिक बन जाते हैं। याने जिस प्रक्रिया से नारकियो को दुःख पहुँचे और ये भी खुद दु खी हो ऐसी अशुभ विक्रिया उन नरको मे होती है। इस प्रकार नीचे-नीचे के नरको मे ये सब बहुत खोटी-खोटी अशुभ बाते होती चली जाती हैं। अब किसी को यह जिज्ञासा हो कि ये तो सब यहाँ के प्राकृतिक दु ख हैं, पर ये नारकी एक दूसरे को क्या परस्पर भी दु ख दे सकते हैं उसी को इस सूत्र मे बताते हैं।

····· परस्परोदीरित दु खाः······ ॥४॥

नारकियो द्वारा परस्पर दु खो की उदीरणा—ये नारकी परस्पर मे एक दूसरे को दु ख देते ही रहते हैं। दु.ख देते रहने का कारण क्या है कि वे नारकी निर्दयी होते हैं और एक दूसरे को देखते ही उनमे प्रचड क्रोध उत्पन्न हो जाता है। जैसे यहाँ किसी दूसरी जगह से आए हुए कुत्ते को देखकर एक कुत्ता दूसरे कुत्त पर टूट पडता है, उनमे प्रकृत्या ही एक दूसरे के प्रति क्रूरता का भाव होता है, जातिकृत वैर भी है उनमे इसीलिए निर्दयता बढी हुई है, तो वे कुत्ते एक दूसरे पर आक्रमण कर बैठते है ऐसे ही उन नारकी जीवों मे कर्मोदयपरतन्त्रता से बाह्य अकारण ही ऐसी ही प्रकृति पड गई है कि जातिकृत वैर उनके बनता है। एक नारकी दूसरे नारकी को देख ले तो प्रकृत्या ही उन जीवों पर वैर उमड पडता है तब वे एक दूसरे को मारें, शरीर भेद डालें, छेद डाले, ऐसे दु ख उत्पन्न करते हैं। उसके अतिरिक्त उन नारकियो के जो अवधि ज्ञान होता है, मिथ्यात्व का उदय होने से यह अवधिज्ञान कुअवधिज्ञान कहलाता है। तो वे दूर से ही नारकी को देखकर पहले से ही दु ख के कारणो को जान लेते है। अपनी कोई पहले भव की कोई आपत्ति की घटना समझ लेते हे उससे उनके क्रोध बढ जाता है और जब पास मे आते हैं तो परस्पर मे एक दूसरे को देखकर क्रोध की बहुत तेज अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। तब वे अपने शरीर मे विक्रिया से शस्त्र, भाला, फरसा आदिक हथियार बना डालते है और उन हथियारो से एक दूसरे के शरीर छेद भेद देते हैं। इस तरह दु ख उत्पन्न किया करते है। तो एक नारकी दूसरे को दु.ख दे रहा, दूसरा उसे दु ख दे रहा। देखते ही उनमे क्रोध अग्नि बढती है और वे एक दूसरे का विनाश करने पर उतारू रहते हैं,

मगर उन नरको मे ऐसी कठिन बात है कि इतने दु.ख होने पर भी, देह के छेदे जाने पर भी वे बीच मे मरते नही हैं। बीच मे उनकी आयु खत्म नही होती। यह कला उनके दु ख के लिए ही हो गई। इस प्रकार ये नारकी परस्पर मे एक दूसरे को दु ख दिया करते हैं। अब यहाँ एक जिज्ञासा हुई कि क्या दु ख की उत्पत्ति के इतने ही कारण हैं या अन्य भी हैं ? सो बतलाते हैं।

सक्लिष्टासुरोदीरित दु खाश्चप्राक् चतुर्थ्या ॥५॥

असुरोदीरित दु खो के निर्देशक सूत्र मे कथित शब्दों का भाव—चौथी भूमि से पहले तक सक्लिष्ट असुर कुमार जाति के जीवो के द्वारा उत्पन्न किया गया है दु ख जिसको ऐसे नारकी होते हैं याने असुर कुमार जाति के वे देव जो खुद सक्लिष्ट परिणाम वाले हैं वे तीसरे नरक तक जाकर नारकियो को परस्पर भिडाते हैं, उनको दु ख देने के उपाय बताते हैं। तो इस प्रकार का पर प्रयोग जन्य दु ख भी इन तीन नरको मे है। इस सूत्र मे जो-जो शब्द दिए हैं उनका क्या प्रयोजन है और क्या भाव है सो क्रम से देखिये—सक्लिष्ट मायने पूर्वभव के सक्लेश परिणाम से जो कर्म बाधे गए थे उन कर्मों का उदय होने से जो निरन्तर क्लिष्ट रहते हैं, परिणाम से दु खो रहते हैं उन्हे सक्लिष्ट कहते हैं। असुर का अर्थ है असुर नामक कर्म के उदय से जो दूसरो से ईर्ष्या करे, दु ख दे उन्हे असुर कहते हैं, देव गति नाम कर्म के असख्यात भेद हैं। जितनी तरह के देव हैं उतनी तरह की देवगति है, वे सब एक सामान्य देवगति मे आ जाते हैं, मगर उनके आवान्तर भेद अनेक हैं तो असुर नाम का भी देवगति नामकर्म है। उसका काम है कि असुरपने की रचना कराना याने असुरपने का भाव बनने का कारण होना सो ऐसे कर्म के उदय से जो दूसरो से ईर्ष्या करें, उन्हे दुःख देवें, उन्हे असुर कहते हैं। उदीरित शब्द का अर्थ है कि प्रयोग कर, जानकर शीघ्र ही कोई बात कष्ट की ला देवे उनको उदीरित कहते हैं। जैसे उदय और उदीरणा, उदय तो एक क्रम प्राप्त चीज है, ठीक समय पर उदय हुआ, उसका फल मिले। और उदीरणा कहते—असमय मे फल मिल जाये तो जो सक्लिष्ट असुर कुमार उनको उपाय बताते हैं यो भी अधिक कृत्रिमता आ गयी। अथवा कहो कि ये न होते तो चाहे उनको दु ख होने मे विलम्ब लगता। इनकी प्रेरणा से उन्हे दु ख और जल्दी आ गये। यह भाव उदीरित शब्द बताता है। दु ख शब्द का अर्थ है कि जो इन्द्रिय को शरीर को बाधा देवे, बुरा लगे, सुहाये नही, जिसमे बेचैनी माने, वह सब दु ख है। यहाँ तक एक पद का अर्थ हुआ। इस पद मे सक्लिष्ट और असुर ये जो दो शब्द दिए हैं तो विशेष्य तो है असुर और विशेषण है सक्लिष्ट। तो सक्लिष्ट शब्द देने का क्या प्रयोजन था ? अर्थ निकल आता कि असुर जाति के देवो द्वारा उत्पन्न कराया जाता। सो जो दु ख उत्पन्न कराये सो सक्लिष्ट तो होते ही हैं। समाधान दिया गया यह सक्लिष्ट शब्द, अन्य असुरो की निवृत्ति करता है याने सारे असुर कुमार नरको मे नारकियो को भिडाते नही हैं। किन्तु सक्लेश परिणाम वाले असुर कुमार जैसे अम्बावरीस जाति के असुर सक्लेश परिणाम वाले अधिक होते हैं और उनको दूसरो के लडाने-भिडाने मे मौज आता है, ऐसे देव दु ख उत्पन्न करते हैं। यह बताने के लिए सक्लिष्ट शब्द दिया है। सूत्र मे च शब्द देने का भाव यह है कि पहले जो दु'ख बताये गये हैं वे तो नारकियो के होते ही हैं। उनके अतिरिक्त ये भी दु ख होते हैं। ऐसे पूर्व दु ख हेतुओ का सग्रह करने के लिये च शब्द दिया है।

आचतुर्थ्या शब्द न कहकर प्राक् चतुर्थ्या शब्द कहने का कारण-च शब्द के बाद शब्द आया है प्राक् चातुर्थ्या चौथी भूमि से पहिली। उसमे एक जिज्ञासा हो सकती कि प्राक् चतुर्थ्या न कहकर

आचतुर्थ्याः ऐसा कहना चाहिये, क्योकि आङ् का अर्थ भी यही हो जायेगा कि चौथी भूमि से पहले फिर आचतुर्थ्या. कहने से सूत्र का लाघव होता है याने सूत्र छोटा बन जाता है। जो भले के लिए है फिर प्राक् शब्द क्यो दिया गया है ? समाधान इसका यह है कि प्राक् शब्द न देते और मात्र आचतुर्थ्या इतना कहते तो आ बना है आङ् शब्द से और आङ् शब्द का अर्थ मर्यादा भी है और अभिविधि भी है। जैसे कोई कहे कि स्टेशन तक जाओ तो उस तक का क्या अर्थ लगावें ? स्टेशन जहा से शुरू होता है वहा तक जाओ याने स्टेशन से पहले तक जाओ और यह भी हो सकता कि स्टेशन को भी अपनी गोद मे रख लो, तो ऐसे ही आ शब्द देने से दोनो अर्थ ध्वनित हो जाते हैं। चौथी भूमि तक याने चार नरको तक देव जाते यह भी अर्थ हो सकता था और यह अर्थ तो अनिष्ट ही है क्योकि चौथे नरक से पहले नरक तक ही ये देव जाते हैं। तो आङ् शब्द कहते तो दोनो अर्थ ध्वनित हो जाते तब सदेह हो जाता कि क्या असुर कुमार चौथे नरक तक जाते हैं या चौथे नरक से पहले तक जाते हैं। उस सन्देह का निवारण करने के लिये सीधा शब्द दे दिया "प्राक्", याने चौथी भूमि से पहले, सो यही निर्णय बना कि तीसरे नरक तक जाते हैं।

पूर्व सूत्र में कथित उदीरित शब्द की अनुवृत्ति न लेकर उदीरित शब्द प्रयुक्त करने का प्रयोजन—यहां एक बात और जिज्ञासा मे आ सकती है कि इससे पहले जो सूत्र कहा उसमे उदीरित शब्द आया है, सूत्र है —परस्परोदीरित दु खा·, तो इस सूत्र मे उदीरित शब्द तो आ ही गया और उसकी अनुवृत्ति ले लेंगे पूर्व सूत्र मे। तो ५वे सूत्र मे फिर उदीरित शब्द देने की क्या जरूरत है ? सूत्र भी छोटा हो जाता। तो समाधान इसका यह है कि चौथे सूत्र मे उदीरित शब्द तो समास मे आ गया और उसका अर्थ परस्पर मे दु ख देने का आ गया तो उस उदीरित शब्द का यहा सम्बन्ध न बनाया जा सकता था। और साथ ही यह बात है कि उदीरित शब्द देने से अन्य कई प्रकार के दु ख दिये जा सकते हैं, उनका भी सग्रह हो जाता है। तब सूत्र का अर्थ हुआ कि सक्लेश परिणाम वाले असुर कुमार जाति के देव तीसरे नरक तक जाकर उन नारकियो को परस्पर मे भिडाते रहते हैं।

उदीरित दु ख के निर्देशक दो सूत्रो को जुदा-जुदा कहने का प्रयोजन—अब यहा एक आशका यह हो सकती है कि जो चौथा और ५वा सूत्र बनाया गया सो यदि दोनो का एक कर देते तो कितने ही शब्द कम हो जाते जैसे परस्परेणोदीरित दु खा: सक्लिष्टासुरैश्च प्राक् चतुर्थ्या ऐसा सूत्र बना लेते, फिर उदीरित शब्द दुबारा न कहना पड़ा, तब दोनो सूत्रो का एक ही वाक्य बनाकर एक ही सूत्र रच देते। भिन्न-भिन्न वाक्य बनाने की क्या जरूरत थी ? तो समाधान यह है कि एक उदीरित शब्द से काम चल जाता। फिर दूसरा उदीरित शब्द जो दिया है वह अनेक प्रकार के दु खो का स्मरण कराता है। वे असुर कुमार जाति के देव उन नारकियो को सुध करा देते है। तुम इसको ताते लोहे का रस पिलाओ, तो वे अपनी विक्रिया से वैसा करने लगते है। कोई नारकी थोड़ा शिथिल हो जाये किसी को दुःखी करने मे तो जैसे यहा लोग तीतरो को आपस मे मोटी देकर लड़ा देते है। जैसे कुछ कमजोरी हो जाये लड़ते हुये कुत्ता, तीतर आदिक मे तो फिर छू छू कहकर मनुष्य उनमे जोश भरते है ऐसे ही ये सक्लेश परिणाम वाले असुर जाति के देव उन नारकियो को थोड़ा याद देते देते कदाचित तो उनको फिर से दूसरो की चोट देते है उनका स्मरण कराते है। हुकुम सा देते है कि इसको बाल तपते हुए लोहे के खम्भे से इसे चिपकाओ। वे नारकी दूसरे नारकी को यो दु खी करने लगते है। तो ऐसे अनेक प्रकार के दु ख है। इसको बसूले से मारो, छुरे से इसका पेट काटो, तपे हुए

तेल से इसको सीचो, कोल्हू मे इसे पेलो, इसको शूली पर चढाओ, इस पर करोत चलाओ, इसको व्याघ्र, सिंह, रीछ, हाथी, कुत्ता, भेडिया, स्याल आदिक पशुओ से चिथाओ। ये पशु नरका मे नही होते, पर वे नारकी स्वय विक्रिया से ऐसे पशु बनकर नारकियो को दु ख देते हैं। तपी हुई रेत पर इसको पाड दो आदिक अनेक प्रकार के दु खोमे प्रेरणा देते रहते हैं। इस तरह के असुर जाति के देव इन नारकियो को इतना दुःख देते रहते है। यहाँ कोई यदि यह जानना चाहे कि इन असुर कुमार के देवो को क्या पडी है जो नारकियो को इतना दु ख दिलाने का परिश्रम करते हैं? तो उत्तर यह है कि वे पापकर्म मे अभिरत हैं और उनके प्राकृतिक ऐसा ही काम बन गया है कि जैसे यहा के युद्ध करने वाले मल्लो को देखकर उन्हे उकसाते रहते हैं और उस लडाई को देखकर इनको प्रीति होती है। लोग तीतरो को आपस मे लडाकर आपस मे बडा मौज मनाते हैं। तो जैसे यहा के लोग दूसरो के लडाने-भिडाने मे प्रेरक हो जाते हैं ऐसे ही इन पापो का सम्बन्ध कराने वाले पुण्य वाले इन असुर देवो को लडाई मे प्रीति उत्पन्न होती है। जब वे नारकियो को एक दूसरे को मारते हुए देखते हैं या उनकी हिंसा कराते हैं असुर तो ऐसा देखने मे वे बडे खुश हुआ करते हैं। तो जो असुर कुमार या अम्बरीश सक्लेश परिणाम वाले हैं उन देवो का भी खोटा भवितव्य देखें कि हैं यद्यपि ये देव, लेकिन उनने माया, मिथ्यात्व, निदान, तीव्र कषाय आदिक खोटे भावो मे ऐसा पाप का बन्ध किया या पापो का सम्बन्ध रखने वाले पुण्य का बन्ध किया कि उस पुण्यकर्म के उदय होने मे उनकी ऐसी गति हो जाती और पापानुबध होने से ऐसी प्रीति हो जाती कि पापी जीव आपस मे लडें मरे तो इनको मौज आ जाता है। इस तरह छेदन भेदन आदि के द्वारा उन नारकियो के शरीर के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं तिस पर भी वे आयु समाप्त से पहले नही मर पाते। और इन नारकियों को ऐसा दु ख हजारो लाखो वर्ष तक ही नही किंतु सागरो पर्यन्त भोगना पडता है। तो इस समय यह बतलाते हैं कि उन नारकियो को उत्कृष्ट आयु कितनी होती है, कितने समय तक नरक मे रहते हैं और कितना दु ख सहते रहते हैं। इसके लिए सूत्र कहते हैं —

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिं-
शत्सागरोपमा सत्त्वानांपरा स्थिति ॥६॥

नारकियो की उत्कृष्ट आयु का कथन—उन नरको मे प्राणियो की, नारकियो की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर, ३ सागर, ७ सागर, १० सागर, १७ सागर, २२ सागर और ३३ सागर प्रमाण होती है। सागरोपम याने सागर की उपमा प्रमाण। सागर शब्द की उपमा से क्यो यहा इतने लम्बे काल का स्मरण कराया गया कि सागर बहुत जल समूह से भरा हुआ होता है तो ऐसे ही आयुकर्म बहुत अधिक निषेको से जो भरा हुआ है याने नरक भव मे होने वाली अवस्थाओ को धारण कराने वाले महान पुद्गल द्रव्य के समूह का सयोग है, यह बताने के लिये सागरोपम शब्द कहा गया है। तो एक सागर अनगिनते वर्षों का होता है, जिसकी गिनती नही है। जिसमे अनेक कोडा-कोडी पल्य आ जाते है, इतने काल का नाम एक सागर होता है। अब इस आयु के समय को निरख कर सब पटलो मे विभाजित किया जाना चाहिये। नरको मे से सबसे कम आयु १० हजार वर्ष की होती है। यह आयु पहले पटल मे मिलती है। उससे नीचे-नीचे जाने पर आयु बढती चली जाती है। यह आयु किसकी बताई जा रही है? नरको मे रहने वाले प्राणियो की। नरको की स्थिति नही समझें, इसीलिये सत्त्वानाम् यह शब्द देना पडा, नही तो कोई समझ ले कि नरको की स्थिति है इतनी। और, यह

स्थिति जब पूर्ण हो जायेगी सो नरक न रहेगा यह अर्थ नही है। नरक तो सदा काल से है, सदा काल रहेगा। उन नरको में जो जीव जन्म लेते हैं। उनकी आयु बताई जा रही है। यह आयु उत्कृष्ट है। सूत्र मे शब्द दिया है—परा याने उत्कृष्ट।

प्रथम नरक के प्रथम पटल मे नारकियो की आयु का विवरण—पहले नरक मे पहले पटल मे उत्पन्न होने वाले नारकियो की जघन्य आयु १० हजार वर्ष की होती है और उत्कृष्ट आयु ९० हजार वर्ष की होती है। सीमांतक नाम का इन्द्रक बिल पहले पटल मे मध्य मे है उसमे तथा उससे सम्बन्धित सब बिलो मे नारकियो की आयु अधिक से अधिक ९० हजार वर्ष की होती है। ऐसी नरक जैसी गतियो मे जन्म लेने का मुख्य कारण क्या है ? आत्मा की सुध न लेकर बाह्य पदार्थो की आसक्ति के कारण अन्याय, अत्याचार, दूसरो को पीडा पहुँचे, ऐसे-ऐसे कारणो से जो पाप बधे, उसके उदय मे ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। जीव अपनी सृष्टि अपने भावो के अनुसार करता है। जीव करता क्या है ? जीव ने भाव किया निमित्त नैमित्तिक योगवश वहाँ ही कर्म बन्ध हुआ, उनका जब अनुभाग होता है तो ४ प्रकार की प्रकृतियाँ होती है—(१) जीवविपाकी (२) पुद्गलविपाकी (३) क्षेत्रविपाकी और (४)भवविपाकी। तो जीवविपाकी प्रकृतियो का अनुभाग यों फलता है कि उन कर्मों मे अनुभाग खिला जैसे कपडें की पोटली मे एक चूने का डला बधा हो और उसमे मानो कही से कुछ पानी गिर जाये तो वह डला उस पोटली मे फैल जाता है। डले मे उसका अनुभाग खिला मगर उसका निमित्त पाकर उस कपडे की भी दशा बिगड जाती है, ऐसे ही जीवविपाकी कर्म मे अनुभाग तो खिला उसका ही, जिसमे साक्षात विकार है और परिणति कर्म की ही हुई, पर जीव उपयोग स्वरूप, वहाँ झलके बिना तो रहता नही। अनुभाग की झलक आई जीव मे तो उस समय तक अधेरा जैसा छा गया, तिरस्कार हो गया ज्ञानस्वरूप का। उस स्थिति मे यह जीव अधीर होकर विषयो मे प्रीति करता, बाह्य पदार्थो का आश्रय लेता और इस तरह इसको दु ख उत्पन्न होता है। पुद्गल विपाकी प्रकृतियो का दूसरा ही ढग है उदय का। पुद्गल विपाकी प्रकृति उदय मे आई, जैसे शरीर नाम कर्म उदय मे आया तो वह कुछ शरीर वर्गणाओ के साथ सम्मिलित होकर शरीर रचना का प्रारम्भ कराकर निवृत्त हो जाता है। वह कर्म की उपाधि तो दूर हो जाती है और शरीर वर्गणाओ का पिंड बन जाता है। जैसे कुम्हार घडा बनाता है तो मिट्टी से बनाता लेकिन उसमे पानी का सम्बन्ध रहता है, और पानी के सम्बन्ध के साथ मिट्टी के घडे की रचना होती है और बाद मे पानी सूख जाता है, केवल मिट्टी रह जाती है। तो जैसे उस घडे का आकार बनने मे पानी के उदय का सहयोग है। ऐसे ही इस शरीर रचना मे पुद्गल विपाकी कर्म के उदय का सहयोग है। यह सब रचना जीवो के देहो की नाना प्रकार की होती है। इसका कोई करने वाला हो तो अनेक भूल पड जायें। कोई बात भूल जाये, कही याद न रहे, कोई पदार्थ बिना परिणमे रह जाये। लेकिन ऐसा होता ही नही है। सर्व पदार्थ अपने उपादान से परिणमते हैं और विरुद्ध उपाधि का सम्बन्ध मिल गया तो उसका सन्निधान पाकर विकार रूप परिणम जाते हैं इस तरह प्रत्येक पदार्थ मे परिणमने की शक्ति पडी हुई है, तब स्वभाव से उत्पाद व्यय करते हैं। बस विकार मे परिणति मे बदल का निमित्त है अन्य का सन्निधान। जैसे रेल का इंजन जाता है तो उसका केवल जाने का ही काम है। दिशा बदलना काम नही है। नीचे पाइटमैन जैसी लाइन बदल देता है वैसा इ जन को वहाँ जाना होता है। जैसे इ जन मे गति खुद की है, पर बदल खुद के स्वभाव मे नही है ऐसे ही सर्व पदार्थो मे परिणम

ने की बात खुद ही है, स्वभाव से है, उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त पदार्थ होता ही है मगर उनमे विचित्र विभाव विकार की परिणति खुद के स्वभाव मे नही है। इस तरह कर्म से परतन्त्र हुआ जीव इन नारकादिक गतियो मे भ्रमण करता है और नरको मे ऐसी बडी-बडी आयु की स्थिति लेकर अपने को जीवन भर दु खी रखता है।

प्रथम नरक के द्वितीय से लेकर तेरहवे पटल तक के नारकियों की आयु का विवरण—पहले नरक के दूसरे पटल मे रहने वाले नारकियो की जघन्य स्थिति ९० हजार वर्ष है, उत्कृष्ट स्थिति ९० लाख वर्ष है और मध्यम स्थिति इन दोनो के बीच एक-एक समय बढाकर लगा लेना चाहिये। तीसरे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु एक पूर्व कोटि की है, उत्कृष्ट आयु असख्यातपूर्व कोटि की है। मध्यम इसके बीच मे नाना प्रकार समझना है। चौथे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु असख्यात पूर्व कोटि है और १/१० सागर उत्कृष्ट है याने एक सागर के १० वें भाग प्रमाण है। मध्यम आयु इनके बीच मे नाना प्रकार की है। ५ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु एक सागर का १/१० भाग प्रमाण है, उत्कृष्ट आयु २/१० सागर की है, मध्यम आयु इनके बीच की है। छठे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु २/१० सागर है, उत्कृष्ट आयु ३/१० सागर है। मध्यम आयु इनके बीच की नाना प्रकार है। अब ७ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ३/१० सागर है, उत्कृष्ट आयु ४/१० सागर है। मध्यम आयु इनके बीच की नाना प्रकार का है। विभ्रान्त इन्द्रक वाले पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ४/१० सागर है, उत्कृष्ट ५/१० सागर है, मध्यम उसके बीच की है। प्रथम नरक के तप्त इन्द्रक बिल वाले पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ५/१० सागर है, उत्कृष्ट आयु ६/१० सागर है, मध्यम इसके बीच की है। त्रस्त नामक पटल मे नारकियो की जघन्य आय ६/१० सागर है, उत्कृष्ट आयु ७/१० सागर है। मध्यम इसके बीच की नाना प्रकार है। व्युत्क्रान्त इन्द्रक बिल वाले पटल मे जघन्य आय ७/१० सागर है, उत्कृष्ट ८/१० सागर है, मध्यम नाना है। अवक्रान्त इन्द्रक बिल वाले पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ८/१० सागर है, उत्कृष्ट आयु ९/१० सागर है, मध्यम नाना प्रकार की है। विक्रान्त इन्द्रक वाले पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ९/१० सागर है, उत्कृष्ट एक सागर प्रमाण है और मध्यम आयु नाना प्रकार की है। सामान्य रीति से यह बताया जाता है कि नारकियो की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की होती है और प्रथम नरक मे उत्कृष्ट आयु एक सागर की होती है। तो प्रथम नरक मे जितने पटल हैं उन पटलो मे भी इम उत्कृष्ट और जघन्य आयु का विभाग है। उसके अनुसार १३ पटलो मे नारकियो की आयु का विवरण इस प्रकार है।

द्वितीय नरक मे प्रत्येक पटल मे उपजे नारकियों की आयु का विवरण—अब शर्करा प्रभा नाम की दूसरी पृथ्वी मे ११ पटल हैं, उन सबके पटलो के नारकियो की क्रम से आयु का वर्णन गणित के अनुसार समझ लेना चाहिये याने जघन्य आयु तो एक सागर है और उत्कृष्ट आयु ३ सागर हैं और पटल इसमे ११ हैं। तो ११ पटलो का दो सागरो मे विभाग बनाकर समझ लेना है। दूसरी पृथ्वी के पहले पटल मे नारकियो की जघन्य आयु एक सागर है, उत्कृष्ट आयु १ २/११ सागर प्रमाण है। दूसरे पटल मे १ २/११ सागर की जघन्य आयु है और उत्कृष्ट आयु १ ४/११ सागर प्रमाण है। तीसरे पटल मे जघन्य आयु १ ४/११ सागर है। उत्कृष्ट आयु १ ६/११ सागर हैं। चौथे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु १ ६/११ सागर हैं, उत्कृष्ट आयु १ ८/११ सागर है। ५ वें पटल मे नारकियो की

जघन्य आयु १ ८/११ सागर है उत्कृष्ट आयु १ १०/११ सागर हैं। जिह्व नामक छठवें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु १ १०/११ सागर है। उत्कृष्ट आयु २ १/११ सागर है। उज्जिह्विक नाम के ७ वें पटल मे जघन्य आयु २ १/११ सागर है। उज्जिह्विक नाम के ८ वे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु २ ३/११ सागर है। उत्कृष्ट आयु २ ५/११ सागर है। दूसरी पृथ्वी के ९ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु २ ५/११ सागर है। उत्कृष्ट आयु २ ७/११ सागर है। लोलुक नाम के १० वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु २ ९/११ सागर है। उत्कृष्ट आयु २ ९/११ सागर है। स्तनलोलुप नामक ११ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु २ ९/११ सागर है, उत्कृष्ट आयु ३ सागर है। सामान्य रीति से यह बताया गया है कि दूसरे नरक मे कम से कम एक सागर की आयु है। ज्यादह से ज्यादह तीन सागर की, पर जैसे नरको मे यह क्रम है कि जैसे जैसे नीचे के नरक हैं तो उन नरको मे क्रम से बढ-बढकर आयु है। तो यही बात पटलो मे भी है। दूसरे नरक के ११ पटलो में नीचे-नीचे के पटलों मे अधिक-अधिक आयु होती गई है जिन जीवो के जैसे-जैसे विशेष पाप का उदय है वे वैसे ही नीचे-नीचे के पटलो मे उत्पन्न होते हैं और उनकी आयु अधिक होती जाती है।

तृतीय नरक के पटलो मे रहने वाले नारकियो की आयु का विवरण—तीसरे नरक मे ९ पटल हैं, जिनमें तप्त नामक पहले पटल मे जघन्य आयु तीन सागर है, उत्कृष्ट आयु ३ ४/९ सागर है। त्रस्त नामक दूसरे पटल मे जघन्य आयु ३ ४/९ सागर है और उत्कृष्ट आयु ३ ८/९ सागर है। तपन नामक तीसरे पटल मे जघन्य आयु ३ ८/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ४ ३/९ सागर है। आतपन नामक चौथे पटल में जघन्य आयु ४ ३/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ४ ७/९ सागर है। निदाघ नामक ५ वे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ४ ७/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ५ २/९ सागर है। ज्वलित नामक छठवें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ५ २/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ५ ६/९ सागर है। जाज्वलित नामक ७ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ५ ६/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ६ १/९ सागर है, सज्वलित नामक ८ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ६ १/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ६ ५/९ सागर है। सप्रज्वलित इन्द्रक बिल वाले ९ वे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ६ ५/९ सागर है, उत्कृष्ट आयु ७ सागर प्रमाण है। सामान्य रीति से तीसरे नरक मे जघन्य आयु ३ सागर कही है, उत्कृष्ट आयु ७ सागर है। तो उसमे जो चार सागर अधिक आयु हुई है उस चार सागर के ९ भाग करके प्रत्येक पटलो मे अधिक-अधिक किया गया है।

चौथे नरक के प्रत्येक पटलों मे नारकियो की आयु का विवरण—चौथे नरक मे ७ पटल है। सामान्य रीति से तो यह कहा जाता है कि चौथे नरक मे जघन्य आयु ७ सागर की है और उत्कृष्ट आयु १० सागर की है, परन्तु जैसे-जैसे नीचे-नीचे पटल हैं वैसे ही वैसे आयु बढ, बढकर आयु मे भी विभाग बन जाते है। जैसे उस चौथी पृथ्वी के आर नामक पहले पटल मे जघन्य आयु ७ सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट आयु ७ ३/७ सागर प्रमाण है। मार नामक दूसरे पटल मे जघन्य आयु ७ ३/१० सागर है। उत्कृष्ट आयु ७ ६/७ सागर है। तार नामक तीसरे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ७ ६/७ सागर है। उत्कृष्ट आयु ८ २/७ सागर है चर्चक इन्द्रक बिल वाले चौथे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ८ २/७ सागर है। उत्कृष्ट आयु ८ ५/७ सागर है। तमक नामक ५ वें पटल मे नारकियो की जघन्य आयु ८ ५/७ सागर है, उत्कृष्ट आयु ९ १/७ सागर है। खाड नामक छठवें पटल मे जघन्य आयु ९ १/७ सागर है। उत्कृष्ट आयु ९ ४/७ सागर है। चौथी

पृथ्वी के अखाट नामक अन्तिम पटल मे जघन्य आयु ६ ४/७ सागर है, उत्कृष्ट आयु १० सागर है।

पांचवे छटवे सातवे नरक के पटलो मे नारकियों की आयु का विवरण, धूम प्रभा नाम के ५वे नरक मे जघन्य आयु १० सागर कही गई है, उत्कृष्ट आयु १७ सागर है। इसमे पटल ५ हैं। तो बढी हुई जो ७ सागर आयु है, उसके विभाग ५ पटलो मे कर लेना चाहिये। जैसे इस ५ वी पृथ्वी के तम नामक पहले पटल मे जघन्य आयु १० सागर है, उत्कृष्ट आयु ११ २/५ सागर है। भ्रम नामक दूसरे पटल मे जघन्य आयु ११ २/५ सागर है उत्कृष्ट आयु १२ ४/५ सागर है झष नामक तीसरे पटल मे जघन्य आयु १२ ४/५ सागर है, उत्कृष्ट आयु १४ १/५ सागर है। अन्ध नामल चौथे पटल मे जघन्य आयु १४ १/५ सागर है, उत्कृष्ट आयु १५ ३/५ सागर है। तमिस्र नामक ५ वे पटल मे नारकियो की जघन्य आयु १५ ३/५ सागर है, उत्कृष्ट आयु १७ सागर प्रमाण है। तम प्रभा नाम के छठे नरक मे केवल तीन पटल हैं। सामान्य रीति से इस नरक मे जघन्य आयु १७ सागर है, उत्कृष्ट आयु २२ सागर है और पटलो के क्रम से पहले पटल मे जघन्य आयु १७ सागर है व उत्कृष्ट आयु १८ २/३ सागर है। दूसरे पटल मे जघन्य जायु १८ २/३ सागर है। और उत्कृष्ट आयु २० १/३ सागर है। तीसरे पटल मे २० १/३ सागर है जघन्य आयु है, उत्कृष्ट आयु २२ सागर है। ७ वे नरक मे केवल एक ही पटल है। इसमे विदिशाओ मे भी बिल नही है। दिशाओ मे एक-एक बिल है और बीच मे इन्द्रक बिल है, इस प्रकार कुल ५ ही बिल हैं। इससे जघन्य आयु २२ सागर प्रमाण है, और उत्कृष्ट आयु ३३ सागर प्रमाण है।

प्रथम नरक के नारकियों की स्फुट विशेषतायें—पहले नरक के नारकियो के शरीर की अवगाहना छह धनुष, तीन हाथ छह अगुल प्रमाण है। इन नरको मे कर्मो की प्रचण्ड वेदना होती है। असुर जाति के देव भी नाना प्रकार की याद दिलाकर और उनके दु:ख के उपाय बताकर नारकियो के कष्ट बढाने मे मदद देते हैं। इस नरक मे नारकी किसी समय एक भी उत्पन्न न हो ऐसा अगर नारकियो के जन्म का अन्तर होता है तो कम से कम एक समय अन्तर है कि जिस समय पहले नरक मे कोई भी नारकी जन्म नही ले रहा और उत्कृष्ट अन्तर २४ मुहूर्त है। एक मुहूर्त २४ मिनट का होता है। पहले नरक मे असज्ञी जीव तक जन्म ले लेते हैं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, जीवो की उत्पत्ति नरक मे नही होती। याने चार इन्द्रिय तक के जीव मरकर नरक मे नही उत्पन्न हो पाते। पञ्चेन्द्रिय मे मनुष्यो मे पर्याप्तक मनुष्य जन्म लेते हैं, और तिर्यञ्चो मे सज्ञी और असज्ञी दोनो प्रकार के पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मरकर जन्म ले लेते हैं। कोई जीव सम्यग्दृष्टि म ण करें और सम्यक्त्व से हो निकलें ऐसे होते हैं। कोई मिथ्यादृष्टि है, मिथ्यात्व मे मरण किया और मिथ्यात्व मे ही पहले नरक मे जन्म ले ले, और वे जीव मिथ्यात्व गुण स्थान से ही निकलें, ऐसे जीवो की बहुत सख्या है, कई जीव ऐसे हैं कि जो पहले गुणस्थान मे मरण करके जन्म लें और दूसरा गुणस्थान पाकर वहां से निकल जायें। कुछ जीव पहले गुणस्थान मे मरण कर नरक मे जन्म लें और अन्त मे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ज्ञानी होकर वहां से मरण कर अगला भव प्राप्त करेंगे।

द्वितीय नरक के नारकियो की स्फुट विशेषतायें—दूसरे नरक मे नारकियो की अवगाहना १५ धनुष, दो हाथ, १२ अगुल प्रमाण है। दूसरे नरक मे भी गर्मी की वेदना है। असुर कुमार जाति के देव जाकर नारकियो का दु ख बढाते हैं। दूसरे नरक मे कोई भी जीव जन्म न ले, ऐसा अगर अन्तर पड सकता है तो ज्यादह से ज्यादह ७ रात दिन का अन्तर पड सकता है। याने ७ रात दिन ऐसे गुजर

सकते हैं कि जब कोई जीव दूसरे नरक मे जन्म ही न ले रहा, सरीसृप जैसे जीव तक इस नरक मे उत्पन्न हो लेते है। कई जीव ऐसे हैं जो पहले गुणस्थान मे जन्म लें और पहले से ही निकले। कई नारकीय ऐसे हैं कि पहले गुणस्थान मे जन्म ले और दूसरे गुणस्थानवर्ती होकर निकलें और कई नारक जीव ऐसे हैं जो पहले गुणस्थान मे जन्म लें और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होकर वहा से निकलें।

तीसरे नरक में गर्मी की वेदना है। इस नरक मे कोई जीव पहले गुणस्थान मे जन्म लेता है और पहले गुणस्थान मे ही मरण करता है। कोई जीव पहले गुणस्थान में जन्म ले और दूसरे गुण-स्थान मे मरण करे। कोई जीव ऐसे होते हैं कि जो पहले गुणस्थान मे जन्म लेते है और चौथे गुणस्थान मे मरण करते हैं। इस नरक मे यदि कोई जीव जन्म न ले पावे, कोई नारकी उत्पन्न न हो तो ऐसा अन्तर एक पखवारा तक रह सकता है याने १५ दिन ऐसे भी गुजर सकते है जबकि कोई भी नारकी इस तीसरे नरक मे जन्म नही पा रहा। इस नरक मे पक्षी तक उत्पन्न हो सकते है। तीसरे नरक तक के नारकी कोई तीर्थंकर प्रकृति बध वाले वहाँ से मरण कर तीर्थंकर मे जन्म लेता है। याने तीन नरक तक के नारकी तीर्थंकर पद को प्राप्त कर सकते हैं और उसके साथ जी जब तीर्थंकर तक हो लेते हैं तो ऐसे महापुरुष भी हो सकते हैं जो मोक्ष जा सकते हैं। तीसरे नरक तक ही असुर जाति के देवो का गमन है और तीसरे नरक तक अनेक भले देव आकर इन नारकियों को सम्बोधते भी है, जिनके सम्बोधन का निमित्त पाकर उन्हे सम्यक्त्व भी उत्पन्न हो सकता है। जो नारकी तीर्थंकर होगे उनकी जब ६ महीना आयु शेष रहती है तो देवगण यहाँ आकर एक ऐसा कोर्ट बनाते हैं जहाँ वे नारकी बडी सुरक्षा के साथ रहते हैं, तभी यह भी शोभा देता है कि तीर्थंकर के गर्भ मे आने से पहले ६ महीने रत्न वर्षा होती है, तीर्थंकर के माता पिता के गृह नगर मे। अन्यथा यह तो बडो बेतुकी बात रहेगी कि यहाँ तो हो रही रत्न वर्षा और जिस जीव के आगमन की खुशी मे रत्न वर्षा हो रही है वह नरक मे कुट पिट रहा हो सो ऐसा न होगा। ६ महीना पहले वहाँ भी भावी तीर्थंकर नारकी बहुत सुरक्षित रहते हैं। उन पर कोई आक्रमण नही कर पाता। तीसरे नरक के नारकियो की अवगाहना ३१ धनुष एक हाथ की होती है।

चतुर्थ व पंचम गुणस्थान मे नारकियों की स्फुट विशेषतायें—चौथे नरक मे उष्णता की वेदना है। यहाँ कोई नारकी यदि जन्म न ले तो ऐसा अन्तर एक महीना तक का पड सकता है याने चौथे नरक मे कोई ऐसा भी समय गुजर सकता है कि जहाँ एक महीने तक कोई भी नारकी उत्पन्न न हो रहा हो। सर्प मरकर चौथे नरक मे उत्पन्न हो सकते हैं। फिर इससे विशेष योग्य नर तिर्यंच प्राणी तो उत्पन्न हो ही सकते हैं, इन नरको मे कोई जीव पहले गुणस्थान मे जन्म लेकर पहले ही गुणस्थान मे मरण करता है, कोई पहले गुणस्थान मे जन्म लेकर द्वितीय गुणस्थान से निकलते हैं। कोई जीव पहले गुणस्थान मे जन्म लेकर चौथे गुणस्थान मे मरण करते हैं। तीसरे गुणस्थान मे तो कही भी किसी भी गति मे मरण नही हुआ करता। चौथे नरक मे नारकियो की अवगाहना ६२॥ धनुष की होती है ५वें नरक मे रहने वाले नारकियो की अवगाहना अधिक से अधिक १२५ धनुष की होती है, इस नरक मे ऊपर के २ लाख बिलो के स्थान ऐसे है जहाँ उष्ण वेदना होती है, पर उसके नीचे के एक लाख बिलो मे शीत वेदना होती है। उष्ण वेदना से शीत वेदना का दुख भयकर होता है और इसका अनुमान इससे करलें कि नरको मे नीचे तो शीत वेदना है और ऊपर उष्ण वेदना है। इन नरको मे नारकियो के जन्म का अन्तर पडे अर्थात ऐसा कोई समय गुजरे कि लगातार

कोई नारकी ही इस पचम नरक मे उत्पन्न न हो रहा हो तो वह अन्तर काल अधिक से अधिक दो महीने तक रह सकता है। पचम नरक मे सिंह तक भी उत्पन्न हो सकते हैं जहाँ किसी जीव विशेष का नाम लेकर उत्पन्न होना बताया है उसका अर्थ यह लेना है कि यह जीव इस नरक से नीचे जन्म नही ले सकता। सिंह ५वें नरक तक ही जन्म ले सकते हैं, इससे नीचे उनका जन्म नही। इसी प्रकार जो पहले बताया गया था कि ऐसे प्राणी इस नरक तक जन्म लेते हैं तो वहाँ भी यही अर्थ लेना कि नीचे नरक मे जन्म नही ले सकते। जैसे बताया था कि पहले नरक मे असज्ञी तक जन्म लेते है याने असज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक के जीव प्रथम नरक मे जा सकते हैं। असज्ञी पञ्चेन्द्रिय दूसरे नरक मे या और नरको मे जन्म नही लेते है। इस पचम गुण स्थान मे कोई जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जन्म लेते है और मिथ्यात्व मे ही मरण करते हैं। कोई जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जन्म लेते हैं और द्वितीय गुणस्थान मे मरण करते हैं। कुछ जीव ऐसे होते हैं जो जन्म तो लें प्रथम गुणस्थान मे और मरण करते चतुर्थ गुणस्थान मे।

छठे व सातवें नरक के नारकियों की स्फुट विशेषतायें—छठे नरक मे शीत वेदना ही है। इस नरक के नारकियो की अवगाहना २२५ धनुष की होती है। इस नरक मे स्त्रियो तक का जन्म होता है मायने स्त्री छठे नरक तक ही नारकी हो सकती हैं। स्त्रीभव से सप्तम नरक मे जन्म नही हो पाता। इन सब का कारण उस प्रकार के तीव्र सक्लेश आदिकपरिणामो की योग्यता नही है ऐसा समझना चाहिये, या अधिक पाप करने की उनमे शक्ति नही है ऐसा जानना चाहिये। छठे नरक मे कोई जीव तो मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही जन्म लेता है और मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही मरण करता है। याने मिथ्यात्व से आये और मिथ्यात्व से ही निकले। कुछ जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जन्म लेते हैं और द्वितीय गुणस्थान मे मरण कर सकते हैं। कुछ विरले जीव होते हैं ऐसे जो जन्म तो लें प्रथम गुणस्थान मे और मरण करें चतुर्थ गुणस्थान मे। सप्तम नरक मे उत्पन्न होने वाले नारकियो की अवगाहना ५०० धनुष की होती है। इस नरक मे अत्यन्त शीत वेदना है। यदि कोई जीव सप्तम नरक मे जन्म न ले याने कोई जीव ७वें नरक मे भी उत्पन्न नही हो रहा है, यदि ऐसा समय बीते लगातार तो वह ६ महीने तक का समय गुजर सकता है। इसके बाद कोई न कोई जीव नारकी होगा ही। तो यह जन्म का अन्तर ६ माह तक का समझना चाहिये। सप्तम नरक मे ऐसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जिनके वज्रवृषभ नाराच सघनन होता है, वे सप्तम नरक मे भी जन्म ले सकते हैं और यदि उनके परिणाम धर्म की ओर लग जाये तो वे उसी भव से मोक्ष भी जा सकते हैं। सप्तम नरक मे ऐसे जीव हैं जो मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही जन्म लें और मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही मरण करें, सारे ही जीव ऐसे होते हैं। अन्य गुणस्थानो से इनका निकलना नही होता, और सप्तम नरक के नारकी मरकर तिर्यञ्च मे ही उत्पन्न होते हैं, मनुष्यो मे उत्पन्न नही हो सकते। यह सब उनकी योग्यता का परिणाम है।

प्रथम नरक और सप्तम नरक मे जन्म लेने वालों के भावो की विशुद्धि का विशाल अन्तर—कुछ जीव ऐसे होते हैं जो चौथे गुणस्थान मे मरण कर नरक गति मे जन्म ले सकते। जिनके क्षायिक सम्यग्दर्शन है उनके क्षायक सम्यक्त्व तो मिटता नही और सम्यक्त्व होने से पहले नरक आयु का बध कर लिया था सो आयु बध भी बदलता नही तो उन जीवो को नरक मे तो जाना ही पडेगा पर वे जायेंगे पहले नरक मे ही, और चतुर्थ गुणस्थान मे ही उनका जन्म होगा। ऐसे जीव चतुर्थ गुणस्थान मे ही नरक गति से निकलते हैं और मरकर मनुष्य गति को ही प्राप्त

करते है। और मनुष्य गति मे भी जीव उत्पन्न होगे—गर्भज, पर्याप्तक, कर्मभूमिज बनते हैं। सप्तम नरक के नारकी मिथ्यादृष्टि ही रहकर नरक से निकलते हैं और तिर्यञ्च मे उत्पन्न होते हैं। सो तिर्यञ्च मे पचेन्द्रिय गर्भज, पर्याप्तक और सख्यात वर्ष की आयु वाले ही होते हैं।

नरकों से निकलकर उत्पन्न हुए तिर्यञ्च व मनुष्यों मे योग्यता व अयोग्यता का विवरण— सप्तम नरक से निकल कर जन्म लेने वाले तिर्यञ्चो मे इतनी बातें नही बन सकती हैं—सुमतिज्ञान, सुश्रुतज्ञान, सुअवधिज्ञान, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सयमासयम। जब इन ही बातो को उत्पन्न नही करता तो सयम को प्राप्त करना तो अपने आप ही निषिद्ध हो सकता है। छठे नरक से निकल कर तिर्यंच या मनुष्य मे उत्पन्न होते है जीव। ऐसे जीव जो छठे नरक से निकल कर आये है उन जीवो मे कोई-कोई जीव ऐसे निकल सकते हैं जो सुमतिज्ञान, सुश्रुतज्ञान, सुअवधिज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्मिथ्यात्व और सयमासयम को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे जीव विरले ही होते हैं पर ये सयम को उत्पन्न नही कर सकते। छठे नरक से निकले हुए जीव जो तिर्यंचो मे उत्पन्न हुए वे भी उन ६ बातो प्राप्त कर लेते हैं जो चतुर्थ नरक के जीवो मे बताया है और जो पचम नरक से निकल कर मनुष्य हुए हैं वे भी इन ६ बातो को प्राप्त कर ही लेते, पर ये मनुष्य सयम को भी उत्पन्न कर सकते हैं। चौथे नरक से निकले हुए जीव जो तिर्यंचो मे उत्पन्न होते हैं वे कोई मतिश्रुत आदिक ६ बातो को प्राप्त कर लेते हैं सो सभी नही, किंतु जो ज्ञानी जीव हैं वे कर पाते हैं और चौथे नरक से निकल कर जो मनुष्य मे उत्पन्न हुए हैं वे सुमतिज्ञान, सुश्रुतज्ञान, सुअवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सयमासयम और सयम को उत्पन्न कर सकते हैं, तथा चौथे नरक से निकले हुए जीव मनुष्य होकर मोक्ष को भी प्राप्त कर सकते हैं। पर चौथे नरक से निकले हुए मनुष्य इन पदो को प्राप्त नही सकते—बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकरपना। इनके उत्पन्न करने का सामर्थ्य चौथे नरक से निकले हुए मनुष्यो मे नही होता है। बलदेव, वासुदेव तो नरक से निकल कर नही होते। ऊपर के तीन नरको से निकले हुए जीव तिर्यंचो मे उत्पन्न होते हैं जो वे कोई २ इन ६ बातों को उत्पन्न कर सकते हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्मिथ्यात्व और सयमासयम, किंतु जो मनुष्यो मे उत्पन्न हुए हैं वे कोई कोई मनुष्य मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्मिथ्यात्व, सयमासयम और सयम को उत्पन्न कर सकते हैं। याने मनुष्य ९ पदो को प्राप्त कर सकते हैं पर ये कोई भी बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती उत्पन्न नही होते। यहाँ यह बात समझना कि बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती ये स्वर्गों से आकर ही उत्पन्न होते है। इन तीन नरको से निकले हुए मनुष्य तीर्थंकरपने को प्राप्त कर सकते हैं। इन नरको से निकले हुए मनुष्य तो मोक्ष जाने का भी सामर्थ्य रखते हैं। तीर्थंकर मोक्ष जाते ही हैं और अन्य मनुष्य भी मोक्ष जा सकते है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि नारायण, प्रतिनारायण और चक्रवर्ती ये नरक से निकल करनही हुआ करते किंतु स्वर्ग से आकर ही होते है और स्वर्ग में ये उत्पन्न हुए थे उसमे पहले इनका जीवन अच्छा होता है, धर्मात्मा होते है, मुनि होते है, तपश्चरण करते है। और अच्छे ऊँचे-ऊँचे कार्यो के साथ थोड़ा इसका निदान सा हो जाता है, तो उस निदान से स्वर्गो मे जाकर फिर भी यहां नारायण प्रतिनारायण जैसे पदो को प्राप्त करते है, पर तीर्थंकरो को तो बताया है कि वे नरक मे भी निकल कर तीर्थंकर होते है और तीर्थंकर नियम से मोक्ष जाते ही है। तो ऐसे नरको का जो दु ख है वह मोही जीव के लिए तो ससार बधन बढाने वाला है, पर

जिसके निज सहज चिन्प्रकाश का लाभ है, ससार चक्र से जो निकल जायेगा ऐसे जीवो को वह किसी दृष्टि से लाभ देने वाला है, इसलिए ससार मे दु ख सुख की छाँट न करनी चाहिए कि हमको दु ख अथवा सुख मिले। या पुण्यफल और पापफल मे छाँट न करना चाहिये कि मुझे पुण्यफल मिले, पापफल मिले, किंतु यह छाँट करना चाहिये कि मेरे पाप भाव कभी मत होवें, धर्मभाव हो, और पुण्यभाव हो तो धर्मभाव से सम्बन्धित हो तो उत्तम है।

जीव के सहायका चिन्तन— इस जीव का शरण सहयोगी अपने आप का विशुद्ध परिणाम ही है। यहाँ कोई किसी की रक्षा कर सकने वाला नही है, जो कुटुम्ब में बडे आराम से बडो प्रीति से रहते हे, परस्पर बहुत सुख भोगते हैं, ऐसे ये सभी जीव भी अगर नरको मे गये और एक ही बिल मे उत्पन्न हो गये तो वहाँ जाकर ये प्रीति नही निभाते और न कोई किसी दूसरे को कुछ भी बख्श सकता है। यहाँ चाहे कोई पति पत्नी ही क्यो न हो, और बडे ही प्रेम से क्या न रहते हो, लेकिन वहाँ जाकर वे आपस मे एक दूसरे की काट मार ही किया करते हैं। यहाँ थोडे भवो का, थोडे काल का कुछ सुयोग पाया और उसमे इतना वेसुध हो गये कि अपने आत्मा को कुछ सुध भी न लें तो ऐसे जीवो का कोई मददगार नही होता। मददगार तो कोई किसी का भी नहीं होता, मगर पाप करने वाले को फल भोगना पडता है और उसमे कोई हाथ नही बटा सकता है। यहसब लोला एक प्राकृतिक चल रही है। किसी के बनाने से, करने से नही चल रही है, किंतु ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि जब जीव के कषायभाव जगता है तो उन भावो का निमित्त पाकर स्वय ही कार्माणवर्गणायें उसके अनुकूल अपने मे बधन उत्पन्न कर लेती हैं और फिर जीव के भावो का निमित्त पाकर कर्मबधन हुआ सो यह जीव के कलक के लिए ही बात बनती है और आगे इन कर्मों के उदय मे जीव दु खी होता है।

निगोद जीवो की तुच्छ दशा—इन ७ पृथ्वियो से नीचे थोडा स्थान है, वायुमण्डल है, जहा नारकी तो नही रहते, पर निगोदिया जीव वहा रहा करते हैं। अन्य जीवो की वहा गति नही है इस कारण उस स्थान को नित्य निगोदस्थान कह दिया करते हैं। यहा नित्य के मायने सदा काल निगोद रहता ही हैं। जो आज निगोद मे है वहाँ नित्य निगोद के स्थान पर, उसके लिये यह नियम नहीं है कि वे अनन्त काल तक निगोद ही रहेगे। और ऐसा भी नही है कि जो नित्य निगोद नही हैं, इतर-निगोद है वे वहा जन्म न लें पर चूंकि उस स्थान पर त्रस जीव या व्यक्त स्थावर वहाँ नही होते इस कारण से इसको नित्य निगोद का स्थान कहा करते हैं। अब लोक रचना मे देखिये कि सबसे नीचे तो नित्य निगोद का स्थान है और सबसे ऊपर सिद्ध लोक का स्थान है। और यह भी परख लें कि निगोदिया जीव अनादि काल से निगोद मे है किन्तु सिद्ध भगवान ये अनन्त काल तक सिद्ध लोक मे रहते हैं। सिद्धलोक मे रहने वाले भगवन्तो की ऐसी लीला है कि उनके ज्ञान मे तीन लोक और अलोक सभी समाये हुए हैं। अनन्त आनन्द के घनी हैं। तो निगोद जीवो की ऐसी उल्टी लीला है कि वे कैसा अटपट हल्के साधारण शरीर मे रह रहे हैं कि अनन्त निगोद जीवो का एक शरीर है, जिनके आधार पर वे सब जीव रहते हैं और उनका एक साथ जन्म होता, मरण होता। ऐसा जन्म मरण करते रहते हैं, उस बीच अन्य और भी निगोदिया जीव वहाँ आते हैं तो आते समय किसी समय से सिलसिला हुआ उनके साथ जन्म-मरण आदिक का, मगर वह सिलसिला सबके साथ एक बन जाता है। तो सबसे पहले नीचे निगोदिया जीव का स्थान है। उसके ऊपर इन नारकियो का स्थान है। यह सब अधोलोक का एक चित्रण है। अब इसमे कोई पूछे कि सबसे

ज्यादह दुःख निगोदिया जीवो को है या नारकियो को तो उसके उत्तर दोनो प्रकार के हो सकते। नारकी जीवो की वेदना तो स्पष्ट है, ऐसी शीत नरको मे रहती है कि जहाँ बडे-बडे ताम्र पर्वत भी जो रसायन बनकर बहने लगते हैं वे भी उस शीत के कारण पत्थर जैसे ठोस (घन) बन जाते हैं। तो जहाँ शीत वेदना भयकर है, उष्ण वेदना भयकर है उन नारकी जीवो का दु.ख तो सब समझ सकते हैं कि किस प्रकार का उनके दु ख होता है, पर एक इन्द्रिय द्वारा ही उनके दुःखो का अनुमान किया जा सकता है। खुद ज्यादह नही समझ पाते इस कारण कि उन जैसी हमारी स्थिति नही है। हम नारकी भी नही है फिर भी नारकी जीवो के दुःखो का हम झट अनुमान कर सकते हैं। हम भी सज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीव है, वे भी सज्ञीपञ्चेन्द्रिय हैं इस कारण उनके दु ख का अनुमान हम कर सकते हैं, पर एकेन्द्रिय जीवो का दु ख तो इस तरह है कि जैसे किसी मनुष्य के मुख मे और नाक मे भी कपडा ठूस दिया जाए और फिर उसे किसी बडी पेटी के अन्दर बन्द कर दिया जाए तो तो जैसी दम घुटने की दशा उसकी होती है उससे भी तुच्छ दशा निगोदिया जीवो की रहती है।

वर्तमान सुअवसर से लाभ उठाने का अनुरोध—इस प्रसग मे हमे यह समझ लेना चाहिए कि अब हम निगोद भव से तो निकल आये और अच्छे-अच्छे भव पा पाकर आज मनुष्य हो गए हैं तो हमने इस मनुष्य भव मे विषय कषायो का प्रसंग, इनकी आसक्ति, दूसरो पर अन्याय ये सारे काम कतई न करना चाहिए, अगर कोई करे, चाहे गुप्त रूप से ही करे तो उसे नरक गति मे जाकर जन्म लेना पडता है जहाँ सागरो पर्यन्त इस जीव को दु ख भोगना पडता है। इसका नाम नरक यो ही तो पड गया कि ये अपने दु'खो के द्वारा मनुष्यो को चीख उठा देते हैं। नरो को मनुष्यो को कांय-कांय करा देते हैं, इतनी कठिन वेदना इन नरको मे पायी जाती है जो कि ये ७ प्रकार की भूमियो मे रहते हैं। तो यहाँ तक अधोलोक का वर्णन हुआ। अर्द्धलोक के नीचे भाग से लेकर मेरू पर्वत की जड तक है, जहा से जड शुरू होती है वह मध्यलोक कहलाने लगता है। यह अधोलोक का वर्णन हम आप सबके लिये वैराग्य के लिये हो और तत्वज्ञान की प्राप्ति की उमग के लिये हो, ऐसे ही भावो से सूत्रो का पाठ हो तो इस जीव के लिये कल्याण का साधक है।

मोक्षशास्त्र प्रवचन १३ वाँ भाग समाप्त।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

चतुर्दश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

मोक्षशास्त्र के प्रथम व द्वितीय अध्याय के व्याख्येयों का सक्षिप्त दिग्दर्शन—इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थ मे ही प्रथम यह बताया है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष का मार्ग है। इसकी व्याख्या मे सम्यक्त्व का स्वरूप पहले कहा कि तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। तो वे तत्त्वार्थ कितने हैं उनका नाम दिया जीव, अजीव, आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वो का यथार्थ श्रद्धान होना, वस्तु स्वरूप सहित तत्त्वो का श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। तो इन ७ तत्त्वो जानकारी के लिये प्रथम अध्याय मे उपाय बताया है कि किन-किन उपायो से पदार्थ का परिचय होता है। तो प्रथम तो निक्षेप बताया गया जिससे कि व्यवहार बना। फिर जानकारी के उपायो मे मुख्य उपाय प्रमाण और नय कहा गया है। अन्य अनुयोग द्वार भी पदार्थ के जानने के उपाय हैं, फिर भी मुख्यतया प्रमाण नय उपाय हैं सो प्रमाण का विशेष वर्णन किया फिर नयो का वर्णन किया। इस तरह प्रथम अध्याय मे पदार्थों के जानने के उपायो का भली-भाँति विवेचन किया है। नयो के बिना हम कुछ भी पदार्थ परिचय मे नही बढ सकते, सो नयो के द्वारा पदार्थों का, एक-एक धर्म स्वरूप का परिचय होता है, किन्तु पदार्थ केवल एक धर्ममात्र नही है, अतएव समस्त धर्मों का परिचय कराने वाला प्रमाण है। और यो प्रमाण और नयो से जीवादिक तत्त्वो का सम्यग्दर्शनादिक का सबका परिचय होना है। यो प्रथम अध्याय मे पदार्थों के परिचय करने के उपायो का वर्णन किया। उसके बाद यह आवश्यक हुआ कि उन जीवादिक ७ तत्त्वो का ठीक परिचय कराया जाए। तो फिर दूसरे तीसरे चौथे अध्यायो मे जीव तत्त्व का परिचय कराया जाता है। जिसमे द्वितीय अध्याय मे सर्वप्रथम जीव के स्वतत्त्व का वर्णन किया। जीव के क्या-क्या भाव होते हैं, क्या-क्या परिणतियाँ होती हैं और जीव का क्या स्वरूप है, स्वभाव है इस बात को ५३ भावो के विस्तार मे बताया है। इसके बाद जीव का लक्षण कहा गया। उपयोग जीव का लक्षण है। उपयोग के नाते से फिर उपयोग वाले जीव के भेद किए गए। उपयोग वाले जीव पदार्थ दो प्रकार के है मुक्त और ससारी जिनमे से मुक्त का परिचय तो कोई अधिक नही कराया जा सकता, क्योकि वह एक स्वरूप है, अमूर्त है, बधनरहित है, और आँखें कभी उनका कोई प्रसग भी नही दिख सकता। साथ ही उपयोग मुक्त जीव मे उपचार से है, ससारी जीवो मे मुख्य है तो ऐसे ही ये मुख्य उपयोगी ससारी जीव कितनी तरह के है, उनका परिचय दूसरे अध्याय मे कराया गया है। ये ससारी जीव दो प्रकार के हैं—(१) त्रस और, (२) स्थावर, फिर मन सहित, मन रहित, फिर इन्द्रिय के माध्यम से एकेन्द्रिय, दो-

इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, ये भेद किए गए है, इन्द्रिय की कैसी रचना होती है ? इस प्रसग मे भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय का वर्णन हुआ। जब उपयोग का वर्णन हुआ, उसके बाद योग का वर्णन आवश्यक समझा गया तो योग तो जीवो के प्रदेश का परिस्पद है, यह कहा किस तरह होता है ? तो विग्रह गति से योग की बात प्रारम्भ की गई। उस योग से मिलता है फिर शरीर। शरीर का वर्णन किया। तो शरीर सम्बन्धित जो कुछ ज्ञातव्य विषय था उसका वर्णन किया। इस तरह सामान्य तथा जीव तत्त्व का वर्णन द्वितीय अध्याय मे हुआ।

तृतीय अध्याय मे नरक भूमि सम्बन्धित समाचारो का वर्णन—अब तृतीय अध्याय मे जीव के रहने के स्थान की बात कही गई है कि ये जीव रहते कहाँ-कहाँ है ? तो यह लोक तीन भागो मे विभक्त है अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्द्ध लोक। तो सबसे पहले अधोलोक का वर्णन किया। अधोलोक मे मुख्यतया नारकी जीव रहते है, यद्यपि पहली पृथ्वी मे ऊपर के दो भागों मे भवनवासी और और व्यन्तरो के भी बडे सुन्दर महल हैं, रमणीक चैत्यालयो से सम्पन्न सुख के साधनभूत हैं, पर उनके नीचे प्रथम नरक है फिर और नीचे-नीचे अलग-अलग भूमियाँ हैं उनमे नरक हैं, उन नरको मे क्या स्थिति है, कैसे नारकी हैं, उनकी आयु कितनी है, कैसा कष्ट पाते है, यह सब वृत्तान्त नारकी सम्बन्धी किया गया है। यह अधोलोक ७ पृथ्वियो मे विस्तृत है। यह सब बताने के बाद अब इस समय अधोलोक से ऊपर के लोक के वर्णन का प्रारम्भ होना चाहिए, उसका ही क्रम है। तो अब तिर्यक लोक का वर्णन प्रारम्भ किए जाने योग्य है, तिर्यक लोक कहते है, मेरू पर्वत के बराबर ऊँचा और मेरू पर्वत की जड तक नीचे उतने क्षेत्र मे तिर्यक रूप मे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओ मे जहाँ तक लोक का फैलाव है उसको तिर्यक लोक कहते हैं। तो तिर्यक लोक मे कौन सी चीज वर्णन की जानी चाहिए। जो कुछ रचना है द्वीप, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र, परिणाम, सख्या आदिक यह सब वर्णन करने के योग्य है, तो उनका वर्णन करने के लिए सर्वप्रथम सूत्र कहते हैं—

जम्बूद्वीपलवणोदादय शुभनामानो द्वीपसमुद्रा ॥७॥

जम्बू द्वीप नाम की सार्थकता व तिर्यक्लोक की रचना—जम्बूद्वीप, लवणोदसमुद्रआदिक अच्छे-अच्छे नाम वाले अनेक द्वीप समुद्र है, तिर्यक लोक मे असख्याते द्वीप समुद्र हैं, उनकी रचना बतायी जाएगी। तिर्यक् लोक नाम भी तो इसीलिये रखा गया है कि दिशाओ मे फैलाव रूप से जो रचना बनी हुई है, जैसे यही रचना जम्बूद्वीप से लेकर स्वय भूरमण समुद्र पर्यन्त समस्त द्वीप समुद्रो की रचना है, ये सब जहाँ हैं उसे तिर्यक् लोक कहते हैं। तो तिर्यक् लोक मे जम्बूद्वीपादिक अनेक द्वीप हैं, लवणोद आदिक अनेक समुद्र हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इसका नाम जम्बूद्वीप क्यो रखा गया ? हम आप सब जम्बूद्वीप मे ही तो रह रहे हैं। रह रहे हैं एक कोने पर, जम्बूद्वीप के एक हिस्से मे, जिसका नाम भारत क्षेत्र है, पर हम आप सब जम्बूद्वीप मे निवास कर रहे हैं। इसका नाम जम्बू द्वीप क्यो रखा गया ? इसका कारण यह है कि इस जम्बू द्वीप मे एक खास जगह पर एक पृथ्वीवाचक जम्बू वृक्ष है और उस जम्बू वृक्ष की मुख्यता के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप रखा गया है। इस जम्बूद्वीप मे जो कि गोल है, जिसके बीच मे ६ पर्वत पडे है उनके कारण इसके ७ भाग हो गए है। जो ७ क्षेत्रो के नाम से कहे जाते हैं, उनमे सबसे बीच का जो क्षेत्र है उसका नाम है विदेह क्षेत्र। उस विदेह क्षेत्र मे सबसे बीच मे याने मेरू पर्वत के आसपास उत्तम भोग भूमि की रचना है। तो मेरू पर्वत के उत्तर भाग मे जो भोग भूमि है उसका नाम है उत्तर कुरु। उत्तर कुरु के बीच

मे केवल कुछ ऊँचाई को लिये हुये एक गोल क्षेत्र है जो ५०० योजन लम्बा-चौडा है और इसी के अनुसार इससे तिगुणा उसकी परिधि है, इसे जगती कहते हैं। यह जगती ऊपर उठती गई और कम-कम होती गई। तो यह मध्य मे १२ योजन मोटी हो गई। और ऊँचे चलते-चलते दो कोश की मोटी रह गई। यह सब एक वेदिका को घेरे हुए है। उसके ठीक बीच मे एक नाना रत्नो का पीठ है जो ८ योजन का लम्बा है, चार योजन का चौडा है और इतना ही ऊँचा है, वह १२ वेदिकाओ से घिरा हुआ है। इन सब वेदिकाओ के चारो दिशाओ मे चार-चार द्वार हैं। इन सबके बीच मे सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष है। जम्बू द्वीप के बीच रहने वाले मेरू का नाम भी सुदर्शन है और उस मेरू के पास उत्तर दिशा मे जो एक पृथ्वी काय का जम्बू वृक्ष है, वृक्ष क्या, वह तो एक पृथ्वी है, मगर इसका आकार ऐसा है कि जैसा जम्बू वृक्ष का आकार होता है, इस वृक्ष पर कुछ अकृत्रिम चैत्यालय भी है। यह एक ठोस बज्रमय पृथ्वी का बना हुआ है। तो वह सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष जिसका तना दो योजन का ऊँचा है, जिसका फैलाव ६ योजन का ऊँचा है, मध्य मे ६ योजन चौडा उसका गोल मण्डल है, ऐसे वहा अन्य १०८ जम्बू वृक्ष और हैं जहाँ पर देव-देवियो का विहार होता है, बडा सुरम्य स्थान है, इस जम्बू वृक्ष के योग से इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप पडा।

जम्बू द्वीप को घेरकर जम्बू द्वीपसमासमेतसमस्त तिर्यंकलोक के विस्तार का दिग्दर्शन—उस जम्बू द्वीप को घेरे हुये लवण समुद्र है, जम्बूद्वीप जहा समाप्त होता है, गोल आकार वाला है थाली की तरह चिपटा है। जम्बूद्वीप की सीमा जहाँ समाप्त होती है चारो तरफ गोल एक वेदिका बनी हुई है, उसके बाद लवण समुद्र शुरू होता है। इसका नाम लवण समुद्र क्यो रखा कि इसका जल खारा है। खारे गुण वाले जल के सम्बन्ध से इस समुद्र का नाम लवणोद पडा। लवण और उदक, उदक शब्द की सिद्धि होने से यहाँ समास में उद रह गया। नमक की तरह खारा जल जहाँ है उसे लवणोद कहते हैं। सूत्र मे शब्द दिया है—जम्बूद्वीप लवणो दादय। इसमे तीन शब्द हैं—जम्बूद्वीप, लवणोद आदि। समास होने पर अर्थ हुआ कि जम्बूद्वीप और लवणोद है आदि मे जिसके ऐसे अनेक द्वीप समुद्र हैं। जम्बूद्वीप तो द्वीप हैं और लवणोद समुद्र है, इस तरह से आगे-आगे जितने द्वीप समुद्र हैं, उन समुद्रो के बाद द्वीप घेर करके उसके बाद समुद्र, उसके बाद द्वीप ऐसे र-घेर घेकरके असख्याते द्वीप समुद्र पाये जाते हैं, उनका नाम बडा शुभ है। लोक मे जैसे अच्छे नाम होते हैं वैसा ही अच्छा नाम है उनका। जैसे प्रथम ७ द्वीप और ८ समुद्र के नाम देखिये—सब द्वीप समुद्र के नाम तो रखे ही नही जा सकते, क्योकि ये असख्याते हैं फिर भी प्रारम्भ के ८ द्वीप समुद्र के नाम और अन्त के ८ द्वीप समुद्र के नाम यहाँ पाये जाते हैं तो शुरू के जो द्वीप समुद्र हैं व इस प्रकार हैं जम्बू द्वीप, लवणोद, घातुकी खण्ड, कालोद, पुष्करवर, पुष्करोद, वारुवीवर, वारुणोद, क्षीरवर, क्षीरोद, घृतवर, घृतोद, इक्षुवर, इक्षुद, नन्दीश्वरवर, नन्दीश्वरोद इन द्वीप समुद्रो के जैसे-जैसे नाम हैं उनका जो अर्थ है, वैसी ही उनकी विशेषता है। इस प्रकार असख्याते द्वीप समुद्र पाये जाते हैं जिनमे अन्तिम द्वीप का नाम है स्वयभूरमण द्वीप। और अन्तिम समुद्र का नाम है स्वयभूरमण समुद्र।

लोक के प्रमाण का दिग्दर्शन -इससे कुछ आगे का क्षेत्र भी त्रिर्यग्लोक मे है। ये सब द्वीप समुद्र कितने असख्याते हैं? उसका प्रमाण है कि ढाई सागर प्रमाणकाल मे जितने समय होते हैं उतनी सख्या मे द्वीप समुद्र हैं। बहुत असख्याते हैं। जब एक सेकेण्ड मे कितने समय होते हैं? वे ही ही अनगिनते हैं तो फिर मिनट, फिर घण्टा, दिन, रात, हजार वर्ष, अरब वर्ष, पल्य, कोडा-कोडी पल्य, सागर, ढाई

मागर—तो वहुत समय होता है, उस ढाई सागर प्रमाण मे जितने समय हो उतने द्वीप समुद्र हैं। अब इससे अन्दाज लगा सकते हैं कि जम्बू द्वीप तो एक लाख योजन के विस्तार का है और उससे दूना समुद्र, उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र, ये तो दूने दूने चले गये हैं और हैं ये सब उतने असख्यात कि ढाई सागर प्रमाण काल मे जितने समय होते, उतने। तो अब कितना बडा क्षेत्र हुआ ? यह सब क्षेत्र एक राजू से भी कुछ कम है. और ऐसा ऐसा एक राजू चौडा मोटा माने उसे कहते हैं एक घनराजू। इस तरह ३४३ घनराजू प्रमाण लोक है। लोक की रचना इस ढग से है कि जैसे मानो ७ आदमी एक समान ऊँचाई वाले एक के पीछे एक खडे हो पैर फैलाकर, हाथो को कमर पर रखकर, तो जो उनका सस्थान बना उस तरह का लोक का सस्थान है। तो जब सामने से देखते हैं तो नीचे फैला हुआ है लोक, बीच मे सिकुडा है कुछ और ऊपर जाकर फैला है, फिर सिकुड गया, पर पीछे देखो तो सब जगह ७-७ राजू मोटा है, लोक मे उस स्थान को परखिये जहाँ चौथा आदमी खडा है, उस चौथे आदमी के मानो गर्दन प्रमाण नीचे तक का जो क्षेत्र है उसका नाम त्रसनाली है। इस त्रसनाली मे ही नीचे नरको की रचना है और मेरु पर्वत के आस-पास यिर्यक लोक की रचना है। इस तिर्यक लोक मे ये असाख्याते द्वीप समुद्र हैं। अब बतलाते है कि असख्या से द्वीप समुद्र किस आकार मे पडे हुए है ?

द्विर्द्विर्विष्कम्भा पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥

ये द्वीप और समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले और पहले-पहले को बेढे हुए चूडी के आकार वाले है। दूने-दूने विस्तार वाले, अर्थात जितना विस्तार जम्बूद्वीप का है उससे दूना विस्तार लवण समुद्र का है। जितना लवण समुद्र का विस्तार है उससे दूना धातुकी खण्ड का है। इस तरह दूने-दूने विस्तार वाले द्वीप समुद्र चलते गये हैं और वे पहले-पहले को बेढे हुए हैं। लवणसमुद्र ने जम्बूद्वीप को बेढा है, आखिरी समुद्र ने आखिरी द्वीप को बेढा है। उसके भीतर जो और समुद्र हैं उसे द्वीप ने बेढा है, याने जम्बूद्वीप को छोडकर बाकी समस्त द्वीप समुद्र चूडी के आकार की तरह गोल-गोल हैं। विशाल विष्कम्भ वाले है। बीच मे उसकी रचना नही है। इस द्वीप समुद्र की रचना अटपट नही है, किसी भी दिश मे कही कोई द्वीप हो, कही कोई समुद्र हो ऐसा नही, किंतु वे सब एक दूसरे का बेढ करके बने हुए हैं इसीलिये सूत्र मे पूर्व-पूर्व परिक्षेपिण शब्द दिया है। यह अन्य आकार मे नही है कि कोई द्वीप चौडा हो, तिखूटा हो, कोई समुद्र और ढग का हो, वे सब गोल आकार मे हैं, इसी कारण सूत्र मे बलयाकृतया शब्द दिया है चूडी के आकार वाले। ये असख्याते द्वीप समुद्र अपने से पहले वाले द्वीप और समुद्र को घेरे हुए ये सब द्वीप समुद्र हैं, और वे पहले से आगे-आगे दूने-दूने विस्तार वाले हैं। यहाँ तक जो कहा गया सो समझ बने लेकिन जब तक यह न बताय जाय कि जम्बूद्वीप कितने विस्तार का है तब तक आगे के द्वीप समुद्र का विस्तार नही समझा जा सकता। दूने-दूने विस्तार वाले हैं, पर है कितने बडे ? यह बात तब ही जानी जायेगी जब जम्बूद्वीप का विस्तार बताया जाय। तो अब जम्बूद्वीप का ही विस्तार बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ॥९॥

जम्बूद्वीप के स्थान आकार विस्तार आदि का दिग्दर्शन—उन समस्त द्वीप समुद्रो के बीच मे जम्बूद्वीप है, जिस जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। यह जम्बूद्वीप चूडी के आकार नही है, किंतु थाली के आकार है। यह तो सबके मध्य मे है ना इसलिए थाली के आकार है। उस जम्बूद्वीप के ठीक बीच मे मेरुपर्वत है, इसी कारण जम्बूद्वीप को मेरुनाभि कहा गया है याने मेरु है

नाभि मे जिसके, ऐसा जम्बूद्वीप और यह गोल है। अच्छा, जम्बूद्वीप को बताया गया है कि सबके बीच मे जम्बूद्वीप है। साक्षात तो लवण समुद्र के बीच मे है जम्बूद्वीप, मगर जब सब द्वीप समुद्र पूर्व-पूर्व से घिरे हुए हैं तो उसमे यह भी कह सकते कि समस्त द्वीप समुद्रो के बीच मे जम्बूद्वीप है। तो जम्बूद्वीप का विस्तार कितना हुआ ? एक लाख योजन का। यह सूची विस्तार है, जिसे डाईमेटर कहते याने सीधा विस्तार। इसको परिधि अगर खोजी जाये कि यह आखिर कितना गोला है ता इसकी परिधि ३१६२२७ योजन है और उससे इतना और अधिक ३ कोश १२८ धनुप १३, इसके अतिरिक्त आधा अ गुल और है और थोडा और अधिक है, इतना जम्बूद्वीप का परिधि क्षेत्र है। इस जम्बूद्वीप से भिडी हुई एक वेदिका है अथवा जगती कही गई है, जो आधा योजन की गहरी है, ८ योजन की ऊँची है और मूल मे, मध्य मे, अन्त मे क्रम से १२ योजन, ८ योजन और ४ योजन की मोटी है, वज्रमय है, बैडूर्यमणि से रचित है, जिसके बीच मे सभी रत्न पडे हुए हैं। ऐसी वेदिका है जिसके चारो दिशाओ मे चार बडे द्वार हैं, जिनका नाम विजय, वैजन्त, जयन्त और अपराजित हैं। इन द्वारो का परस्पर मे कितना अन्तर है ? विजय और वैजयन्त का अन्तर ७९०५२ योजन तथा आधा योजन तथा पाव योजन और आधा कोश, कोश का चतुर्थ भाग ३२ धनुप तीन अ गुल और एक अ गुल का चौथा भाग और इसके अतिरिक्त कुछ अधिक आधे अ गुल का चौथा भाग इतना अन्तर है एक द्वार से दूसरे द्वार के बीच मे। ऐसो उस सुन्दर रमणीक वेदिका के बीच जम्बूद्वीप की समस्त रचना है। जम्बूद्वीप समस्त द्वीप समुद्रो मे एक बडी महिमा के साथ गाया जाता है। ज्योतिप मडल जितना है वह सब इस जम्बूद्वीप मे रहने वाले सुदर्शन मेरु की परिक्रमा देते हैं, आदिकविशेषताओ के कारण जम्बूद्वीप एक अधिक महनीय द्वीप विशेष है।

मोक्ष शास्त्र नाम की सार्थकता—इस ग्रन्थ का नाम है तत्त्वार्थ सूत्र। इसका दूसरा नाम है मोक्षशास्त्र। जिसे बडी श्रद्धा से लोग पढते हैं, प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को प्राय करके महिलाए पाठ करती हैं। दश लक्षण के दस दिनो मे जिसका प्रतिदिन पाठ होता है। एक-एक दिन मे एक-एक अध्याय का अर्थ होता है, यह है वह तत्त्वार्थ सूत्र। इसका नाम तत्त्वार्थसूत्र क्यो है कि तत्त्व सहित अर्थ का जिसमे वर्णन है, इसलिए इसका नाम है तत्त्वार्थसूत्र। इसका नाम मोक्ष शास्त्र क्यो है ? ससार मे रुलने वाले जीवो को ससार के दुःखो से छुटकारा पाने का उपाय इस ग्रथ मे बताया है, इस इस कारण इसका नाम है मोक्षशास्त्र। सबसे पहले सूत्र क्या है ? सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्राणिमोक्षमार्ग, अर्थात सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये ससार ये दु खो से छूटने के उपाय है। इसे बताया जा रहा है इस सूत्र द्वारा ससारी जीवो को। उनको दु ख का पता है इसलिये दु ख कैसे मिलता उसका निदान क्या है इस बात को पहले नही कहा। दूसरी बात यह है कि पहले अगर दु ख की बात कह देते तो ये ससारी जीव पहले से ही घबडा जाते, दु ख की बात सुनना कोई पसद नही करता। तो उस दु ख के विस्तार की बात पहले नही कही, किंतु सीधा मोक्ष का उपाय क्या है यह बात कही। कोई थोडा आराम मिले, थोडा विश्वास मिले, थोडी सुबुद्धि की बात कही जाये। पीछे बतायेंगे कि दु ख क्या है। यो ही पहले-पहले मोक्ष मार्ग की बात कही।

सम्यक् प्रकाश—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ही मोक्ष का मार्ग है। सम्यग्दर्शन मायने उसका एक निष्पक्ष रूप लक्षण कि अपने आत्मा का जैसा अपने आप सहज स्वरूप है, स्वभाव है, याने जो मैं स्वय अपने आप पर सम्बन्ध बिना अपने आप जो कुछ हो सकता हूँ, जो मेरा स्वरूप है

जो स्वभाव है उस रूप अपना विश्वास करना उसे कहते है सम्यग्दर्शन। यहं सम्यग्दर्शन क्या है ? यह एक अमृततत्त्व है। यह ही बात अगर किसी मे आ जाये कि मैं एक ज्ञान मात्र तत्त्व हूँ, एक सहज चैतन्यस्वरूप हूँ और इस के प्रतिपक्ष मे जितनी बातें हैं वे सब एकदम हटें, श्रद्धा मे न रहे, जैसे मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, व्यापारी हूँ, पडित हूँ, मैं सुखी दु खी, मैं रक राव, मेरा गृह धन, गोधन, प्रभाव, ये आत्मा न जचे आखिर जीव यह अपना परिचय ही तो बना रहा है। सो अनात्मत्व की ये बातें न रहे केवल यह रहे कि मैं सारे जग से निराला, देह से भी निराला ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। यह बात श्रद्धा मे आये यही है सम्यक्त्व का परिचय। इतनी सी बातें पाये बिना इस जगत मे रुलना हो रहा है। एक अपने स्व-भाव के परिचय के बिना ससार मे रुलना हो रहा है। तो यह अन्तस्तत्त्व के दर्शन की बात किये जाओ। बस यही सार बात है और बाकी तो सब सासारिक खेल की बातें पुण्य पाप के अनुसार बातें होती है। उसमे बुद्धि न रखना चाहिये कि मैं करने वाला हूँ, मैं ऐसा हूँ, यह मेरा है। ये बाहरी बाते है, ये जीव को अ धेरे मे रखती हैं। जीव को अ धेरे से हटाकर उजेले मे पहुँचे इसके लिये मूल मन्त्र यही है कि अपना जैसा सहज स्वभाव है, स्वरूप है उस रूप अपनी श्रद्धा करे। हालत हो रही है इतनी सब कुछ, लेकिन यह क्यो हो रही है ? तो यह कर्म उपाधि का सम्बन्ध है। निमित्त नैमित्तिक योगवश हो रहा हो है। पदार्थ सब अपने-अपने मे परिणमते हैं मगर जब भी विकार अवस्था होती है तो यह पर सन्निधान बिना नही हो रही है।

सम्यग्ज्ञान की कला का लक्ष्य अन्तस्तत्त्व—हो रही है विभाव की इतनी सारी गडबड पर गडबड होने पर भी हमारे ज्ञान मे ऐसी कला है, ऐसी महिमा है कि हम उस गडबड को उपयोग मे न ले और अन्तःप्रकाशमान जो आत्मा का सहज स्वरूप है उसको ज्ञान मे लें, आत्मानुभूति का यही उपाय है, उस गडबड को ध्यान मे न ले। गडबड नही है यह बात नही कह रहे। सबके होती है। हम मनुष्य भव मे हैं, इसको मना नही किया जा रहा, पर ज्ञान मे एक ऐसी कला है कि वह इस अव-स्था को अपने उपयोग मे न ले और अपना जो एक सहज स्वरूप है उसको ज्ञान मे लें। यद्यपि यह बात कठिन है लेकिन सम्भव है। ज्ञान के उपयोग की ही तो बात है। जब हम यह देखते हैं कि ज्ञान मे किसी को बसा लेते है, उसकी धुन हो जाती है तो हमे यह ध्यान मे नही रहता कि हमारा कौन है, क्या है ? बहुत सी बात ध्यान मे नही रहती। जैसे एक दृष्टात लो। मानो आप अपने कमरे मे बैठे हैं। आँगन मे गेहूँ फैले है सूखने के लिए, क्यो कि मानो कल उन्हे पीसना है। अचानक तेज बारिस आ गई तो आप उन्हे उठाने के लिए झट दौडते हैं। मान लो आप के कमरे का दरवाजा था नीचा। और उस तेजी से दौडते हुए मे दरवाजे का चौखट आप के सिर मे लग जाए, सिर मे खून भी आ जाए फिर भी आप को उसका पता नही पडता। क्यो पता नही पडता ? इसलिए कि आपका ज्ञान उन गेहुँओ मे गड गया। आप का उपयोग उन गेहुँओ की तरफ लग गया, सिर की तरफ नही रहा, इससे उसकी खबर नही रहती। ठीक इसी तरह यह ज्ञान जब आत्म स्वभाव की ओर गड जाता है तो वहाँ फिर इस शरीर तक का भी भान नही रहता। मैं एक चैतन्यस्वरूप ज्ञानमात्र हूँ, बस इसी की तो साधना करना है। इसी के सहारे अच्छा ध्यान बनेगा, भव-भव के कर्म कटेंगे। इसके साथ सयम है तो सयम है और आत्मज्ञान बिना जो सयम है वह एक प्रकार का परिचय तो है मगर वह सम्यक्चारित्र नही। अब जाना अपने आप को कैसा अनुभव करना। सबसे बडा बाधक है तो भीतर मे जो अहभाव बसा है वह बाधक है। वह कैसे निकले ? पर्याय मे अहभाव पडा है। जब-तक पर्याय

मे अहभाव लेशमात्र भी रहता है तब तक यह जीव ज्ञान मे नही है। यह अहभाव कैसे मिटे ? इसके मिटाने की तरकीब क्या है ? क्या ढेला पत्थर मार कर मिटाया जायेगा ? नही ! अरे इसके मिटाने की तरकीब यही है कि वस्तु के स्वरूप का सही परिचय करना है। जैसा कि वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से है उस तरह से निरखना है। इस तरह के निरखने मे बडी समझ के बाद भेदविज्ञान जागता है। प्रत्येक पदार्थ एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न है। फिर भेद विज्ञान जगने से यह फल मिलेगा कि अनात्म तत्त्वो से यह उपेक्षा कर देगा। और फिर अपने जो आत्मा का वास्तविक रूप है उस रूप अपने को मानेगा, अनुभवेगा, बस यह जो वृत्ति है, यह जो उपाय है, यह ही ससार के दु खो से छुटकारा पाने का एक उपाय है। यही है सम्यग्दर्शन। इसके पाने के लिए यो समझिये कि इज्जत पोजीशन धन जिसके कारण इसका नये-नये ढग से व्यवहार चलता है। अहकार, ममकार —ये मेरे हैं, कुटुम्ब के नाते जगते, ये मेरे हैं, दूसरे के हैं, या अपनी मित्रता के नाते से जगते, ये मेरे हैं ये गैर हैं। तो कभी ज्ञान के नाते से भी तो देखो। जैसा हम बोलें वैसा माने तो वह मेरा और जैसा हम बतायें वसा न माने तो वह गैर। याने इस मिथ्यात्व की, इस मोह की कितनी गहरी जड बना रखी है, इसके निकले बिना कोई चाहे कि हमारा उद्धार हो जाये तो नही हो सकता।

आत्मानुभवन के पौरुष मे अनात्मतत्त्व के परिहरण व अन्तस्तत्त्व मे स्वानुभवन के उद्यम— आत्मानुभव कैसे बने, इसके लिये सारी इज्जत पोजीशन खाक मे मिलानी होगी। एक बालकवत सरल बनना होगा। अहभाव न रहे ऐसी वृत्ति बने तो उसे आत्मा के निकट पहुँचने का अवसर है। अनन्त काल के लिए ससार के सारे दु खो से छूट जाने की बात महान है, पर ऐसे महान लाभ के लिए कितना बलिदान हमको करना चाहिये। जो मान रखा है अनात्मतत्त्व रूप को अपना-अपना वह सारा का सारा बलिदान करना होगा तब उस महान तत्त्व का लाभ होगा। छोटी-छोटी बातो के लिए तो बडे सुभट बने हैं, बडे समझदार, हठवान नाना प्रकार की बातें मगर एक अन्त स्वरूप के जानने के लिये, इसके परिचय के लिये, अनुभव के लिये कैसा पौरुष करना चाहिये उसके लिगे बुद्धि नही जगती। बाहरी-बाहरी बातो के लिए तो बुद्धि बहुत जगती। तो मोक्ष का उपाय पाने के लिए कितना भेद विज्ञान का हमे काम पडा है। जब कोई इसके निकट आता है वह समझ पाता कि अभी हम कितना पीछे हैं ? किस पद मे हैं, किस जगह हैं अभी हमे कितना उठना है ? कितना जाना है। तो एक आत्मा के सहज स्वभाव को किस रूप मे अनुभव करना ? मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान ही ज्ञान हूँ, देखो पर्याय की बात यहाँ अभी ज्ञान मे नही लेना। पर्याय बिना कुछ रहता नही। जो है सो है, मगर यहाँ अपने को स्वभाव रूप मे परखे कि मैं कैसा हूँ। जैसा स्वभाव है अन्त प्रकाशमान है उस रूप अपने को निरखें कि मैं यह हूँ, और जो गुजर रही है, जो परिस्थिति है, जो बीत रही है उस रूप अपने को कबूल न करें। परतत्त्व है, मगर उसे आत्मा रूप न मानें। मैं ज्ञानमात्र हूँ, जब यह देखें तो यह ध्यान मे आएगा कि मेरे स्वरूप मे किसी अन्य का प्रवेश नही है, किसी भी पदार्थ के स्वरूप मे किसी दूसरे का प्रवेश नही है, नही तो वह चीज ही बिगड जाये। स्वरूप सबका अपना एक है, जब अपने को स्वरूप रूप मान लिया, देखो कुछ जबरदस्ती मान लें, फिर कुछ सहज मानने मे आएगा। एकीभाव स्तोत्र मे तो यह कहा कि हे प्रभो ! आपका ज्ञान करते-हमे ऐसा लगता कि एकदम हम तो आप मे समा गये, इस प्रकार का जब ध्यान बनता है तो एक अद्भुत तृप्ति उत्पन्न होती है। इससे यहाँ निर्णय करें कि स्वरूप साम्य मे लगा हुआ ध्यान जब कुछ

तृप्ति देता है तो यदि ऐसा अनुभव बनाया जा सके कि मैं अपने स्वरूप मे तन्मय ज्ञानमात्र हूँ तो क्या अपने मे अनुभव नही किया जा सकता ? निज मे अपना ज्ञान न पहुँचा सकू यह कैसे हो सकता ? मैं तो ज्ञानमात्र हूँ।

सम्यक्त्व लाभ के लिये उचित मनन—मेरे स्वरूप मे किसी अन्य का प्रवेश नही। जब अन्य का प्रवेश नही और स्वरूप ही स्वरूप देख रहे है तो मुझे भार क्या ? जब इस दृष्टि मे लग रहे है तो स्वरूप मे भार नही। स्वरूप अपना है। यह अपने आपके परिचय की बात है। मैं ज्ञानघन हूँ। घन कहते हैं वही वही, उसके अतिरिक्त दूसरी बात नही। मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूप मे अपूर्णता नही, याने मेरी जो सत्ता बनी है तो ऐसा नही कि मैं आधा बना, आधा अभी नही बना। आधा तो कोई चीज होती ही नही। लोग कहते कि अभी हमारा मकान आधा बना है पर जितने परमाणु है वे सब पूरे हैं, अधूरा कुछ नही हुआ करता। जो चीज अधूरी है वह कुछ है ही नही। तो जब अपने आपके स्वरूप को देखा कि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ तो वहाँ यह दृष्टि होगी कि मैं अपूर्ण नही। स्वरूप की बात कह रहे हैं, परिणति की बात नही कह रहे। जैसे कोई मकान बना रहा तो वह मकान को दृष्टि मे रखकर कहेगा कि अभी हमारा मकान अधूरा पडा है, पर वस्तुओ को दृष्टि मे रखकर देखे तो अधूरा कुछ नही हुआ करता। तो ऐसे ही हम ससार मे हैं और हमे मोक्ष चाहिये। हमको उपाय बनाना है, ऐसी दृष्टि रखेगे तो अधूरा लगेगा कि हमे तो अभी बहुत काम करने को पडा है, मगर यहाँ तो स्वरूप की निगाह से बोल रहे हैं। मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूप में अपूर्णता नही अत: मैं कृतार्थ हूँ। मेरे करने को क्या रहा ? जब मेरी सत्ता मे कमी हो तो पूरा नही बन पाया तो कुछ करना चाहिये जिससे कि पूरा हो जाऊँ। स्वरूप की बात कह रहे हैं ऐसा तो है नही। स्वरूप परिपूर्ण है इसीलिये कृतार्थ हूँ। मै सहज आनन्द स्वरूप हूँ। स्वरूप को देखो—स्वरूप मे कष्ट कहाँ पडा ? स्वरूप ज्ञानरूप है। ज्ञान ज्ञानरूप वर्तता रहता है। स्वरूप की बात। उसमे कष्ट का कहाँ नाम है ? स्वभाव से कहाँ कष्ट आता है ? औपाधिक भाव की बात गुजर रही है उसे नजर मे न लें। स्वरूप को देखना। मेरे मे कष्ट नही, अत: स्वयं तृप्त हू। स्वरूप की बात है, ऐसी भीतर मे अपने आपके स्वरूप मे दृष्टि रहे बस यही सम्यक्त्व लाभ का उपाय है।

भरत हैमवत हरिविदेह रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षा क्षेत्राणि ॥१०॥

जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्रो मे प्रथम क्षेत्र भरत क्षेत्र का परिचय— इस जम्बूद्वीप मे सात क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप एक गोल घेरे वाला है जैसा कि ऊपर के सूत्र मे कहा गया है और उसमे बीच मे ६ बडे पर्वत पडे हुये हैं जिनका नाम है कुलाचल। तो उन ६ पर्वतो के कारण उस गोल जम्बूद्वीप के ७ भाग हो जाते हैं, जिसमे दक्षिण की ओर से उत्तर की ओर तक इस प्रकार के नाम हैं—भरत, हैमवत, हरि विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। यहां पहले भरत क्षेत्र का कुछ वर्णन किया जा रहा है। प्रथम यही जिज्ञासा होगी कि इस क्षेत्र का नाम भरत क्यो रखा गया। तो भरत जो नाम रखा है तो मुख्य उत्तर तो यह है कि यह एक अनादि से प्रसिद्ध रुढ नाम चला आया है, पर इस युग मे जिसके कारण उसकी प्रसिद्धि हुई है उसका कारण यह है कि यहाँ कर्मभूमि की आदि मे चक्रवर्ती राजा भरत हुये थे जो प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव के पुत्र थे। तो उन क्षत्रिय भरत चक्रवर्ती के सम्बन्ध से इस क्षेत्र का नाम भरत पडा है। इस भरत क्षेत्र मे जो कि पहले कुलाचल हिमवान पर्वत और जम्बूद्वीप की वेदियो के बीच मे है विजयार्द्ध पर्वत है, और हिमवान पर्वत से गगा और सिंधु ये दो नदिया निकली

हैं, जिस कारण से भरत क्षेत्र के ६ खण्ड हो जाते हैं। जिनमे मुख्य खण्ड तो आर्य खण्ड है, शेष ५ म्लेच्छ खण्ड हैं। इस आर्य खण्ड मे एक विनीता अथवा अयोध्या नाम की नगरी है, जिसका विस्तार १२ योजन लम्बा, ६ योजन चौडा है। उस नगरी मे प्रथम तीर्थंकर आदि देव हुये और उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती हुए। ये ६ खण्ड के अधिपति थे। जो तीन खण्ड के अधिपति होते हैं वे नारायण कहलाते हैं और जो ६ खण्ड का अधिपति होता है वह चक्रवर्ती होता है। तो अवसर्पिणी काल मे याने इस कलियुग के प्रारम्भ मे कर्म भूमि के आदि मे जब राज्यो का विभाग बना और राजाओ का विधान बना उस समय मे सबसे प्रथम राज्य भार भरत चक्रवर्ती का था, ऐसे उस समय के प्रधान चक्रवर्ती भरत के सम्बन्ध से इस क्षेत्र का नाम भरत क्षेत्र हुआ। यह भरत क्षेत्र हिमवान पर्वत और तीनो ओर समुद्र है, इनके बीच मे है और गगा, सिंधु नदी के कारण एव विजयार्द्ध बीच मे होने के कारण यह क्षेत्र ६ भागो मे विभक्त हो गया है।

विजयार्ध नाम की सार्थकता के वर्णन के साथ विजयार्धगिरि का परिचय—अब इस क्षेत्र के बीच मे जो विजयार्द्ध पर्वत है उसका नाम विजयार्द्ध क्यो रखा गया? क्यो प्रसिद्ध हुआ? इसका कारण सुनिये। कारण यह है कि चक्रवर्ती जब एक ओर से तीन खण्ड का विजय प्राप्त कर लेता है तब आधी विजय मानी जाती है, और इस पर्वत के दूसरी तरफ के रहने वाले ३ खण्डो पर विजय पा लेता है तो वह चक्रवर्ती कहलाता है। तो यह पर्वत आधी विजय, पूरी विजय इनके विभाग से बना है इस कारण इस पर्वत का नाम विजयार्द्ध पर्वत है। यह विजयार्द्ध पर्वत एक चांदी जैसी धातु का पर्वत है, इसका विस्तार ५० योजन है, ऊँचाई २५ योजन और अवगाह मायने जमीन के नीचे, यह एक कोश अधिक ६ योजन है। यह विजयार्द्ध पर्वत पूर्व की ओर समुद्र को छुवे हुए है और पश्चिम की ओर भी समुद्र को छुवे हुये है याने जम्बूद्वीप के चारो ओर लवण समुद्र है। तो यह छहो कुलाचल और विजयार्द्ध ये लवण समुद्र के दोनो कोरो को छुये हुए है। जिनमे विजयार्द्ध पर्वत तो कुछ समुद्र की तरफ भी बढा हुआ है जिस पर कुभोगभूमियो की रचनायें हैं। भरत क्षेत्र के अन्दर पूरब पश्चिम तक लम्बा जो विजयार्द्ध पर्वत पडा हुआ है सो उसके दोनो कोरो मे चू कि उत्तर दक्षिण मे कमती बढती है, उत्तर की ओर की लम्बाई अधिक है और दक्षिण की ओर की लम्बाई कम है। तो इस स्थिति मे दोनो किनारो पर उसकी बाहू बन जाती है तो पूरब और पश्चिम के किनारे पर विजयार्द्ध की बाहू ४८० योजन और १६/१६ भाग तथा कुछ अधिक आधा योजन इतने विस्तार वाला है। यह विजयार्द्ध का वर्णन इस प्रयोजन से किया रहा था ताकि चक्रवर्ती के दिग्विजय की बात विशेषतया मालूम हो सके कि वह किस तरह से विजयार्द्ध को गुफाओ मे से पार करके ६ खण्ड पर विजय प्राप्त करता है।

विजयार्ध पर्वत व उसकी गुफाओ का सक्षिप्त परिचय—इस विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर किनारे की डोरी १०७२० योजन तथा १२/१६ भाग तथा कुछ अधिक है। इस डोरी के मायने यह है कि जब एक गोल जम्बूद्वीप मे दक्षिण की ओर जरा से हिस्से मे विजयार्द्ध पर्वत पडा है तो उसका आकार अब धनुष की तरह बन गया। मानो विजयार्द्ध पर्वत तो डोरी की तरह सीधा लम्बा है और उस किनारे के जो जम्बूद्वीप की वेदिका है वह एक धनुप का बास बन गया। तो इस तरह धनुषाकार हो जाने से विजयार्द्ध पर्वत को एक डोरी का रूप बताया है। तो चू कि विजयार्द्ध के उत्तर की तरफ लम्बाई अधिक है इसलिये उसकी डोरी अधिक विस्तार की है और फिर उस डोरी को छुए हुए धनुष की

पीठ १०४७३ योजन तथा १५/१६ भाग है और जरा सा अधिक है। अब विजयार्द्ध के दक्षिण तरफ की डोरी का विस्तार सुनो। यह डोरी उत्तर की डोरी से कम है, यह है, ६७४८ योजन तथा एकयोजन का १२वां भाग एव थोडा और अधिक है। इस डोरी के धनुष का पीठ ६७६७ योजन तथा कुछ अधिक है। इस विजयार्द्ध पर्वत के दोनो किनारो पर उत्तर दक्षिण में दोनो ही किनारो पर पूरब पश्चिम की ओर लम्बे वन खण्ड है, जो वन खण्ड सर्व ऋतु के उत्पन्न हुए फल और फूल और उत्तम वृक्षो से सहित हैं, वे वनखण्ड बेदियो से घिरे हुए है, जिनकी लम्बाई विजयार्द्ध पर्वत के बराबर है और चौडाई आधा योजन है। इस तरह सुन्दर वनखण्ड उस विजयार्द्ध पर्वत के दोनो ओर है। इस पर्वत मे से दो गुफायें आर की पार हुई हैं जिन गुफाओ मे से चक्रवर्ती विजय करने के लिए निकलता है इन गुफाओ के नाम हैं—तमिश्रखण्ड और प्रपात, विजयार्द्ध पर्वत जितना चौडा है उतनी ही लम्बी ये गुफायें हैं याने उत्तर दक्षिण की ओर ५० योजन लम्बी गुफायें हैं और पूरब पश्चिम की ओर १२ योजन की चौडी गुफायें है और इनकी ऊँचाई ८ योजन की है। उत्तर और दक्षिण दोनो ओर दो दरवाजे हैं जिन पर वज्रमय कपाट लगे हैं, जिन कपाटो को चक्रवर्ती निधि रत्नो के प्रयोग से खोलता है और खोलने पर इतनी गरम विषैली हवा निकलती है कि चक्रवर्ती को मय सेना के कुछ काल तक बाहर ही रुकना पडता है, जब गुफाओ का वातावरण शुद्ध हो जाता है तब चक्रवर्ती मय सेना के उन गुफाओ मे से निकलता है। इन गुफाओ के वज्रमय कपाट ६ १/४ (सवा छह) योजन के चौडे हैं। एक कोश के मोटे और ८ कोश के ऊचे हैं। इन गुफाओ मे से गगा और सिधु नदियाँ निकली हैं जो हिमवान पर्वत से गिरी है और इन गुफाओ से निकलकर लवण समुद्र मे जाकर गिरी हैं। ये गगा और सिंधु नदी बहुत बडे विस्तार वाली है और इनका नामजोसार्थक है वह यह है कि गगा को तो कहते हैं उन्मग्नजला अर्थात इस नदी के जल के कोई एक तृण पत्ता आदिक कुछ भी डाला जाय तो वह ऊपर को फिका हुआ सा डोलता है और सिंधु नदी को कहते हैं निमग्नजला, इसमें तृण आदिक कुछ भी डाला जाये तो वह भीतर को ओर प्रवेश करता है। इस तरह यह विजयार्द्ध पर्वत कहा गया है।

विजयार्ध पर्वत के ऊपर की रचनाओ का सक्षिप्त परिचय—विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर क्या-क्या रचनायें हैं उसकी भी थोडी जानकारी करें। इस विजयार्द्ध पर्वत परपृथ्वी तल से १० योजन ऊँचे दोनो किनारो पर १० योजन के विस्तार वाला एक कटाव है, जो पर्वत के बराबर लम्बा चला गया है। उन दोनो कटावो पर विद्याधर रहा करते हैं तब उत्तर तरफ के कटाव पर विद्याधरो की श्रेणिया हैं जहाँ पर विद्याधरो के ६० नगर हैं और दक्षिण तरफ के कटाव पर विद्याधरो के ५० नगर है। इन नगरो मे विद्याधर जो रहते हैं वे कर्मभूमियो मे उत्पन्न हुए मनुष्यो की भाति है और वे खेती वाणिज्य आदिक षट्कर्मो से ही अपनी आजीविका करते हैं। सिर्फ विशेषता यह है कि उन विद्याधरो मे मौलिक विद्यायें चली जाती हैं प्रज्ञप्ति आदिक विद्याओ के वे धारी होते हैं, तो विद्याधरो के नगर ऊपर १० योजन और चल कर दो कटाव और हो जाते हैं। जो १० योजन के विस्तार वाले हैं। पर्वत के समान जिनकीलम्बाई है, इस भाग पर व्यन्तरदेव रहते हैं, और उन व्यन्तरो श्रेणियो मे इन्द्र, लोकपाल, सोम, यम, वरुण, वैश्रण और आभियोग्य, व्यन्तर देवो के निवास है। इससे और ५ योजन ऊपर चलकर शिखर तक आ जाते हैं, जिस पर ९ कूट है, जिनमे पूरब दिशा मे जो कूट है वह सिद्धायतन कूट है, उसके ऊपर एक अकृत्रिम जिन मन्दिर बना हुआ है, जिसके द्वार पूरब उत्तर और दक्षिण मे हैं और उसके बाद पश्चिम की ओर ८ कूट हैं जो जिन मन्दिर की तरह के ही लम्बे चौडे हैं, उनमे

विशिष्ट जाति के देवो का निवास रहता है। जहाँ जिन मन्दिर है उस कूट का नाम है सिद्धायतन कूट और ये जो ८ कूट हैं इनका नाम है दक्षिणार्द्धभरत कूट, खण्डकप्रपात कूट, माणिकभद्र कूट, विजयार्द्ध कूट, पूर्णभद्र कूट, तमिश्रागुहा कूट, उत्तरार्द्ध भरत कूट और वैश्रवण कूट। इन कूटो पर जिन देवो के निवास हैं वे हैं क्रमश दक्षिणार्द्ध भाग देव, वृजमाल्य देव, मणिभद्र देव, विजयार्द्ध गिरिकुमार देव, पूर्णभद्र देव, कृतमाल देव उत्तरार्द्ध भरत देव और वैश्रवण देव। इन सब कूटो के होने से जो विजयार्द्ध पर्वत की ऐसी अनुपम शोभा हो जाती है कि जैसे मानो वह पर्वत का राजा हो, ऐसे इस विजयार्द्ध पर्वत से भरत क्षेत्र के दो भाग हो जाते हैं और गगा, सिंधु नदी के कारण ६ खण्ड हो जाते हैं। इन ६ खण्डो पर विजय प्राप्त की थी, इस कर्मभूमि की आदि मे भरत चक्रवर्ती ने जिसके नाम इस क्षेत्र का नाम प्रसिद्ध हुआ है भरत क्षेत्र।

जम्बूद्वीपस्थ हैमवत क्षेत्र का परिचय—भरतक्षेत्र के बाद उत्तर की ओर हैमवत नाम का दूसरा क्षेत्र है। इस क्षेत्र का नाम हैमवत क्यो पडा कि यह क्षेत्र हिमवान पर्वत से लगा हुआ है याने हिमवान पर्वत से दक्षिण की तरफ तो भरत क्षेत्र है और उत्तर की तरफ हैमवत क्षेत्र है। तो हिमवान पर्वत के निकट होने से इस क्षेत्र का नाम हैमवत क्षेत्र पडा है और यह क्षेत्र हिमवान और महा हिमवान इन दो पर्वतो के बीच मे है, याने हैमवत क्षेत्र के उत्तर की तरफ महाहिमवान पर्वत है। सो हिमवान महाहिमवान इन दोनो पर्वतो के बीच हैमवत क्षेत्र है जो बराबर पूरब और पश्चिम मे इतने लम्बे चले गये हैं कि जहा तक समुद्र मिलता है। इस हैमवत क्षेत्र के बीच मे एक गोल पर्वत है जिसका नाम है शब्दवान। यह पर्वत १००० योजन का ऊँचा है, २५० योजन का गहरा है याने नीचे जमीन मे है और ऊँचाई मे, नीचे मे, बीच मे सब जगह एक समान विस्तार वाला है। उसके बीच में तल भाग पर, स्वाती देवो के विहार करने का स्थान है।

जम्बूद्वीपस्थ हरिवर्ष क्षेत्र का परिचय—हैमवत क्षेत्र के बाद उत्तर मे हरिवर्ष नाम का तृतीय क्षेत्र है। जो क्षेत्र निषध और महाहिमवान इन दो पर्वतो के बीच मे है। अर्थात हरिवष नाम के क्षेत्र से उत्तर की ओर निषध पर्वत आता है। इस क्षेत्र का नाम हरिवर्ष इस कारण पडा कि हरि नाम है सिंह का। जैसे सिंह श्वेत होता है उसी रग के यहाँ मनुष्य होते हैं। ये मनुष्य स्थिर भोगभूमि मे रहते हैं अर्थात यह जो भोग भूमि है वह सदैव रहती है। हैमवत क्षेत्र भी भोगभूमि मे था। इस हरिवर्ष क्षेत्र के बीच मे एक गोलाकार पर्वत पडा है, जिसका नाम है विकृतवान। इसकी ऊँचाई वगैरह शब्दवान पर्वत की तरह है। इस पर्वत के ऊपर अरुणदेव का विहार स्थान है। इस क्षेत्र मे मध्यम भोगभूमि बताई गई है। जैसे कि भरत क्षेत्र मे जब दूसरा काल आता है उस समय जो मनुष्य तिर्यंचो के स्थान होते हैं वैसे स्थान इस भोगभूमि मे सदा काल रहा करते हैं।

विदेह क्षेत्र की अन्वर्थता—जम्बूद्वीप के बीचो बीच विदेह क्षेत्र है। यह विदेह क्षेत्र निषध पर्वत से उत्तर मे है और नील पर्वत से दक्षिण मे है अर्थात विदेह क्षेत्र से ऐरावत क्षेत्र की ओर नील है, भरत क्षेत्र की ओर निषध है और पूर्व पश्चिम मे समुद्र है। इस बीच महान विस्तार वाला यह विदेह क्षेत्र है। इसको विदेह क्यो कहते हैं ? तो विदेह का अर्थ है देहरहित। जिस क्षेत्र से मुनिजन सदैव देहरहित होते रहते हैं मुक्ति पाते हैं उस क्षेत्र का नाम विदेह है। विदेह के सम्बन्ध से उस देश का भी नाम विदेह पड गया। जिसके देह नही हैं अथवा कर्मबन्ध की सन्तान के विनाश के लिये देह होने पर भी जो देह मे शरीर सस्कार नही करते हैं ऐसे भव्य पुरुष विदेह कहलाते हैं।

यहाँ मुनिजन मोक्षमार्ग मे प्रयत्न करते हुए मुक्ति को प्राप्त करते रहते हैं इस कारण इस क्षेत्र को विदेह कहते हैं। यहा कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र से भी तो मुनि विदेह हो जाते है, मुक्ति प्राप्त करते हैं, देह के सस्कार नही करते, विरक्त रहते। फिर इस ही का नाम विदेह क्यो रखा गया ? इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि भले ही भरत क्षेत्र मे और ऐरावत क्षेत्र मे भी मुनिजन मोक्ष प्राप्त करते है किंतु हमेशा नही कर सकते। भरत और ऐरावत क्षेत्र मे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का चक्र चलता है। तो जब-जब चतुर्थ काल आता है तब-तब यहाँ मुक्ति प्राप्त होती है। किंतु विदेह क्षेत्र मे तो सदा धर्म का मोक्ष के मार्ग का सद्भाव है। धर्म का विनाश कभी नही है ऐसी उत्कृष्टता की अपेक्षा विदेह वास्तव मे वहाँ है, इसीलिए विदेह संज्ञा उस क्षेत्र मे रखी गई है।

विदेह क्षेत्र के दिशाओ की अपेक्षा से चार विभाग—जम्बूद्वीप एक गोलाकार है और एक लाख योजन की सूची वाला है। उसमे भरत, हैमवत, हरिक्षेत्र के बाद विदेह क्षेत्र आया है, जिसका विस्तार बहुत अधिक है। जैसे बताया था कि एक लाख योजन के १६० भाग करना, अब उनमे से जैसे एक भाग भरत क्षेत्र है। दो भाग हिमवान पर्वत है तो ऐसे ही विदेह क्षेत्र ६४ भाग प्रमाण है। वह विदेह जिसके बीच मे मेरु पर्वत है उसके ४ भाग हो जाते हैं। दिशाओ की अपेक्षा पूर्वविदेह, दक्षिण-विदेह, पश्चिम विदेह, उत्तर विदेह। पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह तो कर्म भूमि हैं वहाँ से मुनियो की मुक्ति सतत होती रहती है पर दक्षिण विदेह और उत्तर विदेह का जो थोडा भाग है, जो गजदत पर्वतो से घिरा है उस भाग मे उत्कृष्ट भोगभूमि है वहाँ सयम नही, वहाँ से मुक्ति नही। यहाँ एक आशका की जा सकती है कि ऐसा कहना कि मेरु के पूर्व मे पूर्व विदेह है। पश्चिम मे पश्चिम विदेह है। दक्षिण उत्तर के भी विदेह हैं। यह कहना कुछ व्यवस्थित नही बनता। कारण यह कि सूर्योदय जहाँसे होता है उसे पूर्व कहते हैं। तो जिस समय सूर्य निषध पर्वत से उग रहा है तो पश्चिम विदेह वाले को पश्चिम विदेह का पूर्वार्द्ध पूर्व बन गया। जब सूर्य नील कुलाचल से उगा करता है कही नील से उदय हुआ तो पूर्व विदेह का उत्तरार्द्ध पश्चिम बन गया। कभी एक भाग मे गजदन्त के निकट निषध से उदय हुआ तो पूर्व, पश्चिम दिशा नही बन पाती है। देखोकि पूर्व विदेह मे सूर्य नील पर्वत से उगता है और निषध पर्वत पर अस्त को प्राप्त होता है। तो इस प्रक्रिया से अब पूर्व मे नील हुआ, पश्चिम मे निषध हुआ और समुद्र दक्षिण मे हुआ। मेरु उत्तर मे हुआ और इसी प्रकार जब पश्चिम विदेह की बात देखते हैं तो वहा निषध पर्वत पर उदय होता है और नील पर्वत पर अस्त होता है। तो वहाँ पूर्व मे तो निषध कहलाया, पश्चिम मे नील कहलाया और दक्षिण मे समुद्र हुआ और उत्तर मे मेरु हुआ। इस प्रकार उत्तर विदेह और दक्षिण विदेह वह नही भी निश्चित दिशा मे बनता, क्यो कि उत्तर कुरु मे गधमादन नाम के पर्वत से उदय हुआ और माल्यवान पर्वत पर अस्त हुआ तो यहाँ गन्धमादन पूर्व मे हुआ, माल्यवान पश्चिम मे हुआ। नील दक्षिण मे हुआ। मेरु उत्तर मे हुआ। अब दक्षिण विदेह की और ही कथा सुनिये। देवकुरु मे सौमनस पर्वत से उदय होता, विद्युत-प्रभ पर्वत पर अस्त होता। तो यहा सौमनस तो पूर्व मे कहलाया, विद्युत्प्रभ पश्चिम मे हुआ। निषध दक्षिण मे, और मेरु उत्तर मे हुआ तो यहा कोई दिशा सही न बन सकी दिशा की अपेक्षा कभी कुछ पूर्व मे हुआ कभी कुछ पश्चिम मे हुआ। तब फिर यह सिद्धात कैसे सही उतरेगा कि विदेह के ऐसे चार दिशाओ के भाग है। इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि उस तरह सूर्योदय से हर जगह देखी

जाए तो दिशा सही नही बनती यह बात ठीक है, किंतु यह वर्णन तो भरत क्षेत्र की अपेक्षा से किया है विदेह मे बैठ कर दिग्विभाग यह नही बनाया जा रहा। इस भरत क्षेत्र मे सूर्योदय और सूर्यास्त के नाते से दिशाओ का विभाग बनाया गया है, फिर उस विभाग के अनुसार देखेंगे तो मेरु पर्वत से ये सब दिशायें सही बन जाती हैं।

जम्बूद्वीपस्थ उत्तर कुरु नामक योग भूमि का कथन—विदेह क्षेत्र के ठीक बीच मे मेरु पर्वत है, उसके पश्चिमोत्तर दिशा मे गध मालिनी है। इस देश के समीप रहने वाले देवारण्य वन से पूर्व मे गधमादन नाम का वक्षार (गजदत) पर्वत है जो उत्तर और दक्षिण दिशा मे लम्बा है, पूर्व और पश्चिम दिशा मे चौडा है जो अपने दक्षिण और उत्तर के कोने से मेरु और नील पर्वत को छू रहा है, जो दो बनखण्डो से सुशोभित है, मूल, मध्य व अग्र भाग मे सर्वत्र स्वर्णमय है, नील पर्वत के निकट ४०० योजन का ऊ चा है, १०० योजन का गहरा है अर्थात् पृथ्वी के अन्दर है, ऐसा वक्षार पर्वत है। वह प्रदेश वृद्धि से बढ-बढकर मेरू के निकट पाच सौ योजन ऊ चा व चौडा है तथा १२५ योजन गहरा है। फिर हीन होता जाता है और नील पर्वत के पास २५० योजन चौडा रहता है, जिसकी लम्बाई ३०९०२ योजन तथा ६/१९ भाग तथा कुछ अधिक है। उसके ऊपर मेरु के निकट १२५ योजन ऊ चा व चौडा एक सिद्धायतनकूट है, उसके उत्तर की ओर गधमादन, उद्कुरु, गध-मालि, स्फरिक, लोहिताक्ष व आनद नामक ६ कूट और हैं, जिसमे सिद्धायतनकूट मे तो अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं, और शेष ६ कूटो मे से स्फटिक व लोहिताक्ष इन दो कूटो पर दो दिक्कुमारी (भोमधरी व भोगवती) देविया रहती हैं उनके प्रास्तद हैं, शेष ४ कूटो पर देव निवास करते हैं। मेरु के उत्तर दिशा मे पूर्व की ओर नील से दक्षिण की ओर कच्छ नाम के देश से पश्चिम की ओर माल्यवान नाम का वक्षार पर्वत (गजदत) मिलता है उसके ऊपर भी मेरु के निकट एक सिद्धा-यतन कूट है, जिस पर जिनमन्दिर है, उसके उत्तर की ओर माल्यवत् उदक् कुरु कच्छ विजय सागर ९ कूट हैं जिनमे सागर व रजत २ कूटो पर सुभगा व भोग मालिनी दिग्कुमारिया निवास करती हैं। शेष ७ कूटो मे देव निवास करते हैं। मेरु से उत्तर मे, गधमादन से पूर्व मे, नील से दक्षिण मे, माल्य-वान से पश्चिम मे, उत्तर कुरु है। ये सब भोग भूमियाँ चल रही हैं, जिनमे उत्कृष्ट भोग सामग्री है। तीन पल्य की आयु के मनुष्य व पशु पक्षी होते हैं। तीन दिन बाद थोडी क्षुधा होती है, क्षुद्र बेर प्रमाण आहार करते हैं, पुरुष और स्त्री इन दोनो का वियोग नही होता अर्थात् इनका एक साथ मरण होता है। ऐसे ही भोग सामग्री यहाँ ऐसी पायी जाती है जैसे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में पहले काल मे पायी जाती है, यहा मेरु से उत्तर की ओर गधमादन से पूर्व नील पर्वत से दक्षिण और माल्यवान से पश्चिम मे स्थित पूर्व-पश्चिम मे लम्बी, दक्षिण-उत्तर मे चौडी उत्तर कुरु नाम की उत्कृष्ट भोग भूमि हैं, जो बहुत वन खन्डो से सुशोभित है, जिसकी चौडाई ११८४२ योजन तथा २/१९ योजन देवकुरु की तरह है। उत्तर कुरु मे दो यमक गिरि, पाँच सरोवर व एक सौ काचन गिरि है। नील पर्वत के पास मे उस क्षेत्र की डोरी ५३ हजार योजन है, चू कि ये भोग भूमियाँ मेरु पर्वत की ओर तो सकरी हैं और नील या निषद पर्वत की ओर बहुत चौडी हैं और वहाँ दो पर्वत इस प्रकार पडे हुए हैं कि जिससे उन भोग भूमियो का आकार धनुष की तरह हो जाता है। जब आकार धनुष की तरह हो गया तो एक ओर डोरी सी होगी। सामने धनुष का पृष्ठ सा होगा, अर्थात् इस भोग भूमि मे डोरी तो ५३००० योजन है और धनुष पृष्ठ ६०४१८ योजन और १२/१९ तथा कुछ अधिक है।

जम्बूद्वीप के उत्तर कुरु नामक विदेह भाग मे स्थित सपरिवार जम्बू वृक्ष का वर्णन—इस भोग भूमियो मे विशिष्ट रचना क्या है कि सीता नदी के पूर्व दिशा मे जम्बू वृक्ष पाया जाता है। यह जम्बू वृक्ष वनस्पति कायिक नही, पेड नही, किन्तु जम्बू वृक्ष के आकार अकृत्रिम एक पृथ्वी की रचना है, जिसका जमीन से तना निकला है, शाखायें फूटी हैं और उसमे उत्तर दिशा की शाखाओ पर अकृत्रिम एक जिनमन्दिर है जो एक कोश का लम्बा है, आधा कोश का चौडा और कुछ कम एक कोश का ऊचा। अनेक शोभाओ से सुशोभित है और उसके पूर्व दिशा मे जो शाखा है उस पर इस जिनमन्दिर की तरह ही माप वाला भव्य महल है। ये सब पृथ्वी कायिक अकृत्रिम बज्रमय है जो कभी नष्ट न होने वाले हैं, उनमे अनेक परमाणु आते-जाते हैं, पर वह मूल रूप सदा बना रहता है। उस प्रासाद पर जम्बूद्वीप का अधिपति व्यन्तरो का मुखिया अनावृत नाम का देव रहता है। उस जम्बू वृक्ष के दक्षिण दिशा मे उसकी शाखा पर और पश्चिम दिशा की शाखा पर भी प्रासाद बने हैं, याने भव्य महल हैं जिन पर रमणीक स्थान है। ऐसा एक मुख्य जम्बू वृक्ष है जिसके चारो दिशाओ मे अनावृत नाम के देव जो समानिक देव हैं, उनके निवास के ४००० जम्बू वृक्ष और है। यह सब रचना पृथ्वी-काय की है। इससे दक्षिण पूर्व दिशा मे तो भीतरी सभा के ३२००० देव है और दक्षिण दिशा मे मध्यम सभा के ४०००० देव है, दक्षिण-पश्चिम की दिशा मे बाह्य सभा के ४८००० देव हैं। पश्चिम दिशा मे अनीक अर्थात् सेना जाति के जो महान देव हैं, जो उनमे प्रधान है, ऐसे उन ७ प्रकार के सेनाओ के प्रधान के ७ जम्बू वृक्ष हैं, और चार अग्र महिषी याने पट्टरानियो के (देवागनाओ के) परिवार सहित उन चार रानियो के चार जम्बू वृक्ष हैं, पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओ मे १६००० आत्म रक्षक देवों के १६००० जम्बू वृक्ष हैं, इन सब जम्बू वृक्षो मे मुख्य वृक्ष है, सुदर्शन, जिसके परिवारभूत ये अनेक वृक्ष हैं। ये सभी वृक्ष वेदिकाओ से बिढे हुये हैं। सर्व प्रकार के रत्न स्वर्ण के परिणमन रूप हैं, जहाँ मोती मणि स्वर्ण की घटाजाल मालायें, ध्वजायें, छत्रादिक से सुशोभित हैं। यह सुदर्शन नाम का जम्बू वृक्ष वेदिका से बिढा है जो तीन वनखण्डो से घिरा हुआ है। उस ही मुख्य जम्बू वृक्ष के नाम पर इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पडा।

उत्तर कुरु स्थित सुदर्शन जम्बू वृक्ष बेढें हुए वनखण्डो मे रहने वाली रचनाओं का वर्णन—जो जम्बू वृक्ष को बेढे हुए तीन वनखण्ड है उनमे से पहले वनखण्ड मे चारो दिशाओ मे बडे भव्य महल हैं जिनकी लम्बाई एक कोश, चौडाई आधा कोश और ऊचाई कुछ कम एक कोश की है उन वनखण्डो मे विदिशाओ मे चार पुष्करिणी (वावडी) हैं। पुष्करिणी एक सुन्दर तालाब की तरह की होती है। ये पुष्करिणिया १०-१० योजन गहरी हैं, ५० योजन लम्बी हैं, २५ योजन चौडी है, चौकोर हैं, उनमे पवित्र सुगधित जल भरा हुआ रहता है। उन भवनो की जो पुष्करिणी है उनके आठो ही दिशाओ मे स्वर्ण चाँदी से रचे हुये ८-८ कूट हैं, जिन पर चार-चार भव्य महल हैं, ऐसी बहुत सुशो-भित यह भोग भूमि है, जहाँ रहने वाले मुख्य जम्बू वृक्ष के नाम पर इस द्वीप का ही नाम रखा गया है नील पर्वत जो विदेह क्षेत्र के उत्तर की ओर है उससे दक्षिण दिशा मे १००० योजन चलकर सीता नाम की महानदी मे दोनो किनारो पर ५०० योजन के अन्तर पर दो पर्वत है, जिनका नाम यमक है, जिनकी ऊचाई १००० योजन है, २५० योजन गहराई है अर्थात् जमीन के अन्दर है और नीचे, मध्य मे ऊपर बहुत प्रकार की शोभा से युक्त है। उन यमको पर ६२॥ योजन ऊचे, ३१। योजन चौडे दो भव्य प्रासाद है, जिन पर यमक नाम के देव रहते है, वहाँ पूर्व दिशा मे दो अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं

और वहां से आगे बढकर सीता महानदी से हजार योजन दक्षिण उत्तर मे लम्बा और ५०० योजन पूर्व पश्चिम में चौडा १० योजन गहरा नील नाम का महान् तालाब है, उस तालाब मे जल के ऊपर आधे योजन के ऊचे, १० योजन के गहरी जिसकी नाल (डडी) है और एक योजन के विस्तार वाले एक कोश के लम्बे पत्ते वाले दो कोश मे जिनकी कर्णिका है, ऐसे कमल हैं जो पद्म हृद मे उत्पन्न हुए कमल की तरह परिणाम वाले हैं, वहा नहाँ नील नाम का नागेन्द्र कुमार देव रहता है, उसके कमल जम्बू वृक्ष की सख्या के बराबर हैं। यह सब वर्णन उत्कृष्ट भोग भूमियो का चल रहा है। नील हृद से पूर्व मे पास ही १० स्वर्णमय पर्वत हैं, जो १०० योजन ऊचे, २५ योजन गहरे, मूल मे १०० योजन विस्तार वाले, मध्य मे ७० योजन विस्तार वाले तथा ऊपर ५० योजन विस्तार है, उनके ऊपर देवो के आवास है, भव्य प्रासाद बने हुये हैं जो ६१। योजन ऊचे, १५। योजन चौडे हैं। यहाँ काँचन नामक देवो के आवास हैं और उस हो प्रकार के १० स्वर्णमय पर्वत पश्चिम दिशा मे हैं, अब नील सरोवर से दक्षिण दिशा की ओर ५०० योजन और चलकर उत्तर कुरु नामक हृद है, जहा पर उत्तर सज्ञा नामक नागेन्द्र कुमार का आवास है। इस उत्तर कुरु हृद का भी वर्णन नील हृद की तरह जानना चाहिए। यहाँ भी पूरब और पश्चिम मे १०-१० स्वर्णमय पर्वत हैं। उत्तर कुरु हृद से दक्षिण की ओर ५०० योजन चलकर चन्द्र नाम का सरोवर है, जहाँ पर चन्द्र नामक नागेन्द्र कुमार का आवास है और पूर्ववत् १० स्वर्णमय पर्वत भी हैं। इस चन्द्र हृद से पूर्व की ओर ५०० योजन आगे बढकर ऐरावत नाम का तालाब है जिसमे बने प्रासाद पर ऐरावत नाम का नागेन्द्र कुमार रहता है, ऐसा उसका आवास स्थान है। यहाँ पर भी स्वर्णमय १० पर्वत पूर्व की तरह समझना चाहिये। इस ऐरावत सरोवर से दक्षिण की ओर ५०० योजन चलकर माल्यवान नाम का तालाब है, जिसमे माल्यवान नामक नागेन्द्रकुमार का आवास स्थान है। यहाँ पर भी पहले की तरह स्वर्णमय पर्वत है, ऐसे यहाँ इन १०० पर्वतो पर १०० जिनालय हैं, जिनका मुख्य द्वार पूर्व दिशा की ओर है।

देव कुरु की सीमा स्वरूप सौमनस व विद्युत्प्रभ वक्षार गिरि का कथन—अब मेरु से दक्षिण दिशा मे पूर्व की ओर मगलावती देश से पश्चिम मे और निषध पर्वत से उत्तर मे एक सौमनस नाम का वक्षार पर्वत है जो स्फटिक की तरह स्वच्छ है और गध मादन पर्वत की तरह लम्बाई, चौडाई ऊँचाई वाला है, उसके ऊपर मेरु के निकट सिद्धायतन नाम का कूट है, जिस पर अकृत्रिम एक भव्य जिनमन्दिर है, उसके दक्षिण मे क्रम से ये ८ कूट हैं, जिनके नाम सोमनस देव कुरु, मगलावत, पर्व विदेह, कनक, काचन, विशिष्ट और उज्ज्वल हैं. इन सबकी रचना गध मादत कूट की तरह है, इनमे से कनककूट और काचन कूट इनके ऊपर सुवत्सावत्समित्रा नाम की दिक्कुमारी के प्रासाद हैं, बाकी ६ कूटो पर उस-उस कूटो के नाम वाले देवो के आवास स्थान है। अब मेरु से दक्षिण की ओर पश्चिम दिशा मे निषध पर्वत से उत्तर मे और पद्मवान देश से पूरव मे विद्युत प्रभ नाम का वक्षार पर्वत है, जिसका वर्ण तपे हुये स्वर्ण के समान लाल है और जिसकी ऊचाई आदिक गध मादन पर्वत की तरह है। उसके ऊपर मेरु के निकट एक सिद्धायतन कूट है जहाँ पर जिन मन्दिर है, उसके दक्षिण की ओर विद्युत्प्रभ, देव कुरु, पद्मद्विपय, अपर विदेह, स्वस्तिक, शतजाल, सीतोरा, व हरि नाम के ८ कूट है, जिनमे से दो कूटो पद्म व द्विपय कूट पर वारिषेणा दिक् कुमारी के प्रासाद हैं, स्वस्तिक कूट

पर वला दिक्कुमारी के प्रासाद हैं यो दो कूट पर दिग्कुमारी के प्रासाद हैं, शेष कूटो पर उस-उस कूट के नाम वाले देवावत प्रासाद हैं।

जम्बूद्वीपस्थ देव कुरु नामक स्थायी उत्कृष्ट भोग भूमि की रचना का वर्णन—मेरु से दक्षिण की ओर और सौमनस पर्वत से पश्चिम की ओर, निषध पर्वत से उत्तर की ओर और विद्युतप्रभ पर्वत से पूर्व की ओर देव कुरु है। यह देव कुरू उत्कृष्ट भोग भूमि है। मेरु पर्वत से भरत क्षेत्र की ओर है और उनमें दो गजदत पर्वत की वजह से इनका आकार भरत क्षेत्र की तरह धनुषाकार बन गया है। तो इनमे उसकी डोरी याने ज्या का प्रमाण कितना है? और धनुष पृष्ट का याने उस गोलाई का प्रमाण कितना है और सीधा सूची याने वाण की लम्बाई कितनी है? यह सब जैसा उत्तर कुरु क्षेत्र मे कहा गया है उसके समान है। मेरु से दक्षिण, पश्चिम दिशा मे और निषध पर्वत से उत्तर मे सीतोदा नदी से पश्चिम मे और विद्युत्प्रभ पर्वत के पूर्व मे ठीक बीच में सुप्रभा नाम का शाल्मलि (सेमर) वृक्ष है। यह शाल्मलि वृक्ष पृथ्वी कायिक है। बहुत विशाल परिमाण को लिए हुए है। जैसे कि उत्तर कुरु मे सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष का बर्णन था उसकी तरह सब परिमाण आदिक इसके भी हैं। तो उस शाल्मलि नामक पृथ्वीकाय, विशालकाय वृक्षाकार के उत्तर शाखा पर अरहत देव का मन्दिर है, अर्थात् जिनायतन है और उसके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम शाखाओ मे जो बडे-बडे प्रासाद वने हैं उन पर वेणु देवो का आवास है और वही उसका परिवार है। यह सब वर्णन उत्तर कुरु में अनावृत देवो के परिवार की तरह जानना चाहिए। अब निषध पर्वत से उत्तर की ओर १००० योजन चलकर सीतोदा महानदी के दोनो किनारे पर चित्रकूट और विचित्र कूट नाम के दो पर्वत हैं। जैसे कि उत्तर कुरु मे यमक पर्वत हैं। इस चित्रकूट, विचित्र कूट पर्वत का वर्णन यमक पर्वत की तरह है। यहा भी निषध, देव कुरु, सूर्य, सुलस व विद्युत्प्रभ नाम के ५ ह्रद हैं और जैसे उत्तर कुरु क्षेत्र मे ५ ह्रदो का वर्णन था उसी प्रकार इनका भी वर्णन समझना और यहा स्वर्णमय १०० पर्वत जैसे उत्तर कुरु क्षेत्र मे बताए गए थे वैसे ही यहाँ भी समझना और वहाँ कुछ कूट पर जिनायतन और कुछ कूटो पर दिग्कुमारियो के आवास स्थान तथा शेष पर कुछ विशिष्ट देवो के आवास हैं।

जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के उत्तरभाग का वर्णन—मेरू पर्वत की मध्य सीमा लेकर विदेह का एक भाग जो पूर्व विदेह नाम का बना था सो अब सीता महानदी के बीच मे होने के कारण दो भाग और हो गए याने पूर्व विदेह मे ही उत्तर भाग वाला विदेह और दक्षिण भाग वाला विदेह। अब यहा कर्मभूमियो का वर्णन चल रहा है। अब तक देव कुरु और उत्तर कुरु नाम की उत्कृष्ट भोगभूमि का वर्णन था। अव विदेह के उन भागो का वर्णन किया जा रहा है जिस महाभागो से मुनिजन सतत मुक्ति को प्राप्त होते रहते हैं। तो सीता महानदी पूर्व विदेह मे है और उसके होने से दो भाग बन गये—उत्तर भाग, दक्षिण भाग। तो किसी एक भाग का वर्णन लीजिये। वैसा ही वर्णन दूसरे भाग का है। यहाँ उत्तर भाग का वर्णन लीजिए तो यह पूर्व विदेह का उत्तर भाग ४ वक्षार पर्वतो से और ३ विभग नदियो से ८ हिस्सो मे विभक्त हो गया है और वे ८ देश, महादेश ८ चक्रवर्तियो के द्वारा एक साथ उपभोग के योग्य है। जैसे भरत क्षेत्र मे ६ खण्ड है। बीच मे विजयार्द्ध पर्वत है, वहाँ चक्रवर्ती हुआ करते हैं। ऐसी ही बात वहाँ है, पर क्षेत्रके आकार का अन्तर है। भरत क्षेत्र का आकार तो धनुषाकार है और विदेह क्षेत्र के इन देशो का आकार एक चतुष्कोण है। तो पूर्व विदेह का उत्तर भाग जिसमे कि ८ देश वने और वे ८ देश कैसे

बने ? चार वक्षार पर्वतो के बीच मे है–३ विभग नदिया हैं सो इन सातो के कारण ८ भाग हो गये। तो जो वक्षार पर्वत हैं ४ उनके नाम हैं—चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशिल और इन ४ वक्षार पर्वतो के बीचो बीच याने दो के बीच एक इस तरह से वहां ३ नदियां हैं, जिनके नाम हैं—ग्राहावती, हृदावती और पकावती । तो ये चारो ही वक्षार पर्वत दक्षिण तरफ तो सीता नदी को छुए हुए हैं और उत्तर की ओर नील पर्वत को छुये हुए हैं ये नील पर्वत के पास ४०० योजन ऊचे, १०० योजन गहरे हैं, फिर क्रम से बढ-बढ कर सीता नदी के पास ५०० योजन ऊंचे हो जाते हैं, इनका विस्तार सर्वत्र ५०० योजन है। इन वक्षार पर्वतो की लम्बाई सीतानदी से लेकर नील पर्वत पर्यन्त जितना विस्तार है उतनो है। इन वक्षार पर्वतो मे से प्रथम चित्रकूट नामक पर्वत के ऊपर ४ कूट हैं, जिनके नाम हैं–सिद्धायतन, चित्र, कच्छ-विजय, सुकच्छ विजय। दूसरा वक्षार पद्मकूट नाम का है, उसके ऊपर ४ कूट हैं, जिसके नाम हैं सिद्धायतन, पद्म, महाकच्छ, कच्छवद् विजय। तीसरा जो वक्षार गिरि है नलिन कूट, उसके ऊपर ४ कूट हैं—सिद्धायतन, नलिन, नलिनावर्त और लागलावर्त। चौथा जो एक शिलनाम का वक्षार पर्वत है उसके ऊपर ४ कूट हैं—सिद्धायतन, एकशिल, पुष्कल और पुष्कलावर्त। ये सभी कूट उन कूटो के समान परिमाण वाले हैं जो हिमवान पर्वत पर कूट है और वहा सिद्धायतनो मे जैसी रचना है, जिन मन्दिर है उस प्रकार इन सिद्धायतनो मे भी है। शेष सब कूटो मे उन कूटो के नाम वाले देव रहते हैं।

तीनो ही विभग नदियाँ अपने नाम के तुल्य नाम वाले कुण्डो से निकली हैं और ये कुण्ड नील पर्वत के निकट हैं जिनका बहुत उत्कृष्ट वज्रमय तल है जिनकी लम्बाई १२० योजन गोल है, उन कुण्डो मे द्वीप हैं जिन पर बने प्रासाद पर उस ही नाम की देवी का निवास है। वहाँ से ये विभग नदियाँ निकली हैं जो प्रारम्भ मे तो १२ योजन और दो कोश के विस्तार वाली हैं। दो कोश की वे गहरी हैं और जहा वे मिली हैं नदी मे वहा १२५ योजन विस्तार वाली हैं। वे गव्यूत प्रमाण गहरी हैं और उन प्रत्येक विभग नदियो मे २८००० नदियाँ बीच-बीच मे आकर मिलती हैं; सो ये सब विभग नदियाँ सीता महानदी मे प्रवेश करती हैं। इन विभग नदियो और वक्षार पर्वत के कारण कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छक, कच्छकावर्त, लागलावर्त, पुष्कल, पुष्कलावर्त ये ८ प्रकार के देश विभक्त हो गये। उन देशो मे राजधानियाँ है ८। जिनकी नगरियो के नाम हैं—क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्ट पुरी, खड्गा, मजूषा, औषधि और पौण्डरीकिणी। ये ८ वे नगरियां हैं जिनमे ८ तीर्थंकर एक साथ उत्पन्न हो सकते है, और जब कभी यह ८ चक्रवर्ती हो सकते है। यह हुआ पूर्व विदेह के उत्तर तरफ के भाग का वर्णन।

जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के उत्तर भाग मे विजयार्द्ध गिरि व अन्तर्गत गगा सिधु नदी आदिका वर्णन—अब इस ही पूर्व विदेह के उत्तर भाग मे और भी देखिये वर्णन कि इन प्रत्येक देशो मे ६-६ खण्ड कैसे होते हैं ? पहले कच्छ देश का दिग्दर्शन करें—जो सीता-नदी से तो उतर दिशा मे है। नील पर्वत से दक्षिण दिशा मे है। यह पहला देश जोकि भोगभूमि की ओर है वह चित्रकूट पर्वत से तो पश्चिम मे है और माल्यवान के समीप जो देवारण्य वन है उससे पूर्व मे है। चित्रकूट वक्षार गिरि के समान कच्छ देश का आयाम है और पूर्व से पश्चिम मे उसकी चौडाई है जो २२१३ योजन प्रमाण है उसमे थोडा ही कम है। उसके ठीक मध्य भाग में विजयार्द्ध गिरि है जिसकी ऊचाई और अवगाह और विषकम्भ अन्य विजयार्धन पर्वत की तरह है तथा लम्बाई कच्छ देश के विस्तार के समान है। उस

विजयार्द्ध पर्वत पर ऊँचे चढ़ कर दो विद्याधरो की श्रेणियाँ हैं, जिनमें ५५-५५ नगर हैं। उससे और ऊंचे चढकर व्यन्तर देवो के निवास की श्रेणियाँ हैं। वहा ऐसान इन्द्र के लोकपालो का निवास स्थान है। सोम, यम, वरुण, वैश्रवण के नगर है। उनके आभियोग्य देवो के नगर हैं। उस विजयार्द्ध पर्वत के अन्तिम शिखर पर ६ कूट है, जिनमे पहला है-जो पूर्व दिशा मे है उसका नाम है सिद्धावतन कूट। विजयार्द्ध से उत्तर दिशा मे और नील पर्वत से दक्षिण दिशा मे और सिद्धकूट एवं वृषभ पर्वत से पूर्व दिशा मे चित्रकूट से पश्चिम दिशा मे एक गगा कुण्ड है जहा गगादेवी का निवास है। उस गंगा कुण्ड का तल उत्कृष्ट वज्र की तरह दृढ है। ६३ योजन का लम्बा चौडा है। १० योजन का गहरा है। उसके ठीक बीच में एक छोटा द्वीप है जो ८ योजन का लम्वा चौड़ा है और १० योजन एवं ४ कोश की (दो गव्यूत की) ऊँचाई है। वेदिकाओ से मडित है। चारो तरफ तोरण लगें हुए हैं ऐसी वहां गगा देवी का निवास है। वहां से दक्षिण दरवाजे से निकली हुई गगा महानदी जो दक्षिण की ओर बह रही भरत क्षेत्र की गंगा की तरह जिसका अवगाह और विष्कम्भ है। क्षेत्र के समान लम्वाई है। वह गंगा नदी विजयार्द्ध पर्वत के खण्ड प्रपात नाम की गुफा से निकली है। जिसमे १४००० नदियो का पर्वत मिल गया है ऐसी गगा महानदी सीता नदी मे प्रवेश करती है, जैसे कच्छदेश मे गगा कुण्ड का वर्णन किया था वैसा ही विजयार्द्ध से उत्तर की ओर और नील से दक्षिण की ओर, वृषभाचल से पश्चिम की ओर तथा माल्यवान पर्वत के पास रहने वाले देवारण्य से पूर्व की ओर सिंधु कुण्ड है। यह सिंधु कुण्ड ठीक उतने ही विस्तार वाला है जितना कि यह गगा नदी का विस्तार है। इस सिंधु कुण्ड से सिंधु नाम की महानदी निकली है और विजयार्द्ध पर्वत के तमिश्रगुहा नाम की गुफा से निकल कर सीता महानदी मे प्रवेश करती है। इस सिंधु नदी मे भी १४००० नदिया और मिल जाती हैं। इस ही देश मे सीता नदी से उत्तर की ओर, विजयार्द्ध से दक्षिण की ओर और गगा, सिंधु नदियो के ठीक मध्य देश मे क्षेमा नाम की राजधानी है। इसी प्रकार ७ देशो मे भी वर्णन समझना चाहिए। इस क्षेमा नामक राजधानी वाले देश मे तीर्थकर चक्रवर्ती आदिक उत्पन्न होते है। यहा लवण समुद्र की वेदिका से पश्चिम की ओर और पुष्कलावती से पूर्व की ओर सीता नदी से उत्तर की ओर और नील पर्वत से दक्षिण की ओर देवारण्य नाम का वन है। देवारण्य वन का सीता नदी के पास विस्तार है २९२२ योजन का और लम्बाई है १६५९२ योजन तथा एक योजन के १६ भागो मे दो भाग प्रमाण है।

जम्बूद्वीपस्थ पूर्व विदेह के दक्षिण भाग की रचना का कथन—इस सीता नदी से दक्षिण की ओर और निषध पर्वत से उत्तर की ओर वत्स देश से पूर्व की ओर और लवण समुद्र की वेदिका से पश्चिम की ओर पहले के तरह देवारण्य नाम का वन है। सीता नदी के दक्षिण की ओर जो पूर्व विदेह है वह चार वक्षार पर्वतो से और तीन विभग नदियो से विभक्त होने के कारण यह भी आठ भागो मे वट गया है। जहां ८ तीर्थंकर हो सकते है। जहा ८ चक्रवर्तियो का राज्य होता है यह वर्णन अब चल रहा है पूर्व विदेह के दक्षिण भाग का। वहा जो ४ वक्षार पर्वत हैं उनका नाम है त्रिकूट, वैश्रवणकूट, अंजनकूट, आत्माञ्जन। इन ४ वक्षार पर्वतों के मध्य मे तीन विभंग नदियां हैं, जिनका नाम है तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला। इन वक्षार पर्वत और विभंग नदियो के कारण इस दक्षिण भाग के ८ भाग हो जाते है, जिनमें ये देश हैं—वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सवती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मगलावती। इन देशों के मध्य मे ८ राजधानियां हैं जिन नगरियो के नाम हैं—सुसीमा,

कुण्डला, अपराजिता, प्रभाकरी, अ कावती, पद्मावती, शुभा, रत्नसचयावती। उन आठो देशो मे २-२ नदियाँ और बही हैं जिनका नाम है रक्ता, रक्तोदा। इन प्रत्येक देशो मे १-१ विजयार्ध पर्वत है इन सबका वर्णन उत्तर भाग के इन्ही के समान जानना। वक्षार पर्वत पर ४-४कूट हैं, जिनमें एक सिद्धायतन कूट है, जहां अकृत्रिम जिन मन्दिर है। शेष ३ कूटो पर देवो के निवास स्थान हैं। सीता नदी से उत्तर तट पर और दक्षिण तट पर प्रत्येक देश मे ३-३ तीर्थ हैं जिनका नाम है मागध, वरदा, प्रभास। ऐसे ये सब मिलकर ४८ क्षेत्र होते हैं याने दक्षिण भाग मे २४ और ८ देशो मे प्रत्येक मे तीन तीन और उत्तर भाग मे भी इसी प्रकार ८ मे ३-३ होने से २४ हैं। इस तरह पूर्व विदेह वर्णन हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ पश्चिम विदेह के दक्षिण भाग का वर्णन—अब पश्चिम विदेह की बात सुनो। पश्चिम विदेह मे सीतोदा महानदी निकली है, उसके कारण पश्चिम विदेह के दो भाग हुए हैं—दक्षिण भाग और उत्तर भाग। उनमे से दक्षिण भाग ४ वक्षार पर्वत और ३ विभग नदिया, इनके कारण आठ देशो मे विभक्त हो गये हैं। जहा आठ तीर्थंकर हो सकते हैं और आठ चक्रवर्तियो के द्वारा वहा साम्राज्य चलता है। जो सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग मे वक्षार पर्वत हैं उनके नाम हैं—शब्दवान, विकृतवान, आशाविष और सुखावह। उन ४ वक्षार पर्वतो के अन्तर मे ३ विभग नदिया हैं जिनके नाम हैं—क्षीरोदा, शीतोदा, स्रोतोन्तर्वाहिनी। इन ४ वक्षार पर्वत व आठ विभग नदियो के कारण ८ देश बने हैं, जिनके नाम है—पद्म, सुपद्म, महापद्म, पद्मावर्त, शख, नलिन कुमुद और सरित। इन देशो के बीच मे एक-एक राजधानी है, जिसकी नगरियो के नाम हैं—अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, अरजा, विरजा, अशोका व वीतशोका। उन देशो मे दो नदिया हैं, जिनका नाम है-रक्ता, रक्तोदा। इन देशो के बीच मे एक-एक विजयार्ध पर्वत है। तो विजयार्ध पर्वत और रक्ता, रक्तोदा नदी, इसके कारण प्रत्येक देश के ६ भाग हो जाते हैं। इन सबका विस्तार लम्बाई आदिक का वर्णन जैसे अन्य देश का है उस तरह का जानना चाहिये। प्रत्येक वक्षार पर्वत के ऊपर ४-४ कूट हैं जिनमे एक सिद्धायतन है, जहा कि अकृत्रिम जिन मन्दिर है। शेष ३ कूट देवो के निवासरूप है। देवारण्य वन मे भी दो दो कूट पहले की तरह जानना। इस प्रकार यह पश्चिम विदेह के दक्षिण विभाग का वर्णन किया।

जम्बूद्वीप एक पश्चिम विदेह के उत्तर भाग की रचना का कथन—इसी प्रकार पश्चिम विदेह के उत्तर विभाग का विदेह भी चार वक्षार पर्वत और तीन विभग नदियो के कारण ८ देशो मे विभक्त हो गया है, जहाँ ८ तीर्थंकर एक साथ हो सकते हैं और कभी-कभी ८ चक्रवर्तियो का वहाँ साम्राज्य होता है. वहाँ जो वक्षार पर्वत हैं उनका नाम चन्द्र, सूर्य, नाग और देव। उन वक्षार पर्वतो के मध्य मे जो एक-एक विभग नदी हैं उनका नाम है—गम्भीरमालिनी, फेर मालिनी और र्धमिमालिनी, इन वक्षार पर्वत और विभग नदियो के कारण जो ८ देश बनते हैं उनका नाम है वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावान, वल्गु, सुवल्गु, गधिल, गधि-माली। उन देशो के मध्य मे एक-एक राजधानी है जो समस्त ८ राजधानियाँ हैं. इनकी नगरियाँ विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या नाम की हैं। उन प्रत्येक देशो मे गगा, सिंधु नाम की दो-दो नदियाँ हैं और एक-एक विजयार्ध पर्वत है। इन सब नदियो का विजयार्ध पर्वत का, गगा, सिंधु कुण्ड का सबका वर्णन जैसे विदेह के और-और इनके वर्णन हैं वैसे ही इनका वर्णन है। वक्षार पर्वत पर प्रत्येक पर्वत पर ४-४ कूट हैं, जिनमे एक सिद्धायतन कूट हैं जहाँ अकृत्रिम जिनमन्दिर है, शष

देवों के निवास के कूट हैं—सीतोदा नदी में भी सीता नदी की तरह ४८ तीर्थ हैं।

जम्बूद्वीपस्थ विदेह के बत्तीस भागो मे शाश्वत मोक्षमार्ग की धारा उक्त प्रकार से विदेह क्षेत्र के दो भाग बताये गये, उनमे भी प्रत्येक मे दो भाग और उनमे भी प्रत्येक के ८-८ भाग कहे गए हैं। इस विदेह क्षेत्र मे सतत मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविकाओ का संग विद्यमान रहता है। धर्म की प्रवृत्ति, उपदेश की परम्परा तीर्थकरो के सर्वांग से दिव्य ध्वनि सुनने का अवसर सदा बना रहता है और यहां से तीर्थंकर व अन्य मुनिजन मोक्ष पाते रहते हैं, इस कारण से इन सबका नाम विदेह है। इस जम्बूद्वीप के विदेह मे एक साथ तीर्थंकर अधिक से अधिक हों तो ३२ हो सकते हैं, क्योकि देश भी सब ३२ हैं। इन सब देशो मे सदा तीर्थंकर हो सकते हैं तथा यथा समय सदा सभी देशो मे चक्रवर्ती हो सकते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ विदेह क्षेत्र मध्यवर्ती मेरु पर्वत की रचना का कथन—अब इस विदेह क्षेत्र के मध्य में जो मेरु पर्वत है, जिसका नाम है सुदर्शन मेरु उसमे क्या-क्या रचनाये हैं, भूतल पर कैसी रचना है, ऊपरी भाग तक कैसी रचना चली गई है? इसका भी वर्णन ज्ञातव्य है, क्योंकि इस मेरु पर्वत की अनेक कारणो से बडी महिमा है। इसी मेरु पर्वत के ऊपर चार दिशाओं मे चार शिलायें हैं, जिन पर भरत, ऐरावत पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह मे उत्पन्न हुए तीर्थकरो का अभिषेक होता है। इस मेरु पर्वत पर चार भागो मे अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं, ऐसा यह मेरु पर्वत पूज्य है, साथ ही एक महिमा की बात यह है कि ढाई द्वीप के अन्दर जितने भी सूर्य, चन्द्र हैं वे सब सूर्य, चन्द्र इस सुदर्शन मेरु की प्रदक्षिणा दिया करते हैं। मेरु पर्वत अन्य द्वीपो मे भी है, मगर जिन द्वीपो मे मेरु है उन द्वीपो के सूर्य, चन्द्र अपने द्वीपों के मेरु की प्रदक्षिणा नही करते, किन्तु सभी सूर्य, चन्द्र जो प्रदक्षिणा देने वाले हैं याने ढाई द्वीप के अन्दर है वे सब इस सुदर्शन मेरु की परिक्रमा दिया करते हैं यह मेरु पर्वत ९९००० योजन ऊंचा है। पृथ्वी मे १००० योजन गहरा है और १००९० १०/११ योजन इसकी चूलिकादि है। इस मेरु पर्वत के भूतल पर विस्तार ३१९१० तथा ११ योजन और उसमे से थोडा सा कम। भूतल पर उसकी परिधि है १०,००० योजन, भूतल पर उसका विस्तार ३१६३२ योजन है, जिसमे जरा थोडा ही कम है। और उसकी परिधि चारो वन सहित तीन खण्ड में है, जिनकी तीन श्रेणियां हैं।

भद्रशाल वन की रचना का वर्णन—मेरु मे लिये हुए ४ वन हैं, भद्रशाल वन, नन्दन वन, सौमनस और पाण्डुक, इनमे से भूमि तल पर तो भद्रशाल वन है, जो पूर्व, पश्चिम दिशा मे २२,००० योजन लम्बा है और दक्षिण, उत्तर दिशा मे २५०० योजन लम्बा है। ये वन बहुत सौन्दर्य वाले, दरवाजो वाले एक वेदिका के द्वारा घिरे हुए हैं। उस भद्रशाल वन मे मेरु की चारो दिशाओं मे ८ कूट है, जिनका नाम है पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक अंजन, कुमुद, पलाश, अवतंस और रोचक, एक-एक दिशा मे दो-दो कूट होने से ये ८ कूट बन गए हैं। मेरु पर्वत के भद्रशाल वन मे चारों दिशाओ मे जो ८ कूट बताये गए हैं वे कूट किस किस स्थान पर है, अब यह बात कह रहे हैं। मेरु के पूर्व मे और सीता नदी के उत्तर के तट पर पद्मोत्तर नाम का कूट है। मेरु के पूर्व मे और सीता नदी के दक्षिण तट पर नील कूट है। मेरु के दक्षिण मे और सीतोदा नदी के पूर्व तट पर स्वस्तिक कूट है। मेरु के दक्षिण मे और सीतोदा के पश्चिम तट पर अंजन कूट है। मेरु के पश्चिम मे और सीतोदा के दक्षिण तट पर कुमुद कूट है। मेरु के पश्चिम मे और सीतोदा के उत्तर तट पर पलाश कूट है।

मेरु के उत्तर मे और सीता नदी के पश्चिम तट पर अवतस कूट है। मेरु के उत्तर मे और सीता नदी के पूर्व तट पर रोचन कूट है। ये सभी कूट २५ योजन गहरे हैं अर्थात् पृथ्वी के नीचे हैं और इनका नीचे मूल मे विस्तार १०० योजन है। ऊपर चलकर मध्य मे विस्तार ७५ योजन है और ऊपर चलकर अन्त मे विस्तार ५० योजन है। ठीक मध्य देश मे ८ प्रासाद हैं जो ३१ योजन है एक कोश ऊ चे हैं, १५ योजन और दो गव्यूत प्रमाण लम्बे और चौडे हैं। उन प्रसादो पर जैसे-जैसे कूट के नाम हैं इसी प्रकार के नाम वाले दिग्गजेन्द्र देव बसते हैं। ये दिग्गजेन्द्र चार लोकपालो के हैं और अनेक प्रकार के ऐरावत आदिक रूपो को बनाने मे समर्थ हैं। वहाँ पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक और अजन कूट इन चार कूटो पर इन्द्र एव लोकपालो के सुन्दर विहार करने के स्थान हैं। शेष बचे हुए कुमुद पलास अवतंस और रोचन कूटो पर ऐशान इन्द्र के लोकपालो के विहार स्थान हैं। इन कूटो पर ऐसे प्रवेश के तीन द्वार हैं—पूरब, उत्तर और दक्षिण मे जो नाना मणि काचन चादी आदिक धातुमय हैं, जिनका हजार जिह्वा रखने वालो के द्वारा भी वर्णन नही हो सकता। सहस्र आँख वाला सहस्र आँखो को फैलाकर भी देखें तो भी तृप्त नहीं हो सकता। ऐसा यह सुन्दर द्वार है, जो ५० योजन चौडे, १६ योजन ऊ चे और ८ योजन चौडे हैं।

भद्रशाल वन मे स्थित मुखमण्डप, प्रेक्षागृह स्तूप व चैत्यवृक्ष पीठों का कथन—भद्रशाल वन मे मुख्य द्वारो के आगे १०० योजन लम्बे, ५०योजन चौडे और कुछ अधिक १६ योजन ऊँचे मुखमण्डप हैं। चू कि यहा निरन्तर विहार स्थान है तो मण्डप प्रेक्षागृह और स्तूप इनकी सुन्दर रचना है। इन मुख मण्डपो के आगे सौ योजन लम्बे, ५० योजन चौडे और कुछ अधिक १६ योजन ऊ चे प्रेक्षागृह है, याने एकसुरम्य स्थान है। उनके आगे ६४ योजन लम्बे और उतने ही चौडे, इससे कुछ अधिक तीन गुना परिधि वाले स्तूप हैं। इन स्तूपो के आगे चैत्यवृक्ष पीठ हैं जो १६ योजन लम्बे, ८ योजन चौडे और ८ योजन ऊँचे हैं, जिनके प्रत्येक के ४-४ तोरण मे विभक्त वेदिकायें हैं, जो २४ वेदिकायें है उनसे ये चैत्यवृक्ष पीठ घिरे हुए हैं। इन पीठोके मध्य मे सिद्धार्थ नाम का चैत्यवृक्ष है जहाँ अकृत्रिम जिन मन्दिर है और बहुत उत्तम जिसकी शोभा है, उन चैत्यवृक्षो से पूर्व मे नाना मणि रत्नो से रचित पीठहै और उसमे १६ योजन ऊँचे और एक गव्यूत प्रमाण चौडे लम्बे महेन्द्र की ध्वजायें हैं। उससे पूर्व मे गगा नाम की पुष्करिणी है, जो १०० योजन लम्बी, ५० योजन चौडी और दस योजन गहरी है। जिसके मध्य से अकृत्रिम अरहत मन्दिर है, जिन मन्दिर है। जहा रत्नमय देवछन्द बने हुए हैं, जो कि सोलह योजन लम्बे, ८ योजन चौडे व उतने ही ऊँचे हैं। वहाँ पर बहुत शोभायमान यक्ष नाग के जोडे बने हुए हैं। ये सब अकृत्रिम रचनायें हैं। यक्ष, नाग, युगल ५०० धनुष ऊँचे स्वर्णमय जिन की देह है और तपे हुए स्वर्ण की भाति अत्यन्त लाल जिनके हाथ, पैर, तला तालू और जिह्वा है। जिसके नयन ऐसा शोभित होते हैं जैसे लोहताक्षमणि से घिरे हुए और स्फटिकमणि की तरह जिसके नेत्र की तारायें अरिष्टमणि से रची हुई हैं। चाँदी रूप दन्त पक्तिया है। मूगो के वर्ण की तरह अधर और पुट हैं। अ ज मूल रचित जिनके पलक हैं, नीलमणि से रचित काले केश हैं। ऐसे अनेक आवरणो मे से अलकृत वहाँ यक्ष नाग युगल है। इन्ही कूटो पर अरहत प्रतिमायें हैं जो अनादि निधन हैं। १०८ सख्या मे हैं, सुन्दर १०००८ लक्षणो से चिह्नित हैं। भव्य जन जहाँ स्तवन वदन पूजन किया करते हैं। जहा १०८ कलश भृ गार आदिक उपकरणो से शोभित है, जिसका वैभव वर्णन से परे है। मानो मूर्त रूप रखकर ही मानो जिन धर्म शोभित हो रहा है। तरह भद्रशाल वन मे बहुत अपूर्व शोभा बनी

हुई है। जिस भद्रशाल वन मे देवताओ के बहुत विहार हैं, अपूर्व शोभा वाले जिन मन्दिर हैं। ये मेरु पर्वत के नीचे भाग पर, भूतल पर यह एक विचित्र शोभा है, जिसका मेरु पूजावो मे विशेष कर वर्णन आता हैं। अब इस बाद नन्दन वन का वर्णन चलेगा।

जम्बूद्वीपस्थ मेरु की कटिपर अवस्थित नन्दन वन की रचना का कथन—भद्रशाल के वर्णन के पश्चात अब नन्दन वन का परिचय कराया जा रहा है। जहा भद्रशाल वन है याने भूमि पर भद्र-शाल वन है वहा से ५०० योजन ऊपर चलकर नंदन वन है, जिसका विस्तार ५०० योजन और आयाम मायने लम्बाई उतनी है जितनी कि वहा मेरु का आयाम मण्डल है। नन्दन वन वेदिका से घिरा हुआ है। गोल-गोल वह वन है। उसकी परिधि भी गोल है। उस नन्दन वन के स्थान पर मेरु पर्वत का वाह्य विष्कम्भ ६६५४ सही ६/११ योजन है और उसकी परिधि याने जहाँ नन्दन वन है वहा के मेरु की परिधि ३१४७६ योजन तथा कुछ अधिक हैं। भीतरी पर्वत का विष्कम्भ ८६५४ योजन तथा ६/११ योजन भाग प्रमाण है। उसकी परिधि २८३१६ योजन तथा एक योजन का ८/११ भाग प्रमाण है। चारो दिशाओ मे ४ गुफाये हैं। पूर्व दिशा मे मणि गुहा, दक्षिण दिशा मे गंधर्व गुहा, पश्चिम दिशा मे चारण गुहा और उत्तर दिशा मे चन्द्र गुहा। ये सब गुफायें ३० योजन लम्बी चौडी है। कुछ अधिक ६० योजन इनकी परिधि है और ६० योजन गहरी हैं, उन गुफावो मे क्रम से सोम, यम, वरुण और खचर, इनका विहार स्थान है। मेरु पर्वत से पूर्वोत्तर दिशा मे नन्दन वन मे वलभद्र कूट है, जिस कूट की की ऊँचाई १००० योजन है। मूल मे तो १००० योजन का विस्तार है। मध्य मे ८०० योजन का विस्-तार है और अन्तमे ऊपर ५०० योजन का विस्तार है। इससे तिगुनी तथा कुछ अधिक उस कूट की परिधि है, उसके ऊपर मदर याने मेरु पर्वत के अधिपति का आवास स्थान है। मेरु के चारो दिशावो मे दो-दो कूट हैं पूर्व दिशा मे तो नन्दन और मन्दिर नाम के कूट हैं। दक्षिण दिशा मे निषध और हैम-वत नाम के कूट हैं, पश्चिम दिशा मे रजत और रुचक नाम के कूट हैं। उत्तर दिशा मे सागर और चित्र वज्र नाम के कूट हैं। ये आठो ही कूट ५०० योजन ऊचे है। मूल मे ५०० योजन विस्तार वाले हैं। मध्य मे ३७५ योजन विस्तार वाले है और अन्त मे ऊपर २५० योजन विस्तार वाले है। उन कूटो के ऊपर ८ प्रासाद हैं। जिन पर ८ दिक्कुमारियाँ रहती हैं। पूर्व आदिक दिशा मे क्रम से जो दिग्कुमा-रियाँ रहती हैं उनका नाम यह है—मेघकरी, मेघवती' सुमेघ, मालिनी, तोयधरा, विचित्रा, पुष्कर-माला और अनिन्दिता, ये ८ दिग्कुमारियाँ उन कूटो पर रहती हैं। मेरु के दक्षिण पूर्व दिशा मे ४ बावडी हैं जिनके नाम हैं—उत्पलगुल्मा, नलिन, उत्पल, और उत्पलोज्ज्वला। दक्षिण पश्चिम दिशा मे ४ पुष्करिणी हैं जिसके नाम हैं—भृंगा, भृंगनिमा, कज्जल व प्रभा। पश्चिमोत्तर दिशा मे ४ बावडी हैं जिनका नाम है—श्रीकान्ता, श्रीचडा, श्री निलया, श्री महिता। उत्तर पूर्व दिशा मे ४ बावड़ी हैं जिनके नाम हैं—पद्मा, पद्मगुल्मा, कुमुदा कुमुदप्रभा। ये सभी बावडियाँ ५० योजन लम्बी, २५ योजन चौडी और १० योजन की गहरी हैं। ये ४ कोने वाली हैं, जिससे ये लम्बी चौकोर हो जाती है। उन बावडियो के बीच मे प्रत्येक मे एक-एक प्रासाद है। जिन प्रासादो मे दक्षिण दिशा मे तथा उसकी विदिशा के दोनो भागो मे सौधर्म इन्द्र के विहार करने के प्रासाद हैं। उत्तर दिशा मे और वहाँ के पास की दोनो विदिशाओ मे ऐशान इन्द्र के विहार स्थान है। मेरु के चारो दिशाओ मे नन्दन वन मे ४ जिनालय हैं। जिनकी ऊँचाई ३६ योजन है, लम्बाई ५० योजन है और चौडाई २५ योजन है।

जिनका द्वार पश्चिम की ओर है। ८ योजन ऊँचे और ४ योजन लम्बे हैं। यहा अकृत्रिम जिन मदिर है। यहा तक, नन्दन वन का वर्णन हुआ।

जम्बू द्वीपस्थमेरु के वक्षस्थल पर अवस्थित सौमनस वन की रचना का कथन—अब आगे सौमनस वन का वर्णन कर रहे हैं। नन्दन वन मेरु के जिस भाग मे है उस भाग से ६२५०० योजन ऊपर चलकर सौमनस वन है, जो गोल वलयाकार है। पद्मवर वेदिका से घिरा हुआ है। उस नदन वन के बाह्य गिरि का विष्कम्भ अर्थात जब नन्दन वन उस पर्वत पर बहुत चौडाई मे है तो उस नदन वन का जो आखिरी भाग है वह वहा के पर्वत का बाहरी भाग है। उसका विस्तार ४२७२ योजन तथा एक योजन के ११ भागो मे ८ भाग प्रमाण है इस बाह्य गिरि की परिधि १३५११ योजन तथा ६/११ योजन मात्र प्रमाण है। इस नन्दन वन के आभ्यन्तर गिरि का विस्तार अर्थात मेरु के भीतरी भाग से जहा से नन्दन वन प्रारम्भ होता है वहा के भीतरी गिरि का विष्कम्भ ३२७२ ८/११ योजन है, परिधि १०३४९ ३/११ योजन प्रमाण है, इससे थोडा सा कम है। इस नन्दन वन मे १६ बावडी हैं याने प्रत्येक दिशा मे ४-४ बावडी हैं, जिनकी लम्बाई चौडाई नन्दन बावडी की तरह है, और उनके मध्य मे भवन बने हुये हैं जिनकी ऊचाई ३६ योजन है, लम्बाई ५० योजन है और चौडाई २५ योजन है। चारो दिशाओ में ४ जिनालय हैं, जिनके द्वार पूरब, उत्तर और दक्षिण मे हैं। जैसे कि मेरु की पूजा मे या भक्ति मे मेरु पर्वत के जिनालयो मे से ये सब १६ जिनालय हैं। यहा तक सौमनस वन का वर्णन हुआ।

जम्बू द्वीपस्थ मेरु पर्वत के स्कध पर अवस्थित पाण्डुक वन की रचना का कथन—अब पाडुक वन का वर्णन करते हैं। सौमनस वन जहां पर है उस भू भाग से और ऊपर ३६००० योजन चढकर पाडुक वन है जो गोल बलय मे है, जिसकी परिधि गोल है। ४९४ योजन जिसका विस्तार है। वेदिका से घिरा हुआ है। इसके बाए आगे चूलिका प्रारम्भ होगी। मेरु का शेखर १००० योजन चौडा है, जिसकी परिधि ३१६० योजन तथा कुछ और है। पाडुक वन के बहुत मध्य भाग से एक चूलिका प्रारभ होती है, जो गोल है, ४० योजन ऊची है। मूल मे १२ योजन चौडी मध्य मे ८ योजन चौडी और अन्त मे ४ योजन चौडी है। पाडुक बन मे पूर्व दिशा मे पाडुक शिला है जो उत्तर और दक्षिण तरफ लम्बी है। पूर्व और पश्चिम तरफ चौडी है। दक्षिण दिशा पाडुकम्बल शिला है, जो पूर्व पश्चिम मे लम्बी है, उत्तर दक्षिण मे चौडी है। पश्चिम दिशा मे रक्त-कम्बल शिला है जो पूर्व पश्चिम लम्बी है, उत्तर दक्षिण मे विस्तार वाली है। उत्तर दिशा मे अति-रिक्त कम्बल शिला है जो पूव पश्चिम लम्बी है और उत्तर दक्षिण चौडी है। ये चार वे शिलायें हैं जहा पर तीर्थंकर भगवान का जन्म होने पर अभिषेक के लिए इन्द्र ले जाता है। पाडुक शिला तो चाँदी और स्वर्णमयी है। पाडुकम्बल शिला चाँदीमय है, रक्त कम्बल शिला मूगे के वर्ण की तरह है। अतिरिक्त कम्बल सिला यह स्वर्णमयी है। ये चारो ही शिलायें एक समान विस्तार वाली हैं। इनकी लम्बाई ५०० योजन है, चौडाई २५० योजन है। मोटाई ४ योजन है। इनको अर्द्ध चन्द्र की तरह है। ये वेदिका से घिरी हैं। इनके चारो ओर तोरण द्वार हैं जो सफेद और स्वर्णमय स्तूयिका से अलकृत हैं। इन सिलावो के ऊपर बहुत ही अच्छा सिंहासन है, जिसका मुख पूर्व की ओर है, ऊचाई ५०० धनुष है, लम्बाई २५० धनुष है और चौडाई १२५ धनुष है। जो सिला पूर्व विदेह की ओर है वहा उस सिंहासन पर पूर्व विदेह मे उत्पन्न हुए तीर्थंकरो का अभिषेक होता है। दक्षिण तरफ वाले सिंहासन पर भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए तीर्थकरो का अभिषेक होता है। पश्चिम दिशा के सिंहासन

पर पश्चिम विदेह मे उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। उत्तर दिशा मे ऐरावत क्षेत्र मे उत्पन्न हुए तीर्थंकरो का अभिषेक होता है। इन्द्र सपरिवार बडी विभूति के साथ १०००८ स्वर्णमय कलशो से क्षीरोदधि समुद्र के जल से तीर्थंकरो का अभिषेक किया करता है।

जम्बूद्वीपस्थ सुदर्शन मेरु गिरि की कुछ अन्य विशेषतायें—भद्रशाल वन मे जो भूतल है, पृथ्वी है उसका वर्ण लोहिताक्ष की तरह लाल है, उसके ऊपर-ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढ-चढकर वर्ण बदलता रहता है, जैसे प्रथम १६ १/२ हजार योजन पर पद्म वर्ण है, उसके ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढकर तपनीय स्वर्ण की तरह वर्ण है, उससे भी १६ १/२ हजार योजन चढकर वैडूर्य वर्ण है, उससे भी ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढकर नील वर्ण मिलता है, उससे भी ऊपर १६ १/२ हजार योजन चढकर हरिताल वर्ण मिलता है, उससे भी १६ १/२ हजार योजन बाद स्वर्ण वर्ण मिलता है। नीचे भूमि मे जो मेरु पर्वत पडा हुआ है, एक हजार योजन गहरा है, उसका परिणाम पृथ्वी, पत्थर, बालू और छोटे ककड ऐसे चार प्रकार के परिणाम हैं, और कुछ पृथ्वी भाग के ऊपरी भाग मे तीन तरह की पृथ्वी है, जो प्रथम कांड तो वैडूर्यवत है, दूसरा काण्ड सर्व रत्नमय है, तीसरा काड स्वर्णमय है। चूलिकायें वैडूर्यमणि की तरह वर्ण वाली हैं। यह मेरु पर्वत तीनो लोक का मानदन्ड है अर्थात् मेरु से ही तीन लोक का विभाग बनाया गया है। जैसे मेरु पर्वत जहाँ तक नीचे है याने इस भूमि से १००० योजन नीचे तक गहरा है, तो वहाँ से नीचे अधोलोक होता है और चूलिका के ऊपर से ऊर्द्ध लोक है और शेष मध्य मे तिर्यक लोक पडा हुआ है। तो मेरु शब्द का भी यह ही अर्थ है कि जो तीन लोक का प्रमाण करा दे उसे मेरु कहते हैं। सस्कृत मे इसकी निरुक्ति है—लोकत्रय मिनातिइति मेरु। यह मेरु पर्वत भूमि तल पर जितने विस्तार वाला है उस विस्तार से ऊपर शिखर पर्यन्त ११ प्रदेशो मे हीन होता जाता है याने ११ कोश ऊपर एक कोश कम हो जाता है, ११ योजन ऊपर एक योजन कम हो जाता और शिखर से नीचे की ओर देखा जाए तो ११ प्रदेशो पर एक प्रदेश बढता है याने ११ योजन नीचे जाने पर एक योजन बढ जाता है। इस तरह हर ११ वें योजन पर एक-एक योजन बढता हुआ जाता है। इस तरह विदेह क्षेत्र का वर्णन समाप्त हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ रम्यक क्षेत्र का परिचय—अब विदेह क्षेत्र के बाद रम्यक क्षेत्र है उसका वर्णन कर रहे हैं। इस क्षेत्र का रम्यक नाम क्यो पडा ? उसका समाधान यह है कि रमणीय देशो के सम्बन्ध से इस क्षेत्र का नाम रम्यक पडा है। जहाँ नदी, पर्वत, वन देश बहुत सुन्दर-सुन्दर हो, उन सब सुन्दर रचनाओ से युक्त है, यह क्षेत्र, इस कारण से इस क्षेत्र का नाम रम्यक है। यहाँ शका हो सकती है कि रम्यक देश का सम्बन्ध तो सर्वत्र है याने सभी देश अपनी-अपनी रचना मे सुहावने है, फिर इस ही क्षेत्र का नाम रम्यक क्यो रखा गया ? समाधान यह है कि यह तो रम्यक शब्द की व्युत्पत्ति से अर्थ किया है, पर रुढि बल से इस क्षेत्र का नाम रम्यक पड़ा है। जैसे गौ शब्द का अर्थ है जाना। जावे सो गौ, मगर गौ की रुढि गाय मे ही बनती है। यह रम्यक क्षेत्र किस जगह बसा हुआ है ? यह रम्यक क्षेत्र नील पर्वत से उत्तर की ओर और रुक्मी पर्वत से दक्षिण की ओर तथा इसके पूर्व और पश्चिम मे लवण समुद्र हैं। तो यों दोनो ओर का समुद्र और दोना ओर के पर्वतो के बीच मे इस रम्यक क्षेत्र की रचना है। इस रम्यक क्षेत्र के मध्य मे गधवान नामक एक पर्वत है जो शब्दवान पर्वत की तरह वर्ण वाला है। इस ही पर्वत को घेरकर नारी नरकान्ता महानदी दिशायें बतलाती है। इस गधवान पर्वत पर एक प्रासाद है जिस पर पद्मदेव का निवास है। इस क्षेत्र मे मध्यम भोग भूमि

है, जहाँ दो पल्य की आयु के मनुष्य पशु और पक्षी हैं। ये जोडे माता-पिता अथवा पुरुष-स्त्री हैं, सदा भोगो मे रमण किया करते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ हैरण्यवत क्षेत्र का परिचय—अब रम्यक क्षेत्र के बाद हैरण्यवत क्षेत्र आता है। हैरण्यवत क्षेत्र का नाम यह क्यो पडा ? उसका कारण है कि उसके पास यह रुक्मी नाम का पर्वत है, वह स्वर्ण वणवाला है, हिरण्यवान है। उसके पास होने के कारण इस क्षेत्र का नाम हैरण्यवत रखा गया है। यह हैरण्यवत क्षेत्र कहाँ पाया जाता है ? यह रुक्मी और शिखरी इन दो पर्वतो के अन्तराल मे पाया जाता है। यह क्षेत्र रुक्मी पर्वत के उत्तर मे और शिखरी पर्वत के दक्षिण मे तथा पूर्व, पश्चिम समुद्र के अन्तराल मे यह हैरण्यवत क्षेत्र है और उसका इतना ही बडा विस्तार है, इस हैरण्यवत क्षेत्र के मध्य मे माल्यवान नाम का एक गोल पर्वत है, जैसे कि भरत ऐरावत क्षेत्र को छोडकर शेष के ५ क्षेत्रों मे पडे हुए हैं। विदेह क्षेत्र मे यह पर्वत मेरु कहलाता है, इस माल्यवान गोल पर्वत पर एक प्रासाद है जिस पर प्रभात नाम का देव निवास करता है। इस हैरण्यवत क्षेत्र मे जघन्य भोग भूमि है, जैसे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र मे जब तीसरा काल आता है, जैसे उस तीसरे काल मे मनुष्य पशु पक्षियो की रचना है वैसी ही रचना इस हैरण्यवत क्षेत्र मे सदा रहा करती है, इस कारण यह शाश्वत जघन्य भोग भूमि कहलाती है।

जम्बूद्वीपस्थ ऐरावत क्षेत्र का परिचय—हैरण्यवत क्षेत्र के बाद ऐरावत क्षेत्र आता है। ऐरावत क्षेत्र की रचना भरत क्षेत्र की रचना की तरह है। इस क्षेत्र का ऐरावत नाम क्यो पडा कि इस क्षेत्र मे ऐरावत नाम का राजा हुआ, जैसे कि भरत क्षेत्र मे भरत राजा कर्म भूमि के शुरु मे हुआ था और उसके नाम पर भरत नाम रखा गया था ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र मे कर्म भूमि की आदि मे ऐरावत राजा हुआ जिसके द्वारा देश की रक्षा हुई, तब ऐरावत क्षेत्र नाम प्रसिद्ध हुआ। यह क्षेत्र शिखरी पर्वत और पूर्व, पश्चिम, उत्तर मे समुद्र इसके मध्य मे ऐरावत क्षेत्र बसा है। जैसे भरत क्षेत्र की धनुषाकार रचना है वैसा ही धनुषाकार रचना इस ऐरावत क्षेत्र की है। इस ऐरावत क्षेत्र के मध्य मे भरत क्षेत्र की तरह विजयार्ध पर्वत है, जिस विजयार्ध पर्वत के होने से और शिखरी पर्वत के ऊपर स्थित पुण्डरीक सरोवर से रक्त, रक्तोदा दो नदियाँ निकली हैं, इस कारण इस ऐरावत क्षेत्र के ६ भाग होते हैं। चक्रवर्ती इन ६ खण्डो का विजय कर लेता है, इसी कारण उसे चक्रवर्ती कहते हैं। अब जिसके सीमा मे ७ क्षेत्रो का विभाग बना है वे पर्वत किस तरह स्थित हैं उनके वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

तद्विभाजिन पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध नील रुक्मि शिखरिणो वर्षधर पर्वता ॥११॥

जम्बूद्वीपस्थ छह कुलाचलों का निर्देश तथा हिमवान पर्वत का कथन—उन क्षेत्रो का विभाग करने वाले पूर्व और पश्चिम की ओर लम्बे ६ वर्षधर पर्वत हैं—जिनके नाम हैं—हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी, इन्हें वर्षधर क्यो कहते हैं कि वर्ष नाम है क्षेत्र का और उन क्षेत्रो की जो सीमा करे, क्षेत्रो के जो निकट रहे उसे वर्षधर कहते है। ये समस्त पर्वत पूर्व और पश्चिम की ओर लम्बे हैं और वहाँ तक चले गए जहाँ लवण समुद्र होता है याने यह लवण समुद्र को स्पर्श करने वाला है तथा उत्तर, दक्षिण में दोनों क्षेत्र हैं इस तरह से क्षेत्रो को यह धारण किए हुये हैं याने इसके होने से क्षेत्रो का विभाग बन जाता है उन पर्वतो मे से प्रथम पर्वत का नाम है हिमवान। इसका हिमवान नाम क्यो रखा ? तो ये सब नाम तो रुढि से हैं, निरुक्ति से यह अर्थ है कि

जिसके हिम हो, बर्फ हो उसे हिमवान कहते है, पर हिम है इस वजह से हिमवान है सो बात नही, किन्तु रूढि विशेष से इस ही नाम वाले वे पर्वत कहलाते हैं। यह पर्वत भरत क्षेत्रऔर हैमवत क्षेत्र इस सीमा मे स्थित है, अर्थात् इस पर्वत के दक्षिण की ओर तो भरत क्षेत्र है और उत्तर की ओर हैमवत क्षेत्र है। इस हिमवान का नाम क्षुद्र हिमवान समझना चाहिए। क्षुद्र का अर्थ है छोटा। तो यह हिमवान छोटा है यह कैसे जाना कि इसके आगे का जो कुलाचल पर्वत है उसका नाम महाहिमवान है जो हिमवान से चौगुना चौडा है, उस महा की अपेक्षा यह छोटे विस्तार वाला है, इस कारण इसे क्षुद्र हिमवान कहते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ हिमवान पर्वत का विस्तार—यह हिमवान पर्वत २५ योजन गहरा है अर्थात पृथ्वी के अन्दर है, १०० योजन ऊँचा है और १०५२ योजन तथा १२/१६ भाग विस्तार वाला है। चूंकि जम्बूद्वीप गोल है और उसकी वेदिका भी गोल है और उस गोल मे एक किनारे दक्षिण की ओर जो ५२६ योजन बाद यह चौडा पर्वत पडा है तो इस पर्वत के दोनो कोनो का आकार उत्तर की ओर तो लम्बा बन जाता है। दक्षिण की ओर कुछ छोटा रहता है, इस कारण उत्तर की ओर जो लम्बाई है वहधनुष की डोरी की तरह बन गई है। इसको ज्या कहते है। तो उत्तर की तरफ इस पर्वत की ज्या २४९३२ योजन तथा १/१६ योजन भाग प्रमाण है। उसमे थोडा सा कम रह जाता है। जब इस पर्वत के उत्तर मे एक डोरी बन गई और दक्षिण की ओर वह जोडा कम रह गया तो उस पर्वत मे ही उस डोरी से एककिनारे से दूसरे किनारे तकयदि विस्तार देखा जाये तो वह धनुष के आकार का बन जाता है। तो इस ज्या का धनुष कितने विस्तार वाला है ? २५२३० योजन तथा १ योजन के १६ भाग मे से ४ भाग एव थोडा सा अधिक और है। इस गोल जम्बूद्वीप मे इस पर्वत के होने से दोनो किनारो पर भुजा का आकार बन जाता है। तो इस पर्वत की दानो भुजायें याने पूर्व की ओर भुजा तथा पश्चिम की ओर भुजा, ये प्रत्येक ५३५० योजन तथा एक योजन के १६ भाग मे से १५ भाग तथा कुछ अधिक आधा भाग योजन का और इतना इसका विस्तार है।

हिमवान पर्वत पर अवस्थित कूटो की रचना का सक्षिप्त परिचय—इस हिमवान पर्वत पर पूर्व दिशा की ओर सिद्धायतन नाम का कूट है। इस कूट पर अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं। इस कूट का विस्तार नीचे तो ५०० योजन है। मध्य मे ३७५ योजन और ऊपर २५० योजन है। इस कूट की ऊँचाई ५०० योजन है। इस कूट के ऊपर जो अकृत्रिम जिन मन्दिर है उसकी ऊँचाई ३६ योजन है तथा उत्तर और दक्षिण की लम्बाई ५० योजन है, पूर्व और पश्चिम मे विस्तार २५ योजन है। इनमे प्रवेश की जगह जो द्वार बना हुआ है वह ८ योजन ऊँचा और ४ योजन चौडा है, ऐसा द्वार तीन दिशाओ मे है उत्तर, दक्षिण और पूर्व मे। इन तीनो द्वारो पर एक-एक मुख मण्डप है। जिसकी ऊँचाई कुछ अधिक ८ योजन है, लम्बाई ५० योजन है और चौडाई २५ योजन है। मुख मण्डप से आगे एक-एक प्रेक्षागृह है जो सुन्दर रचना से भरे हुए लोगो के चित्त को रमाने वाले हैं। जिसकी ऊँचाई कुछ अधिक ८ योजन लम्बाई ५० योजन और चौडाई भी ५० योजन है। इस प्रेक्षागृह से पहले स्तूप आदि बने हुए हैं और भीतर चैत्यालय बने हुए हैं। उन सबको घेरे हुए एक वेदिका है। जिसके चारो तरफ तोरण द्वार बने हुए हैं। ऐसे इस प्रथम हिमवान पर्वत पर सिद्धायतन कूट है। उससे पश्चिम की ओर १० कूट और है जिनका वर्णन सिद्धयतन कूट की तरह है। इन कूटो के ऊपर १० ही भव्य प्रासाद हैं, जिन प्रासादो पर उन-उन कूटो के नाम वाले देव और देवियां रहते हैं।

जम्बूद्वीपस्थ महाहिमवान पर्वत का वर्णन—इस हिमवान पर्वत से आगे हैमवत क्षेत्र है। उस क्षेत्र के बाद दूसरा महाहिमवान पर्वत आता है। यह महाहिमवान इस कारण कहलाता कि इसका विस्तार हिमवान पर्वत से चौगुना है। यह पवत हैमवत क्षेत्र और हरी क्षेत्र का विभाग बनाने वाला है। यह हैमवत क्षेत्र से जो उत्तर की ओर है और हरिवर्ष क्षेत्र से दक्षिण की ओर है। इस पर्वत से जुदे दो विभाग बने हुए हैं। दक्षिण की ओर तो हैमवत क्षेत्र है जहा जघन्य भोगभूमि है और उत्तर की ओर हरिवर्ष क्षेत्र है जहा मध्यम भोगभूमि है। यह महाहिमवान पर्वत २०० योजन ऊँचा है, ५० योजन गहरा है अर्थात पृथ्वी के नीचे है, ४२१० योजन तथा एक योजन के १९ भागो मे से १० भाग प्रमाण उसका विस्तार है। यह पर्वत भी चू कि गोल जम्बूद्वीप के अन्दर है तो इसमे भी दोनो किनारो पर भुजायें बन जाती हैं। क्योंकि उत्तर की ओर तो इसकी लम्बाई अधिक है, दक्षिण की ओर इसकी लम्बाई कम है। इस कारण दोनो किनारो पर भुजाओ का आकार बन जाता है। इन प्रत्येक भुजाओ का विस्तार २०७६ योजन है तथा एक योजन के १९ भागो मे से ९ भाग प्रमाण है एव कुछ अधिक आधा योजन और हैं। इस पर्वत के उत्तर की ओर की लम्बाई चू कि ज्यादह है अतएव वह पर्वत एक स्वय अपने मे धनुषाकार बन गया है। तो उसके उत्तर तरफ की डोरी ५३९२१ योजन है तथा एक योजन के १९ भागो मे से ६ भाग प्रमाण है। और उस डोरी से यह धनुष जो बन तो उस धनुष का विस्तार ५७००० योजन तथा २९३ योजन है। एव एक योजन के १९ भागो मे से १० भाग प्रमाण और है। जैसे हिमवान पर्वत के ऊपर कूट थे इसी प्रकार इस महाहिमवान पवत के ऊपर भी कूट हैं। ये कूट सब ८ हैं जिनमें प्रथम कूट का नाम सिद्धायतन कूट है। यहा अकृत्रिम जिन मन्दिर है। और जिन मन्दिर से सम्बन्धित प्रेक्षागृह आदि अनेक रचनायें हैं। जैसेकि हिमवान पर्वत पर ये सब रचनायें थी। शेष ७ कूटो पर उस कूट के नाम वाले देव और देविया निवास करती हैं।

जम्बूद्वीपस्थ निषध पर्वत का वर्णन—अब तीसरे पर्वत निषध का वर्णन करते हैं। निषध पर्वत हरिक्षेत्र और विदेह क्षेत्र की मर्यादा का कारणभूत है अर्थात निषध पर्वत से दक्षिण की ओर हरि क्षेत्र है और उत्तर मे विदेह क्षेत्रहै। इस पर्वत का नाम निषध क्यो रखा गया ? निषध शब्द का अर्थ है—निषीधति तस्मिन् इति निषध, निषध करना अर्थात क्रीडा के लिए, मन रमाने के लिए जहा विहार हो, जिस पर देव और देविया क्रीडा के लिए व विहार करती हैं उसे निषध कहते है। सो यद्यपि ऐसे सभी पर्वतो पर देव और देविया क्रीडायें करती हैं तो भी रूढि बल से इस पर्वत का नाम निषध रखा गया है। यह निषध पर्वत ४०० योजन ऊँचा १०० योजन गहरा अर्थात पृथ्वी के अन्दर है १६८४२ योजन तथा एक योजन के १९ भागो मे से दो भाग प्रमाण उसका विस्तार है। गोल जम्बूद्वीप मे यह पर्वत भी इस तरह पडा हुआ है कि इसका उत्तरी भाग तो लम्बा है और दक्षिणी भाग उससे कम है इस कारण से निषध पर्वत के पूर्व और पश्चिम मे भुजायें बन जाती हैं। ये प्रत्येक भुजायें २०१६५ योजन हैं तथा एक योजन के १९ भागो मे से दो भाग प्रमाण तथा कुछ अधिक अर्द्धयोजन और है। गोल जम्बूद्वीप मे बीच से हटकर एक ओर पर्वत होने से जैसी उसकी भुजायें बनी हैं तो ये भुजायें तब ही बनी हैं जब इन पर्वतो का उत्तर मे विस्तार अधिक है इस कारण निषध पर्वत के उत्तर तरफ की डोरी ९४१५६ योजन तथा एक योजन के १९ भाग मे से दो भाग और है। जब इस पर्वत की ज्या बन गई तो उसका आकार बन गया। तो इस ज्या का धनुष १२४३४६ योजन तथा एक योजन

के १९ भाग मे से ६ भाग प्रमाण अधिक है। वह निषध पर्वत उदयाचल और अस्ताचल का काम करता है। जब निषध पर्वत से उदय होता है तो दक्षिण भाग मे भरत क्षेत्र की ओर दिन होता है। जब निषध पर्वत के पश्चिम की ओर अस्त होता है तो पूर्व विदेह मे दिन होता है और दक्षिण मे रात्रि होती है। इसी प्रकार जब सूर्य नील पर्वत से उदित होता है तो पूर्व विदेह मे दिन होता है और जब निषध पर्वत से उदय होता है तो वहा वाला अस्त कहलाया तब पूर्व विदेह मे रात्रि होती है। इस निषध पर्वत पर ९ कूट हैं, जिनमे एक सिद्धायतन कूट है, शेष देवो के निवास के लिए प्रासादो से अलकृत है। सिद्धायतन कूट पर जो अकृत्रिम जिनमन्दिर है उसका परिमाण अन्य जिनायतनो की तरह जानना।

जम्बूद्वीपस्थ नील रुक्मी एव शिखरी पर्वत का वर्णन—निषध पर्वत के बाद विदेह क्षेत्र आता है। विदेह क्षेत्र के बाद फिर नील पर्वत आता है। यह नील पर्वत विदेह क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र का विभाग करता है याने नील पर्वत से दक्षिण की ओर विदेह क्षेत्र है और उत्तर की ओर रम्यक क्षेत्र है। यहा सर्वत्र दिशाओ का प्रयोग भरत क्षेत्र की अपेक्षा से किया जा रहा है, इसका नाम नील पर्वत क्यो रखा गया कि इस पर्वत का रग नीला है। नील वर्ण के योग से इस पर्वत का नाम नील रखा गया है। यह नील पर्वत विदेह और रम्यक क्षेत्र का विभाग करने वाला है। इसका प्रमाण निषध पर्वत की तरह है, जितना लम्बा-चौडा पर्वत, ज्या धनुष ये सभी प्रमाण निषध पर्वत की तरह हैं, नील पवत पर ९ कूट हैं, जिनमे से एक सिद्धायतन कूट है, जिस पर अकृत्रिम जिनमन्दिर है। शेष ८ कूटो पर उस-उस नाम वाले देवो के रहने के प्रासाद हैं। नील पर्वत से उत्तर की ओर रम्यक क्षेत्र है, उसके बाद रुक्मी नाम का कुलाचल है। यह रुक्मी पर्वत रम्यक क्षेत्र और हैरण्यवत क्षेत्र का विभाग करने वाला है याने नील पर्वत से दक्षिण की ओर रम्यक क्षेत्र है, और उत्तर की ओर हैरण्यवत क्षेत्र है, इस पर्वत का सब कुछ प्रमाण वही प्रमाण है जो महाहिमवान पर्वत का प्रमाण है। इस पर्वत का नाम रुक्मी क्यो पडा? तो रुक्म के सद्भाव से इसका नाम रुक्मी हुआ है। जिसमे रुक्म हो अर्थात् चाँदी हो उसे रुक्मी कहते हैं। इस रुक्मी पर्वत पर ८ कूट हैं जिनमे एक सिद्धायतन कूट है, शेष ७ देव देवियो के रहने के स्थान है, सिद्धायतन कूट पर अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। शेष प्रसादो पर उस-उस कूट के नाम वाले देव देवियाँ निवास करते हैं। रुक्मी पर्वत से उत्तर मे हैरण्यवत क्षेत्र है, उससे आगे शिखरी नाम का पर्वत है। यह शिखरी पर्वत हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्र की मर्यादा बताने वाला है। शिखरी पर्वत से दक्षिण की ओर हैरण्यवत क्षेत्र है और उत्तर मे ऐरावत क्षेत्र है यह सब दिशाओ का विभाग भरत क्षेत्र मे जैसे बताया गया है उसके अनुसार है। इस पर्वत का नाम शिखरी क्यो रखा? यह सब अर्थ शिखरी शब्द यो बताता है कि जहाँ शिखर हो अर्थात् कूट हो उसे शिखरी कहते हैं। यद्यपि कूट सभी पर्वतो पर आये है पर रुढि बल से इस पर्वत मे शिखरी शब्द का व्यवहार किया गया है। शिखरी पर्वत पर ११ कूट हैं जिनमे एक सिद्धायतन कूट है, जिस पर अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं, शेष १० देवो के निवास स्थान के कूट हैं, उन कूटो पर बडे प्रासाद बने हैं जिनमे ११ उस-उस कूट के नाम वाले देव और देवियाँ निवास करती हैं। इस प्रकार मेरु पर्वत के ७ क्षेत्रो का विभाग करने वाले ये ६ कुलाचल पर्वत हैं, इन पर्वतो का वर्ण क्या है? किस रग का यह पर्वत है? इसका ज्ञान कराने के लिए सूत्र कहते हैं।

हेमार्जुन तपनीय वैडूर्यरजत हेममया.॥१२॥

जम्बूद्वीपस्थ छह कुलाचलो का वर्णन—ये हिमवान आदिक पर्वत किस रग वाले हैं इसका उत्तर इस सूत्र मे किया गया है ? हिमवान पर्वत तो स्वर्णमय है, महाहिमवान पर्वत शुक्ल वर्ण का है, चाँदीमय निषध पर्वत तपनीय स्वर्णमय है, जैसे तप्त स्वर्ण का विशिष्ट लाल रग होता है उस प्रकार के रग वाला है अथवा कैसा कि अधिक दोपहर मे सूर्य का जो वर्ण होता है उस तरह का वर्ण है। नील पर्वत वैडूर्यमय है। मोर की ग्रीवा अर्थात् कठ की जो आभा होती है उस आभा की तरह इस पर्वत का वर्ण है। रुक्मी पर्वत शुक्ल वर्ण वाला है याने रजतमय है। शिखरी पर्वत स्वर्णमय है। ये सब छहो पर्वत वनखण्डो से सहित है याने इन सब पर्वतो के दोनो ओर बहुत सुन्दर वनखण्ड है, तो जिन वनखण्डो मे अनेक द्वार है, तोरणो से सुसज्जित हैं, वेदिका से घिरे हुये हैं और जितनी लम्बाई उन पर्वतो के किनारो पर है इतनी लम्बाई के हैं और आधे योजन के विस्तार मे हैं, ऐसे वनखण्डो से सुसज्जित ये छहो कुलाचल पर्वत हैं। अब ये छहो कुलाचल पर्वत कैसे सस्थान आकार मे है इसका वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

मणिविचित्र पार्श्वा उपरि मूल च तुल्य विस्तारा ॥१३॥

ये छहो पर्वत आकार मे तो ये दीवाल के समान हैं याने जितने विस्तार मे नीचे हैं उतने ही विस्तार मे वे मध्य मे हैं, उतने ही विस्तार मे वे ऊपर है। इन पर्वतो का किनारा अर्थात् पर्वतो के दोनो ओर का भाग नाना वर्ण वाले विचित्र प्रभाव वाली मणियो से खचित है। पर्वत प्राय जो देखे जाते हैं वे अटपट आकार के हुआ करते हैं और नीचे बहुत चौडे और ऊपर अत्यन्त सकरे होते हैं, किन्तु ये समस्त कुलाचल अकृत्रिम हैं, वज्र जैसे दृढ हैं। इनमे परमाणुओ का आना-जाना तो सतत रहता है फिर भी इनमे हीनाधिकता या अन्य परिवर्तन नही हुआ करता है और इस पर बहुत अच्छे विहार स्थान रहा करते हैं और यहाँ ऊपर इस क्षेत्र की तरह बहुत विस्तार की रचना वाले हैं। तो इनका सस्थान अन्य प्रकार अटपट नही होता। यह बात बताने के लिये इस सूत्र मे यह बात कही गई है कि इन समस्त पर्वतो का जितना मूल मे विस्तार है उतना ही ऊपर मे है, उतना ही मध्य का विस्तार है। यह बात भी समझने योग्य है। अच्छा ये पर्वत साधारण विस्तार वाले नही हैं। यह भरत क्षेत्र ५२६ ६/१९ योजन है, इससे दुगुना हिमवान पर्वत है और जितना नीचे विस्तार है उतना ही इसका ऊपरी विस्तार है, इससे दूना दूसरा क्षेत्र है जितना कि हिमवान पर्वत का विस्तार है उससे दुगुना अगले क्षेत्र का विस्तार है और उस क्षेत्र से भी दुगुना हिमवान पर्वत का विस्तार है। तो यह पर्वत एक बहुत बडे विशाल क्षेत्र जैसे मैदान को लिए हुए है। इस पर देवी-देवताओ के विहार के सुन्दर स्थान हैं, ऐसी अकृत्रिम रचना से सुशोभित यह जम्बूद्वीप है।

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरिमहापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥

जम्बूद्वीप के मध्य मे जो ६ कुलाचल पर्वत कहे गए—हिमवान आदिक उन कुलाचलो पर ऊपर ठीक बीच मे ६ ह्रद हैं, जिनके नाम हैं पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और, और पुण्डरीक, ये जो ६ नाम कहे गये हैं ये तो कमल के पर्यायवाची शब्द हैं, पर इन छहो का नाम यह क्यो रखा गया ? तो समाधान यह है कि कमलो का वहाँ सत्त्व है तो उनके सम्बन्ध से इन छहो का नाम भी यही रखा गया है, और जैसे-जैसे वे पर्वत हैं छोटे-बडे और वैसे ही उन पर छोटे-बडे तालाब हैं तो ऐसे ही उनमे रहने वाले मुख्य कमलो के नाम भी इसी ढग से रखे गये हैं। जैसे पद्म यह पहिले ह्रद पर कमल हुआ, तो अगले ह्रद पर महापद्म, वह बडा कमल हुआ, और छठवें

हृद का नाम है पुण्डरीक। पुण्डरीक भी कमल को कहते हैं, तो ५वें का नाम है महापुण्डरीक। तो इसी प्रकार तिगिञ्छ व केशरी (केशर वाला) ये सब कमल के ही नाम हैं, इन कमलों का सम्बन्ध होने से उनके हृदो का नाम भी यही रखा गया है। यह कमल वनस्पतिकायिक नही है। हैं तो पृथ्वी-काय, किन्तु इसकी रचना कमल की तरह है और उन पर प्रासाद बने है। उन पर देव देवियो के निवास है। यह सब एक अकृत्रिम अनादि पारिणामिक रचना है। अब यह बतलाते है कि उन हृदो मे जो कमल है वह कमल कितना बडा है, और वे तालाब कितने लम्बे-चौडे है। तो सबसे पहले तालाब की याने पद्म नामक हृद की बात कह रहे है।

प्रथमो योजन सहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो हृद ॥१५॥

पहला हृद अर्थात् पद्म सरोवर पूर्व से पश्चिम तक एक हजार योजन का तो लम्बा है उत्तर से दक्षिण तक ५०० योजन चौडा है, इस हृद का जो तल भाग है वह बज्रमय है। कही ऐसा भुरभुर पृथ्वीकाय नही है कि जो गले, जहाँ गड्ढा बन जाए अथवा जल उसके और नीचे चला जाए। इन हृदो का तलभाग बज्रमय हुआ करता है, इन हृदो के जो तट है याने चार तरफ के जो किनारे है वे नाना प्रकार के मणि स्वर्ण चाँदी आदिक से रचे गये है, विचित्र तट है, उन कमलो के चारो तरफ वेदिका घिरी हुई है, जिसकी लम्बाई तो सरोवर के बराबर है, जो अनेक स्वर्णमय स्तूपो से चारो तरफ अलकृत है। तोरण लगे हुये है, जिन द्वारो की ऊँचाई आधा योजन है और चौडाई ५०० धनुष है। जिसके चारो दिशाओ के चारो वनखण्ड है, इन हृदो मे जल गम्भीर अक्षय कभी दिखने वाले नही है, स्वच्छ है और ये हृद केवल एक ही मुख्य कमल वाले नही है, किन्तु अन्य भी नाना प्रकार के जलो मे उत्पन्न होने वाले पुष्पो की तरह आकार वाले हैं। तो यह पद्म नामक हृद है। अब इस हृद का अवगाह कितना है ? याने कितना गहरा है ? उसे बताते है।

दश योजनावगाहः ॥१६॥

जम्बूद्वीपस्थ हिमवान पर्वत के मध्य स्थित पद्म हृद का अवगाह—पद्म हृद का अवगाह अर्थात् नीचे प्रवेश याने नीचाई १० योजन की है अर्थात् सभी तरफ १० योजन गहरे है, जैसे कृत्रिम तालाब जो वर्षा ऋतु मे पानी से भरे हैं, अथवा झिरो से भरे हुये हो, वे किनारे पर कम गहरे और बीच मे अधिक गहरे होते हैं, ऐसी उन हृदो की कम बढ गहराई नही है किन्तु ये सर्वत्र १० योजन गहरे पाये जाते है। चूँकि यह सब अकृत्रिम रचना है, अनादि से ऐसी ही बनी हुई है, उनमे अनेक परमाणु आते है तो अनेक परमाणु निकलते भी है, तिस पर भी मोटे रूप से यह रचना ज्यो की त्यो रहा करती है। तो इस प्रकार यह हृद १० योजन गहरा है। अब इस हृद के बीच मे एक मुख्य कमल है, जिसके नाम से हृद का भी वही नाम पडा है, उस कमल का वर्णन करने के लिए सूत्र कहते है।

तन्मध्ये योजन पुष्करम् ॥१७॥

पद्म हृद के मध्य मे स्थित पद्म का विस्तार व परिवार–इस पद्म हृद के बीच मे एक योजन प्रमाण वाला कमल है। यह कमल पृथ्वीकायिक है, इस पर प्रासाद बने हुये है, जिन पर कौन सी देवी रहती है ? इसका वर्णन आगे के सूत्रो मे आयेगा। तो यह कमल एक योजन प्रमाण है और इसका पत्र एक कोश लम्बा है पत्र की तरह जो एक रचना फैलती हुई चली गई है पृथ्वी मे वह एक कोश लम्बी है, जिनकी कर्णिका दो कोश के विस्तार वाली है, जैसे कमल के बीच कर्णिका होती है इसी प्रकार की रचना इस पुष्कर मे पायी जाती है। अब एक योजन लम्बे-चौडे जल तल से दो कोश

ऊँचा इन कमलो का नाल है, जैसे कमल मे डडी होती है हरी और ऊपर कमल फैला होता है, ठीक इस प्रकार से यहाँ रचना पायी जाती है, तो इसकी नाल दो कोश ऊँचा है, और उतने ही विस्तार मे पत्रो का समूह है। इसका मूल वज्रमय है और अरिष्ट मणिका कद बना हुआ है याने जब कोई कमल सरोवर मे होता है तो नीचे कद होता है और उस कद से अनेक डालें भी निकलती हैं जिन्हे मृडाल कहते हैं और वे ऊपर नाल से निकलकर कमल हुआ करती हैं और यही रचना इस ढग से यहाँ पायी जा रही है, जिसका कद तो अरिष्ट मणियो का है और जिसके मृडाल रजत और मणियो के बने हुए हैं, जिनकी डडी वैडूर्यमणि की बनी हुई है, इस कमल का बाह्य पत्र तपे हुये स्वर्णमय है, जिसके भीतर का तल भी स्वर्णमय है जिसका केसर यह कमल की कणिकाओ के बीच मे पतले-पतले बहुत से केसर होते है तो इस अकृत्रिम पुष्कर मे भी तपे हुये स्वर्ण के केसर होते हैं। नाना मणियो से चित्र विचित्र स्वर्णमयी कणिका है। ऐसा यह कमल १०८ अन्य कमलो के परिवार सहित है अर्थात् यहाँ १०८ भाँति के कमल हैं जिनकी ऊँचाई इस मुख्य कमल से आधी है। इन कमलो से पूरब, पश्चिमोत्तर इन तीन दिशाओ मे श्री नाम की देवी के सामान्य देवो के चार हजार पद्म और हैं, इस हृद मे जो मुख्य कमल है उस कमल पर श्री नाम की देवी का निवास है और इस हृद मे श्री देवी के सामानिक देव रहा करते हैं। दक्षिण पूर्व दिशा मे श्री देवी के आभ्यतर परिषद् के देव हैं, जिनके ३२ हजार कमल हैं। ये सब कमल पृथ्वीकायिक हैं। इन पर इन देवो के रमणीक महल बने हुए है। दक्षिण दिशा मे मध्यम परिषद् के देवो के निवास हैं, इनके ४० हजार कमल बने हुए हैं। दक्षिण, पश्चिम दिशा मे बाह्य परिषद् के देवो के कमल हैं। ये कमल ४८ हजार हैं। पश्चिम दिशा मे ७ सेना प्रधान के ७ कमल हैं। चारो महादिशाओ मे आत्मरक्ष देवो के १६ हजार कमल हैं। ये सभी परिवार के कमल उस मुख्य कमल से आधी ऊँचाई वाले हैं, ये सब १,४०,१५० (एक लाख चालीस हजार एक सौ पचास) हैं। इस तरह अनेक कमलो मे बने हुए प्रासादो मे नाना प्रकार के देवो के निवास हैं, उनके बीच मे शोभा को प्राप्त मुख्य कमल है जिस पर श्री नाम की देवी का निवास है। अब ऐसे जो हृद हैं और कमल हैं उनकी लम्बाई, चौडाई आदिक बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

तद्द्विगुणद्विगुणा हृदा पुष्कराणि च ॥१८॥

पद्म महापद्म व तिगिच्छ हृदो व पुष्करो का वर्णन—अन्य हृदो मे जो कमल है और वे हृद उससे दूने-दूने विस्तार वाले हैं, जितना विस्तार पद्म हृद का है उससे दूना विस्तार महापद्म का है, उससे दूना विस्तार तिगिच्छ हृद का है, और जैसे ही इस दक्षिण तरफ पहले से दूने-दूने विस्तार के कमल हैं उत्तर दिशा मे ऐसे ही हैं। जो छठा हृद है उत्तर की ओर जिसका नाम है पुण्डरीक, उससे दक्षिण की ओर दूने-दूने विस्तार वाले हृद हैं अर्थात् पुण्डरीक, उससे दूना विस्तार है महापुण्डरीक का, उससे दूना विस्तार है केसरी का। यहा सूत्र मे जो द्विगुणा बहुवचन कहा गया उससे सिद्ध है कि अनेक हृद और अनेक कमलो का वर्णन इसमे किया जा रहा है। केवल एक ही हृद या एक ही पुष्कर ऐसा दो को मिलाकर नही कहा जा रहा, और इसी कारण द्विगुणौ, ऐसा द्विवचन का शब्द नही दिया गया। अब इस विस्तार का विवरण इस प्रकार है कि महाहिमवान पवत के ऊपर ठीक बीचोबीच महापद्म नाम का हृद है जो दो हजार योजन लम्बा है और एक हजार योजन चौडा है और गहरा २० योजन है इस महापद्म हृद के बीच मे जल तल से दो कोश ऊचा एक

योजन के विस्तार वाले पत्तो से घिरा हुआ दो कोश लम्बे जिसके पत्र है और जिसकी कर्णिका एक योजन लम्बी है और इस कारण जिसका विस्तार २ हजार योजन हो गया है ऐसा कमल है। यह कमल बज्रवत् अभेद्य है ठोस पृथ्वीकायिक रचना है। अनादि से अकृत्रिम इसी प्रकार चली आयी है, जिन पर ह्री नाम की देवी का प्रासाद है। इसके चारो ओर अनेक कमल हैं जिस पर भव्य प्रासाद है, जहाँ सामानिक आदिक अनेक देव निवास करते है। ये सभी कमल, प्रासाद, देव आदिक ह्री नाम की देवी के परिकर के रूप मे है। इस ह्री देवी के निवास का जो कमल हैं उसके परिवार के कमलो की सख्या पद्म हृद मे बने हुये परिवार की तरह है। महापद्म हृद से उत्तर दिशा मे आगे बढकर जो निषध पर्वत आता है उस निषध पर्वत के ऊपर ठीक बीच मे तिगिन्छ नाम का हृद है, जिसकी लम्बाई ४ हजार योजन है, चौडाई दो हजार योजन है, गहराई ४० योजन है। इस हृद के ठीक बीच मे जल तल से दो कोश ऊ चा कमल है जो दो योजन के विस्तार वाले पत्तो से भरा हुआ है, क्योकि उन पत्तो का आयाम ही एक योजन है। जैसे कमल की कर्णिका दो योजन लम्बी है, चार योजन लम्बाई-चौडाई वाला है, ऐसा यह पुष्कर यह तीसरे हृद के बीच मे रहने वाला है। इसके परिवार के कमलो की सख्या पहले बताये हुए की तरह है, इस तरह दक्षिण दिशा मे प्रथम हृद से लेकर उत्तर की ओर रहने वाले दो हृदो समेत तीन हृदो का वर्णन हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ केशरी, महापुण्डरीक व पुण्डरीक हृद व पुष्करों का वर्णन—अब आगे के हृदो की लम्बाई-चौडाई इन हृदो की तरह है, क्योकि गोल जम्बूद्वीप मे जो बीचोबीच अन्दर से ६ पर्वत पडे हुए है तो जितनी रचना इस दक्षिण के भाग मे है ठीक इसी प्रकार की रचना उत्तर के आगे भाग मे है। तो निषध पर्वत के बाद उत्तर की ओर नील पर्वत आता है, उसके ऊपर ठीक बीच मे केसरी नाम का हृद है और उसमे कमल है, इन सबका विस्तार तिगिन्छ हृद की तरह है, और निषध पर्वत के कमल पर तो धृति नाम की देवी का निवास है और केसरी हृद के कमल पर कीर्ति नामक देवी का निवास है उसके अनेक परिवार के कमल सब कुछ रचना तीसरे सरोवर की तरह है। उत्तर की ओर आगे चलकर ५ वाँ कुलाचल पर्वत है। रुक्मी या रुक्मी पर्वत के ऊपर ठीक बीचोबीच महापुण्डरीक हृद हैं, जिसका सब कुछ विस्तार महापद्म हृद की तरह है अर्थात् ५ वें हृद और उस हृद मे रहने वाले कमल का सब कुछ वर्णन दूसरे हृद के तुल्य है। इसमे बुद्धि नामक देवी का निवास है, अन्तिम कुलाचल शिखरी पर्वत है उसके उत्तर ठीक बीचोबीच मे पुण्डरीक नामक हृद है। उसका विस्तार पद्म हृद की तरह है और उसमे रहने वाले कमल आदिक का भी विस्तार सख्या पद्म हृद के कमल की तरह है।

अकृत्रिम रचना की शोभा की असदिग्धता—यहाँ एक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा रख रहा है कि इस अध्याय मे जो द्वीप समुद्र का इतना वर्णन किया जा रहा है तो यह वर्णन एक सिलसिले का है और बडी शोभा वाला है। वर्णन के अनुसार नक्शा बनाया जाए तो बहुत सुन्दर लगता है ' तो क्या अकृत्रिम रचना इस तरह की सही-सही नाप-तौल की और सुन्दर हुआ करती है ? जो सही नाप तौल और शोभा वाली रचना है वह तो की हुई ही हो सकती है। इस जिज्ञासा के समाधान मे कहते हैं कि कृत्रिम रचना मे जो शोभा हो सकती है उससे कई गुणा शोभा अकृत्रिम रचना मे होती है। जैसे कही-कही पत्थरो पर फूल का चित्र आ जाये और बडे नाप-तौल ढग से एक समान आदिक अनेक बातें देखी जाती है तो जो अकृत्रिम रचना है उसमे प्रकृत्या सुना जाता है अनेक देशो मे केवल पत्थर

हो ऐसे फूल के आकार के बनते हैं कि जिनको जरा भी बनाना नही पडता हैं और बडो शोभा वाले होते हैं। तो जो द्वीप समुद्र की रचना है, जिसकी इतनी अद्भुत शोभा है वह तो अकृत्रिम मे ही बन सकती है, कृत्रिम इतना सुन्दर नही हो सकता।

द्वीप समुद्र आदि की अकृत्रिमता के विषय मे एक आशका—अब यहाँ शकाकार कहता है कि ये सब क्या, कोई भी जगत का पदार्थ अकृत्रिम हो ही नही सकता। किसी न किसी के द्वारा बनाया हुआ हुआ करता है अर्थात् ये द्वीपादिक, यह पृथ्वी भी सब कुछ, यह लोक सारा जगत किसी एक ईश्वर का बनाया हुआ है क्योंकि इसमे आकार पाया जा रहा है। जिन चीजो मे आकार पाया जाता है वे किसी के द्वारा बनाई गई होती हैं, और जैसे घडा कपडा ईंट ये सब किसी के बनाये हुये हैं किन्तु पृथ्वी द्वीप पर्वत जैसे विशाल पदार्थ जिनका बनाने वाला कोई सामान्य पुरुष तो होता नही और चूँकि इनमे आकार है इस कारण यह सिद्ध होता है कि यह ईश्वर के द्वारा, एक किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है और जब सब कुछ ईश्वर के द्वारा किया गया है तो इसे अकृत्रिम बताना, और अकृत्रिम बताकर इसकी शोभा बताना एक वचनमात्र है। यह कोई अकृत्रिम नही है। जगत के सभी पदार्थ कृत्रिम हैं। जोव हो, अजीव हो, जो भी वस्तु है चेतन-अचेतन, चर-अचर, सारा जगत एक बुद्धिमान के द्वा ा बनाया गया है।

उक्त शका के समाधान मे कहते हैं कि ईश्वर के द्वारा यह लोक बना ऐसी आशका रखने वाले यह तो बताये कि जिस ईश्वर के द्वारा यह सब कुछ बना वह ईश्वर देह सहित है, या देह रहित है। अगर कहो कि देह सहित है तो देह भी तो आकार वाला है, उस ईश्वर के देह को किसने बनाया ? अगर कहो कि उस ईश्वर के देह को दूसरे ईश्वर ने बनाया तो वह भी तो देह वाला है, उसे किसने बनाया ? इस तरह तो अनेक ईश्वर मानकर भी व्यवस्था नही बन सकती। तो देखो कि ईश्वर का देह आकार वाला है मगर वह किसी के द्वारा बनाया गया नही है। यह ही तो कहना पडेगा। तो इस हेतु मे निर्दोषता तो न रही कि जो-जो आकार वाली चीज हैं वह किसी न किसी के द्वारा बनाई हुई हैं। आकारवान देह भी है ईश्वर का मगर उसे मानेंगे कि अन्य-अन्य ईश्वर ने बनाया तो ईश्वर मे अनवस्था हो जाएगी। यदि यो मानेंगे कि वह देह किसी के द्वारा बनाया गया नही है तो जैसे ईश्वर का देह किसो के द्वारा बनाया गया नही है ऐसे ही जगत के सभी पदार्थ किसी के द्वारा बनाये गये नही, ऐसा मानने मे क्या आपत्ति ? यदि शकाकार यह कहे कि ईश्वर के देह नही है, वह तो निर्देह होता है तो यह भी बात यो नही बनती कि जो-जो जीव निर्देह होते हैं, देह शून्य है उनके द्वारा किसी चीज की उत्पत्ति सम्भव नही है। वे किसी पदार्थ के निमित्त कारण नही बन सकते हैं। जैसे मुक्तात्मा जो जीव मुक्त हो गए हैं, देह जिनके नही रहा है वे मुक्तात्मा किसी को बना नही सकते, जगत की किसी चीज के निमित्त कारण नही है।

परमात्मा के परकर्तृत्व के दोष सिद्धान्त की मीमांसा—शकाकार का सिद्धान्त यह कह रहा है कि ईश्वर एक है और वह अनादि से अनन्त काल तक है, उसके द्वारा तो जगत रचा जाता है और जब कभी कोई जीव तपश्चरण ज्ञान करके मुक्त हो जाए, कर्मों से छूट जाए, जन्म-मरण से रहित हो जाए तो वह कहलाता है मुक्तात्मा। मुक्तात्मा ईश्वर से बडा नही माना गया। खैर मुक्तात्माओ के देह तो नही है, जब देह नही है तो वे सृष्टि के कर्त्ता भी नही बन पाते। तो जिसके देह नही है वह सृष्टि का करने वाला कैसे हो सकता ? तो ईश्वर को निर्देह मानने पर भी सृष्टिकर्त्तापन की

सिद्धि नही हो सकती। अब यहाँ शकाकार कहता है कि ईश्वर निर्देह है तो भी चूकि वह नित्य ज्ञान वाला है, उसका ज्ञान सदा रहता है, सर्वज्ञ है तो नित्य ज्ञान वाला होने से वह जगत की सृष्टि का कारण बनता है। जो कुछ जानता ही नही, वह वस्तु कैसे बनाएगा ? कुम्हार के सब पता है कि मिट्टी से और इस-इस प्रकार के साधन से घडा बनाया जाता तो वह घड़ा बनाता है। तो जिसको कुछ पता हो, ज्ञान हो वही तो कार्य कर सकता है। तो ईश्वर भी सबका ज्ञाता है इस कारण वह सृष्टि कर सकता है। ऐसा कहने वाले शकाकार जरा विचार तो करें कि इसमे अन्वय व्यतिरेक भी घटित होता है या नही ? यदि शकाकार यह उत्तर दे कि अन्वय तो घटित हो जाता है, नित्य ज्ञान वाला है इसलिए वह सृष्टि का करने वाला है और व्यतिरेक माने इससे भिन्न बात सिद्ध होती नही, क्योकि हम आप जगत के जो जीव हैं वे नित्य ज्ञान वाले नही हैं इस कारण ये सृष्टि के कर सकने वाले नही है। नित्य ज्ञान वाला ईश्वर है तो ऐसी शका और शका के समर्थन मे समाधान करने वाला जरा सोचे तो सही कि हम आप जगत मे जितने भी प्राणी हैं क्या इनके नित्य ज्ञान नही है ? हम आप सब इन जीवो के प्रतिक्षण ज्ञान नये-नये होते तो जाते हैं मगर सतान उसकी, सामान्य स्वभाव की दृष्टि से देखें तो ज्ञान नित्य है, क्योकि ज्ञान सामान्य से रहित कोई भी जीव नही है। अगर ज्ञान सामान्य न हो तो जानने का व्यापार कैसे बन सकेगा ! जब कोई चीज सदा काल है तो उसे ही की तो अवस्था बनती है, अर्थात् हम सब जीवो के भी ज्ञान मे नित्यपना है लेकिन सब सृष्टि के करने वाले नही हैं, तो जिसका ज्ञान नित्य है वह सृष्टि को करे यह कोई युक्ति सिद्ध बात न बनी तो भगवान ईश्वर का ज्ञान नित्य है इससे सृष्टिकर्त्ता है, यह बात खण्डित हो जाती है।

सभी जीवो के ज्ञान मे नित्यत्व और अनित्यत्व के दर्शन—दूसरी बात यह है कि कोई भी ज्ञान सर्वथा नित्य हो ही नही हो सकता। ईश्वर का ज्ञान हो तो भी या ससारी प्राणी का ज्ञान हो तो भी, कोई भी ज्ञान सर्वथा नित्य नही होता क्योकि जानन भी रहे और नित्यपना भी रहे ये दो बातें एक साथ नही हो सकती। यदि शकाकार यह कहे कि दोनो बाते एक साथ ईश्वर के ज्ञान मे तो हो जाती है, क्योकि ईश्वर इनसे विलक्षण चीज है, जो बात इसमे पायी जाती है उससे हम ईश्वर को भी वैसा ही मानें तो कैसे हो सकता ? वह तो एक विशिष्ट जीव है आत्मा है वह उतना ही ज्ञान है, ऐसा जो अनित्य होता है, पर ईश्वर का ज्ञान नित्य है इसलिए समाधान देने वाला शकाकार अगर थोडा भी विचार करें तो यहाँ समझ मे आ सकेगा कि ज्ञान सर्वथा नित्य नही हो सकता, क्योकि ज्ञान करने वाला सर्वथा नित्य है तो ज्ञान का फल क्या रहा ? सर्वथा अपरिणामी नित्य। नित्य मे कोई अवस्था ही नही बनती। उन अवस्थाओ से काम भी न बन सकेगा, अज्ञान निवृत्ति भी न हो सकेगी। तो नित्य ज्ञान मे फल नही हो सकता, इस कारण से ईश्वर का ज्ञान नित्य माना नही जा सकता। फल रहित ज्ञान-ज्ञान ही नही हुआ करता और अगर माने कि ईश्वर के ज्ञान का भी फल है तो फल अनित्य हो गया। तो एक ही ज्ञान मे नित्यपना और अनित्यपना एकान्तवादियो के कैसे सम्भव हो सकता ? अगर उस ही ज्ञान का फल मानते तो नित्य न रहेगा। अगर कहो कि फल वाला ज्ञान दूसरा है और यह नित्य ज्ञान यह दूसरी चीज है तो क्या ऐसा एक आत्मा मे क्या भिन्न-भिन्न धर्म वाले दो ज्ञान हुआ करते हैं ? फल तो प्रमाण हुआ करता है और प्रमाण एक कार्य है, ज्ञान की अवस्था है। तो जब फल हो गया ज्ञान का, तो वह ज्ञान नित्य कैसे रह सकेगा ? अगर शकाकार यह कहे कि प्रमाण और फल दोनो रूप ईश्वर का ज्ञान होता है तो यह बात तो एकदम

यो युक्त है कि एक ही पदार्थ मे स्वात्मा मे क्रिया का विरोध माना गया है अर्थात् एक ही पदार्थ अपने आपको कैसे उत्पन्न करे ? कोई पदार्थ किसी दूसरे को ही तो करेगा। खुद-खुद को क्या उत्पन्न करे ? अगर कहो कि ईश्वर का ज्ञान प्रमाणभूत है और यह ज्ञान नित्य है किन्तु फलभूत जो ज्ञान है वही मात्र अनित्य है तब तो ये दो ज्ञान मानने पडे न ईश्वर को। तो दो ज्ञान मानने का प्रयोजन हीं क्या ? जीव है, ज्ञानस्वरूप है, बस उस ज्ञान की अवस्था होती है। तो दो ज्ञान मानने का प्रयोजन नही है, इससे यह बात भी अयुक्त है, तो यो जो शरीर रहित देह हैं उसकी भी सृष्टि की रचना नही बन सकती।

लोक मे निमित्त नैमित्तिक योग—अगर शकाकार यह कहे कि जैसे समय है वह तो सृष्टि का कारण है, बताया ही गया है जैन शासन मे भी कि परिणमन का कारण काल है, समय है। तो समय मे कही देह है क्या ? तो जसे काल द्रव्य मे देह नही है फिर भी कार्य की उत्पत्ति मे कारण बन जाता है तो इसी प्रकार वह निर्देह ईश्वर भी निमित्त बन बैठेगा, सो यह बात कहना यो युक्त नही कि काल द्रव्य कही व्यापार करके पदार्थों को नही बनाता। पदार्थ सबके सब स्वय सिद्ध हैं। अनादि अनन्त हैं और उनमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य का स्वभाव पडा हुआ है। सभी पदार्थ स्वय बनते है, बिगडते हैं और बने रहते हैं। उनके इस काल के प्रयोग मे काल द्रव्यमात्र एक उदासीन निमित्त है। सो ऐसा उदासीन निमित्त रूप किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता ही नही। यहाँ तो विधि विधान दृष्टगत हो रहा। सो ईश्वर इस द्वीप समुद्र की रचना करने वाला नही है।

सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा का परिशेष व उपसहार—यह ईश्वर चू कि देह रहित है और देह रहित होने के कारण जैसे मुक्त आत्माओ को सर्वज्ञ नही माना शकाकार का तो देह रहित ईश्वर भी सर्वज्ञ नही हो सकता। जैसे मुक्त आत्माओ को अज्ञ माना है देह न होने के कारण तो देह न होने के कारण यह ईश्वर भी अज्ञ बन जाएगा और जो अज्ञ है वह सृष्टिकर्त्ता कैसे हो सकता ? अगर अज्ञानी भी सृष्टिकर्त्ता बन जाये तो जगत के सभी जीव सृष्टिकर्त्ता बन जायेंगे। और स्पष्ट बात तो यह है कि जैसे ये घट-पट आदिक अनेक पदार्थों मे रचना होती है तो कोई देह वाला बुद्धिमान पुरुष है तो इन रचनाओ का कारण बनता है। कुम्हार ने घट बनाया तो घट का कर्त्ता कुम्हार, वह भी तो देह वाला ही है। देह रहित कोई भी किसी पदार्थ की सृष्टि का कर्त्ता नही हो सकता और फिर कहो कि ये सब चीजें बुद्धिमानो के द्वारा प्रकट की गई है उत्तर ठीक है—माना जा सकता मगर बुद्धिमान तो सभी जीव हैं। सभी के अन्दर ज्ञान है, जितना ज्ञान है, जहाँ जो जीव है वह अपने ज्ञान के अनुसार उन चीजो की रचना कर लेता है। वस्तुत कोई भी पदार्थ किसी भी दूसरे पदार्थ की रचना नही करता, किन्तु उपादान मे ही ऐसी कला होती है कि वह अनुकूल निमित्त को पाकर स्वय अपनी परिणति से अनुरूप प्रभाव बना लेता है, तो केवल बुद्धिमानो के द्वारा रचा गया है इतनी ही बात रखी जाए तो फिर अनन्त जीवो के द्वारा रचा गया ऐसा मान लेना चाहिए। यदि शकाकार यह कहे कि जो पृथ्वी, पर्वत आदिक हैं यही तो ईश्वर की मूर्ति है याने यह ही सब ईश्वर का देह है और उसको ईश्वर ने रचा है तो ऐसा मानने पर तो यही बात सिद्ध हुई कि जिस जिस जीव को जो-जो देह मिला है जिस जिस प्राणी को जो-जो भी शरीर मिला है बस उसका कर्त्ता वह प्राणी है, क्योकि जगत मे जो कुछ भी दिख रहा है वह सब जीवो का शरीर है। लोहा, पत्थर, लकडी ये भी तो जीव के शरीर हैं। याने उनमे जीव पहले था। जीव निकल गया, केवल शरीर रह गया। तो सभी जो कुछ नजर आ रहे हैं वे जीव के देह हैं और उन जीवों ने

उन्हे स्वीकार किया है और जिसे विधि विधान से वह जीव का निमित्त पाकर बनता है सो बन गया है ? अब इनमे से अलग से एक ईश्वर सृष्टिकर्ता के मानने की आवश्यकता ही क्या है ?

समस्त पदार्थों की सहज सिद्धता एव उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता—युक्ति अनुभव सभी यह सिद्ध करते हैं कि जगत मे अनन्त पदार्थ हैं और वे पदार्थ सभी सत् हैं तो सत् हैं इस नाते से वे पदार्थ अपना उत्पाद व्यय करते हुए शाश्वत रहा करते हैं। यही बात चाहे कृत्रिम पदार्थ हो चाहे अकृत्रिम, सबमे उत्पादव्यय ध्रौव्य व्यवस्था है। अन्तर इतना है कि यहा के पृथ्वी, पर्वत आदिक परमाणुओ का जाना और आना लगा हुआ है लेकिन वे इतने दृढ नही है कि इस आने जाने के प्रभाव से कही उसका विघटन नही हो जावे। वे पदार्थ तो अकृत्रिम कहे गये हैं और जो किसी के प्रयोग से बनाये गये हैं वे कृत्रिम कहे जाते हैं । तो ये सब द्वीप समुद्र ये अकृत्रिम रचनायें हैं। अनादि काल से चली आई हैं, अनन्त काल तक चलती रहेगा। इनमें यद्यपि अनेक परमाणुओ का आना और बिछुडना होता रहता है किंतु ये स्वय हा इतने दृढ हैं कि इस आने जाने के कारण उनमे घटाव बढाव नहीं होता। ऐसे ये असख्याते द्वीप समुद्र हैं, जिनमे से जम्बूद्वीप का वर्णन चल रहा है कि जम्बूद्वीप मे ७ क्षेत्र हैं औरउन क्षेत्रो का विभाग करने वाले ६ कुलाचल पर्वत हैं। इन ६ पर्वतो के ठीक मध्य मेएक एक ह्रद है। जिसका विस्तार सब कुछ पूर्व सूत्रो मे बताया गया है। यहा बतला रहे हैं कि उन ह्रदो मे निवास कौन करते हैं? उन ह्रदो मे जो कमल बने हैं उन कमलो पर जो प्रासाद हैं उन प्रासादो मे रहता कौन है ? यह इस सूत्र मे बता रहे हैं।

तन्निवासिन्यो देव्य श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य ।
पल्योपमस्थितय ससामानिकपारिषित्का' ॥१६॥

जम्बूद्वीप के कुलाचल पर्वत पर जो ६ तालाब हैं उनमे जो मुख्य कमल है वहा ६ देविया रहती हैं। जिनका नाम है—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी। इन देवियो की आयु एक पल्य प्रमाण है और इन देवियो के आस पास सामानिक और पारिषित्क जाति के देवो के निवास स्थान हैं। ये सामानिक और पारिषित्क देव मानो देवियो के परिवारस्वरूप हैं। सामानिक का तो अर्थ है जो समान स्थान मे हो। ये छहो देवियाँ कुमारी हैं, तो उनके ये सामानिक भाई बन्धु जैसे शोभा को प्राप्त होते हैं, सामानिक और पारिषित्क इन दोनो मे आदरणीय सामानिक है। उच्च पद सामानिक का है। तो ये सभी देव उन तालाबो के अन्दर रहने वाले जो कमल हैं उन पर बने हुए महलो मे रहते हैं। इस प्रकार ६ कुलाचलो का वर्णन यहा तक समाप्त हुआ। अब यहा बतला रहे है कि जम्बूद्वीप मे जो क्षेत्र हैं उन क्षेत्रो मे भी जो कुछ दिशाओ का विभाग बना है वह किन नदियो के रहने से बना है उसका उत्तर देते हैं।

गगासिधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांता-
सुर्वणरुप्यकूलारक्तारक्तोदासरितस्यन्मध्यगा ॥२०॥

उन क्षेत्रो के बीच मे से ये नदिया निकली हैं। भरत क्षेत्र मे से गगा और सिधु नदी हैं। हैमवत क्षेत्र मे रोहित और रोहितास्या, हरिक्षेत्र मे हरित और हरिकान्ता हैं। विदेह क्षेत्र मे सीता और सीतोदा नदी हैं। रम्यक क्षेत्र मे नारी और नरकान्ता नदी हैं। हैरण्यवत क्षेत्र मे स्वर्ग कूला और रूप्यकेला नदी हैं। ऐरावत क्षेत्र मे रक्ता और रक्तोदा नदी निकली हैं। ये नदिया निकली तो उन ह्रदो से हैं जो कुलाचल पर्वत पर अवस्थित हैं। अब यहाँ यह समझना कि तालाब तो ६ हैं और

नदियां १४ हैं तो १-१ तालाब से दो-दो नदियां निकलेंगी तो १२ नदियां होनी चाहिये लेकिन १४ नदी हैं। तो इनमे से किसी तालावमे एक-एक नदी और अतिरिक्त निकलती है। सो पहले कुलाचल पर्वत पर अवस्थित तालाब से गगा सिंधु तो निकली ही थी। रोहितास्या भी निकली है। यह नदी पद्महृद के उत्तर की ओर से निकल कर हैमवत क्षेत्र मे गई है। इसी प्रकार अन्तिम कुलाचल जो सिखरी नाम का है उस पर जो पुण्डरीक तालाव है उससे दो नदियां रक्ता और रक्तोदा तो निकलती ही हैं। पर एक रूप्यकूला नदी और निकली है। इस तरह ७ क्षेत्रो मे दो दो नदियां निकली हुई हैं अब यह वतलाते हैं कि ये नदियां किस दिशा की ओर गई हैं।

द्वयोर्द्वयो पूर्वा पूर्वगा ॥२१॥

पूर्वगामिनी नदिया—जैसे ऊपर के सूत्र मे नदियो के नाम दिये हुए हैं उनमे से दो दो का एक जोडा मान लिया जाय तो उनमे यह विभाग बनता है कि पहली नदी पूर्व दिशा की ओर बही है। जैसे भरतक्षेत्रमे पद्महृद से गगा नदी निकली है तो वह कुछदक्षिणकी ओर आकरपूर्व की ओर वह गई है और वह लवण समुद्र के तट पर मिलगई है, इसी प्रकार दूसरा युगल जो रोहित रोहितास्या नदी का है उसमे से रोहितास्या नदी पद्महृद से उत्तर की ओर से निकली है मगर थोडा दूर जाकर एक पर्वत को घेरकर फिर पूर्व की ओर वह गई है। गे सभी नदिया लवणसमुद्र मे जाकर गिरती हैं। इस प्रकार ये नदिया मूल मे तो बहुत सिकुडी हुई हैं। थोडा क्षेत्र घेरे हैं और जैसे जैसे इनका प्रवाह आगे चलता गया वैसे ही वैसे विस्तार भी बढता जाता है। इसी प्रकार दूसरा कुलाचल जो हिमवान पर्वत है उस पर महापद्म नाम का तालाब है। जो उसके दक्षिण की ओर से रोहित नदी निकली है। और भी कुछ दूर चलकर एक गोल पर्वत को थोडा घेरकर फिर पश्चिम की ओर चली गई है। इसके वाद तीसरा कुलाचल निषध नाम का है, उस पर तिगिंध नाम का तालाब है, जिसके दक्षिण की ओर से हरीकाता नाम की नदी निकली है और वह पर्वत को थोडा घेर कर पूर्व की ओर वह गई है। इसी प्रकार अन्य कुलाचलो मे भी, क्षेत्रो मे भी इसी ढग से नदियो का प्रवाह जानना। अब शेष नदियाँ किस ओर गई हैं यह वताने के लिए सूत्र कहते हैं।

शेषास्त्वपरगा: ॥२२॥

उन दो दो नदियो मे से पहली-पहली नदी तो पूर्व को ओर गई है, यह बात ऊपर के सूत्र मे कही गई थी, अब शेप की जो नदिया है वे पश्चिम समुद्र मे जाकर मिली हैं।

अब उन नदियो का परिवार बताने के लिये सूत्र कहते हैं—

चतुर्दशनदी सहस्रपरि वृत्ता गगासिध्वादयो नद्य· ॥२३॥

गगा सिंधु आदिक नदिया १४ हजार नदियो से घिडी हुई हैं याने गगा नदी मे १४ हजार नदिया और मिली हैं। इसी प्रकार सिंधु नदी मे भी १४ हजार नदिया और मिली हैं। इससे आगे रोहित और रोहितास्या नदी मे २८ हजार नदिया मिली हैं, इसके आगे हरी हरीकान्ता नामक नदियो मे ५६-५६ हजार नदिया मिली हैं। सीता और सीतोदा नामक नदी मे प्रत्येक मे ११२ नदिया और मिली हैं। इस परिवार की नदियो के मिलने से इसके आगे-आगे विस्तार बढता जाता है। अब भरत क्षेत्र का विस्तार बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

भरत षड्विंशति पचयोजनशतविस्तारपटचैकोन विंशति भागाययोजनस्य ॥२४॥

भरत क्षेत्र का विस्तार है ५२६ योजन और एक योजन के १९ भागो मे से ६ भाग प्रमाण।

इतना विस्तार होने का कारण यह है कि जम्बूद्वीप है एक लाख योजन की सूची मे और उसमें ७ क्षेत्र और ६ कुलाचल पर्वत हैं। विदेह क्षेत्र तक दक्षिण की ओर तीन क्षेत्र और तीन कुलाचल पर्वत है। फिर विदेह क्षेत्र है। फिर उसके बाद तीन कुलाचल तीन क्षेत्र है। इसका विस्तार है जितना भरत क्षेत्र का विस्तार है उससे दूना पहले क्षेत्र का, उससे दूना दूसरे क्षेत्र का, उससे दूना दूसरे पर्वत का, उससे दूना तीसरे क्षेत्र का, और उससे दूना तीसरे पर्वत का। तो इस प्रकार इससे दूना विदेह क्षेत्र है बाद मे जितना दक्षिण के भरत क्षेत्र का विस्तार है उतना ही उत्तर के क्षेत्र पर्वत का विस्तार है। तब भरत क्षेत्र का माप एक भाग रख लिया जाय तो दो भाग हुए और पर्वत के ४ भाग हुए दूसरे क्षेत्र के, ८ भाग हुए दूसरे पर्वत के, १६ भाग हुए तीसरे क्षेत्र के और ३२ भाग हुए तीसरे पर्वत के, इस तरह इनका योग हुआ १+२+४+८+१६+३२, इनका योग हुआ ६३ भाग। इतना ही ६३ भाग उत्तर मे है और ६४ भाग विदेह क्षेत्र है। तब ६३+६३+६४। ये सब मिलकर १९० हुए। अब १ लाख मे १९० का भाग दिया जाय तो लब्ध होता है ५२६ ६/१९ योजन। वही विस्तार इस सूत्र मे कहा गया है। अब इसके आगे के क्षेत्र और पर्वत कितने विस्तार वाले हैं, यह बता रहे है।

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षाविदेहाता ॥२५॥

जितना विस्तार भरत क्षेत्र का कहा गया है उससे दूने विस्तार वाले क्षेत्र और पर्वत विदेह पर्यन्त जानना चाहिये। इस क्षेत्र का विदेह नाम क्यो रखा कि भव्य पुरुष मुनिव्रत धारण करके इस क्षेत्र से सदा मोक्ष जा सकते है। जैसे भरत और ऐरावत क्षेत्र मे सभी समय मोक्ष नही होता है। जब उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी काल का चौथा काल आता है तब ही से मुक्ति होती है। यही कारण है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र मे तो चतुर्थकाल मे ही तीर्थंकर हुआ करते हैं किंतु विदेह क्षेत्र मे तो सदा तीर्थंकर हो सकते है। अब विदेह के उतर की ओर रहने वाले क्षेत्र और पर्वत के विस्तार कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

उत्तरादक्षिणतुल्याः ॥२६॥

विदेह क्षेत्र की उत्तर दिशा की ओर जितने क्षेत्र और पर्वत हैं उनका विस्तार उतना है जितना कि दक्षिण दिश की ओर अवस्थित क्षेत्र और पर्वत का है। इसी प्रकार हर तरह की रचना भी प्राणियो की ऊँचाई या उनका सुख, उनकी आयु, वे सब भी दक्षिण मे रहने वाले क्षेत्र और पर्वतो की भाँति है। ऐसी रचना देखकर ही लोग शका किया करते हैं कि इतनी सुन्दर रचना अकृत्रिम रचना मे कैसे हो सकती है किन्तु यह अनेक उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि कृत्रिम मे जितनी शोभा नही होती उतनी शोभा अकृत्रिम मे प्रकृत्या हुआ करती है। अब आगे यह बतला रहे हैं कि किन क्षेत्रो मे वृद्धि और हानि होती है और किन क्षेत्रो मे नही होती।

भरतैरावतयोर्वृद्धि ह्रासौ षटसमयाभ्यासमुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥२७॥

भरत और ऐरावत क्षेत्रो मे वृद्धि और हानि हुआ करती है, याने इस क्षेत्र मे रहने वाले प्राणियो की आयु, देह, बुद्धि आदिक सभी मे वृद्धि और हानि चलती है और यह वृद्धि हानि ६ कालो मे चलती है। कालो का विभाग इस प्रकार है कि एक कल्पकाल मे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनो व्यतीत हो जाते हैं। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रत्येक मे ६ काल विभाग हैं। इस तरह से जल्दी समझ मे आ सकता कि जैसे दो सर्पिणियाँ पूछ से पूछ मिलाकर ऊपर खडे होकर फण से फण मिला ले तो जैसे उनका एक चक्र हो जाता है और उस चक्र मे पूछ की ओर कम विस्तार है और जैसे जैसे ऊपर की ओर

बढते जाइये वैसे ही वैसे विस्तार बढता हुआ मिलेगा। और जब दूसरी सर्पिणी पर आते हैं तो पहले विस्तार अधिक है, फिर घटते-घटते पूछ तक कम रह जाता है। आज इसका अवसर्पिणी काल चल रहा हैं जो प्रथम काल मे तो बहुत बडे मनुष्य, बहुत बडा सुख था। पहले भोगभूमि थी, उससे घटकर दूसरी भोगभूमि, फिर तीसरी भोगभूमि, उसके बाद चौथा काल आया, उसके बाद पचम काल आया आजकल पचम काल चल रहा है, इसके बाद छठा काल आयेगा और जब छठा काल समाप्त हो जायेगा तोउसके अन्तिम चरणो मे प्रलय हो जायेगा।जिस प्रलय मे कुछ जोडे बचेंगे, कोई पुण्योदय से अपने आप छिपकर बच जायेंगे, किसी जोडे को मनुष्यो के, पशुओ के, पक्षियो के जोकि गर्भज होते हैं उनको कुछ देव लोग ले जाकर सुरक्षित स्थान मे रख देगे। उस प्रलय काल मे कुछ जोडो को छोड कर सभी जीवो का सहार हो जाता है। इसके बाद फिर उत्सर्पिणी काल का छठा काल आता है, फिर ५वाँ, फिर चौथा, फिर तीसरा, फिर दूसरा, फिर पहला काल आता है। उत्सर्पिणी समाप्त होने पर फिर ह्रास होने लगता है। इस तरह इन ६ कालो मे भरत, ऐरावत क्षेत्र मे वृद्धि और ह्रास चलते रहते हैं।

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

भरत व ऐरावत भूमि को छोडकर शेष भूमियों की अवस्थितता—भरत व ऐरावत क्षेत्र के अलावा जो अन्य भूमिया हैं वे सब अवस्थित होती हैं। भरत क्षेत्र के बाद हैमवत क्षेत्र है उसमे जघन्य भोगभूमि की रचना है। वहा जो मनुष्य तिर्यंच होते हैं वे एक पल्ल की आयु वाले हैं और जो उनकी वृद्धि चर्या जो कुछ भी है वह सब एक समान ही रहती है। हैमवत क्षेत्र के बाद हरि क्षेत्र है। वहा मध्यम भोगभूमि है। वहा के मनुष्य तिर्यञ्चो की आयु दो पल्ल की है और जैसी स्थिति है वैसी सदा काल चलती रहती है। हरि क्षेत्र के बाद विदेह क्षेत्र आता है। विदेह क्षेत्र के मेरु पर्वत से लगे हुए दक्षिण और उत्तर की ओर देव कुरु, उत्तर कुरु हैं। यहा भोगभूमि है। मनुष्य तिर्यञ्चो की आयु ३ पल्ल की है और जो भी स्थिति है वैसी सदा चलती रहती है। इसी विदेह क्षेत्र मे पूर्व और पश्चिम की ओर कर्मभूमि है। यहाँ से मोक्ष का जाना सदा चलता रहता है। तीर्थंकरो की उत्पत्ति होती रहती है, ये भी अवस्थित हैं, और इसी प्रकार विदेह क्षेत्र के उत्तर की ओर जो रम्यक हैरण्यवत क्षेत्र हैं उनकी भी स्थिति दक्षिण के क्षेत्र की तरह अवस्थित है। अब उन भूमियो मे मनुष्य और तिर्यञ्चो की आयु एक समान है या बहुत घट बढ भी होता है, इसका विवरण करते हैं।

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवका ॥२९॥

भोगभूमिज जीवो की आयु—हैमवत नाम के दूसरे क्षेत्र मे एक पल्य की स्थिति वाले जीव होते हैं, अर्थात वहाँ जघन्य भोगभूमि है। मनुष्य, पशु और पक्षियो की आयु एक पल्य की है। उसके बाद हरि क्षेत्र है। उसमे मध्यम भोगभूमियो की रचना है। वहाँ के मनुष्य, पशु, पक्षियो की आयु दो पल्य की होती है। देवकुरु मे ३ पल्य की स्थिति वाले मनुष्य और तिर्यंच होते हैं। यहाँ उत्तम भोग-भूमि की रचना है। जैसे कि भरत और ऐरावत क्षेत्र मे प्रथम काल की जो रचना है वह तो देवकुरु मे है। जिसे कहते हैं सुषमासुषमा, यहाँ के मनुष्य ३ पल्य की आयु वाले हैं और ६ हजार धनुप की ऊँचाई वाले हैं और ३ दिन मे इन्हे क्षुधा होती है सो बहुत सूक्ष्म आहार लेकर जो एक छोटे बेर के समान, इतना ही आहार लेकर सतुष्ट हो जाते हैं। हरिवत के क्षेत्र मे सुषमा नामक काल की तरह रचना है अर्थात भरत ऐरावत क्षेत्र मे जो द्वितीय काल मे रचना है वह रचना यहाँ है। यहाँ के मनुष्य

दो पल्य की आयु के हैं, ४ हजार धनुष ऊँचाई के हैं, दो दिन मे भूख की क्षुधा होती है और बेर प्रमाण इनका भोजन होता है। ये सब शख वर्ण के होते हैं। देवकुरु मे स्वर्ण वर्ण के शरीर होते हैं। हैमवत क्षेत्र मे दो हजार धनुष के ऊँचे पुरुष होते हैं। और एक दिन बाद इन्हे क्षुधा होती है, सो आवले प्रमाण इनका आहार होता है। नील कमल की तरह इनके शरीर का रग होता है।

तथोत्तराः ॥३०॥

ढाईद्वीप में दक्षिण रचनावत उत्तर रचना—जैसे विदेह क्षेत्र मे दक्षिण की ओर जो जो कुछ रचनाए हैं वैसी ही रचनाए विदेह क्षेत्र के उत्तर की ओर के क्षेत्र की हैं। जैसे भोगभूमियाँ हैं, जैसी भोगभूमिज मनुष्य तिर्यञ्चो की स्थिति है, जितनी ऊँचाई है, जैसा सुख है, जिस प्रकार का आहार है ठीक उसी तरह इस उत्तर के क्षेत्र मे है, अर्थात उत्तर कुरु की रचना देव कुरु की तरह है, रम्यक क्षेत्र की रचना हरिक्षेत्र की तरह है, हैरण्यवत क्षेत्र की रचना हैमवत क्षेत्र की तरह है और ऐरावत क्षेत्र की रचना भरत क्षेत्र की तरह है। अब विदेह क्षेत्र जोकि अवस्थित है उसमे कितनी स्थिति होती है, यह बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

विदेहेषु सख्येयकाला ॥३१॥

विदेह में उत्पन्न मनुष्यो की आयु—विदेह क्षेत्र मे जिन मनुष्यो की आयु सख्यात काल की होती है, बिदेह से मतलब है देव कुरु और उत्तर कुरु को छोडकर शेष का विदेह जहा से सदा मोक्ष का जाना होता रहता है। जैसे कि भरत ऐरावत क्षेत्र मे चौथे कालमे रचना होती है याने अवसर्पिणी के चौथे काल के प्रारम्भ मे और उत्सर्पिर्णी के चौथे काल के अन्त मे जैसी रचना चलती है उस प्रकार की रचना इस विदेह क्षेत्र मे सदा रहती है। यह काल सुखमा दु खमा के समान है। यहा मनुष्य ५०० धनुप की ऊँचाई के होते हैं। प्रतिदिन इनका आहार होता है। इनकी स्थिति उत्कृष्ट तो एक पूर्व कोटि की है। जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। याने कोई मनुष्य गर्भ मे ही मर सकता और कोई मनुष्य अधिक आयु पाये तो एक कोट पूर्व की आयु प्राप्त कर सकता है।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥

भरत क्षेत्र का विस्तार भागानुसार विस्तार—भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के १९०वें भाग प्रमाण है क्योकि वहाँ इस प्रकार का विस्तार है कि जितना भरत क्षेत्र का विस्तार है उससे दूना पहले पर्वत का है, उससे दूना दूसरे क्षेत्र का, उससे दूना दूसरे पर्वत का, उससे दूना तीसरे क्षेत्र का, उससे दूना तीसरे पर्वत का और उससे दूना विदेह क्षेत्र का। इस प्रकार विदेह क्षेत्र के उत्तर मे दक्षिण की तरफ भाग है, ये सब १९० होते हैं जम्बूद्वीप के विस्तार मे एक लाख योजन मे १९० का भाग देने पर भरत क्षेत्र का विस्तार हो जाता है।

लवण समुद्र में उपस्थित बडवानलो का व पातालो का विवरण—अब लवण समुद्र का विस्तार सुनो – जम्बूद्वीप के बाद जम्बूद्वीप को घेरे हुए लवण समुद्र है यह लवण समुद्र जम्बूद्वीप की वेदिका और दूसरे द्वीप की भीतरी वेदिका के बीच मे अवस्थित है। इस समुद्र का भूमितल समान है, जैसे कि कृत्रिम समुद्र किनारे पर गहरे नही होते और बीच में गहरे होते हैं इस प्रकार से लवण समुद्र नही है। यह सर्व ओर एक समान गहरा है। यह दो लाख योजन के विस्तार वाला है, एक हजार योजन का गहरा है और चूकि समुद्र के बीच मे बडवानल अनेक जगह अवस्थित है, जिसके कारण जल समतल से ऊँचा उठा रहता है। जैसे कि जौ की राशि ऊँची उठी होती है। इस लवण समुद्र के

बीच मे चारो दिशाओ मे महापाताल पाये जाते हैं जो जम्बूद्वीप की वेदी से ९५ हजार योजन दूर मौजूद हैं। जिनका तला और किनारा वज्रमय है। एक लाख योजन के गहरे हैं और नीचे तल भाग मे चलने मे १० हजार योजन के विस्तार वाला है। ऐसे ४ महापाताल हैं, जिनका नाम है पाताल, बडवामुख, धूपकेसर और कलाम्बुक। ये ४ बडवानल क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर मे हैं। इन पातालो के नीचे के तृतीय भाग मे वायु रहती है अर्थात जितने ऊँचे ये पाताल है उसके उसके ३ भाग किये जाये, उसके नीचे के त्रिभाग मे बहुत घन वायु रहती है और मध्य के त्रिभाग मे वायु एव जल रहता है और ऊपर के त्रिभाग मे केवल जल रहता है। रत्नप्रभा नाम की जो पृथ्वी है उस पृथ्वी का जो खर भाग है अर्थात इस पृथ्वी के जो ३ भाग बताये गये थे—खर, पक और अब्बहुल। अब्बहुल भाग मे तो नारकियो का निवास है—खर और पक भाग मे देवो का निवास है तो यहाँ खर भाग मे बने हुये जो भवन हैं वहाँ वातकुमार का निवास है और उनकी देवागनायें उनकी क्रीडा से उत्पन्न हुआ जो वायु मे क्षोभ है उस क्षोभ के कारण पाताल मे जो उन्मीलन निमीलन होता है उससे उठना गिरना, इसके कारण से हवा और चलती, ऊँचा उठ जाता, फिर प्रवाह होता। यह होता रहता है। इस ही कारण से उस बडवानल के ऊपर ५० योजन प्रमाण जल की वृद्धि हो जाती है। इस तरह से दोनो ओर से रत्न वेदिका से ऊपर दो गव्यूत प्रमाण याने करीब ४ कोश प्रमाण जल की वृद्धि हो जाती है और जब पाताल मे इनका वेग शान हो जाता है तो उस उठे हुये की हानि हो जाती है। यह चारो दिशाओ मे जो यह पाताल हैं उनके अन्तर प्रत्येक के २२७१७० (दो लाख सत्ताइस हजार एक सौ सत्तर) योजन है तथा कुछ अधिक ३ गव्यूत और है। जैसे कि चारो दिशाओ मे ४ महापाताल हैं इसी प्रकार दिशाओ के बीच मे जो विदिशायें हैं उन विदिशाओ मे लवण समुद्र के भीतर ४ छोटे पाताल और हैं, इनको छुद्र पाताल कहते हैं। ये १० हजार योजन गहरे हैं। उतना ही इनके मध्य मे विस्तार है। जड मे और ऊपर मे एक हजार योजन का विस्तार है यहा पर भी पहले त्रिभाग मे नीचे के त्रिभाग मे वायु है, मध्य के त्रिभाग मे वायु और जल है, ऊपर के त्रिभाग मे केवल जल है, और इस महापाताल और छुद्र पातालो के बीच मे याने इन ८ अन्तरो मे एक हजार छुद्र पाताल और हैं, उनमे भी सब इसी तरह से कार्य होते हैं। यहाँ वातकुमार के देव और उनकी देवागनाओ का जो क्रीडा ऊधम चलता है उससे वायु मे क्षोभ होता है और उस कारण वहा का जल ऊँचा उठ जाता है। जब उनकी वायु उपशम को प्राप्त होती है तो जल नीचे आ जाता है।

लवण समुद्र के किनारो के आसपास की रचना आदि—लवण समुद्र जो कि जम्बूद्वीप के चारो ओर है, उसके किनारे पर उसके प्रमुख स्वामी की तरह चार देवो के नगर हैं। चारो दिशाओ मे एक-एक नगर है, जिसे कहते हैं—वेलधर, नागपति याने समुद्र के किनारो पर रक्षा करते हुये मानो ये देवो के नगर हैं, जिनकी आयु एक पल्ल प्रमाण है, ऐसे वहाँ देव रहते हैं। वे १० धनुष की ऊँचाई के हैं। प्रत्येक वेलधर देव के चार-चार देवागनायें हैं, ये अनेक परिवारो से सहित है। ये सब देव मिलकर १,४२,००० (एक लाख बयालीस हजार) हैं। इन सबका कार्य अपने मनमाना मन रमाना, क्रीडा करना है। और मानो ये सब समुद्रो के अधिपति हैं। जम्बूद्वीप की जो वेदिका है उससे १२ हजार योजन लवण समुद्र की ओर जाकर एक गौतम नामक समुद्र के अधिपति का द्वीप आता है जो १२ हजार योजन का लम्बा-चौडा है। इस लवण समुद्र के विजय आदिक चार द्वार हैं जो चारो दिशाओ मे हैं।

तिर्यग्लोक के समुद्रों की विशेषतायें—लवणोद आदिक सभी स्वयभूरमण पर्यन्त जो समुद्र हैं वे सब १ हजार योजन गहरे हैं और प्रत्येक समुद्र के दोनो ओर याने द्वीप के निकट वेदिकाये है। लवणोद समुद्र का पानी उठा हुआ है, शेष समुद्र का पानी उठा हुआ नही, किन्तु एक प्रसार मात्र को लिये हुए है। लवण के समुद्र के जल का स्वाद नमक के रस की तरह खारा है। एक वारुणी समुद्र है, उसका रस वारुणी की तरह है, क्षीरोदधि का जल क्षीर रस की तरह है, जैसे कि दुग्ध हो, घृतोद समुद्र का जल घी की तरह स्वाद वाला है। कालोद समुद्र और पुष्करोद समुद्र एव स्वयभूरमण समुद्र, इनका स्वाद जल की तरह है। शेष समुद्रो का भी इसी तरह सामान्य स्वाद है। लवण समुद्र मे तो जहाँ नदी गिरती है उस स्थल पर मत्स रहा करते हैं, जिनके शरीर ६ योजन प्रमाण हो सकते हैं। मत्स सब सम्मूर्छन जन्म वाले है। जो भी वहा पृथ्वी, कूडा-करकट, पुद्गल आदिक पिण्ड पड़े हो वहा ही जीव का जन्म हो जाता है और वही आकार प्रमाण अगोपांग रूप से बन जाता है और लवण समुद्र के बीचोबीच जो मत्स होते हैं वे १८ योजन के शरीर वाले हैं। कालोद समुद्र मे जहाँ नदियाँ गिरती हैं उस स्थल पर तो १८ योजन के शरीर वाले मत्स हैं और समुद्र के भीतर ३६ योजन के शरीर वाले मत्स्य हैं। अन्तिम जो समुद्र है स्वयभूरमण उस समुद्र मे नदी गिरने के स्थलो पर तो ५०० योजन के शरीर वाले मत्स हैं। और अन्तिम समुद्र के बीचोबीच जो मत्स्य हैं वे एक हजार योजन के शरीर वाले हैं। जब तिर्यञ्चो की अवगाहना उत्कृष्ट बतायी जाती है तो अन्तिम समुद्र के बीच मे रहने वाले मत्स्यो की बतायी जाती है। शेष समुद्रो मे चर जीव नही हुआ करते।

तिर्यग्लोक की रचना मे प्रकृत्त वर्णन का उपसहार—असख्याते द्वीप और असख्याते समुद्रो से भरा हुआ यह तिर्यकलोक है, जिसमे ठीक सबके बीच यह जम्बूद्वीप है, और जम्बूद्वीप की महिमा अनेक दार्शनिको ने गाया है। इस जम्बूद्वीप की महिमा इस कारण भी बढी हुई है कि ढाई द्वीप के अन्दर जो ज्योतिषी देव हैं वे सब इस जम्बूद्वीप के मध्य मे रहने वाले मेरु की प्रदक्षिणा देते हैं जो ५ मेरु हैं जम्बूद्वीप मे एक, दूसरे द्वीप मे दो और तीसरे आधे द्वीप मे दो, इस प्रकार ५ मेरु हैं। उन मेरुओ मे भी सबसे बडी अवगाहना वाला मेरु यह जम्बूद्वीप के मध्य मे रहने वाला मेरु है। यहा जो कुछ भी वर्णन चलता रहता है वह सब तीर्थंकर देव की दिव्य ध्वनि से खिरा हुआ वर्णन है। ऐसी केवलियो की दिव्य ध्वनि की परम्परा से गणधर देव ने जिसे झेला, आचार्यों ने जिसे समझा और अपनी लेखनी से उसे लेख बद्ध किया उस परम्परा से यह सब वर्णन चला आ रहा है। इनकी रचनाओ को अवधिज्ञानी मनुष्य अवधिज्ञान से साक्षात् प्रत्यक्ष जानते हैं और आगम से सभी पुरुष जान सकते हैं जिसका ७ तत्त्व ६ पदार्थ सम्बन्धी कथन मे कही भी विरोध नही आता, जो कि अनुभव गम्य है, युक्तिगम्य है, ऐसे वीतराग सन्तो के अन्य कथन जो कि परोक्षभूत पदार्थों के विषय मे है वे भी जैसे कहे गए वैसे ही सत्य है। इस प्रकार जम्बूद्वीप का वर्णन समाप्त हुआ।

द्विर्धातकी खण्डे ॥३३॥

धातकी खण्ड मे क्षेत्र पर्वतो की रचनायें—जम्बूद्वीप मे क्षेत्र, पर्वत, तालाब, कमल आदिक की सख्या विस्तार वगैरह कहे गए हैं। अब धातकी खण्ड मे जो कि लवण समुद्र के बाद है इस दूसरे द्वीप मे ये सब किस-किस प्रकार हैं इसका विवरण करने के लिए यह सूत्र कहा गया है। जितना जम्बूद्वीप मे क्षेत्र है उससे दूना क्षेत्र इस दूसरे द्वीप मे है। इस प्रकार कुलाचलो पर मध्य मे रहने वाले तालाब और इन तालाबो मे अवस्थित कमल आदिक सब दूने-दूने हैं, ये दूने क्षेत्र किस तरह हो

गये ? तो पहले धातकी खण्ड द्वीप जो कि लवण समुद्र को घेरे हुये दूने विस्तार वाला है उसके दक्षिण और उत्तर मे एक-एक इस्वाकार पर्वत है, जिसके कारण द्वीप के दो विभाग हो जाते हैं—पूर्व भाग और पश्चिम भाग। अब प्रत्येक भाग मे दक्षिण से उत्तर की ओर भरत हैमवत आदिक ७-७ क्षेत्र हैं और इसी प्रकार ६-६ कुलाचल हैं और उन प्रत्येक कुलाचलो पर तालाब हैं। इस तरह यहाँ १४ क्षेत्र हो जाते हैं, इसी कारण दो विदेह हो जाते हैं और उन दोनो विदेहो के मध्य मे एक-एक मेरु पर्वत है। अब यहाँ भरत क्षेत्र का भीतरी विस्तार कितना है ? तो धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र का विस्तार है ६६१४ योजन और २९/१०० एक योजन का भाग, इतना विस्तार धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र का है। यह इसका भीतरी विस्कम्भ है। अब भरत क्षेत्र के मध्य का विस्कम्भ कितना है ? तो वह है १२५८१ (बारह हजार पाच सौ इक्यासी) योजन और २६/१०० भाग प्रमाण है। इस ही भरत क्षेत्र का बाह्य विस्तार १८५४७ योजन तथा ५५/१०० भाग प्रमाण है। इस तरह भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तार है हिम्मान पर्वत का और उससे दूना विस्तार है हैमवत क्षेत्र का, उससे दूना विस्तार है महाहिम्मान पर्वत का। उससे दूना विस्तार है हरि क्षेत्र का, उससे दूना विस्तार है निषध पर्वत का और उससे दूना विस्तार विदेह का है और विदेह के दक्षिण दिशा मे क्षेत्र पर्वतो का जितना विस्तार है उस प्रकार उसके उत्तर भाग के क्षेत्र पर्वत आदिक का है। इन कुलाचलो मे पद्म-महापद्म आदिक नाम के तालाब हैं और उन तालाब से नदियाँ निकली हैं। वे नदिया कुछ दूर चल-कर एक गोल पर्वत को आधा घेरकर फिर पूर्व नदी पूर्व दिशा को गई है, दूसरी नदी पश्चिम को गई है।

धातकी खण्ड मे अवस्थित मेरु आदि की विशेषतावो का वर्णन—धातकी खण्ड मे दो मेरु पर्वत हैं, एक है पूर्व दिशा के विदेह मे दूसरा है पश्चिम दिशा के विदेह मे जो कि १ हजार योजन गहरे हैं अर्थात् उनकी जड है और मूल मे विस्तार ९५०० योजन है और पृथ्वी पर ९४०० योजन विस्तार है, ऊँचाई ८४ हजार योजन है, जैसी रचना जम्बूद्वीप मे अवस्थित सुमेरु पर्वत की है उसी प्रकार की इस मेरु पर्वत की भी है। भूमितल पर एक वन है, उससे ५०० योजन ऊपर नन्दन वन है जो कि ५०० योजन के विस्तार वाला है और घिराव मे ५५५०० योजन है। उसके बाद ऊपर सौमनस नाम का वन है। उससे फिर २८ हजार योजन ऊपर चलकर पाडुक वन है, जैसे जम्बूद्वीप मे देव कुरु उत्तर कुरु मे जम्बू वृक्ष है इसी प्रकार धातकी खण्ड मे धातकी वृक्ष है। यह वृक्ष पृथ्वीकायिक है। इसकी शाखाओ पर बडे ऊँचे महल बने हुये हैं। जिनके परिवार के भी अनेक वृक्ष हैं, उनमे द्वीप का अधिपति देव रहता है। इसी धातकी खण्ड के नाम पर इस दूसरे द्वीप का नाम धातकी खण्ड पडा। यह धातकी खण्ड गोल है और दोनो ओर समुद्र का स्पर्श करने वाला है अर्थात् धातकी खण्ड एक ओर तो लवण समुद्र से मिला हुआ है, दूसरी ओर कालोद समुद्र से मिला है। इस धातकी खण्ड को घेरकर कालोद समुद्र है, जिसका विस्तार ८ लाख योजन है और उसकी परिधि १७०६०५ (एक लाख ७० हजार छह सौ पाँच) योजन है। इस कालोद समुद्र को घेरकर पुष्कर द्वीप है, जिसका विस्तार कालोद समुद्र से दूना है। इस पुष्कर द्वीप के ठीक बीच मे गोलाई को लिये हुये एक मानसोत्तर पर्वत है। इस मानसोत्तर पर्वत से भीतर अर्थात् जम्बूद्वीप की ओर इस तीसरे द्वीप के आधे मे ७ क्षेत्र, ७ पर्वत आदिक की रचना धातकी खण्ड की रचना की तरह है। तो इस रचना का निर्देश करने के लिये सूत्र कहते है।

पुष्करार्द्धे च ॥३४॥

पुष्करवर द्वीप की रचनायें—जैसे घातकी खण्ड मे जम्बूद्वीप से दुगुण रचना है इसी प्रकार पुष्करार्द्ध मे भी दो-दो क्षेत्र, पर्वत ह्रद पुष्कर आदिक है। इस पुष्करार्द्ध के भरत क्षेत्र का भीतरी विस कम्भ ४५५७९ और एक योजन के १०० भाग मे ७३ भाग प्रमाण हैं। इस भरत क्षेत्र का मध्य विस्कम्भ ५३५१२ योजन तथा एक योजन के १०० भाग मे से ९९ भाग प्रमाण, इस भरत क्षेत्र का बाह्य विषकम्भ ६५४०० योजन तथा एक योजन के १०० भाग मे से १३ भाग प्रमाण है। इससे भी क्षेत्र से दूना पर्वत, पर्वत से दूना क्षेत्र विस्तार वाले चले गये हैं विदेह क्षेत्र तक, फिर विदेह क्षेत्र से आगे उन सब क्षेत्र पर्वतो का विस्तार उतना है जितना कि विदेह क्षेत्र से दक्षिण की ओर अवस्थित क्षेत्र पर्वत का है। जैसे उत्तर कुरु मे जम्बूद्वीप मे जम्बू वृक्ष था और धातकी खण्ड मे धातकी पर्वत था इसी प्रकार पुष्करार्द्ध मे उत्तर कुरु मे पुष्कर याने कमल, पृथ्वीकायिक बना हुआ है, उस पर जो प्रासाद हैं वहाँ उस द्वीप का अधिपति रहता है और इसी कारण इस द्वीप का नाम पुष्कर द्वीप कहलाता है। इस पुष्कर द्वीप के मध्य मे मानुषोत्तर पर्वत है उससे दो भाग हो गए। मानुषोत्तर पर्वत से बाहर का भाग कर्मभूमि की रचना से रहित है। उस मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई १७२१ योजन, इसका अवगाह मायने पृथ्वी तल मे यह पर्वत ४३० योजन तथा एक कोश है। उस मानुषोत्तर पर्वत का मूल मे विस्तार २२ हजार योजन है, मध्य मे विस्तार ७२३ योजन, ऊपर मे विस्तार ४२४ योजन, इस मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर चारो दिशाओ मे चार अरहत मन्दिर हैं जिनकी लम्बाई ५० योजन और विस्तार २५ योजन और ऊचाई ३७-१/२ योजन है। यहाँ भी सब रचना जैसे अन्य जिनेन्द्र मन्दिरों की बतायी गई है उसके द्वार हैं, वहाँ प्रेक्षागृह आदिक हैं, वे सब यहाँ भी हैं। इसके अतिरिक्त १४ कूट और हैं, जिन कूटो पर देवो के प्रासाद बने हुए हैं। इस तरह पुष्करार्द्ध द्वीप मे कर्मभूमि की रचना कही गई है। उसी को स्पष्ट करने के लिए कहते हैं।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या ॥३५॥

मानुषोत्तर पर्वत से आगें मनुष्यो के आवास व विहार की असभवता—मानुषोत्तर पर्वत से पहले-पहले मनुष्य रहते हैं, इससे बाहर मनुष्य नही पाये जाते। जम्बूद्वीप से लेकर मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य मिलते है, इससे बाहर नही और तभी यह सब ढाई द्वीप कहलाता है। जितना विस्तार ढाई द्वीप का है उतना ही विस्तार सिद्धलोक का सिद्ध क्षेत्र का है, सिद्ध के निवास का है। इसका कारण यह है कि मुनिराज ढाई द्वीप के अन्दर ही अपने रत्नत्रय की साधना को पूर्ण कर मुक्त होते है। तो जिस क्षेत्र से, जिस स्थान से मुक्त होते है ठीक ऋजुगति से इस स्थान से ऊपर जाकर लोक मे विराजमान हो जाते हैं। इस ढाई द्वीप के बाहर कोई भी मनुष्य नही जा सकता, हाँ उपपाद और समुद्धात के रूप से मनुष्य का जीव भले ही छू आये पर कोई भी मनुष्य चाहे विद्याधर हो, चाहे ऋद्धि प्राप्त मनुष्य हो कोई भी मानुषोत्तर पर्वत से बाहर नही जा सकता। इस विषय मे एक कथानक प्रसिद्ध है कि किसी नगर मे कोई सेठ-सेठानी रहते थे। तो सेठ के मन मे यह भाव हुआ कि हम तो नदीश्वरद्वीप की वदना करने जायेंगे। वह विद्याधर था, आकाशगामी था। तो उसने चाहा कि मैं अपनी विद्या के बल से नदीश्वरद्वीप की वंदना कर आऊँ। तो सेठानी थी जिनवाणी की परम भक्त। उसने वहाँ जाने के लिये मना किया और कहा कि देखो मानुषोत्तर पर्वत से आगे इस मनुष्य का गमन नही है, पर सेठ ने सेठानी की वात पर कुछ ध्यान न दिया और अपने विमान पर बैठ कर चल दिया। वह विमान मानुषोत्तर पर्वत से

टकरा गया और वह सेठ वही मरण को प्राप्त हो गया। चूंकि सेठ के उस समय नदीश्वर की वदना करने के भाव थे इस कारण वह वहाँ मरकर देव हुये। कुछ ही समय में युवा हो गए। उसने अवधिज्ञान से जाना कि मैंने नदीश्वर की वन्दना के भाव किया था और मानुषोत्तर पर्वत से टकराकर मेरा देहान्त हुआ था सो अब मैं नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना के लिए जाऊँगा। अब तो वह देव था, वह नन्दीश्वर द्वीप पहुँचा और वहाँ वन्दना किया और वन्दना करने के बाद उसे एक कौतूहल उपजा कि मैं अपनी पूर्वभव की स्त्री (सेठानी) को सेठ के रूप मे बनकर उसे बताऊ कि मैंने नन्दीश्वर द्वीप की वदना कर लिया है, तो वह देव सेठ का रूप धरकर सेठानी के पास पहुँचा और बोला—देखो मैं अब नन्दीश्वर द्वीप की वदना करके आ गया। तो वह सेठानी बोली कि आपकी यह बात तो असत्य है। और यदि आपने नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना की है तो आप अब मनुष्य नही हैं, देव होकर ही वन्दना की होगी। तो सेठानी का इतना दृढ श्रद्धान जानकर वह देव अपने वास्तविक रूप मे प्रकट हुआ और कहा—तुम धन्य हो, तुम्हारा श्रद्धान धन्य हो। मैं मानुषोत्तर पर्वत से टकराकर मरकर देव बना था, तब नन्दीश्वर द्वीप की वदना कर सका। मानुषोत्तर पर्वत के भीतर मनुष्य है। पुष्करवर द्वीप आधा भीतर है। उस आधे मे धातकी खण्ड के समान क्षेत्र और पर्वत की रचना है। यहाँ भी दो विदेह हैं, इस तरह ढाई द्वीप मे ५ विदेह हो जाते हैं और प्रत्येक विदेह मे दो-दो भाग हैं। प्रत्येक भाग मे ३२-३२ नगरी हैं। इस तरह ५ विदेह के होने से ३२×५=१६० तीर्थंकर हो सकते हैं। जब कभी भरत और ऐरावत क्षेत्र मे चतुर्थ काल बीत रहा हो और सभी भरत, ऐरावत मे एक-एक तीर्थंकर भी हो रहे हो तो ऐसी स्थिति मे ५ भरत और ५ ऐरावत के १० तीर्थंकर और मिलाये जायें तो किसी समय एक साथ १७० तीर्थंकर इस ढाई द्वीप मे मिल सकते हैं।

अष्टमद्वीप मे अकृत्रिम पूज्य रचनायें—इस पुष्कर द्वीप के आगे दूने-दूने विस्तार वाले समुद्र है उससे आगे दूने विस्तार वाला द्वीप है। इस तरह दूने-दूने समुद्र और द्वीप गोलाकार होते-होते ८वाँ द्वीप नन्दीश्वर है। इस नन्दीश्वर द्वीप का गोल मे विष्कम्भ १६३ करोड ८४ लाख योजन है इसकी परिधि २०७२ करोड ३३ लाख ९४ हजार १९० योजन है, तथा एक गव्यूति और है। नन्दीश्वर द्वीप के बहुत मध्य भाग मे चारो दिशाओ मे ४ अंजन गिरि पर्वत हैं। जिनका आकार गोल ढोल की तरह है। इस पर्वत की गहराई १ हजार योजन है, ऊँचाई ८४ हजार योजन है। इन अंजन गिरियो के चारो दिशाओ मे एक लाख योजन के बाद ४-४ बावडियाँ हैं, जिनका नाम है नन्द, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दीगोसा। ये सब १ हजार योजन गहरी हैं और एक लाख योजन विस्तार वाली हैं। चौकोर हैं। इनसे जलचर जीव नही रहते। इनका जल अत्यन्त स्वच्छ है। इन बावडियो मे क्रम से सौधर्म, ऐसान, चमर और वैरोयन के स्थान हैं। इस प्रकार दक्षिण के अन्जन गिरि के बाद ४ बावडियाँ हैं, वहाँ सौधर्म के लोकपालो के स्थान हैं। पश्चिम दिशा के अन्जन गिरि की भी ४ बावडियाँ हैं। वहाँ पूर्व दिशा के क्रम से ४ बावडियो पर अधिकार वेणुदेव, विणुताल, वरुण और भूतानन्द का है। इसी प्रकार शेष दोनो दिशाओ मे भी अन्जन गिरि के चारो ओर बावडियाँ है और उन पर मुख्य देवो का निवास स्थान है इन सब पर्वतो पर अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इन बावडियो के कोने पर दो-दो और पर्वत हैं और अन्जन गिरि के चारो ओर ४-४ पर्वत हैं। इस प्रकार ८ और ४ एव एक मिलकर १३-१३ प्रत्येक दिशा मे पर्वत हैं। जिन पर जिनालय हैं। यहाँ देवगण प्रत्येक आषाढ, कार्तिक और फागुन के अन्तिम

८-८ दिनो मे वदना करने के लिये आते हैं और वे बहुत पुण्यलाभ लेते है। उसकी ही स्मृति मे यहा भी लोग इन अष्टाह्निका के दिनो मे नन्दीश्वर द्वीप की पूजा करते हैं और महिमा गाते हैं।

ग्यारहवे द्वीप के मध्य स्थित कुन्डल गिरि पर कूटो की रचनायें—अष्टद्वीप नन्दीश्वर द्वीप को घेर कर समुद्र है, फिर द्वीप है, इस तरह से द्वीप समुद्र बढते-बढते ११वां पर्वत है जिस पर जिनालय बने हुए है। अब इस ११वें द्वीप का नाम कुण्डलवर द्वीप है। द्वीप के बहुत बीच मे गोल आकार वाले चूडी के आकार वाला एक कुण्डल नाम का पर्वत है। जिसकी आकृति यवरासि की तरह है। यह पर्वत एक हजार योजन गहरा है, ४२ हजार योजन ऊँचा है। १००२२ योजन मूल मे विस्तार वाला है। ७०२३ योजन बीच मे विस्तार वाला है और ४०२४ योजन ऊपर के विस्तार वाला है। तो जैसे तीसरे द्वीप के बीच मे घेरे हुए मानुषोत्तर पर्वत है ऐसे ही इस कुण्डलवर द्वीप मे कुण्डल नाम का बीच मे चूडी के आकार का पर्वत है। इस पर्वत के ऊपर पूर्व आदिक दिशाओ मे १६ कूट हैं, इनके नाम है—वज्र, वज्रप्रभ, कनक, कनकप्रभ, रजत, रजतप्रभ, सुप्रभ, महाप्रभ, अक, अकप्रभ, मणि, मणिप्रभ, स्फटिक, स्फटिकप्रभ, हिम्वत महेन्द्र। इन सब कूटो का विस्तार प्रमाण मानुषोत्तर कूटो के समान है। एक-एक दिशा मे ये ४-४ कूट हैं। अब इन कूटो पर नागेन्द्र रहते हैं जिनका विवरण इस प्रकार है। पूर्व दिशा मे जो ४ कूट हैं उन पर नागेन्द्र इस तरह रहते हैं कि वज्रकूट पर त्रिसिर नाम के नागेन्द्र हैं, बज्रप्रभ कूट पर पचसिर नाम के नागेन्द्र हैं। कनककूट पर महासिर नाम के नागेन्द्र हैं। कनकप्रभ कूट पर महाभुज नाम के नागेन्द्र हैं। दक्षिण दिशा मे रजतकूट पर पद्मनाम के नागेन्द्र हैं। रजतप्रभ कूट पर पद्मोत्तर नामक नागेन्द्र हैं, सुप्रभ कूट पर महापद्म नामक नागेन्द्र है, महाप्रभ कूट पर वासुकि नामक नागेन्द्र है। ये नागेन्द्र सब व्यन्तर देव हैं। पश्चिम दिशा मे जो ४ कूट है उनमे अक कूट पर स्थिर हृद नामक नागेन्द्र है। अंकप्रभ कूट पर महाहृद नामक नागेन्द्र है। मणिकूट पर श्री वृक्ष नामक नागेन्द्र है और मणिप्रभ कूट पर स्वस्तिक नामक नागेन्द्र है। उत्तर दिशा मे स्फटिक कूट पर सुन्दर नामक नागेन्द्र है। स्फटिक प्रभकूट पर विशालाक्ष नामक नागेन्द्र है। हिम्मान कूट पर पाडुर नामक नागेन्द्र है और महेन्द्र कूट पर पाडुक नामक नागेन्द्र है। ये सोलहो नागेन्द्र पल्य की आयु वाले है। एक पल्य मे अनगिनते वर्ष आते हैं। अब पूर्व और पश्चिम दिशा मे कुण्डल पर्वत पर दो कूट और हैं जिनके ऊपर पूर्व आदिक दिशाओ के क्रम से ४ अरहन्त मन्दिर हैं, जिन मन्दिरो का प्रमाण उतना है जितना कि अजन गिरि पर्वत पर जो जिनायतन हैं उनके प्रमाण है।

१३वें द्वीप के मध्य स्थित रुचक गिरि पर कूट, देव, देवी व जिनालयो का वर्णन—कुण्डल वर द्वीप से आगे उससे दूने विस्तार वाला वलयाकार कुण्डलवर नाम का समुद्र है, उसके बाद उससे दूनावलय विस्तार वाला शखवर द्वीप है। उससे आगे उससे दूना वलय विस्तार वाला शखवर समुद्र है, उससे दूना विस्तार वाला रुचकवर द्वीप है। यह द्वीप १३वां द्वीप है। इसके ठीक बहुत बीच मे वलयाकार एक रुचकवर पर्वत है, जिसकी गहराई एक हजार योजन है ऊँचाई ८४ हजार योजन है और मूल मे मध्य मे और अग्र भाग पर विस्तार ४२ हजार योजन है। इस रुचक गिरि के ऊपर पूर्व आदिक दिशाओ मे ४ कूट हैं जिनके नाम है—नन्दावर्तक, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष और वर्द्धमान। ये चारो कूट ५००-५०० योजन ऊँचे हैं और नीचे बीच मे और ऊपर एक हजार योजन के विस्तार वाले हैं। पूर्व दिशा मे अवस्थित नद्यावर्त कूट पर पद्मोत्तर नाम का दिग्गजेन्द्र है। दक्षिण दिशा मे स्वस्तिक कूट पर सुहस्ति नाम का दिग्गजेन्द्र है। दक्षिण दिशा मे श्रीवृक्ष नाम के कूट पर नील नाम का दिग्ग-

जेन्द्र है और उत्तर दिशा मे वर्द्धमान नामक कूट पर अ जन गिरि नामक दिग्गजेन्द्र है। ये चारो ही देव एक पल्य की आयु वाले है।

रुचक गिरि के कूटों पर रहने वाली तीर्थंकर की माता की सेवा मे उद्यत दिक्कुमारियों का वर्णन—इस ही रुचकवर कूट पर पूर्व दिशा मे ८ कूट हैं, जिनके नाम हैं—वैडूर्य, काचन, कनक, अरिष्ट दिग्स्वस्तिक, नन्दन, अन्जन और अन्जन मूलक। इन कूटो का भी प्रमाण उन चार कूटो की तरह है। इन कूटो पर ८ दिग्कुमारिया रहती हैं। जो तीर्थंकर भगवान के जन्म के समय मे यहा आकर तीर्थंकर की माता के समीप मे कलश चमर आदिक लेकर रहती है। इन कूटो पर जो दिग्कुमारिया रहती हैं उनका नाम इस प्रकार है। वैडूर्यकूट पर विजया, कचन कूट पर वैजयन्ती, कनक कूट पर जयन्ती, अरिष्ट कूट पर अपराजिता, दिग्स्वस्तिक कूट पर नन्दा, नन्दन कूट पर नन्दोत्तरा, अन्जन कूट पर आनन्दा और अन्जन मूल कूट पर नादीवर्द्धना। इस रुचकवर कूट पर दक्षिण मे भी पूर्व समान ८ कूट और ८ दिग्कुमारियाँ हैं ये दिग्कुमारिया यहाँ आकर तीर्थंकर की माता के समीप मे दर्पण धारण करके रहती हैं। यहा ८ कूट और देवियो के नाम इस प्रकार हैं—अमोघ कूट पर स्वस्तिता, सुप्रबुद्ध कूट पर सुप्रनिधि, मन्दिर कूट पर सुप्रबुद्ध, विमल कूट पर यशोधरा, रुचक कूट पर लक्ष्मी-मती, रुचकात्तर कूट पर कीर्तिमती, चन्द्र कूट पर वसुन्धरा और सुप्रतिष्ठ कूट पर चित्रा। रुचक गिरि पर्वत पर पश्चिम दिशा मे ८ कूट हैं, जिनका परिमाण उन्हो कूटो के समान है इन कूटो पर भी ८ दिग्कुमारिया रहतो है, जो तीर्थंकर के जन्म समय मे तीर्थ कर की माता के समीप छत्रो को धारण करती हुई और गाती हुई विराजती हैं। इन कूट और देवियो के काम इस प्रकार है—लोहिताक्ष कूट पर इलादेवी, नगत कुसुम कूट पर सुरा देवी, पद्मकूट पर पृथ्वी, नलिन कूट पर पद्मावती, कुमुद पर कानना, सौमनस कूट पर नवमिका, यक्ष कूट पर यशस्विनी और भद्र कूट पर भद्रा। इस रुचक पर्वत पर उत्तर दिशा मे ८ कूट हैं, जिनके परिमाण पूर्वोक्त कूटो की तरह हैं। इस पर ८ दिग्कुमारिया रहती हैं, जो तीर्थ कर को माता के समीप आकर चमर ग्रहण करती हुई माता की सेवा करती हैं। इन कूट और देवियो के नाम इस प्रकार हैं। स्फटिक कूट पर अलम्भूसा, अ क कूट पर मिश्रकेसा, अन्जन कूट पर पुण्डरीकनी, काचन कूट पर वारुणी, रजत कूट पर आसा, कुण्डल कूट पर ह्रिरी, रुचिर कूट पर श्री, सुदर्शन कूट पर धृति, इसी रुचक पर्वत पर पूर्वादिक दिशाओ मे ४ कूट और हैं, जिन पर विद्युत्कुमारी देविया रहती हैं और यहा आकर तीर्थ कर की माता के समीप मे सूर्य की तरह प्रकाश करतो हुई ठहरती हैं। इन ४ कूट और कुमारियो के नाम इस प्रकार हैं–विमल कूट पर चिमा, मित्यालोक कूट पर कनकचिमा, स्वयप्रभ कूट पर त्रिसिरा, किलोद्योत कूट पर सूत्रमणि। इसी पर्वत पर विदिशाओ मे क्रम से ४ कूट और हैं पूर्वोत्तर दिशा मे वैडूर्य कूट है, जिस पर रुचका नामक दिग्कु-मारी महत्तरिका रहती है। पूर्व दक्षिण दिशा मे रुचक कूट है, जिस पर रुचकाभा नाम की दिग्कुमारी महत्तरिका रहती है। पश्चिम दक्षिण दिशा मे मणिप्रभा कूट है जिस पर रुचकाता नाम की दिग्कु-मारो महत्तरिका रहती है। पश्चिमोत्तर दिशा मे रुचकोत्तम कूट है, जिस पर रुचक प्रभा नाम की दिग्कुमारी महत्तरिका रहती है। इस पर्वत की विदिशाओ मे ४ कूट और हैं। रत्न, रत्नप्रभ, सर्वरत्न और रत्नोच्चय। इन पर क्रम से विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता नाम की विद्युत्कुमारी महत्तरिका रहती है। ये आठो ही महत्तरिका यहा आकर तीर्थ कर की जन्म क्रिया को करती हैं। रुचक पर्वत के ऊपर चारो दिशाओ मे ४ जिन मन्दिर हैं, पूर्वमुख नाम है–अन्जन गिरि पर अवस्थित

जिन मन्दिर के समान इनका परिमाण है। १३ द्वीप विधान जब यहा भक्तजन करते हैं तो इस १३वें द्वीप पर इन चार जिनालयो का लक्ष्य रख कर जिनेन्द्र भक्ति करते हैं। इस प्रकार दूने-दूने वलय विस्तार वाले असख्यात द्वीप समुद्र हैं। तो मानुषोत्तर पर्वत जिसकी वजह से ढाई द्वीप का विभाग बना है उसके भीतर मनुष्य है और वे मनुष्य दो प्रकार के हैं। वे किस तरह के है ? इसके उत्तर मे सूत्र कहते हैं।

आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६॥

आर्य मनुष्यों मे भेदो का प्रारम्भिक सकेत—मानुषोत्तर पर्वत से पहले ही अर्थात ढाई द्वीप मे मनुष्य रहते है। मनुष्य दो प्रकार के है – आर्य और म्लेच्छ। यहा लब्धि अपर्याप्त मनुष्यो का जिक्र नही है किंतु जो पर्याप्त है, जिनका परस्पर लोक व्यवहार है ऐसे मनुष्यो का प्रसग चल रहा है। आर्य का अर्थ है—जो गुणो के द्वारा अथवा गुणवानो के द्वारा सेवित हो सो आर्य है याने अच्छे मनुष्य। गुणवान जिनको आदर दें, जिनमें गुण विशेष रहे वे आर्य कहलाते है। ये आर्य दो प्रकार के है—(१) ऋद्धि-प्राप्तार्य (२) अनऋद्धिप्राप्तार्य। जिन आर्यों को ऋद्धियॉ प्राप्त हो गई है, जिसका वर्णन आगे आयेगा, जैसे अतिशयज्ञान, शरीर बल, अणिमा, महिमा आदिक चमत्कार जिन्हे प्राप्त हुए है वे कहलाते हैं ऋद्धिप्राप्तार्य। और जिन्हे ऋद्धिया प्राप्त तो नही है मगर गुण सहित हैं, गुणवानो के द्वारा सेवित हो सकने योग्य है ऐसे मनुष्य अनऋद्धिप्राप्तार्य कहलाते हैं। इससे ऋद्धिप्राप्तार्य का वर्णन बहुत है अतएव पहले अनऋद्धिप्राप्तार्य का वर्णन किया है। ये आर्य ५ प्रकार के होते है—क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य और दर्शनार्य। क्षेत्रार्य का अर्थ है जो काशी, अयोध्या जैसे अच्छे नगरो मे उत्पन्न हुए हैं वे क्षेत्रार्य कहलाते है। जात्यार्य—वे कहलाते हैं जो इक्ष्वाकुवश जैसे अच्छे कुलो मे उत्पन्न हुए है। कर्मार्य-जो अपनी क्रिया कर्त्तव्यो को सही करते है वे कर्मार्य कहलाते है।

कर्मार्यो मे सावद्य कर्मार्य का वर्णन—कर्मार्य —ये ३ प्रकार के होते हैं—(१)सावद्य कर्मार्य (२) अल्पसावद्य कर्मार्य और (३)असावद्यकर्मार्य। सावद्य कर्मार्य ६ प्रकार के हैं। सावद्य कर्मार्य का अर्थ है कि जिन कर्मों मे पाप भी होते है मगर एक गृहस्थाचार के नाते करना पडता है वे सावद्यकर्मार्य कहलाते है। तो चू कि सावद्यकर्म ६ प्रकार के होते है तो सावद्य कर्मार्य भी ६ प्रकार के कहे गए है। कोई असी कर्मार्य कहते है अर्थात शस्त्रविद्या मे निपुण हैं। दूसरो की रक्षा के लिए, देश रक्षा के लिए जो शस्त्र चलाने का कार्य करते है वे असिकर्मार्य कहलाते है। दूसरे हैं मसिकर्मार्य। मसि मायने स्याही। उसके साधन से जो कर्तव्य करने वाले हैं—लिखना, हिसाब लिखना, निबन्ध लिखना आदिक जो स्याही से करते है वे मसिकर्मार्य कहलाते है। तीसरे हैं कृषिकर्मार्य—जो खेती करते हैं, खेती से अपने देश का, गाव का कल्याण करते है गृहस्थी निभाने के लिये खेती का जिन्होने साधन बनाया है वे कृषिकर्मार्य कहलाते हैं। विद्याकर्मार्य—पठन-पाठन करके शिक्षण देकर जो आजीविका चलाते है वे विद्याकर्मार्य कहलाते हैं। शिल्पकर्मार्य—काष्ठ, लोहा, मकानआदिक बनाने की कला जिनमे है ऐसे कलाकारो को शिल्पकर्मार्य कहते है। वणिककर्मार्य—व्यापार करके, अन्य जगह से वस्तु मगाकर वितरण करना। अपने यहा से वस्तु सचय करना, आवश्यक स्थानो पर बेचना यह सब व्यापार है। इस व्यापार द्वारा जो आजीविका चलाते है वे वणिककर्मार्य कहलाते हैं। ये सब अपने अपने कार्य मे कुशल है और शाति, धीरता, समता आदि सभी उपयोगी गुणो का आदर रखते हैं इस कारण ये सब आर्य ही हैं।

अल्पसावद्यकर्मार्य व असावद्यकर्मार्यों का वर्णन—दूसरे हैं अल्पसावद्यकर्मार्य, अर्थात जिनकी चेष्टाओ मे, जिनके कर्तव्यो मे थोडा सा पाप रहता है ऐसे आर्य। वे होते हैं श्रावक, जो ५ अणुव्रत का पालन करते है। अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इनका एक देश पालन करते हैं वे श्रावक कहलाते है। असावद्यकर्मार्य हैं सयमी मुनि। राग से वे अलग हैं, वैराग्य से उनका भाव सना हुआ है फिर भी उनसे जो चेष्टाये बनती है, समितियो का पालन करते हैं तो उन कर्तव्यो मे उनके पाप नही हैं इस कारण वे असावद्यकर्मार्य कहलाते हैं।

अब चारित्रार्य के प्रसग मे कहते हैं कि जो कर्मक्षय करने के लिये उद्यमी हैं। वैराग्य मे परिणत हैं ऐसे सयमी मुनि चारित्रार्य कहलाते हैं ये दो प्रकार के होते हैं। (१) अभिगत चारित्रार्य और (२) अनभिगतचारित्रार्य। इन दोनो मे भेद क्या है? कोई तो उपदेश की अपेक्षा रखकर आगे बढ रहे हैं और कोई इतना कुशल है कि उपदेश की अपेक्षा नही और चारित्र मे बढ रहे हैं। अनभिगतचारित्रार्य कौन है? जो ये हैं ११वें और १२वें गुणस्थान वाले मुनि। चारित्र मोह के उपशम से अथवा क्षय से बाहरी उपदेश की अपेक्षा बिना अपने ही परिणामो की निर्मलता से चारित्र परिणाम से जो प्राप्त करते है वे हैं अपगत चारित्रार्य। जो उपशम से बढते हैं वे हैं उपशात कषाय और जो क्षय से बढते हैं वे हैं क्षीण कषाय। इसमे नीचे सभी मुनि अनभिगत चारित्रार्य कहलाते है। अन्तर मे चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम होने से वाह्य उपदेश के निमित्त विरक्त परिणाम जिनके आये वे अनभिगत चारित्रार्य कहलाते है।

दर्शनार्यों के प्रकार—दर्शनार्य कहते है सम्यग्दृष्टि जीवो को। जिनके सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ हैं वे दर्शनार्य हैं। दर्शनार्य १० प्रकार के हैं जो सम्यक्त्व के भेद हैं १० प्रकार के उन्ही भेदो के कारण ये दर्शनार्य भी १० प्रकार के कहे गये।—(१) आज्ञारुचिदर्शनार्य—भगवान अरहन्त सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत तथा उनकी आज्ञामात्र से जिनको श्रद्धान हुआ है वे आज्ञारुचिदर्शनार्य कहलाते हैं। इनके भी श्रद्धान तो वही हुआ है जैसा सम्यक्त्व मे होता है। विभावो से भिन्न अन्तस्तत्त्व का श्रद्धान, पर इस श्रद्धान मे प्रथम कारण क्या रहा और किस तरह ये आगे बढे, उस पर दृष्टि दीजिये। तो उसमे प्रधानता मिलती है जिसके अरहन्त भगवान की आज्ञा पर प्रधानता होना, वह बढ बढ कर जिसने स्वभाव का अनुभव कर लिया है वह सम्यग्दृष्टि आज्ञारुचि दर्शनार्य कहलाता है। (२) मार्गरुचि—परिग्रहरहित मोक्षमार्ग का जिसने श्रवण किया है, चरणानुयोग विधि से जिसने निर्ग्रन्थ को अन्त बाह्य क्रिया का उपदेश सुना है उसके श्रवण मात्र से जिसको सम्यक्त्व प्रकट हुआ है उन्हे मार्ग रुचि कहते हैं। सम्यक्त्व तो इनका वैसा ही है जैसा कि होता है, पर वह किस सिलसिले से मिला, उसकी प्रधानता मे बताया है कि यह मार्गरुचि है। (३) तीसरा है उपदेश रुचि—तीर्थंकर बलदेव आदिक के पवित्र चरित्र का उपदेश हो, उसको सुन कर जिसका श्रद्धान बने, आत्मरुचि बने वह आत्मरुचि कहलाता है। (४) सूत्ररुचि—दीक्षा, मर्यादा, पिरूपणा, आचार के सूत्र इनके उपदेश सुने, इनकी विधिया देखे, उससे ही जिनको सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ है उन्हे सूत्र रुचि कहते हैं। सम्यक्त्व सबका आत्मानुभव सहित ही है। किंतु उनकी उत्पत्ति किस सिलसिले मे हुई है उसके भेद से ये भेद चल रहे हैं। (५) बीजरुचि—याने छोटे-छोटे बीजभूत आगम के पदो को ग्रहण करके सूक्ष्म अर्थ का तत्त्वार्थ का श्रद्धान बन गया है उन्हे कहते है बीज रुचि। (६) सक्षेपरुचि—जीवादिक पदार्थो का सामान्यतया सम्बोधन हो रहा हो, सक्षेप मे कथन हो उससे ही जिनका श्रद्धान हुआ है वे हैं सक्षेप रुचि। (७) विस्तार रुचि—याने आगम का

विस्तार जैसा अंगो मे पूर्वों मे है वहां जीवादिक अर्थ सुने अथवा बडे विस्तार मे उपदेश सुने। प्रमाण, नय आदिक का निरूपण सुने, उस निमित्त से जिनको श्रद्धान हो गया है वे विस्ताररुचि कहलाते है। (८) अर्थरुचि—याने वचन का विस्तार तो नही हो रहा, पर अर्थ वस्तु स्वरूप, उसका ग्रहण बना है, उस वस्तु स्वरूप की समझ से जिनके निर्मलता प्रकट हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टि अर्थ रुचि कहलाते हैं। (९) अवगाह रुचि —आचारांग आदिक १२ अंगो से जो सहित हैं और उनसे विविक्त है श्रद्धान जिनका वे अवगाह रुचि है। (१०) परभावगाढ रुचि— उत्कृष्ट केवलज्ञान, केवल दर्शन इनसे प्रकाशित जो जीवादिक अर्थ अर्थात इन उत्कृष्ट ज्ञानो द्वारा तत्त्व स्वरूप को जान जाने से जिनको निर्मलता प्रकट हुई है वे कहलाते हैं परमावगाढ रुचि। इस प्रकार वे अनऋद्धि प्राप्तार्य हैं।

ऋद्धि प्राप्तार्यों के प्रकारो के अन्तर्गत बुद्धि ऋद्धियो मे प्रथम सप्त ऋद्धियो का वर्णन—ऋद्धि प्राप्तार्य ८ प्रकार के होते है—ऋद्धियाँ ८ जाति की होती हैं, उनसे सम्पन्न आर्य ८ प्रकार के कहे गए हैं। वे ८ जाति की ऋद्धिया ये हैं—(१) बुद्धि ऋद्धि, (२) क्रिया ऋद्धि, (३) विक्रिया ऋद्धि, (४) तपऋद्धि, (५) बल ऋद्धि, (६) औषधि ऋद्धि, (७)। रसऋद्धि, (८) क्षेत्र ऋद्धि। बुद्धिऋद्धि का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान विषयक चमत्कार को बुद्धिऋद्धि कहते हैं। ये बुद्धिऋद्धियाँ १८ प्रकार की हैं—(१) केवल ज्ञान ऋद्धि—यह तो ज्ञान का सर्वोकृष्ट चमत्कार है जहाँ तीन लोक, तीन काल के समस्त ज्ञेय युगपत प्रतिविम्बित होते हैं, ऐसा यह सर्वोकृष्ट चमत्कार है। (२) अवधिज्ञान ऋद्धि—परमावधिज्ञान सर्वावधिज्ञान सारे लोक को जानता है और उनमे इतना सामर्थ्य है कि कर्मों के क्षयोपशय, उपशम आदिक को निरख कर सम्यग्दर्शन तट का भी ज्ञान कर लेता है। (३) मन.पर्ययज्ञान ऋद्धि—दूसरे के मन मे रहने वाले विकल्प और विषयो को जो जान लेवे उसे मन. पर्यय ज्ञान कहते है। यह भी ज्ञान का एक माहात्म्य है। (४) बीजबुद्धि—जैसे भले प्रकार जोते गए और मथे गये खेत मे योग्य समय मे एक बीज बोया तो जैसे वह एक बीज अनेक करोडो बीजो का देने वाला है उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण और श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तिराय इन तीनो का उत्कृष्ट क्षयोपशम भी होने पर आगम के एक बीज पद को ही ग्रहण करने से अनेक पदार्थों का बोध हो जाना। बीज बुद्धि है। (४) कोष्ठ बुद्धि—जैसे कोठे में रखी हुई बहुत सी धान्य बीज राशि जो ज्यो के त्यो रखी रहती है। जब चाहे तब उन्हे पूरे निकाल लो। तो जैसे कोठे मे धान्य बीज ज्यो के त्यो रहते हैं घटते नही उसी प्रकार परोपदेश से बहुत-बहुत अर्थग्रन्थ बीजो का याने उन ज्ञेयो का बुद्धि मे ज्यो का त्यो अवस्थान रहना अथवा परोपदेश से जो नही भी जाना गया था, बुद्धि की विशिष्टता के कारण बहुत से ग्रन्थ बीजो का जाने हुए ज्ञान का अवस्थान बना रहना कोष्ट बुद्धि है। (६) पदानुसारिता ऋद्धि-एक पद सुनकर आगे का, पीछे का, बीच का जो-जो भी पद है उन सबका ज्ञान कर लेना पदानुसारिता ऋद्धि है। (७) सम्भिन्नश्रोतृत्व—१२ योजन लम्वे, ९ योजन चौडे इतने विस्तार मे चक्रवर्ती का कटक तैयार हो और उसमे हाथी, घोडा, गधा, ऊंट, मनुष्यादिक बहुत होते ही हैं। उनके अक्षर वाली, अनक्षर वाली भाषायें वहाँ चलती भी रहती हैं। तो नाना प्रकार के शब्दो का जोकि एक साथ उत्पन्न हुये उन समस्त शब्दों का एक ही काल मे ग्रहण करना, जान लेना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है। यह ऋद्धि कैसे बनी कि उन मुनियो मे तपस्या विशेष हुई। उसके बल से ऐसा ज्ञान मे चमत्कार आया कि मानो सभी जीव प्रदेश श्रवणेन्द्रिय रूप परिणम गए, ऐसे विशेष चमत्कार को सम्भिन्नश्रोतृत्व कहते हैं।

बुद्धि ऋद्धियो मे ८ वीं ऋद्धि से १४ वीं ऋद्धि तक का वर्णन—(८ दूरात्‌आस्वादन—रस ज्ञान मे उत्कृष्ट मर्यादा है ६ योजन की। याने ६ योजन दूर के रस का भी ज्ञान किया जा सकता है। करेगा तपश्चरण की शक्ति विशेप से। ऐसा रसना इन्द्रियावरण और श्रुतावरण और वीर्यान्तराय, इन तीन का क्षयोपशम विशेष हुआ है और अगोपांग नाम कर्म का अच्छा लाभ है तो इस क्षेत्र से भी दूर के बहुत योजन दूर क्षेत्र से आये हुये रस का स्वाद कर सके, ऐसी सामर्थ्य जहाँ प्रकट हो उसे दूरात् आस्वादन ऋद्धि कहते हैं। (६) दूरादृर्शन रूप-देखने का जितना उत्कृष्ट क्षेत्र है उससे भी अधिक क्षेत्र रूप को देखने का सामर्थ्य हो जाना यह दूरात्दर्शन ऋद्धि है। तपश्चरण की शक्ति विशेष से ऐसा एक विशिष्ट चक्षुरिन्द्रियावरण का क्षयोपशम हुआ है साथ ही श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम हुआ है और वीर्यान्तिराय का क्षयोपशम हुआ हैं और अगोपाग नामक कर्म का चक्षुरिन्द्रिय का विशिष्ट लाभ है जिससे निश्चित क्षेत्र से दूर के क्षेत्र के रूप का ज्ञान हो जाता है। (१०) दूरात्स्पर्शन-स्पर्श ज्ञान के क्षेत्र से भी क्षेत्र के वाहर के पदार्थ का स्पर्श ज्ञान करने का सामर्थ्य जहाँ होता है वह दूरात्स्पर्शन ऋद्धि है। (११) दूरात्घ्राणऋद्धि घ्राणेन्द्रिय द्वारा गध का ज्ञान होता है और अधिक से अधिक कितने क्षेत्र तक का गध लिया जा सकता है, उसकी उत्कृष्ट म्याद है कुछ। उससे भी अधिक दूरवर्ती पदार्थ का गध लेने का सामर्थ्य हो जाना दूरात्घ्राण ऋदिध है। (१२) दूरात्श्रवण सामर्थ्यता-शब्द सुनने के उत्कृष्ट क्षेत्र से भी दूर के क्षेत्र के शब्दो को सुनने का सामर्थ्य इस ऋद्धि मे है। (१३) दसपूर्वित्व ऋद्धि—अग पूर्व का ज्ञान जब ११ अग ६ पूर्व का हो लेता है उसके पश्चात् जब दशम पूर्व की साधना होती है तो उस काल मे महारोहिणी आदिक तीन महाविद्यायें आती हैं। अपने-अपने रूप सामर्थ्य का आविष्कार करने वाली अनेक वार्ताओं के कहने मे कुशल वेग वाले विद्या देवता आते हैं, उनसे विचलित न होना, अपने चरित्र को सही रखना और इस तरह अचलित रहकर दस पूर्व के दुस्तर समुद्र को पार कर लेना यह पूर्वित्व-ऋद्धि है। (१४) चतुर्दश पूर्वित्व—याने ११ अग १४ पूर्व अथवा सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान मे कुशल हो जाना, श्रुत केवली हो जाना सो यह है चतुर्दश पूर्वित्व ऋद्धि।

अष्टाङ्ग महानिमित्तज्ञता बुद्धि ऋद्धि का वर्णन-(१५) निमित्तज्ञता—८ महानिमित्तक हैं, जिनके नाम हैं—अन्तरीक्ष, भौम, अग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न। इन ८ महान निमित्तो का परिचय करके भविष्य के परोक्ष के अनेक सुख-दुःख की बातें बताना इन ऋद्धियो मे है। जैसे अन्तरीक्ष ऋद्धि—सूर्य का ग्रहण हो, चन्द्र का ग्रहण हो, किसी नक्षत्र का उदय हो, अस्त हो, इन बातो से भूत कालीन, भविष्य फैले विभाग, बताना यह अन्तरीक्ष महानिमित्तज्ञता है। भौम निमित्त-ज्ञता—पृथ्वी कही कठोर है, चिकनी है रूखी है ऐसी पृथ्वी को देखकर अथवा पूर्व आदिक दिशाओ मे कुछ सूत्र सुनकर वृद्धि-हानि, जीत-हार आदि का ज्ञान कर लेना और भूमि मे, अन्दर मे पडे हुए सोना-चाँदी आदिक निधि की बात जान लेना सो भौम महानिमित्तज्ञता है। अगनिमित्तज्ञता—अग उपाग के दर्शन से भूत भविष्य वर्तमान काल मे होने वाले सुख-दुःख आदिक की बात बताना, जान लेना अग महानिमित्तज्ञता है। स्वर निमित्तज्ञता—अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक, शुभ-अशुभ शब्दो के सुन लेने से इष्ट अनिष्ट फलो की जानकारी कर लेना स्वर निमित्तज्ञता है। व्यञ्जन निमित्तज्ञता सिर, मुख, कठ, छाती, हाथ आदिक मे तिल, मसा आदिक चिन्हो को देखकर तीनो काल मे हित अहित की जानकारी कर लेना व्यञ्जन निमित्तज्ञता है। लक्षण निमित्तज्ञता—शरीर मे भी नाना चिन्ह पाये जाते हैं—श्री वृक्ष, स्वस्तिक, कलश आदिक रेखाओ द्वारा जो चिन्ह वन जाते हैं उनको

देखकर त्रैकालिकस्थान, मान, ऐश्वर्य आदिकका विशेष ज्ञान करलेना लक्षण निमित्तज्ञताछिन्न—वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन आदिक अगर छिद जायें शस्त्र लेने से, वेतन लेने से या चूहा काट जाए तो उसे देखकर तीन काल विषयक लाभ-हानि, सुख-दु ख आदिक का ज्ञान कर लेना छिन्न निमित्तज्ञता है। स्वप्न निमित्तज्ञता नीरोग पुरुष को जिसको वात पित्त कफ आदि का कोई दोई दोष नही है उसे पिछली रात्रि भाग मे स्वप्न आया तो उन शुभ स्वप्नो को देखकर और अशुभ स्वप्नो को देखकर आगामी काल का जीवन-मरण सुख-दु ख आदिक जान लेना सो स्वप्न निमित्तज्ञता है। शुभ स्वप्न कौन से कहलाते ? जैसे चन्द्र दिखा, सूर्य दीखा, समुद्र मे नहाना दीखा, सकल पृथ्वी दिखी आदिक ये शुभ स्वप्न हैं और ये अशुभ स्वप्न हैं जैसे घी, तेल से मालिश करना, कुत्ता, गधा, ऊ ट आदि पर चढना, दिशाओ मे गमन करना आदि। इन स्वप्नो के फल का ज्ञान कर लिया जाता है। तो ऐसे ८ प्रकार के महानिमित्तो मे कुशलता पाना यह अष्टाग महानिमित्तता है।

बुद्धि ऋद्धियो मे अन्तिम तीन ऋद्धियो का वर्णन—(१६) प्रज्ञाश्रवणऋद्धि - द्वादशाग और १४ पूर्व का अध्ययन भी न किया हो, लेकिन श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय का ऊपर क्षयोपशम होने से ऐसी ज्ञानशक्ति का लाभ हो जाए कि जिससे अग पूर्व विषयक बातो का निशसय निरूपण किया जा सके उसे प्रज्ञाश्रवणऋद्धि कहते हैं। (१७) प्रत्येकबुद्धता—दूसरे के उपदेश बिना अपनी ही शक्ति विशेष से ज्ञान सयम के विधान मे निपुणता हो जाना प्रत्येक बुद्धता है। (१८) बुद्धि ऋद्धि—वादित्व, बडे-बडे विद्वानो के प्रश्नो का उत्तर दे सकना, दूसरो के कथन मे दोष का निरीक्षण कर अर्थात् अपने वाक द्वारा वडे-वडे इन्द्रादिक को भी निरुत्तर कर देना सो तो वादित्व ऋद्धि है।

क्रिया ऋद्धियो का वर्णन—क्रिया विषयक ऋद्धि दो प्रकार की होती है—(१) चारण ऋद्धि और (२) आकाशगामी ऋद्धि। क्रिया ऋद्धि का अर्थ है—क्रिया करना, चलना, इसमे चमत्कार आना। सो ये दो प्रकार के हैं। चारण ऋद्धि का अर्थ है कि कोई जल का आलम्बन लेकर चलता है तो जलकाय के जीवो की भी विराधना नही होती, और जिस भूमि पर पैर उठाकर, रखकर चलता है इस तरह जल पर भी पैर उठाकर रखकर गमन होता है, ऐसा ऋद्धिबल चारण ऋद्धि कहलाता है। जघाचारण ऋद्धि—जमीन के ऊपर आकाश मे चार अगुल प्रमाण जघा का उठाना रखना, उसकी शीघ्र क्रिया करने मे चतुर और सैकडो योजन तक गमन करने मे समर्थ वाली ऋद्धि जघा-चारण ऋद्धि है। तन्तु चारण ऋद्धि—तन्तु पर गमन करने की कुशलता जिसमे आये वह यह ऋद्धि है। पुष्पचारण ऋद्धि—फूल पर चलें और फूलो को बाधा न हो। पत्रचारण ऋद्धि—पत्तो पर चलें और किसी भी पत्ते को धाधा न हो। ऐसी पृथ्वी, अग्नि सिखा आदिक का आलम्बन करके गमन होता है यह सब चारण ऋद्धि है। आकाशगामी ऋद्धि—ये साधु पद्मासन से बैठे हुए, किसी आसन से बैठे हुए, कायोत्सर्ग से खडे हुये आकाश मे गमन कर जायें। पैरो को उठाने धरने की कोई विधि नही होती और यो आकाश मे गमन कर शीघ्र दूसरे स्थान तक पहुँच सकते हैं। ऐसी ऋद्धि का नाम आकाशगामी ऋद्धि।

विक्रिया ऋद्धियो का वर्णन—विक्रिया विषयक ऋद्धिया अनेक तरह की हैं जो ११ भेदो मे सक्षिप्त हो जाती है। (१) अणिमा ऋद्धि - अपने शरीर को इतना छोटा बना लें कि वे मुरार के छिद्र मे भी प्रवेश करके वहा बैठ जाये, और वही बैठे हुए चक्रवर्ती के परिवार की, विभूति की रचना कर ले, ऐसा अणु शरीर बना सकें ऐसी ऋद्धि को अणिमा ऋद्धि कहते हैं। (२) महिमा ऋद्धि—जो अपने

शरीर को पर्वत के समान महान बना लें। (३) लघुमाऋद्धि—जो अपने शरीर को इतना लघु बना लें कि कहो वायु की तरह हल्का हो जाये। (४) गरिमाऋद्धि—जो अपने शरीर को वज्र से भी अधिक वजन बनालें। (५) प्राप्तिऋद्धि—जोभूमि मे बैठे-बैठे अगुल के अग्र भाग से मेरु के सिखर, सूर्य आदिक का स्पर्श करलें। (६) प्राकम्प्यऋद्धि—जो जल पर भूमि की तरह गमन करें। भूमि पर जल की तरह तैरने, डूबने वगैरह की क्रियायें करें। (७) ईशत्त्वऋद्धि—जिस साधु को तीनो लोक की प्रभुता प्राप्त हो। (८) वशित्वऋद्धि—सर्व जीवो को वश मे करने की लब्धि हो। (९) अप्रतिपात-ऋद्धि—जो पर्वत के मध्य से ऐसा गमनागमन करें जैसे कि आकाश मे गमनागमन होता है। (१०) अन्तर्धानऋद्धि—जो अपने रूप को अदृश्य बना लें, किसी को दिखाई न दे ऐसी शक्ति जिनमे हो जाती है। (११) सकामरूपित्वऋद्धि—जो एक साथ अनेक आकार रूप बनाने की शक्ति रखते हो ऐसी ऋद्धि।

तपोतिशय ऋद्धियो का वर्णन—अब तप ऋद्धि का वर्णन करते हैं—जहाँ तपश्चरण विशेष के कारण अतिशय हो जाता है। ये ऋद्धि १० प्रकार की है—(१) उग्रतप ऋद्धि—एक उपवास, दो उपवास, ३, ४ आदिक पक्ष के उपवास, महीने का उपवास ऐसा योग होने पर भी किसी भी योग का का आरम्भ करके अपने जीवन भर उससे निवृत्त नही होते, थकते नही, असहन शील नही होते वे उग्र-तप ऋद्धि वाले है। (२) दीप्ततप ऋद्धि—बडे-बडे उपवास करने पर भी शरीर वचन मन का बल जिसका बढा हुआ रहता है, दुर्गन्धरहित जिसका शरीर होता है। कमलवत सुगधित जिसका निश्वास होता है। जिसकी महादीप्ति शरीर से कभी अलग नही होती वह दीप्ति तप ऋद्धि वाला है। (३) तप्ततपऋद्धि—तपे हुए लोहे की कडाही मे डाले गये जल कणो की तरह शीघ्र ही जिसका अल्पाहार शुष्क हो जाता है और मल आदिक परिणमनो से रहित होता है वह तप्तऋद्धि वाला है। (४) महातप ऋद्धि—सिहनि क्रीडित आदिक बडे-बडे उपवास के करने मे जो परायण हैं ऐसे यती महातप ऋद्धि वाले होते हैं। (५) घोरतप ऋद्धि—जिसका देह नाना प्रकार के ज्वर, खाँसी, स्वास, कुष्ट आदिक रोगो से सतप्त है फिर भी अनशन, कायक्लेश आदिक जिसके बराबर चल रहे हैं और जो डरावने मरघट, पर्वत गुहा, कदर आदिक आदिक जगहो मे निवास करते हैं, जहाँ यक्ष, राक्षस, पिशाच आदिक के विकरालरूप रहा करते हैं। जहाँ सिह व्याघ्र आदिक अनेक वनचर जीव विचरण किया करते हैं, ऐसा आवास जिनको रुचता है, और वहाँ भी जो प्रसन्न रहते हैं वे घोर तपऋद्धि वाले हैं। (६) घोर पराक्रमऋद्धि—घोर तप ऋद्धि वाले की तरह जिसका एकान्त निवास है, और तपश्चरण योग मे जो तत्पर हैं वेघोर पराक्रम ऋद्धि वाले हैं। (७) घोर ब्रह्मचर्य—चिरकाल से जिसका अचलित ब्रह्म-चर्य है और चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम से जिसके दुःस्वप्न भी नष्ट हो गये हैं, ऐसे चमत्कारी साधु घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि वाले हैं।

बलऋद्धियों का वर्णन—बलऋद्धि तीन प्रकार की होती हैं-(१) मनोबल ऋद्धि, (२) वचन बलऋद्धि और (३) कायबल ऋद्धि। जिसके नोइन्द्रियावरण का प्रकर्ष क्षयोपशम है, श्रुतावरण का भी ऊँचा क्षयोपशम है एव वीर्यान्तिराय कर्म का भी प्रकृष्ट क्षयोपशम है तो अन्तर्मुहूर्त मे ही समस्त आगम के अर्थ चिंतन करने मे जो निपुण हैं, निर्मल हैं, वे मनोबल ऋद्धिवाले सत हैं। जिनके वचन-बल ऐसा अद्भुत प्रकट हुआ है कि अन्तर्मुहूर्त मे ही समस्त आगम का उच्चारण करने मे समर्थ हैं सतत ऊँचे स्वर से उच्चारण करने पर भी जिसके थकान नही होती और कण्ठ भी हीन नही होता वे

वचनबल ऋद्धि वाले संत इनके नोइन्द्रियावरण कर्म का जिह्वा का, श्रुतावरण का और वीर्यान्तराय का अद्भुत क्षयोपशम होता है। यह समस्त आगम का उच्चारण अन्तर्मुहूर्त में ही कर लेता है। जिसके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम है जिसके अद्भुत कायबल प्रकट हुआ है, जो मासिक चातुर्मासिक वार्षिक प्रतिमायोग धारण करने पर भी उपवास रखने पर भी श्रम और ग्लानि से रहित है वे कायबल ऋद्धि वाले हैं।

औषध ऋद्धियों का वर्णन—औषधिऋद्धि ८ प्रकार के होते हैं—इन ऋद्धियो से असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। (१) आमर्शन ऋद्धि—जिसके हाथ का स्पर्श, पैर आदिक का स्पर्श ही औषधिरूप बन गया है याने रोगीजन अंग का स्पर्श पायें तो असाध्य रोगो से भी निवृत्त हो जाते हैं। (२) क्षेत्र-औषधि ऋद्धि—जिन साधु संतो का थूक ही औषधि बन गया, जिसके योग से असाध्य रोग भी निरोगता प्राप्त करते है। (३) जल्लऔषधिऋद्धि—पसीने के सहारे जो धूल मैल इकट्ठा हो जाता है उसे जल्ल कहते है। यह जल्ल ही औषधिरूप बन गया जिनके वे जल्ल औषधि वाले संत हैं। (४) मलौषधि ऋद्धि—कान, दांत, नासिका आदिक से उत्पन्न हुआ मल औषधि बन गया है जिनके वे मलौषधि ऋद्धि वाले सन्त हैं। (५) विडौषधि ऋद्धि—जिसका विट (विष्टा) औषधि बन गया है—वह विडौषधि ऋद्धि वाला सन्त है। (६) सर्वौषधि प्राप्त ऋद्धि—जिसके अंग प्रत्यंग, नखदंत, केस आदिक अवयव से स्पर्श करने वाली वायु भी औषधि को प्राप्त हो गई वह सर्वौषधि प्राप्त ऋद्धि वाला सन्त है। (७) आस्या विष ऋद्धि—तेज विष से मिला हुआ भी आहार जिसके मुख मे पहुंचकर निर्विष हो जाता है अथवा जिसके मुख से निकले हुए वचनो को सुनने से महाविष से तपे हुये भी पुरुष निर्विष हो जाते हैं वे आस्याविष ऋद्धि वाले हैं। (८) दृष्टिविष ऋद्धि—जिसके देखने मात्र से ही बड़े तीव्र विष से दूषित भी पुरुष निर्विष हो जाते हैं वे दृष्टि विषऋद्धि वाले है।

रस ऋद्धियो का वर्णन—रस ऋद्धि ६ प्रकार की है—(१) आस्यविष बड़े तपस्वी यतीजन जिसको कदाचित ऐसा बोल देते कि मरजावो तो तत्क्षण ही महान् विष से अविभूत होकर मरण कर जाते हैं। ऐसी सामर्थ्य जहाँ होती है वह आस्याविष ऋद्धि वाला समझे। (२) दृष्टिविष—उत्कृष्ट तपश्चरण वाले यती क्रुद्ध होकर जिसको देख लें तो उसी समय ही तीव्र विष से अविभूत होकर मरण कर जायें ऐसी सामर्थ्य जिनमे है वे दृष्टिविष ऋद्धि वाले समझें। (३) क्षीराश्रवी ऋद्धि—नीरस भी भोजन जिसकी अंजुली मे पहुंच जाता है तो वह भोजन क्षीर (दूध) रस के गुण को प्राप्त हो जाता है। अथवा जिसके वचन क्षीण पुरुषो को क्षीर की तरह सन्तर्पण करने वाले हैं वे क्षीराश्रवी ऋद्धि वाले हैं। (४) मध्वाश्रवी—जिसकी अंगुली मे पहुँचा हुआ नीरस भी आहार मधुर रस वीर्य वाला हो जाता है अथवा जिसके वचन दुःखित श्रोतावो के भी मधु-गुण को पुष्ट करते हैं वे मध्वाश्रवी ऋद्धि वाले हैं। (५) सर्पिराश्रवी—जिसकी अंजुली मे पहुंचा हुआ सूक्ष्म भी अन्न घृतरस शक्ति वाला हो जाता है अथवा जिसके वचन पुरुषो को घृतवत् सन्तर्पण करने वाले है वे सर्पिराश्रवी ऋद्धि वाले हैं। (६) अमृताश्रवी—जिसकी अंजुली में पहुंचा हुआ भोजन कुछ भी हो अमृतपने को प्राप्त होता है या जिसके वचन प्राणियो को अमृत की तरह अनुग्राहक होते हैं वे अमृताश्रवी ऋद्धि वाले है।

क्षेत्र ऋद्धियो का वर्णन—क्षेत्र ऋद्धि दो प्रकार की होती है—(१) अक्षीणमहानस ऋद्धि और (२) अक्षीण महालय ऋद्धि जिन यतियो के लाभान्तराय का क्षयोपशम विशेष है उनके

लिए जिस रसोईघर से, जिस पात्र से भिक्षा दी जाती है, आहार दान दिया जाता है, उस पात्र से चक्रवर्ती की सेना भी भोजन कर जाए तो भी भोजन कम नही पडता, वे अक्षीणमहानस ऋद्धि वाले हैं। जिनको अक्षीण महालय ऋद्धि प्राप्त हैं वे मुनि जहा रहते हो यदि वहाँ देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सब पहुँचे, एक दूसरे को बाधा न देते हुवे रह जायें और सुख पूर्वक रहे वे सब अक्षोण महालय ऋद्धि प्राप्त आर्य हैं।

अन्तर्द्वीपज मलेच्छो के आवास—म्लेच्छ मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—(१) अन्तर्द्वीपज और (२) कर्मभूमिज। लवण समुद्र मे जो पर्वत के किनारे पर या दिशाओ मे जो स्थान बने हैं उन स्थानो मे रहने वाले म्लेच्छ अन्तर्द्वीपज हैं और भरत क्षेत्र आदिक क्षेत्रो मे कर्मभूमियो मे रहने वाले म्लेच्छ कर्मभूमिज हैं। अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ एक प्रकार के खोटे भोग भूमि वाले है याने उनको अपनी आजीविका के लिए खेती व्यापार आदिक कोई कर्म नही करने पडते, वहाँ ही जो कुछ प्राकृतिक पौदगलिक भोजन पडा होता है, जो सुगमतया मिलता है उसे खाकर तुष्ट रहते हैं और उनकी आयु एक जघन्न भोगभूमिया से मिलती-जुलती रहती है। उनकी ऊचाई भी उन्ही से मिलती-जुलती है और जो कर्मभूमिज म्लेच्छ हैं वे जैसे पवन, भील, चाण्डाल आदिक होते हैं ये सब म्लेच्छ कहलाते हैं। तो अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कहाँ-कहाँ हैं इसका वणन करते हैं। जम्बूद्वीप को घेरे हुये लवण समुद्र मे ८ दिशाओ मे याने ४ दिशायें और चार विदिशा और प्रत्येक दिशाओ के बीच के अन्तर मे अन्तर्द्वीपज पाये जाते हैं। और जगह भी हैं जिनका वर्णन भी किया जायेगा पर क्रम से वर्णन चल रहा है तो लवणोदधि समुद्र के ८ दिशाओ मे और उनके बीचोबीच ८ इस तरह १६ स्थान यहाँ हैं और हिम्मान पर्वत के दोनो ओर दोनो तटो पर अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ के आवास है और विजयादर्ध पर्वत भी दो पडे हुये हैं एक भरत मे और दूसरा ऐरावत मे। उन दोनो विजयादर्ध पर्वतो मे भी आखिरी-आखिरी भाग मे जो लवण समुद्र के भीतर पहुँचे हैं वहाँ ये म्लेच्छ हैं। तो इस तरह ये ८ स्थान हुये २ हिम्मान पर्वत के आखिरी, २ शिखरी पर्वत के आखिरी और २-२ विजयादर्ध के आखिरी, इस तरह ८ स्थान हुये। तो ये सब मिलकर २४ स्थान हो जाते हैं। तो ये २४ जगह लवण समुद्र मे हैं जहाँ ये म्लेच्छ रहा करते हैं। अब दिशाओ मे जो द्वीप ८ बताये गये वे कितनी दूर पर हैं याने जम्बूद्वीप की जो वेदिका हैं, जिसके बाद लवण समुद्र शुरू होता है उस वेदिका से तिरछे ५०० योजन जाकर समुद्र मे प्रवेश कर वहाँ ये ४ स्थान पाये जाते हैं। और विदिशाओ मे इसी वेदिका से ५५० योजन समुद्र के भीतर जाकर पाये जाते हैं तो चार स्थान ये हुये। इसी प्रकार इन दिशा विदिशाओ के बीच मे जो ८ स्थान हैं वे भी वेदिका से ५५० योजन समुद्र मे जाकर बने हुये हैं। इसी प्रकार जो हिमवान शिखरी पर्वत के कोनो मे म्लेच्छो के स्थान हैं तो वे वेदिका से ६०० योजन तिरछे समुद्र मे जाकर पाये जाते हैं। इसी प्रकार विजयादर्ध पर्वत के भी दोनो कोनो मे वेदिका से ६०० योजन समुद्र मे जाकर पाये जाते हैं। इस तरह इन अन्तर्द्वीपज म्लेच्छो के आवास स्थान बताए गए।

अन्तर्द्वीपज म्लेच्छो की विशेषताये व कर्मभूमिज म्लेच्छो का सकेत—अब ये म्लेच्छ किस आकार के होते है उनकी क्या-क्या विशेषतायें हैं यह बतलाते हैं, पूर्व दिशा मे जो अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ हैं वे एक टाग वाले हैं। हैं ये सब जघन्य भोग भूमि से मिलते-जुलते आराम वाले, इनको क्लेश कुछ नही। खाने की सामग्री पडी है और बोलने-चालने को वहाँ ये सब हैं ही। इन सबके स्त्री भी होती हैं। तो दु ख इन्हे कुछ नही है, मगर ये म्लेच्छ हैं, इनका व्यवहार आचार सब म्लेच्छो की भाति का

है। पश्चिम दिशा मे ये म्लेच्छ पूंछ वाले है। हैं ये सब मनुष्य और लौकिक हिसाब से इन्हे कोई कष्ट भी नही है, मगर इनके पाप का ऐसा उदय है कि इनके शरीर का रूप भद्दा पाया जाता है। उत्तर दिशा मे रहने वाले म्लेच्छ गूगे है, ये मुख से नही बोल पाते, दक्षिण दिशा मे रहने वाले, इन मलेच्छो के सीग पाये जाते है, इनके साथ पूर्वादिक दिशाओ मे रहने वाले ये म्लेच्छ कोई तो खरगोश के जैसे कान वाले है कोई पूरी जैसे कान वाले हैं, कोई इतने लम्बे-चौडे कान वाले हैं कि उन्ही कानो पर सो जायें और एक कान ढक लें जैसे यहाँ कोई चादर ओढ कर सोता हो। कोई मनुष्य लम्बे कान वाले हैं। विदिशाओ मे पाये जाने वाले ये अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ क्रमश' कोई घोडे जैसे मुख वाले हैं, कोई सिंह जैसे मुख वाले हैं, कोई कुत्ते जैसे मुख वाले हैं, कोई कौवा जैसे मुख वाले हैं, कोई सूकर जैसे मुख वाले हैं, कोई व्याघ्र जैसे मुख वाले है, कोई उल्लू जैसे मुख वाले हैं, और कोई बन्दर जैसे मुख वाले है। इन दिशा विदिशाओ के अन्तराल मे जो अन्तर्द्वीप हैं, म्लेच्छो के आवास हैं उनमे कोई मेघ की बिजली जैसे मुख वाले हैं। शिखरी पर्वत के दोनो तटो पर अन्त मे जो आवास हैं वहा रहने वाले म्लेच्छ मच्छ जैसे मुख वाले हैं और दूसरे गोल जैसे मुख वाले हैं। हिम्मान पर्वत के दोनो किनारो पर जो अन्तर्द्वीपज म्लेच्छो के आवास है उनमे रहने वाले म्लेच्छ हाथी जैसे मुख वाले हैं और दर्पण जैसे मुख वाले हैं। उत्तर विजयार्द्ध के उत्तर ऐरावत क्षेत्र मे पडे हुए विजयार्द्ध के दोनो किनारो पर कोई गाय जैसे मुख वाले हैं कोई भैंसा जैसे मुख वाले है। भरत क्षेत्र मे पडे हुये विजयार्द्ध पर्वत के किनारो पर एक टाँग वाले, मिट्टी का आहार करने वाले, गुफाओ मे रहने वाले है। बाकी के ये अन्तर्द्वीप म्लेच्छ पुष्प फलो का आहार करने वाले हैं। वृक्षो पर रहते हैं। ये सभी के सभी अन्त-र्द्वीपज म्लेच्छ एक पल्ल की आयु वाले हैं। ये सब म्लेच्छ भोग भूमि वाले कहलाते हैं किन्तु पाप के योग से इन्हे यह खोटी भोग भूमि मिली है। एक पल्ल बहुत बडे विस्तार का है जो उपमा द्वारा जाना जा सकता है कि मानो दो हजार कोश का लम्बा, चौडा, गहरा गड्ढा हो और उसमे बहुत कोमल मेढे के बालो के इतने छोटे-छोटे टुकडे कि जिनका कतरनी से दूसरा हिस्सा न हो सके, ये भर दिये जायें और उस पर हाथी फेरकर ठसा ठस भर दिये जावें, फिर उन प्रत्येक टुकडो को प्रत्येक १०० वर्ष मे एक टुकडे के हिसाब से निकाला जाये तो सभी रोम खण्ड निकालने मे जितना काल वठे उसका नाम है व्यवहार पल्य, उससे असख्यात गुणा है उद्धार पल्य और उससे असख्यात गुणा काल अद्धा पल्ल का है। ऐसी एक अद्धापल्य प्रमाण आयु होती है। ये चौबीसो अन्तर्द्वीप जो म्लेच्छो के आवासभूत हैं वे लवण समुद्र के जल-तल से याने ऊपर जिस जगह पानी है वहाँ से एक योजन ऊँचे हैं इस तरह २४ द्वीप लवण समुद्र मे पाये जाते हैं। इसी तरह दूसरे तट पर जो घातकी खण्ड-द्वीप से लगा है वहाँ-वहाँ २४ पाये जाते हैं और कालोद समुद्र मे भी दोनो किनारो पर २४-२४ पाये जाते हैं। इस तरह ये सब अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ ९८ जगहो मे हैं। कर्मभूमिज म्लेच्छ जैसे यहाँ पाये जाते हैं। सक, यवन भील आदिक—आर्य और म्लेच्छ ऐसे ही आर्य और म्लेच्छ वहाँ होते।

आर्य म्लेच्छ सम्प्रदायो की सिद्धि—एक शकाकार के मन मे यह आशका हुई है कि क्या ऐसा सम्भव है कि आर्य की सतानो मे आर्य-आर्य ही होते जायें और म्लेच्छ की सतान मे म्लेच्छ-म्लेच्छ ही होते जाये ? यह कैसे सम्भव है ? मनुष्य हैं भिन्न-भिन्न हैं, उनकी प्रकृति निराली-निराली है, तो ये सम्प्रदाय कैसे बन सकते हैं ? तो उसके उत्तर मे कहते हैं कि सम्प्रदाय का बना रहना, चलते रहना असिद्ध नही है। क्योकि जैसे जो सम्प्रदाय को न माने तो वह नास्तिक याने सतति कुल

परम्परा आचार परम्परा, धर्म परम्परा को न माने वह कहलाता है नास्तिक। तो कम से कम इतना तो देखा ही जा रहा है कि ऐसे नास्तिको का भी सम्प्रदाय बना हुआ है तो वह भी तो सम्प्रदाय है, उसका भी तो व्यवहार चलता जा रहा है। तो ऐसे ही सतान से आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था समझ लेना चाहिए। यदि कोई कहे कि मनुष्यो का सतान तो सदा आर्यपना और म्लेच्छपना से सूना देखा गया हैं तो ऐसा मानने वालो को याने उन नास्तिको को कम से कम इतना तो प्रत्यक्ष से भी सिद्ध हो गया कि सम्प्रदाय का व्यवच्छेद न होना यह भी तो सतान है। मनुष्यो के मनुष्य ही तो पैदा होते है, पशुओ के पशु ही तो पैदा होते है। तो ये भी तो एक सतान हुये। तो इससे कम से कम यह तो मानना पडा कि सतति सम्प्रदाय की परम्परा यह भी कोई चीज है, और जैसे नास्तिक लोग यह समझते हैं कि जैसे मैं नास्तिक हूँ इसी प्रकार मेरे पूर्वज भी सभी नास्तिक थे, जो जाति व्यवस्था का निराकरण करने वाले थे। इसमे भी नास्तिको की सतति ही तो सिद्ध हो गई। इस पर नास्तिक कहते हैं कि वाह ठीक कहा गया है। हम नास्तिको का सम्प्रदाय ही वास्तविक है, प्रमाणभूत है, पर आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था का प्रतिपादन करना यह व्यर्थ है। उत्तर मे कहते कि यह तुम्हारा कल्पित एक मनोरथ ही है, ऐसा प्रतीति मे नही आ रहा कि तुम्हारा ही सन्तान सही है। जब तुम्हारा सतान है तो नास्तिको का भी है, आर्य, म्लेच्छ का भी है। शकाकार कहता है कि जब मनुष्य उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होते ही उस बच्चे मे न आर्यपना है न म्लेच्छपना है। तो यह बात तो प्रतीति मे आ रही है, तब तो मान लेनाचाहिये कि आर्य और म्लेच्छ की इतनी व्यवस्था और सतति नही है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि ऐसा मानने वालो के भी इतनी तो प्रसिद्धि हो गई कि पहले माता-पिता आर्य है और इन आर्यों की ये सतान हुये हैं। भले ही उस सतान मे चू कि बालक हैं, शिशु हैं तो उसमे सस्कार व्यक्त नही हो पा रहे, मगर कुल परम्परा तो है। इस तरह आर्य और म्लेच्छ भाव की सिद्धि होती है। लोक व्यवहार मे भी कहा जाता है कि ये अच्छे कुल मे उत्पन्न हुये ये खोटे कुल मे उत्पन्न हुये। अगर यह न माना जाये तो सारे व्यवहार का विरोध हो जाएगा।

वास्तविकता के अभाव में अन्यत्र अध्यारोप न हो सकने से कल्पना मे सर्वथा अवस्तुत्व का अभाव—शका व्यवहार का विरोध होता हो तो होने दो वह सब तो कल्पना से माना गया व्यवहार है। उत्तर—केवल कल्पना मात्र से व्यवहार नही होता, उसमे भी कोई न कोई कारण है। व्यवहार का बीजभूत कुछ बात अवश्य होती है। अगर उस व्यवहार का बीज कोई तथ्य का न हो तो कल्पना ही नही बन सकती। कल्पना इस तरह की जाती है कि कही पर किसी के वास्तव मे कोई बात देखी गई हो तो उसका दूसरी जगह आरोप करने का नाम है कल्पना। सो कल्पनायें दो प्रकार की हुआ करती है—(१) मुख्य कल्पना और (२) उपचरित कल्पना। तो जब यह देखा जा रहा है कि अच्छे-अच्छे आचार वालो की परम्परा मे कोई उत्पन्न हो और वह भी अपने कुल सिद्ध बात को जीवन मे निभाता जाता है तो यह सब सम्प्रदाय की कल्पना वास्तविक ही तो हुई। अगर निर्बीज हो कल्पना तो कल्पना उत्पन्न ही नही हो सकती। नही तो समस्त उपदेशो को कह दिया जाएगा कि ये सब निर्बीज हैं। कल्पना मात्र हैं। प्रकृति पुरुष मानना, सत्व, रज, तम मानना ये सब कल्पित हैं, सब मिथ्या है, इस तरह कोई कल्पना ही न बन सकेगी। तो कल्पना कोई असत्य होती कोई सत्य होती। किसी जगह कोई सत्य बात देखी, उसका आरोप दूसरी जगह कर लिया तो यो कल्पना भी बन जाती।

आर्यत्व की गुणनिबन्धनता व म्लेच्छत्व की दोषनिबन्धनता—प्रकरण यह चल रहा है आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था परम्परा कैसे चलती रहती है? इसकी सिद्धि की जा रही है ? आर्यपना तो गुण-मूलक है याने जिस कुल मे गुणमयी व्यवहार चलता है वे आर्य कहलाते है। जिस कुल मे दोषमूलक व्यवहार चलता है—शराब,मास आदि का व्यवहार और और भी आचरणहीनता, उससे म्लेच्छपने की परम्परा चलती, और यह बात जब, प्रत्यक्ष से ही देखी जा रही है और अनुमान से भी सिद्ध है तो उसमे शका की कोई बात नही। अपनी सतान मे होने वाली व्यवस्था मनुष्यो के पाई जा रही है। खुद ही अनुभव कर सकते हैं। सम्यग्दर्शन आदि गुणो के कारण तो आर्यपने की व्यवस्था है और मिथ्यात्वादिक दोषो के कारण म्लेच्छपने की व्यवस्था है, और सतान मे आर्य और म्लेच्छ की व्यवस्था समझना हो तो उनका व्यापार, उनके वचन, उनकी कामचेष्टा, उनका कार्य उसको देखकर की जा सकती है।

जाति की सर्वगतता व नित्यता की मीमांसा--शका–आर्यत्व, म्लेच्छत्व, ब्राह्मणत्व, गोत्व क्षत्रिय आदि जाति, तो सर्वव्यापक हैं, नित्य है, सब जगह मौजूद है। सब काल मे रहते हैं। जैसे एक आकाश सब जगह व्यापक है, सदा व्यापक है, नित्य है, ऐसे ही यह जाति सदा व्यापक है, नित्य है, क्योकि इसके उत्पन्न करने वाला न कोई कारण है, न विनाश करने का कोई कारण है। जाति को कौन उत्पन्न करता है ? भले ही मनुष्य उत्पन्न हुआ, पर जाति तो उत्पन्न नही की किसी ने और न उसका विनाश किया, इससे सिद्ध होता कि जाति सर्वगत है, नित्य है। ऐसी शका करने वाले जरा यह बतायें कि जाति को व्यापक जो मान लिया गया है—ब्राह्मणत्व जाति तो जितने ब्राह्मण हैं, अलग-अलग बैठे है, गाँव मे है तो चिपके हुए तो है नही एक दूसरे से। कोई फर्लांग भर दूर बैठा है। कोई १०-५ गज दूर रह रहा है तो उनका जो अन्तराल पड़ा याने जहाँ कोई पुरुष नही है उस अन्तराल मे क्यो नही जाति का ज्ञान होता ? जैसे आकाश व्यापक है तो सब जगह आकाश का बोध है ऐसे ही यदि जाति व्यापक है तो सब जगह जाति मालूम होनी चाहिये।

अभिव्य जक सामग्री से ही जाति की प्रतीति मानकर अपना बचाव करने वाले शकाकार की शका व समाधान—यदि शकाकार यह कहे कि जाति तो व्यापक है मगर मालूम यो नही पडता कि उस जाति को प्रकट करने वाली जो विशेष चीजें है, मनुष्य है वे वहाँ नही है, इसलिए वहाँ की जाति प्रकट नही हो रही। तो वे यह बताये कि जो जाति प्रकट होती है कही भी तो वह पूरी जाति प्रकट होती है या जाति का कोई हिस्सा कही प्रकट हो गया कोई कही प्रकट हो गया। यदि कहा कि पूरा ही प्रकट हुआ है तब वही देश, तब सब जगह जाति का ज्ञान होना चाहिद। उन व्यक्तियो को अन्तराल मे जाति का बोध होना चाहिये, इसलिये पहला पक्ष तो बना नही। अगर कहो कि जाति का कोई देश कही प्रकट होता है, कोई हिस्सा कही प्रकट होता है तो इस तरह अगर १-१ देश जाति का अ श प्रकट हो तो जाति अवयव वाली हो गई। याने जाति मे कितने ही अङ्गोपाङ्ग है। उनमे से कोई कही प्रकट हो गया तो ऐसा मानने पर प्रत्यक्ष बाधा है। अब शकाकार कहता है कि भाई व्यक्ति तो पूरे के होते है मगर जाति जो सर्वत्र नही पाई जा रही वह सामग्री के अभाव से नही पाई जा रही जसे ब्राह्मण जाति ढूढना है तो जहाँ-जहाँ ब्राह्मण पुरुष बैठे हैं वहाँ जाति मिलेगी। बीच का जो आकाश पडा है वहां ब्राह्मण हैं नही इसलिये प्रकट नही हो रहे। तो यह शका बडी मजाक भरी है। यदि उनके उत्तर मे कोई ऐसा कहने लगे कि हमारी जो यह घट जाति है घडे बनाना मिट्टी के तो

जितने घडे हैं उनकी भी तो एक जाति हो गई । तो घट जाति सब जगह व्यापक है। कोई कहे कि यहाँ क्यो नही दिखते घट ? तो उसका उत्तर शकाकार की तरह दे दिया जायेगा कि घट जाति तो सब जगह व्यापक है मगर उसकी सामग्री जहाँ है वहाँ ही व्यक्त होती है। यदि शकाकार कहे कि इसमे तो प्रत्यक्ष से विरोध है। घट जाति इस सूने आकाश मे कहाँ दिख रही है ? जहाँ घडा नही है वहाँ घडा जाति तो नही दिखती। तो यह ही अब शकाकार खुद दे दे। क्षत्रिय जाति कहा तो जहाँ क्षत्रिय लोग बैठे वही दिखते हैं क्षत्रिय। अगर एक होती सर्वव्यापक तो फिर बीच के आकाश मे क्यो नही क्षत्रिय जाति मिल जाती ? तो कल्पित सर्वगत जाति का कुछस्वरूप ही नही बनता।

जाति का स्वरूप—यह जानना है कि जाति है क्या चीज, तो सुनो—जाति कहलाती है सदृश लक्षण याने जितने घडे हैं वे सब मिट्टी के बनते हैं। तो मिट्टी से रचित हैं इस दृष्टि मे सब घडो मे सदृशपना है। तो जो सदृशपना है उसी का नाम जाति है। कोई घट से अलग जाति का एक हो और सब घट मे पडा हो ऐसा नही है। ब्राह्मण जाति कहा तो ब्राह्मण सभी मे समानता सोच ली गई कि सब ब्राह्मण है, ऐसी जो सदृशता है उसी का नाम जाति है। जाति कोई अलग चीज नही। तो जाति नाम है सादृश्य सामान्य का और सादृश्य सामान्य लोगो को साफ प्रतीत होता है कि यह इसके समान है, यह इसके समान है। तो समानता का जो बोध होता है वह जाति का बोध होता है। अब यहा शकाकार कहता कि जैसे एक यह जाति है तो हमको तो ऐसा ही बोध हो रहा है कि यहवही मनुष्य है, यह वही मनुष्य है, वह ही मनुष्य है, वह ही मनुष्य है, तो समान तो नही ज्ञान मे आया। इसमे एकत्व ज्ञान मे आया, मनुष्य-मनुष्य सब एक हैं। सदृशता तो नही विदित होती। तो उत्तर मे कहते हैं कि भाई बोध भी तो सदृशता का ही हो रहा है। जिस किसी भी मनुष्य को देखते हैं तो ज्ञान तो ऐसा ही हो रहा कि वैसा ही मनुष्य यह है वैसा ही यह है मगर बोलने की प्रथा यह है कि यह वही है। जैसे अन्न बहुत है तो एक जाति गेहूँ भी कहलाती है। अब हर दाने को हर एक कोई यह कहेगा कि वही गेहूँ है मगर दाने-दाने तो निराले हैं और बात तो समानता की है। वे गेहूँ के दाने तो समानहैं मगर यह कहने का व्यवहार नही। उपचार व्यवहार यह है कि यहकहदेते कि यह भी वही गेहू है मगर वे दो एक हो सकते हैंक्या ? तो उनमे बात तो समानता की है मगर लोग उपचार करते है सो बात यह है कि एकपना दो प्रकार का होता है —(१) मुख्य और (२) उपचार। अब जैसे कोई मनुष्य बचपन, जवानी, बुढापा इन तीनो दशाओ मे यह देखा जाता है कि यह वही मनुष्य है। जवान को देखो एक ही मनुष्य का तो बोध होता है कि जो बचपन मे था वही का वही अब है। तो वहा जो एकपने का ज्ञान है वह तो वास्तविक है, मुख्य है और भिन्न-भिन्न ५० मनुष्यो मे यो कहना कि यह वही मनुष्य है, यह भी वही है तो यह तो झूठ बात हुई। तो न्यारे-न्यारे हैं लेकिन फिर भी कहा जाता है तो यह उपचरित एकत्व है। तो मुख्य एकत्व तो अर्द्धता सामान्य है। अर्द्धता सामान्य उसे कहते हैं जहा एक ही पदार्थ के पूर्व और उत्तर पर्यायो मे उस एक द्रव्य का बोध होवे। वह है अर्द्धता सामान्य। तो वहा एकपना तो सही है , मुख्य है। अगर सौ गायें खडी हैं और उन प्रत्येक गायो मे कोई कहे कि यह भी वही गाय है, यह भी वही गाय है तो कहा जाता है मगर उसके चित्त मे यह बात बैठी है कि उस गाय के सदृश है, यह भी उसके सदृश है। तो कही सच्चा एकत्व पाया गया, उसका एकत्व किया सदृशता मे तो उस एकत्व को उपचारित कहते हैं। उस समय सादृश्य सामान्य सही है और उस ही का नाम जाति है।

सादृश्य सामान्य लक्षणाजाति का स्याद्वाद से नित्यत्व अनित्यत्व आदि—अब यह समझिये कि जो यह कहा था कि जाति नित्य होती है सो देखो जितने भी ब्राह्मण है, या जितनी भी गाये है वे अनित्य हैं या सदा रहेगी ? अनित्य हैं। मर जाती हैं। तो अनित्य गाय से इस सदृशता का तादात्म्य है। इस जाति का तादात्म्य है। तो जब अनित्य व्यक्ति मे वह जाति है तो व्यक्ति अनित्य है तो जाति अनित्य है। दूसरी बात —चू कि सदृशता मरती नही है, गाय तो गुजर जाती है। गुजर जाय बहुत सी गायें खडी है, नई-नई गायें आतीहै तो सदृशता तो कभी मिटती नही, इस कारण जाति नित्य है माने जाति के बारे मे ऐसा एकान्त कर लेना कि नित्य ही है सो असगत है। व्यक्ति के तादात्म्य की दृष्टि से तो वह सदृश्य लक्षण जाति अनित्य है और चू कि सादृश्य सामान्य यह कभी मिटेगा नही, गाय मिटती जाती और गाये होती जाती और सदृशता का बोध करने वाले मनुष्य भी पैदा होते जाते तो सदृशता के ज्ञान की परम्परा चले तो बराबर चलतो है, इस दृष्टि से जाति नित्य है। और फिर जाति चूँकि अनेक प्रकार के पदार्थो की सदृशता का नाम है तो कोई जाति मूर्त है कोई जाति अमूर्त है। गाय, मनुष्य, पशु आदिक मे जो जाति है वह मूर्त है, आकाश, धर्मद्रव्य अधर्म द्रव्य, इनमे जो अमूर्तपने की जाति है वह अमूर्त है। तो जाति के विषय मे भी कोई एकात नही किया जा सकता है। इस तरह सदृशता लक्षण वाली जाति सिद्ध है और सम्प्रदाय का विच्छे-दन होना यह भी सिद्ध है। तो इसमे आर्यपना और म्लेच्छपना का जो वर्णन किया गया वह सब समीचीन है। इस सूत्र मे जो आर्य बतागे गये है वे कर्मभूमि मे ही पाये जाते हैं और जो म्लेच्छ दो प्रकार के बताये गए हैं—(१) अन्तर्द्वीपज (२) कर्मभूमिज, तो कर्मभूमिज म्लेच्छ कर्मभूमि मे पाये जाते है। ऐसा प्रसग सुनकर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि वे कर्मभूमिया कौन है जिनमे ऐसे मनुष्य पाये जाते हैं ? इसका समाधान करने के लिये सूत्र कहते हैं।

भरतैरावतविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्य ॥३७॥

कर्मभूमि के स्थान—देव कुरु और उत्तर कुरु के सिवाय शेष भरत ऐरावत और विदेह ये कर्मभूमिया कहलाते हैं। देव कुरु और उत्तर कुरु विदेह क्षेत्र मे हैं। सो देव कुरु मे उत्कृष्ट भोग-भूमि हैं और उत्तर कुरु मे उत्कृष्ट भोगभूमि है। इतने हिस्से को छोडकर बाकी जितना भी सारा विदेह है वह सब कर्मभूमि है और भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र ये दो कर्मभूमि हैं ही। भरत और ऐरावत मे भी जिस काल मे भोगभूमि आती है, पहला, दूसरा, तीसरा काल होता है उस समय ये भी भोगभूमि हो जाते हैं। लेकिन ये अनवस्थित भोगभूमि है कर्मभूमि की ही यहा प्रधानता है। यहाँ एक उत्थानिका यह भी सही है कि इस ग्रन्थ मे सबसे पहले मोक्षमार्ग बताया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो की पूर्णता मोक्ष का मार्ग है। तो मोक्षमार्ग कितने क्षेत्रो मे होता है ? क्या सब क्षेत्रो मे होता है ? तो उसका उत्तर मिलता है कि कर्मभूमि मे ही मोक्षमार्ग बनता है, क्योकि भोगभूमि मे भी यद्यपि मनुष्यो के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बन जाता है किन्तु चारित्र नही होता। भोगभूमि ही तो हैं। वहाँ युगल पैदा होते हैं, और वे ही पुरुष-स्त्री होते हैं। उन्हे आजीविका की कुछ फिक्र नही है, थोडा उनका आहार है, वह कल्प वृक्षो से प्राप्त हो जाता है इसलिये भोग-भोग मे ही वे लिप्त रहते हैं। उनके चारित्र नही होता। तो मोक्षमार्ग की उत्कृष्ट साधना करने वाले जीव कहाँ-कहाँ होते हैं यह बताने के लिये भी इस सूत्र की आवश्यकता थी। तो सूत्र द्वारा यह दर्शा दिया

गया कि देव कुरु और उत्तर कुरु को छोडकर बाकी का सारा विदेह और भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र ये कर्मभूमि कहलाते हैं।

कर्मभूमित्व की सार्थकता—अब यहाँ शकाकार कहता है कि कर्मभूमिया हैं, ऐसा विशेषण सही नही बनता, क्योकि ८ प्रकार के जो कर्म हैं उनका व्यापार वध कर्म का फल भोगना यह तो सभी मनुष्य क्षेत्रो मे हैं। भोगभूमिया हैं तो वहाँ पर भी कर्मबन्ध, कर्मोदय, कर्मफल भोगना, यह सब तो चलता ही रहता है, फिर उसको ही कर्मभूमि कहना शेष को नही, यह छाँट कैसे बन सकती है ? अब इसका समाधान करते हैं कि देखिये कर्म दो प्रकार के होते हैं—शुभ कर्म और अशुभ कर्म, अर्थात् पुण्यकर्म और पापकर्म। तो पुण्य का फल जहाँ अधिक पाया जा रहा है वह तो है सर्वार्थसिद्धि या तीर्थंकरपना। महान् ऋद्धि वाले जीव। यहाँ उत्कृष्ट पुण्य नजर आता है और उत्कृष्ट पाप जहा नजर आये वह बताया है ७ नरक सो उत्कृष्ट पाप वध हो सके, और उत्कृष्ट पुण्य वध हो सके ऐसी योग्यता कर्मभूमिज पुरुषो मे ही है, भोगभूमियो मे नही है। भोगभूमि के जीव मरकर दूसरे स्वर्ग तक उत्पन्न हो पाते हैं, इससे ऊँचे नही, और कर्मभूमि के मनुष्य सर्वार्थसिद्धि तक उत्पन्न हो जायें और ये ही तीर्थंकर व बडी ऋद्धि वाले बन जायें और ये ही कर्मभूमिज ७वें नरक तक पहुँच जायें, ऐसा एक विशिष्ट कर्मपना है, इस कारण से इस क्षेत्र को ही कर्मभूमि कहा गया है। इसके अलावा कर्म की निर्जरा करना और सर्व कर्मों से छूटकर मुक्त हो जाना यह भी इन कर्मभूमियों से ही सम्भव है भोग भूमियो से नही, इस कारण इनको कर्मभूमि कहा गया है। एक बात और भी है कि असी, मसी, कृषी, शिल्प, सेवा और व्यापार ये ६ प्रकार के कर्म उन्ही क्षेत्रो मे देखे जाते हैं जहाँ भरत, ऐरावत और देव कुरु, उत्तर कुरु छोडकर शेष विदेह। तो इस कारण से भी इन इन क्षेत्रो को कर्मभूमि कहते है। इस सूत्र मे जो अन्यत्र शब्द दिया है वह छोडने के लिए दिया गया है। मायने देव कुरु और उत्तर कुरु ये कर्मभूमियाँ नही। पहले इनको छोडकर शेष विदेह कर्मभूमिया हैं। इस प्रकार कर्मभूमिया बताकर अब कर्मभूमि हो अथवा भोग भूमि हो, सभी मनुष्यो की स्थिति कितनी होती है यह बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

लौकिक माप के प्रकार—मनुष्यो की स्थिति जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट तीन पल्य प्रमाण है। तीन पल्य प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति भोगभूमिया मनुष्यो मे है। त्रिपल्योपम का अर्थ है ३ पल्य जैसी स्थिति की उपमा है उसे कहते हैं त्रिपल्योपम। पल्ल कितना कितना होता है यह बात आगे कही जाएगी। उस पल्ल को समझने-समझाने से पहले प्रमाण की विधि बतलाते हैं। याने किन्ही चीजो मे नाप-तौल करने की क्या विधिया हैं यह बात बतलाते हैं। सबसे पहले यह समझना चाहिये कि प्रमाण दो प्रकार का होता है याने जिससे वस्तु का नाप किया जाए वह नाप की जाने वाली बात दो तरह से होती है—(१) लौकिक नाप, (२) अलौकिक नाप। लौकिक नाप ६ प्रकार का है—(१) मान, (२) उन्मान, (३) अवमान, (४) गणना, (५) प्रतिमान और (६) तत्प्रमाण, मान—जैसे तोला, छटाँक, सेर, मन आदिक माप बनाना यह माप कहलाता है। उन्मान—किसी बरतन मे चीज भरकर माप बताना जैसे धान मापने के या घी तेल मापने के जो बरतन होते हैं वे उन्मान कहलाते हैं। अवमान-गज, फुट आदिक याने लकडी, लोहा आदिक से वस्तु का माप किया जाये कि यह इतने गज है आदिक वह अवमान कहलाता है। गणना—सख्या को गणना कहते हैं, जैसे १० केले

५० केले, ८ दर्जन केले, १० दर्जन केले आदिक ऐसी संख्याओ को गणना कहते है। प्रतिमान—पहले मान की अपेक्षा रखकर माप बताना प्रतिमान है—जैसे यह मल्ल उस मल्ल के बराबर है। तत्प्रमाण- यह अनेक प्रकार का होता है। जैसे कहना कि इस मणि का उतना मूल्य है जितनी दूर तक इसकी कान्ति पहुँचे उतने प्रमाण स्वर्ण कूट या इस घोडे का उतना मूल्य है जितनी कि इसकी ऊँचाई है है उतने स्वर्णकूट आदिक। इस रत्न का उतना मूल्य है, जितने से इस रत्न वाला मालिक सन्तुष्ट हो जाये। किसी भी प्रकार कहना यह तत्प्रमाण है। यहाँ प्रकरण यह चलेगा कि पल्य का प्रमाण कितना है जिससे कि यह जान जायें कि मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य प्रमाण होती हैं इस प्रसग मे सर्व प्रमाणो की चर्चा की जा रही है ताकि समस्त मापो का भी स्पष्टीकरण हो और उसके बाद पल्य का भी स्पष्टीकरण हो जावे। यह लौकिक मापो की बात कही गई है। लौकिक मानो के उदा- हरण मे समझिये—छोटी पतली घास होती है उस घास के हल्के छोटे फल होते हैं—उन्हे कहते है घास- फल। तो चार घासफलो का एक सरसो माना गया है वजन मे। यहा इन सरसो के दानो से मतलव नही, किन्तु उसका नाम रखा गया है और १६ सरसो का एक मासा होता है। दो मासा की एक गु ची होती है, आदिक बढते-बढते तोला, सेर आदिक बन जाया करते हैं। यह है नागरिको का माना गया प्रमाण। ऐसे ही उन्मान मे प्रस्त आढक आदिक हैं।

अलौकिक माप के प्रकार - अलौकिक मान चार प्रकार का होता है—(१) द्रव्य प्रमाण, (२) क्षेत्र-प्रमाण, (३) काल प्रमाण और (४) भाव प्रमाण। द्रव्य प्रमाण मे इस तरह माप समझिये कि सबसे छोटा है एक प्रमाण। उससे बडा है दो प्रमाण का स्कन्ध। तीन प्रमाण का स्कन्ध। और बढते जाइये तो सारा जो लोक है यह जो पूर्ण स्कध है, समस्त लोक यह महास्कध कहलाता है, ये सव द्रव्य प्रमाण कहलाते हैं। जैसे यहा बोलते है कि यह पुस्तक इस पुस्तक से बडी है तो यह द्रव्य प्रमाण ही तो हुआ। क्षेत्र प्रमाण मे सबसे छोटा है एक प्रदेश, उससे बडा दो प्रदेश, तीन प्रदेश, ऐसे ही बढते-बढते सारा लोक यह क्षेत्र उत्कृष्ट कहलाया काल प्रमाण मे। जघन्य तो है एक समय और मध्यम मे २-३ ऐसे बढते जायें तो उत्कृष्ट काल कितना कहलाया? अनन्त काल। भाव प्रमाण उपयोग से होता है, ज्ञान से होता है। तो ज्ञान के प्रमाण बताते कि सबसे जघन्य ज्ञान तो सूक्ष्म निगोदिया जीव की है और सबसे उत्कृष्ट ज्ञान केवली भगवान के हैं सो सब ससारियो के मध्यम प्रमाण का ज्ञान है। याने सूक्ष्म निगोदिया से बढ-बढकर केवली भगवान से घटे हुये वे सब मध्यम प्रमाण के ज्ञान हैं। तो इस प्रकार अलौकिक प्रमाण चार बातो मे निरखा जाता है।

द्रव्यप्रमाण के प्रकार और सख्याप्रमाण के भेद—उनमे से द्रव्य प्रमाण की चर्चा की जा रही द्रव्य प्रमाण मे उस पल्य का प्रमाण भी आयेगा। द्रव्य प्रमाण दो प्रकार का होता है—(१) सख्या प्रमाण और (२) उपमा प्रमाण। सख्या प्रमाण तो वहा तक चलता जहा तक बुद्धि मे सख्या का अन्दाज किया जा सकता है। यद्यपि सख्या प्रमाण भी खरवो शख का है, अरवो से भी अनेक शख गुणित सख्या चली गई है लेकिन बुद्धि मे कुछ थोडा बहुत उसका अन्दाज हो जाता है इसलिये उसे सख्यात कहते है। अथवा असख्यात से एक कम भी संख्या आती है तो सख्यात। बुद्धि मे न आया तो भी असख्यात का प्रमाण बताने के लिये उस असख्यात से एक कम तक की बात सख्यात मे आती है और उपमा प्रमाण वह कहलाता है कि जिसकी जानकारी का और कोई उपाय नही। केवल उपमा देकर बताते। जैसे अभी आगे आयेगा कि हजारो कोश के गड्ढे मे रोम भरे जाये, सौ-सौ वर्ष मे १-१

रोम निकाला जाये आदिक विधि से, तो असख्यात प्रमाण ३ प्रकार मे होता है—(१) सख्यात (२) असख्यात और (३) अनन्त। सख्या। तो ३ तरह का होता है। (१) जघन्य सख्यात, (२) मध्यम सख्यात और उत्कृष्ट सख्यात। मध्यम सख्यात का नाम है अजघन्योत्कृष्ट, याने जो जघन्य नही और उत्कृष्ट नही, वे सब स्थान आ गये। उसको मध्यम शब्द से क्यो नही कहा गया ? तो मध्यम का अर्थ है बीच और वह बीच इतना है कि जघन्य से ऊपर और उत्कृष्ट से नीचे अनेक स्थानो मे हैं उतने स्थानो से मध्यम शब्द से स्पष्ट जानना नही बन पाता इसलिये मध्यम न कहकर अजघन्योत्कृष्ट कहा है।

गणना के प्रकारो मे सख्येय प्रमाण का वर्णन—गणना के प्रकारो का वर्णन चल रहा है। द्रव्य प्रमाण की गणना दो प्रकार से बनाई गई है—(१) सख्या प्रमाण और (२) उपमा प्रमाण। जिसमे सख्येय प्रमाण और असख्येय प्रमाण एव अनन्त ऐसा ३ प्रकार का सख्या प्रमाण है। यद्यपि असख्येय मे सख्या का उल्लघन है और एक अनन्त मे तो अन्त भी नही है तो भी चूँकि १-१ ऐसा व्यक्ति रूप से चित्त मे अवधारण कर सोचा जा रहा है, इस कारण ये सब सख्या प्रमाण मे आते हैं सख्येय प्रमाण ३ प्रकारके हैं—(१) जघन्य (२) अजघन्योत्कृष्ट और (३) उत्कृष्ट। जघन्य सख्या तो दो हैं—एक को सख्या नही माना और उससे ऊपर जब तक कि जघन्य असंख्यात मे एक कम न हो जाय तब तक सख्येय चलता है। तो उत्कृष्ट सख्येय तो जघन्य युक्ता सख्यात से एक कम है और इससे कम कम होकर दो सख्या से ऊपर तक सब अजघन्योत्कृष्ट है। अब उत्कृष्ट सख्यात का प्रमाण जानने के लिये एक युक्ति से बताया जा रहा है। एक जम्बूद्वीप के समान लम्बे चौडे और हजार योजन के गहरे ऐसे चार गड्ढे विचारे जायें। जिसमे एक गड्ढा तो अनवस्थित है और शेष ३ गड्ढे अवस्थित हैं। उन तीन के नाम हैं—(१) शलाका (२) प्रतिशलाका (३) महाशलाका। ऐसा यहा ४ कुसूल विचारे गए हैं। अब जो अनवस्थित कुसूल है उसको सरसो से भर दिया जाय। अब मानो कोई देव १-१ सरसो उठाकर एक द्वीप मे फिर एक समुद्र मे ऐसे दाना डालता जाये, जितने द्वीप समुद्र तक न पहुँचे कि उस अनवस्थित कुसूल के सारे सरसो समाप्त हो जायें तो जितने द्वीप समुद्र तक पहुँचा अब उतना बडा अनवस्थित कुसूल बनायें और एक सरसो शलाका नाम के कुसूल मे डालें फिर इतने बडे अनवस्थित कुसूल को सरसो से भरा जाये और उसमे से सरसो उठा उठा कर आगे के द्वीप समुद्र मे डाले। जब यह रीत जाये तो एक दाना सलाका मे और डाल दिया और इतना बडा अनवस्थित कुसूल सोचे, इस प्रकार से करता जाये। जब शलाका कुण्ड भर जाय तो एक दाना प्रतिशलाका मे डालें और शलाका को रीता समझ ले फिर इसी प्रक्रिया से शलाका कुण्ड जब भर जाय तो दूसरा दाना प्रतिशलाका मे डाले, ऐसा होते होते जब प्रतिशलाका भी भर जाय तो एक दाना महाशलाका मे डाले इस तरह अनवस्थित गड्ढा को उसी प्रकिया से शुरू कर करके शलाकादि पूरा भर भरके जब महाशलाका भी पूर्ण भर जाय तब समझिये कि उत्कृष्ट सख्यात का उल्लघन करके जघन्य परीता सख्यात हुआ। अब इसमे से एक रूप निकाल लें या दाना निकाल लें तो उतने का नाम उत्कृष्ट सख्यात है। अब यहाँ एक ध्यान मे देने की बात है कि उत्कृष्ट सख्यात का कितना बडा प्रमाण है ? जो कोई भी वस्तु सख्यात शब्द को बताये तो प्राय अजघन्योत्कृष्ट सख्यात ही ग्रहण करना। यहा तक सख्यात की गणना का वर्णन हुआ।

असख्यातासख्यात परिणामों का वर्णन—अब असख्यात की गणना बतलाते हैं। असख्यात शब्द का अर्थ तो सख्यात को पार कर गई गणना है याने उतने रूप कोई पदार्थ जो सख्या की उत्कृष्ट

से भी आगे बढ गया हो जिसको कि यथार्थ विधि से अभी बताया ही गया है। ये असख्यात ३ प्रकार के होते हैं (१) परीतासख्यात (२) युक्तासख्यात (३) असाख्यातासख्यात। और ये तीनो तीन प्रकार के है—जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम (अजघन्योत्कृष्ट)। इस तरह असाख्यात ६ प्रकार के है। अब इसमे जघन्य परीता साख्यात का प्रमाण ऊपर बता ही दिया गया है। उसमे जितने रूप आये है दाने बने हैं, उन रूपो को १-१ करके बिखेर कर एक लाइन से मानो रख दिया जाय और प्रत्येक रूप पर जघन्य परीता साख्यात रख दिया जाय और उनका क्रमसे परस्पर वर्ग किया जाय. आगे आगे गुणित होते जाये तो जितना लब्ध है वह उत्कृष्ट परीता सख्यात का उल्लघन करके जघन्ययुक्तासख्यात हो जाता है। उतने मे से एक रूप हटा लेने पर उत्कृष्टपरीतासख्यात होता है। अब इस प्रसग मे यह जानना कि जहाँ युक्तासाख्यात का वर्णन होता वहा मध्यम युक्त असाख्यात ग्रहण करना चाहिये। अब जघन्य युक्त्यासख्यात का प्रमाण तो निकल आया। आगे का प्रमाण जानने के लिये चलें—जघन्ययुक्ता साख्यात का जितना रूप है उनको एक-एक करके फिर पक्तिबद्ध विरलन करे याने एक-एक रूप बिखेरे और प्रत्येक पर युक्तासाख्यात रख देवे और उनको क्रम से एक को दूसरे से लब्ध को तीसरे से आदिक विधि से गुणा करते चले जायें याने गुणित से गुणा करते चले जाये तो उत्कृष्ट युक्तासख्यात का उल्लघन करके असख्यातासख्यात हो जाता है। उसमे से एक रूप निकाल लेने पर उत्कृष्ट युक्तासख्यात होता है। इस बीच मे सब मध्यमयुक्तासख्यात है। अब असख्यातासख्यात का प्रमाण जानने के निए पूर्ववत विधि करे। जघन्य असख्यातासख्यात को बखेर करके पूर्व विधि से तीन बार वर्गित सम्वर्गित करे। इतने मे यह उत्कृष्ट असख्यात को प्राप्त नही होता तो वहा धर्म-द्रव्य के प्रदेश, अधर्म द्रव्य के प्रदेश, जीव के प्रदेश, लोकाकाश के प्रदेश प्रत्येक शरीर, जीव, वादर निगोद शरीर, इन असख्यातो को उसमे जोड देवे तथा स्थिति बधस्थान, अनुभाग बधस्थान और योग स्थान और असख्यात लोक प्रदेश बराबर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के समय ये उसराशि मे मिला दे, फिर उनका जो योग हो, फिर ३ बार वर्गित, सम्वर्गित करे तो उत्कृष्ट सख्यातासख्यात का उल्लघन करके जघन्यपरीतानन्त होता है। अब इसमे से एक रूप हटाने पर उत्कृष्ट असख्यातासख्यात है। इस प्रकार असख्यातासख्यात का वर्णन समाप्त हुआ।

अनन्त गणना के परिमाण का दिग्दर्शन—अब अनन्त का वर्णन करते हैं। जो जघन्य परीतानन्त प्रमाण है उसको विरलन विधि से उन सब जघन्य परीतानन्तो को परस्पर पूर्व की तरह वर्गित करके, योग करे तो उत्कृष्ट परीतानन्त का उल्लघन कर जगन्य युक्तानन्त हो जाता है। उसमे से एक रूप निकालने पर उत्कृष्ट परीतानन्त होता है। अब जघन्ययुक्तानन्त का विरलन करके एक-एक रूप पर जघन्य युक्तानन्त रखकर उनको परस्पर लब्धो से वर्गित कर देवें तो उत्कृष्ट युक्तानन्त का उल्लघन करके जघन्य अनन्तानन्त होता है। इसमे से एक रूप हटाने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है। अब उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण जानने के लिये वही विधि करें। जघन्य अनन्तानन्त का बिरलन करके पहलेकी तरह ३ बार वर्गित सवर्गित गुणित और गुणित से गुणित करके। जब तक यह उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त नही होता तो वहाँ सिद्ध जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकाय, भूत भविष्य काल के समय सर्व पुद्गल, सारे आकाश के प्रदेश धर्मास्तिकाय और अस्तिकाय से अनन्त अगुरुलघुगुण इनको मिला दे और फिर जो सबका योग है उसका ३ बार गुणित और गुणित से गुणा करे। अभी भी उत्कृष्ट अनन्तानन्त नही प्राप्त हुआ वहा अनन्तएक ज्ञान मे और दर्शन मे प्रक्षिप्त कर दे तो उत्कृष्ट अनन्ता-

न्तन होता है, इनमे से एक रूप कम कर दें तो अजघन्योत्कृष्टअनन्तानन्त होता है। यहा यह जानना कि जहां-जहां अनन्तानन्त खोजना हो तो वहां अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त ग्रहण करना चाहिये और अभव्यराशि का प्रमाण खोजना हो तो जघन्य युक्तयानन्त ग्रहण करना चाहिये।

उपमा प्रमाण के वर्णन का प्रारम्भ—अब उपमा प्रमाण का वर्णन करते हैं। जिस प्रमाण को उपमा देकर ज्ञान कराया जाय उसे उपमा प्रमाण कहते हैं। यद्यपि सख्या प्रमाण मे उत्कृष्ट असख्यात असख्यातासख्यात, अनन्त ऐसे प्रमाण हैं जो उपमा प्रमाण से भी अधिक हो सकते हैं फिर उनकी पद्धति गणना पद्धति है, और यहां यह पद्धति उपमा पद्धति है। उपमा प्रमाण ८ प्रकार के होते हैं—पल्य, सागर, सूची, प्रतरागुल, घनागुल, जगच्छ्रेणि, लोकप्रतर और लोक।

प्रारम्भिक अवमान परिमाण—उपमा प्रमाण जानने के लिये थोडा अवमान जानना चाहिये ताकि उस अवमान पद्धति से योजन का प्रमाण समझ मे आये और योजन के प्रमाण का आधार लेकर पल्य आदिक बडी उपमा प्रमाण की बात कही जाय। सबसे पहले तो परमाणु का प्रमाण समझना चाहिये। परमाणु एक प्रदेशी है, उसका न आदि है न अन्त है, न मध्य है। तो वह स्वय एकप्रदेशी है, कम से कम दो प्रदेशी हो तो आदि अन्त कहा जा सकता है। ३ प्रदेश घेरते हो तो आदि मध्य अन्त कहा जा सकता है परमाणु मे एक प्रदेशी होने के कारण उसी की आदि कहो, उसी को ही मध्य और उसी को ही अन्त कहिये, ऐसा अविभागी अतीन्द्रिय परमाणु केवल एक प्रदेशी मात्र है। परमाणु पुद्गल द्रव्य है। परमाणुओ मे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हुआ करते हैं एक परमाणु मे कोई एक रस, कोई एक गन्ध, कोई एक वर्ण और दो स्पर्श हो सकते हैं—स्निग्ध रूक्ष मे से एक और शीत उष्ण मे से एक। अब अनन्तानात परमाणुओ के सघात से एक स्कध बना। उस परमाणु समूह से उत्सज्ञासज्ञ बनता है। यह उत्सज्ञासज्ञ बहुत सूक्ष्म है और स्कन्धमय है। ८ उत्सज्ञासज्ञ मिलकर १ सज्ञासज्ञ होता है। दो सज्ञासज्ञ मिलकर एक त्रुटिरेणु होता है। ८ त्रुटिरेणु मिलकर १ त्रसरेणु होता है, ८त्रसरेणुओ का १ रथरेणु, ८ रथरेणु मिलकर १ देवकुरु उत्तर कुरु के मनुष्य के केश की मोटाई होती है। और वे ८ मिलकर मध्यम भोगभूमि के मनुष्य के केश की मोटाई होती है। और उन आठो की मोटाई बराबर जघन्य भोगभूमि के मनुष्य के केश की मोटाई होती है और वे आठो मिलकर भरत ऐरावत विदेह के मनुष्यो के केश की मोटाई होती है। ये ८ मिलकर १ लीख प्रमाण होती है ८ लीखो का एक यूक हता है। ८ यूको का १ यवमध्य होता है याने जौ अन्न के बीज का मोटाई। ८ यवमध्यो का १ उत्सेधागुल होता है। यह सब १ प्रदेश मात्र रेखा को लिये हुए इतनी लम्बाई का प्रमाण चल रहा है।

उत्सेधाङ्गुल, प्रमाणाङ्गुल व आत्माङ्गुल तथा बडे माप—उत्सेधागुल से नारकी, तिर्यञ्च, देव, मनुष्य और अकृत्रिम जिनालय की प्रतिमा इनके कायका उत्सेध मापा जाना चाहिये। वही उत्सेधागुल ५०० मिलकर एक प्रमाणागुल होता है। वही प्रमाणागुल अवसर्पिणी काल मे प्रथम चक्रवर्ती का प्रथम आत्मागुल होता है अर्थात् यह चक्रवर्ती के अगुल का प्रमाण है। उस समय उस प्रमाण से ग्राम, नगर आदिक के प्रमाण का परिज्ञान होता था। अन्य समयो मे मनुष्यो का जब-जब जो-जो आत्मागुल होता है याने उससे छोटे शरीर वाला होता है और उन शरीरो का जो अगुल होता है वह छोटा-छोटा होता जाता है। उस आत्मागुल से उस समय के ग्राम, नगर आदिक का प्रमाण

जाना जाता है। उस आत्मागुल का कोई एक प्रमाण नही है। जिस समय जो मनुष्य होते, जितने शरीर की ऊ चाई वाले, उनके जो-जो अगुल है वे उन-उनके आत्मागुल हैं। प्रमाणागुल और उत्सेधागुल इन दो का प्रमाण जो अभी बताया गया है वही रहता है। प्रमाणागुल से द्वीप, समुद्र, वेदिका, पर्वत, विमान, नरक, प्रस्तर आदिक अकृत्रिम पदार्थों का आयाम विष्कम्भ आदिक जाने जाते है। अब आगे का प्रमाण जानने के लिये अगुल का आधार लिया जाता है। ६ अगुल का पाद होता है, १२ अगुल का एक बेथा (बिलाथ) होता है, २ बिलाथो का एक हाथ होता है। २ हाथो का किष्कु, २ किष्कुओ का एक दड, २ दडो को धनुष प्रमाण कहते हैं। २ हजार दड का एक कोश होता है और ४ कोश का एक योजन होता है। इस प्रकार आधारभूत कुछ मापो को बताकर अब पल्य का विवरण करते हैं।

पल्यो का परिमाण—पल्य ३ प्रकार के होते है—(१) व्यवहार पल्य, (२) उद्धार पल्य और (३) अद्धापल्य। व्यवहार पल्य का शब्दार्थ तो है—आगे के पल्यो का व्यवहार कर सके उसका यह वीजभूत है, क्योकि व्यवहार पल्य के विवरण बिना उद्धार पल्य अथवा अद्धा पल्य का प्रमाण नही जाना जा सकता। उद्धार पल्य का अर्थ है उद्धरण किये गये रोम के अशो द्वारा द्वीप समुद्र की सख्या का निर्णय करना, अद्धापल्य का अर्थ है अद्धा मापने काल (समय), जिस पल्य से कर्म आदि की स्थिति का परिज्ञान हो उसे अद्धापल्य कहते हैं। इन पल्यो का प्रमाण जानने के लिये एक उपमा कीजिए कि प्रमाणागुल के हिसाब से एक योजन लम्बे-चौडे गहरे तीन पल्य अर्थात् कुसूलो की कल्पना कीजिए। एक दिन से लेकर १० दिन तक के मेढे के बच्चे के जितने पतले बाल हो वे पतले बाल इतने छोटे-छोटे टुकडो मे हो कि जिनका दूसरा टुकडा किया ही न जा सके उतने रोम खण्डो से परिपूर्ण भर दिया जाए प्रथम का कुसूल याने व्यवहार पल्य। अब उसमे से १००-१०० वर्ष व्यतीत होने पर एक-एक रोम खण्ड निकाला जाए। जितने समयो मे वह व्यवहार पल्य रिक्त हो सके उतने काल का नाम व्यवहार पल्य है। इतने बडे लम्बे समय का वर्णन स्पष्ट गणना मे नही आ सकता, अतएव उपमा द्वारा ही सब वर्णन किया जा रहा है। ऐसा कोई गड्ढा खोदता हो और वहाँ रोम भरे जाते हो और उनमे से कोई १००-१०० वर्ष मे एक-एक रोम उठाये, यह किये जाने की बात नही है। यह चर्चा यहा नही है, किन्तु मानो ऐसा किया जाये तो कितना समय लग सकता है? इस उपमा से उसका प्रमाण बताया जा रहा है। अब उन्ही रोम खण्डो के प्रत्येक के इतने खण्ड और किए जायें जो असख्यात करोड वर्ष के जितने समय हैं उतने हिस्से बन जायें, उससे भर दिये जायें उद्धारपल्य मे याने दूसरे गड्ढे मे, अब एक-एक समय मे एक-एक रोम छेदो से निकाला जाये, जितने समय मे वे रिक्त हो सकें उतने समय को उद्धार पल्योपम कहते हैं। इन १० कोडा-कोडी उद्धार पल्यो का एक उद्धार सागर होता है। ढाई सागर प्रमाण जितने रोम छेद हैं उतने द्वीप समुद्र हैं। अब अद्धापल्य का प्रमाण जानने के लिये उपमा दी जाये कि उद्धार पल्य मे जितने रोमाश हैं उसके उतने और टुकडे हो जितने कि १०० वर्ष के समय होते हैं, उन रोम छेदो से भरा हुआ अद्धापल्य है। अब एक-एक समय मे एक-एक रोम छेद निकाला जाये। जितने काल मे वह रिक्त हो सके उतने काल का नाम है अद्धापल्योपम। इन १० कोडा-कोडी अद्धापल्यो का एक अद्धासागर होता है। १० कोडा-कोडी अद्धा सागरो का प्रमाण एक अवसर्पिणी काल होता है और उतने ही प्रमाण एक उत्सर्पिणी काल होता है।

इस अद्धापल्य से नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इनको भव स्थिति, आयु स्थिति, कायस्थिति और कर्मों की स्थिति जानना चाहिये।

सूच्यगुल प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, प्रतरलोक व घनलोक का परिमाण—अद्धापल्य के जितने अर्द्धच्छेद हो उनको विरलन देय सलाका विधि से प्रत्येक विरलन स्थान पर अद्धापल्य रखे जायें और उनको परस्पर गुणित किया जाये, जितने वे छेद हो उतने आकाश प्रदेशो से एक रेखा बनी हो उसे सूच्यगुल कहते हैं याने सून्यगुल के उतने प्रदेश होते हैं। सूच्यगुल की लम्बाई लौकिक हिसाव से कोई अधिक बडी नही है, लेकिन उतने प्रमाण क्षेत्र मे आकाश प्रदेश उतने असख्यात रहते हैं। वही सून्यगुल अन्य सून्यगुल से गुणित हो जाये उसे प्रतरागुल कहते हैं याने एक सून्यगुल लम्बा और एक सून्यगुल चोडा इसे प्रतरागुल कहते हैं और वही प्रतरागुल एक सून्यगुल से गुणित हो जाये सो घनागुल है। वे याने एक सूच्यगुल लम्बा, उतना ही चौडा और उतना ही मोटा एक घनागुल कहलाता है असख्यात वर्षो के जितने समय होते हैं उतने खण्ड अद्धापल्य के किए जायें और असख्यात खण्डो को निकाल कर असख्यात एक भाग वृद्धि से विरलन करके एक-एक भाग मे घनागुल रखकर उन्हे परस्पर गुणित किया जाए तो जगच्छ्रेणि होती है। जगत् श्रेणी को जगत् श्रेणी से गुणा किया जाये तो प्रतरलोक होता हैं, वही प्रतरलोक अन्य जगत्श्रेणी से गुणित किया जाये तो घनलोक होता है। इस प्रकार उपमा प्रमाण के वर्णन के साथ द्रव्य प्रमाण का वर्णन समाप्त होता है।

क्षेत्र प्रमाण—क्षेत्र प्रमाण मे दो विभाग है—(१) अवगाह क्षेत्र और (२) विभाग निष्पन्न क्षेत्र। अवगाह क्षेत्र मे तो १, २, ३, ४, सख्यात, असख्यात अनन्त प्रदेशी पुद्गल द्रव्य का जिसमे अवगाह है ऐसे आकाश प्रदेश जाने जाते है। विभाग निष्पन्न क्षेत्र नाना तरह का होता है जैसे असख्यात आकाश श्रेणियाँ। क्षेत्र प्रमाण मे घनागुल का एक असख्यात भाग क्षेत्र, प्रमाणागुल का असख्यात भाग क्षेत्र ये सब क्षेत्र प्रमाणागुल होते है। पाद विलात आदिक पहले कहे ही गये हैं।

काल प्रमाण—काल प्रमाण मे सबसे छोटा एक समय रहता है। मायने सबसे जघन्य गति से चल रहा जो प्रमाण है वह द्वितीय प्रमाण तक पहुँचे, व्यतिक्रम करे उतना काल अविभागी एक एक समय है। असख्यात समयो की एक आवली होती है, असख्यात आवलियो का एक उच्छ्वास होता है उतना ही निश्वास होता है और दोनो मिलकर एक प्राण होता है। ७ प्राणो का एक स्तोक होता है, ७ स्तोको का लव होता है। ७७ लवो का एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्तों का दिन-रात होता है १५ दिन-रात का एक पक्ष होता है। दो पक्ष (पखवारा) का एक महीना होता है। २ महीने की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओ का एक अयन होता है, दो अयनो का एक वर्ष होता है, ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है। ८४ लाख पूर्वांगो का एक पूर्व होता है। इस प्रकार इसी ८४ लाख प्रमाण से बढ-बढकर पूर्वांग पूर्व, नयुताग नयुत, कुमुदाग कुमुद, पद्माग, पद्म, नलिनाग नलिन, कमलाग, कमल, त्रुट्याग, त्रुट्य, अटटाग अट्ट, अममाग अमम, हूहू अग, हूहू लताग लता, महालता आदिक जानना। सम्पूर्ण इस गणना से सख्यात जाना जाता है और अवधिज्ञान से असख्यात पल्य, सागर जाना जाता है, और उससे परे अनन्त है जो सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष है।

भाव प्रमाण—पल्य का प्रमाण बताने के प्रकरण मे भली-भाँति सब मापो का परिचय हुआ, ऐसा ख्याल करके लौकिक, अलौकिक समस्त मापो का वर्णन बताया। अब अन्त मे पूर्व, सकल्प के

अनुसार भाव प्रमाण बतला रहे हैं। भाव का अर्थ यहाँ उपयोग है, ज्ञान है, सो भाव प्रमाण ५ प्रकार के हैं—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन. पर्यय ज्ञान और, (५) केवल ज्ञान। इस प्रकरण मे यह तारतम्य विदित होता है कि मतिज्ञान मे इतना विकास है, श्रुतज्ञान मे इतना विकास है, इस तरह सभी ज्ञानो मे विकास और विकास की जातियाँ सबका परिचय होता जाता है। इसमे सर्वोत्कृष्ट भाव प्रमाण है केवल ज्ञान। और सबसे जघन्य भाव प्रमाण है, सूक्ष्म निगोद लब्ध्य पर्याप्तक का ज्ञान और वह भी जबकि वह तीन मोडे लेकर विग्रह गति से जा रहा हो तो उसके एक मोडे के समय इससे ऊपर और केवल ज्ञान से नीचे अजघन्योत्कृष्ट अनेक प्रकार के भाव प्रमाण पाये जाते हैं। भावो को प्रमाण बताना भाव के अशो से ही हो सकता है। और, वे मतिज्ञानादिक ज्ञानो के स्वरूप के परिचय से भली-भाँति विदित हो सकता है। इस सूत्र मे मनुष्यो की स्थिति बताई गई जघन्य और उत्कृष्ट रूप से तो यह जिज्ञासा हो जाती है कि तिर्यञ्चो को फिर कितनी स्थिति है। उसका प्रतिपादन करने के लिए सूत्र कहते हैं।

तिर्यञ्चयोनिजानां च ॥३८॥

तिर्यञ्चो की भवस्थिति का विवरण—तिर्यञ्च योनि मे उत्पन्न हुए प्राणियो की स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट तीन पल्य की है। जैसे भोग भूमिया के मनुष्य होते हैं उसी तरह भोग भूमि मे तिर्यञ्च पशु-पक्षी हुआ करते हैं। वहा जलचर नही होते। मछली, मत्स्य, मगर आदिक नही होते। तो भोग भूमि के उन पशु पक्षियो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की है और जघन्य स्थिति तो अन्य साधारण जीवो मे जैसे निगोदिया जीव की अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्च योनि का अर्थ क्या है? तिर्यञ्च गति नामकर्म के उदय से जो जन्म होता है उसे तिर्यग्योनि कहते है, और उस तिर्यग्योनि मे उत्पन्न हुवे प्राणियो को तिर्यग्योनिज कहते हैं। उनकी उत्कृष्ट स्थिति इस सूत्र मे बतायी गई है। तिर्यञ्च तीन प्रकार के होते हैं—(१) एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। विकलेन्द्रिय मे दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव है, तब इन्द्रिय की अपेक्षा से समझना चाहिए कि इसमे पाँचोइन्द्रिय वाले जीव रहते हैं। उनमे से एकेन्द्रिय जीव ५ प्रकार के हैं—(१) पृथ्वीकायिक, (२) जलकायिक, (३) अग्निकायिक, (४) वायुकायिक और (५) वनस्पतिकायिक। पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के है—(१) शुद्ध पृथ्वीकायिक और, (२) खर-पृथ्वीकायिक। शुद्ध पृथ्वीकायिको की उत्कृष्ट स्थिति १२ हजार वर्ष है और खर पृथ्वीकायिको की उत्कृष्ट स्थिति २२ हजार वर्ष है। वनस्पतिकायिक जीवो की भवस्थिति उत्कृष्ट १० हजार वर्ष है याने ये पेड कोई-कोई १० हजार वर्ष तक जीवित रह सकते है। जलकायिक जीवो की उत्कृष्ट भवस्थिति ७ हजार वर्ष है, वायुकायिक जीवो की उत्कृष्ट भवस्थिति ३ हजार वर्ष है, अग्निकायिक जीवो की उत्कृष्ट भवस्थिति तीन रात दिन है, याने कोई अग्निकायिक जीव खूब ईधन का सयोग मिलने पर भी तीन दिन-रात मे अधिक जीवित नही रहती। भले ही वहाँ अग्निकायिक बहुत हैं और नये-नये पैदा होते रहते हैं। दो इन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट स्थिति १२ वर्ष की है। तीन इन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट स्थिति ४९ रात-दिन है। जैसे बिच्छू, पटार, कानखजूरा, कीडी, जू आदिक ये तीन इन्द्रिय कहलाते है। उनमे किसी की अधिक से अधिक आयु हो तो ४९ दिन की ही हो सकती है। चार इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट भवस्थिति ६ महीना है। इस तरह विकलेन्द्रिय का वर्णन हुआ। अब पञ्चेन्द्रिय के भवो की स्थिति बतला रहे हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यच ५ प्रकार के होते हैं—(१) जलचर, (२) परिसर्प, (३) उरग, (४) पक्षी और, (५) चतु-

त्पाद। जलचर जीव वे है जो जल मे जीवन पाते हैं। जल के बिना वे अधिक देर जीवित नही रह सकते। जैसे मछली आदिक उनकी उत्कृष्ट भवस्थिति है एक क्रोड पूर्व की। परिसर्प कहलाते है गुहा नेवला आदिक, उनकी उत्कृष्ट स्थिति ६ पूर्वांग की है। ६ पूर्वांग एक पूर्व से कम होता है। ८४ लाख पूर्वांगो का एक पूर्व होता है। उरग मायने सर्प आदिक— इनकी उत्कृष्ट स्थिति ४२ हजार वर्ष की होती है। पक्षियो की उत्कृष्ट भवस्थिति ७२ हजार वर्ष है और चतुष्पाद तिर्यंचो की उत्कृष्ट भवस्थिति तीन पल्योपम है। इस प्रकार तिर्यंच जीवो की उत्कृष्ट स्थिति बतलायी। उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

मनुष्य और तिर्यन्चो की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति समान होने पर भी दो सूत्रो की रचना का प्रयोजन—अब इस प्रसग मे एक शका यह होती है कि इससे पहले के सूत्र मे बताया है मनुष्यो की उत्कृष्ट स्थिति ३ पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और वही स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य तिर्यन्चो की बतायी जा रही है फिर अलग-अलग सूत्र न बनाकर उसी पहले सूत्र मे ही तिर्यन्च शब्द और डाल देते। केवल दो मात्रायें और बढती थी। सूत्र बन जाता नृतिर्यक्स्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते'' मनुष्यो और तिर्यन्चो की स्थिति—बस इस शब्द से सब अर्थ निकल आता। अलग से सूत्र बनाने की क्या जरूरत थी ? समाधान इसका यह है कि यदि एक ही सूत्र बना दिया जाता जैसा कि शकाकार ने कहा— तो इसका अर्थ यह बन बैठता कि मनुष्यो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है और तिर्यन्चो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। चूँकि दो शब्द पडे हैं—परावरे और दो शब्द रखे गत हैं—मनुष्य तिर्यन्च। तो उनका क्रम से अर्थ लगाकर यह सिद्धान्त विरुद्ध अर्थ हो जाता है अथवा सिद्धान्त विरुद्ध भी कुछ अधिक नही, लेकिन जो कहना था वह तो नही बता पाये। मनुष्यो की उत्कृष्ट और जघन्य दोनो ही स्थितिया और तिर्यन्चो की भी उत्कृष्ट और जघन्य दोनो स्थितियाँ बताना है। अलग सूत्र देने से इस प्रकृत सूत्र मे उन सब शब्दो की अनावृत्ति आ जाती कि तिर्यन्चो की भी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है।

भव स्थिति व कायस्थिति का अन्तर विवरण—अब यहाँ एक बात और विशेष जानना कि दो तरह की स्थितियाँ हुआ करती हैं—(१) भवस्थिति और, (२) कायस्थिति। भवस्थिति का अर्थ हुआ एक भव की पायी हुई स्थिति, जिसे कहते है आयु, जीवन, मरण। एक जीवन पाया, मरण हो गया, यह तो कहलाता है भवस्थिति और कायस्थिति का अर्थ है कि जो काय पाया है उसका त्याग न करके अनेक भवो मे बना रहना यह है कायस्थिति। जैसे कोई जीव त्रस काय मे उत्पन्न हुआ, मानो मक्खी बना तो भवस्थिति तो मक्खी की मानी जायेगी और यह मरकर त्रस ही त्रस होता रहे करोडो भवो तक भी तो उन करोडो भवो तक का जो समय है वह कायस्थिति मानी जायेगी। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इसकी भवस्थिति तो उत्कृष्ट अभी बतायी ही गई है। किसी की ३ रात-दिन ही है, किसी की हजार-हजार वर्ष है, मगर कायस्थिति पृथ्वी, जीव रहा, फिर पृथ्वी बना, तो कितने ही भव गुजर गये, पृथ्वी ही पृथ्वी लगातार होता रहे तो वह कायस्थिति का समय है और ऐसी उत्कृष्ट कायस्थिति असख्याते लोक प्रमाण समय की है। याने एक सारे लोक मे जितने प्रदेश हैं उनकी जितनी गिनती है उतना समय लग जाये और ऐसे-ऐसे असख्याते लोक बुद्धि मे लिये जायें, उनको समय लग जाये, इतनी कायस्थिति है। बताया गया है कि एक आवली मे जघन्य युक्तासख्यात समय होता है। अभी असख्यात का समय प्रमाण बताया था। उत्कृष्ट सख्यात ही बहुत

बडा समय है। सब हिसाब अन्दाज कर लो तो असख्याते लोक प्रमाण कायस्थिति है, कोई जीव वनस्पतिकायिक हुआ—तो वनस्पतिकायिक की भवस्थिति अधिक से अधिक १० हजार वर्ष की है, कोई वृक्ष १० हजार वर्ष तक ठहर सकता है लेकिन वह जीव मर-मरकर वनस्पतिकायिक होता रहे ऐसे अनगिनते भवो को लेता रहे और यह तो अनन्त भव भी ले सकता। इस अनन्त से मतलब अन्तरहित से नही, किन्तु अवधिज्ञान की सीमा से बाहर। तो वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्त काल है, जिसमे असख्यात पुद्गल परिवर्तन हो जाते हैं। जो पुद्गल परिवर्तन आवली के असख्यात भाग प्रमाण हैं। अब विकलेन्द्रिय की भवस्थिति तो बतायी गई थी। दो इन्द्रिय १२ वर्ष तक रह सकते, तीन इन्द्रिय ४९ रात-दिन रह सकते, चार इन्द्रिय ६ महीने तक रह सकते, अगर ये मर-मरकर विकलेन्द्रिय ही होते रहे तो ऐसा समय असख्यात हजार वर्ष तक चल सकता है। पचेन्द्रिय तिर्यन्च हो, अथवा मनुष्य हो भवस्थिति तो तीन पल्य तक ही है, मगर इनकी कायस्थिति पृथक्त्वकोटि पूर्व अधिक तीन पल्य है। याने जिस पूर्व भव से ये भोगभूमि मे आ गये, उस पूर्व भव की भी आयु इसमे शामिल है, ऐसी इन सबकी भवस्थिति और कायस्थिति बतायी किन्तु कायस्थिति जघन्य इन सभी की अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि एक ही भव को ले और जघन्य स्थिति वाले भव को ले और मरकर दूसरी काया मे उत्पन्न हो तो इनकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त ही रही। हाँ देव और नारकियो की कायस्थिति वही है जो उनकी मौजूदा भवस्थिति है, याने देव मरकर देव नारकी मे उत्पन्न नही होता, नारकी मरकर देव नारकी मे उत्पन्न नही होता, इसलिए उनका काय दो भव भी नही चलता, इन कारण उनकी जो भवस्थिति है वही कायस्थिति कहलाती है।

तिर्यन्चो की स्थिति आयु प्रकरण वाले चौथे अध्याय के प्रसग मे न कहकर मनुष्य लोक के प्रकरण मे कहे जाने का कारण—यहाँ एक आशका होती है कि प्रसग तो मनुष्यो का चल रहा था। उस प्रकरण मे तिर्यन्चो की आयु बताने के लिए इस सूत्र को कहने का क्या प्रयोजन है? उत्तर इसका यह है कि यद्यपि यहाँ न बताकर जहा चौथे अध्याय मे देवो की नारकियों की स्थितियाँ बतायी जाएगी वहाँ ही इसको कहा जा सकता था और वह प्रसग प्रकरण भी यही था। आयु सबकी बतायी जा रही है, तिर्यन्चो की भी बतायी जाती तो भी चौथे अध्याय मे आने वाले उस प्रकरण मे तिर्यन्च योनिज की स्थिति न बताकर यहाँ बताने का मतलब एक लाघव है। यहाँ तो ६-७ शब्दो मे ही सूत्र बन गया क्योकि इससे पहले सूत्र से परावरेत्रिपल्यापमान्तर्मुहूर्ते इन शब्दो की अनुवृत्ति आ गई है लेकिन आगे चौथे अध्याय मे कहने पर इसकी अनुवृत्ति नही आती, तो यह शब्द भी बढाकर बोलना पडता। तो इससे सूत्र बहुत बडा बन जाता। तो सूत्रो को लाघव करने के लिये थोडे से ही शब्दो से सूत्र बन जाता है अतएव यहाँ ही इस सूत्र को कहा गया है। दूसरी बात यह है कि प्रमाण विरूद्ध भी नही है, क्योकि यहाँ तिर्यक्लोक का कहा जाना प्रकरण मे सगत है, अतएव यह सूत्र यहाँ ही कहा गया।

ढाई द्वीप की विशेषता से वर्णन किये जाने का प्रयोजन—अब एक आशका और होती है कि द्वीप समुद्र तो असख्याते हैं, उन असख्याते द्वीप समुद्रो मे से एक ढाई द्वीप का ही निरूपण किया जा रहा है। अन्य द्वीपो के बारे मे एक सूत्र से सकेत भर कर दिया तो इसका क्या प्रयोजन है कि इन असंख्याते द्वीप समुद्रो मे ढाई द्वीप का बहुत बडे विस्तार से वर्णन किया जा रहा है। ढाई द्वीप के अतिरिक्त और भी तो अनेक द्वीप हैं और बहुत बड़े मनोज्ञ और कुछ द्वीपो के बीच अकृत्रिम चैत्या-

लय आदिक है और उनका भी विशेष वर्णन नही बताया और अनेक द्वीप समुद्र आखिर जो रचना मे ही तो है, क्यो उनकी अवज्ञा की गई है ? उसका समाधान—ढाई द्वीप मे जो क्षेत्र विभाग आदिक का विस्तृत निरूपण है सो यह निरूपण इसलिये विस्तार से किया गया कि मनुष्यलोक स ख्या विषयक जिज्ञासा होना इस मनुष्य को प्राकृतिक है। मनुष्य ही मोक्ष जाते है और मनुष्यो से ही मोक्ष मार्ग का एक चलन चलता है। तो मनुष्यलोक की जिज्ञासा शान्त करने के लिये मनुष्य-लोक का व्याख्यान करना पडा।

मोक्ष मार्ग के प्रकरण मे लोक रचना बताने की व्यर्थता की शका व उसका समाधान—अब यहाँ आशका होती है कि वर्णन कर्त्तव्य मनुष्यलोक का ही सही ओर साथ मे कुछ द्वीप समुद्र का भी है मगर प्रकरण तो जीव तत्त्व को बताने का है। जैसे कि शुरू-शुरू मे विधेय बताया, घेय बताया कि सम्यग्दर्शन, समयग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का एकत्व मोक्ष मार्ग है और सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थ श्रद्धान है और जीवाहिक ७ तत्त्व हैं तो तत्त्व का ही वर्णन करिये। यहाँ द्वीप समुद्र आदिक निरर्थक रचना करने से क्या मतलब है ? सभाधात—बात यह है कि मनुष्यो का विशेष वर्णन करना तो आवश्यक ही है। वर्णन करने वाले भी मनुष्य हैं और जिनको सुनाना है वे भी मनुष्य हैं और मनुष्य भव मे ही आत्मकल्याण की विशेष बात है। तो मनुष्यो का वणन तब तक स्पष्ठ समझ मे नही आता जब तक कि यह ज्ञान न हो कि यह मनुष्य रहते कहाँ हैं ? तो मनुष्यो का आधार बताने के लिये ढाई द्वीप का वर्णन करना पडा और चूँकि ढाई द्वीप भी कही ऐसे नही पडे। आकाश मे लटके हो या और कुछ। वे हैं कहा ? यह भी रचना कहाँ है ? तो यह बात समझने के लिये अस ख्याते द्वीप समुद्र की बात कहनी पडी। जो है सो ही कहा जा रहा। कोई बुद्धि से कृत्रिमता लाकर नही कहा जा रहा और अस ख्यात द्वीप सद्रद्र भी कहाँ है ? इसको स्पष्ट करने के लिये तीन लोक का वर्णन करना पडा। और तीन लोक भी क्या चीज है ? कहा हैं ? वह भी स्पष्ट भाव मे आये, उसके लिये अनन्त अलोकाकाश भी बताना होता है। तो मनुष्यो का आधार बताने के लिये द्वीप समुद्रादिक विशेषो का वर्णन किया गया है। यह समस्त वर्णन प्रयोजन रहित नही है। देखो मनुष्य स सार की गतियो से प्रधान जीव है। मनुष्यो की गणना उच्च कोटि के जीवो मे है और तब ही चारो गतियो मे सबसे कम सख्या मे पर्याप्त मनुष्य पाये जाते हैं। मनुष्य गति मे जीव सबसे थोडे है। अरहत भगवान, उत्कृष्ट श्रोता, वक्ता, वादी प्रतिवादी, विचारक, वैज्ञानिक ये सब मनुष्य ही तो है। ऐसे मनुष्यो का विशेष स्पष्टता से तब ज्ञात होता है जबकि आधार आदिक भी सब विज्ञात हुये।

ढाई द्वीपो मे मनुष्यो के उत्पन्न होने के कारण का एक अनुचिन्तन—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि ढाई द्वीपो मे अथवा इनके अन्तर्गत समुद्रो के स्थानो मे जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं उनका निमित्त कारण क्या है ? याने किन कारणो से मनुष्य इन ढाई द्वीपो से उत्पन्न होते हैं और इससे बाहर उत्पन्न नही होते। इस बात को समझने के लिये थोडा इस सिद्धान्त पर दृष्टि दीजिए। मुख्य कर्मो मे चार प्रकार के कर्म कहे गये हैं।—(१) जीव विपाकी, (२) पुद्गल विपाकी, (३) भव विपाकी, (४) क्षेत्र विपाकी। जीव विपाकी, कर्म की प्रकृति है कि उसका फल जीव मे हो। राग-द्वेषादिक भाव ये सब जीव मे हैं, और ये जीव विपाकी कर्म के प्रतिफल है। पुद्गल विपाकी कर्म वे कहलाते हैं कि जिनका फल पुद्गल मे प्राप्त हो याने शरीर मे जिसका फल हो। जैसे सस्थान बनना, संहनन बनना आदिक बातें। और भव विपाकी कर्म की प्रकृति है कि इस जीव को एक भव मे रोके

रखना, उसका क्षय होने पर दूसरा भव विपाकी उदय मे आता है। दूसरे भव मे रोकना, इसी तरह अनेक क्षेत्र विपाकी कर्म भी इस ससारी आत्मा के साथ बध रहे हैं; जिसके उदय से यह जीव क्षेत्र गमन करता है। याने अनेक क्षेत्रों मे विपाक होवे ऐसी प्रकृति को रखने वाले चार आनुपूर्वी कर्म हैं। तो ये कर्म उन स्थलो पर उन जीयो के जन्म लेकर उत्पत्ति होने मे हेतुभूत हो जाता है। साराश यह है कि जिन जीवो के जिस प्रकार के कर्म का सद्भाव होता है उसके ही अनुसार उन द्वीप समुद्रो मे जन्म हुआ करता है। तो यो जीवो के आधार का निरूपण मनुष्यो के आधार का निरूपण किया गया है। यदि इन आधारभूत साधनो का निरूपण न किया जाये तो जीव तत्त्व के बारे मे कुछ निरूपण अथवा समझ न बनेगी। और जब जीव तत्त्व की समझ न बनी, श्रद्धान, ज्ञान न बना तो फिर प्रकृत वर्णन न हो सकेगा। और जब जीव तत्त्व का वर्णन न बने तो अजीव आश्रव का वर्णन हो ही नही सकता। इस कारण उस ही रत्नत्रय प्रकरण से सम्बन्धित है यह सब वर्णन आ जाये कि लोक रचना भी विवरण से भरा हुआ है।

द्वीप समुद्रादिक लोक रचना के कर्तृत्व के विषय मे शका व उसका समाधान—अब वहाँ कोई शका करता है कि इस अध्याय मे प्ररूपण तो बहुत आ गया कि ऐसे लोक है, इतने द्वीप समुद्र हैं, बहुत अच्छी-अच्छी रचना भी बतायी गई है, पर यह नही कहा गया है कि आखिर इन रचनाओ को किया किसने ? हम तो यह ही समझते हैं कि ये द्वीप समुद्रादिक हैं, वे किसी एक महान् बुद्धिमान के द्वारा बनाये गये है और वह महान् बुद्धिमान ईश्वर ही हो सकता। तो यह सारी रचना ईश्वर कृत है, क्योकि इनका आकार पाया जा रहा है। जिन-जिनमे आकार पाया जाता है वे किसी के द्वारा बनाये गये हैं। जैसे घडा, किवाड आदि इनमे आकार है तो ये किसी के बनाये हुये ही तो हैं। कुम्हार, कोरी, जुलाहा आदिक ये सब उसके बनाने वाले हैं। तो ऐसे ही जब द्वीपादिक के आकार पाये जा रहे तो ये भी किसी बुद्धिमान के बनाये हैं। अब इनको साधारण बुद्धिमान कैसे बना सकते हैं ? ये सब ईश्वरकृत हैं।' समाधान—शका मे जो यह बताया गया कि जिन-जिनका आकार हो वे सब किसी के बनाये हुये होते हैं तो ईश्वर के शरीर का आकार तो है ही, आकार बिना कोई शरीर तो होता नही। तो यह ही मूल बतलाओ कि ईश्वर के शरीर को किसने बनाया ? अगर कहा जाये कि ईश्वर के शरीर को दूसरे ईश्वर ने बनाया तो उसके शरीर को किसने बनाया ? मानते जाओ। ईश्वर की अनवस्था हो जायेगी तो पहले यह ही निर्णय न हो पायेगा फिर जगत के बनाने की चर्चा हो रही ही कहा ? अगर कहा जाये कि ईश्वर के तो शरीर ही नही है, निर्देह ईश्वर जगत का कर्त्ता है। तो जो देहरहित मानते हैं ईश्वर को, उनके यहाँ ईश्वर जगत का निमित्त कारण है, यह सिद्ध ही नही हो सकता, क्योकि वह निर्देह है। जो-जो निर्देह है वह सृष्टि का कारण नही बन सकता। जैसे मुक्त आत्मा। ऐसा स्वय इन शंकाकारो ने माना है कि जो जीव कर्म से मुक्त हो जाते हैं उनके देह नही रहता और वे मुक्त पुरुष ज्ञानरहित हो जाते हैं। जगत की रचना करने की तो कोई बात ही नही है। तो जो देहरहित हो गया वह सृष्टिकर्त्ता नही हो सकता। तब फिर यह बहुत-बहुत प्रमाण देना शकाकार की शोभा को बिगाडना है। आगम प्रमाण मे लोग यह कहते कि ईश्वर की आख सब तरफ है, मुख सब तरफ है, बाहु सब ओर हैं और अपनी बाहुओ द्वारा तीनो लोक की रचना करता है यह सब व्यर्थ की बात है। और जो देहरहित ईश्वर को जगतकर्त्ता कहते हैं वे भी अपना प्रमाण दिया करते हैं कि उसके पैर नही, हाथ नही, आँखें नही फिर भी देखता है। कर्ण नही फिर भी सुनता। वह सारे विश्व को जानता, पर उसको कोई नही जानता आदिक प्रमाण पेश करना

भी व्यर्थ है, क्योंकि देह सहित ईश्वर ही वह भी जगत को रचने का कारण नही और जो देहरहित हो वह भी जगत का सृष्टिकर्त्ता नही हो सकता।

नित्य ज्ञानपने की बात जोडकर ईश्वर मे लोक कर्तृत्व की सिद्धि की अनुपपत्ति—शका—जो अभी बताया गया था समाधान मे कि मुक्त आत्मा देह रहित है और इस कारण वह सृष्टिकर्त्ता नहीं है तो इसी तरह ईश्वर भी देहरहित है और वह भी सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकता। इसके समाधान में एक विपत्ति है। बात यह है कि मुक्त आत्मा तो अज्ञ है, ज्ञानरहित है इस कारण ससार की उत्पत्ति मे ज्ञानरहित आत्मा कारण नहीं हो सकता। किन्तु, ईश्वर तो यद्यपि देहरहित है तो भी नित्य ज्ञान वाला है। इस कारण भी जगत की सृष्टि का निमित्त कारण हो जायेगा। समाधान—शकाकार ने जो हेतु दिया है कि नित्य ज्ञान रूप होने से ईश्वर जगत का सृष्टिकर्त्ता है इस अनुमान मे जो हेतु दिया है वह हेतु युक्त नही बैठता, कारण यह है कि व्यतिरेक तो इसका है नही। जब यह कहा गया कि नित्य ज्ञान वाला ईश्वर जगत को रचता है तो उसके खिलाफ मे दूसरी बात तो बतायी नही जा सकती व्यतिरेक सिद्ध ही नहीं है। जैसे अनुमान करते हैं कि इस पर्वत मे अग्नि है धुआं होने से, तो वहां जब यह व्यतिरेक सिद्ध है कि जहा अग्नि नही होती वहा धुआं नही होता तब ही तो धुआं देखकर अग्नि का ज्ञान करना सत्य है। तो ऐसे ही जब ऐसा व्यतिरेक मिले, जहां नित्य ज्ञानी ईश्वर नही है वहां सृष्टि भी नही होती। तब तो इस हेतु से सृष्टि सिद्ध हो। सो व्यतिरेक है नही, और जहां व्यतिरेक नही है वहां अन्वय का महत्त्व ही क्या है ? तो यो नित्य ज्ञान वाला ईश्वर यह हेतु सृष्टि कर्तृत्व को सिद्ध नही करता।

प्रकरण यह चल रहा है कि तृतीय अध्याय मे जो अनेक द्वीप समुद्रो की रचना बतायी गई है यह सब रचना तो होगी, परन्तु है यह सब ईश्वर के द्वारा की गई ? इसके समर्थन मे शकाकार ने यह अनुमान किया था कि ये द्वीपादिक समस्त किसी बडे बुद्धिमान के द्वारा बनाये गये है, क्योकि आकार विशेष वाले होने से। इसके समाधान में अनेक वार्ता रखकर अन्त मे यह सिद्ध किया था कि ईश्वरकृत यह जगत रचना नही है, क्योंकि वह देहरहित है और जो देहरहित है वह ज्ञानरहित हैं, क्योकि मोक्ष मायने क्या है ? समस्त गुणों से रहित होना। जब तक आत्मा मे गुण होते है तब तक वह ससारी हैं और जब सब गुण नष्ट हो गये तो मुक्त हो गया, ऐसा नैयायिकों का सिद्धान्त है और उन गुणो मे सुख-दु ख, इच्छा, द्वेष, बुद्धि आदिक ये सभी गुण हैं। तो जहां बुद्धि और ज्ञान भी न रहे उन्हे कहते हैं मुक्त जीव। तो जैसे अज्ञ होने से मुक्त जीव जगत की उत्पत्ति मे कारण नही है ऐसे ही ईश्वर भी न होगा। उत्तर मे शकाकार ने कहा था कि ईश्वर अज्ञ नही है, वह नित्य ज्ञान वाला है, ज्ञानवान है और उसका ज्ञान सदा काल रहता है इस पर विचार चल रहा है।

ईश्वर के ज्ञान मे भी सर्वथा नित्यत्व की असभवता—ईश्वर के नित्य ज्ञानवत्त्व के विषय मे कुछ वार्तालाप होते होते यह अन्त मे बात आती कि ईश्वर का ज्ञान नित्य हो ही नही सकता, क्योकि जो भी ज्ञान होगा वह परिणमेगा, जानेगा। तो जैसे हम लोगो के ज्ञान नित्य नही है, नये-नये होते हैं ऐसे ही इनका भी ज्ञान नया-नया है। नित्य कैसे हो सकता ? हाँ सतान की अपेक्षा मानें तो हम लोगो के ज्ञान भी नित्य हैं, क्योकि ज्ञान सामान्य से रहित हम लोग कभी नही रहा करते तो ज्ञान विशेष की अपेक्षा नित्य ज्ञानपना मानेंगे ईश्वर मे और उससे जगत कर्तृत्व सिद्ध करेंगे यह बात न बन सकी। अब यहां शकाकार कहता है कि क्या हर्ज है ? ईश्वर के ज्ञान मे ज्ञानपना भी रहा आगे और

नित्यपना भी रहा आवे, कोई विरोध नही है, आखिर ईश्वर हम लोगो से तो कोई खास ही है फिर उस ईश्वर मे हम लोगो की समानता क्यो बतलाते हो ? अगर इस तरह न मानोगे और हम लोगो मे जो बात पायी जाती है वही सब ईश्वर मे थोपोगे तो वह सर्वज्ञ नही बन सकता। यदि नित्य ज्ञान ईश्वर मे न मानोगे तो वह सर्वज्ञ न हो सकेगा। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि ईश्वर मे ज्ञानपना अगर है और वह होगा प्रमाणरूप तो उससे भिन्न कोई फल भी तो बताना चाहिये। जितने भी ज्ञान होते है उन ज्ञानो का फल होता है याने प्रमाण का फल अवश्य होता। तो ईश्वर का ज्ञान अगर प्रमाण है तो उसका कोई दूसरा फल भी होना चाहिये और ईश्वर के अगर फल मान लिया तो फल तो नियम से अनित्य ही होता है, क्योकि फल तो प्रमाण का कार्य है, वह नित्य कैसे हो सकता ? यहा अर्थ यह समझना कि जितने भी ज्ञान होते हैं, प्रमाण होते हैं जान लिया, अब जानने का कोई फल भी तो होता है। जैन सिद्धान्त मे बताया है कि जानन का फल त्यागने योग्य को त्याग देना, ग्रहण करने योग्य को ग्रहण करना और उपेक्षा करने योग्य की उपेक्षा करना, पर नैयायिको के प्रमाण का फल क्या है ? सो वे बतलाये। प्रथम तो यह ही विपत्ति आयेगी कि अगर ईश्वर के प्रमाण ज्ञान का कोई फल है तो अनित्य हो जायेगा ज्ञान।

परिस्थितिवश एक ही ईश्वर ज्ञान को प्रमाण फलात्मक बता करके मनोरथ की सिद्धि करने का व्यर्थ प्रयास—यदि शकाकार यह कहे कि ईश्वर का ज्ञान प्रमाणरूप भी है फलरूप भी है याने दो ज्ञान मानने की जरूरत नही कि ज्ञान केवल प्रमाणरूप होता और कोई दूसरे फलरूप होता। वही प्रमाणरूप है, वही फलरूप है। तो समाधान मे कहते कि नैयायिको के यहाँ यह बात नही बन सकती, क्योकि उन्होने स्पष्ट कहा अनेक प्रसगो मे कि अपने आप से अपनी क्रिया नही हुआ करती। इसलिए एक ज्ञान को प्रमाण फलात्मक नही कह सकते। यदि ईश्वरवादी यह कहे कि ईश्वर का प्रमाणभूत ज्ञान तो नित्य है और फलभूत ज्ञान अनित्य है तो समाधान मे कहते कि देखो अब यहा दो ज्ञान मान लिया ईश्वर के—(१) प्रमाणरूप और, (२) फलरूप। तो दो ज्ञान मानने का प्रयोजन क्या है ? शकाकार कहता कि प्रयोजन यह है कि दो ज्ञान मानने का कि ईश्वर है शरीररहित तो उसे सदा सर्वज्ञपना बना रहे इसकी सिद्धि के लिये दो ज्ञान माने हैं। तो उत्तर मे कहते कि ज्ञानपना तो नैयायिको के यहाँ अज्ञान की चीज मे भी माना गया है। जैसे कही कहते हैं वे कि आत्मा पदार्थ, इन्द्रिय, मन इनका सन्निकर्ष प्रमाण है, कही आत्मा पदार्थ व इन्द्रिय इनका सन्निकर्ष प्रमाण है तो कही मानते हैं कि आत्मा और पदार्थ इन दोनो का सन्निकर्ष प्रमाण है तो ईश्वर तो तुम्हारा व्यापक है और वही सारे पदार्थ पडे हैं तो सन्निकर्ष तो हो ही गया और सन्निकर्ष है अचेतन। आत्मा को भी उन्होने अचेतन कहा, वे ज्ञानस्वरूप आत्मा नही मानते शकाकार का प्रमाण तो अचेतन भी हो जाता और फिर सब पदार्थों की जगह ईश्वर भी फैला हुआ है। सन्निकर्ष सदा रहा। तो यो अपनी कल्पित सर्वज्ञता तो यो ही हो जायेगी फिर जरूरत क्या है दो ज्ञान मानने की। शकाकार कहता है कि ईश्वर है शरीररहित, उसके इन्द्रिय है नही, मन भी नही। तो सन्निकर्ष तो होगा नही और सन्निकर्ष आदिक सामग्री जब न हो सकी तो वह ज्ञानी भी न बन सका, इस कारण से ईश्वर को तो सदा नित्य ज्ञान वाला ही मानना चाहिए जो अनादि काल से सारे पदार्थों को जानता चला आया है। उत्तर मे कहते कि क्या आवश्यकता है इन्द्रिय को ? आत्मा और पदार्थ इन दोनो का तो सम्बन्ध है ही, ईश्वर सब जगह व्यापक और पदार्थ भी सब जगह पडे, तो प्रमाण तो हो ही जायेगा। तो नित्य ज्ञानपना सिद्ध होता, जिससे यह सिद्ध किया जाये कि जगत का रचयिता ईश्वर है और जब इन

द्वीप समुद्रादिक अकृत्रिम सन्निवेशो का अन्य कोई कर्त्ता नही है तो अपने आप सिद्ध हो गया कि यह लोक रचना सब अनादि काल से ही सिद्ध है।

निर्देह पुरुष मे लोक कर्तृत्व की असभवता—शकाकार कहता है कि काल समय ये सब तो कार्य की उत्पत्ति मे कारण हैं। काल के देह कहाँ है ? शरीर रहित है काल फिर भी पदार्थों की उत्पत्ति मे कारण है। तो यह तो कहना सगत नही कि जिसके देह न हो वह पदार्थों की उत्पत्ति का कारण न बनेगा। देह तो काल के भी नही है। और जैनो ने भी माना है कि काल द्रव्य, काल-समय पदार्थों के परिवर्तन का कारण है। इस शका के समाधान मे कहते कि इस प्रकरण मे यह नही कहा गया कि ईश्वर देहरहित है, इतने मात्र से कारण नही है, किन्तु देहरहित पुरुष है अत वह जगत के रचने का कारण नही हो सकता। काल शरीररहित है तो भी पदार्थों के परिवर्तन का निमित्त कारण है। मगर ऐसा कोई पुरुष न मिलेगा, जीव न मिलेगा जो देहरहित हो और कुछ रचना कर डाले। यहां तक यह बात सिद्ध हुई कि ईश्वर का भी ज्ञान अनित्य ज्ञान है और वह लोक की रचना का कारण नही है मुक्त आत्मा की तरह, क्योकि मुक्त आत्मा जैसे सर्वथा ज्ञानरहित हैं ऐसे ही वह भी है। अगर ईश्वर को ज्ञ मानते हो, जाननहार तो मुक्त आत्मा को भी जानन-हार मानो। देखो नैयायिक सिद्धान्त मे तो यह कहा भी नहीं जा सकता मुख से कि ईश्वर जानन-हार है, ज्ञ, ज्ञाता है, क्योकि आत्मा को ज्ञान से रहित माना है और ज्ञान का सम्बन्ध होने से आत्मा को ज्ञानवान माना है तो आत्मा को ज्ञानवान तो कहा जा सकता, जैसे धनवान ऐसे ही ज्ञानवान, मगर ज्ञ नहीं कहा जा सकता याने जाननहार नही कहा जा सकता, क्योकि आत्मा का स्वरूप ज्ञान-स्वरूप माना ही नही है। ज्ञान अलग है आत्मा अलग है, तो आत्मा ईश्वर को ज्ञ भी नही कह सकते।

सामान्यतया लोक की धीमद्धेतुकता मे अनापत्ति—अगर यह शकाकार सामान्य तौर से यह कहे कि जो कुछ आकार पाया जा रहा है वह किसी न किसी बुद्धिमान के हेतु पूर्वक है तो इसमे कोई आपत्ति नही। जीव अपने-अपने शरीर के रचने के कारण हैं इसलिये यह सारा जगत बन रहा है, पर एक कोई अलग ईश्वर हो, एक बुद्धिमान हो और वह समस्त जीवो की रचना करे, यह सिद्ध नही हो सकता। अनेक प्राणियो के परिणाम हैं, उनसे कर्मबन्ध है, उनके उदय मे ऐसा योग है कि यह सब रचना होती चली जाती है। अगर ऐसा न हो तो फिर यह जगत उपभोग्य न रह सकेगा। याने जीव ने ही किया, जीव ने ही भोगा। प्रत्येक जीव अपने सम्पूर्ण शरीर का, कर्म का कारण बनता है और सभी जीव चेतन हैं, ज्ञानवान हैं और सभी जीवो मे सामान्य स्वरूप देखो तो परमात्म-स्वरूप है। ईश्वर है, ईश्वर सामान्य बात है अगर कहो कि यह सारा लोक चेतनकृत है तो यह बात तो बन जायेगी। सभी प्राणी अपने-अपने सम्बन्धित भावो के, शरीर के, कर्मो के उपादान कारण अथवा निमित्त कारण पडते हैं।

सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीर से रहित जीव द्वारा लोक कार्य की असभवता—शकाकार कहता है कि यहा दोनो तरह से ही किया जाना देखा जा रहा है। शरीरसहित कुम्हार घट को बनाता है और जब एक भव छूट जाता है तो यह आत्मा खुद शरीररहित होकर भी अपने नये शरीर को बनाता है। तो शरीरसहित भी काम करने वाला होता है और शरीररहित भी काम करने वाला होता है इसलिए क्रिया करने की बात सामान्य रखिये। चाहे देह सहित हो, चाहे देहरहित हो, फिर ईश्वर के सम्बन्ध मे यह विकल्प क्यो करने कि वह देहसहित है या देहरहित है। देहसहित भी काम करता है और देहरहित भी काम करता है। मरने के बाद यह जीव शरीर को छोडकर ही तो जाता

है और शरीर रहित जीव नये शरीर को कैसे बना लेता है ? इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यह कहना विवेकरहित है। जो जीव यहाँ से मरकर जाता है तो वह अकेला नही जाता। उसके साथ सूक्ष्म शरीर रहता है। वह सूक्ष्म शरीर वाला जीव ही तो एक नये शरीर का कारण बनता है जो एकदम देहरहित हो गया याने न कार्माण शरीर है न तैजस शरीर, सूक्ष्म शरीर भी न रहा, ऐसा आत्मा नये देह को नही बना सकता, क्योकि शरीर रहित जीव हो कोई तो मुक्त आत्मा की तरह फिर उसके दूसरे शरीर का सम्बन्ध नही बन सकता।

परसपर्क के अभाव मे स्वभाव विरूद्ध कार्य की अनुपपत्ति—शकाकार कहता है कि यह तो अदृष्ट का फल है कि नया शरीर वह बना लेता है। अदृष्ट आत्मा का एक गुण है और उस अदृष्ट के कारण यह जीव का शरीर बनाता है। इसके उत्तर मे कहते हैं कि शकाकार जैसा समझता है कि अदृष्ट आत्मा का गुण है यह बात विल्कुल गलत है। अदृष्ट मायने भाग्य, पुण्य-पाप। पुण्य पाप आत्मा का गुण नही किन्तु वह तो पुद्गलात्मक है। अदृष्ट, जिसका दूसरा नाम है पुण्य, पाप, धर्म-अधर्म, यदि ये आत्मा के ही गुण हो तो फिर ये आत्मा की परतन्त्रता के कारण नही बन सकते। याने किसी भी पदार्थ का स्वभाव गुण स्वरूप उस पदार्थ की परतन्त्रता का कारण नही होता अन्य वस्तु का सम्बन्ध परतन्त्रता का कारण होता है। शकाकार कहता है कि जैसे आत्मा का बुद्धि गुण आत्मा का गुण है तो, भी आत्मा की परतन्त्रता का कारण बना हुआ है। ज्ञान गुण से आत्मा परतन्त्र है ससार मे, जब ज्ञान गुण नष्ट हो जाता है तो आत्मा मुक्त बन जाता है और परतन्त्रता खत्म हो जाती है इसी तरह धर्म-अधर्म भी आत्मा के गुण हैं, इच्छा, द्वेष आदिक आत्मा के गुण हैं और आत्मा की परतन्त्रता के कारण है, तो इस तरह यह अदृष्ट इच्छा, द्वेष, पुण्य, पाप ये आत्मा की परतन्त्रता के कारण बन जायेंगे। समाधान मे कहते हैं कि धर्म-अधर्म या इच्छा और द्वेष पुण्य-पाप ये सर्वथा आत्मा के गुण हो ही नही सकते, क्योकि कर्म के उदय का निमित्त न हो तो ये उत्पन्न नही हो सकते। और कर्मोदय के निमित्त से जो भाव बनते वे भाव कर्म कहलाते। तो भाव कर्म तो परतन्त्रता के कारण है, पर आत्मा का गुण परतन्त्रता मे कारण नही हो सकता। इच्छा, द्वेष या धर्म-अधर्म ये सब मोह भाव परतन्त्रता मे ही हुआ करते हैं, क्योकि जो स्वतन्त्र आत्मा हो, चाहे राग द्वेष से उपद्रुत न हो तो उसके कभी इच्छा और द्वेष सम्भव ही नही हो सकते। तो धर्म-अधर्म आत्मा के गुण नही है, क्योकि ये आत्मा की परतन्त्रता के कारण है मोह विशेष होने से। जो-जो परतन्त्रता के कारण बनते है वे अन्य पदार्थ ही हुआ करते हैं, खुदका गुण नही हुआ करते, तब फिर है क्या कि ये इच्छा द्वेष, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप ये सब पुद्गल परिणामक हैं। कोई पुद्गल कर्म का निमित्त पाकर हुए हैं और कोई सीधे ही पुद्गल के परिणाम हैं। तो अदृष्ट शरीर का कारण नही कहा जा सकता। देखो ससारी प्राणी अदृष्ट सहित तो है ही और दूसरी बात स्थूल शरीर पाने से पहले शरीर रहित नही रहा यह जीव। सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध है तब ही तो यह स्थूल शरीर को पाता है। तो यो ईश्वर जगत का रचयिता न बना और यह द्वीप समुद्र की जो रचना बताया है वह सब अनादि सिद्ध है। अकृत्रिम है और हो रहे हैं तो उनमे जो एकेन्द्रिय जीव हैं—जल मे पृथ्वी मे उन एकेन्द्रिय जीवो के साथ अदृष्ट लगा है, कर्म लगा है उन कर्मोदय वश उनके शरीर के परमाणु आते-जाते रहते है फिर भी इनका सन्निवेश (आकार) ऐसा ही अनादि काल से है। और ऐसा ही रहेगा।

सन्निवेश विशिष्टता व अनादि सिद्धता मे अविरोध—अब यहा शकाकार कहता है कि

महेश्वर के पृथ्वी आदिक ८ मूर्तियाँ मानी गई हैं याने पृथ्वी, जल आदिक ये महेश्वर की मूर्तियाँ है ये इससे अलग चीज नही हैं जो महेश्वर इनको अलग से रचता है यह तो खुद महेश्वर के अंग जैसे है और उनके उत्पन्न होने मे वही महेश्वर कारण है याने महेश्वर के ही तो ये सब शरीर है पृथ्वी, जल आदिक और इनको वह महेश्वर ही उत्पन्न कर लेता है। तो उत्तर मे कहते कि यह तो आपने अपने ही प्रतिकूल बात कही। जैसे महेश्वर अपनी पृथ्वी आदिक समुदाय को उत्पन्न कर लेता इसी तरह समस्त जीव अपनी-अपनी मूर्ति को मायने शरीर को उत्पन्न कर लिया करते हैं याने शरीर शरीरोत्पत्ति के वे सभी जीव कारण पडते हैं। तो सभी मे हेतुपना आया इस जगत की रचना का, न कि किसी एक ईश्वर मे जगत की रचना का हेतुपना आयेगा। यदि शकाकार यह कहे कि पृथ्वी आदिक मूर्तियो को तो ईश्वर रचता है मगर पहले पृथ्वी आदिक मूर्तियाँ और थी। उसके बाद रचा तो फिर प्रश्न उत्पन्न होते जायेंगे कि उनसे पहले और मूर्तियाँ थी, उनसे पहले और थी तो उनको कैसे रचा गया ? यो कोई व्यवस्था ही नही बन सकती। अगर कहो कि ये सब अनादि मूर्तियाँ है, कभी रची गई ऐसा नही तो यह बतलाओ कि अनादि काल से इनका आकार है तो जिसका आकार है वह अनादि से भी तो रह सकता है, शकाकार के कथन से ही सिद्ध हो गया कि जिस महेश्वर की मूर्तियाँ अनादि काल से हैं और उनमे आकार बनता पृथ्वी का आकार, जल का आकार तो आकार विशिष्ट भी रहे आयें और अनादि भी रहे आयें तब यह शकाकार का हेतु सही न रहा कि यह सारा जगत किसी बुद्धिमान के द्वारा बनाया गया है क्योकि आकार वाला होने से। आकार वाला भी रहे और बिना किसी के बनाया हुआ भी रहे, जैसे महेश्वर की मूर्तियाँ पृथ्वी वगैरह आकार वाली भी हैं और अनादि भी हैं। उतनी तो साफ बात है, अब मुख है सो जो चाहे बोल दे ऐसी बात न करना चाहिये।

लोकानुभव से भी द्वीपसमुद्रादिक की कृतकता का असमर्थन—एक बात यह भी है कि लोगो को पुराने जीर्ण महल, कुआँ आदिक को देखकर मन मे यह बात आती है कि ये किसी ने बनाया था, चाहे हजार वर्ष पहले बनाया हो लेकिन सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी इनको देखकर कभी मन मे यह बात नही आती कि किसी ने बनाया। चीजो की अलग-अलग बात है, जो किया जा सकता है उसमे ही यह बुद्धि बनती कि इसको किसी ने बनाया था। जो किया ही न जा सके, जो अकृत्रिम है उसके बारे मे किसी को सशय नही होता कि ये सब किसी के बनाये हुये हैं, और बनाया है यह बात तब ही तो बनेगी, जैसे कुम्हार ने घडा बनाया, कुम्हार बिना घडा बनते नही देखा। जब व्यतिरेक भी मालूम हो तब ही तो निर्णय होता है। तो ईश्वर का तो व्यतिरेक कभी होता ही नही है। जब ऐसा समय है कि जब ईश्वर न हो ? ईश्वर के होते सन्ते बने, और ईश्वर जब न हो तब न बने, ऐसी बात पायी जाये तो निर्णय बने कि किसी ने बनाया है मगर व्यतिरेक तो सम्भव नही है। तो नित्य ईश्वर या नित्य ज्ञान वाला ईश्वर जगत का कर्त्ता बनता है यह जो पक्ष है वह पक्ष अयुक्त बैठता है।

द्रव्य पर्यायात्मक होने से सर्व पदार्थों की नित्यानित्यात्मकता—शकाकार ने जो दृष्टान्त दिया था कि कालादिक द्रव्य भी तो नित्य हैं, सर्वगत हैं और वे पदार्थो की उत्पत्ति के कारण हैं सो उस सम्बन्ध मे भी यह समझना चाहिए कि काल द्रव्य और आकाश द्रव्य आदिक की पर्यायें नित्य नही है सर्वगत नही है, द्रव्यार्थिक नय से काल, आकाश आदिक सभी नित्य हैं, पर द्रव्यार्थिक नय से सभी पदार्थ अनित्य हैं। मायने पर्यायें होती हैं और मिटती हैं ऐसा काल जैन सिद्धान्त में नही माना

गया कि जिसकी पर्याये न हो, और यद्यपि आकाश सर्वव्यापक है और नित्य है मगर उसे भी अगर पर्यायरहित माना जाये तो उस आकाश का भी ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नही हो सकता। याने जो-जो भी सत् है वे सब पर्यायसहित हैं। पर्यायरहित कुछ भी अस्तित्व ही नही रख सकता है। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य हैं वे समस्त लोक मे व्यापक हैं मगर द्रव्य दृष्टि से हो नित्य है, पर्याय दृष्टि से तो अनित्य हैं। इस तरह अपने कार्य की उत्पत्ति मे ये सब निमित्त हो जाते हैं। वस्तु के परिणमन मे काल द्रव्य निमित्त, पदार्थों के अवगाह में आकाश निमित्त, जीव और पुद्गल के चलने मे धर्म द्रव्य, निमित्त और ठहरने में अधर्म द्रव्य निमित्त, ये कारण तब ही कहलाते है कि जब ये स्वयं अनित्य हैं पर्याय दृष्टि से।

सिसृक्षा की बात निकाल कर परद्रव्य का कर्तृत्व सिद्ध करने का विफल प्रयास—यहाँ शकाकार कहता है कि यदि ऐसी ही बात तय की है कि कोई अनित्य ही दूसरे पदार्थ का कारण बन सकता है तो महेश्वर का गुण है सृष्टि करने की इच्छा करना। तो यह सिसृक्षा अनित्य है और अव्यापक है सो उस इच्छा को जगत् सृष्टापन का कारण मान लो और इसमे व्यतिरेक भी बन गया जब महेश्वर के इच्छा नही है तब ये उत्पन्न नही होते। जब महेश्वर की इच्छा होती है तब ये उत्पन्न हो जाते। जो व्यतिरेक भी बन गया और सृष्टि की इच्छा यह अनित्य भी हो गया। तो इस तरह से जगतकर्त्ता महेश्वर को बताना सिद्ध हुआ और यों ये द्वीप समुद्र आदिक जी रचना बतायी गई है वह भी ईश्वरकृत कहलायी कोई अकृत्रिम नही है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि महेश्वर ने जो सृष्टि करने की इच्छा की याने सिसृक्षा की तो उस इच्छा की उत्पत्ति कैसे हुई क्यों-कि जो-जो अनित्य हैं वे उत्पन्न ही तो होते है। तो सिसृक्षा उत्पन्न कैसे हुई ? जिस इच्छा के द्वारा सृष्टि की, उस इच्छा की उत्पत्ति अगर अन्य इच्छा से हुई मायने सृष्टि करने की इच्छा पहले थी उससे यह इच्छा बनी, यदि ऐसा मानते हो तो उस पहली सिसृक्षा के उत्पन्न होने मे दूसरी सिसृक्षा हुई, इस तरह से अपनी इच्छाओ को उत्पन्न करने का ही एक प्रबन्ध बना ले, बाद मे जगतकर्त्ता की बात सोच यों अनवस्था दोष आता है। यदि ऐसा माना जाये कि महेश्वर के जो सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न हुई है, वह अन्य इच्छा के बिना हो जाती है तो ठीक है। जब एक सिसृक्षा बिना हेतु के उत्पन्न हो गई तो इस जगत का यह सारा सन्निवेश द्वीप समुद्रादिक ये बिना कारण के ही हो जाये, इसमे क्यो आनाकानी करते ? और, यह बात सबको स्पष्ट हो जाती है कि जो-जो भी जीव हैं, पृथ्वी के जीव हो, जल के जीव हों उन प्राणियो के अदृष्ट का ऐसा ही सामर्थ्य है कि ये सब पृथ्वी आदिक यो ही स्थिर रहते है। पृथ्वी मे अनगिनते जीव हैं कोई जीव मरा, कोई जीव आया इस तरह से इन जीवो के आते-जाते रहने पर भी इनका आकार बिगडता नही। आकार वही रहता है, इसी प्रकार जो-जो भी अकृत्रिम रचना है वह सब इस प्रकार अनादि से सिद्ध है। तो जैसे महेश्वर की मूर्तियाँ सृष्टि करने की इच्छा यह तो बाद मे उत्पन्न हुई मान ली गई है और कभी इसका विरोध नही मानते। तो यह ही बात समस्त पदार्थों की है कि ये सब स्वतन्त्रता से उत्पन्न होते है सर्व कार्य और सदा तक चलते रहते है।

सहकारी सामग्री कारण की विरहता का व्याज करने में ईश कर्तृत्ववाद मे विडम्बना—अब यहाँ शकाकार कहता है कि ईश्वर की इच्छा तो सदा रहती है मगर जब तक सहकारी और कारण न मिले तब तक सृष्टि नही बनती। तो उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है कि और जो सहकारी कारण बता रहे हो वे भी तो महेश्वर से उत्पन्न होते है और अगर नही होते तो कुछ ऐसी भी चीजें हैं जो

अकृत्रिम सिद्ध हो गई। तो जब सहकारी कारणो को एक महेश्वर करता और सिसृक्षा को भी महेश्वर करता तो व्यतिरेक तो कभी सिद्ध ही नही हो सकता, तो सब कुछ एक ही बार मे हो जाना चाहिए, और मानो कि वह सहकारी कारण भी सदा रहा करता है तो सदा ही कार्य होते रहना चाहिये। इस तरह युक्ति सिद्ध नही है कि इन द्रव्यमान आकार वाले पृथ्वी आदिक को किसने बनाया है? ये तो पदार्थ हैं उनमे स्वय द्रव्यपना है तो वे निरन्तर परिणमते रहते हैं। जैसा योग मिले, जैसा निमित्त मिले उस अनुकूल सभी पदार्थ स्वय ही परिणमते चले जाते हैं। तो पदार्थो मे परिणमने का स्वय स्वभाव है, इन्हे कोई परिणमाता नही। शकाकार जो यह कह रहा है कि महेश्वर की सिसृक्षा कार्य की उत्पत्ति मे कारण है तो सिसृक्षा होने पर तुरन्त कार्य क्यो नही हो जाता? कभी कार्य होते कभी नही होते। तो जो यह समाधान दे रहा था शकाकार कि अन्य सामग्री न मिले तो उत्पत्ति नही होती तो अन्य सामग्री को भी तो सिसृक्षा उत्पन्न कर देगी। दूसरी बात यह है कि सिसृक्षा हुई, सामग्री तो है ही तो एक साथ तीन काल सम्बन्धी पर्याय क्यो नही हो जाती? उनमे क्रम क्यो पडा हुआ है? अगर यह उत्तर दिया जाये कि क्रम से पृथ्वी आदिक कार्यो का ऐसा स्वभाव है कि उत्पत्ति ही इस तरह होती है तो यह बतायें कि अन्य की उत्पत्ति होने मे, अन्य स्थावर आदिक कार्यो की उत्पत्ति मे कारण उनको ही क्यो न मानना चाहिये, यदि शकाकार कहे कि नाना शक्तियाँ ही एक सिसृक्षा मे निमित्तभूत होती हैं तो समस्त क्रम मे होने वाले जो कार्य कारण हैं उनमे किए हुए अनेक शक्तियो रूप एक ही महेश्वर की इच्छा बन जाए। अगर वह इच्छा अन्य इच्छा से निरपेक्ष है तो दुनिया भरके वे सब कार्य अपने आप हो जायें, इसमे महेश्वर की इच्छा लगाने की क्या आवश्यकता है?

वर्णित द्वीप समुद्रादिक की पराकृतता और उसके परिचय से जीवतत्त्व के परिचय मे स्पष्टता—साराश यह है कि किसी भी प्रकार यह सिद्ध नही हो सकता कि इन स्वत सिद्ध समस्त पदार्थो को उत्पन्न करने वाला कोई एक बुद्धिमान ईश्वर है। जितने पदार्थ हैं उनमे स्वय स्वभाव पडा हुआ है कि वे परिणमन करते रहे और यदि विरूद्ध उपाधिया सग मे हैं तो विकृत-परिणमन करते रहेगे, और उपाधि रहित स्थिति है तो स्वभाव परिणमन करते रहेगे, यह सत्तासिद्ध अधिकार है समस्त पदार्थो का। उनकी सत्ता है सो सदा वे परिणमते रहेगे। उन्हे परिणमन करने के लिए किसी अन्य की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं। तो जो हेतु दिया था कि ये द्वीप समुद्र आदिक सभी पदार्थ आकार वाले हैं, इस कारण किसी न किसी एक धीमान का कार्य होना ही चाहिये। जैसे घट-पट आदिक आकार वाले पदार्थ हैं तो इनके करने वाले कुम्हार, कोरी आदिक होते ही हैं, यह हेतु अनैकान्तिक है, मायने आकार किसी के किये हुये पदार्थ मे भी होता और अकृत पदार्थ याने जिसे किसी ने किया ही नही, जो किसी के द्वारा किया ही न जा सके उन पदार्थो मे भी आकार हुआ करता है। तो इस प्रकार कार्यपना या आकार विशेष होना या अचेतन उपादान होना या ठहर-ठहरकर काम होना ये कोई भी कारण इस जगत को किसी एक ने रचा यह सिद्ध करने मे समर्थ नही हैं। इस अध्याय मे मध्यलोक का आकार विशेष रूप से कहा गया है और पहले अधोलोक का भी निर्देश किया गया है। ये सभी के सभी स्वत सिद्ध पदार्थ हैं और अनादि से चले आये हैं, अनन्त काल तक रहेगे। इसमे कहाँ-कहाँ क्या-क्या जीव रहते हैं, इन सबका परिचय होने पर एक जीवतत्त्व क्या है, इसके सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन चौदहवाँ भाग समाप्त हुआ।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

पञ्चदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

देवो के परिचय का प्रारम्भ—मोक्ष शास्त्र ग्रन्थ मे इन संसारी जीवो को मोक्ष प्राप्त हो उसका उपाय बताया गया है। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र कहा गया है। सम्यग्दर्शन के स्वरूप मे कहा गया था कि जीवादिक ७ तत्त्वो का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, और वहाँ जीवादिक ७ तत्त्वो के नाम कहे गए—जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष। उनमे सर्वप्रथम जीव तत्त्व का विवरण किया गया। प्रथम अध्याय मे तो तत्त्व की जानकारी के उपाय बताये गए प्रमाण नय, निक्षेप आदिक। सो यद्यपि प्रमाण नय आदिक ये जीव के ही ज्ञान की लीलाये हैं, इस कारण उपायो मे ही जीव का परिचय मिल गया था। और फिर दूसरे अध्याय मे जीव के लक्षण आदिक के ढग से जीव का परिचय कराया गया था। जीव का सामान्य परिचय पाने के बाद यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि यह जीव रहता कहाँ-कहाँ है। इस जिज्ञासा के समाधान मे लोक का वर्णन शुरू किया गया था और उसमे सर्वप्रथम नारकी जीवो के आवास स्थान अधोलोक मे बताये गये और उस प्रसग मे अधोलोक का वर्णन भी किया गया। नारकियो का परिचय देने के बाद फिर तिर्यञ्चका, तिर्यक् लोक का वर्णन किया गया, और उसमे भी मुख्य है मनुष्य लोक, उसका वर्णन हुआ। तिर्यन्च और मनुष्य इन दोनो का मुख्य आधार मध्यलोक है। सामान्यतया तिर्यन्च तो समग्र लोक मे रहते है, याने एकेन्द्रिय सर्वत्र पाये जाते हैं फिर भी शेष एकेन्द्रिय सकल त्रय पञ्चेन्द्रिय, तिर्यन्च इनकी अपेक्षा तिर्यन्चो का मुख्य आवास मध्यलोक है, मध्यलोक का वर्णन हुआ, मनुष्यो के भेद-प्रभेद का वर्णन हुआ। अब यहाँ प्रसग दिया है देवो का परिचय कराने का। देव कहा रहते है, उनके भवन बताना है तो यहाँ एकदम आवास न बताकर पहले कुछ देवो का परिचय कराया जा रहा है और उस परिचय के प्रारम्भ मे प्रथम सूत्र कह रहे है।

देवाश्चतुर्णिकाया ॥१॥

देवो के चार निकायों का निर्देश—देव चार निकाय वाले हैं अर्थात् देव चार भेदों मे है। उनका निकाय (समूह) चार प्रकार का है। आयु, प्रकृति, आदि की समानता लेकर उन देवो के चार समूह कहे गए है। तो उन समूहो को निकाय कहते हैं। देव शब्द का अर्थ है जो क्रीडा करे, लीला करे, सांसारिक सुखो को भोगे, द्युतिमान हो, वह कहलाता है देव। देव शब्द दिव्यादिगणी दिवि धातु से बना है जिसका अर्थ है कि देवगति नामकर्म का उदय होने पर जो क्रीडा करें, सुख भोगें, द्युतिमान हों

उन्हे देव कहते हैं। यहाँ देवा' शब्द बहुवचन मे बताया गया है जिससे यह जाहिर होता हैं कि भले ही ये देव चार समूहो मे है फिर भी प्रत्येक समूह बहुत प्रकार को विशेपतायें लिये हुये हैं और उनमे अन्तर्गत भेद विशेष होते हैं- इस तरह ये देव चार निकाय वाले हैं, ऐसा कहकर देवो की नाना विशेषताये, विचित्रतायें जाहिर की गई हैं। निकाय शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि निचीयन्ते इति निकाया जो अपने धर्म विशेष से उद्‌भूत होते हैं, सामर्थ्य से जो निचित हो, सचित हो उन्हे निकाय कहते हैं। यहाँ चतुर्णिकाया शब्द मे बहुव्रीहि समास है याने चार हैं निकाय जिनके वे चतुर्निकाया कहलाते हैं। देवो के चार ही निकाय क्यो होते हैं? तो सभी विशेपताओ को एक मुख्य विशेषता मे अन्तर्गत करके ये देव निकाय वाले चार प्रकार के ही कहे जायेंगे। वे चार निकाय हैं भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी और वैमानिक, इन देवो के इस तरह के निकाय चार ही बन सकते हैं। १. २, ३ या ५ नही बन पाते।

चार निकायों मे समस्त देवों का अन्तर्भाव—यहा कोई शकाकार कहता है कि देवो के निकाय तो ८ भी कहे गये हैं, जिनका नाम है ब्राह्म, सौधर्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इस तरह के ८ निकाय कितने ही दार्शनिको के यहा विशेष रूप से बताये गये हैं। समाधान यह है कि जिन आगमो मे ८ प्रकार के निकाय बताये गये हैं उन आगमो मे प्रमाणता नही है। इस विषय मे वर्णन दार्शनिक ग्रन्थो मे विशेष प्रकार से किया गया है कि जो वीतराग सर्वज्ञ देव की ध्वनि से प्रणीत किया गया हो वह ही आगम प्रमाणभूत है, और यह कैसे समझा जाए कि यह सत्य आप्त की परम्परा का उपदेश है तो यह समझा जा सकता है वाणी की निर्दोषता से, जिसमे युक्तियो से बाधा न आये वह वाणी निर्दोष है और ऐसी वाणी ही प्रमाणभूत है। दूसरी बात यह है कि निकाय समूह उस विधि से बनाना चाहिये कि जिसमे कोई देव छूटे नही और एक जाति के देवो का अलग-अलग भेद बनाया जाये नही। जो ८ प्रकार के देव कहे हैं अन्य लौकिक जनो ने उनमे यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच ये तो एक व्यतर जाति मे ही गर्भित हो जाते हैं और शेष भवनवासियो मे गर्भित हो जाते। और ज्योतिषी देवो का इसमे नाम भी नही आया। स्वर्गवासी, कल्पवासी देव भी नही बताये गये तो, ये ८ प्रकार के इस प्रकार के निकाय बनाया जाना यह अव्याप्ति, अतिव्याप्ति आदिक दोषो से रहित प्रक्रिया मे नही है, इस कारण चार निकाय भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये ही समीचीन होते हैं।

नारकियो के सर्वप्रथम आवास बताने की तरह देवों का सर्वप्रथम आवास स्थान न बताने का कारण—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जैसे नारकियो का परिचय देते समय सर्वप्रथम नारकियो के आवास स्थान अधोलोक की ७ भूमियो का वर्णन किया था इसी प्रकार यहा देवो का आधार स्थान पहले क्यो नही बताया जा रहा है? समाधान यह है कि जैसे नारकी जीवो का आधार एक नियत अधोलोक है, मनुष्यो का आधार मानुषोत्तर पर्वत तक मध्य लोक है, उस प्रकार देवो का आधार कोई एक लोक मे नियत नही है, याने प्रसिद्धि तो अर्द्धलोक की है, कुछ देवताओ का आवास स्थान अर्द्ध लोक मे है, मगर समस्त देव अर्द्ध लोक मे ही हो, अन्यत्र न हो ऐसा तो नही है। भवनवासी अधोलोक मे रहते है, व्यन्तर भी रहते हैं और व्यन्तर कुछ तिर्यन्च लोक मे भी रहते हैं, कुछ थोड़े ऊपर आकाश मे रहते हैं। तो प्रतिनियत आधार न होने से प्रथम देवो का आधार स्थान नही बताया गया है और फिर देवो का सामान्य परिचय कराते हुए फिर आधार बताने मे सुविधा आती है, इस

कारण सर्वप्रथम देवो के परिचय मे देवो के समूह की बात यहाँ बतायी गई है। इस सूत्र का अर्थ हुआ कि देव चार प्रकार के होते हैं भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। अब इन निकायो मे क्रमश. पृथक्-पृथक् निकायो की विशेषताये बताने के लिये सूत्र कहा जायेगा, जिसमे सर्वप्रथम बतला रहे हैं कि उनके लेश्या परिणाम किस प्रकार के होते हैं ?

आदितस्त्रिषु पीतान्त लेश्या: ॥२॥

भवनवासी, व्यन्तर व ज्योतिष्क देवों मे लेश्याओ का निरूपण—आदि से लेकर तीन निकायो मे पीतपर्यन्त लेश्यायें होती हैं अर्थात् भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क इन तीन निकायो मे जितने देव है वे पीतपर्यन्त लेश्या वाले हैं। ऊपर चार निकाय के देव बताकर एकदम यहाँ लेश्याओ का कथन करना केवल सक्षेप बनाने के लिए है। देवो मे कहाँ लेश्यायें होती हैं ? इसका प्रसग इसी अध्याय मे कुछ सूत्रो बाद आयेगा, किन्तु यहा न कहकर यदि वहाँ की लेश्याओ को प्रकरण मे यह जिक्र किया जाता तो तीन निकायो मे बताने के कारण सूत्र वहाँ लम्बा कहना पडता है। यहा तो कुछ अनुवृत्ति से, कुछ प्रसग होने से सूत्र सक्षेप मे बन गया है। इस सूत्र मे पीतांतलेश्या यह पद बहुव्रीहि समास मे प्रयुक्त हुआ है, अर्थात पीत पर्यन्त है लेश्या जिसके ऐसे वे देव है।

पूर्व सूत्र से देव और निकाय शब्द की अनुवृत्ति और सूत्रार्थ की सम्पन्नता—इस सूत्र मे देव शब्द की अनुवृत्ति आती है। इससे प्रथम सूत्र मे देव शब्द कहने की आवश्यकता नही है, और त्रिषु का अर्थ है तीन निकायो मे। तो निकाय प्रथम सूत्र मे आया है, वहाँ से निकाय की अनुवृत्ति हो जाती है। अब यहाँ प्रश्न यह होना है कि प्रथम सूत्र मे जो निकाय शब्द लिया है वह इन दो शब्दो से मिलकर बहुव्रीहि समास मे आया है, चतुर्णिकाया अर्थात् चार है, निकाय जिसके, ऐसे हैं। तो एक जब पद है तो उस पद मे से एक शब्द को तोडकर यहा अनुवृत्ति कैसे लग गई है ? अगर इसका समाधान कोई यह दे कि हम चतुर्णिकाया शब्द का समास बहुव्रीहि नही करते और कर्मधारय समास कर लेंगे याने चार निकाय—चत्वारास्ते निकाया और इस तरह समास बन जायेगा, तो दोनो मे हो गया सामान्याधिकरण्य और इस तरह अनुवृत्ति लेने की बात बन जायेगी। इन दोनो शकाओ के समाधान मे यह समझना कि चाहे स्वपदार्थ वाला समास करें चाहे अन्य पदार्थ वाला समास करें, दोनो ही प्रकार के समासो मे निकाय शब्द की अनुवृत्ति हो सकती है और वहा के चतुर्निकाया: पद मे से चत्वार की अनुवृत्ति छूट जायेगी। शकाकार के मन मे यह शका आई थी कि जब चतुर्निकाया: एक पद है तो अनुवृत्ति आयेगी तो उस पूरे पद की आयेगी सो बात नही है। कारण यह है कि जब इस द्वितीय सूत्र मे त्रिषु शब्द लिख दिया है तो तीनो ही निकाय आ गये क्योंकि जिनकी सख्या की जा रही उनके बिना सख्या सम्भव नही होती, इसलिये तीन निकाय का यहा अर्थ होगा और उनमे ये पीत पर्यन्त लेश्याये होती हैं यह बात घटित हो जायेगी। अब देवा. शब्द की जो अनुवृत्ति की गई है उसमे तो किसी भी प्रकार की शका नही है क्योंकि पीतांतलेश्या यह भी समास होने के बाद प्रथमा विभक्ति मे है, और देवा शब्द भी प्रथमा विभक्ति मे है। और निकाय और निकायी इनमे कथचित् अभेद है इसलिये देवा शब्द भी यहा घटित हो जाना बिल्कुल ही सगत है।

सूत्रोक्त शब्दो की सार्थकता—अब यहा कोई शका करता है कि इस सूत्र को यदि इतना ही बना दिया जाये कि त्रिनिकाया: पीतांत लेश्या: याने तीन निकाय वाले देव पीत पर्यन्त लेश्या वाले होते है तो इसमे एक वर्ण की कमी भी हो जाती सूत्र का सक्षेप हो जाता। तो इसका उत्तर देते हैं

कि जो सूत्र कहा गया है वह तो सदेह रहित है, किन्तु शकाकार जो सूत्र उपस्थित कर रहा है उसमे शका और इष्ट का विपर्यय भी हो सकता है। तीन निकाय वाले देव कहने से तीन निकाय तो लिया है। अन्त के तीन तो लिये गये गये तो वह विरूद्ध बात हो जायेगी अतएव "आदितस्त्रिपु" कहना सही है अर्थात पहले के तीन निकाय—भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी, उनमे चार लेश्यायें होती है, एक अक्षर बढा फिर भी सूत्र सक्षिप्त ही रहा। जो अर्थ बताना था उसके मुकाबले तो संक्षेप ही रहा। यहाँ आदित' शब्द देना बहुत आवश्यक है, क्योंकि आदित शब्द न दिया जाये तो उल्टा भी अर्थ हो सकता है, याने अन्त मे जो तीन निकाय हैं उनका अर्थ हो जाता है इसलिए आदित शब्द देना संगत है। त्रिपु शब्द कहना भी सगत है अन्यथा क्या पता होता कि दो निकायो मे बता रहे हैं या एक मे। उस सदेह को दूर करने के लिए त्रिपु शब्द देना बहुत आवश्यक हो गया। ४ का सदेह तो हो ही नही सकता, क्योंकि आदित' शब्द दिया हुआ है अर्थात् शुरू से लेकर। अगर चार ही निकायो मे ये लेश्यायें बतानी होती तो आदित. शब्द क्यो दिया जाता और त्रिपु शब्द भी क्यो दिया जाता ? बता दिया जाता कि पीत पर्यन्त लेश्या वाले है। कुछ तो ऊपर के सूत्र से सभी देवो की अनुवृत्ति हो जाती है। कोई यह भी शका कर सकता कि ऐसा सूत्र बना दिया जाता कि आद्येपु पीतातलेश्या ऐसा सूत्र बना दिया जाता तो इसमे बहुत शब्द कम हो जाते हैं, यहा यह शका युक्त नही है। इसमे तो कुछ अर्थ होना विदित नही होता और बल्कि उल्टा अर्थ लग जाना, आद्यपु का अर्थ होता, अर्थात् आदि के निकाय मे रहने वाले देवो मे ये लेश्यायें हैं तो केवल भवनवासी ही यहा ग्रहण मे आते। तो सदेह दूर करने के लिये यह आदितस्त्रिपु शब्द दिया है। अब पीतातलेश्या शब्द का जो पीतात शब्द हैं वह लेश्याओ का नियम बताने के लिये दिया है। उसमे लेश्याओ के नामो का पाठ इस प्रकार दिया गया है सिद्धान्त शास्त्रो मे कि कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। तो पीतात शब्द देने से कृष्ण से लेकर पीत पर्यन्त सब लेश्यायें आ जाती हैं और पद्म और शुक्ल ये दो लेश्याये यहाँ नही आ पाती। अब प्रसग न होने पर भी सूत्र का लाघव भी दृष्टि मे रखकर तीन निकायो मे लेश्याओ का वर्णन करके अब पुनः प्रथम सूत्र से सम्बन्धित बात चलती है। प्रथम सूत्र मे जो बहुवचन शब्द दिया है, देवा , उस बहुवचन से यह सिद्ध होता है कि देवो के बारे मे बहुत कुछ वर्णन करना शेप है, उनके और भी कई-कई प्रकार हैं, एक-एक निकाय मे अनेक प्रकार भी पाये जाते हैं तो उन प्रकारो का वर्णन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

दशाष्टपञ्चद्वादश भेदा कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥३॥

चार निकायो मे प्रभेद की गणना—कल्पोपपन्न पर्यन्त देव १०, ८, ५ और १२ भेद वाले होते है अर्थात् भवनवासी १० भेद वाले हैं व्यन्तर ८ भेद वाले हैं, ज्योतिषी ५ भेद वाले हैं और कल्पोपपन्न पर्यन्त याने स्वर्ग तक के वैमानिक देव १२ भेद वाले हैं। ये जो भेद किए गए हैं इनकी अपेक्षा इस प्रकार है। भवनवासियो के १० भेद इन्द्रो की अपेक्षा से है, अथवा उनकी जातिया जुदी-जुदी हैं, उनकी प्रक्रिया, उनकी आयु उनका शौक ये सब जुदे-जुदे पाये जाते हैं, इस कारण से भी उनके १० भेद हो जाते हैं, वे आगे बताये जायेंगे, जैसे असुरकुमार आदिक। व्यन्तरो के जो ८ भेद कहे गए हैं वे भी भिन्न-भिन्न जाति के भिन्न-भिन्न रुचि वाले, कौतूहल वाले जो व्यन्तर हैं उनकी कक्षा कर दी गई है, उसके ८ भेद हो जाते है ज्योतिषियो के ५ भेद उनके निकायो और सदृशताओ विभिन्नताओ को निरखकर किया गया है। ये सब भेद आगे आयेंगे। कल्पोपपन्न पर्यन्त अर्थात् १६ स्वर्गों के जो

१२ भेद किए गए है, वे इन्द्रो की अपेक्षा से किये गये हैं। इस तरह चार निकायो मे कल्पोपपन्न पर्यन्त तक के ये भेद है। कल्पोपपन्न का अर्थ केवल स्वर्ग के देवो मे लगाना है। यद्यपि इन्द्र सामानिक आदिक कल्पनायें सभी निकायो मे हैं फिर भी रुढिवश कल्पोपपन्न वैमानिक देवो मे बनाये गये हैं। दूसरी बात यह है कि वैमानिक देव दो प्रकार के है—कल्पोपपन्न और कल्पातीत, सो जहाँ कल्पातीत होते हैं उनमे भी ही कल्पोपपन्न की बात कहना सगत है। पहले के तीन निकायो मे कल्पातीत नही है इसलिए उनमे इन्द्रादिक कल्प, होने पर भो कल्पोपपन्न सज्ञा नही होती। अब जिन कल्पनाओ से कल्पोपपन्न कहा जाता है उन कल्पनाओ का विवरण करते है।

इन्द्रसामानिक त्रायस्त्रिशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीक प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषकाश्चैकश ॥४॥

देव गति मे सभव इन्द्र सामानिक त्रायस्त्रिश, पारिषद आत्मरक्ष व लोकपाल के लक्षण—इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिश, पारिषद्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, किल्वषिक ये १० प्रकार के पद निकायो मे पाये जाते है। इन्द्र किसे कहते हैं ? जो इन्दन करे सो इन्द्र अर्थात् जो परम ऐश्वर्य सहित हो उसे इन्द्र कहते है। जैसे जो ऋद्धिया अन्य देवो मे न पायी जा सके और जो महिमा, महत्त्व अन्य देवो मे न हो ऐसे विशेष परम गुण इन्द्र मे हुआ करते हैं। इन्द्र की आज्ञा उनसे सम्बन्धित सभी देव मानते है। सामानिक किसे कहते हैं ? जो अन्य-अन्य बातो मे तो इन्द्र के समान हो किन्तु आज्ञा, और ऐश्वर्य न पाया जाये उन्हे सामानिक कहते हैं। सामानिक का पद इन्द्र के स्थान के बराबर तो नही है मगर बाहरी सुख, आयु, शक्ति, परिवार, भोगोपभाग ये इन्द्र के समान होते हैं, सामानिक शब्द की व्युत्पत्ति है—समानेभवा सामानिका: इन्द्र की समानता मे होने वाले देवो को सामानिक कहते हैं। त्रायस्त्रिश किन्हे कहते है ? जो त्रयस् त्रिसत (३३) मे होते हो उन्हे त्रायस्त्रिस कहते हैं। ये महान् माने जाते हैं। उनका सभी देव आदर करते हैं। ये दादा, बाबा, पिता, गुरू, उपाध्याय के समान होते हैं। अथवा कहो मन्त्री, पुरोहित के स्थान पर याने इनकी तरह आदर के योग्य माने जाते हैं। त्रायस्त्रिश की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी हो सकती है। त्रयस्त्रिसत् देव ही त्रायस्त्रिश कहलाते हैं। परिषद् किन्हे कहते हैं ? जो परिषद् मे हो उन्हे पारिषद् कहते हैं। इन्द्र के तीन प्रकार की परिषद् (सभायें) होती हैं—(१) अन्तरग परिषद्, (२) मध्यम परिषद् और (३) बाह्य परिषद्। उन परिषदो मे सदस्य के तुल्य जो देव हैं उन्हे पारिषद कहते हैं। अथवा ये मित्र, दोस्त, वयस्क की तरह समझे जाते हैं। आत्मरक्ष किसे कहते हैं ? जो अपने की (इन्द्र की) रक्षा करे सो आत्मरक्ष अग रक्षक की तरह है ये। यद्यपि इन्द्र को आवश्यक नही है कि कोई उनकी रक्षा करे, उन पर कोई उपद्रव नही आता, किन्तु पुण्य की ऐसी महिमा है कि ये सब ठाठ शामिल हो जाते हैं। लोकपाल किसे कहते है। लोकपाल किसे कहते है ? जो लोक का पालन करे वह लोकपाल है। ये लोकपाल कोतवाल आदिक की तरह है। ये इतने पवित्र भाव के होते हैं न्यायप्रिय होते हैं, करुणावान होते है कि इन्द्र की तरह ये भी एक भवावतारी होते है।

देवगति मे सभव अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य व किल्विषिक पदो के लक्षण—अनीक किसे कहते है ? जो सेना की तरह याने सेना के कार्य के तरह विभूति मे शामिल हो वह अनीक कहलाता है। ये ७ सेनायें होती है गधर्व आदिक। जैसे यहाँ कोई पैदल सेना, कोई हाथी पर सवार सेना, कोई घुडसवार सेना, इसी प्रकार वहाँ भी इनकी तरह सेना होती है और एक सेना है चित्त को प्रसन्न करने वाली गधर्व सेना। गायन, नृत्य आदि की वृत्ति रखने वाले। प्रकीर्णक किसे कहते हैं ? जो

प्रकीर्ण हो, फैले हुए हो, जैसे कि राजाओ के पुरवासी प्रीति के हेतु भूत, जनता जिसे कहते हैं, उनकी तरह प्रकीर्णक देव होते हैं। आभियोग्य देव किसे कहते हैं ? जो सेवा आदि भावो से इन्द्रादिक महान देवो के अभिमुख रूप से जो जुडते हैं, जिनका योग होता है, उन्हें आभियोग्य कहते है ? आभियोग्य की उत्पत्ति इस प्रकार है। आभमुखेन योग. अभियोग:। अभियोगे भवा आभियोग्या अर्थात वाहन आदिक बनकर बडे देवो की अभिमुखता से जो जुडे, आयें, सेवा करें उन्हे आभियोग कहते हैं। किल्वषिक किसे कहते हैं ? किल्विष नाम पाप का है। पाप जिनके है उन्हे किल्विप कहते हैं, अर्थात इन १० भेदो वाले देवो मे सर्वाधिक अथवा कहो अन्य मे इतना कोई पाप नही जैसा कि पाप इन किल्विषिक देवो के पाया जाता है। जैसे मनुष्यो मे जो चाडाल आदिक है वे लोगो की निगाह मे ऊँचा स्थान नही पाते और नगर के अन्त मे एक तो इनका आवास बनता है ऐसे ही अन्तेवासियो की तरह इनका स्थान रहता है। इस प्रकार प्रत्येक निकायो मे ये १० प्रकार की कल्पनाए चलती है। वैमानिक निकाय मे केवल स्वर्गो मे ही ये कल्पनाए चलती हैं क्योकि ऊपर के सूत्र मे कल्पोपपन्न शब्द देकर यह जाहिर किया गया था कि १२ भेद कल्पोपपन्न वैमानिको मे ही होते हैं। इस प्रकार जो १० तरह की कल्पनायें हैं उसके कारण उस उस प्रकार का एक पुण्य विशेष का उदय है। यद्यपि देवगति नामक पुण्य कर्म के उदय से इन सबका ही नाम देव है और उसके कारण जो सुख सुविधा होनी चाहिये वह सबमे है फिर भी देवगति के और जो विशेष भेद हैं भवनवासी नाम कर्मादिक जो पुण्य के उदय हैं उनसे वे उस प्रकार निकाय होते है और उनमे भी इन्द्रादिक नामक पुण्य कर्म के विशेष से इन्द्रादिक होते हैं। कर्म केवल ८ ही नही है। उनके उत्तर भेद १४८ हैं और उतने ही नही, प्रत्येक उत्तर प्रकृति मे अनेक प्रकार के प्रभेद पाये जाते है तो जितनी भी विषमता जीवो मे पायी जाती हैं उतनी प्रकार की प्रकृतियाँ हुआ करती हैं इस प्रकार पुण्य के तारतम्य से ये निकाय हुये और ये १० प्रकार की कल्पनायें हुई। अब इस सूत्र मे सभी निकाया मे १० तरह की कल्पनायें कही गई किंतु व्यन्तर और ज्योतिषियो मे १० प्रकार की कल्पनायें न होकर ८ ही हुआ करती हैं। तो वह अपवाद बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का ॥५॥

व्यन्तर और ज्योतिष्क देवो मे विकल्पित पदो का कथन—त्रायस्त्रिश और लोकपाल को छोडकर शेष कल्पना वाले व्यन्तर और ज्योतिषी देव होते हैं। ऊपर के सूत्र मे एक सामान्य रूप से इन्द्रादिक १०, विकल्पो का वर्णन किया था। उस वर्णन से चारो ही निकायो मे दसो कल्पनाओ का प्रसग आता है। लेकिन व्यन्तर और ज्योतिषी इन दो निकायो मे त्रायस्त्रिश और लोकपाल नही हुआ करते। तो यह एक अपवाद सूत्र है, ऐसा अपवाद सूत्र बनाना और पहले सामान्यतया कथन करना जिससे कि अपवाद सूत्र बनाना पडे। ऐसा क्यो किया गया है ? सूत्रो को सक्षिप्त बनाने की यह ही विधि है। अन्य प्रकार वर्णन करने से सूत्रो का विस्तार बन जाता है। व्यन्तर और ज्योतिषियो मे त्रायस्त्रिश और लोकपाल क्यो नही होते कि वहाँ त्रायस्त्रिश और लोकपाल नामक पुण्य विशेष सम्भव नही है, क्योकि उस उस प्रकार का अतिशय विशेष इन दो निकायो मे नही पाया जाता है।

पूर्वयोर्द्वीन्द्रा ॥६॥

भवनवासी निकाय मे प्रत्येक भेद मे दो-दो इन्द्रो का निर्देशन—पूर्व के दो निकायो मे अर्थात भवनवासी और व्यन्तर मे जो देव हैं वे दो-दो इन्द्र वाले हैं अर्थात भवनवासी के १० पद बताये गये

थे, उनमे प्रत्येक मे दो-दो इन्द्र पाये जाते है। व्यन्तरो मे ८ भेद बताये गये थे उनमे प्रत्येक मे दो-दो इन्द्र पाये जाते हैं। अन्य निकायो की तरह कोई इन्द्र दो नही होते हैं। इस सूत्र मे पूर्वयो. शब्द से द्विवचन दिया गया है, जिससे पहले के दो निकाय ही ग्रहण मे आते है। यद्यपि चौथे की अपेक्षा तीसरा पूर्व है। तीसरे की अपेक्षा दूसरा पूर्व है, लेकिन यहाँ द्विवचन है अत' पहले के दो, आदि के दो, यह अर्थ यहाँ प्राप्त हो गया। इनके भेदो मे दो दो इन्द्र पाये जाते है। इससे यह जाहिर होता है कि भवनवासी और व्यन्तर इन दो जाति के निकायो मे पुण्य विशेष नही है जहाँ नेता दो पुरुष हो जाये, दो चला वाले मालिक बन जायें वहाँ प्रभुता न समझना चाहिए। जैसे कि लोक मे भी यदि बहुत नायक हो जाये, बहुत मालिक बन जायें तो वहाँ फिर प्रभुता नही रहती है ऐसे ही यहा जानना कि जब एक एक जाति के भवनवासी मे दो-दो इन्द्र हैं तो प्रभुता विशेष न कहलायगी। अब इन भवनवासियो मे १० भेद कौन से हैं, यह बात अगले सूत्र मे आयगी, फिर भी प्रसगवश यहाँ बतलाते है कि किस जाति मे कौन से दो इन्द्र हुआ करते है ? तो भवनवासी निकाय में असुर कुमार जाति के देवो मे दो इन्द्र होते है जिनका नाम है चमर और वैरोचन। भवनवासी के निकाय मे जो द्वितीय भेद है नाग कुमार उन देवो मे दो इन्द्र होते हैं, जिनका नाम है धरण और भूतानन्द। विद्युत्कुमार जाति के देवो मे हरिसिह और हरिकात ऐसे दो इन्द्र होते हैं। सुपर्ण कुमार जाति के देवो के वेणुदेव और वेणुधारी ये दो इन्द्र होते हैं। अग्नि कुमार जाति के भवनवासियो के अग्नि शिखा और और अग्नि माणव ये दो इन्द्र होते है। वातकुमार जाति के भवनवासियो मे प्रलम्बन और प्रभजन ये दो इन्द्र होते हैं स्तनित कुमार जाति के भवनवासी देवो मे सुघोष और महाघोष, ये दो इन्द्र होते है। उदधि कुमार जाति के भवनवासियो मे जलकात और जलप्रभ ये दो इन्द्र होते हैं। द्वीपकुमार जाति के भवनवासियो मे पूर्ण और वशिष्ट ये दो इन्द्र होते हैं। दिक्कुमार जाति के इन्द्रो मे अमितगति और अमित वाहन ये दो इन्द्र होते हैं। भवनवासियो के ये १० भेद कहे गये। उनके नाम पर भी यह अदाज किया जा सकता है कि इन देवो का सम्बन्ध उस उस लीला मे हुआ करता है। जैसे दिक्कुमार जाति के देव याने दिशाओ पर इनका नाम रखा है। तो इनका कौतूहल और शौक दिशाओ मे तेज गमन करना, दिशावो से सम्बन्धित लीला इनको होती है। जैसे स्तनित कुमार, जिसका दूसरा नाम है मेघ कुमार। इसमे इन्द्र हैं सुघोष और महाघोष। इनकी लीला मेघ सम्बन्धित होती है, ऐसे ये सब कुमारो की तरह याने बालको की तरह इनका रूप और उस तरह की वेशभूषा शौक मे रहना, यह जाति कुमार शब्द से प्रसिद्ध है।

व्यन्तरनिकाय के प्रत्येक भेदो मे दो दो इन्द्रो का निर्देशन—अब दूसरा निकाय है व्यन्तर निकाय। उनमे आठ भेद हुआ करते हैं। प्रत्येक जाति मे दो दो इन्द्र होते है। किन्नर नाम के व्यन्तरो मे किन्नर और किम्पुरुष ये दो इन्द्र होते है। किन्नर शब्द का अर्थ है खोटे मिजाज वाले मनुष्य किंपुरुष है खोटी प्रकृति वाले पुरुष। इन शब्दो से यह अनुमान किया जा सकता है कि देवो की प्रकृति क्या, शौक क्या, इनकी लीला किस प्रकार है ? किंपुरुष नामक व्यन्तरो मे दो इन्द्र हैं। सत्पुरुष और महापुरुष। महोरघग जाति के व्यन्तरो मे अतिकाय और महाकाय नाम के दो इन्द्र हैं। गधर्व जाति के व्यन्तरो मे गीतरति और गीतयश नाम के दो इन्द्र हैं। इन गधर्व जाति के देवो के कुछ गायन का शौक रहा करता है और उनके इन्द्र भी गायन मे रति रखते, गायन से उनका यश माना जाता। यक्ष जाति के व्यन्तरो मे पूर्णभद्र और मणिभद्र नाम के दो इन्द्र हैं। राक्षस जाति के

व्यन्तरो मे भीम और महाभीम ये दो इन्द्र होते है। पिशाच जाति के व्यन्तरो मे काल और महा-काल ये दो इन्द्र होते हैं, भूत जाति के व्यन्तरो मे प्रतिरूप और अप्रतिरूप ये दो इन्द्र होते हैं। इस प्रकार इस जाति के देवो मे एक-एक प्रभु तो है नही। इससे सिद्ध है कि वे अल्प पुण्य वाले इन्द्र हैं।

काय प्रवीचारा आऐशानात् ॥७॥

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क सौधर्म स्वर्ग, ऐशान स्वग के देवो मे प्रवीचार का वर्णन— अव इन देवो मे कामवासना विषयक विवरण वताने के लिए कुछ सूत्र कहेगे, जिसमे प्रथम सूत्र है कि ऐशान स्वर्ग पर्यन्त तक के देव कायप्रवीचार वाले होते हैं अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म, स्वर्ग और ऐशान स्वर्ग, इनमे रहने वाले देव मनुष्यो की भांति कायप्रवीचार वाले हैं। काय नाम है शरीर का और प्रवीचार नाम है प्रविचरण अर्थात् मैथुन उपसेवन। प्रवीचार शब्द मे प्र और वि—ये दो तो उपसर्ग है और चर धातु से कृत् प्रत्यय होकर वि—मे रहने वाली इ को दीर्घकर प्रवी-चार शब्द बनता है। आगे शब्द दिया है ऐशान। यहाँ कोई ऐसी शका कर सकता है कि इसमे भी सधि कर दी जाये तो अ-अलग न कहना पडेगा, ऐशानात् इतना ही शब्द हो जायेगा, क्योकि अ और ऐ मिलकर वृद्धि हो सकती है। समाधान इसका यह है कि प्रथम तो व्याकरण मे अ शब्द के बाद रहने वाले स्वर से सधि का विकल्प है इसलिये सधि नही हुई। दूसरी बात यह है कि केवल ऐशानात् शब्द रहने पर उससे प्रकृत अर्थ स्पष्ट नही होता। कोई ऐसा ही समझते कि ऐशान दिशा तक काय-प्रवीचार होता है। ऐशान दिशा का भी नाम है और सधि न करने से अ लिखा जाने से स्पष्ट अर्थ हो जाता है कि ऐशान स्वर्ग तक के देवो तक कायप्रवीचार होता है। यहाँ अ शब्द सीमा को बता रहा कि ऐशान तक के देव कायप्रवीचार होते हैं। इस सूत्र मे अ ऐशानात् ऐसा सीमावाचक शब्द लिखने से यह भाव ध्वनित होता है कि केवल इस सूत्र मे यह ही नही बताना है कि वैमानिक जाति के निकायो मे समस्त देवो मे कायप्रवीचार का प्रसग आता। उसकी निवृत्ति के लिए अऐशानात् शब्द दिया। इतना ही नही, यह तो है ही। अर्थात् स्वर्ग के सब देवो मे कायप्रवीचार नही होता, लेकिन इसके साथ यह भी समझना कि सूत्र मे अ ऐशानात् शब्द देने से चारो ही निकायो मे सुख का अन्तर विदित होता है। वैसे तो ऊपर-ऊपर के स्वर्ग वाले देव नीचे के स्वर्ग वाले देवो से अधिक सुखी कहे गये हैं, यही बात यहाँ भी स्पष्ट होती कि ऊपर स्वर्ग के देव कोई स्पर्श मात्र से तृप्त होते, कोई रूप देखकर तृप्त होते, कोई मन से विचार कर ही तृप्त होते, शरीर से प्रवीचार नही करते। इससे यह सिद्ध है कि जहाँ-जहा कायप्रवीचार है और इस तरह उपसेवन है वहाँ दु ख विशेष है। तो यहा भी यह अऐशानात् शब्द देने से ध्वनित होता है।

शेषा स्पर्श शब्दरूपमन प्रवीचारा ॥८॥

प्रथम कल्प से ऊपर के स्वर्गों के देवो मे प्रवीचार का तारतम्य—शेष के देव स्पर्श प्रवीचार रूप प्रवीचार शब्द प्रवीचार और मन प्रवीचार वाले हैं। शेष मे ये सभी वैमानिक न लेना किन्तु कल्पो-पन्न का प्रकरण है तो १६ सोलह स्वर्ग तक के देव ही यहाँ शेष शब्द से लेना है, और, आगे सूत्र कहा जायेगा कि १६ स्वर्गों से ऊपर के देव याने ग्रैवयक अनुदिश अनुत्तर विमानो मे रहने वाले देव प्रवी-चार रहित हैं, उससे भी यह ध्वनित है कि यह ८ वां सूत्र १६ स्वर्ग तक के शेष के देवो के लिए कहा गया है। तो सनत् कुमार नामक तीसरे स्वर्ग के देवो से लेकर कल्पोपपन्न तक मायने १६वें स्वर्ग तक के देव इन-इन प्रकारो से प्रवीचार वाले हैं। अब शेष के कहने से तीसरे स्वर्ग से लेकर १६वें

स्वर्ग तक के देव आये। अब उनमे भी यह विभाग जानना चाहिए कि किस स्वर्ग के देव किस प्रकार के प्रवीचार मे हैं, कौन से किस प्रकार है। तो यह बात आगम के अनुसार समझना और उससे ही अनुमान करना कि जैसे-जैसे ऊपर के देव सुखी कहे गये है, तो उनका यह अनुमान हुआ कि ऊपर पाप का तारतम्य है अर्थात् कम-कम पाप का उदय है। चारित्र मोह विषय इच्छा ये तो सब पाप की ही चीजें हैं। तो ऊपर-ऊपर के देव कम-कम पाप वाले है। काम का उदय पाप ही तो कहलाता। तो चारित्र मोह की दृष्टि से ऊपर-ऊपर के स्वर्गों के देव स्वय ही प्रकृत्या अल्प पाप और विशेष सुख वाले होते हैं।

तृतीय स्वर्ग से लेकर १६वें स्वर्ग तक के देवो से प्रवीचार प्रक्रिया का विवरण—अब उनमे कौन-कौन से प्रवीचार हैं उस विषय मे शेष के १४ स्वर्गो की बात कह रहे हैं। तीसरे और चौथे स्वर्ग के देव स्पर्श प्रवीचार वाले हैं। उन देवो को विषय सुख की इच्छा हुई कि यहाँ उपस्थित अपनी देवी के शरीर का स्पर्श किया और इतने मात्र से उनकी इच्छा दूर होती है अतएव वे स्पर्श प्रवीचार वाले कहलाते है। ५वें, ६ठें, ७वें ८वें स्वर्ग के देव रूप प्रवीचार वाले हैं। ये देव अपनी देवी के मनोज्ञ रूप के देखने मात्र से इच्छा रहित हो जाते और उनमे अतिशय प्रीति उत्पन्न हो जाती, अतएव वे रूप प्रवीचार वाले हैं। ९वें, १०वें, ११वें, १२वें स्वर्ग के देव शब्द प्रवीचार वाले हैं, अपनी देवी के मनोज्ञ शब्दो के श्रवण मात्र से ही सन्तोष उत्पन्न होता है अतएव वे शब्द प्रवीचार वाले हैं। १३वें, १४वें, १५वें, १६वें स्वर्ग के देव मन प्रवीचार वाले है, अपनी देवियो का मन से चिन्तन ही किया, इतने मात्र से ही उन्हे सुख का अनुभव हो जाता है। इस प्रकार इन देवो मे उत्तरोत्तर इच्छा, विषय, तृष्णा कम-कम पायी जाती है, जिसके कारण ये पहले-पहले के स्वर्गों से ऊपर-ऊपर के स्वर्ग वाले देव अधिक सुखी कहे जाते हैं।

परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

कल्पातीत अर्थात् अहमिन्द्रो की अप्रवीचारता—ऊपर के देव प्रवीचार रहित होते हैं, परे शब्द से कल्पातीत समस्त देवो का ग्रहण करना है अर्थात् स्वर्गो से ऊपर के जो और स्थान हैं वैमानिको के जैसे वैकुण्ठ याने ग्रैवयक तथा अनुदिश और अनुत्तर इनमे रहने वाले देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। इनके देवियाँ नही होती। ये प्रवीचार रहित हैं, एक स्वर्ग से भी अधिक सुखमय इनका जीवन व्यतीत होता है। ये सब अप्रवीचार हैं। अप्रवीचारपना होने से इनको अधिक सुख है, यह विज्ञात होता है। ये मन प्रवीचार वाले भी नही हैं। मन मे विशेष इच्छा हुई कि यह एक राग है, दुःख है, इससे परे यह कल्पातीत समस्त देव प्रवीचार रहित है। यहा कोई ऐसी आशका करता है कि हम तो यह ही मानेंगे कि जितने भी देव हैं वे सब कामवेदना के वशीभूत हैं क्योंकि शरीर सहित हैं। जैसे यहाँ प्रसिद्ध कामी पुरुष शरीर सहित है तो कामवेदना से भी आक्रान्त है। इसके समाधान मे कहते है कि कामवेदना का पाप और शरीर का मिलना इन दोनो मे नियम नही है कि जिन-जिनके शरीर हो, उन-उनके कामवेदना का पाप हो ही हो। यहा भी तो अनेक मनुष्य ऐसे देखे जाते हैं कि कोई काम विकार वाले है, कोई मद, कोई अत्यन्त मद काम विकार वाले हैं, और ऐसा भी नही है कि काम वेदना न हो तो शरीर मे हानि हो जाये। और जिसके समस्त पाप दूर हो गये है ऐसे अरहत के भी तो शरीर है, वह तो निष्काम हैं। तो कामोपना सिद्ध करने के लिये शरीर हेतु देना असंगत है। इसी तरह कोई कहे कि सभी देव कामवेदना के वश हैं क्योंकि वे हैं प्रमेय हैं आदिक हेतु भी सब

अनुचित है। यह हेतु कामवेदना को सिद्ध करने मे समर्थ नही और जिन-जिन देवो को अतिशय सुख होता है वे प्रवीचार रहित होते हैं तब ही शान्त सुखी और सन्तुष्ट हुआ करते है।

चतुर्थ अध्याय के प्रथम ९ सूत्रों मे अन्य योगव्यवच्छद का दिग्दर्शन—यहाँ तक ९ सूत्रो के द्वारा प्रसग मे कही गई बातो से भिन्न बातो का निराकरण किया गया समझना चाहिये। जैसे पहला सूत्र कहा कि देव चार निकाय वाले हैं। वहाँ यह व्यवच्छेद करना कि न तीन निकाय वाले हैं, न ५ आदि निकाय वाले हैं। द्वितीय सूत्र मे कहा कि आदि से लेकर तीन निकायो मे पीत पर्यन्त लेश्या है, उसका यह अन्य योग व्यवच्छेद करना कि यहाँ अन्य लेश्यायें नही पायी जाती। तीसरे सूत्र मे बताया है कि कल्पोपपन्न तक १०, – ८,–५,—१२ भेद वाले देव हैं। तो इससे अन्य सख्या का निषेध हो जाता। चतुर्थ सूत्र ने १० प्रकार की कल्पनायें बतायी हैं। उससे यह निराकृत होता है कि वहाँ अन्य कल्प नही है। ५वें सूत्र मे व्यन्तर और ज्योतिषियो मे त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नही है। ऐसा अपवाद बताया है, उससे यह अर्थ लेना कि इसके अतिरिक्त और अपवाद नही है। छठ सूत्र मे इन्द्रो की सख्यायें बतायी हैं। उससे यह प्रसिद्ध करना कि अन्य प्रकार से इन्द्र सख्यायें नही हैं। ७वें और ८वें सूत्र मे प्रवीचार के प्रकार बताये गये हैं, उनसे यह समझना कि वहाँ और प्रकार के अनिष्ट प्रवीचार नही हैं। ९वें सूत्र मे कल्पातीतो को प्रवीचार रहित कहा है, उससे यह जानना कि इनमे प्रवीचार का अश भी नही है। इस प्रकार चार निकाय के देवो का ऐसा सामान्यतया वर्णन किया। अब उनके भेद विशेष का वर्णन करेंगे।

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमारा ॥१०॥

भवनवासी देव १० प्रकार के होते हैं वे दस प्रकार इस सूत्र मे कहे गये हैं—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिग्कुमार। भवनवासी शब्द का व्युत्पत्य, अर्थ यह है कि भवनो मे बसें, इस प्रकार के जो देव हैं—वे भवनवासी कहलाते हैं। भवनवासी यह प्रथम निकाय की सामान्य सज्ञा है। यद्यपि व्यन्तर भी भवनो मे रहते है तो भी कुछ व्यन्तरो के आवास तिर्यक् लोक मे द्वीप तट जीर्ण महल हैं व आकाश मे भी कही बसा करते हैं, इस कारण भवनवासी शब्द की रूढि व्यन्तरो मे न कहकर प्रथम निकाय के देवो मे ही प्रसिद्ध है। ये १० प्रकार के होते हैं जिनमे प्रथम प्रकार है असुरकुमार। देवगति नामकर्म का उदय सबके सामान्यतया है और उनमे भी भवनवासी नामकर्म का उदय प्रथम निकाय मे है और इसके असुरकुमार नामकर्म का उदय है, असुर शब्द का अर्थ तो यद्यपि शब्द मे यह है कि युद्ध मे देवो के साथ जो प्रहार करे तो असुर, लेकिन यह घटना सत्य नही है, क्योकि देव, सौधर्म इन्द्र ये भी बडे वैभवशाली देव है, यहाँ युद्ध की बात है क्या? दूसरा कोई बैर का कारण नही है। वैक्रियक शरीर वाले है। लेकिन ये देव प्राय नरक भूमि मे जाकर नारकियो को भिडाते है, उस कौतूहल से सन्तुष्ट होते हैं, इस कारण इनका असुर नाम प्रसिद्ध हुआ है। ये सभी कुमार एक समान अवस्था के स्वभाव वाले है। कुमार काल की अवस्था मे जैसी प्रकृति होती है उस प्रकार की प्रकृति वाले हैं, और विक्रिया वाले कुमार की तरह उद्धत भेष याने कई नवीन-नवीन भेष बनाना, नई-नई भाषाओ को रचना, नये-नये आभरण, नये-नये शस्त्र, नये-नये आवरण, नये-नये वाहन आदिक का शौक होना याने कुमार मनुष्यो की तरह कौतूहल प्रिय होते है। रागादिक क्रीडा मे इनको प्रेम होता है इस कारण से इन सबको कुमार शब्द से कहते हैं। ये सब भवनवासी रहते कहाँ है? जहाँ हम

आप चला करते है, रहते हैं, यह एक रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी का ऊपरी भाग है। इसके नीचे-नीचे तीन विभागो के अन्दर खरभाग, पक भाग, अव्वहुल भाग है। तो अव्वहुल भाग मे तो नारकी जीव रहते है, खर भाग और पकभाग मे ये भवनवासी देव रहते हैं। यहाँ इनके बडे अच्छे मनोज्ञ अकृत्रिम भवन बने हुये है जिनमे जिन चैत्यालय भी अकृत्रिम हैं। इन दो भागो मे भवनवासियो का निवास इस जगह ठीक हम आपके नीचे नही है किन्तु यहां से असख्यात द्वीप समुद्रो को पारकर वहाँ के नीचे खर भाग है उसमे तो असुर कुमार को छोड कर बाकी सब भवनवासी देव रहते हैं और जो पकबहुल भाग है, दूसरा भाग वहा असुर कुमार के भवन हैं।

असुर कुमार नामक भवनवासी इन्द्रो का परिकर—असर कुमार के चमरनामक इन्द्र के ३४ लाख भवन है। ६४ हजार सामानिक देव है। (३३ त्रायस्त्रिश) मन्त्री पुरोहित जैसे हैं, ३ सभायें है, ७ सेनायें है, ४ लोकपाल है, ५ मुख्य देवियाँ पटट रानिया हैं। ४६४ हजार आत्मरक्ष है। इतना वैभव परिवार इस चमर इन्द्र का है—जो दिव्य भोगो को भोगता है। यह चमर इन्द्र दक्षिण दिशा का अधिपति है इसी तरह उत्तर दिशा मे असुर कुमार का दूसरा इन्द्र बैरोचन है, उसके ३० लाख भवन है, ६४ हजार सामानिक देव हैं, ३३ त्रायस्त्रिश मन्त्री आदि है, ३ सभायें, ७ सेनाये, ४ लोकपाल और ५ मुख्य रानिया, ४६४ हजार आत्मरक्ष हैं, इतना वैभव परिवार इस उत्तराधिपति बैरोचन इन्द्र का है। वह भी बहुत काल दिव्य भोगो को भोगता है। तो यो भवनवासियो मे से असुर कुमार का आवास इस दूसरे भाग मे है और खर भाग मे शेष के ६ कुमार है।

नागकुमार आदि शेष ८ भवनवासियो के इन्द्रो का परिकर—इस रत्नप्रभा का जो खर भाग है उसके ऊपर और नीचे का एक-एक हजार योजन छोडकर और इस जम्बूद्वीप से असख्यात द्वीप समुद्र के बाद वहाँ नीचे नागकुमार के इन्द्र धरणेन्द्र के ३४ लाख भवन है, ६० हजार सामानिक देव हैं, ३३ मन्त्री पुरोहित हैं, ३ सभाये, ७ सेनायें, ४ लोकपाल और ६ पट्ट देवियाँ हैं। ६ हजार आत्मरक्ष है। इसी प्रकार दूसरी ओर नागकुमार के इन्द्र के ४० लाख भवन हैं। बाकी और सब परिवार आदिक धरणेन्द्र की तरह पाये जाते हैं। इस तरह नाग कुमार के कुल ८४ लाख भवन है, सुवर्ण कुमार के ७२ लाख भवन हैं, इसके भी दो इन्द्र है जिसमे दक्षिणाधिपति वेणु देव इन्द्र के ३२ लाख भवन हैं, बाकी वैभव धरणेन्द्र की तरह है। इन सुवर्ण कुमारो के वेणुधारी इन्द्र के जो उत्तराधिपति हैं, उसके ३४ लाख भवन हैं। शेष बाते धरणेन्द्र की तरह है। विद्युत्कुमार, अग्नि कुमार, स्तनित कुमार, उदधि कुमार, द्वीप कुमार, दिक्कुमार, इन छहो के भी प्रत्येक के ७६ लाख भवन हैं। उनमे भी जो दक्षिणेन्द्र हैं उनके प्रत्येक के ४० लाख भवन हैं और जो उत्तरेन्द्र हैं, दूसरे-दूसरे इन्द्र है, उनके प्रत्येक के ३६ लाख भवन हैं। वातकुमार नामक भवनवासियो के ९६ लाख भवन है, उनमे वेलम्ब इन्द्र के जो दक्षिण दिशा का इन्द्र है, उसके ५० लाख भवन है और उत्तर दिशा के प्रभजन इन्द्र के ४६ लाख भवन है। शेष सब परिवार आदिक धरणेन्द्र की तरह है, तो ये भवनवासियो के ९ कुमार खर भाग मे रहते है और ये सब मिलकर भवन ७ करोड ७२ लाख हैं। इस तरह बडे मनोज्ञ भवनो मे रहने के कारण इस प्रथम निकाय मे देवो का नाम भवनवासी कहा गया है। ये पहले के तीन निकाय खोटे देव कहलाते हैं। सम्यग्दर्शन सहित मरण हो तो जीव इन तीन प्रकार के देवो मे उत्पन्न नही होता। ये देव भले ही सम्यक्त्व उत्पन्न कर ले मगर सम्यक्त्व मे मरण किये

हुये मनुष्य का जन्म तो स्वर्गवासी अथवा कल्पातीत देवो मे होगा। इन तीन खोटे देवो मे सम्यग्-दृष्टि उत्पन्न नही होते।

व्यन्तरा किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचा ॥१०॥

व्यन्तर निकाय के देवों के भेदों का वर्णन—व्यन्तर नामक दूसरे निकाय के ८ भेद हैं—किन्नर, किम्पुरुष, महोरघ, गधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। व्यन्तर नाम इस कारण सार्थक है कि व्यन्तर देव सभी के सभी भवनवासियो की तरह एक ठौर पर नही रहते। कोई भवनो मे रहते तो कोई द्वीप समुद्र के तटो पर रहते, कोई आकाश मे ऊपर रहते, कोई टूटे-फूटे पेड महल आदिक मे रहते। कोई कुछ ऊपर आकाश मे रहते। यो नाना दशान्तर जिनका निवास है। उन्हे व्यन्तर कहते है। वि अन्तर, विविध अन्तर मे जिनका निवास है वे व्यन्तर कहलाते हैं। यह व्यन्तर नाम सामान्य सज्ञा है। और यह व्यन्तर नामकर्म के उदय से जो कि देवगति नामकर्म का भेद है उसके उदय से ये व्यन्तर निकाय मे उत्पन्न होते हैं, इनके दो भेद हैं, सो उन व्यन्तरो मे भी किन्नर नामकर्म का उदय, किम्पुरुष नामकर्म का उदय ऐसे ही सभी भिन्न-भिन्न नामकर्म के उदय से ये ८ विकल्प हो जाते हैं। इनके जो नाम दिये गये हैं उनका जो अर्थ है, ठीक उसी अर्थ मे ये रहते हो सो बात नही है, किन्तु उस प्रकार के इनमे कौतूहल है। जैसे किन्नर का अर्थ है कि जो खोटे मनुष्यो को चाहे उन्हे किन्नर कहते हैं। जो खोटे मनुष्यो को चाहे वे किम्पुरुष। पिशित मायने मास, उसका जो भोजन करे पिशाच अर्थ तो इसका ऐसा है, मगर कोई भी देव मास नही खाते। वे तो मानसिक आहार वाले हैं। उनके कठ से अमृत झरता है। यह तो यहा लोक मे जो रूढि हैं कि अमुक देव को मास चढाओ, वह खायेगा, तो जो मांस भक्षी लोग हैं वे यह सोचकर कि इसमे हमे कोई बुरा भी न कहेगा धर्म के नाम पर मास खाने से और विषयो की पुष्टि भी होगी, इस तरह रूढि चलती है। कोई भी देवी-देवता जो तुच्छ से तुच्छ हो, वह मास नही खाता, लेकिन किसी-किसी पिशाच मे जहा मास मदिरा हो उसमे कौतूहल उत्पन्न होता है तो वे केवल उस खेल के निमित्त से ऐसा करते हैं, पर आहार नही करते। उन व्यन्तरो के आवास स्थान कहा-कहा हैं यह बात कहते हैं।

व्यन्तर निकाय के इन्द्रों का परिकर—इस जम्बूद्वीप से तिरछ दक्षिण दिशा मे असख्यात द्वीप समुद्र उल्लघ कर वहा से नीचे खर भाग मे किन्नर जाति के किन्नर इन्द्र के असख्यात हजार नगर है और उस इन्द्र के चार हजार सामानिक हैं, तीन सभायें हैं, ७ सेनाय हैं, चार अग्र देवियां हैं, १६ हजार आत्मरक्ष हैं। ये किन्नरेन्द्र दक्षिण दिशा मे रहते हैं, इसी तरह जम्बूद्वीप से उत्तर दिशा मे बहुत असख्यात द्वीप समुद्रो को छोडकर वहा से नीचे खर भाग मे किम्पुरुष इन्द्र है। इनका वैभव परिवार किन्नर इन्द्र की तरह है, इस प्रकार बाकी के ६ दक्षिणेन्द्रो का याने राक्षस को छोडकर बाकी के बचे हुए ६ दक्षिणेन्द्रो का दक्षिण दिशा मे आवास है जिसके नाम हैं सत्पुरुष, अतिकाय, गीतरति, पूर्णभद्र, प्रतिरूप और काल। इसी प्रकार उत्तर दिशा मे उत्तरेन्द्रो का इन्ही जाति के ६ इन्द्रों का आवास है। जिनके नाम हैं—महापुरुष, महाकाय, गीतयश, मणिभद्र, अप्रतिरूप और महा-काल। इन व्यन्तरो मे से राक्षस जाति के व्यन्तरो के आवास ही कहने मे रह गये। उनका आवास इस प्रकार है कि जो राक्षसो का भीम नाम का दक्षिणेन्द्र है उसके पक बहुल भाग मे अर्थात् तीसरे मे असख्यात नगर हैं और उत्तर दिशा मे महाभीम नामक राक्षसेन्द्र को उस ही पक भाग मे असख्यात लाख नगर हैं। इन सभी व्यन्तरो के सामानिक आदिक परिवार बराबर-बराबर हैं। इसके अतिरिक्त

इस भूमि के तल पर भी द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, ग्राम, नगर, तिराहा, चौराहा, आगन, रास्ता, सरोवर, बगीचा, मन्दिर आदिक असख्यात लाख आवास है। इस तरह नाना प्रकार के देशान्तरो मे आवास होने के कारण ये सब व्यन्तर कहलाते है। व्यन्तर निकायो का भी जो शेष वर्णन है वह आगे आयगा। अब क्रम प्राप्त ज्योतिष्क नामक देव निकाय का वर्णन करते हैं।

ज्योतिष्का सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णक तारकाश्च ॥१२॥

ज्योतिष्क देवो के भेदो का वर्णन—ज्योतिष्क देव ५ प्रकार के होते है—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा। ज्योतिष्क शब्द का अर्थ है—जो ज्योति स्वभाव वाले हैं, प्रकाश स्वभाव वाले है उन्हे कहते हैं ज्योतिष्क। ये देव जिन विमानो मे रहते है वे विमान ज्योति स्वभाव वाले हैं और फिर उन देवो का भी कुछ ज्योति स्वरूप होता है। यहा मूल शब्द है ज्योति। इस शब्द से क प्रत्यय हो जाता है जो तद्धित मे स्वार्थ मे ही होता है अर्थात उससे अर्थ नही बदलता। इस प्रकार ज्योतिष्क शब्द की निष्पत्ति होती है यहा यह खास बात जानना कि ज्योति शब्द तो नपु सक लिङ्ग है परन्तु क प्रत्यय होने के बाद पु लिङ्ग मे रूप दिया है। और इसका कारण यह है कि यह देव का विशेषण है अतएव लिंग परिवर्तन हो गया है। देव शब्द पु लिंग मे है तो ज्योतिष्क शब्द भी पु लिंग मे है। ज्योतिष्क नामक देवगति नामकर्म के उदय से ये ज्योतिष्क देव होते हैं और उनमे भी सूर्य नामक नामकर्म के उदय से सूर्य हुए। इसी प्रकार सबमे लगाना ये सब नाम कर्म देवगति नामकर्म के अन्तर्गत है।

सूत्र मे ज्योतिष्क देवो के नामों का क्रम रखने का कारण—सूर्याचन्द्रमसौ यह पद अलग कह कर सूर्य और चन्द्रमा की प्रधानता बतायी है, इसका प्रभाव विशेष है। ये इन्द्र प्रतीन्द्र हैं, इनके विभव विशेष है। बल्कि ग्रह, नक्षत्र आदिक ये सब इन्ही के आधीन हैं। ऐसा प्रभाव होने से सूर्य और चन्द्रमा इनको अलग बताया है। इससे चन्द्रमा तो इन्द्र है और सूर्य प्रतीन्द्र है। सूर्य और चन्द्रमा इन दो शब्दो का द्वन्द्व समास हो जाने से यहाँ आनय् प्रत्यय हुआ है और सूर्य शब्द को दीर्घ कर दिया गया है। सूर्य और चन्द्रमा इन दो मे से सूर्य शब्द का प्रथम ग्रहण किया है, क्योकि सूर्य शब्द मे थोडे स्वर हैं। दूसरी बात—प्रकाश की अधिकता सूर्य विमान मे है। यद्यपि चन्द्रमा इन्द्र है और सूर्य प्रतीन्द्र है तो भी लौकिकपुरुषो को देखने मे सूर्य ही एक प्रभावककातिमान मालूम होता है और मुख्य बात यह है कि सूर्य शब्द मे स्वर कम हैं चन्द्रमा शब्द मे स्वर ज्यादह हैं, इस कारण सूर्य शब्द का प्रथम ग्रहण किया गया। ग्रह, नक्षत्र और तारका इनमे भी यही विधि है। ग्रह मे दो ही स्वर है। सबसे कम स्वर हैं और सबकी अपेक्षा कुछ प्रभावक हैं। इस कारण ग्रह का ग्रहण इन तीन मे सबसे पहले किया गया है। अब नक्षत्र और तारका इनमे नक्षत्र विशेष महनीय हैं। इस कारण से नक्षत्र का पहले प्रयोग किया गया है।

ज्योतिष्क देवो के आवासों का विवरण—सूत्र मे बताया गया है कि ज्योतिष्क देव ५ प्रकार के होते हैं। इन सबका निवास कहाँ पर है सो बताते है। यह जो भूमि है, रत्नप्रभा का ऊपरी हिस्सा इस समान भूमि भाग से ऊपर ७९० योजन ऊपरज्योतिष्को का निवास शुरू होता है। उनमे सबसे पहले तारा विचरण करते हैं। तारकाओ से ऊपर १० योजन उठकर सूर्य परिभ्रमण करता है, याने इस भूमि से ७८० योजन ऊपर सूर्य परिभ्रमण करता है और वहाँ से ८० योजन और ऊपर उठकर चन्द्रमा भ्रमण करता है याने इस भूमि से ८६० योजन ऊपर चन्द्रमा परिभ्रमण करता है। एक

है। तो प्रत्यक्ष से तो यह प्रतीति नही होती कि पृथ्वी भ्रमण कर रही है। अनुमान से भी यह निर्णय नही किया जा सकता कि पृथ्वी भ्रमण करती है क्योकि पृथ्वी भ्रमण करने की सिद्धि करने वाला कोई अविनाभावी साधन नही है। किसी बात की सिद्धि करना हो तो हेतु से ही तो होगी। जैसे यहाँ अग्नि है धूम होने से तो अग्नि का अविनाभावी लिङ्ग है। धूम, याने अग्नि न हो तो धूम नही हो सकता। तो जब ऐसा हेतु देखा जो साध्य का अविनाभावी है तो वह साध्य को सिद्ध कर देगा। तो इसी तरह कोई भी हेतु न मिलेगा जो इस भ्रमण को सिद्ध कर दे। कोई भी हेतु देंगे वे सब प्रमाण से बाधित होगे। यो तो कोई कहने लगे—अग्नि को कि अग्नि ठडी होती है—द्रव्य होने से, जैसे जल। जल द्रव्य है और ठण्डा है। तो अग्नि भी द्रव्य है सो ठडी होनी चाहिए। यह तो प्रमाण बाधित है ना? हाथ से छूकर देख लो अग्नि ठडी होती है कि गरम। तो ऐसे ही पृथ्वी का भ्रमण सिद्ध होने मे जो भी हेतु दिया जाएगा वह सब प्रमाण बाधित होगा। सूर्य का उदय होता, सूर्य का अस्त होता इसे भू भ्रमणवादी यो सिद्ध करते हैं कि सूर्य तो स्थिर है और जोर जमीन गोल चल रही है तो जमीन का चक्र पूरा हो गया तो उसमे उदय अस्त लगने लगता, लेकिन यह ध्यान नही देते कि जो सुगमतया सिद्ध है कि यह ज्योतिष्क विमान भ्रमण कर रहा है और पृथ्वी भ्रमण नही करती तो पृथ्वो के भ्रमण हुए बिना भी तो सूर्य के गमन से उदय-अस्त सिद्ध हो जाता है। तो उससे साध्य का अविनाभावी नियम न बन सका। तो प्रकरण यहा ज्योतिष्क विमानो की नित्य गति का था, उसमे यह शका आई कि ज्योतिष्क गमन नही करते, क्योकि भू भ्रमण करती है। उसके उत्तर मे सक्षेप से कहा है। पृथ्वो परिभ्रमण नही करती। इसका विस्तार तृतीय अध्याय के पहले सूत्र मे कर दिया गया है। हाँ तो यहाँ यह सिद्ध हुआ कि यहाँ मनुष्य लोक मे सूर्य, चन्द्र आदिक नित्य गमन करते हैं। कभी गमन करें, कभी न गमन करें ऐसा नहीं है। नित्य शब्द का अर्थ निरन्तर कहा गया है।

ज्योतिष्को की भूमि के ऊपर नीचे के क्रम से भ्रमण की असिद्धि—अब यहाँ पृथ्वी को गोल और घूमना मानने वाले शका करते हैं कि मान लो कुछ ज्योतिषियो का भ्रमण है ध्रुव ताराओ को छोडकर तो बाकी सब ज्योतिषियो का ऊपर नीचे भ्रमण होता है, वह भू भाग से हो ऊपर नीचे भ्रमण होता है। ऐसी शका का निवारण नृलोक शब्द से हो गया अर्थात् मनुष्यलोक मे ही ये ज्योतिष्क विमान भ्रमण करते हैं और ऊपर नीचे भ्रमण करने पर मनुष्य लोक मे भ्रमण हो यह बात बनती नही, क्योकि ज्योतिषियो का समूह घनोदधि पर्यन्त फैला हुआ है, याने इन समस्त तीनो लोको को जो वायु सम्हाले हुये हैं वह तीन प्रकार की वायु उसमे प्रथम ही प्रथम जो घनोदधि वात है उस वातवलय तक याने उसके किनारे तक ज्योतिषियो के विमान फैले हुए हैं। अगर ये विमान ऊपर-नीचे भ्रमण करें तो कितनी पृथ्वियो का विदारण होना पडेगा। अब यहाँ शकाकार कहता है कि यह प्रसग नही आए इसी कारण तो इसका ११२० योजन भूगोल का विस्तार माना है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यह कथन युक्त नही है, क्योकि इसके उत्तर दिशा मे पृथ्वी मण्डल की म्याद यह बन ही नही सकती, क्योकि इससे अधिक उत्तर तरफ भूमि का परिमाण है, वैज्ञानिक भी अन्दाज करते हैं और आगम से भी यह सिद्ध है कि जो जम्बूद्वीप की भूमि है सो यहा भरत क्षेत्र मे दक्षिण की ओर उसका किनारा है जहा म्लेच्छ खण्ड है और उनके बीच आर्य खण्ड हैं। आर्य खण्ड से ही लवण समुद्र की वेदी का स्पर्श है, तो दक्षिण तरफ तो इस जम्बूद्वीप की भूमि का

अन्त आ सकता है और जल ही जल मिलेगा, किन्तु उत्तर की ओर तो यह कुछ ही कम एक लाख योजन भूमि पडी हुई है।

पृथ्वी की गेद की तरह गोल होने की असिद्धि—अब दूसरी बात सोचिये कि यदि यह मानें कि पृथ्वी गेद की तरह गोल है तो यह मानने पर गगा, सिंधु आदिक नदियाँ पूर्व और पश्चिम समुद्र मे गमन करने वाली कैसे घटित हो सकती हैं ? अगर शकाकार कहे कि पृथ्वी तो गोल है, पर उसके ऊपरी मध्य से वे नदियाँ निकली हैं इस कारण उनकी पूर्व पश्चिम समुद्र मे गति बन जायगी। तो अच्छा सुनो। वे बतावें कि भूगोल का मध्य है कहाँ ? यदि कहो कि उज्जैनी से तो भाई उज्जैनी से तो गगा, यमुना आदिक नदियाँ निकली नही हैं। यदि शकाकार कहे कि जहाँ से गगा, सिंधु आदिक नदियाँ निकली हैं उसी को ही मध्य मान लिया जाय तो यह भी अयुक्त है, क्योकि गगा जहाँ से निकली है उस देश को यदि मध्य मान लिया जाय तो सिंधु जहाँ से निकली है उस भाग को कैसे मध्य माना जा सकता है क्योकि गगा के मूल का और सिंधु के मूल का तो व्यवधान बहुत अधिक है। यदि शकाकार कहे कि अपने से जो बाह्य देश हैं, बहुत दूर देश हैं उनकी अपेक्षा इस भाग को मध्य मान लिया जायगा तो उत्तर इसका बहुत ही हास्यपूर्ण है कि फिर तो कोई भी जगह अमध्य न रहेगी याने बिना बीच के न रहेगी। जिस चाहे जगह को बीच बोल दे क्योकि सभी जगह से बाहर मे कोई न कोई देश जुडे पडे हुए हैं। फिर तो उज्जैनी मध्य है, यह सिद्धात रहा ही नही। और अगर इसी हठ पर रहे कि मध्य तो उज्जैनी को ही मानते हैं। तो देखो उज्जैनी के उत्तर से जो नदिया निकलेगी उनका मुख तो दक्षिण की ओर हो गया और उज्जैनी के दक्षिण से जो नदियाँ निकलेगी उनका मुख उत्तर को हो गया, इसी तरह से पश्चिम से निकली तो पूर्व को मुख हो गया, पूर्व से निकली तो पश्चिम को मुख हो गया। तो इसकी गति तो उस ओर ही हो जायगी कि जिस ओर नदी का मुख है। यदि शकाकार कहे कि भूमि ऊँची-नीची है उससे नदी की गति मे भेद आ जायगा तो फिर सारी जमीन को गोल मानने पर तो बडे भारी अवगाह की प्रतीति होनी चाहिये। बहुत बडी गहराई की की प्रतीति हो, ऐसा कही नही प्रतीत होता। जितने नीचे देश मे अवगाह है उतना ही ऊपर भूगोल पर बन रहा था तब यह मानना चाहिये कि पृथ्वी धरातल के समान ही है। गेंद की तरह गोल नही है। नही तो ये नदियाँ भूगोल के अनुरूप का उल्लघन करके इस गोल भूमि का विदारण कर देंगी। इस कारण पृथ्वीतल समान ही है, यह ही बात सगत होती है और यदि भू को समान धरातल का न माना जाय तो समुद्र आदिक ठहरेगे भी नही। यदि कहो कि भूमि मे ही ऐसी शक्ति विशेष है कि समुद्र आदिक की स्थिति बन जाती है तब तो ऐसा भी कह देना चाहिये कि भूमि मे ही शक्ति विशेष ऐसी है कि समान भूमि होने पर छाया आदिक का भेद बन जाय क्योकि ऐसा कहा जा सकता है कि लका भूमि की ऐसी शक्ति है कि मध्याह्न मे तो पुरुषादिक को अल्प छाया रहती है और मान्य खेट आदिक उत्तर भूमि मे ऐसी शक्ति है कि वहाँ रहने वाले पुरुषो की तारतम्य को लिए हुए छाया है अर्थात किसी की छोटी किसी की बडी ऐसी विचित्र छाया है तथा समतल वाली भूमि मानने पर सबके ऊपर स्थित सूर्य होने से छाया का वियोग नही है। छाया का निमित्त यह सूर्य प्रकाश ही तो है। अब समतल होने पर भी किसी-किसी जगह गड्ढा या ढेर होने से पृथ्वी ऊँची नीची पडती रहे इस कारण छाया मे भी कुछ वृद्धि हानि सम्भव है।

भूमि की समतलता की सही प्रतीति—यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि यह जम्बूद्वीप, यह पृथ्वी समतल है और ऊपर आकाश मे सूर्य, चन्द्र हैं और वे सूर्य, चन्द्र इस मेरु की प्रदक्षिणा देते रहते हैं। इस सम्बन्ध मे शकाकार ने यही तो अभिप्राय रखा था कि भूमि को गोल तो मानो मगर गेंद की तरह गोल मानो और भूमि को चलती हुई मानो और सूर्य, चन्द्र आदिक को स्थिर माना। उस सम्बन्ध मे बहुत कुछ वर्णन हुआ। अब यहाँ यह बात स्पष्ट समझना चाहिए कि ये जो भूमि है सो है तो समतल मगर ठीक दर्पण की तरह समतल नही है। कोई स्थान ऊचा है कोई नीचा है और इस तरह से ऊँचा-नीचा होने से जगह-जगह ऊँचा-नीचा आकार बन गया है। और इसी कारण उज्जैनी के उत्तर-उत्तर की भूमि मे जो नीचे की ओर गया है मध्य दिन मे छाया की वृद्धि विरुद्ध नही होती और जो लोगों को यह भ्रम हुआ है कि सूर्य का जब उदय होता है तो पृथ्वी से लगा हुआ ही उदित होता है। सूर्यादिक भूमि से उठकर उदित नही होते, किन्तु आँखो से दिखने की पद्धति इस प्रकार है। जैसे कोई रेल की लाइन बिल्कुल सीध मे बिछी हुई है और यहाँ से एक मील दूर या आधा मील दूर मे लाइन दिखी तो दोनो लाइन मिली हुई दिखती हैं। तो क्या ऐसा दिख जाने मात्र से वे मिल जाती है ? नही। पर दिखने की ऐसी ही विधि है कि दूर का पदार्थ हल्का दिखे मिला हुआ दिखे, स्पष्ट नजर न आएगा। तो इसी दर्शन विधि के कारण सूर्य भूमि से इतना ही सर्वत्र ऊँचा है जितना यहाँ पाया जा रहा है।

दिन रात्रि के प्रमाण की समता व विषमता का कारण—अब दिन रात कभी समान होते हैं, कभी कम-बढ होते हैं इस कारण शका हो सकती है। उसके विषय मे यह जानना चाहिए कि सूर्य जो मेरु की प्रदक्षिणा दे रहा है तो सूर्य की खुद की गति १८४ मार्ग मे है। जिसमे ६५ मार्ग तो जम्बूद्वीप के भीतर हैं। जम्बूद्वीप की वेदिका से १८० योजन भीतर मे रहकर प्रकाशित करता है और जम्बूद्वीप की वेदिका से बाहर मे जो गलिया हैं वे ११९ है। ये गलिया लवण समुद्र के भीतर १३३ योजन भीतर जाकर प्रकाश मे आती हैं। तो गलियाँ १८४ हैं, जिन गलियो मे सूर्य क्रम क्रम से बदल-बदल कर चलता है। आखिरी गली पर पहुँचने के बाद फिर भीतर गलियो मे क्रम से आता है और यही कारण है कि जब भीतर की गलियो मे चलता है तो उत्तरायण कहलाता है और बाहर की गलियो मे भ्रमण करता है तो दक्षिणायन कहलाता है। याने उन गलियो मे आधी-आधी गलिया उत्तरायन और दक्षिणायन के लिए हैं एक गली से दूसरी गली का अन्तर दो योजन है, तब उदयान्तर कितना होगा ? दो योजन और एक योजन के ६० भाग मे से ४८ भाग याने गलियो का अन्तर और सूर्य का विस्तार ये उदयान्तर हैं। देखिये ३,१६,७०२ (तीन लाख सोलह हजार सात सौ दो) परिधि प्रमाण को धारण करता है सूर्य, जबकि तुला राशि और मेष राशि मे प्रवेश होता है। मेरु के पास ४५ हजार योजन तथा ५५ योजन और योजन के ६१ भागो मे से २८ भाग इतना जब मेरु के निकट सूर्य प्रकाश मे आता है तब दिन मे भी १५ मुहूर्त हैं और रात्रि मे भी १५ मुहूर्त हैं, याने दिन और रात बराबर होते हैं। इस सम रात्रि दिन मे ६२/६१ भाग प्रमाण और कुछ अधिक ५२७८ योजन प्रमाण मुहूर्त की गति का क्षेत्र है, याने एक मुहूर्त मे सूर्य उतना गमन कर जाता है। तब मनुष्यो को सही मध्य पूर्व दिशा मे इस सूर्य की प्रतीति होती है और लका आदिक मे कुरु क्षेत्रादि अन्त-देश स्थान मे अभिमुख ही सूर्य का उदय होता है। यहाँ कोई शका करता है कि दूसरे दिन फिर उस प्रकार का प्रतिभास क्यो नही होता ? तो उत्तर है कि दूसरी गली मे सूर्य का उदय होता है और उससे दिन-रात के प्रमाण मे कुछ अन्तर आ जाता है। जब उत्तरायन सूर्य होता है, तब उत्तर दिशा

के कोने से सूर्य निकला ऐसा प्रतीत होता, जब दक्षिणायन सूर्य होता है तो कुछ दक्षिण कोने से सूर्य का प्रतिभास होता है। कोई यहाँ यह शका कर सकता कि जब सूर्य का उदय दक्षिण के कोने मे और उत्तर के कोने मे हो जाया करता है तो फिर पूर्व दिशा से ही उदय होता है यह कैसे सिद्ध होगा ? तो उत्तर यह है कि दक्षिण के कोने और उत्तर के कोने मे सूर्य तो बहुत कम आता, जब उन गलियो मे सूर्य आता है। विशेष समय पूर्व दिशा मे रहता और उसके बीच पूर्व दिशा होती है जो गलियो के कारण थोडा दक्षिण की ओर और उत्तर की ओर हो जाता है। तो पूर्व मे सूर्य दीखा इस कारण से कोई ऐसा मान ले कि कि पृथ्वी गोलाकार है तो यह बात नही बनती, क्योकि गेद के आकार वाली पृथ्वी माना जाने पर पूर्व से ही सूर्यदर्शन की सिद्धि नही होती है। जिस समय सूर्य सबसे भीतर के मार्ग मे आता है जो मेरु से केवल उतना ही दूर रहता है—कितना ? ४४८०० योजन ही जब मेरु से दूर रहता है उस समय दिन मे १८ मुहूर्त होते हैं और रात्रि मे १२ मुहूर्त होते हैं। तब एक मुहूर्त मे गति क्षेत्र ५२५१ २९/६० योजन है। जब सबसे बाहर वाली गली मे सूर्य चलता है तब मेरु से ४५३०३ योजन दूर रहता है, उस समय दिन १२ मुहूर्त का होता है, रात्रि १८ मुहूर्त की हो जाती है। उस समय एक मुहूर्त मे गमन क्षेत्र ५३०५ योजन तथा १५/६० है। यह भीतरी और बाहरी गली मे सूर्य के रहने पर दिन-रात की बात कहा, शेष हानि वृद्धि आगम के अनुसार जानना।

चन्द्र गति, गलियां, सूर्य गति, गलियां, छाया, सूर्य, चन्द्र ग्रास आदि से पृथ्वी के सत्य आकार का परिचय—चन्द्रमा की गलिया १५ गलियाँ हैं, द्वीप मे ५ और समुद्र पर १० हैं। इन १५ गलियो का अन्तर १४ हो गए। एक-एक अन्तर का प्रमाण करीब ३५ योजन है यहाँ जो दिन-रात की कमती-बढती देखी जाती है उससे पृथ्वी की गोलाकारता का अनुमान दूषित हो जाता है। जब छाया किसी की लम्बी दिखती है वह सूर्य की गति दूर मे है, ऐसा अनुमान कराती है। जब छाया बहुत छोटी दिखती है तो वह भी सूर्य की गति का, समीपता का अनुमान कराती है। यहाँ शंकाकार कहता है कि दोपहर के समय कभी छाया नही है और दूसरी जगह छाया दिखती है तो पृथ्वी गोलाकार सिद्ध होती है। समाधान—ऐसी स्थिति मे भी जमीन का गोलाकार होना सिद्ध नही होता, किन्तु इस ही जमीन पर कोई प्रदेश नीचे हैं, कोई प्रदेश ऊँचे हैं, यही सिद्ध होता है और आगम मे बताया भी गया है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र का वृद्धि ह्रास होता है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे। इस सूत्र का अर्थ मुख्य से तो क्षेत्र का है और साथ ही साथ वहा के रहने वाले मनुष्यादिक की वृद्धि ह्रास का है। सूर्य का जब ग्रहण होता है तो वह ग्रहण गोल पृथ्वी की छाया से नही होता, क्योकि भूगोल वादी तो पृथ्वी को सूर्य से बहुत छोटा मानते है। उससे सूर्य का सर्व ग्रास कैसे हो सकता ? और चन्द्र की छाया से सूर्य का ग्रहण होता है यह कहना भी अयुक्त है, क्योकि उस प्रकार तो फिर पृथ्वी की गोलाई से चौगुनी छाया मे वृद्धि घटित होना चाहिये इससे राहु विमान द्वारा समस्त ग्रास होने पर ग्रहण होना युक्त हो बैठता है। भूमि समतल है, और जब सूर्य बहुत दूर होता है तो यहा छाया मे वृद्धि होती है। जब सूर्य निकट होता है तो छाया में हानि होती है। चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण किस प्रकार होता है कि जब राहु केतु का विमान इन विमानो के एकदम नीचे आता है तो उस समय इसका ग्रहण होता है। राहु का विमान सूर्यादिक के विमान से छोटा नही है। सूर्य विमान तो ४८/६१ योजन विस्तार वाला है याने एक योजन के ६१ भाग मे से ४८ भाग प्रमाण सूर्य विस्तार है, और एक योजन के ६१ भाग के ५६ भाग प्रमाण चन्द्र विमान का विस्तार हैं और राहु विमान का विस्तार पूरा एक योजन लम्बा-चौड़ा है। यह सबका योजन दो हजार कोश का है। जब कभी यह

राहु विमान चन्द्र बिम्ब और सूर्य बिम्ब के कुछ थोडा बगल होता है तो और तरह का ग्रहण होता है, जब पूरा नीचे आता है तो पूरा ग्रहण दिखता है। सूर्य, चन्द्र विमान तो स्वच्छ मणिमय है और राहु विमान अजन के समान प्रभा वाला है। इस कारण राहु विमान द्वारा सूर्य, चन्द्र का ग्रहण सिद्ध होता है। कोई लोग राहु को केवल सिर मात्र ही मानते हैं या सर्पाकार ही कहते हैं, उनका यह कथन मिथ्या है, क्योकि सिरमात्र या सर्पाकार राहु से सूर्य, चन्द्र का ग्रहण सम्भव नही हैं। यहा कोई यह आशका रख सकता है कि कभी तो राहु विमान से पूरा ग्रहण होता, कभी थोडा, तो इस परिवर्तन का क्या कारण है ? उत्तर इसका यह है कि सूर्य, चन्द्र राहु इन सभी विमानो के आभियोग्य देव होते हैं, जिनकी लीला उन विमानो को ढोने की होती है, उनका इस ही प्रकार का कर्म विपाक है कि राहु विमान के आभियोग्य देव उसी प्रकार से उसे ढोते हैं, जिसके भेद से ग्रहण भेद हो जाता है। गोलावादी यहाँ शका करते हैं कि यह भूमि गोलाकार है अन्यथा सम रात्रि आदिक का होना बन नही सकता। तो उत्तर मे कहते कि अभी इसके समाधान का विस्तृत वर्णन हुआ है। सूर्य की गति के, सूर्य की गली के भेद से यह रात्रि और दिन का समान होना, विषम होना सिद्ध होता है। इस प्रकार इस प्रकरण मे बताया गया है कि यह जम्बूद्वीप थाली के समान गोलाकार वाला है और सूर्य, चन्द्र ऐसी-ऐसी गोलाई से भ्रमण करते हैं और यहाँ उनकी गति और प्रभा की विविधता से दिन रात्रिमात्र होते हैं।

सूर्य चन्द्र व उनके परिवार विमानो की सख्या का लघु चित्रण—द्वीप समुद्र पर कहाँ कितने सूर्य, चन्द्र आदिक हैं इसका थोडा सा विवरण किया जाता है। ज्योतिष्क देव मेरु के चारो ओर हैं, लेकिन मेरु से ११२१ योजन तक कोई ज्योतिष्क देव विमान नही है। जम्बूद्वीप मे दो सूर्य, दो चन्द्र, ५६ नक्षत्र, १७६ ग्रह तथा १३३९५० कोडा-कोडी तारा है। लवण समुद्र पर ४ सूर्य, ४ चन्द्र, ११२ नक्षत्र, ३५२ ग्रह तथा २६७९०० कोडा-कोडी तारा है। धातकी खण्ड पर १२ सूर्य, १२ चन्द्रमा, ३३६ नक्षत्र, १०५६ ग्रह तथा ८०३७०० कोडा-कोडी तारा हैं। कालोद समुद्र पर ४२ सूर्य, ४२ चन्द्रमा, ११७६ नक्षत्र, ३६९६ ग्रह तथा २८१२९५० कोडा-कोडी तारा है। पुष्करार्द्ध मे ७२ सूर्य, ७२ चन्द्रमा, २०१६ नक्षत्र, ६३३६ ग्रह तथा ४८२२२०० कोडा-कोडी तारा हैं। बाहरी पुष्करार्द्ध मे ज्योतिषियो की उतनी ही सख्या है जितनी कि भीतरी पुष्करार्द्ध मे है। समस्त पुष्कर द्वीप के ज्योतिषियो की सख्या से दूनी सख्या पुष्करवर समुद्र मे है। उसके आगे द्वीप समुद्र मे दूनी-दूनी ज्योतिषियों की सख्या है। ताराओ मे एक से दूसरे का अन्तर जघन्य एक कोश का ७ वाँ भाग है, मध्यम अन्तर ५० कोश है, उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन है। सूर्य-सूर्य का जघन्य अन्तर और चन्द्र-चन्द्र का जघन्य अन्तर ९९६४० योजन है, सूर्य का अन्तर और चन्द्र का अन्तर उत्कृष्ट रूप से १००६६० योजन है, एक-एक चन्द्रमा के कितने विमान परिवार हैं। तारा विमान तो ६६९७५ कोडा-कोडी हैं, ८८ महाग्रह हैं, २८ नक्षत्र हैं। इस प्रकार ये ज्योतिष्क देवो के विमानो का समूह इस मध्यलोक मे समस्त द्वीप समुद्र पर फैला हुआ है।

अब तक तीन निकाय के देवो का कथन हुआ है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क। भवनवासियो के आवास भवन तो इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे प्रथम दो भागो मे है। व्यन्तर देवो का निवास रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम दो भागो मे तथा मध्यलोक के द्वीप समुद्र आदिक के तटो पर, खण्डहरो पर कुछ ऊपर आकाश मे है। ज्योतिष्क देवो के आवास द्वीप समुद्र पर अभी बताये ही गये है। ये तीनो ही प्रकार के देव वैमानिक देवो ओछे माने गये है। सम्यग्दर्शन मे किसी का मरण हो

तो इन ३ प्रकार के देवो में उनकी उत्पत्ति नही होती है। भले ही मिथ्यात्वसहित इनकी उत्पत्ति है, किन्तु ये अपनी पर्याप्त अवस्था मे सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते हैं, इसमे कुछ सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, और मिथ्यादृष्टियो की इनमे बहुलता है। भवनवासी और व्यन्तरो मे से अनेको देव और इन्द्र यक्ष यक्षिणी भगवान के देवो मे भी उपस्थित होते है और जन्म कल्याणक के समय तो जैसे वैमानिक कल्पोपपन्न देव और उनके इन्द्र उत्सव मनाने आते है वैसे ही भवनत्रिको के देव और इन्द्र भी जन्म कल्याणक मनाने आते है। इस प्रकार ज्योतिष्क विमान साधारण निर्देश करके अब यह बतलाते हैं गतिमान् ज्योतिष्को के सम्बन्ध से व्यवहार काल का परिज्ञान होता है।

तत्कृत कालविभाग ॥१४॥

काल विभाग की उत्पत्ति का परिचय—ज्योतिष्क देवो के द्वारा किया हुआ काल विभाग है अर्थात् घडी, घटा, दिन, महीना आदिक जो व्यवहार काल चला है, उसका आधार है इन ज्योतिषी-देवो का गमन। तत्कृत इस शब्द का अर्थ है—उन ज्योतिष्क देवो के द्वारा किया गया और काल-विभाग का अर्थ है काल का विभाग। काल विभाग यह शब्द सुनकर जिज्ञासा होती है कि काल का विभाग, इसका अर्थ क्या है ? तो यहा काल शब्द से मतलब होता है, व्यवहार काल का। कोई मुख्य काल हो तब ही व्यवहार काल बनता है, जिसका विभाग किया गया याने विभाग वाला। मूल मे जो आधारभूत है वह काल द्रव्य है और मुख्य काल है—सो विभाग वाला है वह मुख्य काल है, क्योकि विभाग वाले के फल मे वह निमित्त होता है। जितना भी व्यवहार काल का प्रसार है उसका सही परिणमन है उस समग्र परिणमन का श्रोत है काल नामक द्रव्य। /सो आवलिम पल घडी दिन-रात आदिक विभाग वाला जो व्यवहार काल है वह हुआ एक फल। मुख्य न हो तो व्यवहार कहा से हो ? तो उस व्यवहार काल का नाम जिसकी वजह से है वह है निश्चय काल द्रव्य। सो वह मुख्य काल द्रव्य है और मुख्य काल के बारे मे समस्त कालवादियो ने माना है, विवाद नही उठाया है। यहाँ कोई ऐसी शका कर सकता है कि यहाँ कहना कि विभाग वाला फल जब है तो उसका निमित्त भूत कोई मुख्य वस्तु सामान्य है। तो इसमे आकाश आदिक के साथ मेल नही बैठता, क्योकि विभाग तो यहा भी हो रहे हैं। एक छोटा, एक बडा आकाश। सो आकाश तो एक मुख्य द्रव्य है, व्यापक है एक है लेकिन उसके विभाग तो उसमे बन रहे। यहा मेल नही बैठता है। उसके उत्तर मे कहते हैं कि आकाश का भी विभाग और विभागी जैसा प्रतिबोध होता है, क्योकि अवगाहन आदिक जो कार्य हो रहे हैं वे मुख्य आकाश द्रव्य को सिद्ध कर रहे हैं। इतना यहाँ अवगाह मिल गया। इस तरह जो अव-गाह कार्य की उत्पत्ति हो रही है तो उसमे विभागवान आकाश ही तो मुख्य बना। इसलिए यह जानना कि काल कोई मुख्य द्रव्य होता है तब ही परिणमन, पर्याय सिद्ध हो पाती है।

अवस्थित व अनवस्थित द्रव्य के विभागों के प्रकार—अब यहाँ एक शकाकार कहता है कि विभाग मायने क्या ? अवयव का भेद होता है तो यदि अवयव का भेद रूप विभाग अर्थ माना जाये तो यह विभाग आकाश मे नही है, क्योकि आकाश तो एक अखण्ड द्रव्य है, एक अखण्ड द्रव्य मे विभाग कैसे ? जैसेकपडे के अवयव बन जाते, घडे के अवयव बन जाते इस प्रकार अवयव आकाश मे तो बनते नही, फिर विभाग और विभागवान आकाश मे कैसे समझा जा सकता है ? और अगर प्रदेश रूप का विचार विभाग मानते हो याने आकाश एक अखण्ड द्रव्य है, उससे अनन्त प्रदेश हैं तो उन प्रदेश के रूप से अगर विभाग मानते हो तो प्रदेश वाला विभाग तो काल मे भी है, तो उपचरित प्रदेश वाले विभाग को पायेंगे तो वह सिद्ध साधन ही है मायने है ही। उसको क्या सिद्ध करना है ?

तो उत्तर मे कहते है कि बात यह है कि परमार्थ से ही आकाशादिक के सब प्रदेशो का निश्चय है याने ये प्रदेशवान हैं, प्रदेशमय हैं और वे सदा अवस्थित प्रदेश हैं क्योकि एक द्रव्य होने से। वह आकाश एक द्रव्य है और उसके जो भी प्रदेश हैं अनादि अनन्त काल मे सदा वही के वही अनन्त प्रदेश रहे। अवयव दो प्रकार के हुआ करते हैं, एक तो सदा अवस्थित के अवयव और एक अनवस्थित के अवयव, याने जो पदार्थ सदा रहा करते हो उनके प्रदेश और जो सदा नही रहते, जैसे कपडा आदि तो वह अनवस्थित द्रव्य है, उसके प्रदेश तन्तु आदिक हैं, वे अनवस्थित हैं। अवस्थित द्रव्य के प्रदेश अवस्थित और अनवस्थित द्रव्य के प्रदेश अनवस्थित। यदि वस्त्र आदिक के अवयवो को भी अवस्थित मान लिया जाये तो वस्त्र भी अवस्थित बन बैठेंगे। कोई पदार्थ अनित्य हो, अस्थायी हो और उसके अवयव स्थायी रूप से मान लिये जायें यह तो विरोध की बात है। तो यह मानना कि यहाँ आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, एक जीव ये सब अवस्थित प्रदेश वाले हैं। सो आगे सूत्रकार स्वय बतायेंगे कि इन द्रव्यो के कितने प्रदेश होते हैं। वह सब अनादि सिद्ध रचना है।

अखण्ड द्रव्य मे प्रदेश प्रदेशी भाव व अवयव अवयवी भाव की जानकारी—अब यहा कोई शका करता है कि आकाश आदिक के प्रदेश अनादि से हैं, तो प्रदेश मे और उस द्रव्य मे प्रदेश प्रदेशी भाव वास्तव मे कैसे बनेगा, क्योकि जैसे आकाश सदा से है, अनन्त प्रदेशी है तो वही तो उसका सर्वस्व कहलाया। वास्तव मे तो प्रदेश प्रदेशी भाव वहा ही हो सकता है जहाँ अवयव सादि हो। वह द्रव्य भी सादि। जैसे कपडा किसी दिन बना तो उस कपडे के अवयव भी किसी दिन बने। तो जो सादि हो ऐसे पदार्थ मे तो अवयव अवयवी भाव की कल्पना बन सकती है, परन्तु जो अवस्थित प्रदेश हो उन सब पदार्थों मे प्रदेश प्रदेशी भाव की कल्पना नही होती। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि आकाश एक द्रव्य है और वह अनादि से ही अवस्थित है। बात तो ठीक है मगर आकाश मे यह बडा आकाश है यह छोटा आकाश, उसका महत्त्व आदि गुण जो अनादि से प्रयोग किया जा रहा है उसमे गुण-गुणी भाव वास्तविक कैसे सिद्ध होगा ? यदि कहा जाए कि गुण-गुणी लक्षण बनाकर वहा प्रदेश प्रदेशवान अवयव अवयवी ये सब सिद्ध हो जायेंगे तो ऐसे ही आकाश और आकाश के प्रदेशो मे प्रदेश प्रदेशी लक्षण का योग बन जाएगा जिससे प्रदेश प्रदेशी भाव बन जाएगा। जैसे कि गुण-पर्ययवद् द्रव्य। इस सूत्र के आकाश आदिक के द्रव्य स्वरूप का लक्षण कहा गया है इस प्रकार महत्त्वादिक के बोध के लिए भी तो बताया है—द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा, ऐसा गुण का भी लक्षण बन गया। और वहाँ उन अवयवो का जो एकत्व परिणाम है सो प्रदेशी द्रव्य हैं, यह प्रदेशी का लक्षण बन गया। परन्तु काल द्रव्य तो एक द्रव्य है और वे तो असख्यात द्रव्य हैं, सो जितने वे परिणाम हैं, जितने वे अवयव हैं वे असख्यात काल द्रव्य के अवयव है। एक-एक लोकाकाश के प्रदेश पर एक-एक कालाणु द्रव्य अवस्थित हैं और उस एक-एक द्रव्य की अनन्त पर्यायें अवयव होती है।

व्यवहार काल व निश्चय काल का सम्बन्ध व विश्लेषण—पर्याय दृष्टि से भूत, वर्तमान, भविष्य की अनन्त पर्यायें उस एक काल द्रव्य मे बन जाती हैं। यदि ऐसा न माना जाए याने एक-एक प्रदेश पर एक-एक काल द्रव्य न माना जाए तो उस देश मे रहने वाले जो अनन्त द्रव्य हैं परमाणु आदिक तो उन अनन्त पदार्थों का परिणमन कैसे हो ? उस देश मे रहने वाले जो अनन्त परमाणु आदिक द्रव्य हैं उनके उस-उस देश मे अवस्थित काल द्रव्य हैं उनके समय नामक पर्याय उनके बर्तने के कारण हैं। तो चूँकि काल के विभाग पाये जाते हैं उससे सिद्ध है कि विभाग वाला कोई मुख्य काल अवश्य है और जो वह मुख्य काल है सो ही काल द्रव्य है सो उन गतिमान ज्योतिषियो की

गति और ज्योति प्रतिभासन के निमित्त से काल का विभाग बन जाता है। काल दो प्रकार के माने गये हैं—(१) व्यवहार काल और, (२) मुख्य काल, उनमें से व्यवहार काल का विभाग तो ज्योतिष्क गतिप्रभाकृत है जो क्रिया विशेष जाना जाता है, और मुख्य जो काल है, जिसका आगे वर्णन आएगा वह अनादि निधन है। प्रत्येक काल द्रव्य का एक एक प्रदेश है और वह स्वत सिद्ध है और अन्य द्रव्यो के प्रदेश स्वत. सिद्ध हैं। यहाँ कोई शका करता है कि मुख्य काल कुछ नही हुआ करते। सूर्यादिक की जो गति है उससे भिन्न कोई मुख्य काल नही है। और यो ही काल शब्द की उपपत्ति भी है। कलावो के समूह का नाम काल है और कलायें क्रिया की अवयव है, और जहाँ अस्तिकायो का उपदेश है वहा पाचो ही अस्तिकाय आगम मे बताये गये हैं। छठवा अस्तिकाय नही है। समाधान—ऐसा मनमाना अर्थ लगाना युक्त नही है क्योकि क्रिया का काल व्यवहार करना यह मुख्य काल के बिना हो नही सकता। जो यह सूर्य के गमन आदिक मे क्रिया है ऐसी रूढि से जो काल का व्यवहार बनता है तो यह मुख्य काल के अस्तित्व को बताता है यह व्यवहार काल। जैसे कोई खिलौना बनाता है—गाय बनाता, घोडा बनाता तो खिलौना मे तो व्यवहार किया है मगर वास्तव मे गाय हो, घोडा आदिक हो तब ही तो दूसरी जगह उसका व्यवहार बन सकता है। तो काल शब्द का अर्थ यह मानो —कल्प्यते क्षिप्यते प्रेर्यतेयेन क्रिया वद्द्रव्य स काल.,याने जिसके द्वारा प्रेरा जाए क्रियावो मे द्रव्य वह काल द्रव्य है। काल का जो अस्तिकाय मे नाम नही लिया गया उसका कारण है कि काल द्रव्य मे प्रदेश का समूह नही है, समस्त काल एक प्रदेशी है। काल मे तो एक ही प्रदेश है इसलिये वह अस्तिकाय नही कहलाता। हाँ काल का अस्तित्व जरूर है। यदि इसका अस्तित्व न होता तो ६ द्रव्य न बताये जाते। तो काल कोई द्रव्य है, उसकी जो पर्याय है वह समय है और उन समयो का जो व्यवहार मे माना गया समय समूह है वह सब व्यवहार काल है। तो ज्योतिषियो के द्वारा यह काल विभाग किया गया है यह अर्थ सुसगत है। इस प्रकरण में यह बताया गया है कि 'ज्योतिष्क देवो के विमानो की मनुष्यलोक मे नित्य गति के कारण काल का विभाग बनता है। तो अब यह जानना आवश्यक हो गया कि मनुष्यलोक के बाहर ज्योतिष्को की क्या स्थिति है ? उसी को प्रकट करने के लिये सूत्र कहते है।

वहिरवस्थिताः ॥१५॥

मनुष्यलोक से बाहर ज्योतिष्को की स्थिति—मनुष्यलोक से बाहर ज्योतिष्क विमान सब अवस्थित है, जहाँ है, वही है, उनकी गति नही होती। यहा वहिः शब्द का अर्थ है बाहर। कहाँ से बाहर ? इसके लिए प्रकरण वाले सूत्र से नृलोके शब्द की अनुवृत्ति आती है। यद्यपि उस सूत्र मे नृलोके शब्द सप्तमी के एक वचन मे आया है तो भी अर्थ के वश से विभक्ति का परिणमन हो जाता है। यहा पचमी विभक्ति मे अर्थ होगा। यहा एक शका उत्पन्न होती है कि जब पहले यह कह आये कि मनुष्यलोक मे नित्य गति वाले ज्योतिष्क विमान हैं तो इस ही वचन से यह सिद्ध हो जाता है कि नृलोक से बाहर ज्योतिषियो की गति नही है किन्तु अवस्थित है, फिर इस सूत्र के कहने की आवश्यकता क्या रही ? उत्तर मे कहते है कि अभी दोनो ही बातें असिद्ध थीं याने मनुष्यलोक से बाहर ज्योतिषियो का अस्तित्व है या नही और अवस्थित हैं या नही, दोनो ही अप्रसिद्ध थे तो उन दोनो की सिद्धि के लिए यह सूत्र कहा गया है। यदि यह सूत्र न कहते तो उस सूत्र का अर्थ इतना ही होता कि ज्योतिष्क मनुष्यलोक मे ही हैं और नित्यगति वाले हैं याने उसमे यह अर्थ लगता कि ज्योतिष्क देव है ही मनुष्यलोक मे और नित्यगति करने वाले हैं तो प्रकृत सूत्र का भाव नही निकलता इस सूत्र के कहे बिना। अत यह सूत्र कहा गया है।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

षष्टदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

अभी तक भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी इन तीन निकायो के सम्बन्ध मे वर्णन हुआ। अब चतुर्थ निकाय के देवो का सामान्य नाम बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

वैमानिका ॥१६॥

वैमानिक देवो के वर्णन मे विमानो का कथन—अर्थात चतुर्थ निकाय के देव वैमानिक कहलाते हैं। वैमानिक शब्द का अर्थ है विमानो मे बसने वाले। विमान कहते हैं वि, मान, वि मायने विशेष रूप से, मान मायने मानयन्ति याने अपने मे स्थित रहने वाले जीवो को जो विशेष रूप से पुण्यवान मानें उन्हे विमान कहते हैं। अर्थात विशेष पुण्यवान जीव इन विमानो मे आवास पाते हैं, ऐसा इसका अर्थ हुआ। इस सूत्र से केवल एक नामका ही बोध नही हुआ, वह तो हुआ ही, किंतु साथ ही यह भी जानकारी मिलती है कि अब इसके बाद जो वर्णन किया जायेगा वह वैमानिक देवो के विषय मे होगा, अतएव यह सूत्र अधिकार रूप भी समझा गया। ये विमान तीन प्रकार के होते—इन्द्रक, श्रेणी बद्ध और पुष्प प्रकीर्णक। इन्द्रक विमान सबके बीच मे अवस्थित है, मानो वह इन्द्र की तरह मध्य मे अवस्थित है इस लिए उसका नाम इन्द्रक विमान रखा है। इस इन्द्रक विमान के चारो दिशाओ मे आकाश प्रदेश की श्रेणी की तरह रहते हैं विमान। उन विमानो को श्रेणी विमान कहते हैं और विदिशाओ मे फैले हुए पुष्पो की तरह अर्थात उनकी लाइन श्रेणी नही है। जहाँ चाहे अवस्थित है। ऐसा प्रकीर्ण पुष्प की तरह अवस्थित होने से उन विमान को पुष्प प्रकीर्णक कहते हैं। अब वैमानिक देवो का भेद बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

कल्पोपपन्ना कल्पातीताश्च ॥१७॥

वैमानिको के कल्पोपपन्न व कल्पातीत प्रकार—वैमानिक देव कल्पोपपन्न और कल्पातीत होते हैं वैमानिको के ये दो प्रकार हैं। जो कल्पो मे उत्पन्न हो सो कल्पोपपन्न और जो कल्पो से अतीत सो कल्पातीत। इन्द्र सामानिक आदि जो १० प्रकार बताये गये हैं उन कलपनाओ से सहित जो आवास हैं वे कल्पोपपन्न हैं। यहाँ भवनवासी आदिक का ग्रहण नही है, क्योकि इसमे कल्पातीत देव नही होते। जहाँ कल्पातीत है उसी निकाय मे कल्पोपपन्न की रूढि है। तो ये कल्पोपपन्न १६ स्वर्गो मे होते है। और इससे ऊपर ग्रैवेयक आदिक मे उनकी कल्पना नही है, अर्थात सभी अहिमिंद्र हैं। सामानिक आदिक भेद नही हैं इस कारण से उनको कल्पातीत कहते हैं। कल्पातीत के अर्थ मे यह संशय न लेना कि ग्रैवेयक, अनुदिश

अनुत्तर, ये कल्पना से माने गये फिर कल्प से अतीत कैसे ? इस कल्पना की बात यहाँ नही, या इन कल्पनाओ के कारण उन्हे कल्पोपपन्न न कहना, क्योंकि कल्पोपपन्न का मतलब इन्द्रादिक १० कल्पनाओ का है। नवग्रैवेयक आदिक मे इन्द्रादिक की कल्पना नही है, क्योकि वे सभी अहमिन्द्र है। एक समान ऋद्धि वाले हैं अत. कल्पातीत है। अब इन वैमानिक देवो का स्थान विशेष बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

उपर्युपरि ॥१८॥

वैमानिक देवो के आवास स्थानो का सकेत—इन वैमानिक देवो का आवास ऊपर-ऊपर है याने ज्योतिषी देवो की तरह एक ही पटल मे तिर्यक रूप से अवस्थित हो ऐसा नही है तथा व्यन्तर देवो की तरह इनकी विषम स्थिति हो। जहाँ चाहे आवास हो, ऐसा भी नही है। इसीलिये सूत्र मे उपरि उपरि शब्द कहा है। यहाँ उपरि उपरि का अर्थ समीप वाचक लिया जाता है अर्थात बीच मे और कुछ रचना की गई हो या अन्य देव आते हो फिर भी ऊपर और जहाँ चाहे वैमानिक हो, ऐसा अर्थ न लेना किंतु उन वैमानिको मे ऊपर-ऊपर वैमानिक ही हैं। अन्य कोई नही है। इस कारण सामीप्य-वाचक यहाँ दो बार कहा गया है। यहाँ यह भी शका न रखना कि असख्यात योजन का इन कल्पो मे अन्तर रहता है इसलिये सामीप्य न कहना। यह शंका यो ठीक नही है कि भले ही अनेक योजन का अन्तर है एक कल्प से दूसरे कल्प मे या स्वर्गों से ग्रैवेयक में। ग्रैवेयक से और ऊपर अनुदिश मे, उससे ऊपर अनुत्तर मे उन रचनाओ मे अन्तर है एक दूसरे से, मगर हैं तो वैमानिक ही देव। वैमानिक वैमानिक ही रह रहे है अन्य कोई बीच मे नही रहता। इस कारण तुल्य जाति की अपेक्षा अव्यवधान माना है।

सूत्र मे ऊपर-ऊपर कल्पो की अवस्थिति का अर्थ—अब यहाँ इस प्रसग मे तीन बातें समझने की हैं। देव अथवा विमान अथवा कल्प। सूत्र मे तो बताया है कि ये सब ऊपर-ऊपर है तो ऊपर-ऊपर क्या है ? क्या ऊपर-ऊपर देव हैं ? क्या ऊपर-ऊपर विमान हैं ? क्या ऊपर कल्प हैं ? इन तीन प्रश्नो के सम्बन्ध मे क्रमश विचार करे। यदि यहाँ यह अर्थ लिया जाय कि ऊपर-ऊपर देव हैं तो यह अर्थ इष्ट न रहेगा, क्योकि देव ऊपर-ऊपर ही क्यो ? ऊपर भी है अगल-बगल भी हैं। देवो का ऊपर-ऊपर रहना इष्ट अर्थ नही बताता है। यदि विमान अर्थ लिया जाय कि ऊपर-ऊपर विमान हैं तो सब सब विमान ऊपर-ऊपर नही हैं। श्रेणी विमान तिरछे रूप से पाये जाते है और विदिशाओ मे पुष्प प्रकीर्णक विमान पाये जाते हैं इसलिये ऊपर-ऊपर विमान हैं। यह भी अर्थ यहाँ नही ठीक रहता है। तो कल्प की बात विचारें कि ऊपर-ऊपर कल्प हैं तो यह अर्थ बैठता है अर्थात प्रथम कल्प के ऊपर द्वितीय कल्प है, उससे ऊपर तृतीय कल्प है। यो कल्पो का ऊपर-ऊपर अवस्थान सगत बैठता है। यहाँ एक शका होती है कि ऊपर जो सूत्र कहा गया है, जिससे कि कल्प शब्द की अनुवृति की जा रही है तो वहाँ शब्द आया है कल्पोपपन्न। वह समास वाला पद है तो समास वाले पद मे से तोड करके कल्प शब्द कैसे ले लिया जा सकता है ? जिससे सूत्र का अर्थ बैठ सके कि ऊपर ऊपर-ऊपर कल्प है ? समाधान मे कहते हैं कि समास भी हो तो भी अर्थ विधि से अपेक्षित होता है और उसका विशेषण से सम्बन्ध बन जाता है, क्योकि उसमे प्रश्न और उत्तर तो अन्तर्गत हैं जैसे कहा यह राजपुरुष है तो वहाँ प्रश्न तो अन्तर्गत है। किसका पुरुष है ? उत्तर है कि राजा का पुरुष है। इसी तरह कल्पोपपन्न शब्द मे प्रश्न है कि किसकी उपपत्ति हैं ? तो उसका उत्तर है कि कल्पो की उपपत्ति है। इसी कारण उसमे

से कल्प शब्द की अनुवृत्ति मिल गई है। इससे भी अर्थ यह निकला कि ऊपर-ऊपर कल्प होते हैं इसी प्रकार कल्पातीतो मे भी विमान होते हैं तो यह जब प्रश्न होगा कि कल्पातीतो मे क्या होता है ? तो वहाँ समझ लेना होगा कि विमान होते हैं। कल्पोपपन्न मे तो कल्प होते हैं और कल्पातीतो मे विमान होते हैं। अब यह बतलाते है कि कितने कल्प विमानो मे वे देव होते हैं ? इसी के साथ कल्पातीतो का भी बताया जा रहा है।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥

१२ कल्प व १६ स्वर्गों का निर्देश—सौधर्म, ईशान, सनतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, इन स्वर्गों मे, नवग्रैवको मे नौ अनुदिशो मे विजय, वैजयन्त, अपराजित विमानो मे और सर्वार्थ सिद्धि मे वैमानिक देव हैं। सुधर्मा नाम का इन्द्र है वह जहाँ रहता है उसको सौधर्म कल्प कहते हैं। अथवा सौधम कल्प मे आवास होने के कारण उस इन्द्र का नाम सौधर्म है। दूसरे इन्द्र का नाम ईशान इन्द्र है। ईशान का जहाँ निवास हो ऐसे कल्प को ऐशान कहते हैं। अथवा ऐशान स्वर्ग मे जो रहे इस इन्द्र को ऐशान कहते हैं। तीसरे इन्द्र का नाम सनत्कुमार इन्द्र है, उसका जहाँ निवास है उस कल्प को सानतकुमार कहते हैं। अथवा सानत् कुमार स्वर्ग के सम्बन्ध से इन्द्र का भी नाम सानत कुमार है, चौथवें इन्द्र का नाम माहेन्द्र है। उसका जहाँ निवास है, उसको माहेन्द्र कल्प कहते हैं, अथवा माहेन्द्र स्वर्ग के सम्बन्ध से इन्द्र भी माहेन्द्र कहलाता है। ५वें इन्द्र का नाम ब्रह्म है उसका जहाँ निवास है उस लोक को ब्रह्मलोक कल्प कहते हैं। इसी प्रकार उसके उत्तर मे ब्रह्मोत्तर कल्प है। छठे इन्द्र का नाम लातव इन्द्र है। उसका जहाँ निवास है वह लातव कल्प है अथवा लातव कल्प के सम्बन्ध से इन्द्र का भी नाम लातव है। इसके उत्तर की रचना को कापिष्ठ स्वर्ग कहते हैं। ७वें इन्द्र का नाम शुक्र है। उसका जहाँ निवास है उसे शुक्र कल्प कहते हैं अथवा शुक्र कल्प के सम्बन्ध से इन्द्र का भी नाम शुक्र है। इसके उत्तर मे महाशुक्र नामक स्वर्ग है। ८वें कल्प का नाम शतार है। उसमे रहने वाले इन्द्र को शतार इन्द्र कहते हैं। शतार स्वर्ग से उत्तर की रचना का नाम सहस्रार है। उसमे रहने वाले इन्द्र को सहस्रार इन्द्र कहते हैं। ९वें कल्प का नाम आनत है। उसमे रहने वाले इन्द्र को आनत इन्द्र कहते हैं। १०वें कल्प का नाम प्राणत है। उसमे रहने वाले इन्द्र को प्राणत इन्द्र कहते है। ११वें कल्प का नाम आरण है। उसमे रहने वाले इन्द्र को आरण इन्द्र कहते हैं। १२वें कल्प का नाम अच्युत है, उसमे रहने वाले इन्द्र को अच्युत इन्द्र कहते हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि स्वर्ग तो १६ (सोलह) हैं और कल्प बताये गये हैं, १२ (बारह) तो इसका अर्थ क्या है ? इसका अर्थ यह है कि पहले के चार स्वर्गों मे तो एक-एक इन्द्र है और अन्त के १३वें, १४वे, १५वे, १६वें स्वर्ग मे एक-एक इन्द्र है, इसलिये पहले के चार स्वर्गों के चार कल्प हैं, अन्त के चार स्वर्गो के चार कल्प हैं और बीच के ८ स्वर्गो के अर्थात् ५वें से लेकर १२वें स्वर्ग तक के ८ स्वर्गो मे क्रमश दो-दो स्वर्गो मे एक-एक इन्द्र है याने ४ इन्द्र हैं। प्रतीक तो सबके हैं ही इस प्रकार १२ इन्द्र होने से १२ कल्प कहे गये हैं। तो इन स्वगो मे १२ इन्द्र हैं और १२ ही प्रतीन्द्र हैं।

स्वर्गो से ऊपर ग्रैवेयकों की रचना व अनुदिश अनुत्तर की रचना—इन्द्रो की दृष्टि से तो इनका नाम है कल्प, किन्तु जोडे-जोडे से इनकी रचना है अर्थात् पहले दूसरे स्वर्ग की एक तल मे

रचना है। तीसरे, चौथे स्वर्ग की एक तल मे रचना है। इस तरह से ऊपर-ऊपर दो-दो स्वर्गो की एक तल मे रचना होने से ये ८ विभाग हुये, जिनके सोलह स्वर्ग कहलाते। सोलह स्वर्गो से ऊपर ग्रैवयक है, ग्रीवा कहते है गर्दन को। जैसे लोक का नक्शा बनाया तो दोनो पैर फैलाये हुये और कमर पर दोनो हाथ रखे हुये ऐसे ७ लडके एक के पीछे एक खडे किये जायें तो वह लोक की रचना की तरह हो जाती है। उस लोक रचना मे जहाँ गर्दन का स्थान है वहाँ जो वैमानिक हैं उनको ग्रैवेयक कहते हैं। ग्रीवा का दूसरा नाम कठ भी है। तो कठ के सम्बन्ध मे इसका नाम वैकण्ठ भी कह सकते, जिसको अब आजकल वैकुण्ठ कहने लगे। इन नवग्रैवेयको मे जो अहिमिन्द्र रहते हैं वे अनेक सम्यग्-दृष्टि है, अनेक मिथ्यादृष्टि है, ग्रैवेयको से ऊपर केवल सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं और ग्रैवेयक तक स्वर्गो मे और इन ग्रैवयको मे मिथ्यादृष्टि भी है, सम्यग्दृष्टि भी है। हाँ, इसका नियम है कि मुनिलिंग की तपस्या बिना ग्रैवयक मे उत्पन्न नही हो सकते। भले ही वे मिथ्यादृष्टि हो लेकिन व्यवहार मे सम्यग्-दृष्टि और व्यवहार आचरण मे मुनि धर्म पालन कर रहा हो वह ही जीव मरकर ग्रैवेयक मे उत्पन्न होगा। ये ग्रैवेयक ९ जगहो मे है, अर्थात् इनके पटल ९ है, एक के ऊपर दूसरा पटल, इस तरह ऊपर-ऊपर पटल हैं। उनमे रचना इसी तरह है जैसे सब पटलो की है। बीच मे एक इन्द्रक विमान और दिशा और विदिशा मे एक-एक विमान, इस तरह ९-९ विमानो के ९-९ पटल हैं इन नव-ग्रैवयको से ऊपर अनुदिश विमान हैं। अनुदिश का एक ही पटल है, जिसमे बीच मे एक इन्द्रक है और दिशाओ विदिशाओ मे एक-एक विमान है। अनुदिश मे सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं इससे ऊपर अनुत्तर विमान हैं। अनुत्तर विमानो का एक ही पटल है, जिसमे कुल ५ विमान हैं, बीच मे सर्वार्थ सिद्धि है पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा मे एक-एक विमान है जिसके नाम हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित।

सूत्रोक्त पदो के एकत्रित एव विन्यस्त कहे जाने का रहस्य—यहाँ सूत्र की जो रचना है इस रचना मे १२ स्वर्गो का तो एक पद दिया है और अन्त के चार स्वर्गों मे १३वे, १४वें का एक पद, १५वे, १६वे का एक पद, इस प्रकार देने से यह स्पष्ट होता है कि १३वें, १४वें, और १५वे, १६वें स्वर्ग मे श्रावक या मुनि उत्पन्न हो सकते हैं, अन्य कुधर्म की बडी तपस्या होने पर भी वे १२वे स्वर्ग से ऊपर उत्पन्न नही होते। यहा नवग्रैवयक उस शब्द को एक शब्द मे न लिखकर जो नव को अलग लिखा है इससे यह सिद्ध हुआ कि ९ अनुदिश भी हैं। इस सूत्र सर्वार्थसिद्धि शब्द का अलग ग्रहण जो किया गया है याने अनुत्तर विमान ५ हैं, उन पाचो मे चार के नाम अलग लिखे गये हैं और सर्वार्थ सिद्धि का नाम अलग लिखा है तो सर्वार्थ सिद्धि यह शब्द अलग लिखने से यह ध्वनित होता है कि सर्वार्थ सिद्धि मे स्थित देवो का माहात्मय बडा है। सर्वार्थ सिद्धि के देव एक भवावतारी है, तो वहा से मरणकर मनुष्य ही होते हैं और उसी मनुष्यभव से मोक्ष चले जाते हैं, तो ऐसी कुछ विशेषतायें है जिससे सर्वार्थसिद्धि शब्द को अलग कहा गया है। शेष के चार विमानो मे जघन्य स्थिति ३२ सागर है और उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर है, किन्तु सर्वार्थसिद्धि मे जघन्य उत्कृष्ट भेद नही है सबकी आयु ३३ सागर ही है, वही जघन्य कहो, वही उत्कृष्ट कहो। जो प्रभाव सर्वार्थसिद्धि के एक देव का है वह इसके चार विमानो के देवो का भी नही है। ऐसी विशेषतायें बताने के लिये सर्वार्थसिद्धि शब्द को अलग ग्रहण किया गया है। सूत्र रचना मे स्वर्गो के बाद अलग से ग्रैवयक शब्द देने से यह

ध्वनित होता है कि कल्पोपपन्न सोलह स्वर्गो तक ही है। उसके बाद फिर कल्पातीत है। अनुदिश शब्द का अर्थ है कि प्रत्येक दिशा मे एक-एक विमान होता। तो बस एक ही पटल है।

वैमानिक कल्प व कल्पातीतो की ऊपर-ऊपर रचना का सक्षिप्त दिग्दर्शन—इससे ऊपर के सूत्र मे कहा गया था कि ये विमान ऊपर-ऊपर हैं। तो सोलह स्वर्गो तक तो दो-दो का सम्बन्ध लेना होगा अर्थात् दो-दो स्वर्ग ऊपर-ऊपर चलते गये हैं। जैसे प्रथम दो कल्प हैं जिनमे दो स्वर्ग हैं, उसके ऊपर दो कल्प है जो तीसरे और चौथे स्वर्ग कहलाते हैं। उनके ऊपर एक कल्प है जिसमे दो स्वर्ग हैं ५वा और छठवा। उसके ऊपर एक कल्प है, जिनमे दो स्वर्ग हैं - ७वा और ८वा उसके ऊपर एक कल्प है जिसमे दो स्वर्ग हैं—शुक्र और महाशुक्र। उसके ऊपर ८वाँ कल्प हैं जिसमे दो स्वर्ग हैं शतार और सहस्रार। इससे ऊपर दो कल्प हैं जिनमे दो स्वर्ग हैं—१३वा और १४वा। उसके ऊपर दो कल्प हैं जिनमे १५वा १६वा स्वर्ग हैं पहले के चार स्वर्गो मे और अन्त के चार स्वर्गो मे एक-एक इन्द्र हैं और मध्य के दो-दो स्वर्गो मे एक-एक इन्द्र है। जैसे बीच के ८ स्वर्गो मे इस तरह रचना है कि ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गो मे एक ही ब्रह्म इन्द्र है, लातव और कापिष्ठ स्वर्गो मे एक ही लातव इन्द्र है शुक्र और महाशुक्र स्वर्गो मे एक ही शुक्र इन्द्र है, और शतार सहस्रार स्वर्गो मे एक ही शतार इन्द्र है। शेष नीचे के चार और ऊपर के चार स्वर्गो मे पृथक्-पृथक् एक-एक इन्द्र है।

प्रथम कल्प मे ३१ पटलो मे वैमानिकों के विमानो का निर्देश—इस भूमितल से जोकि यह रत्नप्रभा पृथ्वी का ऊपरी भाग है इस भूमि से ऊपर ९९०४० योजन ऊँचे पहले दूसरे स्वर्ग का कल्प है। इन दोनो कल्पो मे ३१ पटल हैं। १-१ पटल मे सब तरह के विमानो की रचना होती है। जिसके बीच मे एक विमान चारो श्रेणियो मे पक्तिबद्ध विमान और विदिशाओ मे फैले हुए विमान। ऐसी रचना के इस पटल से कुछ ऊपर चलकर कुछ आकाश छोडकर दूसरे पटल की रचना है फिर तीसरे पटल की रचना है। ऊपर-ऊपर चल चलकर पटल हैं कुल ऐसे ३१ पटल हैं और उन ३१ पटलो मे ही सौधर्म स्वर्ग भी है, ऐशान स्वर्ग भी है, दक्षिण मे व पास के दोनो दिशाओ मे याने पूर्व और पश्चिम दिशा मे और इनके बीच जितने विमान आयें वे सब ३१ ही पटलो मे पहला स्वर्ग कहलाता है और उत्तर दिशा मे व उन पटलो की दोनो विदिशा मे व बीच मे सभी मे फैले हुए विमान ऐसे ३१ पटलो मे जितने हैं वे सब ऐशान स्वग कहलाता है। इन पटलो के नाम इन्द्रक विमानो के नाम पर रखे गये हैं, अर्थात बीच का जो विमान है उसका जो नाम है वही इन पटलो के नाम हैं। इन इन्द्रक विमानो के नाम इस प्रकार हैं—ऋतु, चन्द्र, विमल, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, लोहित, काचन, वञ्चन, मारुतञ्ज, ह्रीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अक, स्फटिक, तपनीय, मेघ, हारिद्र, पद्म, लोहिताक्ष, वज्र, नन्द्यावर्त, प्रभकर, पिष्टाक, गज, मस्तक चित्र और प्रभा। इस जम्बूद्वीप मे जो बीच मे मेरु पर्वत है जिसका नाम रखा है मन्दर। उस मेरु की जो चूलिका के ऊपर याने मेरु की चोटी का जो अग्र भाग है उसके ऊपर ऋतु विमान है। जो पहले स्वर्ग के पटल के बीच मे है, उस ऋतु विमान का और मेरु की चोटी के ऊपरी भाग का अन्तर केवल एक बाल बराबर मोटाई है। इस ऋतु विमान से चारो ओर दिशाओ मे ४ विमानो की श्रेणिया निकली हैं। प्रत्येक श्रेणी मे ६२-६२ विमान हैं। इस प्रकार पहले पटल मे श्रेणी विमान २४८ श्रेणी विमान हैं। इस पहले पटल मे विदिशाओ मे फैले हुए अर्थात क्रम से नही किंतु कही भी अवस्थित प्रकीर्णक विमान है। इतने विमान एक पटल मे हैं। इसके ऊपर दूसरा पटल है वहाँ बीच में चन्द्र विमान है और उसके चारो

ओर श्रेणियो मे पहले पटल से १-१ कम है अर्थात ६१-६१ विमान हैं। फैले हुए भी विमान हैं। इस तरह ऊपर के पटलो मे जैसे-जैसे ऊपर चढें तो १-१ विमान श्रेणियो मे कम होते गये, और अन्त का जो पटल है, प्रभा नाम का, उसकी प्रत्येक दिशाओ मे ३२-३२ विमान हैं।

सौधर्म इन्द्र के आवास और परिवार का विवरण—अब यहाँ यह जानना चाहिए कि सौधर्म नामक इन्द्र का निवास कहाँ रहता है। तो ऊपर का जो पटल है प्रभा नाम का उसकी दक्षिण श्रेणी मे ३२ विमान हैं। उनमे जो १८वें नम्बर का श्रेणी का विमान है वह है इन्द्र का आवास वाला विमान। इसी को ही सौधर्म कल्प का विमान कहा जाता है। यहाँ ही बहुत खास-खास इन्द्र से सम्बन्धित रचनायें है। सौधर्म इन्द्र के कल्प विमान मे तीन प्रकार के और विमान हैं जिनमे तीन प्रकार पाये जाते है —नाम उनके ये है—(१) स्वस्तिक (२) वर्द्धमान और (३) विश्रुत। विश्रुत नामक बाह्य प्रकारो मे रहने वाले तो अनिक और पारिषद देव हैं, मध्य प्रकार मे वर्द्धमान त्रायस्त्रिस देव हैं और इनका जो भीतरी प्रकार है स्वस्तिक, उसमे सौधर्म नामक इन्द्र रहता है, उसका यहाँ स्थान है। उस विमान के चारो दिशाओ मे ४ नगर हैं, जिनके नाम है—काचन, अशोकमन्दिर, मरतारऔर गल्प। इस विमान के इन नगरो मे ३२ लाख विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिस है, ८४ लाख आत्मरक्ष हैं, ३ परिषद हैं, ७ सेनाए है, ८४ हजार सामानिक हैं, ४ लोकपाल हैं। इस सौधर्म के इन्द्र के ८ अग्रदेवियाँ हैं —जिनके नाम हैं—पद्मा, शिवा, सुजाता, सुलसा, अन्जुका, कालिन्दी, श्यामा और भानु। अग्रदेवियो के अलावा ४० हजार प्रियदेवियाँ हैं। ये सभी देवियाँ और अग्र देवियाँ ५ पल्य की आयु वाली हैं, और ये सब १६ हजार देवियो के परिवार सहित है। १-१ अग्र देवी और वल्लभिका ये सब १६-१६ हजार देवी रूपो का विकार करने मे समर्थ हैं। इन्द्र की जो ३ सभायें हैं जसे कि यहाँ भी किसी सस्था मे ३ सभायें होती है—(१) जनरल सभा, (२) प्रबन्ध सभा और (३) कार्यकारिणी सभा। इनमे उत्तरोत्तर सख्यायें कम होना स्वाभाविक है। ऐसे ही इन्द्रो की तीन सभाये है—(१) अन्तरग (२) मध्यम (३) बाह्य सभा। अन्तरग सभा का नाम है समिता। वहाँ ५ पल्य की आयु वाले १२ हजार देव उस सभा के पारिषत्क (सदस्य) हैं। इन्द्र की जो मध्यम सभा है उसका नाम है चन्द्र सभा। उसमे ४ पल्य की आयु वाले १४ हजार देव सदस्य हैं। सौधर्म इन्द्र की जो बाह्य सभा है उसका नाम है जातु। इसमे तीन-तीन पल्य की आयु वाले १६ हजार देव सदस्य हैं। भीतरी सभा मे रहने वाले प्रत्येक देवो की देवियाँ ७००-७०० हैं, उनकी आयु ढाई पल्य प्रमाण है। इन्द्र की मध्यम सभा मे जो देव हैं उन प्रत्येक देवो की देवियाँ छह-छह सौ हैं, जिनकी आयु दो पल्य की है। बाह्य सभा के प्रत्येक देवो की देवियाँ ५-५ सौ हैं, जिनकी आयु डेढ पल्य प्रमाण है। सौधर्म इन्द्र की जो अग्र देवियाँ हैं उनके भी तीन-तीन सभायें हैं अन्तरग सभा मे २०० देवियाँ है, मध्यम सभा मे ६०० देवियाँ है और बाह्य सभा मे ५०० देवियाँ हैं। इन तीनो ही सभाओ मे जो देवियाँ हैं वे ढाई पल्य की स्थिति आयु वाली हैं।

सौधर्म इन्द्र के अनीक व अनीकपरिवार का वर्णन—सौधर्म इन्द्र की ७ सेनायें हैं उन ७ सेनाओ के नाम हैं—पदाति, अश्व, गज, वृषभ, रथ, नर्तकी और गधर्व। इन देवो की प्रत्येककी आयु एक पल्य प्रमाण है। और इनके जो प्रधान हैं, ७ सेनाओ के जो मुख्य है वह भी एक पल्य आयु वाली होती है। पदाति सेना मे जो मुख्य है उसका नाम है वायु। यह वायु नाम का सेनापति ७ कक्षाओ के परिवार वाला है, याने कक्षा का अर्थ डिवीजन। पहली कक्षा मे ८४ लाख पदाति हैं दूसरी

कक्षा मे इससे दुगने हैं, तीसरे मे इससे दुगने हैं, ऐसी ७ सेनाओ तक ७ कक्षाओ तक दुगने दुगने पदातियो की सख्या है। अश्वो की जो सेना है उसके सेनापति का नाम है हरि और गज सेना के सेनापति का नाम है ऐरावत। वृषभ सेना का सेनापति है दाँमपस्ति, रथ सेना का सेनापति है मातुली। नर्तकी सेना की जो महत्तरिका है उसका नाम है नोलाजना, गधर्व सेना का महत्तर है अरिष्टयशस्क। इस तरह इन ६ सेनाओ की सख्या पदाति की सख्या के बराबर है और यह सब विक्रिया के द्वारा की गई है। इन सभी सेनाओ मे देव हैं और उन देवो का रूप सुन्दर है मनुष्यो के आकार वाला है। बडे सुखी हैं। इनको जब कभी वर्षों मे क्षुधा वेदना होती है तो इनके कण्ठ से अमृत झरता है, ऐसी विशेषता के ये हैं तो भी ऐसा ही कर्मो का उदय है, ऐसा ही नियोग है कि ये दव इन-इन प्रकार के रूपो के धारण करने मे नियुक्त हुआ करते है। तो यह जो सेना बताई गई है इतनी लम्बी लम्बी सख्या मे यह सब विक्रियाकृत है, और प्राकृत सेना मे एक एक सेना की सख्या ६०० है। उन प्राकृत देवो की जो ६०० सख्या है उनके एक एक देव की छह छह सौ द वयाँ हैं। प्रत्येक देवी छह छह देवियो का रूप विक्रिया करने मे समर्थ है। ये डेढ पल्य आयु वाली हैं। सातो ही सेनाओ के एक एक देव के छह छह सौ देवियाँ हैं, वे डेढ पल्य आयु वाली और ६ देवी रूप की विक्रिया करने मे समर्थ हैं।

सौधर्म इन्द्र के आत्मरक्ष और आभियोग्य देवो का सपरिवार वर्णन—सौधर्म इन्द्र के आत्मरक्ष ८४ हजार है उन सबकी आयु एक पल्य की है और एक-एक देव के दो-दो सौ देवियाँ हैं। प्रत्येक देवी ६ देवी रूप की विक्रिया करने मे समर्थ हैं। कुछ अधिक अर्ध पल्य की आयु है। यह सब सौधर्म इन्द्र का परिकर बताया जा रहा है। सौधर्म इन्द्र इन सब मे प्रधान यो माने गये हैं कि तीर्थंकर भगवान का गर्भ जन्म आदिक कल्याणक होता है, उन सब कल्याणको की शोभा रचना प्रबन्ध का यह मुखिया होता है। उसकी आज्ञा मे कुबेर आदिक सब अपना-अपना काम करने मे नियुक्त रहा करते हैं। सौधर्म इन्द्र के जो आभियोग्य देव हैं उनमे मुख्य देव का नाम है बालक, इसकी एक पल्य की आयु है और जम्बूद्वीप प्रमाण यान और विमान की विक्रिया करने मे समर्थ है इसके ६०० देवियाँ प्रत्येक देवो ६ देवी रूप की विक्रिया करने मे समर्थ है सबकी आधे-आधे पल्य की स्थिति है।

सौधर्म इन्द्र के लोकपालो का सपरिवार वर्णन—सौधर्म इन्द्र के ४ लोकपाल हैं जो प्रत्येक दिशाओ मे एक-एक लोकपाल है। लोकपाल भी बहुत पुण्यवान देव है, इसके प्रति समस्त देवो का बडा आदर होता है। लोकपाल भी एकभवावतारी होता है। अर्थात देव भव छोडकर मनुष्यभव प्राप्त करता है यह और उसी भव से मोक्ष चला जाता है। तो पूर्व दिशा मे स्वयम्‌प्रभ विमान है, उसमे सोम नाम का लोकपाल रहता है, जिसकी ढाई पल्य की आयु है उसके ४ हजार सामानिक देव हैं जोकि ढाई पल्य की आयु वाले है, ४ हजार देवियाँ हैं, वे भी ढाई पल्य की आयु की है। ऐसे ये सब ४ लोकपाल हैं, इन चारो लोकपालो की ४-४ अग्र देवियाँ हैं। वे भी ढाई पल्य की आयु वाली हैं। इन लोकपालो के भी ३-३ सभायें होती हैं जिनमे सोम नाम के लोकपाल की भीतरी सभा का नाम है ईषा जिसमे ५० देव हैं जो सवा पल्य की आयु वाले हैं इसके मध्यम सभा का नाम है दृढा। इसमे ४०० देव सदस्य हैं जो सवा पल्य की आयु वाले हैं इस लोकपाल की बाह्य सभा का नाम है चतुरता इसमे ५०० देव सदस्य हैं और सवा पल्य की आयु वाले हैं। दक्षिण दिशा मे वरिष्ट नामक विमान है जिसमे यम नाम का लोकपाल है जिसका वैभव आदिक सब सोम नाम के लोकपाल की तरह है।

पश्चिम दिशा मे अंजन नामक विमान मे वरुण नाम का लोकपाल है, उसकी कुछ कम तीन पल्य की आयु है, इसकी तीन-तीन सभाये है। भ तरी सभा का नाम है ईषा। उसमे ६० देव सदस्य है, डेढ पल्य की आयु वाले हैं, मध्यम सभा का नाम है दृढा, जिसमे ५०० देव सदस्य है, कुछ कम डेढ पल्य की आयु है, इसकी बाहरी सभा का नाम है चतुरगा, उसमे ६०० देव सदस्य है और उनकी आयु कुछ अधिक आधे पल्य की है। तीनो ही सभाओ मे रहने वाले देवो की देविया हैं। शेष परिवार वैभव सोम नामक लोकपाल की तरह है। उत्तर दिशा मे बल्गू नामक विमान मे वैश्रवण नामक लोकपाल है जिसकी आयु तीन पल्य की है, उसकी भी तीन सभायें है। अन्तरग सभा का नाम है ईषा, उसमें ७० देव सदस्य हैं, डेढ पल्य की आयु वाले हैं, मध्यम सभा का नाम दृढा है, जिसमे ६०० देव सदस्य है, कुछ कम अर्द्ध पल्य की आयु वाले हैं। बाहरी सभा का नाम चतुरता है। उसमे ७०० देव सदस्य हैं, कुछ अधिक एक पल्य की आयु वाले है। तीनो ही सभाओ मे उनके देवो की जो आयु है उससे आधी आयु वाली देवियाँ है, शेष वैभव सोम नामक लोकपाल की तरह है। ये चार सौधर्म इन्द्र के लोकपाल हैं। इनके प्रत्येक की अप्सराये साढे तीन करोड की सख्या मे हैं। सौधर्म का जो इन्द्रक विमान है उस ३१वें पटल के श्रेणी विमान ४३७१ हैं और फैले हुये फुटकर विमान पुष्प प्रकोर्णक विमान ३१९५५९८ (इकतीस लाख पचानबे हजार पाच सौ अठ्ठानवे) है। ये सारे विमान मिलकर ३२ लाख विमान हैं। यह सब सौधर्म कल्प का वर्णन है, उन ३१ ही पटलो मे जितनी जो कुछ दक्षिण दिशा, पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा और इनके भीतर की जो कुछ रचना है वह सब सौधर्म नामक स्वर्ग कहलाता है।

द्वितीय कल्प ऐशान स्वर्ग के अधिपति ईशान इन्द्र के परिकर का वर्णन—प्रभा नामक ३१ वे इन्द्रक विमान से उत्तर दिशा मे ३२वें विमानो से शोभित जो १८वाँ कल्प विमान है उसका स्वामी ईशान नामक इन्द्र है, उसका परिवार सौधर्म इन्द्र के परिवार के समान है। उसके २८ लाख विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिंश है, ८० हजार सामानिक देव हैं। ईशान इन्द्र की भी तीन सभायें सात सेनाए हैं, ८० हजार आत्मरक्ष चार लोकपाल हैं। ईशान इन्द्र के ८ अग्र देविया हैं जिनके नाम है—श्रीमती, सुसीमा सुमित्रा, वसुन्धरा, जया, जयसेना, अमला और प्रभा। ईशान इन्द्र के ३२ हजार बल्लभिका हैं, ये बल्लभिकायें अग्र देवियो की तरह प्रिय हैं और अन्य देवियो से विशेप स्थान पाती हैं। इनकी आयु ७ पल्य की है। ईशान इन्द्र के भीतरी सभा का नाम समिता है जिनमे १० हजार देव सदस्य हैं जिनकी आयु ७ पल्य की है। ईशान इन्द्र के मध्यम परिषद का नाम चन्द्रा है, जिसके सदस्य १२ हजार देव है। वे सब ६ पल्य की आयु वाले हैं। ईशान इन्द्र की बाहरी सभा का नाम जातु है, जिसमे १५ हजार देव सदस्य हैं, उन सबकी ५ पल्य की आयु है। ईशान इन्द्र की जो ७ सेनाये हैं उन सेनाओ के जो प्रधान है उनके नाम इस प्रकार हैं—पदाति सेना का महत्तर है लघु पराक्रम। अश्व सेना का प्रधान है अमित गति, वृषभ सेना का प्रधान है द्रुमकात, रथ सेना का महत्तर है, किन्नर, गज सेना का प्रधान है पुष्पदन्त, गधर्व सेना का प्रधान है गीतयशा और नर्तकी सेना की महत्तरिका है श्वेता। इन सब सेनाओ मे से पदाति सेना के प्रधान की ७ कक्षायें हैं, जिनकी पहली कक्षा मे ८० हजार देव हैं। दूसरी कक्षा मे इससे दूने हैं इस तरह आगे दूने-दूने देव ७वी कक्षा तक होते हैं। शेष सेनाओ की विक्रिया भी सख्यात हैं वे सब सेना के देव और उनके प्रधान कुछ अधिक एक पल्य की आयु वाले होते है। ऐशान स्वर्ग के दक्षिण दिशा मे सम नामक विमान मे सोम नाम का लोकपाल

है, जिनकी आयु साढे चार पल्य की है। तीन सभायें हैं, जिनमे भीतरी सभा मे ६० देव सदस्य हैं, मध्यम सभा मे ५०० देव सदस्य हैं, बाह्य सभा मे ६०० देव सदस्य है पश्चिम दिशा मे सर्वतोभद्र नाम के विमान मे यम नाम का लोकपाल है, जिसकी साढे चार पल्य की आयु है। शेष वर्णन सोम नामक लोकपाल की तरह है। उत्तर दिशा मे सुभद्र नाम के विमान मे वरुण नाम का लोकपाल है, जिसकी आयु ५ पल्य की है, उसकी भी तीन सभायें हैं। भीतरी सभा में ८० देव हैं, मध्यम सभा मे ७०० देव सदस्य हैं। बाह्य सभा मे ८०० देव सदस्य हैं। पूर्व दिशा मे अमित नामक विमान वैश्रवण नामक लोकपाल है। जिसकी आयु पौने पाच पल्य की है। उसके भीतरी सभा मे ७० देव सदस्य हैं, मध्यम सभा मे ६०० देव सदस्य हैं, बाहरी सभा मे ७०० देव सदस्य हैं, ईशान इन्द्र का जो मुख्य आभियोग्य है इसका नाम है पुष्पक। यह बालक के समान है और जम्बूद्वीप प्रमाण यान विमान रूप विक्रिया करने मे समर्थ है। इस देव का यही नियोग है कि अपने स्वामी के विहार आदिक के समय किसी यान विमान आदिक की विक्रिया करते हैं। शेष सब कुछ वर्णन सौधर्म स्वर्ग की तरह जानना। इस तरह उत्तर श्रेणी के विमान और आसपास के फैले हुये प्रकीर्णक विमान इन सबका स्वामी ईशान इन्द्र है, जिसका वर्णन हुआ। यहाँ तक प्रथम और द्वितीय स्वर्ग का वर्णन समाप्त होता है।

सानत्कुमार नामक तृतीय कल्प तृतीय स्वर्ग के अधिपति सनत्कुमार इन्द्र के परिकर का वर्णन—३१वें पटल से ऊपर बहुत हजार योजन ऊचे, तीसरा, चौथा कल्प शुरू होता है, जिसका नाम है सानत्कुमार और माहेन्द्र। उन दोनो स्वर्गों के ७ पटल हैं, जिनके इन्द्रक विमानो के नाम क्रमश. अजन, वकमाल, नाग, गरुण, लागल, बलभद्र और चक्र हैं। अजन विमान से चारो दिशाओ मे चार विमान श्रेणियाँ निकली हैं और विदिशाओ मे फैलफुट प्रकीर्णक विमान है, एक-एक विमान श्रेणी मे ३१ विमान है और इस तरह ऊपर के पटलो मे एक-एक कम श्रेणी विमान होते गये हैं। दूसरे पटल के चारो ओर ३०-३० श्रेणी विमान हैं, तीसरे पटल मे २९-२९ श्रेणी विमान हैं। इस तरह एक-एक कम होते चले गये हैं अन्तिम ७वें पटल तक। तीसरे, चौथे कल्प मे ७ पटल हैं और उन पटलो मे एक-एक इन्द्रक विमान है और चारो श्रेणियो मे श्रेणी विमान हैं, उनका अन्तर याने एक विमान से दूसरे विमान तक का अन्तर लाख-लाख योजन है। इन पटलो मे जो अन्तिम पटल है उसका चक्र नामक इन्द्रक विमान से दक्षिण श्रेणी मे सुशोभित १५ कल्प विमान हैं जो सौधर्म कल्प के विमान की तरह है। उसका अधिपति सनत्कुमार नाम का इन्द्र है। यह इस कल्प का दक्षिणेन्द्र है। इसके १२ लाख विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, ७२ हजार सामानिक देव हैं। तीन सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, ७२ हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं। इस तीसरे इन्द्र के ८ अग्र देवियाँ है जिनकी आयु ९ पल्य की है। एक-एक अग्र देवी १५ हजार देवियो के परिवार सहित हैं और वे ३२ हजार देवी के रूप विक्रिया करने मे समर्थ हैं। इस तृतीय इन्द्र के ८ हजार और वल्लभिकायें हैं, जिनकी आयु ९ पल्य की है और ३२ हजार देवी रूप विक्रिया करने मे समर्थ हैं सनत्कुमार इन्द्र की जो तीन सभायें हैं उनमे से जो भीतरी सभा है, जिसका नाम समिता है उसमे ८ हजार देव पारिषत्क हैं, जिनकी आयु साढे तीन सागर से कुछ अधिक है। मध्यम सभा का नाम चन्द्रा है, इसमे पारिषत्क १० हजार देव हैं जिनकी आयु कुछ अधिक साढे तीन सागर है। इस इन्द्र के बाहरी परिषद् जिनका नाम जातु है उस सभा मे १२ हजार देव पारिषत्क है जिनकी आयु कुछ अधिक साढे तीन सागर है। भीतरी सभा मे जो देव हैं उनकी प्रत्येक की देवियाँ सात-सात सौ हैं, जिनकी आयु ५ पल्य की है।

मध्यम सभा के देव की प्रत्येक की छह-छह सौ देविया हैं, जिनकी आयु ५ पल्य की है। बाहरी सभा के देवो के प्रत्येक के पाँच-पाच सौ देवियाँ है, जिनकी आयु ५ पल्य प्रमाण है। तृतीय इन्द्र के भी ७ सेनायें है। प्रथम सेना पदाति है, जिसकी ७ कक्षायें हैं। पहली कक्षा मे ७२ हजार देव हैं, दूसरे मे इससे दुगुने, तीसरे मे इससे भी दुगने, इस तरह दुगने-दुगने ७वी कक्षा तक जानना चाहिए। तो इन सब और भी शेष की बची हुई ६ सेनाओ मे उनके प्रधान है, जिनमे प्रत्येक प्रधान के ३०० देविया है, जिनकी ५ पल्य की आयु है। आत्मरक्ष देवो मे प्रत्येक के १००-१०० देवियाँ हैं जिनकी आयु ५ पल्य है। इस तृतीय इन्द्र के आभियोग्य देव बालक विमान मे रहते हैं, जिनकी आयु साढे तीन सागर है, उसके ३०० देवियाँ हैं जिनकी आयु ५ पल्य है।

सनत्कुमार इन्द्र के लोकपालो का सपरिवार वर्णन—अब तृतीय इन्द्र के लोकपाल का वर्णन करते हैं। ये लोकपाल सभी एक भवावतारी होते हैं। इनके निसर्गत. ज्ञान और वैराग्य की आभा रहती है। साथही समस्तदेवो कोआचरणन्याय आदिककी प्रेरणा करते रहते हैं, पूर्व दिशाओ मे स्वयप्रभ विमान मे रहने वाले सोम नामक लोकपाल हैं, दक्षिण दिशा मे वजेष्ठ नाम के विमान मे रहने वाला यम नाम का लोकपाल है। पश्चिम दिशा मे स्वयंजन नाम के विमान मे रहने वाला वरुण नाम का लोकपाल है, और उत्तर दिशा मे वल्गु विमान मे रहने वाला वैश्रवण नाम का लोकपाल है, इस लोकपाल के प्रत्येक के एक-एक हजार सामानिक देव हैं, एक-एक हजार देवियाँ है, चार अग्र देवियाँ हैं, तीन सभायें हैं, सोम और यम नाम के लोकपाल की आयु एक सागर की है और वरुण नाम के लोकपाल की आयु सवा सागर है। वैश्रवण नाम के लोकपाल की आयु डेढ सागर की है। सोम और यम इन दो लोकपालो की भीतरी सभा मे ४०० देव हैं, मध्यम सभा मे ३०० देव हैं। बाह्य सभा मे ४०० देव हैं और वरुण नाक के लोकपाल की भीतरी सभा मे ५० देव है, मध्य सभा मे ४०० देव हैं। बाह्य सभा मे ५०० देव हैं, वैश्रवण नाम के लोकपाल की भीतरी सभा मे ६० देव, मध्यम सभा मे ५०० देव, बाह्य सभा मे ६०० देव हैं, चारो ही लोकपालो की भीतरी सभा मे देवो की आयु तीन सागर है, प्रत्येक की १००-१०० देविया हैं और इनके ही चारो मध्यम सभाओं मे देवो की आयु कुछ कम तीन सागर है। प्रत्येक देव की ७० देविया है। चारो ही बाह्य सभाओ मे जो देव हैं उनकी ढाई सागर की आयु है, प्रत्येक के ५० देविया है। इस प्रकार सानत् कुमार नामक इन्द्र के वभव का वर्णन हुआ।

माहेन्द्र नामक तृतीय कल्प, तृतीय स्वर्ग के अधिपति महेन्द्र इन्द्र के परिकर का वर्णन—अब महेन्द्र नामक इन्द्र के परिवार और वैभव का वर्णन करते हैं। तृतीय कल्प के अन्तिम पटल के चक्र नामक इन्द्रक विमान से उत्तर दिशा मे श्रेणीबद्ध विमानो मे २५ विमान से सुशोभित १५ कल्प विमान हैं, जिनका अधिपति महेन्द्र नामक इन्द्र है। इसके ७ लाख विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, ७० हजार सामानिक हैं, तीन सभायें है, ७० हजार आत्मरक्ष है, चार लोकपाल है, ८ अग्र देविया है, अग्र देवियो की आयु ११ पल्य है, इसी प्रकार ८ हजार वल्लभिकायें भी हैं। उनकी भी आयु अग्र रानियो की तरह है। ये रानियाँ वल्लभिकायें कितने परिवार सहित है, कितने रूप की विक्रिया कर सकती हैं यह सब तृतीय इन्द्र के अग्र देवियो और वल्लभिकाओं की तरह है। माहेन्द्र नामक इन्द्र की जो तीन सभायें हैं उनमे से भीतरी सभा मे ६ हजार देव हैं, मध्यम सभा मे ८ हजार देव है और बाह्य सभा मे १० हजार देव हैं। इन तीनों ही सभाओ मे देवों की आयु तृतीय

इन्द्र की सभा के देवो की आयु की तरह है। महेन्द्र नामक इन्द्र के ७ सेनायें हैं, जिनके प्रधान का वर्णन ऐशान इन्द्र के प्रधानो की तरह जानना। ७ सेनाओ मे पदाति सेना मे ७ डिव.जन (कक्षा) हैं, उसकी प्रथम कक्षा मे ७० हजार देव हैं, उससे दूने दूसरी कक्षा मे हैं, उससे दूने तीसरी मे। इससे दुगने-दुगने ७वी कक्षा तक पाये जाते हैं। शेष सेनाओ मे भी इसी तरह प्रधान आदिक जानना। जिनके प्रत्येक प्रधानो की ३०० देविया हैं जो ७-७ (सात-सात) पल्य की आयु वाली हैं, आत्मरक्षो की आयु कुछ अधिक साढे तीन सागर है। प्रत्येक आत्मरक्षो के १००-१०० देवियाँ है, जिनकी आयु प्रत्येक की ७ पल्य है। इस चौथे इन्द्र के भी चार लोकपाल हैं। दक्षिण दिशा मे सोम लोकपाल है जो सम नाम के विमान मे रहता हैं। पश्चिम दिशा मे यम नाम का लोकपाल है जो सर्वतोभद्र नाम के विमान मे रहता है। उत्तर दिशा मे वरुण नाम का लोकपाल है जिसका आवास सुभद्र नामक विमान मे है। पूर्व दिशा मे वैश्रवण नामक लोकपाल है, जिसका आवास समित विमान है। प्रत्येक लोकपाल के एक-एक हजार सामानिक देव हैं, एक-एक हजार देवियाँ है, चार अग्र रानिया है, तीन सभायें हैं। वरुण नामक लोकपाल की साढे तीन सागर आयु है। उससे कुछ कम आयु सोम और यम नाम के लोकपाल की है। सोम और यम लोकपाल की भीतरी सभा में ५० देव हैं, मध्यम सभा मे ४०० देव हैं, बाह्य सभा मे ५०० देव हैं, वैश्रवण नामक लोकपाल की भीतरी सभा मे ६० देव हैं, मध्यम सभा मे ५०० देव हैं, बाह्य सभा मे ६०० देव हैं, वरुण नाम के लोकपाल की भीतरी सभा मे ७० देव हैं, मध्यम सभा मे ६०० देव हैं, बाह्य सभा मे ७०० देव हैं। इन सभी लोकपालो की भीतरी सभा मे जो देव हैं उनके प्रत्येक के १००-१०० देवियाँ हैं। मध्यम सभा के देवो के प्रत्येक के ७० देवियाँ हैं, बाह्य सभा के देवो के प्रत्येक के ५० देविया हैं। उन देवो का आयु करीब ३ सागर है। महेन्द्र नाम के इन्द्र का जो आभियोग्य देव है उसका आवास पुष्पक विमान मे है। इस आभियोग्य देव की आयु कुछ अधिक साढे तीन सागर की है। इस प्रकार तृतीय और चतुर्थ कल्प का वणन हुआ।

ब्रह्म स्वर्ग का वर्णन—तृतीय, चतुर्थ कल्प के अन्तिम पटल से ऊपर बहुत लाख योजन ऊचे ब्रह्मलोक व ब्रह्मोत्तर कल्प हैं। इन कल्पो के चार पटल हैं, जिन पटलो के इन्द्रक विमान के नाम हैं, अथवा उन्ही नामो से पटल के नाम है—अरिष्ट, दत्र समित, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर। पहले पटल के इन्द्रक विमान से चारो दिशाओ मे चार विमान श्रेणियाँ निकली हैं, प्रत्येक दिशा मे २४ विमान है, वि दशाओ मे फैले हुये प्रकीर्णक विमान हैं, इससे ऊपर के पटल मे श्रेणी के विमानो मे एक कम है अर्थात् २३ है, उसके बाद तोसरे पटल मे २२ हैं, चौथे पटल मे २१ हैं। उन पटलो का अन्तर बहुत लाख योजन है। इनके अन्तिम पटल के इन्द्रक विमान से दक्षिण की श्रेणी जो २१ विमानो से शोभित है उसमे १२वा जो कल्प विमान है, उसका अधिपति ब्रह्म नाम का इन्द्र है। उसके विमान कुछ अधिक २ लाख हैं, ३३ त्रायस्त्रिश हैं, ३६ हजार सामानिक हैं, ३ सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, ३६ हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं। पद्मा आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु १३ पल्य की हैं और प्रत्येक अग्र रानी का परिवार ४ हजार देविया हैं। इस इन्द्र के २ हजार वल्लभिकायें हैं, जिनकी आयु १३ पल्य की है। प्रत्येक अग्र रानी तथा वल्लभिका ६४ हजार देवो रूपो की विक्रिया करने मे समर्थ है। इस इन्द्र के तीन परिषद हैं, जिनमे भीतरी परिषद मे ४ हजार देव हैं, जिनकी ८ सागर आयु है। भीतरी परिषद के देवो के प्रत्येक के ५०-५० देविया हैं, मध्यम परिपद के देवो

के ४०-४० देवियाँ है, बाहरी परिषद के देवो के ३०-३० देविया हैं। ब्रह्मेन्द्र की ७ सेनायें हैं, जिनके प्रधान साढे सात सागर की आयु के हैं, उनमे पदाति सेना के प्रधान हैं वायु, जिसकी ७ कक्षायें हैं। पहली कक्षा मे ३६ हजार देव है, दूसरे मे इससे दुगुने है, तीसरी मे इससे दुगुने हैं, यो दुगुने-दुगुने ७वी कक्षा तक है। इस सेना प्रधान के परिवार मे ढाई सौ-ढाई सौ देवियाँ व चार-चार अग्र देविया हैं, आत्मरक्ष देव की आयु साढे सात सागर है और प्रत्येक आत्मरक्ष के ५० देवियाँ है। इस इन्द्र का भी वालक नामक आभियोग्य देव है। इस इन्द्र के पूर्व आदिक दिशाओं मे चार लोकपाल हैं। सोम नाम का लोकपाल स्वयप्रभ विमान मे रहता है। यम नाम का लोकपाल वरज्येष्ठ विमान मे रहता है। वरुण नाम के लोकपाल का आवास स्वयजन विमान है। वैश्रवण नामक लोकपाल का आवास वल्गु विमान है, उन प्रत्येक लोकपालो के ५०० सामानिक हैं। चार अग्र देविया हैं, साढे सात सागर की आयु का धनद लोकपाल है। उससे कम आयु वरुण लोकपाल की है, उससे भी कम आयु सोम तथा यम लोकपाल की है। इस लोकपाल की भी तीन-तीन सभाये होती हैं जिनमे सोम यम लोकपाल की भीतरी सभा मे ३० देव हैं, मध्यम सभा मे २०० देव है, बाह्य सभा मे ३०० देव हैं। वरुण नामक लोकपाल की भीतरी सभा मे ४० देव है, मध्यम सभा मे ३०० देव हैं, बाहरी सभा मे ४०- देव है। वैश्रवण के लोकपाल की भीतरी सभा मे ५० देव हैं, मध्यम सभा मे ४०० देव हैं, बाह्य सभा मे ५०० देव हैं, भीतरी सभाओ मे इन चारो मे जो देव हैं उनकी आयु ८ सागर है, मध्यम सभा के देवो की आयु कुछ कम ८ सागर है। बाहरी सभा के देवो की आयु साढे सात सागर है। भीतरी सभा के देवो की देवियाँ ५०-५० है, मध्यम सभा के देवो की देवियाँ ४०-४० है, बाह्य सभा के देवो की देवियाँ ३०-३० हैं। यहाँ तक ब्रह्म स्वर्ग का वर्णन हुआ।

ब्रह्मोत्तर स्वर्ग का वर्णन—इसी पाचवे कल्प मे ब्रह्मोत्तर स्वर्ग भी है जिसके अन्तिम पटल के उत्तर श्रेणी के २१ विमानो मे जो १२वाँ कल्प विमान है उसका अधिपति ब्रह्मोत्तर नाम का प्रतीन्द्र है, जिसके कुछ कम २ लाख विमान हैं ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, ३२ हजार सामानिक देव है। ३ सभाये है, ७ सेनायें हैं, ३२ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं, ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु १५ पल्य प्रमाण है। २ हजार बल्लभिकायें हैं इनकी भी आयु १५ पल्य है। ब्रह्मोत्तर प्रतीन्द्र के भी तीन सभाये है। भीतरी सभा मे २ हजार देव हैं, मध्यम सभा मे ४ हजार देव हैं और बाहरी सभा मे ६ हजार देव है। इन परिषदो का परिवार आदिक वर्णन ब्रह्मेन्द्र की तरह समझना, इसका भी पुष्पक नाम का आभियोग्य देव है। इस प्रतीन्द्र की भी ७ सेनायें हैं, जिसमे पदाति सेना की प ली कक्षा मे ३२ हजार देव हैं अगली कक्ष मे दुगुने-दुगुने देव हैं, इनके भी दक्षिणादिक दिशाओ मे सोम आदिक चार लोकपाल हैं, जिनका परिचय ब्रह्मेन्द्र के लोकपाल की तरह है। यहा तक ५वें कल्प का वर्णन समाप्त होता है।

लांतव कापिष्ठ स्वर्ग का वर्णन—इस कल्प के अन्तिम पटल के विमान से लाखो योजन ऊपर लातव और कापिष्ठ नाम का कल्प आता है इस कल्प मे दो पटल हैं जिनके नाम हैं ब्रह्म हृदय और लातव। आखिरी पटल मे जो लातव नाम का इन्द्रक विमान है उसके दक्षिण श्रेणी मे १९ विमान हैं जिनमे ९वाँ जो कल्प विमान है, इसका अधिपति लातव नाम का इन्द्र है, जिसके कुछ अधिक २५ हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, २४ हजार सामानिक हैं, ३ सभाये हैं, ७ सेनाये है, २४ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं, ८ अग्र रानिया हैं जिनकी आयु १० पल्य की है, प्रत्येक

अग्र रानी २ हजार देवो के परिवार सहित है, अन्य भी ५०० वल्लभिकायें हैं। इस इन्द्र की भीतरी सभा मे एक हजार देव है, जिनकी आयु प्रत्येक की कुछ अधिक १० सागर है। इनके प्रत्येक के ८७ देवियां है, मध्य सभा मे २ हजार देव हैं। प्रत्येक की आयु कुछ कम १० सागर है और देविया ७५-७५ हैं। बाहरी सभा मे ४ हजार देव हैं जिनकी आयु मध्यम परिषद के देवो की आयु मे कुछ कम है। प्रत्येक देव के ६३ देवियां हैं। इस लातव इन्द्र के बालक नाम का आभियोग्य देव है और ७ देवियां है, इनकी ७ सेनायें है, जिनके प्रधान की आयु मध्यम परिषद के देव की आयु के समान है। सबसे प्रथम कक्षा मे २४ हजार देव हैं, उससे दुगुने-दुगुने ७वी कक्षा तक समझना। प्रत्येक सेना प्रधान के ६०-६० देवियां हैं। इस इन्द्र के भी पूर्व आदिक दिशाओ मे ४ लोकपाल है, उनके प्रत्येक लोकपाल के ४०० सामानिक देव हैं। २५० देवियां हैं, चार अग्र देवियां हैं, तीन सभायें हैं, इन लोक-पालो के भी तीन-तीन सभायें हैं, जिनमे सोम और यम लोकपाल की भीतरी सभा मे २० देव हैं, मध्यम सभा मे १०० देव हैं। बाहरी सभा मे २०० देव हैं, वरुण नामक लोकपाल की भीतरी सभा मे ३० देव हैं, मध्य सभा मे २०० देव हैं, बाह्य सभा मे ३०० देव हैं, वैश्रवण लोकपाल के भीतरी सभा मे ४० देव है, मध्य सभा में ३०० देव हैं, बाह्य सभा में ४०० देव हैं, भीतरी सभा के देवो की आयु ११ सागर है, मध्य सभा के देवो की आयु कुछ कम ११ सागर है, बाहरी सभा के देवो की आयु उससे कुछ कम है। इन तीनो सभा के देवो की देवियां क्रम से २५, २० और १५ हैं।

कापिष्ठ स्वर्ग का वर्णन—छठे कल्प के द्वितीय पटल के लातव नामक इन्द्रक विमान से उत्तर श्रेणी मे जिसमे१६ विमान हैं, वहां ६वां कल्प विमान है। उसका अधिपति कापिष्ठ नाम का प्रतीन्द्र है। जिसके कुछ कम २५ हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, २२ हजार सामानिक हैं, तीक सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, २२ हजार आतमरक्ष है, चार लोकपाल हैं, ८ अग्र रानियां हैं, पांच सौ वल्लभिकायें हैं, ये सब देवियां १६ पल्य की आयु की है। सभी सेनाओ की प्रथम कक्षा मे २२ हजार देव हैं। शेष सब वर्णन लातव इन्द्र की तरह जानना।

शुक्र महाशुक्र स्वर्ग का वर्णन—लातव पटल से लाखो योजन ऊपर महाशुक्र नाम का पटल है। यह ७वां कल्प है जिसमे शुक्र और महाशुक्र नामक स्वर्ग है। महाशुक्र पटल का महाशुक्र इन्द्रक विमान है, इस इन्द्रक विमान से दक्षिण श्रेणी मे जिसमे कि १८ विमान हैं उसमे १२वां विमान कल्प विमान है उसमे शुक्र नाम के इन्द्र का आवास है। इस शुक्र नामक इन्द्र के कुछ अधिक बीस हजार विमान है, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं, चौदह हजार सामानिक देव हैं, तीन सभायें हैं, ७ सेनायें हैं, १४ हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल है, पद्मा आदिक ८ अग्र देवियां हैं। जिन देवियो का परिवार दस हजार देवियां हैं। शुक्र इन्द्र की वल्लभिकाए ढाई सौ हैं। प्रत्येक वल्लभिका और अग्र देवी २१ पल्य की आयु वाली है, २ हजार देवी रूप अथवा २०५६ देवी रूपो की विक्रिया करने मे वे समर्थ है। इन्द्र की भीतरी सभा मे पांच सौ देव १४ सागर की आयु वाले हैं। उनमे प्रत्येक के ४३ देवियां हैं। मध्यम सभा मे एक हजार देव हैं जिनकी कुछ कम १४ सागर आयु है, उनमे प्रत्येक की ३८ देवियां हैं, बाहरी सभा मे २ हजार देव हैं, जो मध्यम सभा के देवों की आयु से कुछ कम आयु वाले हैं, इन देवो मे प्रत्येक देव की ३५ देवियां है। ७ सेनाओ मे जो उनके प्रधान हैं, उनकी आयु बाहरी सभा के देवो की आयु के समान है। उन सबकी प्रथम कक्षा मे १४ हजार देव है, प्रत्येक देव के पचास देवियां है। अगली-अगली कक्षा मे देवो की दुगुनी-दुगुनी सख्या है। शुक्र इन्द्र का बालक नामक

आभियोग्य देव है। पूर्व आदिक दिशाओ मे पहले की तरह सोम आदिक ४ लोकपाल है। इनकी भी तीन-तीन सभायें है। सोम व यम लोकपाल की भीतरी सभा मे ८ देव है, मध्यम सभा मे पचास देव हैं, बाह्य सभा मे सौ देव हैं। यह वर्णन सोम और यम लोकपाल का है। वरुण की भीतरी सभा मे बीस देव है, मध्यम सभा मे सौ देव बाह्य सभा मे दो सौ देव है। वैश्रवण की भीतरी सभा मे बीस देव हैं, मध्यम सभा मे दो सौ देव और बाहरी सभा मे तीन सौ देव है। भीतरी सभा के देवो की आयु १५ सागर है, मध्यम सभा के देवो की आयु कुछ कम १५ सागर है। बाहरी सभा के देवो की आयु साढे चौदह है, इनकी देवियो की सख्या क्रम से बीस-पन्द्रह और दस है। यह शुक्र नाम के स्वर्ग का वर्णन है।

महाशुक्र स्वर्ग का वर्णन—अब महाशुक्र स्वर्ग कहाँ है यह बतलाते है। महाशुक्र इन्द्रक विमान से उत्तर श्रेणी मे जहाँ कि १८ विमान हैं, उनमे १२वाँ कल्प विमान है जिसका अधिपति महाशुक्र नामक प्रतीन्द्र है, जिसके विमान कुछ कम बीस हजार है, ३३ त्रायस्त्रिश है, १२ हजार सामानिक है, ३ सभाए है, ७ सेनाए है, १२ हजार आत्मरक्ष है, ४ लोकपाल है, श्रीमती आदिक ८ अग्र रानिया है, ढाई सौ बल्लभिकाए हैं, जिनकी आयु २३ पल्य की है, शेष वर्णन शुक्र स्वर्ग की तरह जानना। तीनो सभाए, ७ सेनाए इन सबका वर्णन शुक्र स्वर्ग की तरह जानना। सेनाओ की प्रथम कक्षा मे १२ हजार देव है आगे दुगने-दुगने हैं। आत्मरक्ष देवो का व पुष्पक नामक आभियोग्य देव का वर्णन शुक्रस्वर्ग के आत्मरक्ष व आभियोग्य की तरह का है, दक्षिण आदिक दिशाओ मे सोम आदिक चार लोकपाल है, जैसे शुक्र स्वर्ग की बाहरी सभा मे देवो की जो आयु है उतनी आयु वरुण लोकपाल की है उससे कुछ कम आयु वैश्रवण लोकपाल की है, उससे कुछ कम आयु सोम और यम लोकपाल की है। इस तरह यह शुक्र महाशुक्र स्वर्गों वाले ७वें कल्प का वर्णन हुआ।

शतार स्वर्ग का वर्णन—अब इस महाशुक्र पटल से लाख योजन ऊपर सहस्रार नाम का एक पटल है, जिसके दक्षिण मे शतार स्वर्ग है और उत्तर दिशा मे सहस्रार स्वर्ग है। सहस्रार इन्द्रक विमान से दक्षिण मे जिसमे कि १७ विमान हैं, उनमे ६वाँ कल्प विमान है, जिसका अधिपति शतार नाम का इन्द्र है, जिसके कुछ अधिक ३ हजार विमान हैं, ३३ त्रायस्त्रिश हैं, चार हजार आत्मरक्ष है, चार लोकपाल है, पद्मा आदिक ८ अग्र रानियाँ है, जिनकी आयु २५ पल्य की है। प्रत्येक अग्र देवी पाँच सौ देवियो के परिवार सहित है। जो १२ हजार देवी रूप की विक्रिया करने मे समर्थ है। इस इन्द्र के ६२ बल्लभिकाए है, अग्र रानियो की तरह इनकी आयु और विक्रिया है, इस इन्द्र की भीतरी सभा मे ढाई सौ देव है जिनकी आयु कुछ अधिक १६ सागर की है। वहाँ प्रत्येक देव की २१-२१ देवियाँ है, मध्यम सभा मे पाँच सौ देव है, जिनकी आयु भी कुछ कम १६ सागर है, प्रत्येक देव की १८ देवियाँ हैं, बाहरी सभा मे एक हजार देव है, जिनकी आयु मध्यम सभा के देवो की आयु से कुछ कम है। इन देवो के प्रत्येक के १५-१५ देविया है, ७ सेनाओ के प्रधान की आयु बाहरी सभा के देवो की आयु के समान है। सेना की प्रथम कक्षा मे ४ हजार देव है, जिनके प्रत्येक के चालीस-चालीस देवियाँ हैं। पूर्व आदिक दिशाओ मे सोम आदिक चार लोकपाल है, जिनमे वैश्रवण लोकपाल की आयु बाहरी सभा के देवो की आयु के बराबर है। उससे कम आयु वरुण नामक लोकपाल की है, उससे कम आयु सोम तथा यम लोकपाल की है। सोम और यम लोकपाल की भीतरी सभा मे ५ देव हैं, मध्यम सभा मे २५ देव हैं, बाहरी सभा मे

पचास देव हैं। वरुण नामक लोकपाल की भीतरी सभा मे दस देव हैं। मध्यम सभा मे पचास देव हैं, बाहरी सभा मे सौ देव हैं, वैश्रवण नामक लोकपाल की भीतरी सभा मे पन्द्रह देव हैं, मध्य सभा मे सौ देव हैं. बाहरी सभा मे २०० देव हैं, सभी के भीतरी सभा के देवो की आयु सत्तरह सागर है, मध्यम सभा के देवो की आयु कुछ कम सत्तरह सागर है, बाहरी सभा के देवो की आयु साढे सोलह सागर है, उन तीनो सभाओ के देवो की देवियाँ क्रमश. पन्द्रह, दस और पांच हैं। यह शतार स्वर्ग का वर्णन हुआ।

सहस्रार स्वर्ग का वर्णन—सहस्रार इन्द्रक विमान से उत्तर श्रेणी मे जिसके कि सत्तरह विमान है, उसमे ९वें नम्बर का कल्प विमान है, जिसका अधिपति सहस्रार नामक प्रतीन्द्र है, जिसके कुछ कम तीन लाख विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिंश हैं, दो हजार सामानिक हैं, ३ सभाए हैं, ७ सेनाए हैं, २ हजार आत्मरक्ष है, चार लोकपाल हैं, श्रीमती आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु २७ पल्य की है, शेष वर्णन शतार इन्द्र की तरह है। परिषद, आत्मरक्ष, अनीक आभियोग्य इन सबका वर्णन शतार इन्द्र की तरह है। अन्तर सिर्फ इतना है कि सेनाओ के प्रथम कक्ष मे २ हजार देव हैं, दक्षिणादिक दिशाओ मे सोम आदिक चार लोकपाल हैं, उनके प्रत्येक के २०० सामानिक हैं। ६० देवियाँ हैं, चार अग्र रानिया है, तीन सभाए है, शेष वर्णन शतार इन्द्र की तरह है। शतार इन्द्र के बाहरी सभा के देवो की आयु के समान वरुण लोकपाल की आयु है। उससे कुछ कम धनद अर्थात् वैश्रवण लोकपाल की है। उससे भी कुछ कम आयु सोम और यम लोकपाल की है। इन सबका वर्णन शतार इन्द्र की तरह जानना।

आनत प्राणत आरण व अच्युत स्वर्गवासी देवो का वर्णन—सहस्रार नामक इन्द्रक विमान से अथवा पटल से लाख योजन ऊपर आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प है, जिनके ६ पटल हैं, जिनके नाम हैं -आनत, प्राणत, पुष्पक, सातक, आरण और अच्युत। पहला पटल है आनत उसके इन्द्रक विमान का नाम है आनत। इस विमान से चारो ही दिशाओ मे चार विमान श्रेणियाँ निकली हैं और विदिशाओ मे प्रकीर्णक विमान है। इसमे प्रत्येक विमान श्रेणी मे सोलह श्रेणी विमान हैं। इसी प्रकार ऊपर के ५ पटलो मे एक-एक श्रेणी विमान कम होता चला जाता है। आरण अच्युत विमान से दक्षिण श्रेणी मे जिसमे कि ग्यारह विमान हैं उसमे छठा कल्प विमान है। उसका अधि-पति आरण नाम का इन्द्र है, जिसके तीन सौ पचास विमान है, ३३ त्रायस्त्रिंश देव हैं. एक हजार सामानिक हैं, तीन सभायें हैं, ७ सेनाए हैं, एक हजार आत्मरक्ष हैं, चार लोकपाल हैं, पद्मा आदिक ८ अग्र रानियाँ हैं, जिनकी आयु ४८ पल्य की है। प्रत्येक अग्र रानी २५० देवियो के परिवार सहित है वह दस लाख देवी रूपो की विक्रिया मे समर्थ है। इस इन्द्र की बल्लकाभिकाए पन्द्रह हैं जिनकी आयु और विक्रिया अग्र रानियो की तरह है। इस इन्द्र की भीतरी सभा मे एक सौ पच्चीस देव हैं, उनके प्रत्येक की दस-दस देविया हैं, जिनकी आयु कुछ अधिक बीस सागर की है। मध्यम सभा मे दो सौ पचास देव हैं, जिनके प्रत्येक की ८ देवियाँ हैं. जिनकी आयु कुछ कम इक्कीस सागर की है। बाहरी सभा मे पाच सौ देव है, जिनकी आयु साढे उन्नीस सागर की है। प्रत्येक के ६-६ देविया है। सेनाओ की प्रथम कक्षा मे एक हजार देव है। इन सभी देवो के तथा उनके प्रधानो के प्रत्येक के तीस-तीस देविया है। आत्मरक्ष देवो की व आभियोग्य देव की मध्यम सभा के देवों की आयु से कुछ कम आयु है। तीस देविया है। पूर्व आदिक दिशाओ मे चार लोकपाल है जिनके प्रत्येक

के सौ सामानिक हैं ३२ देविया है, चार अग्र रानिया है। तीन सभायें हैं, बाह्य सभा के देवो के समान वैश्रवण की आयु है। इससे कम वरुण की उससे कम सोम और यम लोकपाल की है। सोम और यम नामक लोकपाल की भीतरी सभा मे ३ देव है। मध्यम सभा मे १२ और बाह्य सभा मे २५ देव है। वरुण लोकपाल की भीतरी सभा मे ५ देव, मध्यम सभामे २५ और बाह्य सभा मे ५० देव हैं। वैश्रवण लोकपाल की भीतरी सभा मे ६ देव, मध्यम सभा मे ५० और बाह्य सभा मे १०० देव है जिनकी आयु क्रमसे २१ सागर तथा कुछ कम २१ सागर तथा साढे २० सागर है। इनको देविया क्रमसे ७, ५, और ३ हैं। अच्युत विमान से उत्तर दिशा मे जो श्रेणी विमान हैं उनकी सख्या है ११। उसमे जो छठा कल्प विमान है उसका अधिपति अच्युत नाम का इन्द्र है, जिसके कुछ कम ३५० विमान हैं। ३३ त्रायस्त्रिस हैं, एक हजार सामानिक हैं, ३ सभाए हैं, ७ सेनायें हैं, एक हजार आत्मरक्ष हैं, ४ लोकपाल हैं। श्रीमती आदिक ८ अग्र रानिया हैं। १५ बल्लभिकायें है, जिन सबकी आयु ५५ पल्य की है। शेष वर्णन आरण इन्द्र की तरह जानना। सभायें और उनका परिकर भी आरण इन्द्र की तरह है। आयु मे यह विशेषता है कि वरुण की उससे याने आरण इन्द्र के वरुण की आयु से थोडी अधिक आयु है। उससे कम आयु धनद लोकपाल की है। उससे भी कम आयु सोम तथा यम लोकपाल की है।

वैमानिक देवो के विमानो की सक्षेप मे सख्यादिका कथन—लोकानुयोग के उपदेश से १४ इन्द्र बताये गये है। पर यहा १२ इन्द्र ही इष्ट हैं—ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, महाशुक्र, और सहस्रार इन्द्र ये चार दक्षिण के इन्द्र के अनुवर्ती हैं। आनत और प्राणत इन दो कल्पो मे एक-एक इन्द्र है। इस तरह ४ स्वर्गों के ४ इन्द्र अन्तिम ४ स्वर्गो के ४ इन्द्र और मध्य के ८ स्वर्गों के ४ इन्द्र है। इस तरह १२ इन्द्र हैं। सौधर्म इन्द्र के विमानो की सख्या पहले कही ही गयो है। ऐशान मे २८ लाख विमान हैं। श्रेणी विमान १४५७ है, पुष्प प्रकीर्णक २७९८५४३ हैं। सानतकुमार स्वर्ग मे १२ लाख विमान है। श्रेणो विमान ५५५ है। प्रकोर्णक विमान ११९९४०५ हैं। माहेन्द्र कल्प मे ८ लाख विमान है। श्रेणी विमान १९६ हैं प्रकीर्णक विमान ७९९८०४ हैं ५वें, ६वें स्वर्ग वाले कल्प मे ४ लाख विमान हैं। श्रेणी विमान ३६४ हैं। प्रकीर्णक विमान ३९९६३६ है। ७वें, ८वें स्वर्ग वाले कल्प मे ५० हजार विमान हैं। श्रेणो विमान १५८ हैं। प्रकोर्णक विमान ४९८४२ हैं इस ९वें, १०वें स्वर्ग वाले कल्प मे ४० हजार विमान है। श्रेणी विमान ७३ हैं, प्रकीर्णक विमान ३९९०७ हैं। ११वें १२वें स्वर्ग वाले कल्प ६ हजार विमान है। श्रेणी विमान ६९, प्रकीर्णक विमान ५९३१ हैं। आरण, अच्युत कल्प मे ७०० विमान हैं। श्रेणी विमान ३३० हैं। प्रकीर्णक विमान ३०७ हैं। इन चौदह कल्पो मे अथवा बारह कल्पो में विमान सख्या ८४९६७०० है। यहा तक कल्पोपन्न वैमानिक देव है।

ग्रैवेयक विमानो व ग्रैवेयकविमान वासी देवो का सक्षिप्त वर्णन—आरण, अच्युत विमान से लाखो योजन ऊपर ग्रैवेयक विमान शुरू होता है। पहल अधोग्रैवेयक विमान है। इसमे ३ पटल हैं जिसके नाम है—सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध। पहले पटल के इन्द्रक विमान का नाम भी सुदर्शन है। इस विमान से चारो दिशाओ मे ४ विमान श्रेणियाँ हैं। एक-एक श्रेणी मे दस-दस विमान हैं। सुदर्शन से लाख योजन ऊपर अमोघ नाम का दूसरा पटल है। यहा भी चारो दिशाओ मे ४ श्रेणिया हैं। एक-एक श्रेणी मे ९-९ विमान है। अमोघ नाम के दूसरे पटल से ऊपर लाख योजन जाकर सुप्रबुद्ध नाम का पटल है। यही इसका इन्द्रक विमान है। यहाँ भी चारो दिशाओं मे चार विमान श्रेणी हैं।

एक-एक विमान श्रेणी मे ८-८ विमान हैं। इन तीनो ही पटलो मे फैले हुए प्रकीर्णक विमान नही हैं, याने एक श्रेणी और इन्द्रक विमान ही हैं। वे सब १११ विमान हैं। तीसरे पटल से ऊपर लाख योजन जाकर मध्यम ग्रैवेयक विमान है जिसमे ३ पटल हैं। जिसके नाम हैं—यशोधरा, सुभद्र, और विशाल यही इन पटलो के इन्द्रक विमानो के नाम हैं। पहले पटल के चारो दिशाओ मे श्रेणी विमान है। जिनमे ७-७ श्रेणी विमान हैं। दूसरे पटल के चारो दिशाओ मे ६-६ श्रेणी विमान हैं। दूसरे पटल के चारो दिशाओ मे ५-५ श्रेणी विमान हैं। ये सब श्रणी विमान ७५ है। यहाँ पुष्प प्रकीर्णक विमान भी हैं जिनकी सख्या ३२ है। ये सब मिलकर १०७ विमान हैं। मध्यम ग्रैवेयक के अन्तिम पटल से लाख योजन ऊपर उपरिम ग्रैवेयक जिनके ३ पटल हैं उनका नाम है सुमन, सौमन और प्रीतिकर। ये ही नाम इसके इन्द्रक विमानो के हैं। पहले पटल मे इन्द्रक विमान से चारो दिशाओ मे ४ श्रेणी विमान हैं जिनमे ४-४ विमान है। दूसरे पटल मे श्रेणी विमान ३-३ हैं। तीसरे पटल मे श्रेणी विमान २-२ हैं। ये सब ४६ श्रेणी विमान हैं। यहाँ ५२ पुष्प प्रकीर्णक विमान हैं। ये सब मिलकर ६१ विमान हैं यहा तक ग्रैवेयक कहलाते हैं। इसमे रहने वाले देव सब अहिमिन्द्र हैं। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनो प्रकार के देव पाये जाते हैं। ये प्रवीचार रहित हैं। इनके देवियां नही होती।

अनुदिश और अनुत्तर विमानो का तथा उसमे रहने वाले देवो का वर्णन—अब ग्रैवेयक विमान के अन्तिम पटल से लाख योजन ऊपर अनुदिश विमान आता है। जिसमे केवल एक ही पटल है, जिसका नाम है आदित्य। उसकी दिशा और विदिशाओ मे ४-४ श्रेणी विमान हैं। पूर्व दिशा मे अर्ची नामक विमान है, दक्षिण दिशा मे अर्चिमाली नामका विमान है। पश्चिम दिशा मे वैरोचन नाम का विमान है, उत्तर दिशा मे प्रभास विमान है। विदिशाओ मे ४ पुष्प प्रकीर्णक हैं ये पूर्व और दक्षिण के बीच मे अर्चीप्रभ विमान है। दक्षिण पश्चिम के बीच मे अर्चिमध्य विमान है। पश्चिम और उत्तर के बीच मे अर्चिरावर्त विमान है। उत्तर पूर्व के बीच मे अर्चिराविशिष्ट विमान है। ये सब ६ विमान है। यहा तक ये अनुदिश कहलाते हैं। अनुदिश के इस पटल से लाख योजन ऊपर अनुत्तर विमान हैं जहाँ बीच मे सर्वार्थ सिद्धि नामक विमान है। दिशाओ मे विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये पूर्वादिक दिशाओ के क्रम से हैं। यहाँ पुष्प प्रकीर्णक विमान नही हैं। इन विमानो मे सम्यग्दृष्टि ही देव हैं और वे सब अहिमिन्द्र होते हैं इनके ३२-३३ सागर की आयु का जीवन तत्त्वचर्चा मे व्यतीत होता है। इसके ऊपर बहुत दूर जाकर सिद्धशिला है और उससे और ऊपर अन्तिम वलय मे ऊपर सिद्ध लोक है।

वैमानिक देवो के विमानो के विस्तार वर्ण आदि का निर्देश—सौधर्म और ऐशान इन्द्र के विमान १२७ योजन मोटे है। १०५ योजन ऊँचे हैं, बाकी के कल्पो मे और नवग्रैवेयक अनुदिश और अनुत्तरो मे जो विमान हैं उनकी मोटाई १-१ योजन कम होती गई हैं। ये सब इन्द्रक विमान श्रेणी विमान और प्रकीर्णक विमान कोई तो सख्यात योजन विस्तार वाले हैं कोई असख्यात योजम विस्तार वाले हैं। जो सख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे सख्यात सौ योजन विस्तार के हैं। जो असख्यात विस्तार वाले कहे गये हैं वे असख्यात लाख योजन के विस्तार के हैं। सौधर्म और ईसान इन्द्र के विमान पचवर्ण वाले हैं याने काला, पीला, नीला लाल और सफेद वर्ण के हैं। सनत-कुमार और महेन्द्र इन्द्र के विमान ४ वर्ण के हैं। उनमे कृष्ण वर्ण नही पाया जाता। ५वें, ६वें, ७वें, ८वें स्वर्ग मे विमान ३ वर्ण वाले हैं वहा काला और नीला वर्ण नही है। शुक्र स्वर्ग से लेकर अच्युत

स्वर्ग तक दो वर्ण वाले विमान है याने पीले और सफेद वर्ण के विमान हैं। ऊपर शुक्ल वर्ण वाले हैं। सर्वार्थसिद्धि का विमान परम शुक्ल वर्ण का है। इस प्रकार वैमानिक देवों के आवासो का वर्णन किया। अब उन वैमानिक देवो मे परस्पर क्या अन्तर है, यह बताने के लिये सूत्र कहते है।

स्थिति प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका ॥२०॥

कुछ विशेषताओ की ऊपर-ऊपर के देवो मे अधिकता का ज्ञापन—उन देवो मे स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय विषय, अवधिज्ञान विषय इनके उत्तरोत्तर अधिकता की विशेषता है। स्थिति का अर्थ है कि अपनी पूर्व बाधी हुई देव आयु कर्म के उदय से उस देव भव मे शरीर मे जीव के बने रहने को स्थिति कहते है। याने आयु, आयु की स्थिति की ऊपर-ऊपर के पटलो मे स्वर्गों मे वैमानिको की अधिकता है। पहले दूसरे स्वर्ग से तीसरे, चौथे स्वर्ग की आयु अधिक है, ऊपर-ऊपर के देवो मे अधिक होती गई है। प्रभाव का अर्थ है—उत्कृष्ट भाव, याने जो शाप दे तो अनिष्ट हो जाये, जिस पर कृपा दृष्टि बने उनका भला हो जाये, इस तरह का प्रकृष्ट भाव हो वह प्रभाव है। प्रभाव की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के वैमानिक देवो मे वृद्धि है। साता वेदनीय का उदय होने पर अपने मन चाहे विषयो का अनुभवन होना सुख कहलाता है। यह विषयानुभवन ऊपर-ऊपर के वैमानिक देवो मे अधिक पाया जाता है। भले ही गम्भीरता और विषयो की अनासक्ति के कारण विषयो मे प्रवृत्ति न हो लेकिन पुण्य विशेष ऐसा है कि उनके इस प्रकार का सुख नीचे के देवो अपेक्षा कुछ अधिक पाया जाता है। शरीर, वस्त्र, आभूषण आदिक की दीप्ति होने को द्युति कहते हैं। द्युति की अपेक्षा भी ऊपर-ऊपर के देव अधिक-अधिक हैं अर्थात् उनकी कान्ति, वस्त्र, आभूषण की चमक ऊपर के देवो मे स्वत ही विशेष पायी जाती है। लेश्या विशुद्धि अर्थात् ऊपर-ऊपर के देवो मे लेश्या विशुद्धि याने शुभ अच्छी-अच्छी लेश्या पायी जाती है। इन्द्रिय विषय इन्द्रिय के द्वारा पदार्थों का जानना यह इन्द्रिय विषय है। इन्द्रिय विषय की अपेक्षा भी ऊपर-ऊपर के देव बढे-चढें है। अवधि ज्ञान का विषय भी ऊपर-ऊपर के देवो मे अधिकाधिक होता है याने विषय क्षेत्र कितनी दूर तक की बात न जाने ऐसा यह दूरी का ज्ञान ऊपर-ऊपर के देवो मे विशेष-विशेष पाया जाता है। इस सूत्र मे सर्वप्रथम स्थिति शब्द दिया है क्योकि कितनी ही बातें बतायी जा रही हैं वे सब स्थितिपूर्वक ही हैं, याने वे जहाँ अवस्थित हैं उनकी ही यह चर्चा है, इस कारण से स्थिति शब्द पहले दिया है कि जिनकी स्थितियाँ हैं, उनका प्रभाव आदिक होता है। यहाँ द्वन्द्व समास करके अन्त मे तस् प्रत्यय दिया गया है जिसका अर्थ है कि "इन-इन बातो से" ऊपर-ऊपर के देव अधिक होते गए है। उनकी क्या स्थिति है, यह एक अलग से प्रसग आयेगा, और लेश्याओ व अवधि का विषय कितना-कितना है यह भी आगे बताया जायेगा। ऊपर-ऊपर के देवो मे प्रभाव क्यो अधिक है अर्थात् विक्रिया मे किसी का विग्रह करने मे, अनुग्रह करने मे अथवा और आभियोग्य आदिक विशेष साधनो मे प्रभाव क्यो है ऊपर-ऊपर अधिक कि उनके ऊपर-ऊपर अभिमान मन्द है, सक्लेश अल्प है इस कारण से चाहे प्रवृत्ति रूप मे, क्रिया रूप मे कम आये बात, लेकिन प्रभाव, देवो के चित्त मे विशेष आदर यह अधिक-अधिक पाया जाता है। इस सूत्र मे ऊपर-ऊपर के देव किन-किन बातो मे ऊचे-ऊचे हैं, यह बताकर अब यह बतायेगे कि किन-किन बातो मे ऊपर-ऊपर के देव कम हैं याने किन-किन बातो के ऊपर कमी और विशेष कमी पायी जाती है।

गतिशरीर परिग्रहाभिमानतो हीना: ॥२१॥

ऊपर-ऊपर के देवो के गति शरीर परिग्रह व अभिमान इन चार बातो की हीनता का वर्णन—गति, शरीर, परिग्रह, अभिमान इन चार बातो मे ऊपर-ऊपर के देव हीन हैं। गति का अर्थ है—एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे गमन करना, यह गमन होता है इच्छाओ के कारण कर्मोदयवश। सो ऊपर-ऊपर के देव विषयेच्छाओ से विरक्त हैं, उनके विषय प्रसग विशेष नही होते और ऊपर चलकर तो वे प्रवीचार रहित भी हो जाते हैं अर्थात् जहा विषयो मे आसक्ति की हीनता है तो गमन की भी हीनता हो जाती है, किस प्रयोजन से गमन करें, नीचे स्वर्ग के देव मनमाना भोगोपभोग के लिए, अपनी इच्छाओ को शान्त करने के लिये जगह्-जगह् विहार करते है द्वीप समुद्रो मे, पर ऊपर-ऊपर के देव मद कषाय होते हैं, विषयो मे आसक्ति उनकी कम होती जाती है। शरीर उनका वैक्रियक है और शरीर की ऊचाई ऊपर-ऊपर के देवो की कम होती गई है। परिग्रह कहते हैं लोभकषाय के उदय से मूर्छा, ममता, परिणाम होना सो परिग्रह है। परिग्रह भी ऊपर-ऊपर के देवो मे कम-कम होता गया है। अभिमान का अर्थ है मान कषाय के उदय से जो एक अहकार उत्पन्न होता, जिसमे दूसरो को तुच्छ गिना जाता वह भाव है अभिमान। ऊपर के देव अभिमान से हीन होते गये हैं, क्योकि उनका विशेष पुण्य है। गम्भीरता है, इस कारण ऊपर के देव अभिमान से हीन हैं।

सूत्रोक्त शब्दो के तथाकथित क्रम विन्यास का कारण—इस सूत्र मे सबसे पहले गति शब्द दिया है, क्योकि एक तो अल्प अच है, दो ही स्वर है और वे भी लघु स्वर है, इस कारण गति शब्द को पहले दिया। इनके बाद शरीर शब्द रखा, याने परिग्रह से पहले शरीर शब्द दिया है, जिससे यह सूचित होता है कि शरीर के होने पर ही तो परिग्रह की उत्पत्ति होती है। किसी भी बाह्य पदार्थ मे यह मेरा है ऐसी बुद्धि उसके उत्पन्न होती जिसके शरीर है और शरीर मे भी मान बुद्धि है, यहा कोई ऐसी आशका न करे कि केवली भगवान के भी तो शरीर है मगर परिग्रह की इच्छा नही है ? यह शका यो न करें कि यह अधिकार देवो का है, देव गति के देवो का है और उनके इच्छा भी पायी जाती है। शरीर भी पाया जाता है, और देव रागादिक वाले हैं उनके शरीर अवश्य हैं और शरीर के होने पर परिग्रह के बारे मे कोई न कोई किसी अश मे अभिलाषा होना हो रहा है, इस कारण यह शका युक्त नही है। परिग्रह के बाद अभिमान शब्द दिया है जिससे यह सूचना मिलती है कि लोक मे जो अभिमान देखा गया यह सब परिग्रह मूलक है इसीलिए परिग्रह पहले रखा है और अभिमान सबसे बाद मे लिया गया है। इन दोनो ही सूत्रो मे उपरि-उपरि शब्द की अनुवृत्ति आती है जिससे यह सिद्ध है कि ऊपर-ऊपर के देव इन बातो मे तो बडे हैं और इन बातो मे वे हीन है। सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव क्रीडा आदिक के निमित्त से बहुत बडी भारी गति करते हैं। द्वीप समुद्र मे मनमाना विहार करते हैं। इस तरह ऊपर के देव नही करते क्योकि विषयो के प्रसग का उनमे वेग नही है, और जहा विषय प्रसग का वेग नही तो गति तो विषय प्रसग के वेग से हुआ करती है। तो गति भी हीन होती है।

वैमानिक देवों के शरीर का प्रमाण—सौधर्म और ईशान इन्द्र के देवो का शरीर ७ हाथ प्रमाण है, तीसरे, चौथे स्वर्ग के देवो का शरीर ६ हाथ प्रमाण है। ५वे, छठे, ७वें, ८वें देवो के शरीर का प्रमाण ५ हाथ का है। ९वें, १०वें, ११वे, १२वें स्वर्ग के देवो का शरीर ४ हाथ प्रमाण है। १३वें, १४वें स्वर्ग के देवों का शरीर साढे तीन हाथ प्रमाण है और १५वें, १६वें स्वर्ग के देवो का शरीर तीन हाथ प्रमाण है। अधो ग्रैवेयक मे ढाई हाथ प्रमाण शरीर है, मध्यम ग्रैवेयक मे देवो का शरीर २

हाथ प्रमाण है। ऊपर-ऊपर के ग्रैवेयक मे और अनुदिश विमानो मे देवो का शरीर डेढ हाथ प्रमाण है। अनुत्तर विमानो मे देवो का शरीर एक हाथ प्रमाण है। इन देवो का ऊपर-ऊपर शरीर छोटा-छोटा पाया जाता है।

ऊपर-ऊपर के देवो मे परिग्रह व अभिमान की उत्तरोत्तर हीनता—विमान परिवार आदि परिग्रह भी तथा अभिमान भी ऊपर-ऊपर के देवो मे कम-कम होता गया है। इसी प्रकार परिग्रह और अभिमान भी ऊपर-ऊपर के देवो मे कम-कम होता गया है, उसका कारण यह है कि ऊपर-ऊपर के देव छोटी-छोटी कषाय वाले है, इस कारण उनके सक्लेश कम है। कषाय मन्द होने से सक्लेश कम रहता है, और जब सक्लेश कम है तो अवधिज्ञान मे विशुद्धि भी बढ जाती है। जहाँ सक्लेश होता है वहाँ अवधिज्ञान हीन हो जाता है। जब अवधिज्ञान मे विशुद्धि बढी तो इसी कारण ऊपर-ऊपर के देव नरक गति, तिर्यञ्च गति और मनुष्य गति के देवो को बहुत अच्छी तरह से देखते रहते हैं कि यह शरीर मन के दु.खो से व्याप्त है। तो जहाँ उनको अवधिज्ञान द्वारा यह दिख रहा है ये नीचे नरक तिर्यञ्च मनुष्य शारीरिक मानसिक दु खो से दबे हुये हैं तो उनको फिर सम्वेग परिणाम भी बढता है और ससार मे भयभीतपना भी होता है। तो इन बातो मे उत्तरोत्तर अधिकता होने से देवो का इस परिग्रह मे अभिमान हीन हो जाता है, क्योकि परिग्रह दु ख का कारण है और इसके सम्पर्क का परिणाम खोटा होता है। ऊपर-ऊपर के देवो मे उपपत्ति भी पहले भव के विशुद्ध परिणाम के कारण भेद के कारण है। जिस जीव ने जैसा निर्मल परिणाम पाया, विशेष पुण्य कर्मबध किया उसके अनुसार ऊपर-ऊपर के देवो मे उनकी उत्पत्ति होती है, यही कारण है कि उनका संस्कार पहले ही भव से नम्रता का है, मन्द कषाय का है, इसलिये ऊपर के देवो मे अभिमान की हीनता है, जैसे असज्ञी तिर्यञ्च पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय सख्यात वर्ष की आयु वाले, साधारण शुभ परिणाम वाले पुण्य बध का अनुभव करके भवनवासी और व्यन्तरो में उत्पन्न होते है और वे ही अर्थात् सख्यात वर्षायुष्क पर्याप्त तिर्यञ्च सज्ञी मिथ्यादृष्टि अथवा द्वितीय गुणस्थान वाले १२वें स्वर्ग तक उत्पन्न होते है और सम्यग्दृष्टि श्रावक अच्युत स्वर्ग तक उत्पन्न हो लेते हैं। भोगभूमिया तिर्यञ्च मनुष्य पहले दूसरे गुण स्थान वाले भवनत्रिको मे उत्पन्न हो लेते हैं और वे ही सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च मनुष्य पहले और दूसरे स्वर्ग मे जन्म पाते हैं। वापसी भी इन दो स्वर्गो मे जन्म पाते है, मनुष्य कर्मभूमिया पहले दूसरे गुण स्थान वाले भवनवासी मे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक जन्म पाते है। परिव्राजको की उत्पत्ति पचम स्वर्ग तक है। आजीविको की उत्पत्ति १२वें स्वर्ग तक है। उससे ऊपर अन्य लिङ्ग वालो का उपपाद नही है। श्रावक १६ स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं व उससे ऊपर निर्ग्रन्थलिङ्गधारी उत्कृष्ट तपस्या वाले उत्कृष्ट पुण्य वाले उत्पन्न होते है। ग्रैवेयक से ऊपर सम्यग्दृष्टियो का ही जन्म है। सम्यग्दृष्टि श्रावको का जन्म पहले स्वर्ग से १६वे स्वर्ग तक है। इस तरह अपने-अपने विशेष पुण्य से ऊपर-ऊपर देवो मे जन्म होता है। यो यो पुण्य की विशेषताओ व मन्द कषाय के कारण ऊपर-ऊपर के देवो मे अभिमान हीन-हीन होता है।

पीत पद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥४-२२॥

वैमानिक देवो मे लेश्या का विवरण—स्वर्गो मे और स्वर्गो से ऊपर के विमानो मे रहने वाले वैमानिक देवो मे कैसी लेश्यायें होती हैं इसका वर्णन इस सूत्र मे है। सूत्र का अर्थ है कि तीन दो-दो कल्पो मे, और ऊपर के शेष सब विमानो में पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्यायें होती

हैं, सामान्यतया अर्थ यह हुआ कि सौधर्म ईशान यह एक कल्प युगल है। सानत कुमार माहेन्द्र यह दूसरा कल्प युगल है इन कल्पो मे पीत लेश्या होती है। इसके ऊपर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ठ यह एक कल्प युगल है और शुक्र, महाशुक्र शतार और सहस्रार यह दूसरा कल्प युगल है, इनमे पद्म लेश्या होती है। आनत, प्राणत यह पहला कल्प युगल है और आरण अच्युत यह दूसरा कल्प युगल है, इनमें शुक्ल लेश्या होती है। इसके ऊपर तीन नीचे के ग्रैवेयको मे ३ मध्य के ग्रैवेयको मे और ३ ऊपर के ग्रैवेयको मे शुक्ल लेश्या होती है। इसके ऊपर जो और शेष रहे ६ अनुदिश ५ अनुत्तर इन विमानो मे शुक्ल लेश्या होती है।

प्रकृत सूत्र का इस स्थल मे औचित्य—शकाकार कहता है कि यह सूत्र तो वहा ही कह जाना था जहा कि भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी इन तीन निकाय के देवो मे लेश्यायें वतायी गई थी। वह सूत्र है—आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्या सो इस ही सूत्र के वाद यह सूत्र जोड देते। तो फिर अलग से यह सूत्र नही कहना पडता। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यदि इस सूत्र को उस पहले सूत्र के साथ जोड दिया जाता तो इसका भाव स्पष्ट कहने के लिये और जानने के लिये कि अब सौधर्म आदिक के देवो की लेश्यायें बतायी जा रही हैं, सो सौधर्म आदिक शब्दो को वहाँ ग्रहण कहना पडता और फिर सूत्र बडा हो जाता। और यदि सौधर्म आदिक शब्दो को न कहते तो इसका अर्थ स्पष्ट न रहता। अच्छा यहा सूत्र कहना क्यो ठीक है ? देखो यह वैमानिक देवो के वर्णन का प्रकरण ही है। जहा वैमानिका' यह सूत्र आया था उसके बाद जो भी कथन हो रहा है वह सब वैमानिक देवो के विषय मे कथन हो रहा है इस कारण सौधर्मादिक शब्द के ग्रहण की जरूरत नही पड रही है। अतः यह सूत्र यहाँ ही कहना उचित रहा है।

प्रकृत सूत्रगत पदों का अर्थ— इस सूत्र मे दो पद हैं। प्रथम पद मे द्वन्द्व समास पूर्वक बहुव्रीहि समास किया गया है जिससे प्रथम पद का अर्थ यह होता है कि पीत पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्यायें जिनमे हैं ऐसे ये देव हैं। पीत पद्म शुक्ल इन तीन शब्दो मे तो द्वन्द्व समास हुआ और समास होने के पूर्व लेश्या के विशेषण मे मूल शब्द था पीता पद्मा व शुक्ला। सो द्वन्द्व समाहार समास होने से आकार की जगह अकार हो गया। यहाँ दूसरा पद है द्वित्रिशेषेषु, यह आधार को बताता है कि किस जगह के रहने वाले देवो मे ये लेश्यायें होती हैं। सामान्यतया अर्थ है, दो-दो कल्प, तीन बार और शेष देवो मे अथवा तीन दो-दो कल्पो मे जिससे ध्वनित होता है १२ कल्पो मे याने एक बार दो-दो कल्पो मे पीत लेश्या है, इसके बाद दूसरी बार दो-दो कल्पो मे पद्म लेश्या है, इसके बाद दो-दो कल्पो मे शुक्ल लेश्या है तथा कल्पो से ऊपर के सभी स्थानो के देवो मे शुक्ल लेश्या होती है।

द्वित्रिशेषेषु पद से ध्वनित अर्थ—यहाँ शकाकार कहता है कि इस दूसरे पद को बदलकर "चतुः शेषेषु" यह पद रखना चाहिये था जिसका सीधा अर्थ है कि चार-चार कल्पो मे और शेषो मे शुक्ल लेश्या होती है। सो पहले भी यह ही बताया गया था कि चार-चार कल्पो मे ये लेश्यायें बटी हैं, स्पष्ट अर्थ भी बन जाता। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यहाँ चतुःशेषेषु न कहकर द्वित्रिशेषेषु कहने से कुछ विशिष्ट अर्थ का बोध होता है, चतु शेषेषु कहने से अर्थ सामान्य रहता है और और द्वित्रिशेषेषु कहने से अर्थ मे यह विशेषता आती है कि सौधर्म और ईशान के देवो मे पीत लेश्या है और सानतकुमार और माहेन्द्र के देवो मे पीत एव पद्म लेश्या है। यद्यपि सामान्य कथन मे इन चार स्वर्गों मे पीत लेश्या कही गयी है पर चार कल्प एक बार मे न कहकर दो-दो कल्प कहने से यह अर्थ ध्वनित हुआ कि ऊपर के दो कल्पो मे कुछ आगे की भी विशुद्ध लेश्यायें होती हैं, इसी प्रकार

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव कापिष्ठ इन दो कल्पो मे पद्म लेश्या है और शुक्र, महाशुक्र शतार सहस्रार इन दो कल्पो मे पद्म और शुक्ल लेश्या है। यदि चतुशेषेषु कहते तो आगे को विशुद्ध लेश्या ग्रहण न हो सकती थी और इसके बाद भी यह विशेषता साबित होती है कि अन्त के दो-दो कल्पो मे याने चार कल्पो मे शुक्ल लेश्या होती है, तो इससे ऊपर के वैमानिको मे परम शुक्ल लेश्या होती है। कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि ऐसी मिश्रता की बात सूत्र मे तो स्पष्ट है नही, फिर कैसे लगा ली गई ? तो उत्तर यह है कि लोक मे शब्द व्यवहार ऐसा ही देखा जाता है। जैसे कुछ थोडी सी वर्षा हो रही हो और वहाँ एक समूह छाता लगाकर जा रहा हो, मानो ५० पुरुष जा रहे हैं जिनमे ४० लोग अपनी-अपनी छतरी लगाये हैं, तो उन ५० लोगो के प्रति ऐसा लोक व्यवहार होता है कि लोग कहते हैं कि ये सब छात्ते वाले जा रहे हैं तो ऐसे ही जैसे पहले के चार स्वर्गों मे पीत लेश्या कहा है तो उससे यह अर्थ बना कि पहले दो स्वर्गों मे तो पीत लेश्या ही है, पर जो स्वर्ग पद्म लेश्या वाले स्वर्गों के नीचे है उनमे किसी के पद्म लेश्या भी पायी जाती है, और ऐसे निकट वाले देवो मे विशुद्ध लेश्या का सग जोडना चतुःशेषेषु ऐसा पद बनाने पर नही बना सकते थे क्योकि वहाँ अनिष्ट अर्थ हो जाता है। दो आदिक शब्द दुहरे अर्थ के बोधक होते हैं, जैसे किसी मनुष्य के प्रति कहा जाये कि यह मनुष्य दो बार भोजन करता है तो उसका अर्थ कही यह नही लगता कि यह जिन्दगी मे दो बार भोजन करता है। उसका अर्थ यो लगता है कि दिन-दिन मे रोज-रोज यह दो बार भोजन करता है। तो ऐसे ही दो-दो मे लेश्यायें बतायी है—तीन बार तो उसका अर्थ चार-चार कल्प हो ही जाता है।

लेश्याओ के सक्रमण का सकेत—लेश्या के प्रकरण मे छहो लेश्याओ के जो नाम हैं, उस नाम रूप के अनुसार इन लेश्याओ का सामान्य रूप से अर्थ ज्ञान हो जाता है— जैसे कृष्ण लेश्या का अर्थ है कि भवरे आदिक कृष्ण रग वाले देहियो के वर्ण की तरह जहाँ खोटे भावो की छाया रहती है वह कृष्ण लेश्या कहलाती है। शरीर पर ऐसा रग हो तो वह द्रव्य लेश्या कहलाती है और परिणामो मे इस जाति का खोटा भाव हो तो वह भाव लेश्या कहलाती है। इन लेश्याओ के अनन्त भेद हो सकते हैं क्योकि कृष्णता की डिग्रियो मे दो डिग्री की कृष्णता, तीन डिग्री की कृष्णता यो चलते-चलते असख्यात डिग्रियो की कृष्णता है और ऐसी कृष्णता के योग से कृष्ण लेश्या के अनगिनते भेद हो जाते हैं। तो बाह्य द्रव्य लेश्या की दृष्टि से तो अनन्त प्रकार के है और भीतरी परिणामो की दृष्टि से असख्यात लोक प्रमाण, आत्म प्रदेशो के परिमाण बराबर असंख्यात प्रकार की भाव लेश्यायें हो जाती हैं। इन लेश्याओ मे परिवर्तन भी होता है, कोई कृष्ण लेश्या वाले जीव नील लेश्या मे भी पहुँच जाते हैं। ये नील लेश्या वाले जीव आगे को लेश्याओ मे अथवा कृष्ण लेश्या मे पहुँच सकते। कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अश का और खोटी जगह परिवर्तन नही होता क्योकि कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अश, शब्द अधिक खोटा का वाचक का है, ऐसे ही शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अश का और अधिक विशुद्धि मे परिणमन नही होता क्योकि शुभ लेश्या का उत्कृष्ट अश खुद ही उत्कृष्ट विशुद्धि है। अशुभ लेश्याओ मे यदि हल्की लेश्या मे परिवर्तन हो तो वह सक्लेश की कमी मे होता है। यदि अधिक खोटी लेश्या मे परिवर्तन हो तो वह सक्लेश की वृद्धि मे होता है। उन समस्त अशो को सक्षेप रूप मे तीन मे शामिल कर लीजिये—जघन्य अश, मध्यम अंश और उत्कृष्ट अश। इसी प्रकार जो तीन शुभ लेश्यायें है पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या इनमे उत्तरोत्तर शुभ की ओर परि-

वर्तन तो विशुद्धि की बढवारी से होता है और पूर्व मे परिवर्तन अर्थात् शुक्ल लेश्या पीत मे पलट जाये, पीत लेश्या पद्म मे आ जाये तो यह विशुद्धि की कमी से होता है। कृष्ण लेश्या का जो पहला सक्लेश स्थान है, उससे और बढकर कृष्ण लेश्या जगे तो सख्यात असख्यात अनेक अशो मे सक्लेश बढने से परिवर्तन होता है। कृष्ण लेश्या से घटकर कृष्ण लेश्या ही बनी रहे ऐसी घटना के अनेक अश कृष्ण लेश्या मे हैं। कृष्ण से नील मे आये तो उसमे अधिक अशो मे सक्लेश की हानि चाहिये और तब वह नील लेश्या के उत्कृष्ट स्थान मे आता है।

लेश्याओ का उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—इन लेश्याओ को एक उदाहरण मे समझिये कि जैसे कोई ६ पुरुष कही मुसाफिरो कर रहे थे। रास्ते मे उन्हे कोई पके हुये आमो का पेड मिला। तो आम खाने की इच्छा उन छहो के जगी। उनकी इच्छा का तारतम्य ऐसा था कि एक पुरुष तो यह चाहता था कि इस आम के वृक्ष को जड से ही काटकर गिरा दें, पीछे मनमाने फल खायें, दूसरे पुरुष के मन मे यह इच्छा बनो कि मूल से गिराने से क्या फायदा, तने के ऊपर की एक मोटी शाखा को ही गिरा दे तो उसके ही फल खाने के लिये बहुत होगे, उन्हे खा लेंगे। तो तीसरे पुरुष के मन मे यह इच्छा बनी कि इस बडी शाखा को गिराने से क्या लाभ, जो इसमे अन्य शाखायें हैं उनमे से एक शाखा को काटकर गिरा दे फिर मनमाने फल खायें चौथे पुरुष के यह इच्छा बनी कि इन शाखा प्रशाखाओ के गिराने से क्या लाभ, उनमे से किसी शाखा की टहनी तोड लें, इतने से फलो से ही पेट भर जायेगा। तो ५वें पुरुष के मन मे यह इच्छा बनी कि उन टहनियो के तोडने से भी क्या लाभ ? इन गुच्छो मे जो पके-पके फल हैं केवल उनको ही तोडा जाये और खाया जाये। तो छठे पुरुष के यह इच्छा हुई कि पेड पर चढने या फल तोडने से क्या फायदा ? यहाँ जमीन मे ही इतने पके फल पडे हैं कि जिनको खाने से ही पेट भर सकता है। तो उन छहो पुरुषो के विकट इच्छा बनी सो जैसे उन इच्छाओ का जैसे तारतम्य है, परिणामो मे अशुभपना है ऐसे ही कृष्ण आदिक लेश्याओ मे तारतम्य पाया जाता है। कृष्ण लेश्या वाला बडा प्रचड क्रोधी होता है जो किसी भी प्राणी को मारना, बरबाद करना, ऐसा प्रयत्न कृष्ण लेश्या वाले के होता है, उससे कम खोटापन नील मे है, उससे कम खोटापन कापोत लेश्या मे है। और जब खोटापन नही रहता, भावो मे दया, दान, पूजा विनय भक्ति आदिक होती है तो वहाँ पीत लेश्या बनती है और उससे भी और विशुद्ध परिणाम होने मे पद्म लेश्या और उससे भी अधिक विशुद्ध होने पर शुक्ल लेश्या होती है।

लेश्याओं के छब्बीस अशो मे आयु बध के व गति बध के अशों का सकेत—लेश्याओ के सब २६ अश होते हैं। जैसे प्रसिद्ध १८ अश हैं। एक-एक लेश्या मे जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट अश होते हैं, पर खोटी लेश्या के उत्कृष्ट अश के करीब भी और भेद पडते हैं—आयु बध न होने की अपेक्षा, ऐसे ही शुक्ल लेश्या के भी उत्कृष्ट अशो के करीब और ऐसे स्थान हैं जो आयु बध होवे और न बध होवे इन विशेषताओ से बढ जाता है। इन सब २६ अशो मे से बीच के ८ अश तो आयु बध के कारण होते हैं और शेष अश उन-उन गतियो के बध के कारण होते हैं। पुण्य, पाप कर्मो की ऐसी ही एक खूबी है, जिससे कि ऐसी भिन्न-भिन्न गतियो की और आयु के बध के परिणाम निमित्त कारण होते हैं, शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अश मे मरण हो तो वह सर्वार्थसिद्धि मे उत्पन्न होता है। कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अश से मरण हो तो वह सप्तम नरक में जन्म लेता है। शेष के अशो मे मरण होने पर नाना प्रकार की भिन्न-भिन्न दशाओ से जन्म होता है। इन लेश्याओ के आधार से

सख्या क्षेत्र स्पर्शन, काल, अन्तर भाव, अल्प बहुत्व आदिक विधियो से अनेक प्रकार के भेद समझे जाते हैं।

प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा ॥४-२३॥

कल्पवासी देवो का परिचय—ग्रैवेयको से पहले कल्प होते हैं, ग्रैवयको से पहले कहाँ तक लेना है इसके अर्थ के लिये सौधर्म आदिक का ग्रहण करना चाहिये। यह प्रकरण चू कि वैमानिक देवो का है इसलिये वैमानिको मे जो सबसे नोचे जगह पर हो उन्हे लेना। तो सौधर्म आदिक तक कल्पवासी होते हैं। यहा यह शका हो सकती है कि जब सूत्र मे सौधर्म आदिक का ग्रहण कर रहे हो तो इस सूत्र को सौधर्म ऐशान इत्यादि सूत्र के बाद ही तुरन्त कह देना चाहिये था। तब विल्कुल स्पष्ट अर्थ हो जाता कि ग्रैवयको से पहले सौधर्म आदिक कल्प कहलाते हैं। इस शका का समाधान यह है कि यदि इस सूत्र को उस बडे सूत्र के अनुसार ही बोल देते तो स्थिति प्रभाव आदिक जो ३ सूत्र कहे गये है उनका व्यवधान बन जाता। फिर उन सूत्रो से यह अर्थ न जाहिर होता कि ऊपर-ऊपर सर्वार्थ-सिद्धि पर्यन्त ये बातें बढ-बढ होती जाती या ये बाते कम-कम होती जाती। अत उस बडे सूत्र के बाद इस सूत्र को नही कहा गया है किन्तु इस सूत्र का व्यवधान हो जाने पर स्थिति प्रभाव आदिक का अर्थ सिर्फ कल्पवासियो मे ही लगेगा याने स्थिति ऊपर-ऊपर के देवो मे बढती हुई चली गई है। तो सिर्फ १६ स्वर्गो तक ही अर्थ लगेगा। उसके बाद इस सूत्र का अर्थ नही लगता क्योकि स्थिति आदिक सूत्रो से पहले यह कल्पा वाला सूत्र रख दिया। तो कल्पवासियो मे ही तो अर्थ घटता इस कारण इस २३वें सूत्र को वहाँ न कहकर यहा ही कहना उपयुक्त होता है। अब इस सूत्र का अर्थ हुआ कि ग्रैवयको से पहले सौधर्मादिक स्वर्ग तक अर्थात् १६वें स्वर्ग से लेकर पहले स्वर्ग तक के ये सब देव कल्प कहलाते है अथवा इन स्थानो को कल्प कहते हैं। इन कल्पो मे जो रहे उन्हे कल्पवासी कहते है।

कल्पातीत देवो का परिचय—अब यहा यह जिज्ञासा हो जाती है कि ग्रैवयको से पहले तो कल्पवासी कहलाते हैं तो फिर इसके अलावा कौन क्या कहलाते हैं। तो उत्तर उसका यह है कि वे सब कल्पातीत कहलाते हैं। यह निर्णय अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। अब यहा एक आशका यह रह जाती है कि सूत्र मे तो यह बताया है कि ग्रैवयको से पहले कल्प कहलाता है। तो पहले शब्द से तो भवनवासी तक का अर्थ लेना चाहिये, क्योकि देव चार निकाय वाले कहे गये हैं, भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। वैमानिको मे १६ स्वर्ग तक एक प्रकार का ढग है और उसमे ऊपर-ऊपर अहिमिन्द्र ही होते है। तो ग्रैवयको से पहले कहाँ तक लेते चले जाना चाहिये, सो यह अवधि भवनवासी तक होना चाहिये। सो समाधान उसका यह है कि यह प्रकरण वैमानिको का चल रहा है इसलिये जो भी ग्रहण करना है वह सब वैमानिको तक ही ग्रहण करना है। अब यहाँ कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि अगर भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी कल्पवासियो मे नही आते तो फिर इनको कल्पातीत कहना चाहिये, याने कल्पो से अलग अतीत हो गये। इसका उत्तर यह है कि पहले सूत्र आया था उपर्युपरि, जिसका अर्थ है कि ये सब ऊपर-ऊपर रचनाये हैं। तो जब कल्पातीतो को ग्रैवयको से ऊपर देखते है तो ग्रैवयक विमानो से ऊपर अनुदिश और अनुत्तर तक ही तो आयेगे। भवनवासी तो सौधर्म स्वर्ग से भी बहुत नीचे है, और इनका निवास तो अधोलोक मे है।

ज्योतिषियो का मध्यलोक मे है। तो कल्पातीत केवल ग्रैवेयक अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देव ही होते हैं।

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका ॥४-२४॥

लौकान्तिको के निवास का परिचय—इस सूत्र मे लौकान्तिक देवो का निवास बताया गया है। लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक आलय वाले होते हैं। अर्थात् इनका निवास ब्रह्मलोक मे है। इस सूत्र मे दो पद हैं। प्रथम पद का अर्थ है कि ब्रह्मलोक ही है आलय जिसका वे ब्रह्मलोकालय कहलाते हैं। द्वितीय पद का अर्थ है लौकान्तिक देव। यहा यह बात जानना चाहिये कि ब्रह्मलोक ५वें स्वर्ग को कहते हैं, किन्तु ये वैमानिक देव ५वें स्वर्ग मे सब जगह नही है। ५वें स्वर्ग के अन्त मे चार दिशाओ मे व चार विदिशाओ मे ये रहते हैं। वह भी ब्रह्मलोक ही कहलाता है, लेकिन ब्रह्मलोक का आखिरी भाग है। यह कैसे जाना कि ये लौकातिक देव ब्रह्मलोक के आखिरी भाग मे रहते हैं। यह जाना है लोकान्त शब्द को सुनकर। लौकान्तिक का अर्थ है। लोक के अन्त मे होने वाले देव। ब्रह्मलोक के अन्त को लोकान्त कहते हैं और लोकान्त मे जो देव होते हैं उन्हे लौकान्तिक देव कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक मे सब जगह नही रहते, किन्तु ब्रह्मलोक के अन्त भाग मे रहते हैं।

लौकान्तिक देवो की विशेषता—लौकान्तिक का दूसरा अर्थ है लोक याने ससार। उसका अन्त ही जिनका प्रयोजन है वे लौकान्तिक देव हैं। ये लौकान्तिक देव एक भवावतारी होते हैं। वहाँ से चलकर मनुष्य होकर उस ही मनुष्य भव से मोक्ष जाते हैं। अर्थात् जन्म जरा मृत्यु से भरे हुये ससार का अन्त ये कर डालते हैं, इस कारण ये लौकान्तिक देव कहलाते हैं। ये लौकान्तिक देव भी कल्पवासी ही कहलाते हैं फिर भी ये देवर्षि हैं। अन्य सब देवो की दृष्टि मे वे महान् माने जाते हैं और ये सब देव अपने ही स्थान पर रहकर धर्मचिन्तन आत्ममनन चर्चा मे अपना समस्त समय बिताते हैं। ये प्रवीचार रहित होते हैं। इनके कामवासना नही है और न इनके देवियाँ हैं। इस प्रकार वैमानिक नामक निकाय मे ही ये लौकान्तिक देव गिने जाते हैं। अब इन लौकान्तिक देवो का विशेष प्रतिपादन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दत्तोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥४-२५॥

ब्रह्मलोकान्त के दिशा विदिशा मे आवासी लौकान्तिक देवो का परिचय—ब्रह्मलोक के आठो ही दिशाओ विदिशाओ मे ये ८ प्रकार के लौकातिक देव रहते हैं जिनका नाम हैं—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट। उत्तर व पूर्व दिशा के बीच सारस्वत रहते हैं पूर्व मे आदित्य, पूर्व दक्षिण कोण मे वह्नि, दक्षिण मे अरुण। इसके बाद प्रत्येक विदिशा और दिशा मे क्रम से शेष प्रकार के लौकातिक देव रहते हैं, यह लगा लेना। इनका यह निवास स्थान कहाँ पर है, सो इसे इस तरह समझना कि मध्यलोक मे जहाँ अरुण समुद्र है वहाँ से गोल चूडी के आकार मे ही ऊपर अधकार चला गया है। सो जैसे-जैसे ऊँचा उठता गया वैसे ही वसे क्रम से उसका विस्तार बढ घट कर मध्य और अन्त मे सख्यात योजन मोटा रह गया। यह अन्धकार जहाँ तक ब्रह्मलोक के करीब अन्त तक गया है उसके ऊपर भाग मे चारो दिशाओ मे २-२ राशियाँ निकली हैं उनके मध्य ये सब लौकातिक देव रहते हैं।

अन्य सोलह प्रकार के वर्ग के लोकांतिक देवों का परिचय—इस सूत्र मे दो पद हैं। एक मे तो ८ ही प्रकार के लोकांतिक देवो का नाम रखकर द्वन्द्व समास आ गया है, और दूसरा पद है च। च का अर्थ है और। इस च शब्द से यह बात भी ध्वनित होती है कि इन ८ प्रकार के लौकातिक देवो के अतिरिक्त और भी लौकातिक देव होते है, याने दिशा विदिशाओ मे ये ८ प्रकार के लौकातिक देव तो हैं ही, मगर एक लौकातिक से दूसरे लौकातिक देव के आवास के बीच मे जो स्थान है वहाँ भी लौकातिक देव रहते हैं। और वह इस प्रकार है कि सारस्वत एवं आदित्य के अन्तराल मे अग्न्याभ व सूर्याभ नाम के वर्ग के लौकातिक देव रहते हैं। आगे आदित्य और वह्नि नाम के लौकातिक देवो के अन्तराल मे चद्राभ और सत्याभ वर्ग के देव रहते हैं। फिर वह्नि और अरुण लौकांतिक देवो के अन्तराल मे श्रेयस्कर क्षेम कर वर्ग के देव रहते हैं। इसमे आगे अरुण और गर्दतोय जाति के लौकातिक देवो के अन्तराल मे वृषभेष्ठ कामचार वर्ग के लौकातिक देव रहते हैं। उसके बाद गर्दतोय और तुषित जाति के लौकातिक देवों के अन्तराल मे निर्माणरज और दिगतरक्षित वर्ग के लौकातिक देव रहते हैं। उसके बाद तुषित और अव्यावाध लौकातिक देवो के अन्तराल मे आत्मरक्षित और सर्वरक्षित वर्ग के देव रहते हैं। इसके बाद अव्यवाध और अरिष्ट जाति के लौकातिक देवो के अन्तराल मे मरुत और वसु वर्ग के लौकातिक देव रहते हैं। इसके बाद अरिष्ट और सारस्वत के अन्तराल मे अश्व और विश्व वर्ग के लौकातिक देव रहते हैं। ये जितने नाम बताये गए हैं ये नाम सब विमानो के है और विमानो मे रहने वाले देवो के भी साहचर्य के कारण ये ही नाम होते हैं।

लौकातिक देवों की संख्या—यहाँ इनकी संख्या इस प्रकार जानना कि सारस्वत तो ७०० हैं और आदित्य ७०७, वह्नि ७००७ हैं, अरुण भी उतने ही हैं। गर्दतोय ९००९ हैं, तुषित भी उतने ही हैं। अव्यावाध ११०११ हैं। अरिष्ट भी उतने ही हैं। इसके अतिरिक्त जिन लौकांतिक देवो को च शब्द से बताया गया था उनकी संख्या इस प्रकार है। अग्न्याभ के देव ७००७ हैं, सूर्याभ देव ९००९ हैं, चन्द्राभ के देव ११०११ है, सत्याभ मे १३०१३ है, श्रेयस्कर मे १५०१५ हैं, क्षेमंकर मे १७०१७ हैं, वृषभेष्ठ मे १९०१९ हैं, कामचर मे २१०२१ हैं निर्माणरज मे २३०२३ है, दिगतरक्षित मे २५०२५ हैं, आत्मरक्षित मे २७०२७ हैं, सर्वरक्षित मे २९०२९ हैं, मरुत मे ३१०३१ हैं वसु मे ३३०३३ हैं अश्व में ३५०३५ हैं, विश्व मे ३७०३७ हैं, ये सभी २८ प्रकार के लौकातिक सघ सब मिलकर ४०७८०६ हैं।

लौकांतिक देवों की देवर्षिता, विषयविरतता श्रुतज्ञता च एकभवावतारिता—ये सभी लौकातिक देव स्वतन्त्र हैं। इनमे न कोई हीन है, न कोई अधिक है। ये सभी विरक्त देव हैं। विषयों मे इनको रंच भी प्रेम नहीं है, इसी कारण ये देवर्षि कहलाते हैं और अन्य देवों के लिये ये पूज्यनीय हैं। १४ पूर्व के धारी हैं, निरन्तर ज्ञानभावना मे ही मन लगाते रहते हैं संसार से उद्विग्न रहते हैं, अनित्यभावना, अशरणभावना आदिक बारह भावनाओं मे इनका चित्त लगा रहता है। ये अपनी भावना को छोड़कर कहीं विहार नहीं किया करते। केवल तीर्थंकर जब विरक्त होते हैं, उनका तपकल्याणक होता है उस समय तीर्थंकर की विरक्तिका समर्थन करने के लिये और उस विरक्ति पर प्रसन्नता दर्शाने के लिये ये मध्य लोक मे आते हैं। इन देवों के ऐसा ही उत्कृष्ट भाव है जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की भावना संसार से उद्वेग व केवल आत्ममनन की ऐसी भावना वाले होते हैं ऐसे ही लोग इन लौकातिक देवों मे उत्पन्न होते हैं। इनका नाम लौकांतिक है। ये एक भवावतारी हैं। जैसे दक्षिण इन्द्र, लौकान्तिक सर्वार्थसिद्धि के देव आदिक ये एकभवावतारी हैं। इसी तरह ये भी एक भवाव-

तारी हैं। लौकांतिक देव समस्त श्रुत के जानकार होकर भी याने ११ अ ग १४ पूर्व के जानकार होकर भी श्रुतकेवली नही कहलाते। जैसे कि इन्द्र इतना बृहस्पति होकर भी श्रुतकेवली नही कहलाता, इसका कारण यह है कि अ ग बाह्य और अन्य भेद के श्रुत इनके नही है और सयम भी नही है। ये लौकांतिक पवित्र देव हैं, सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं। सयम न होने पर भी सयम की निरन्तर भावना रहती है। सयमी अन्तरात्माओ के प्रति इनका आदर रहता है और ये निरन्तर आत्मानुभव, आत्म-चर्चा के प्रति ही इच्छुक रहते हैं। इनका उपयोग इतना विशुद्ध है कि इनके व्यर्थ के मायाजाल के विकल्प होते ही नही हैं। ऐसा इन लौकांतिक देवो का प्रसग पाकर वर्णन किया गया है।

विजयादिषु द्विचरमा ॥४-२६॥

विजयादिक विमानवासी देवों की द्विभवावतारिता—विजय आदिक द्विचरम अर्थात दो भवावतारी होते है। इस सूत्र मे दो पद हैं। प्रथम पद तो अधिकरण बताने वाला है अर्थात दो भवावतारी जीव कहाँ होते हैं उसका उत्तर है विजय आदिक मे। यहाँ आदि शब्द कहने से प्रकार अर्थ आता है याने विजय की तरह ही जो और स्थान हैं वे विजय आदिक मे आते हैं। विजय विमानवासी देव कैसे है यहाँ कौन उत्पन्न होता है? सम्यग्दृष्टि होकर और निर्ग्रन्थ होकर ही यहाँ मनुष्यो की उत्पत्ति होती है। अर्थात विजय आदिक विमानो मे वे मनुष्य उत्पन्न होते हैं जो सम्यग्दृष्टि और निर्ग्रन्थ हैं अर्थात भावलिङ्गी मुनि ही इन अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होते हैं। तो ऐसे ही वैजयन्त जयन्त, अपराजित विमान हैं। अनुदिश विमानो मे भी उत्पन्न होने वाले देवो की भी प्राय: यही विशेषता है। यहाँ अनुत्तर विमानो मे ४ विमान लिये गये हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित। यहाँ सर्वार्थ सिद्धि को ग्रहण नही किया, क्योकि सर्वार्थसिद्धि के देव एक भवावतारी होते हैं। यहाँ सर्व अर्थ सिद्ध हो गये ऐसा अन्वर्थ नाम ही है। सर्वार्थसिद्धि के देव लोकांतिक देवो की तरह एक मनुष्य भव पाकर मोक्ष चले जायेंगे। एक भवावतारी का अर्थ है कि अगला भव मनुष्य भव पाकर उस ही भव से मोक्ष चले जायेंगे, और द्विचरम का अर्थ है दो मनुष्य भव धारण कर मोक्ष चले जायेंगे, और द्विचरम का अर्थ है दो मनु भव धारण कर मोक्ष चले जायेंगे। जैसे विजयादि विमानका कोई देव मरण करके मनुष्य बना। वहाँ पुन साधना करके फिर देव हुआ। फिर उसके बाद मनुष्य हुआ। उस मनुष्य भव से मोक्ष चला जायगा। यदि सामान्य भवो की दृष्टि से देखे तो तीन भव होते हैं, बीच मे जो देव भव मिला उसको भी शामिल करने से तीन भव बन जाते हैं। मगर यहा मनुष्य भव की अपेक्षा ही वर्णन किया जा रहा है कि ये देव जगहो से ज्यादा दो भवावतारी होते हैं।

चरम भवावतारिता के प्रसग मे कुछ ज्ञातव्य तथ्य—वस्तुत तो चरमपना तो एक ही भव मे हो सकता है जिस भव से मोक्ष जाते हैं, पर उसके पहले मनुष्य भव आया तो वह चरम की प्रत्यासत्ति होने से अर्थात् उसके पूर्व निकट का होने से उसे भी उपचार से चरमपना कह देते हैं, मगर उसका अर्थ है अन्तिम के पास वाला भव। अब यहाँ दूसरे पद का अर्थ हुआ, दो चरम मनुष्य भव जिसके हो वे द्विचरम कहलाते हैं। अब यहाँ कुछ जिज्ञासा बन सकती है कि लौकान्तिक देव तो एक भवावतारी है, सर्वार्थसिद्धि के देव भी एक भवावतारी हैं। विजय आदिक वासी देव दो भवावतारी हैं। तो सौधर्म आदिक देवो मे क्या व्यवस्था है? समाधान यह है कि एक चरम याने एक भवावतारी जैसे लौकांतिक और सर्वार्थसिद्धि हैं इसी प्रकार सौधर्म आदिक स्वर्गो के दक्षिणेन्द्र और इनकी पट्ट रानियाँ लोकपाल आदिक के एक चरमपना कहा गया है। इसके अतिरिक्त जो अन्य देव

हैं उनमे नियम नही है। एक चरम भी कोई हो सकता और दो चार छह आदिक अनेक भव वाले भी हो सकते। और कितने ही ऐसे होते हैं कि मोक्ष जायेंगे ही नही, क्योकि अभव्यजीव और मिथ्या-दृष्टि जीव भी नवग्रैवेयक तक उत्पन्न हो लेते हैं। इस प्रकार वैमानिका इस सूत्र से प्रारम्भ करके इस सूत्र तक ११ सूत्रो के द्वारा वैमानिक देवो का निरूपण किया गया है।

औपपादिक मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनय ।४-२७।।

तिर्यञ्चो का परिचय व देवो के परिचय के बाद तिर्यन्चों का परिचय कराने वाले प्रकृता सूत्र का इस प्रकरण मे कहे जाने का प्रयोजन—औपादिक जीव और मनुष्य इनके सिवाय शेष जीव तिर्यन्च कहलाते हैं। सूत्र का यह सामान्य अर्थ हुआ। इस सूत्र से पहले वैमानिक देवो का प्रकरण था। इस अध्याय के प्रारम्भ से ही देवो का प्रकरण चला आ रहा था। उसकी समाप्ति के बाद क्यो-कि यहा तक नारकी देव और मनुष्यो का विशेष वर्णन चला था तीसरे और चौथे अध्याय मे, तो अवशेष तिर्यन्च बचे, उनका यहाँ परिचय दिया गया है। शका यहा यह हो सकती है कि तिर्यन्चो का भी थोडा प्रकरण चला था पहले। उस ही प्रकरण मे इस सूत्र को कह देते याने तिर्यन्च का वर्णन कर देते, वहाँ वर्णन क्यो नही किया गया ? तो समाधान इसका यह है कि यदि इस सूत्र को अर्थात् तिर्यन्चो का परिचय यदि पहले तिर्यन्चो के प्रकरण मे दिया जाता तो सभी तिर्यन्चो के नाम लेने पडते कि कौन-कौन तिर्यन्च कहलाते हैं। और जब देव नारकी मनुष्यो का वर्णन हो चुका तब थोडे से ही अक्षरो मे इस सूत्र ने बता दिया कि इन तीन गति के जीवो को छोडकर बाकी सब ससारी जीव तिर्यन्च कहलाते हैं।

तीन लोको के वर्णन के बाद तिर्यन्चो का परिचय कराने का कारण—उक्त वृत्त के अति-रिक्त एक यह भी भाव भरा हुआ है कि जब अधोलोक, मध्यलोक और अर्द्धलोक का खूब वर्णन किया जा चुका और उसके बाद तिर्यन्च का भी परिचय कराया जा रहा है तो यह भी ज्ञान मे आ जाये कि तिर्यन्च समस्त लोक मे भरे पडे हैं, इस लोक का कोई भी प्रदेश ऐसा नही क्या कि जहाँ तिर्यन्च जीव न पाये जाते हो। तिर्यन्च होते हैं दो प्रकार के (१) सूक्ष्म और, (२) बादर। सूक्ष्म नामकर्म का उदय होने पर सूक्ष्म देह वाले तिर्यन्च होते हैं, बादर नामकर्म का उदय होने पर ये बादर शरीर वाले होते हैं। तो उनमे सूक्ष्म तियन्च तो समस्त लोक मे रहा करते है, परन्तु बादर तिर्यन्चो का आवास नियत है। हरी वनस्पति मे रहे, मनुष्य आदिक के शरीर मे रहे, उनके आश्रय से रहा करते है तो ये सूक्ष्म तिर्यन्च समस्त लोक मे भरे पडे हैं, यह बात भी यहा तिर्यन्च परिचय मे सिद्ध हो जाती है।

सूत्रगत तीनो पदो की सार्थकता का वर्णन—व्याकरण विधि से यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि इस सूत्र मे जो तीन पद कहे हैं उनके प्रथम पद मे दो शब्द दिये हैं। औपपादिक और मनुष्य-और इनका द्वन्द्व समास भी हुआ है। इस समास मे दो शब्द है उनमे थोडे अक्षर मनुष्य शब्द मे पाये गये। औपपादिक शब्द मे अक्षर अधिक हैं। तो द्वन्द्व समास विधि के अनुसार अल्प अक्षर वाला मनुष्य शब्द पहले आना चाहिये। इसे पहले क्यो नही दिया गया ? तो उत्तर इसका यह है कि लौकिक दृष्टि से मनुष्यो की अपेक्षा औपपादिक जो देव है वह आदरणीय है, अभ्यर्हित है। उसके कारण अल्प अक्षर का उल्लघन करके औपपादिक शब्द पहले दिया गया हैं। इस सूत्र मे दूसरा पद है शेषा. अर्थात् औपपादिक और मनुष्यो को छोडकर शेष जीव। तो इस शेष मे सिद्ध भी आ

जाना चाहिए, और इस तरह सिद्ध तिर्यन्च बन जायेंगे। समाधान इसका बिल्कुल स्पष्ट है कि यह सब ससारी जीवों का प्रकरण चल रहा है, इस कारण इस शेष शब्द से शेष के ससारी जीव ही लिये जायेंगे। इस प्रकरण मे सिद्ध का कोई प्रसग नही आता। इस सूत्र मे तीसरा पद दिया गया है तिर्यग्योनय अर्थात् तिर्यन्च योनि वाले याने तिर्यन्चो मे जिनकी उत्पत्ति होती है, तिर्यन्चो की जो स्थिति है उनका जो लक्षण है उस ढग मे जो पैदा होता हैं वे तिर्यन्च कहलाते हैं। कर्मोदय से जिनमे तिरोभाव प्राप्त हो याने बोझा ढोने योग्य हो नीचे रहे वे तिर्यन्च योनि है। कोई ऐसा सोच सकते हैं कि जो मनुष्य बोझा ढोकर चलते हैं या स्वय पैदल रिक्शा खीचकर चलते हैं ऐसे मनुष्यो को तिर्यन्च कहना चाहिये, क्योकि वे भी दूसरो के द्वारा बोझा ढोये जाने वाले बनते हैं। समाधान—यह शका अत्यन्त निर्मूल है, यह विवक्षा है तिर्यन्च नामकर्म का उदय होने पर जा ऐसी योनिया मिलती हैं वे तिर्यन्च कहलाते हैं। मनुष्यो के तो मनुष्य गति नामकर्म का उदय है, वे मनुष्य ही कहलायेंगे, इस प्रकार इस सूत्र मे जो बात कहने को शेष रह गयी थी याने तिर्यन्चो का परिचय कराने की बात शेष रह गयी थी, उसका परिचय कराया गया है।

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणा सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥४-२८॥

भवनवासी देवो की उत्कृष्ट आयु—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भवनवासियो की उत्कृष्ट स्थिति क्रमश १ सागर, ३ पल्य, ढाई पल्य, दो पल्य और १ १/२ पल्य प्रमाण है। अब यहा से स्थिति बतलायी जा रही है। प्रकरण से पहले भी स्थिति बतायी गई थी। अब जिन-जिनकी स्थिति बतानी शेष रह गई थी उनको स्थिति बतला रहे हैं।

सौधर्मैशानयो सागरोपमेऽधिके ॥४-२९॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवो की उत्कृष्ट आयु—सौधर्म और ऐशान स्वर्गों के देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है। यद्यपि उक्त सूत्र मे भवनवासियो की स्थिति बताने के बाद व्यन्तर और ज्योतिष्क देवो को स्थिति बताना क्रम प्राप्त था, मगर उसका उल्लघन करके जो यहा वैमानिक देवो की स्थिति बतायी जा रही है, उसका कारण यह है कि शेष व्यन्तर और ज्योतिष्को की स्थिति आगे बतायेंगे और आगे बताने मे सक्षिप्त वर्णन हो जायेगा। तो अब यहाँ वैमानिक देवो की स्थिति मे सर्वप्रथम जो स्वर्ग हैं उनमे रहने वाले दवो की स्थिति बतायी है। इस सूत्र मे यद्यपि दो शब्द नही लिखा है तो भी सागरोपमे द्विवचन है, जिससे यह सिद्ध होता है कि दो सागर प्रमाण उनकी आयु है। यहाँ अधिक शब्द दने से वह ध्वनित होता है कि किसी देव की सौधर्म और ऐशान स्वर्ग मे दो सागर से भी कुछ अधिक स्थिति हो जाती है। ऐसी अधिक स्थिति होने का कारण यह है कि किसी जीव ने ज्ञानी पुरुष ने ऊपर के स्वर्ग की स्थिति बाधी थी, पर किसी सक्लेशता के कारण आयु के अपकर्ष के समय स्थिति इतनी घट जाती है कि करीब वह प्रथम द्वितीय स्वर्ग मे उत्पन्न होगा। तो ऐसे जीवो को स्थिति कुछ अधिक हो जाया करती है।

सानत्कुमारमाहेन्द्रयो सप्त ॥४-३०।

तृतीय व चतुर्थ स्वर्ग के उत्कृष्ट आयु—सानत कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों मे कुछ अधिक ७ सागर की उत्कृष्ट स्थिति होती है। इस सूत्र मे दो पद हैं। पहले पद मे आधारभू स्वर्ग की बात कही है, दूसरे पद मे स्थिति की बात कही है। यहाँ अधिक शब्द नही कहा गया, किंतु पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति लेकर यहाँ अधिक अर्थ हो जाता है यह सानत्कुमार तीसरा कल्प है और माहेन्द्र चौथा कल्प है।

स्वर्ग तो १६ होते हैं किंतु कल्प १२ होते हैं। कल्प इन्द्रो की गणना के अनुसार है। १६ स्वर्गों मे १२ इन्द्र होते हैं और १२ प्रतीन्द्र होते है। तो प्रारम्भ के ४ स्वर्ग, ४ कल्प हैं अन्त के ४ स्वग ४ कल्प हैं। मध्य के ८ स्वर्गों मे दो दो स्वर्गों मे एक-एक कल्प होता है। इसप्रकारतृतीय और चतुर्थ स्वर्ग मे आवास करने वाले देवो की स्थिति कुछ अधिक ७ सागर की होती है।

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥४-३१॥

ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक १० सागर की होती है। लातव, कापिष्ठ स्वर्ग के देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक १४ सागर की होती है। शुक्र महाशुक्र स्वर्ग के देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक १६ सागर की होती है। शतार सहस्रार स्वर्ग के दवो की आयु उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कुछ अधिक १८ सागर की होती है। आनत और प्राणत स्वर्ग के देवो की उत्कृष्ट स्थिति २० सागर की होती है। यहाँ इमसे अधिक की स्थिति नही होती है। कारण यह है कि व्रती मनुष्य इन स्वर्गों मे उत्पन्न होते हैं। इससे पहले अनेक प्रकार के सन्यासी श्रावक व्रत व महाव्रत से रहित भी उत्पन्न हो लेते थे। तो यहाँ की स्थिति जो पुरुष बाँधता है उसकी इस ही योग्य स्थिति रहती है। छेद नही होता है। आरण और अच्युत स्वर्ग मे २२ सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति होती है। इस सूत्र मे ३ पद हैं। प्रथम पद मे तो ७ सागर मे जितना जितना मिलकर उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है उन सख्याओ का निर्देश है। जैसे ३ अधिक ७, ७ अधिक ७, ९ अधिक ७ आदि मिलाते जायें। दूसरे पद से कह अर्थ ध्वनित हुआ कि ७ सागर मे इतनो अधिक मिलान होती है। और तोसरा पद है तु अव्यय, वह इस बात को घोषित करता है कि १२ स्वर्ग तक ही कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति होती है। जो उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है उससे कुछ अधिक होना १२वें स्वर्ग तक ही है। जैसे कि १३वें, १४वे स्वर्ग मे २० सागर की स्थिति बताया तो उससे कुछ अधिक न होगी। कोई शब्द व्यर्थ सा पढकर कुछ न कुछ विशिष्ट अर्थ को घोषित किया करता है।

आरणच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥४-३२॥

कल्पातीत देवो की उत्कृष्ट आयु—१६ स्वर्ग तक की उत्कृष्ट स्थिति बताई जा चुकी हैं। अब स्वर्ग से ऊपर जो विमान हैं उन विमानो मे रहने वाले देवो स्थिति बताई जा रही है आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नवग्रैवेयको मे एक-एक सागर अधिक स्थिति उत्कृष्ट पाई जातो है, अर्थात १६वे स्वर्ग मे २२ सागर की उत्कृष्ट स्थिति थी तो ग्रैवेयको मे तेइस से लेकर ३१ सागर तक की उत्कृष्ट स्थिति हुई। पहले ग्रैवयक मे २३, दूसरे ग्रैवेयक मे २४, इस तरह एक-एक अधिक लेकर ९वे ग्रैवेयक मे ३१ सागर की स्थिति होती है। इसस ऊपर अनुदिश विमानो मे उत्पन्न हुए देवो की उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर की होती है उससे ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार विमानो मे उत्पन्न हुये दवो की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर की होती है। और सर्वार्थसिद्धि मे ३३ सागर की ही स्थिति होती है। वहाँ जघन्य स्थिति नही है।

कल्पातीत देवो की आयु का प्रतिपादन करने वाले इस सूत्र मे ज्ञातव्य कुछ तथ्य—इस सूत्र मे अनुदिश शब्द तो दिया नही गया, फिर अनुदिश मे उत्पन्न होने वाले देवो की आयु कैसे ग्रहण की गई है। उत्तर यह है कि इस सूत्र को जो ग्रैवेकेषु और विजयादिषु इन दो भिन्न-भिन्न पदो मे कहा है उससे ही यह सिद्ध होता है कि यहा अनुदिश और ग्रहण करना क्योकि यदि अनुदिश ग्रहण न करते की बात होती तो ग्रैवेयक और विजय इन दोनो का समास करके एक ही पद बना देते, यह पद कैसा होता ? ग्रैवेयक विजयादिषु, किन्तु आचार्य महाराज ये इन दो पदो को जुदा-जुदा रखा

है। इससे सिद्ध है कि अनुदिश का ग्रहण कर लेवें। यहा एक जिज्ञासा होती है कि अनुदिश मे तो एक ही उत्कृष्ट स्थिति बतायी है, ३२ सागर की। और ग्रैवेयको मे उत्कृष्ट स्थिति बतायी है २३ से लेकर ३१ सागर तक। ऐसा अर्थ कैसे ध्वनित हुआ ? समाधान यह है कि विजयादिषु की तरह सिर्फ ग्रैवेयकेषु शब्द देते, नवसु शब्द न लगाते तब तो ६ जगह जुदी-जुदी उत्कृष्ट स्थिति न आती, पर नवसु शब्द देने से यह अर्थ ध्वनित होता है कि नवग्रैवयको मे भिन्न-भिन्न उत्कृष्ट स्थिति है। इस सूत्र मे सर्वार्थसिद्धि शब्द जो पृथक् से कहा गया है उससे यह ध्वनित हुआ कि सर्वार्थसिद्धि मे सभी की ३३ सागर की स्थिति होती है, अन्यथा विजयादिषु की जगह सर्वार्थसिद्धि भी आ जाती, क्योकि यह अनुत्तर विमान है। पर सर्वार्थसिद्धि को अलग कहने का अर्थ ही यह हुआ कि यहाँ जघन्य स्थिति नही हुआ करती है। अब यहा एक जिज्ञासा होती है कि जैसे मनुष्य और तिर्यन्चो मे उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति कही गई है, क्या देवो मे उत्कृष्ट ही स्थिति होती है। जघन्य स्थिति नहीं होती क्या ? तो इस जिज्ञासा के समाधान मे अब आगे देवो की की जघन्य स्थितियो का वर्णन चलेगा। जिससे सिद्ध होगा कि देवो मे भी जघन्य स्थिति हुआ करती है।

अपरा पल्योपममधिकम् ॥४-३३॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवो की जघन्य स्थिति—सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवो की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है, यह सख्या मे नही आता है, किन्तु एक उदाहरण द्वारा वह समय समझाया जाता है। मान लीजिये कि कोई दो हजार कोश का गहरा लम्बा, चौडा गड्ढा है, उस गड्ढे मे बहुत कोमल बाल के इतने छोटे-छोटे टुकडे हो कि जिनका दूसरा टुकडा न हो सके उन बाल के टुकडो को उस गड्ढे मे ठसाठस भर दिया जाये और ऊपर से खूब हाथी फिराकर ठसाठस कर दिया जाए फिर उस गड्ढे से १००-१०० वर्ष मे रोम का एक-एक टुकडा निकाला जाये तो जितने वर्षों मे वे सब टुकडे निकल पावे उतने समय को कहते हैं व्यवहार पल्य और व्यवहार पल्य का असख्यात गुणा होता है उद्धार पल्य और उद्धार पल्य से असख्यात गुणा समय होता है अद्धा पल्य। यह पल्य की स्थिति बतायी जा रही है। तो इस प्रकार कुछ अधिक एक पल्य सौधर्म और ऐशान के देवो की जघन्य स्थिति जानना। अब इससे ऊपर के स्वर्गादिक की जघन्य स्थिति बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

परत परत. पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥४-३४॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग से ऊपर के समस्त स्वर्गवासी व कल्पातीत देवो की जघन्य स्थिति—आगे-आगे के देवो की जघन्य स्थिति वह है जो उससे पहले-पहले स्वर्गों की उत्कृष्ट स्थिति होती है। जैसे सौधर्म और ऐशान स्वर्गों के देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागर है, तो सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देवो की जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है। सानत्कुमार और माहेन्द्र के देवो की जो उत्कृष्ट स्थिति है वह ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के देवो की जघन्य स्थिति है। इस प्रकार ऊपर-ऊपर के कल्पो मे तथा स्वर्गो के ऊपर नवग्रैवेयको मे, अनुदिश मे और विजय, वैजयन्त, जयन्त अपराजितो मे जघन्य स्थिति जानना चाहिये। इसके बाद सर्वार्थसिद्धि मे जघन्य स्थिति होती ही नही है। यहाँ एक शका खडी हो सकती है कि इस सूत्र मे जब पूर्वा-पूर्वा शब्द कहने से ही यह अर्थ ध्वनित होता है कि पहले-पहले स्वर्ग की उत्कृष्ट स्थिति ऊपर के स्वर्ग के लिए जघन्य होती है, तब फिर अनन्तरा शब्द कहने की क्या आवश्यकता रही ? समाधान यह है कि पूर्वा शब्द का तो

कितने ही पहले के बारे मे अर्थ ले सकते हैं, पर यहां ऐसा अटपट पूर्व नही लेना है कि जैसे कोई कहे कि ७वें, ८वें स्वर्ग के देवो की जघन्य स्थिति पहले दूसरे स्वर्ग के देवो की उत्कृष्ट स्थिति बराबर है, क्योकि पूर्व तो यह भी हो गया किन्तु ऐसा पूर्व न लेना, अनन्तर पूर्व लेना, अर्थात् जिस कल्प स्वर्ग की जघन्य स्थिति बताना है तो उससे एकदम पहले जो कल्प स्वर्ग हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति बराबर समझना। इस प्रकार अर्द्ध लोक के सभी देवो की जघन्य स्थिति का वर्णन हुआ।

नारकाणां च द्वितीयादिषु ।४ ३५॥

द्वितीयादिक नरकों मे नारकियो की जघन्य स्थिति—अर्द्धलोक के इन जीवो की जघन्य स्थिति बताने के बाद अब शेष जो भी जीव रहे अधोलोक मे या मध्यलोक मे, उनकी जघन्य स्थिति बतलायी जा रही है। इनमे सबसे पहले नारकियो की जघन्य स्थिति कहनी है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्याय मे कह दी गई थी। अब नारको की जघन्य स्थिति कहने के लिये सूत्र मे जैसे लाघव हो उस प्रकार वर्णन करने के ध्येय से द्वितीय आदिक नरको मे जघन्य स्थिति यहाँ बतायी गई है। नारकियो मे भी दूसरे आदिक नरको मे वह जघन्य स्थिति है जो उससे अनन्तर पूर्व नरको की उत्कृष्ट स्थिति है। यहाँ प्रथम नरक की जघन्य स्थिति न बता कर कर द्वितीय आदिक नरको की जघन्य स्थिति बताने का प्रयोजन है—सूत्र लाघव। इससे पहले सूत्र मे जितने भी पद कहे हैं उन सब पदो की अनुवृत्ति इस सूत्र मे ली गई है, अत इस छोटे से सूत्र से ही वह सब अर्थ निकल आता है। दूसरे आदिक नरको मे अनन्तर पूर्व-पूर्व नरको की उत्कृष्ट स्थिति जघन्य स्थिति कहलाती है। जैसे पहले नरक की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है। तो दूसरे नरक मे जघन्य स्थिति एक सागर होगी। दूसरे नरक की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर है। तो यह तीन सागर जघन्य स्थिति तीसरे नरक मे है। इस तरह नीचे-नीचे नरको की जघन्य स्थिति समझना। अब प्रथम नरक की जघन्य स्थिति बतलाते हैं।

दशवर्ष सहस्राणि प्रथमायां ॥४-३६॥

पहली पृथ्वी मे जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की होती है। यहाँ १० हजार वर्ष एक सागर प्रमाण स्थिति के सामने तालाब के एक बूंद की तरह है, बहुत ही कम है। नारकियो को कम से कम १० हजार वर्ष तक नरको मे रहकर दु ख सहना पडता है। दुःख इतने कठिन है कि जिनका समाचार सुनकर हृदय कांप जाता है। वहाँ एक दूसरे के अग के टुकडे-टुकडे कर डालते हैं, इतने पर भी उनका बीच मे मरण नही होता। वे ही सब अग फिर इकट्ठे होकर ठीक हो जाते हैं। यो अनेक बार छिदते-भिदते रहते हैं और वे पृथ्वी के दुःख सर्दी गर्मी के दुःख, बहुत प्रकार के दु ख है। उनको यह जीव सहता है। नारकियो की जघन्य स्थिति कहकर अब भवनवासियो की जघन्य स्थिति बतलाते है।

भवनेषु च ॥४-३७॥

भवनवासी देवो की जघन्य भुज्यमान आयु स्थिति—और भवनवासियो मे भी कम से कम १० हजार वर्ष की स्थिति होती है। इस भवनवासियो का स्थान इस राजकुमार नामक पहली पृथ्वी के तीन भाग मे से पहले दो भागो मे है। यहा ये देव अकृत्रिम भवनो मे रहते है, जिनमे मनोहर चैत्यालय है। सर्व प्रकार का उन देवो को आराम है लेकिन परिणामो मे प्रगति नही है। बड़े कौतूहल प्रिय होते है। इन्हे कमाना नही पडता, मुख से खाना भी नही पडता, इनके भूख लगने कठ से

अमृत झडकर भूख मिट जाती है। इतने पर भी ये सदा मानसिक दु ख से दु खी रहते हैं ऐसे भवन-वासियो के देवो की कम से कम आयु १० हजार वर्ष की होती है। अब व्यन्तर देवो की जघन्य स्थिति बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

व्यन्तराणां च ॥४-३८॥

व्यन्तर देवो की जघन्य स्थिति—और व्यन्तरो की भी जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की होती है। यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि यहाँ जितनी देवो की नारकियो की जघन्य स्थिति कही गई है उनकी उत्कृष्ट स्थिति पहले कही जा चुकी थी। इस कारण जघन्य स्थिति कहना ठीक है, किन्तु व्यन्तरो की उत्कृष्ट स्थिति अब तक बतायी ही नही गई थी। तो व्यन्तरो की पहले उत्कृष्ट स्थिति बताना चाहिये, पश्चात् जघन्य स्थिति। ऐसा क्यो नही किया गया ? समाधान यह है कि सूत्र प्रणाली मे लाघव का बहुत ध्यान रखना पडता है और उस लघुता के लिये ये जघन्यादिक कहे गये हैं। उत्कृष्ट स्थिति आगे कहेंगे। यदि यहाँ उत्कृष्ट स्थिति पहले कह देते तो आगे जघन्य स्थिति कहने के लिये १० वर्ष सहस्र यह शब्द दुबारा कहना पडता, और यहा कहने से वह पद न कहना पडा। इस तरह व्यन्तरो की जघन्य स्थिति यहा ही कहना उत्कृष्ट रहा। व्यन्तर देव भी कम से कम १० हजार वर्ष की आयु को लिये हुये होते हैं। अब व्यन्तरो की उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं।

परा पल्योपममधिकम् ॥४-३६॥

व्यन्तर देवो की भुज्यमान उत्कृष्ट आयु स्थिति—व्यन्तरो की उत्कृष्ट स्थिात कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। यहाँ स्थिति का तो प्रकरण ही चल रहा है, किन्तु उत्कृष्ट है या जघन्य है, इसके निर्देश के लिये कोई शब्द कहना पडता है। तो यहाँ परा शब्द कहा है जो कि स्त्रीलिङ्ग मे है। यह स्थिति शब्द का विशेषण है। स्थिति शब्द स्त्रीलिङ्ग मे है। तो परा शब्द भी स्त्रीलिङ्ग मे कहा गया है। व्यन्तरो की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण होती है। यहा तक सभी ससारी जीवो की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति कही जा चुकी है। अब केवल ज्योतिष्क देव ही शेष रहे है, उनकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति बताते हैं। उसमे से पहले ज्योतिष्को की उत्कृष्ट स्थिति बतला रहे है।

ज्योतिष्काणा च । ४-४०॥

ज्योतिष्क देवो की उत्कृष्ट स्थिति—ज्योतिष्क देवो की भी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण प्रमाण है। इस सूत्र मे पूर्व सूत्र मे कहे गये समस्त पदो की अनवृत्ति आती है, जिससे यह अर्थ बना कि ज्योतिषो देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। अब इन ज्योतिषियो की जघन्य स्थिति कितनी है ? यह कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

तदृष्टभागोऽपरा ॥४-४१॥

ज्योतिष्क देवो की जघन्य स्थिति—ज्योतिषी देवो की जघन्य स्थिति पल्य के ८वें भाग प्रमाण है। इनमे भी चू कि ज्योतिषी देव ५ प्रकार के हैं अतएव भिन्न-भिन्न प्रकारो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियाँ होती हैं, और जैसे जघन्य स्थिति मे विभिन्नता है इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति मे भी विभिन्नता है। जैसे चन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्य प्रमाण है, ज्योतिषी देवो मे चन्द्र इन्द्र होता है और सबसे अधिक इनकी स्थिति प्रभाव आदिक होते हैं। सूर्य देवो की स्थिति एक हजार वर्ष पल्य प्रमाण है। सूर्य प्रतीन्द्र कहा जाता हैं। शुक्रो की उत्कृष्ट स्थिति १००

वर्ष अधिक पल्य प्रमाण है, बृहस्पतियो की उत्कृष्ट स्थिति पूर्ण एक पल्य प्रमाण है, अधिक नही है। शेष जितने भी ग्रह है बुध आदिक उन सबकी उत्कृष्ट स्थिति आधे पल्य प्रमाण है, इस प्रकार इन ज्योतिषी देवो की उत्कृष्ट स्थिति विभिन्न-विभिन्न है, इसी प्रकार नक्षत्रो की भी आधे पल्य प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति होती है। यद्यपि ४०वें सूत्र मे ज्योतिषियो की उत्कृष्ट स्थिति सामान्य रूप से कह दी गई थी, पर उनके जो ५ भेद हैं और उनमे भी जो कोई विशेष है उन सबकी उत्कृष्ट स्थिति विभिन्न प्रकार की होती है। ज्योतिषी देवो मे तारागणो की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्य के चौथे भाग प्रमाण है। अब जघन्य स्थिति का वर्णन करते हैं। तारा और नक्षत्रो की जघन्य स्थिति पल्य के ८वें भाग प्रमाण है और शेष बचे समस्त ज्योतिषो देव सूर्यादिक सभी की जघन्य स्थिति पल्य के चौथे भाग प्रमाण है। अब लौकातिक देवो की स्थिति कितनी होती है इसका समाधान करते हैं।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम ॥४-४२॥

लौकान्तिक देवो की भुज्यमान आयु स्थिति—सभी लौकातिक देवो की उत्कृष्ट स्थिति ८ सागर प्रमाण होती है। यह स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट दोनो प्रकार की है अर्थात् एक ही प्रमाण की स्थिति लौकातिक देवो मे होती है। प्रश्न—यहा स्थिति का बनावा क्यो दिखाया जा रहा है जैसे घटपट है तो उनकी स्थिति भी स्वय है ऐसे ही जब ये देह है तो इन की स्थिति भी खुद होती है। उत्तर—घटादिक उपभोग्य पदार्थों की स्थिति भी प्राय उपभोक्ता के साताअसाता आदि कर्म-विपाकानुसार होती है अन्यथा अनेक समान घट आदि होने पर भी ये क्यो फूटे, दण्डा इन पर ही क्यो पडा ? स्पष्ट है, भोक्ता को ये उपभोग्य नही होने थे। अथवा यहाँ तो जाव की स्थिति देह मे कब तक है ? यह विवक्षा है इसी को स्थिति कहते हैं। इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थमे चौथे अध्याय तक जीव पदार्थ का व्याख्यान है और यह चतुर्थ अध्याय का अन्तिम सूत्र है। इस सूत्र के साथ जीव पदार्थ का व्याख्यान हो चुकता है और आगे पचम अध्याय में अजीव पदार्थ का व्याख्यान चलेगा।

अभाव विलक्षणत्व सूचक जन्मस्थित्यादि षट् धर्म होने से जीव की भावात्मकता की सिद्धि—इस वर्णित जीव पदार्थ के अन्तिम वर्णन के समय जीव के सम्बन्ध मे कुछ विशेष जानकारी करने के लिए कहते हैं कि वह जीव एक होकर भी अनेकात्मक है। जिन जीवो का अब तक वर्णन किया गया है वे प्रत्येक जीव एक-एक हैं और वे एक होकर भी अनेकात्मक हैं, क्योकि यह जीव पदार्थ अभाव से विलक्षण है, अभाव का जो अर्थ है उसमे क्या भेद होगे ? नही। अभाव तो निषेधमात्र है, पर यह तो भावात्मक पदार्थ है, सद्भुत है, तो यह एक होकर भी अनेक रूप हैं, और जीव ही क्या जितने भी पदार्थ है वे सब एक-एक होकर भी अनेक रूप होते हैं—जो भी पदार्थ हैं। प्रकृत मे जीव की बात कह रहे हैं कि इसमे जन्म, स्थान, स्थिति, विपरिणमन, वृद्धि, अपक्षय और विनाश ये ६ बाते देखी जा रही हैं। तो इन ६ बातो का होना एक भावात्मक पदार्थ को ही सिद्ध करता है। यद्यपि सामान्यतया जीव द्रव्य का जन्म नही होता। वह तो अनादि सिद्ध है, फिर भी भिन्न-भिन्न पर्यायो रूप मे इसकी मुद्रा बनना यह ही जन्म कहलाता चला जाता है। तो वाह्य और अतरग निमित्त को पाकर यह जीव नवीन-नवीन पर्यायो को प्राप्त होता है याने आत्मलाभ करता है। यह ही इसका जन्म है। जैसे मनुष्य गति के उदय से जीव मनुष्य पर्याय रूप से उत्पन्न होता है, तिर्यन्च गति के उदय से जीव तिर्यन्च पर्याय रूप से उत्पन्न होता है, ऐसी नवीन-नवीन पर्यायो मे आना, यह ही इसका जन्म है और यह जन्म, यह उत्पाद जीव के सत्त्व को सिद्ध करता है। स्थिति क्या है ? यद्यपि

द्रव्य की दृष्टि से इसके सदैव स्थिति है, पर इस बाह्य रूप से देखा जाए तो आयु कर्म के उदय के अनुसार उस पर्याय मे जीव का बना रहना, यह जीव की स्थिति है, और वृद्धि क्या है कि पूर्व स्वभाव को कायम रखते हुये अधिकता हो जाना वृद्धि है। अपक्षय क्या है ? क्रम से एक देश का जीर्ण होना अपक्षय है, और विनाश क्या है ? उस पर्याय की निवृत्ति हो जाना याने वह हट गया, दूसरी पर्याय आयी, वहाँ जो पूर्व पर्याय का हट जाना है यही विनाश कहलाता है। तो इस तरह से जीव पदार्थ मे अनन्त रूपता सिद्ध है और यह एक होकर अनेक रूपता जो विदित हुई है इसमे जीव का सत्त्व जाना जाता है। जो सत् है वह एक होकर भी अनेकात्मक है। सभी पदाथ एक होकर अनेकात्मक होते हैं। जैसे इन ६ बातो को देखकर अनेकात्मकता का बोध किया गया इसी तरह जीव मे ज्ञेयत्व, सत्त्व, द्रव्यत्व, अमूर्तपना, अति सूक्ष्मपना, अवगाहनत्व, असख्यप्रदेशत्व प्रदेशतत्व अनादि निधन होना आदिक की दृष्टि से जीव अनेकात्मक है।

अनेक वाग्विज्ञान विषयत्व होने से जीव के अनेक धर्मात्मकत्व की सिद्धि—यह जीव एक होकर भी अनेकात्मक है। यह इस हेतु से भी सिद्ध होता है कि चू कि जीव अनेक शब्द और अनेक ज्ञान का विषयभूत है। जिस पदार्थ मे जितने शब्दो का प्रयोग हो सकता है समझिये उसमे उतनी ही वाच्य शक्तिया हैं, और इसकी प्रकार जो पदार्थ जितने प्रकार के ज्ञानो का विषयभूत होता है उसमे समझिये उतनी ही ज्ञेय शक्तियाँ हैं। जैसे कोई एक ही घट है, उसमे यह घट है, मिट्टी का बना है सत् है, ज्ञेय है, बडा है, नया है आदिक अनेक शब्दो का वहाँ प्रयोग हो रहा है तो इतनी ही बातें पायी भी जा रही हैं और इस प्रकार अनेक ज्ञान भी हो रहे हैं। तो-तो इतना ज्ञेय तत्त्व वहा मौजूद है। इसी तरह आत्मा भी अनेक शब्दो द्वारा वाच्य है। अनेक विशेषणो से उसका बोध किया जाता है और अनेक दृष्टियो का विषयभूत है, सो आत्मा भी अनेक धर्मात्मक है। तो यह जीव एक होकर भी अनेकात्मक है। ऐसे-ऐसे अनन्त जीव हैं।

अनेक शक्ति प्रचितपना होने से जीव के अनेकात्मकत्व की सिद्धि—अनेक धर्मात्मकता का दूसरा हेतु यह है कि वह अनेक शक्तियो का आधारभूत है, अनन्त शक्तियाँ वहा पायी जाती हैं इस कारण जीव अनेकात्मक है। जैसे घी के सम्बन्ध मे कितनी बातें समझ मे आती हैं ? यह तृप्ति करने वाला है, यह पुष्ट करने वाला है, ऐसी उसमे अनेक शक्तिया विदित होती हैं। इसी तरह द्रव्य क्षेत्र काल भाव के निमित्त से यह जीव भी अनेक प्रकार की वैमानिक पर्याय शक्तियो को धारण करता है। तात्पर्य यह है कि जिस जीव के बारे मे इन अध्यायो मे वर्णन किया गया है वह जीव वास्तविक सद्-भूत पदार्थ है। और, वह एक होकर भी अनेकात्मक है।

अनेक सम्बन्धिरूपता व अनेकोत्कर्षापकर्ष परिणत गुण सम्बन्धिरूपता होने से जीव के अनेकात्मकत्व की सिद्धि—अन्य आपेक्षिक द्रव्यो से भी अनेकात्मकता पदार्थ मे विदित होती है। जैसे एक ही घडा है, तो वह अन्य सम्बधित या अगल-बगल स्थित पदार्थों की अपेक्षा पूर्व, पश्चिम आदिक भेद हो जाते हैं। यह घडा है, पूर्व मे रखा है, यह घडा पश्चिम मे रखा हैं, तो किसी अन्य चीज की अपेक्षा से इस प्रकार विदित होता है, यह दूर है, यह पास है, यह पुष्ट है, यह नया पुराना है, यह इतना बडा है आदिक अनेक व्यवहार उसमे पाये जाते हैं, तो अनेक वचन व्यवहार का विषयभूत होने से वह घडा अनेक धर्मात्मक है, ऐसे ही यह आत्मा भी अनेक सम्बन्धियो की अपेक्षा उन-उन अनेक तथ्यो वाला विदित होता है। जैसे इन अगुलियो मे ही कोई एक अगुली किसी की अपेक्षा छोटी है,

किसी की अपेक्षा बडी है तो वहा जैसे अनन्त धर्म आपेक्षित विदित होते हैं, तो यह परिचय सत्ता को सिद्ध करता है कि जीव वास्तविक सत् है। कर्म नोकर्म के सम्बन्ध से इस जीव के विषय मे जीव स्थान गुण स्थान आदिक अनेक भेद हो जाते हैं, जैसे दण्डा के सम्बन्ध से दण्डी मनुष्य, कुण्डल के सम्बन्ध से कुण्डली मनुष्य। तो यह अनेकात्मकता सत्त्व को सिद्ध करती है कि यह जीव भावात्मक पदार्थ है। किञ्च जैसे किसी सहयोगी गुण की अपेक्षा घडे मे अनेक बाते विदित होती है, यह घडा इतना है अथवा इसके पीलेपन मे यह कम पीला, यह अधिक पीला इस तरह विदित होता है, ऐसे ही जीव मे भी क्रोध, मान आदिक जो उत्पन्न होते हैं उनकी डिग्रियो के भेद से इसमे भी अनेक प्रकार की विशेषतायें व्यवहृत होती हैं। तो अपेक्षाकृत, शक्तिकृत, पर्यायकृत जो अनेकात्मकतायें है, वे सब जीव को भावात्मक सिद्ध करती हैं। जीव की अनेकात्मकता सिद्ध करने के प्रकरण मे अनेक दृष्टियो से अनन्त धर्म बताये जा रहे हैं।

अतीतानागतवर्तमानकाल सम्बन्धित होने से जीव की अनेक धर्मात्मकता की सिद्धि—और भी देखिये—जैसे कोई मिट्टी आदिक पदार्थ प्रध्वस रूप है, अतीत है, सम्भावना रूप है, निरन्तर क्रिया चल रही है ऐसा वर्तमान काल रूप है, ऐसे इन अनेक कालो मे अनेक पर्यायोरूप विदित होता है, ऐसे ही यह जीव अनादि काल से है, यह भी तो विदित होता है, अनन्त काल तक रहेगा। यह अनन्त अतीतो मे गुजर चुका है, यह ऐसी पर्यायो को पायेगा। उसकी वर्तमान अर्थ-पर्याय, वर्तमान व्यजन पर्याय इन सभी को निरखकर यहाँ अनेक रूपता विदित होती है। और, है भी यो नाना रूप। जैसे कि यदि यह कह दिया जाये कि जीव तो वर्तमान मात्र है, तो इसके मायने हैं कि न अतीत है न भविष्य है, पूर्व और उत्तर की रेखा रही ही नही। तो जहाँ पूर्व और उत्तर की रेखा नही है वहाँ वर्तमान काल भी कैसे टिक सकेगा ? तो यह सब काल अपेक्षा तथ्य भी जीव के विदित होता है, अत. जीव अनेकात्मक है और इसी कारण भावात्मक है।

अनन्त काल और एक काल मे अनन्त उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तता होने से जीव पदार्थ की अनेकात्मकता व भावात्मकता की सिद्धि—जीव पदार्थ का चतुर्थ अध्याय तक वर्णन हुआ। उसमे यह जिज्ञासा हुई थी कि जीव नामक पदार्थ ही तो सिद्ध कर लें कि वह है भी कुछ। तब तो उसके बारे मे आवास स्थिति परिणति भाव आदिक सब बातें बताना उपयुक्त है। तो उसी जिज्ञासा के समाधान मे यह प्रकरण चल रहा है कि जीव भावस्वरूप है और इसी कारण वह अनेक धर्मात्मक है। जीव की अनेक धर्मरूपता सिद्ध की जा रही है जिसमे कुछ हेतु तो बताये गये थे, अब यहा एक हेतु और ध्यान मे लीजिये चू कि यह जीव अनन्त काल और एक काल मे अनन्त प्रकार के उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है अत. आत्मा अनेक धर्मरूप है। इसे एक दृष्टान्त से समझिये। जैसे घडा एक काल मे द्रव्यदृष्टि से देखने पर वह पार्थिव रूप मे उत्पन्न होता है, जल रूप मे नही, क्षेत्र दृष्टि से यहाँ उत्पन्न होता है बम्बई आदिक जगह मे नही। काल दृष्टि से वर्तमान काल मे उत्पन्न होता है अतीत भविष्य काल मे नही। भाव दृष्टि से मानो बडा उत्पन्न होता है तो छोटा नही। इस घटका यह उत्पाद अन्य सजातीय घटो से, उन घटो के उत्पादो से भिन्न है। साथ ही अन्य विजातीय घटो से जो अन्य-अन्य शक्लो मे हैं, पीतल आदिक अनेक द्रव्यो मे है उनके उत्पादो से भी भिन्न है। यह उत्पाद पूर्ण विजातीय कपडे आदिक पदार्थों के अनन्त उत्पादो से भी भिन्न है तथा अत्यन्त भिन्न प्रकार के जीव, धर्म, अधर्म आदिक के उत्पादो से भी भिन्न है। तब देखिये—यहाँ अनन्त उत्पाद

दृष्टि मे आ गए। अब यह तो एक सामान्य रूप से देखा, अब उसी समय उस उत्पाद को देखिये, तो उत्पन्न न होने वाले द्रव्यो की ऊपर-नीची, तिरछी, लम्बी-चौडी आदिक अवस्थाओ से भिन्न है सो वह उत्पाद भी अनेक प्रकार का सिद्ध हुआ। इस घटका उत्पाद, वह उत्पाद अनेक अवयव वाले मिट्टी के स्कध से उत्पन्न हुआ है इस कारण अनेक प्रकार का है। अन्य प्रकार से भी देखिये तो वह उत्पाद जल धारण, जल खीचना, दूसरो का हर्ष कारण होना, किसी को भय शोक का कारण होना आदिक अनेक अर्थ क्रियाओ मे निमित्त है, इस दृष्टि से भी यह उत्पाद अनेक तरह का है, और जैसे ये उत्पाद अनेक तरह के विदित हो रहे हैं तो उसी समय उतने ही उसके प्रतिपक्ष भूत व्यय हो रहे हैं। जब पूर्व पर्याय का विनाश नही तब नूतन पर्याय की उत्पत्ति की सम्भावना नही। तब ही तो उत्पाद और विनाश ये प्रतिपक्षभूत हैं, और इन दोनो का प्रतिपक्षभूत है ध्रौव्य याने उसकी स्थिति। सो इस ही कारण अर्थात् उत्पाद और विनाश के प्रतिपक्षभूत होने से यह स्थिति भी उतनी ही प्रकार की है, क्योकि जो स्थिति नही उसका उत्पाद और व्यय नही हो सकता।

उत्पद्यमानता उत्पन्नता व विनाश इन तीन अवस्थाओं से युक्तता होने से जीव पदार्थ की अनेकात्मकता व भावात्मकता की सिद्धि—अब साधारणतया देखें तो पदार्थ मे ये तीन अवस्थायें माननी पडती हैं—उत्पद्यमानता, उत्पन्नता और विनाश, क्योकि जब यह प्रयोग हो रहा कि घट उत्पन्न होता है तो बतलाओ इस प्रयोग को क्या आप भले प्रकार वर्तमान कह सकते कि घट उत्पन्न होता है? इस प्रयोग को वर्तमान नही कह सकते, क्योकि उत्पन्न होता है, इस प्रयोग मे यह ध्वनित होता है कि अभी तक घडा उत्पन्न नही हुआ। उत्पन्न हो रहे को उत्पन्न हुआ है यह नही कहा जाता और उत्पत्ति के बाद तुरन्त विनाश मान लिया जाए तो स्थिति का प्रतिपादक कोई शब्द ही प्रयोग मे न होगा। सो तीन अवस्थायें माने बिना उत्पाद मे भी अभाव, विनाश मे भी अभाव होगा और इस तरह पदार्थ का अभाव ही होने से व्यवहार का भी लोप हो जायेगा। तो यो पदार्थ मे उत्पद्यमानता, उत्पन्नता और विनाश ये तीन अवस्थायें माननी होती हैं। तो इस तरह यह सब बात जैसे घट के उदाहरण मे बतायी गई है ऐसे ही जीव पदार्थ मे भी समझना। एक जीव मे भी द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकनय के विषयभूत अनन्त शक्तियाँ उत्पत्ति विनाश और स्थिति रूप होने से अनेकात्मकता से पूर्ण है ऐसा समझना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि जीव भावस्वरूप है और अनेकात्मक है।

अन्वय व्यतिरेकात्मकता होने से जीव पदार्थ की अनेकान्तरूपता व भावस्वरूपता की सिद्धि—अब जीव की अनेकात्मकता समझने के लिये एक यह भी हेतु देखिये कि जीव चूकि अन्वय व्यतिरेक रूप है, इस कारण अनेक धर्मात्मक है। अनुगताकार विधि से तो अन्वय समझा जाता है और व्यावृत्ताकार विधि से व्यतिरेक समझा जाता है। जैसे एक घडे के उदाहरण से समझें, एक ही घडा सत् है, अचेतन है आदिक के ये सामान्य रूप से अन्वय धर्म है उसमे और वही घडा नया है, पुराना है आदिक सो विशेष रूप से इस व्यतिरेक धर्मों का आधारभूत है वह घट। ऐसे ही इस आत्मा के विषय मे समझना कि यह आत्मा आत्मत्व, ज्ञातृत्व, द्रष्टत्व, कर्तापन, भोक्तापन, अमूर्तपना आदिक अन्वय धर्म से सहित है क्योकि इन धर्मों से अनुगताकार विधि बनती है। वही-वही है, ऐसी विधि को अनुगताकार कहते हैं, और यही आत्म उत्पाद, स्थिति, विपरिणमन, वृद्धि, ह्रास, विनाश, गति, इन्द्रिय, काय, योग, ज्ञान-दर्शन, सयम-दर्शन, लेश्या, सम्यक्त्वादिक अनेक व्यतिरेक धर्म से

पूरित है। तो यो अन्वय व्यतिरेक रूप होने से यह आत्मा अनेक धर्मात्मक है। जो अनेक धर्मात्मक है वह भाव रूप है याने वास्तव मे सद्भूत है, उसी जीव के बारे मे चार अध्यायो तक सक्षेप मे परिचय दिया गया है।

सकलादेश व विकलादेश से समझ व अभिधान होने से जीव पदार्थों को अनेक धर्मात्मकता व भावात्मकता की सिद्धि—अब अनेकात्मक जीव का परिचय ज्ञान के उपाय से समझिये। इस अनेकात्मक जीव का कथन दो रूप मे होता है। (१) क्रमिक रूप और, (२) यौगपद्य रूप। कथन का और कोई तीसरा प्रकार नही है, सो जब आत्मा के अस्तित्व आदिक अनेक धर्म काल आदिक की अपेक्षा भिन्न-भिन्न रूप से विवक्षित होते है उस समय जिन शब्दो से कहा गया, उन शब्दो मे चूकि अनेक अर्थ के प्रतिपादन की शक्ति नही है, इस कारण क्रम से प्रतिपादन होता है और शब्द द्वारा क्रमिकप्रतिपादन को विकलादेश कहते हैं। विकलादेश नयो मे हुआ करता है, परन्तु जब उन्ही अस्तित्वादिक धर्मों को अभेद रूप से कहने-समझने की विवक्षा होती है उस समय यद्यपि बोला गया तो एक ही शब्द और उस शब्द का वाच्य हुआ कोई एक धर्म, किन्तु अभेद-विवक्षा होने से एक धर्म के कथन द्वारा ही सभी धर्मों का युगपत् कथन हो जाता है, क्योकि वहाँ अभेद विवक्षा है। तो उस धर्म से उन अनेक धर्मों का बोध हो गया जो कि सभी तादात्म्य रूप से एकत्व को प्राप्त है सो वहाँ सर्व का कथन हो गया। इस प्रकार यह सकलादेश कहलाता है। सकलादेश होता है प्रमाण रूप। तात्पर्य यह है कि वस्तु मे इन अनेक धर्मो का प्रतिपादन और परिचय नयदृष्टि से भी चलता है और प्रमाणदृष्टि से भी चलता है।

सकलादेश मे सप्तभङ्गी होने का निर्देश—अब सकलादेश मे स्याद्वाद किस प्रकार होता है और उसमें प्रत्येक धर्म की अपेक्षा कैसे सप्तभङ्गी होती है यह सब बात बतायेंगे। पर उन सबको समझते समय यह ध्यान से न भूलना कि इन सब कथनो मे एक गुण रूप मे सम्पूर्ण वस्तु धर्मों का अखण्ड भाव से ग्रहण किया गया है, क्योकि अन्य नही कहा गया धर्म, इस धर्म के साथ ही रहते हैं अन्यथा जिस धर्म का प्रयोग किया गया है वह भी न रह सकेगा। इस तरह से सम्पूर्ण वस्तु का परिचय होता है। इसी को अभेद वृत्ति कहते हैं जिसमे कि एक ही शब्द से अभेदोपचार करके पूर्ण वस्तु का प्रतिपादन होता है। मोटे रूप से यह जानें कि द्रव्यार्थिकनय से तो धर्मों मे अभेद है और पर्यायार्थिकनय की विवक्षा मे भेद होने पर भी जहाँ समग्र वस्तु का परिचय किया जा रहा है वहां उन सबका अभेदोपचार कर लिया जाता है। तो इस तरह एक-एक धर्म के प्रतिपादन के समय प्रमाण दृष्टि मे अन्य समस्त धर्मो का एक साथ कथन हो जाया करता है, इस तरह एक-एक धर्म के परिचय के कथन मे ७-७ भङ्ग हो जाया करते है।

प्रमाण सप्तभङ्गी के भग मे विशेष्य विशेषण व अवधारण का प्रकाश—प्रमाण सप्तभङ्गी के भङ्ग इस प्रकार हैं—(१) स्यात् अस्तिएव जीव, (२) स्यात् नास्तिएव जीव:, (३) स्यात् अवक्तव्य एव जीव, (४) स्यात् अस्ति नास्ति चजीव, (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्यः जोव, (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्यः जीवः, (७) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य जीव। इसका अर्थ इस प्रकार है कि—(१) एक अपेक्षा से है ही है जीव, (२) एक अपेक्षा से नही ही है जीव, (३) एक अपेक्षा से अवक्तव्य ही है जीव, (४) एक अपेक्षा से है और नही है जीव, (५) एक अपेक्षा से है और अवक्तव्य है जीव, (६) एक अपेक्षा से नही है और अवक्तव्य है जीव, (७) एक अपेक्षा से है और नही तथा अवक्तव्य

है जीव। पहले भङ्ग मे जीव शब्द तो विशेष्य है और द्रव्यवाची है तथा अस्ति शब्द विशेषण है याने एक अस्तित्व गुण बताता है और इन दोनो का साथ करने मे अर्थ हुआ कि जीव है। ये दोनो आपस मे विशेषण, विशेष्य हो गये। जीव कैसा है ? अस्तित्व गुणमय है। इस विशेषण विशेष्य भाव को प्रकट करने के लिये एव शब्द कहा है ताकि इन शब्दो द्वारा उसका निश्चय हो जाये और अन्य धर्मों की निवृत्ति हो जाये। विशेषण, विशेष्य में ऐसा ही अवधारण होता है। जैसे कोई फूल लाल है, वहा यह कहता कि यह फूल लाल है, इसमे निश्चय बसा है कि यह फूल लाल ही है, अन्य रग वाला नही। जैसे कोई कहे कि कौवा काला है उसका अर्थ हो यह है कि कौवा काला ही है, अन्य रग वाला नही। तो विशेषण, विशेष्य भाव का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ अवधारण बनता है। चाहे कोई एव या ही शब्द कहकर जताये अथवा न जताये, अवधारण करना बहुत जरूरी था।

प्रमाण सप्तभगी के भगो मे स्यात् शब्द की अनेकान्तद्योतकता—सप्तभगी के भग मे अवधारण से शब्द द्वारा जो एक धर्म कहा गया वह ग्रहण मे आया, अन्य धर्म ग्रहण मे न आया लेकिन अन्य धर्म भी इसके साथ है। यदि अन्य धर्म इसके साथ न हो तो ये प्रस्फुट धर्म भी न रह सकेंगे। इस बात को सिद्ध करने के लिए इस भग मे स्यात् शब्द का प्रयोग किया गया है। तब भग बना स्यात् अस्तिएव जीव यह स्यात् शब्द तिडन्त का शब्द है। यह क्रियावाचक शब्द नही है। स्यात् शब्द अस् धातु के लिड् लकार मे बनता है, परन्तु वह शब्द नही है यहा यह तो अपेक्षा सूचक शब्द है। इस स्यात् शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। जैसे—अनेकान्त, विधि, उपचार, आश्रय आदिक परन्तु विवक्षावश यहा अनेकान्त अर्थ लिया गया है।

स्यात् शब्द से अनेकान्त का द्योतन होने पर—अब यहा एक जिज्ञासा हो सकती कि स्यात् शब्द ही जब अनेकान्त का द्योतक है तो स्यात् शब्द से ही पूरी वस्तु ज्ञान मे आ गई फिर आगे किसी धर्म को कहने की जरूरत क्या है ? तो उत्तर यह है कि यद्यपि स्यात् शब्द से सामान्यतया अनेकान्त का द्योतन हो जाता है फिर भी विशेष जिज्ञासा मे रहता ही है तब वहाँ विशेष शब्दो का प्रयोग करना होता है। जैसे वृक्ष शब्द कह दिया तो सभी का ग्रहण हो गया, मगर जो जिस वृक्ष का इच्छुक है या उन्हे समझना आवश्यक है वहा उसका प्रयोग तो करना ही पडता है। जैसे—नीम वृक्ष, आम वृक्ष ऐसे ही यहा स्यात् शब्द का प्रयोग करने पर अनेकान्त की सूचना हो गई, फिर भी कुछ समझ बिना तो तीर्थ नही चलता, इसीलिये प्रथम भङ्ग मे अस्तिएव जीवः यह भी प्रयोग करना पडा है।

प्रमाण सप्त भगी मे भी शब्द प्रयोग की अपेक्षा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक की प्रधानता व अप्रधानता मे अन्य भगो की उपयोगिता—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि प्रमाण सप्तभङ्गी मे प्रथम भङ्ग बताया है स्यात् अस्तिएव जीव और यह वाक्य सकलादेशी है तो इस ही वाक्य से जीव द्रव्य के समस्त धर्मों का सग्रह हो ही गया है फिर आगे के भङ्ग क्यो कहे जाते हैं ? तो समाधान यह है कि भले ही सकलादेश का आशय होने से समग्र वस्तु का बोध हो गया फिर भी शब्दो का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ मुख्य और गौण प्रकरण हो ही जाता है। तो इसी मुख्य और गौण की विवक्षा मे सभी भङ्ग आवश्यक हो जाते हैं। जैसे द्रव्यार्थिक की प्रधानता मे और पर्यायार्थिक की गौणता होने पर प्रथम भङ्ग का प्रयोग सही हो जाता है और जब पर्यायार्थिक की प्रधानता हो और द्रव्यार्थिक की गौणता हो वहा द्वितीय भङ्ग स्पष्ट होता है। यहा जो प्रधानता और गौणता बतायी जा रही है सो सिर्फ शब्द प्रयोग की ही है, क्योकि सकलादेश के अभिप्राय मे अर्थात् प्रमाण सप्तभङ्गी के

किसी भी भङ्ग मे पूर्ण वस्तु ही ग्रहण हो जाती है, परन्तु जो शब्द से कहा गया वह तो है प्रधान और जो शब्द से नही कहा गया वह है यहाँ अप्रधान । इसी तरह तीसरे भङ्ग मे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक की एक साथ विवक्षा है और युगपद विवक्षा होने पर दोनो ही प्रधान हो जाते है सो चू कि इन दोनो धर्मों को प्रधान रूप से कहने वाला कोईशब्द नही है, इसीलिये यह तृतीय भङ्ग अवक्तव्य कहलाता है। चतुर्थ भङ्ग मे द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो ही क्रम से प्रधान किये गये हैं। इसीलिए यह चतुर्थ भग उभय प्रधानी है, ऐसे ही आगे के तीन भग क्रम योगपद्य प्रधानता, अप्रधानता के आशय से बन जाते है।

स्यात शब्द के प्रयोग से एकान्तवाद का परिहार—यहाँ किसी भी भग मे एकान्त नही है क्योकि स्यात शब्द सर्व भगो मे पाया जाता है, यदि स्यात् शब्द हटाकर एकान्तवाद का प्रयोग करे—जैसे पहले भग को कहा कि अस्तिएव जीव अथवा उलट दो, जीव एव अस्ति तो उससे यह निश्चय बनेगा कि जीव ही है, अजीव आदिक कुछ नही है। तो कुछ जगत मे है वे सब जीव हैं, किन्तु ऐसा तो है नही। जीव भी एक पदार्थ है, परमाणु भी एक पदार्थ है। तो एकान्तवाद के प्रयोग से सर्व कुछ सत् एक ब्रह्ममात्र, जीवमात्र रह गया, जो कि अन्य वस्तुओ का लोप करने वाला है। सो अस्तिएव जीव यहाँ अस्ति के साथ एव शब्द लगाया है। है ही जीव, ऐसा कहने से कि कोई अगर एकान्त करे और स्यात् शब्द का प्रयोग हटा दे तो पुद्गल आदिक के अस्तित्व से भी जीव का अस्तित्व एक हो जायेगा। याने जीव पुद्गल एक बन जायेगा—अस्तिएव ऐसा कहने से। इसी कारण भग का प्रयोग बडी सम्हाल के साथ किया गया है।

प्रत्येक भग मे स्यात् के साथ एव शब्द के प्रयोग का महत्त्व—अब यहाँ स्यात् शब्द किस विवक्षा को प्रकट करता है सो ध्यान मे लीजिये। जो अस्ति है वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। किसी अपेक्षा से है ही जीव। इस भग का अर्थ है कि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से अस्तित्त्व है जीव मे, परन्तु अन्य अपेक्षा से अस्तित्व नही है, याने अन्य द्रव्य, क्षत्र, काल, भाव से अन्य पदार्थो के रूप से अस्तित्त्व नही है। ऐसा अर्थ जब पहले मन मे विविक्षित है तो दूसरे भग मे भी यही बात आयी, पर प्रधान और अप्रधान का अन्तर रहा। दूसरे भग मे बताया है कि एक अपेक्षा से नही है जीव अर्थात अन्य पदार्थों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के रूप से नही है जीव। यहाँ पर्यायार्थिक की प्रधानता रही, द्रव्यार्थिक की गौणता रही लेकिन ग्रहण सबका हो गया। सिर्फ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का अन्तर है। इसी मे यह सिद्ध हुआ कि जीव अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नही है। अब इन दो बातो मे से कोई किसको मना करेगा। यदि कोई यह कह बैठे कि हम दूसरा भग नही मानते, याने परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नही है, यह बात नही तो इसका फल यह होगा कि पर रूप से भी है बन गया, फिर पदार्थ ही कहाँ रहा ? कोई कहे कि हम बहुत भग नही मानते तो उसका अर्थ यह रहा कि जीव अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नही है। फिर रहा ही कहाँ पदार्थ। इस कारण अपेक्षा के साथ धर्म का अवधारण करना यह निश्चय भी बताता है और अनेकान्त का भी प्रकाश करता है।

घट के उदाहरण से प्रथम व द्वितीय भग की वस्त्वधिगम मे उपयोगिता व अनिवार्यता का कथन—यहाँ सकलादेश विषयक सप्तभगी मे प्रथम और द्वितीय भग का अर्थ स्पष्ट किया जा रहा है, जिसमे यह बात दिखाई जा रही है कि जो है वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, अन्य

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नही, क्योकि वह अन्य द्रव्यादिक अप्रस्तुत है। इस विषय को एक और दृष्टान्त से समझिये। जैसे घडा है तो उसे यो बताया जायेगा कि घडा इस पृथ्वी रूप से है, इस क्षेत्र मे है, इस काल से है और इस भाव से है, अन्य से नही है। यदि यह नियम न माना जायेगा तो वह फिर घडा ही नही हो सकता। इसमे प्रथम पक्ष तो है सामान्य सत्त्व, द्वितीय पक्ष मे और विशेषतया अवधारण है। यदि वह अपने नियत+द्रव्यादिक रूप से होने के कारण घडा नही रह सकता तथा अन्य द्रव्यादिक से नास्तित्त्व नही है तो वह महासामान्य बन जायेगा। फिर घडा न रहा। उसका स्पष्टीकरण यह है कि यदि घडा इस मिट्टी रूपता की तरह जल आदिक रूप से भी हो जाये तो अब यह जल आदिक रूप भी हो गया, तो सामान्य द्रव्य बन जायेगा। घडा न रहा क्योकि ऐसा होना सब द्रव्यो मे पाया जा रहा है। इसी तरह यदि यह घडा इस क्षेत्र से होने की तरह अन्य समस्त क्षेत्रो से भी अस्ति हो जाये तो वह घडा न रह पायेगा, किन्तु आकाश जैसा बन जायेगा, क्योकि वह अन्य सब क्षेत्रो से भी हो गया। इसी प्रकार जैसे यह घडा इस काल की अपेक्षा है ऐसे ही अतीत अनागत काल से भी अस्ति हो जाये तो अब यह घडा न रहा, क्योकि यह अस्तित्व त्रिकाल अनुयायी हो गया, यो मिट्टी द्रव्य ही बन गया। इस जैसा वह सर्व काल की पर्यायो मे है फिर तो जैसे हम इस देश काल रूप से इस घडे को देखते हैं और उस घडे से काम निकालते हैं इसी तरह सब काल सब देश मे भी देखा जाना चाहिए और सब देश सब काल मे उससे काम होते रहना चाहिये। इसी प्रकार जैसे यह घडा इस नई पर्याय रूप से है ऐसे ही वह पुरानी आदिक सभी पर्यायो रूप से हो जाये, सभी सस्थान आदिक रूप से हो जाये तो वह घडा न रहेगा क्योकि वह सर्वव्यापी बन गया। महासामान्य हो जायेगा। तो जैसे एक घडे मे अपने नियत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्तित्त्व है और अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्तित्त्व इसी तरह प्रकृत मे भी जानना।

इस जीव को मानो जो मनुष्य पर्याय रूप से जो विवक्षित हैं उसको अस्तित्त्व युक्त कहा जा रहा हो कि यह जीव अपने इस द्रव्य से है। इस क्षेत्र से है, इस काल से है और इन रूपो से है, ऐसे ही ये अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भी हो जायें तो फिर यह मनुष्य न रहा, क्योकि अपने नियत, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से न रहा। तो जैसे गधे के सीग कुछ नही वैसे ही मनुष्य भी कुछ न रहा। साथ ही जब अन्य द्रव्यादिक रूप से मान लिया तब वह सामान्य रहा, मनुष्य न रहा। जैसे—यहाँ सामान्य सभी मे पाया जाता है तो यह ही सब रूप हो गया। जैसे कि यह जीव द्रव्य रूप से है ऐसे ही पुद्गल आदिक रूप से भी हो गया, फिर यह मनुष्य कहाँ रहा, क्योकि पुद्गल आदिक से भी अस्तित्त्व देखा गया। तो जो अस्तित्व सब द्रव्यो मे विवक्षित है वह महासामान्य ही कहलाया अथवा केवल द्रव्य रूप ही रहा। इसी तरह जैसे यह जीव इस क्षेत्र मे रहने रूप से है इसी तरह अन्य अनियत क्षेत्र रूप से भी हो जाये तो यह मनुष्य ही न रहा यह तो अनियत सर्व देशो रूप हो गया आकाश की तरह। उसी प्रकार जैसे यह वर्तमान काल रूप से है, जैसे कि इस मनुष्य रूप मे विवक्षित है इसी तरह यदि अतीत नारकादिक पर्याय और अनागत देव आदिक पर्याय के काल रूप से भी हो जाये तो यह मनुष्य न रहा, क्योकि अब तो यह सर्व कालो से सम्बन्धी हो गया जीवत्व की तरह। फिर तो जैसे हमको इस देश काल विशेष सम्बन्धित रूप से प्रत्यक्ष हो रहा है उसी प्रकार अतीत अनागत काल देश के सम्बन्धी रूप से भी प्रत्यक्ष हो जाना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह स्यात् अस्तिएव और स्यात् नास्तिएव अतीव अनिवार्य व उपयोगी भग हैं।

भाव मे अभावनिरपेक्षता का अभाव व अभाव मे भावनिरपेक्षता का अभाव—ये प्रथम और द्वितीय भग इस प्रकार भी सिद्ध हुये हैं कि अपनी सत्ता के भाव से तो है और परसत्ता के भाव से नही है, यदि परसत्ता के रूप से भी हो जाये तो यह जीव अपने स्वरूप से न रहा, फिर यह जीव ही न रहा। यह तो सत्ता मात्र हो गया। तो यहाँ यह बात समझना कि अपनी सत्ता और परकी असत्ता के आधीन इस जीव का स्वरूप हुआ है। तो यह उभय रूप रहा अब, क्योकि इस उभयरूपता को लाघकर किसी एक ही रूप बनेगा तो वह यह जीव न रहा, किन्तु सन्मात्र हो जायेगा, इसी प्रकार परसत्ता के अभाव की अपेक्षा होने पर भी स्वसत्ता का सद्भाव न हो तो वह वस्तु ही न हो सकेगी। फिर जीव या घडा कुछ भी सिद्ध करने की बात दूर ही रही, अत यह मानना पडेगा, पर का अभाव भी स्वसत्ता के सद्भाव से ही वस्तु का स्वरूप बन पाता है, जैसे अस्तित्व धर्म अस्तित्त्व रूप से है, नस्तित्त्व रूप से नही है, तो लो यह भी उभयात्मक हो गया, अन्यथा वस्तु का अभाव हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि भाव तो अभाव निरपेक्ष नही होता, और अभाव भाव निरपेक्ष नही होता। सर्वथा भाव रूप मान लिया जाए तो वहाँ कोई आवान्तर सत् वस्तु नही रहती। सर्वथा अभावरूप माना जाए तो कुछ है ही नही।

अस्तिशब्दवाच्य में और जीव शब्द वाच्य मे भिन्नस्वभावता या अभिन्नस्वभावता की जिज्ञासा का एक विकट प्रश्न—यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जैसे कहा—अस्तिएव जीव तो इसमे अस्ति शब्द का वाच्य अर्थ तो कुछ है ही, जिसे अस्तित्त्व कहा, है पना कहा, और जीव शब्द का वाच्य अर्थ भी कुछ है, जिसे एक ज्ञानात्मक पदार्थ कहो। तो इन दो शब्दो के जो वाच्य अर्थ हैं, अस्ति शब्द का वाच्य अर्थ और जीव शब्द का वाच्य अर्थ ये दोनो भिन्न स्वभाव वाले है या अभिन्न स्वभाव वाले हैं। यदि इन दोनो का वाच्य अर्थ अभिन्न-स्वभाव है तो उसका अर्थ यह हुआ कि जो सत् है वही जीव है, उसमे अब अन्य धर्म न रहे, तब फिर जीव है वह, यो विशेषण, विशेष्य भाव भी न बन सकेगा, अथवा दोनो शब्दो का प्रयोग भी न हो सकेगा। क्योकि जब ये सत् और जीव अभिन्न स्वभावी ही गये अर्थात् एक ही हो गये तो जैसे सत्त्व सर्व द्रव्य और पर्यायो मे व्याप्त है इसी तरह उस सत्त्व से अभिन्न जीव भी सर्व द्रव्य और सर्व पर्यायो मे व्याप्त होगा। चाहे यो कहो कि सर्व सत् स्वरूप हैं, चाहे यो कहो कि सर्व जीव स्वरूप हैं। अब इस अभिन्न स्वभाव के पक्ष मे जीवमे सामान्य सत् स्वभाव हो जाने से जीव के विशष स्वभाव चैतन्य ज्ञानादिक नरनारकादिक पर्याय आदिक सबका अभाव हो जायेगा। अथवा जब अस्तित्त्व जीव का स्वभाव सर्वथा अभिन्न बन गया तो पुद्गलादिक में अस्तित्त्व का ज्ञान न हो सकेगा, इस कारण अस्ति शब्द का वाच्य अर्थ और जीव शब्द का वाच्य अर्थ अभिन्न स्वभाव वाला है, यह तो सिद्ध कर नही सकते। यदि कहो कि दोनो वाच्य अर्थ भिन्न-भिन्न हैं तो जीव अलग रहा, सत् अलग रहा, मायने जीव असत् हो गया। इसे अनुमान प्रयोग मे यो कहा जा सकेगा कि जीव असद्रूप है क्योकि यह अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ से भिन्न है। जैसे अस्ति शब्द के वाच्य अथ से भिन्न आकाश पुष्प है, खरविषाण है तो वह असत् ही तो है, तो जीव भी असत् हो जायेगा, और जब जीव ही असत् हो गया तो बध मोक्ष के सब व्यवहार नष्ट हो गये। और, जैसे इस प्रस्तुत भग मे अस्तित्त्व जीव से भिन्न है ऐसे हो पुद्गल आदिक से भी भिन्न होगा अस्तित्त्व। तो न सत् रहा न पदार्थ। तो अस्तित्त्व से जीव भिन्न है यह भी नही बताया जा सकता और भिन्न अभिन्न दो विकल्पो को छोडकर और कहा ही क्या जाएगा ?

अस्ति शब्द वाच्य मे व जीव शब्द वाच्य मे कथचित् भिन्न स्वभावता व कथचित् अभिन्न स्वभावता का समाधान—अब इसका समाधान करते है कि अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ से जीव शब्द का वाच्य अर्थ कथचित् भिन्न रूप है और कथचित् अभिन्न रूप है। जब पर्यायार्थिकनय से देखते है तो भवन और जीवन इन दो पर्यायो मे भेद है। सो दोनो शब्द भिन्न अर्थवाची हैं। जब द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखते है तो जीवन और भवन दोनो अभिन्न हैं, अलग-अलग नही पडे है। इस कारण पदार्थ स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति रूप है। चतुर्थ अध्याय तक जीव तत्व का वर्णन किया गया गया है। उस वर्णन पर एक जिज्ञासा हुई थी कि जीव वास्तव मे है भी या नही। यदि नही है तब तो उसके सम्बन्ध मे अनेक बातें कहने का कुछ अर्थ नही और यदि है तब तो वर्णन करना युक्त है। तो इस जीव के अस्तित्व की सिद्धि मे ही यह सब प्रकरण चल रहा है कि जीव भावात्मक है और अनेकात्मक है। उस ही सिलसिले मे यहाँ सप्तभङ्गी के रूप से वर्णन चल रहा है।

अर्थ, अभिधान व प्रत्ययो की अस्तित्व, नास्तित्व रूप से प्रसिद्धि होने से भी जीव पदार्थ मे भी स्याद स्त्येव स्यान्नास्त्येव की सिद्धि—प्रथम दो भङ्गो मे यह प्रकरण है कि जीव अस्ति नास्ति रूप है। जीव ही क्या सभी पदार्थ अस्ति नास्ति रूप होते हैं। इसकी सिद्धि के लिये अनेक युक्तिया दी गई थी। उसमे एक युक्ति यह भी है कि अर्थ अभिधान और प्रत्ययो की अस्ति औ" नास्ति यो उभय रूप से प्रसिद्धि है। उससे ही सिद्ध है कि पदार्थ अस्ति नास्ति रूप है। अर्थ मायने पदार्थ, अभिधान मायने शब्द और प्रत्यय मायने ज्ञान। जैसे जोवअर्थ, जीवशब्द और जीवविषयक ज्ञान ये तीनो बातें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। लोक मे वाच्य वाचक भाव भले प्रकार समझा जा रहा है और ज्ञय ज्ञायक-भाव भी प्रसिद्ध है। कोई जाननहार है, कोई जानने मे आ रहा है तो ये प्रचलित वाच्य वाचक भाव शब्द, अर्थ और ज्ञान के साधक हैं। इसी तरह ज्ञेय ज्ञायक भाव भी जीव पदार्थ के अस्तित्व के साधक हैं। यदि इन तीन को कुछ न माना जाये तो शून्यवाद का प्रसग है। केवल शब्द माना जाये तो शब्दाद्वैत का प्रसग है। केवल ज्ञानमात्र ही माना जाये तो ज्ञानाद्वैतवाद का प्रसग है, और केवल पदार्थ ही माना जाये तो यह सद् ब्रह्मवाद का प्रसग है, पर इन अद्वैतो की सिद्धि किसी भी प्रकार नही हा सकती। आखिर कोई ज्ञाता तो मानना हो होगा। यही है जीव पदार्थ। और प्रत्येक पदार्थ अस्ति नास्ति रूप है। तो यहा भी प्रथम दो भङ्गो को अस्ति नास्ति रूप से कहा है, सो द्रव्यार्थिक की प्रधानता मे पर्यायार्थिक अन्तर्भूत है। पर्यायार्थिक की प्रधानता मे द्रव्यार्थिक अन्तर्भूत है। इस कारण दोनो ही भङ्ग सकलादेशी हैं।

अब तृतीय भङ्ग की बात देखिये—जब दोनो धर्मो के द्वारा एक अखण्ड अर्थ की अभेद रूप से युगपद विवक्षा होती है तो वह कहा नही जा सकता अत अवक्तव्य है। जैसे द्रव्यार्थिक की प्रधानता मे स्यात् अस्ति पर्यायार्थिक की प्रधानता मे स्यात् नास्ति तथ्य दोनो ही हैं किन्तु जब दोनो को ही प्रधान करके विवक्षा बनाये कोई तो कहा नही जा सकता। वह अवक्तव्य है क्योकि दोनो ही धर्मों का प्रधान रूप से वर्णन करने वाला कोई शब्द नही है। गुणो के युगपद भाव मे तात्पर्य है काल आदिक की दृष्टि से अभेद वृत्ति बनाकर प्रतिपादन करना, सो ऐसा प्रतिपादक कोई शब्द नही होता है। वे काल आदिक ८ कौन से हैं जिनके अभेद परिचय से अवक्तव्य भङ्ग बनता है। वे हैं—(१) काल, (२) आत्म रूप, (३) अर्थ, (४) सम्बन्ध, (५) उपकार, (६) गुणिदेश, (७) ससर्ग और, (८) शब्द।

काल आत्मरूप, अर्थ व सम्बन्ध की दृष्टि से सत्त्व असत्त्व मे युगपद् अभेदवृत्ति न होने से अवक्तव्य भग की समर्थितता—चू कि गुण सभी परस्पर विरुद्ध हैं अर्थात् उनका वाच्य विरुद्ध है। यद्यपि अपेक्षा से तो एक वस्तु मे उनका यह अवस्थान है इसलिये अविरुद्ध है, तथापि शाब्दिक दृष्टि से परस्पर विरुद्ध हैं, अतः उनकी एक काल मे किसी एक वस्तु मे वृत्ति नही हो सकती, यही कारण है कि सत्त्व और असत्त्व का वाचक कोई भी एक शब्द नही है। सत्त्व स्वरूप भावरूप है, असत्त्व का स्वरूप अभाव रूप है, वह सब एक शब्द के द्वारा युगपत् कैसे कहा जा सकता है ? परस्पर विरोधी सत्त्व और असत्त्व की एक अर्थ मे वृत्ति भी नही हो पाती जिससे अभिन्न आधार मानकर अभेद और युगपद भाव कहा जा सकता। याने शब्द की मुख्यता मे युगपद् भाव अवक्तव्य है। तो सत्त्व, असत्त्व के काल से भी अभेद वृत्ति नही, स्वरूप से भी अभेद वृत्ति नही और अर्थ से भी अभेद वृत्ति नही। यदि सम्बन्ध की दृष्टि से देखें तो भी गुणो मे अभिन्नता की सम्भावना नही है, क्योकि सम्बन्ध भिन्न होता है। जैसे दण्डी देवदत्त। तो दण्ड का और देवदत्त का सम्बन्ध बताया तो है, पर वे दोनो भिन्न हैं। क्षत्री यज्ञदत्त। यहां भी क्षत्र और यज्ञदत्त का सम्बन्ध बताया तो है, पर यहा भी दोनो भिन्न-भिन्न हैं। और साथ ही यह समझिये कि देवदत्त व दण्ड के सम्बन्ध से यज्ञदत्त व क्षत्र का सम्बन्ध भी जुदा है। जब कारणभूत सम्बन्धो भिन्न-भिन्न है तो कार्यभूत सम्बन्ध भी एक कैसे हो जायेगा। याने सत्त्व और असत्त्व का पदार्थ से अपना-अपना जुदा ही सम्बन्ध होगा। तो सम्बन्ध की दृष्टि से भी अभेद वृत्ति की सम्भावना नही है।

उपकार गुणिदेश ससर्ग और शब्द की दृष्टि मे भी सत्त्व असत्त्व की युगपद् अभेद वृत्ति न होने से अवक्तव्य भग की समर्थितता एव स्याद् अवक्तव्य भग का भी कथचित्त्व—यहाँ अवक्तव्य भङ्ग की सिद्धि मे यह बतला रहे हैं कि सत्त्व, असत्त्व की अभेद वृत्ति से प्रतिपादन करने वाला कोई शब्द नही है, इस कारण युगपद् भाव मे यह अवक्तव्य है। उपकार दृष्टि से भी गुण अभेदवृत्ति मे नही आता, क्योकि द्रव्य मे अपना-२ परिचय कराने रूप व्यवहार, यही हुआ उपकार। सो यह प्रत्येक गुण का जुदा-जुदा है। जैसे नील घट मे नीलपने का प्रत्यय उत्पन्न होता है और पीत घट मे पीत रग का ज्ञान होगा तो प्रत्यय भी इनका जुदा-जुदा है। सत्त्व सत्ता का ज्ञान कराता और असत्त्व असत्ता का ज्ञान कराता। तो इस व्यहार रूप उपकार की दृष्टि से भी देखा जाये तो उनमे अभेदरूपता नही लायी जा सकती। गुणो के ससर्ग की बात भी सोचें तो जब सत्त्व और असत्त्व परस्पर भिन्न वाच्य के द्योतक हैं तब उनका ससृष्ट रूप एक नही हो सकता। तो एक शब्द से कैसे कथन बनेगा ? शब्द की बात तो एकदम स्पष्ट है कि कोई भी सत् दो गुणो को एक साथ नही कह सकता। इस प्रकार काल आदिक की दृष्टि से इसमे अभेद वृत्ति का वाचक कोई शब्द न होने से तीसरा भङ्ग अवक्तव्य है, यह भले प्रकार सिद्ध होता है। यहाँ एक बात और जानना चाहिये कि जीव अथवा पदार्थ सर्वथा अवक्तव्य नही है। वह स्यात् अवक्तव्य है, यदि सर्वथा अवक्तव्य होता तो अवक्तव्य शब्द को भी नही कहा जा सकता था। इस प्रकार तृतीय भङ्ग स्यात् अवक्तव्य. जीव. यह प्रसिद्ध होता है।

प्रमाण सप्तभगी में चतुर्थ भग का निर्देश—प्रमाण सप्तभगी मे यहा तक प्रथम, द्वितीय और तृतीय भग की चर्चा हुई। अब चतुर्थ भग की बात कह रहे हैं। प्रथम भग मे स्यात् अस्तिएव जीव कहकर द्रव्यार्थिक की प्रधानता से जीव का जीव रूप से अस्तित्त्व बताया है। द्वितीय भङ्ग मे

स्यात् नास्तिएव जीव' कहकर पर्यायार्थिक की प्रधानता मे अन्य द्रव्यादिक की अपेक्षा नास्तित्व घोषित किया है। अब यहाँ दोनो धर्मो की क्रमश मुख्य रूप से विवक्षा होने पर चौथा भग स्यात् अस्तिनास्ति च बनता है। यहाँ भी समग्र वस्तु का ग्रहण होने से यह चौथा भग भी सकलादेशी है। इस भग को भी कथञ्चित् ही समझना चाहिये। यदि सर्वथा उभयात्मक हो जाय तो दोनो धर्मरूप सर्वथा हो जायेंगे तो इसमे परस्पर विरोध दोप आता है। सो कैसे हो सकता। तो उभय दोप का प्रसग होने से यह भग भी सर्वथा नही है।

सर्वसामान्य और तदभाव से, विशिष्टसामान्य और तदभाव से, स्यादस्ति नास्ति चतुर्थ भग का निरूपण—अब इस चतुर्थ भग की जितनी निरूपण दृष्टियाँ हैं उनमे से कुछ मुख्य निरूपण दृष्टियो से वर्णन करते हैं। पहली निरूपण दृष्टि सर्वसामान्य और तदभाव की अपेक्षा है। यहाँ यह जानना चाहिये कि अर्थ दो प्रकार का है (१) श्रुतिगम्य और (२) अर्थाधिगम्य। जा शब्द सुनने मात्र से बोधित हो उसे श्रुतिगम्य कहते हैं और जो अर्थ प्रकरण के अभिप्राय आदिक से जाने गये वाच्य हैं वे अर्थाधिगम्य हैं। तब यहाँ जीवः अस्ति। इसमे सभी प्रकार के आवान्तर भेदो की विवक्षा न रहने पर विवक्षावश सर्वसामान्य से अर्थात वस्तुरूप से है यह व्यवहार बनता है। तब इसके प्रतिपक्षी अभाव सामान्य से याने अवस्तुरूप से नही है ऐसा द्वितीयभाव बनता है इन दोनो ही बातो को जब एक साथ अभेद विवक्षा मे बोलना चाहिए था तो कोई वाचक शब्द ही न मिला। तब वह अवक्तव्य नाम का तृतीय भग बना। किंतु यहाँ इन ही दोनो को क्रम के विवक्षित करके कहा जा रहा है तब वस्तु उभयरूप विदित हुई। यो स्यात् अस्ति नास्ति यह चतुर्थ भग बना। दूसरी निरूपण दृष्टि है विशिष्ट सामान्य और तदभाव की अपेक्षा से। जैसा कि सुना अथवा आगम से ग्रहण किया। आत्मा आत्मत्वरूप विशिष्ट सामान्य की दृष्टि से अस्ति है। तब अनात्मत्व की दृष्टि से नास्ति है। यहाँ अस्ति की विवक्षा है आत्मरूप से और नास्ति की विवक्षा है अनात्मरूप से। इन दो धर्मो का एक साथ विवक्षा होने पर तो अवक्तव्य भग बना था। किंतु इन दोनो का क्रम से विवक्षा किये जाने पर यह चतुर्थ भग स्यात अस्ति नास्ति च बनता है।

विशिष्ट सामान्य और तदभावसामान्यसे, विशिष्टसामान्य और तद्विशेष से स्यादस्ति नास्ति चतुर्थभगका निरूपण—अब तृतीय निरूपण दृष्टि है विशिष्ट सामान्य और तदभाव सामान्य की अपेक्षा। इस दृष्टि मे आत्मा अपने नियत आत्मस्वरूप से है और पृथ्वी जल आदिक सब प्रकार से नास्ति है। इसमे अस्तित्व तो आया विशिष्ट सामान्य और नास्तित्व कहा गया है तदभाव सामान्य की अपेक्षा याने अन्य सभी प्रकार के पदार्थों का नास्तित्व है और अपने नियत स्वरूप से अस्तित्व है, इन दोनो ही धर्मों की युगपद् विवक्षा होने पर अवक्तव्य कहा था मगर जब इन दोनो मे क्रम विवक्षा होने पर इस धर्म का प्रकाश किया गया है तब वह चतुर्थ भङ्ग बना स्यात् अस्तिनास्ति। अब चतुर्थ निरूपण दृष्टि देखिये—यह है विशिष्ट सामान्य और तद्विशेष की अपेक्षा। आत्मा आत्मात्व रूप से है और आत्मा मनुष्यादिक रूप से नही है। यहाँ जिस समय आत्मा को ज्ञानस्वभाव चैतन्य रूप से अस्ति कहा है वहाँ मनुष्यत्वादिक विशेष की अपेक्षा से नही है अर्थात उसमे मनुष्यादिकपने का अभाव है। इसमे विशिष्ट सामान्य का जो अस्तित्व है वह तदविशेष से नास्तित्व है। इन दोनो धर्मों को क्रम विवक्षा मे लेकर जब प्रकट करते हैं तब यह चौथा भङ्ग स्यात् अस्तिनास्तिजीव यह बनता है।

सामान्य और विशिष्टसामान्यसे, द्रव्यसामान्य और गुणसामान्य से एव धर्मसमुदाय और तद्व्यतिरेकसे स्यादस्ति नास्ति चतुथ भङ्ग का निरूपण—५वी निरूपणदृष्टि है सामान्य और विशिष्ट सामान्य की अपेक्षा। आत्मा सामान्य दृष्टिसे अर्थात द्रव्यत्व रूप से अस्ति है और विशिष्ट सामान्य के अभाव रूप अनात्मतत्व से नास्ति है। यहाँ इस आत्मा को जब सामान्य रूप से निरखा जा रहा है तब विशिष्ट सामान्य के अभावरूप है इन दोनो धर्मों को एक साथ विवक्षा से अवक्तव्य कहा था किंतु यहाँ इन दोनो धर्मों के क्रम विवक्षा से यह चतुर्थ भङ्ग स्यात् अस्तिनास्तिजीवः बना। छठवी निरूपण दृष्टि है द्रव्य सामान्य व गुण सामान्य की अपेक्षा। इसी आत्मा के जब द्रव्य सामान्यरूप से निरखा जा रहा है तो वह द्रव्यत्व रूप से अस्ति है। तब द्रव्यसामान्य से निरखे हुए इस आत्मा को गुणत्व की दृष्टि से नास्तित्व है। इन्ही दोनो धर्मोंको युगपद् विवक्षा मे तृतीय भङ्ग बना था किंतु यहाँ इन दोनो धर्मों की क्रमश विवक्षा होने से यह चतुर्थ भङ्ग उभयात्मक बना जिसकी मुद्रा है स्यात अस्तिनास्तिजीव। अब चतुर्थ भङ्ग प्रमाण सप्तभङ्गी मे जो चतुर्थ भग बताया गया है उसकी ७वी निरूपण दृष्टि है धर्म समुदाय और तद्व्यतिरेक की अपेक्षा। इस जोव को जीव मे रहने वाली अनेक शक्ति, अनेक गुण, उनके समुदायरूप से जब जीव को निरखा जा रहा तो उस धर्म समुदाय की अपेक्षा जीव अस्ति है तो उस ही समय तद्व्यतिरेक रूप से नास्तित्व है अर्थात उन समस्त धर्म समुदायो का अभावपना नही है। इन्ही दोनो धर्मों की एक साथ विवक्षा होने पर तृतीय भग बना था स्यात अवक्तव्य. किंतु यहाँ इन्ही दोनो धर्मों की क्रम से विवक्षा होने पर चतुर्थ भग बनता है स्यात अस्तिनास्तिजीवः।

धर्म सामान्य सम्बन्ध और तदभाव से एव धर्म विशेष सम्बन्ध और तद्भाव से स्यादस्ति नास्ति चतुर्थभग का निरूपण—चतुर्थ भ ग मे ८वी निरूपणदृष्टि है धर्मसामान्य सम्बन्ध और तदभाव इस आत्मा को जब ज्ञानादिक गुणो के सामान्य सम्बन्ध को दृष्टि से तका जा रहा है तो वह जैसे अस्तिविदित होता है वह कभी भी धर्म सामान्य के सम्बन्ध के अभावरूप नही रहता है इस कारण तदभाव की दृष्टि से नास्ति होता है। इन दोनो धर्मों को एक साथ की विवक्षा मे अवक्तव्य कहा था। तो क्रमश उभय विवक्षा मे यह उभयात्मक है अर्थात स्यात अस्तिनास्तिजीव है। प्रमाण सप्तभ गी के इस चतुर्थ भग की ९वी निरूपणदृष्टि है धर्म विशेष सम्बन्ध और तदभाव की अपेक्षा। आत्मामे विशेष धर्म भी पाये जाते हैं। उन विशेष धर्मों को विशेषित करके जब जीव को अस्ति (है) परखा तो उसी समय अन्य अविवक्षित धर्म विशेषो की ओर से वह नास्तित्वरूप से परखा गया। अथवा विवक्षित धर्म के सम्बन्ध की दृष्टि से आत्मा अस्ति है तो उसी के अभाव रूप से नास्ति है। जैसे जब आत्मा को नित्यत्वदृष्टि से देखा जा रहा है तो कहा जायेगा कि स्यात् नित्य तो अन्य पर्यायार्थिक की प्रधानता से कहा जायेगा स्यात अनित्य अथवा नित्यत्व की दृष्टि से उस नित्यत्व धर्म विशेष के सम्बन्ध से जो आत्मा अस्ति है वही उस रूपवाला विपक्षी धर्म से नास्ति है इस प्रकार दोनो धर्मो की क्रम से विवक्षा मे यहाँ स्यातनास्तिजीव यह चतुर्थ भग बना।

प्रमाणसप्तभगी मे पञ्चमभग स्यादस्ति अवक्तव्यएव का निर्देशन—प्रमाण सप्तभ गी मे ५वाँ भग है तीन स्वरूपो मे द्विसयोगी भग। पहला स्वरूप तो यह है कि अनेक द्रव्यात्मक और अनेक पर्यायात्मक इस जीव के किसी भी द्रव्यार्थ विशेष या पर्यायार्थविशेष का आश्रय कर कहा जाता है स्यात्अस्ति। यह इसका प्रथम स्वरूप है जिसको कि प्रथम भग मे बताया गया था। अब उस ही

आत्मा के बारे मे दूसरा स्वरूप अश है अवक्तव्य जो दो आत्मस्वरूप का युगपद् विवक्षित है। यहाँ द्रव्यसामान्य और पर्यायसामान्य अथवा द्रव्य विशेष व पर्यायविशेष को अगीकार करके एक साथ अविभक्त रूप से विवक्षा मे यह अवक्तव्य भग बनता है। तो पचम भग का अर्थ यह हुआ कि जैसे आत्मा द्रव्य रूप से या द्रव्य विशेष रूप से या जीव स्वरूप से या मनुष्यत्व आदिक विशेष रूप से स्यात् अस्ति (है) तो साथ ही द्रव्य पर्याय सामान्य को स्वीकार करके वस्तुत्व का सत्त्व और वस्तुत्व का असत्व दोनो की ही एक साथ अभेदविवक्षा करने पर वह अवक्तव्य है। इस प्रकार यह पचम भग बना, स्यात् अस्ति अवक्तव्य जीव । यह भग भी समग्र वस्तु का बोध कराने वाला है। क्योकि अश के साथ अभेद विवक्षा होने पर एक अश के ही द्वारा समग्र धर्मों का सग्रह हो जाता है। इस पचम भग मे क्रम से द्रव्यार्थिक व उभय प्रधान है। द्रव्यार्थिक की प्रधानता मे तो रूप बना स्यात्अस्ति और उभय की प्रधानता मे युगपद् अभेद विवक्षा होने से द्रव्य बना अवक्तव्य ।

प्रमाण सप्तभगी मे स्यान्नास्ति अवक्तव्य एव षष्ठ भंग का निर्देशन—अब प्रमाण सप्तभगी मे छठवा भङ्ग बना तीन आत्मरूपो से दो अश वाला। इसमे प्रथम रूप तो है वस्तुगत नास्तित्व अर्थात् अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नास्तित्व और दूसरा अश है अवक्तव्य। अर्थात् जब वस्तुगत नास्ति ही अवक्तव्य रूप से सम्बद्ध होकर विवक्षित होता है तब यह छठवा भङ्ग बनता है। यह नास्तित्व है पर्याय दृष्टि से। पर्यायें दो तरह की होती हैं—(१) सहभाविनी और, (२) क्रम भाविनी। जो सब एक साथ रह सकें वह तो है सहभाविनी। जैसे गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान आदिक, जिस ही समय मे कोई गति पर्याय है उसी समय मे कोई इन्द्रिय पर्याय भी है, शेष पर्यायें भी हैं। तो ऐसी पर्यायें सहभाविनी कहलाती हैं और किसी एक गुण की पर्यायें क्रमभाविनी कहलाती हैं, क्योकि एक गुण की पर्याय एक समय मे एक ही होती है। अब यद्यपि उनमे से गति आदिक से व्यतिरिक्त और क्रोधादिक क्रमवर्ती पर्यायो से विलक्षण शाश्वत जीव द्रव्य है तथापि किसी की भी पर्याय का निरन्तर होते रहना होता ही है। सो द्रव्यार्थ दृष्टि से गुण पर्यायें जिसमे अस्त है ऐसा कोई एक अवस्थित जीव नाम का द्रव्य है निरखा जाता है। द्रव्यार्थिक दृष्टि मे जिस जीव को निरखा गया हैं उसमे न सहभाविनी पर्याय की दृष्टि है न क्रमभाविनी पर्याय की दृष्टि है, पर वह ही धर्म जो द्रव्यार्थ मे नही है पर पर्यायार्थ की दृष्टि मे तो है और वह जीव सज्ञा को प्राप्त है तो इस दृष्टि मे नास्तित्व धर्म आया अर्थात् इन पर्यायो के रूप से द्रव्यार्थ जीव मे नास्तित्व है। जो वस्तु रूप से सत् है वह तो है द्रव्यार्थ का अश और जो उसका प्रतियोगी अवस्तु रूप से असत् है वह है पर्याय का अश। इन दोनो की एक साथ अभेद विवक्षा होने पर अवक्तव्य बना, यह हुआ दूसरा अश। इस छठे भङ्ग मे दो अश बताये गये हैं। प्रथम अश तो है पर्यायार्थ की दृष्टि की प्रधानता मे स्यान्नास्ति। दूसरा अश है द्रव्यार्थ और पर्यायार्थ दोनो की एक साथ प्रधानता मे। तब यह भङ्ग बना—स्यात् नास्ति अवक्तव्य । यह भङ्ग भी सकलादेश है, क्योकि इस भङ्ग मे बताये हुये धर्म रूपो से अखण्ड वस्तु का ही ग्रहण हो रहा है।

सकलादेश मे स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य एव सप्त भग का निरूपण—अब ७वा भङ्ग बतलाते हैं कि वह चार स्वरूपो से तीन अश वाला है। तीन अश तो यह है स्यात् अस्ति। स्यात् नास्ति, स्यात् अवक्तव्य । इसके सम्बन्ध मे बना स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य । यहाँ स्यात् अस्ति अश द्रव्यार्थ दृष्टि से बना, स्यात् नास्ति अश पर्यायार्थ दृष्टि मे बना, दो रूप तो ये हुये और दो स्वरूप

एक साथ है, जिसे कहते हैं अवक्तव्य। इस भग मे किसी द्रव्यार्थ विशेष की अपेक्षा अस्तित्व है, किसी पर्याय विशेष की अपेक्षा नास्तित्व है और किसी द्रव्य पर्याय विशेष अथवा द्रव्य पर्याय सामान्य की युगपद अभेद विवक्षा मे अवक्तव्य है। यह सप्तम भग भी सकलादेश है, क्योकि इस भग मे भी जो विवक्षित धर्म रूप शब्द से कहा गया उस धर्म रूप से अभेद होने के कारण अखण्ड समस्त वस्तु का ग्रहण होता है। इसी प्रकार सकलादेश सम्बन्धित प्रमाण सप्तभगी का वर्णन हुआ।

विकलादेश का विधान—अब बतलाते है कि ये ही भग जब शब्द की मुख्यता से चलते हैं तो यह ही विकलादेश हो जाता है। निरश वस्तु मे गुण भेद से अश कल्पना विकलादेश है। वस्तु स्वरूपत अविभागी अखण्ड सत् है। उस वस्तु मे नाना गुणो की अपेक्षा अश कल्पना की जाती है तो अखण्ड वस्तु मे अब अनेकत्व और एकत्व की व्यवस्था बनाना आवश्यक ही है। अनेकपने की व्यवस्था न बने तो तीर्थ प्रवृत्ति नही चल सकती। वस्तु की समझ ही नही बनायी जा सकती। पर को समझाया नही जा सकता और एकत्व की व्यवस्था न बने तो तत्त्व का ही लोप होता है। तब समुदायात्मक वस्तु स्वरूप को स्वीकार करके ही काल आदिक की दृष्टि से परस्पर विभिन्न अशो की कल्पना करना यह है विकलादेश। एक मे एकत्व की कल्पना करना विकलादेश नही। यद्यपि वह अखण्ड एक, मगर अश कल्पना होने पर विकलादेश बनता है। जैसे—अनार, कपूर, इलायची आदिक से बना हुआ शर्बत है उस शर्बत को पीने पर विलक्षण रस की अनुभूति होती है और जो विलक्षण रस विज्ञान हुआ उसकी स्वीकृति हो जाती है, उसके बाद अपनी पहिचान के अनुसार कोई एक रस प्रधान आया चित्त मे तो ऐसा विवेचन किया जाता है कि इस शर्बत मे इलायची अच्छी पडी है या कपूर पडा हुआ है। अब यहाँ उस विलक्षण रस की अनुभूति और स्वीकृति भी है और प्रतिपादन किसी एक रस की प्रधानता से है, इसी तरह वस्तु तो है अनेकान्तात्मक सो उसकी स्वीकृति के बाद किसी हेतु विशेष से विवक्षित अश का अनुभव करना यह कहलाता है विकलादेश। वस्तु अखण्ड है तो भी उसमे गुण दृष्टि से भेद बनता है। जैसे कोई एक बालक के प्रति कहता है कि यह बालक गत वर्ष तो चतुर था और इस वर्ष बहुत चतुर है। बालक वही एक है, पर उसमे गुणो के भेद से दो भेद कर दिये गये, तो ऐसे ही अखण्ड वस्तु मे गुण भेद से भेद समझाना यह तत्त्व विज्ञान मार्ग मे चलने वाले के लिए प्राकृतिक बात है।

विकलादेश मे सप्तभंगी—विकलादेश मे भी सप्तभगी होती है। जैसे प्रमाण सप्तभगी मे सकलादेश था और ७ भग थे वैसे ही ७ भग नयसप्तभगी मे भी होते हैं। मूल अन्तर यह है कि प्रमाण सप्तभगी मे अर्थाधिगम्य वाच्य प्रधान होता है। नय सप्तभगी मे श्रुतिगम्य वाच्य प्रधान होता है, जिन शब्दो से धर्म का विवेचन किया गया है उन शब्दो की प्रधानता है। यद्यपि विकलादेश मे भी अनेकात्मक वस्तु को स्वीकार करके ही उसमे से एक अश का प्रतिपादन किया गया है एकान्तवाद नय सप्तभगी मे भी नही है किन्तु यहा शब्द-वाच्य धर्म प्रधान है तो अखण्ड वस्तु मे गुण भेद करके जो अश जताये गये उनमे क्रम, यौगपद्य तथा क्रमयौगपद्य की विवक्षा के वश ये भग होते है। प्रथम भग है स्यात् अस्ति। यहाँ प्रकरण चल रहा है जीव की सत्ता सिद्ध करने का। तो तद् विषयक भग बना स्यात् अस्ति जीव', द्वितीय भग हुआ स्यात् नास्तिएव जीवः, तृतीय भग है स्यात् अवक्तव्य जीव, चौथा स्यात् अस्ति नास्ति जीव। ५वा स्यात् अस्ति अवक्तव्य. जीव, छठा स्यात् नास्ति 'अवक्तव्य जीव' और ७वा स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य. जीव, यहा प्रथम और द्वितीय भग मे

स्वतन्त्र क्रम है, तीसरे भग मे यौगपद्य है, चौथे भग मे सयुक्त क्रम है, ५वें और छठे भग मे स्वतन्त्र क्रम के साथ यौगपद्य है तथा ७वा सयुक्तक्रम और यौगपद्य है।

विकलादेश के भंगों की अपेक्षायें—नय सप्तभगी मे प्रथम भग जो स्यात् अस्ति एव जीव. हुआ वह सर्व सामान्य आदिक किसी एक द्रव्यार्थ दृष्टि से हुआ और वह पहला विकलादेश है। इस प्रथम भग मे शेष धर्म वस्तु मे यद्यपि विद्यमान हैं तो भी काल आदिक की अपेक्षा भेद बुद्धि होने से शब्द के वाच्य रूप से स्वीकृत नही है। इसी कारण उन इतर धर्मों का न यहा विधान ही है और न यहाँ प्रतिषेध ही है। यही बात सर्व भगो मे समझना कि अपने-अपने विवक्षित धर्मों मे वहा प्रधान है, अन्य धर्मों के प्रति उदासीनता है। विकलादेश मे ऐसे विवक्षित धर्मों की प्रधानता होने पर भी स्वीकृति अनेकात्मक वस्तु की ही है। नय का लक्षण भी यही है कि प्रमाण से ग्रहण की हुई वस्तु मे विवक्षावश किसी एक धर्म का प्रतिपादन करना नय है। यहाँ एक प्रश्न होता है कि जब प्रथम भग मे अस्तिएव शब्द कहकर एवकार के द्वारा अवधारण कर दिया कि इस अपेक्षा से जोव है ही तो इस अवधारण के करने से अन्य धर्मों की निवृत्ति हो जाती है तो उदासीनता कहा रही ? उदासीनता तो उसे कहते हैं कि जहां न विधान हो और न प्रतिषेध हो, मगर अवधारण मे अन्य धर्मों का प्रतिषेध हो ही जाता है। फिर उदासीनता कहाँ रही ? इसका उत्तर यह है कि अन्य धर्म नियत्त शब्द द्वारा वाच्य नही है, यही उदासीनता का अर्थ है। वैसे तो शेष धर्मों के सद्भाव को प्रकट करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग किया ही गया है। इतर धर्मों का प्रतिबन्ध नही है, क्योंकि यदि इतर धर्मों का प्रतिषेध कर दिया जायेगा तो यह विवक्षित धर्म भी नही रह सकता। फिर तो सबका लोप ही हो जायेगा। स्यात् शब्द के साथ प्रत्येक भग मे अवधारण किया गया है जिससे यह सिद्ध होता है कि विवक्षित धर्म के साथ ही साथ अन्य धर्म विशेष भी पदार्थ मे हैं।

सप्त भंगों की प्राकृतिकता—किसी भी एक धर्म को प्रस्तुत करने के प्रसग मे ७ भग प्रकृत्या हो जाते हैं। जैसे कोई एक धर्म रखा नित्यपना, तो इसके साथ इसका प्रतिपक्षो धर्म भी है। वह भी कहना आवश्यक हुआ। जब दो हुये तो दोनो को एक साथ कहा नही जा सकता इस कारण अवक्तव्य भग बना। दो धर्मों को क्रम विवक्षा से द्विसयोगी प्रथम भग बना, फिर एक धर्म और अवक्तव्य को क्रम से विवक्षा करने पर ५वा, छठवा भग बना और उनके अतिरिक्त प्रस्तुत धर्म, प्रतिपक्ष धर्म और अवक्तव्य क्रम से विवक्षित होने पर ७वाँ भग बना। प्रश्न भी ७ ही प्रकार के किसी धर्म की सिद्धि मे हो सकते हैं। वस्तु सामान्य विशेष और उभय धर्म से युक्त है इस कारण कोई भी धर्म प्रस्तुत करने पर उसके निरूपण मे ७ प्रकार के भग बनते हैं। ये ७ प्रकार के भग अपुनरुक्त हैं। यद्यपि इनमे अश तो पुनरुक्त है पर किन आत्म रूपो से अश बनाया गया है वह भग अपुनरुक्त है। ऐसे अपुनरुक्त वचन अधिक से अधिक ७ प्रकार के हो सकते हैं। और यह सब फैलाव द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो नयो की विवक्षा से होता है इन नयो के स्पष्टीकरण के लिये और भगो मे इसका सहयोग समझने के लिये कुछ नय प्रसग जानना आवश्यक है।

सप्त भगो का आधारभूत नयविभाग—सप्तभगी मे आधारभूत नय सग्रह और व्यावहाररूप है। सग्रहनय तो सत्त्व को विषय करता है या यो कहो कि सप्तभग के प्रकरण मे जो धर्म प्रथम प्रस्तुत किया है उसको विषय करने वाला सग्रह है, क्योंकि यह सग्रह समग्र वस्तु तत्व का सत्ता मे अन्तर्भाव करके अभेद रूप से सग्रह करता है। तो सग्रहनय तो सत्त्व को विषय करने वाला,

हुआ और व्यवहारनय असत्त्व को विषय करने वाला हुआ, क्योकि यह व्यवहारनय उन परस्पर भिन्न सत्त्वो को ग्रहण करता है जिसमे एक दूसरे का असत्त्व अन्तर्भूत है। जैसे जीव है ऐसा बोलने पर वह पररूप से नही है यह कथन है तो वहाँ सर्वथा असत्त्व तो नही कहा गया, किंतु प्रस्तुत धर्म मे प्रतिपक्षरूप से असत्त्व है, यह प्रकट किया गया है। तो सग्रहनय और व्यवहारनय यह सत्त्व और असत्त्व का विषय करने वाला है। व्यवहारनय भी भेद करके किसी एक का ग्रहण करता है तो सत्त्व से ही विषय किया मगर भेद करके ग्रहण किया इसका अर्थ ही यह है कि उन अन्य इतरो का असत्त्व उसमे अन्तर्भूत है।

शब्दनयो की दृष्टियां—शब्दनय और अर्थनय रूप से भी नयो के विभाग हैं। शब्दनय के तो शब्द, समभिरुढ और एवभूत —ये तीन नय विभाग होते है और अर्थनय के सग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र —ये तीन होते हैं। ऋजुसूत्रनय वर्तमान क्षणवर्ती पर्याय को जानता है। यहाँ पर्यायात्मक वस्तु मे मात्र पर्याय को ग्रहण करना ऋजुसूत्रनय का काम है। पर्यायें भी दो प्रकार की हैं — (१) स्थूल पर्याय (२) सूक्ष्म पर्याय। सूक्ष्म पर्याय तो गुण पर्याय होती है। स्थूल पर्याय व्यञ्जन पर्याय होती है। सभी को ऋजुसूत्रनय जानता है। पर वर्तमान को ही जानता है। ऋजुसूत्रनय की दृष्टि मे व्यवहार नही चलता। तीर्थप्रवृत्ति का इसमे कुछ सहयोग नही है। हाँ विषय है। पर्याय चूँकि क्षणवर्ती है, वह ओझल तो नही की जा सकती। उस विषय की जानकारी ऋजुसूत्रनय से हुई है। ऋजुसूत्रनय से व्यवहार क्यो नही चलता, इसका कारण यह है कि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि मे अतीत तो अतीत होने से ग्रहण मे नही है भविष्यत् भी ग्रहण मे नही, क्योकि वह अनुत्पन्न है। तो वह केवल क्षणवर्ती पर्याय को ग्रहण करता है। उससे व्यवहार नही बनता। व्यवहार बना करता है अतीत और अनागत पर्याय पर भी दृष्टि हो अथवा प्रत्यभिज्ञान की मुद्रा चलती रहे। तो अर्थनय यहाँ ३ हैं—(१) सग्रहनय (२) व्यवहारनय (३) ऋजुसूत्रनय। ये तीनो अर्थनय मिलकर तथा अलग अलग भी रहकर इन ७ प्रकार के भगो को उत्पन्न करते हैं।

भगो की नयापेक्षतावो का दिग्दर्शन—पहला भग सग्रह से उत्पन्न हुआ है। जैसे बताया— स्यात् अस्तिएव जीव तो इसने जोव का अस्तित्व ही तो ग्रहण किया और वह अस्तित्व जीव मे रहने वाले अन्य धर्मो का सग्रह रखते हुए किया है। अर्थात स्यात् शब्द के प्रयोग से प्रस्तुत धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मो का भी ग्रहण हुआ है। दूसरा भग व्यवहार से बना है। व्यवहार असत्त्व को विषय करने वाला बताया है। सर्वथा असत्त्व को विषय नही करता, किंतु सत्त्व मे असत्त्व अन्तर्भूत है और उस नास्तित्वसमन्वित अस्तित्त्व को जानता है तो यहाँ नास्तित्त्व की मुख्यता है उससे दूसरा भग बना। तीसरा भग युगपद् विवक्षा मे बनता है तो वहाँ सग्रह और व्यवहार दोनो ही अभेद रूप है। चौथा भग क्रम विवक्षा मे सग्रह और व्यवहार के समुदायरूप है। जैसे स्यात् अस्तिनास्ति जीवः, इसमे अस्ति सग्रह है, नास्ति व्यवहार है और दोनो का यहाँ समुच्चय है। ५वा भग बना सग्रह और सग्रह व्यवहार का अभेद मे। जैसे स्यात्, अस्ति, अवक्तव्य, इनमे अस्ति अ श है सग्रहविषयक और अवक्तव्य अ श है अविभक्त सग्रहव्यवहार विषयक। छठवाँ भग बनता है व्यवहार और अविभक्त सग्रह व्यवहार से। इस भग की मुद्रा है स्यात् नास्ति अवक्तव्य। यहाँ नास्ति अ श है व्यवहार विषयक और अवक्तव्य अ श है सग्रह व्यवहार का अभेद विषयक। ७वाँ भग बना सग्रह व्यवहार और अविभक्त संग्रहव्यवहार के सामुच्चय मे। ७ वें भग की मुद्रा है।

स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य । इसमे अस्ति अ श है सग्रहविषयक, नास्ति अ श है व्यवहारविषयक और अवक्तव्य अ श है सग्रहव्यवहार का अभेद विषयक । इस प्रकार सग्रह व्यवहार के समुदाय मे और विवक्षा मे ये ७ भग प्रयुक्त हुए हैं ।

प्रतिपादन मे शब्दनयो का सहयोग—शब्दनयो मे प्रथम शब्दनय व्यञ्जन पर्यायो को विषय करते हैं । सो इस नय मे भी अभेद और भेद दो प्रकार से वचन प्रयोग होता है । इसका कारण यह है कि शब्दनय अनेक शब्दो से एक पर्याय को ग्रहण करता है । उस पर्याय के वाचक अनेक शब्द है । उनमे से किसी का भी प्रयोग होने पर उसी अर्थ का कथन होता है । तो अनेक शब्दो मे अभेद होने से शब्दनय मे अभेद विधि है । शब्दनयो मे दूसरा नय है समभिरूढनय । समभिरूढनय मे भी अभेद विधि का प्रयोग होता है । समभिरूढनय किसी एक पदार्थ को ग्रहण करता है जिसमे कि रूढि हो, प्रसिद्धि हो । इतना तो अन्तर आया शब्दनय की अपेक्षा कि शब्दनय अनेक अर्थों को प्रकट कर सकता था, पर समभिरूढनय एक ही अर्थ का वाचकशब्द को बताता है । जैसे—गो शब्द के अर्थ अनेक हैं— गाय, गणी आदिक, किंतु गो शब्द गाय अर्थ मे समभिरूढ है । सो इतना अन्तर तो शब्दनय व समभिरूढनय मे सूक्ष्म विषय का अन्तर आया, किंतु समभिरूढ मे यह नियन्त्रण नही है कि उस अर्थ का वाचक शब्द का जो भाव है उस ही भावरूप मे परिणत अर्थ को कहे । जैसे घट शब्द से घटका बोध हुआ तो वहां चाहे घटन क्रिया परिणत हो या घटन क्रिया अपरिणत हो, किसी भी घटका निरूपण हो जाता है । तो यह दोनो मे अभेद रहा, अथवा जैसे गो शब्द ने गाय को तो कहा, पर गो का अर्थ है जाने वाला । गच्छति इति गौ । तो अब चाहे वह जा रही हो गाय, चाहे वह बैठी हो गाय, सभी गायो का समभिरूढनय मे ग्रहण है इस कारण एवभूत की अपेक्षा वह अभेद रूप है । शब्दनय का तृतीय भेद है एवभूत । एवभूतनय मे प्रवृत्ति के निमित्त से भिन्न ही अर्थ का निरूपण होता है । जैसे एवभूतनय की दृष्टि मे पुजारी उसे ही कहा जायेगा जो पूजा कार्य मे बर्त रहा हो । अन्य समय वह पुजारी न कहलायेगा । शब्दनय के इन ३ नयो मे यह भी तथ्य जानना कि शब्दनय मे तो अनेकपर्यायवाची शब्दो का वाच्य एक ही होता है । समभिरूढनय मे चू कि शब्द नैमित्तिक है, समभिरूढ है अत एकशब्द का वाच्य एकही होता है तथा एवभूतनय वर्तमान निमित्त को ही पकडता है । वर्तमान क्रिया परिणत पदार्थ को ही उस नियत शब्द से बोलता है इस कारण एवभूतनय के मत मे भी एक शब्द का वाच्य एक ही है और वह भी उस क्रिया से परिणत है । इन नयो मे सप्तभग कैसे प्रयुक्त होता है यह बात नयो के आधार से बताया है । जहां पर्यायो को मुख्य करके धर्म कहा जाय वहा ऋजुसूत्रनय का भी उनमे सहयोग होता है । इस प्रकार किसी भी वस्तु को सिद्ध करने के लिये सप्तभगी का प्रयोग होता है ।

सत्त्व असत्त्व धर्मों मे विरोध की शका व उसके समाधान की भूमिका—अब यहां एक जिज्ञासा होती है कि सप्तभगो मे जिन धर्मों को कहा गया है वे धर्म परस्पर विरोधी सरीखे दिख रहे है । जैसे अस्तित्त्व और नास्तित्त्व । नास्तित्त्व शब्द अस्तित्व से अत्यन्त विपरीत है । तो ऐसे विपरीत धर्मों मे तो विरोध होता है । तब फिर एक वस्तु मे ऐसे विरुद्ध धर्म कैसे रह सकते हैं ? इस जिज्ञासा के समाधान मे कहते हैं कि विरोध का स्वरूप विचारने पर यह बात सुगमतया विदित हो जायगी कि अस्तित्व नास्तित्व जैसे विरुद्ध दिखने वाले धर्म भी एक वस्तु मे अविरोध रूप से रह

जाते हैं। विरोध का क्या स्वरूप है यह विरोध के भेदो के परिचय से विदित हो जायगा। विरोध होता है तीन तरह का। (१) बध्यघातकभाव (२) सहानवस्थान और (३) प्रतिबध्य+प्रतिबधक भाव।

सत्त्व असत्त्व धर्मों मे बध्यघातकभावरूप विरोध का अनवकाश—बध्यघातक के मायने कोई एक मारा जाने योग्य है कोई एक मार डालने वाला । जैसे सर्प और नेवला, इनमे मानो सर्प बध्य है और नेवला घातक है अथवा अग्नि और जल लीजिये । इनमे अग्नि बध्य है और जल घातक है। अग्नि और जल का सघर्ष हो तो अग्नि बुझ जायगी। तो बध्यघातकभाव का यह भाव है। अब इस सम्बन्ध मे यह विचार करना कि बध्यघातकभाव दो विद्यमान पदार्थों मे होता है और वह भी उन दो पदार्थों का सयोग होने पर होता है। जैसे साँप और नेवला दूर-दूर विचर रहे है तो उनमे बध्य-घातकभाव कुछ नही है। जब उनका सघर्ष होता है तो वहाँ जो बलवान हो वह घातक बनता है। जो निर्बल हो वह बध्य होता है। अथवा अग्नि जल के दृष्टात मे देखिये—अग्नि और जल अलग अलग पडे हैं तो उनमे बध्यघातकभाव कुछ नही है। तालाब मे पानी है, रसोईघर मे आग है, सब अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। सयोग हुये बिना अग्नि बध्य नही होता, जल घातक नही होता। यदि तालाब से एक लोटा जल लेकर उसे आग पर डाल दिया जाय तो अग्नि बध्य हो गई और जल घातक हो गया। तो बध्यघातकभाव मे मूल बात यह है कि सयोग होने पर ही बध्यघातकभाव बनता है। यदि सयोग के बिना बध्यघातकभाव बन जाय तो दुनिया मे अग्नि कही मिलेगी ही नही, क्योकि सयोग न होने पर भी जल को अग्नि का घातक मान लिया, फिर तो अग्नि का अभाव ही हो जायेगा। तो बिना सयोग के जल अग्निको बुझा नही सकता। यह बध्यघातकभाव का तथ्य है। अब आप यह बतलाओ कि कि आप शकाकार अस्तित्त्व और नास्तित्त्व को बध्यघातकभाव से देखते हैं तो अस्तित्त्व और नास्तित्त्व ये दोनो एक वस्तु मे रह रहे हैं या नही रह रहे। अगर अस्तित्त्व और नास्तित्त्व एक वस्तु मे नही हैं तो फिर विरोध कैसा ? बध्यघातकभाव तो सयोग बिना विरोधी नही बनता। तो जब अस्तित्व और नास्तित्व का एक वस्तु मे सयोग ही नही मान रहे तो बध्यघातकभावरूप विरोध सिद्ध नही होता और यदि अस्तित्व नास्तित्व दोनो का रहना एक एक वस्तु मे एक साथ स्वीकार करते हो तो अब दोनो ही धर्म समान बलशाली हैं। जब समान बल-शाली हैं तो एक दूसरे को कैसे बाधा दे सकते हैं ? समान बलशाली दोनो धर्म इस प्रकार हैं कि जैसे स्व स्वरूप से अस्तित्व के बिना वस्तु नही है ऐसे ही पररूप से नास्तित्व के बिना भी वस्तु नही है। जब ये दोनो धर्म समान बलशाली है तो इनमे बध्यघातकभाव का विरोध नही हो सकता।

सत्त्व असत्त्व धर्मों मे सहानवस्थान लक्षण विरोध का अनवकाश—प्रश्न— यदि अस्ति नास्ति धर्म मे बध्यघातकभाव नाम का विरोध नही होता है तो सहानवस्थान नाम का विरोध मान लीजिये। **उत्तर**— सहानवस्थान विरोध एक वस्तु के क्रम से होने वाली दो पर्यायो मे होता है। नवीन पर्याय उत्पन्न हुई तो वहाँ पूर्व पर्याय नष्ट हो जाती है। पूर्वोत्तर पर्याय एक साथ नही रहती। जैसे आम का पीला रूप उत्पन्न होता है तो वहाँ पूर्व रूप हरा रग नष्ट हो जाता है। सो पूर्वोत्तर पर्याय एक साथ न हुई वही सहानवस्थान विरोध है। परन्तु प्रकृत मे यह तो बताओ कि अस्तित्व और नास्तित्व क्या क्रमिक धर्म हैं ? जैसे कि पूर्व और उत्तर पर्याय क्रमिक हैं। नही

अस्तित्व और नास्तित्व क्रमिक नही हैं। अर्थात जब अस्तित्व हो तब नास्तित्व न हो, जब नास्तित्व हो तब अस्तित्व न हो एक वस्तु में ऐसा बिल्कुल नही। यदि ऐसा मान बैठें कोई कि अस्तित्व के काल मे नास्तित्व नही है तो इसका यह ही अर्थ तो हुआ कि जब वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति है तब वह पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति नही है। सो यदि पररूप से नास्तित्व यहाँ नही मान रहे तो अर्थ यह होगा कि वह पदार्थ समस्त पररूप हो गया। जब समस्त पररूप हो गया तो उसका भी अस्तित्व कहाँ रहा। क्योकि अब तो पदार्थ सर्वरूप है। तो जिस धर्म को सिद्ध करना चाहते हैं, जिस वस्तु को सिद्ध करना चाहते हैं वह अस्तित्व ही न रख सका। इसी प्रकार दूसरा पक्ष विचारिये कि नास्तित्व के काल मे अस्तित्व का अभाव है। तो अस्तित्व के अभाव का अर्थ यह हुआ कि पदार्थ अपने स्वरूप से अस्ति है ऐसा नही, तो लो, जब स्वरूपास्तित्व ही नही है तो शून्य हो गया, कुछ रहा ही नही। तो जब जीव ही न रहा. कुछ ही न रहा तब बध मोक्ष की व्यवस्था ही क्यो करते ? बध किसको है ? असत् को नही, शून्य को नही। यहाँ तो जीव हो कुछ न रहा जब बध नही बनता है तो मोक्ष किसके का और मोक्ष लिए पुरुषार्थ भी क्या ? तो मोक्ष का भी व्यवहार न रहा, धर्म भी न रहा, पर एक बात तो सोचे, अगर ऐसा सर्वथा असत् है तो उसके बारे मे व्यवहार नही बनता, और कोई माने कि उसको उत्पत्ति हो लेगी। जीव यद्यपि असत् है, पर वह बन जाता है, तो यह कपोलकल्पित बात है। सर्वथा असत् की उत्पत्ति हो ही नही सकती। उपादानभूत कुछ नही हो, और कोई मुद्रा बन जाय, परिणति बन जाय यह सम्भव ही नही है, और यदि सत् है तो उसका सर्व प्रकार विनाश हो ही नही सकता। अस्तित्व और नास्तित्व तो एक साथ रहने वाले धर्म हैं। इनमे सहानवस्थान विरोध नही है। जैसे जीव सर्व समय मे अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव से है और वही जीव सर्व समयो मे परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही है, तो पर रूप से नास्तित्व और स्वरूप से अस्तित्व दोनो ही पदार्थों मे एक साथ रहा करते हैं, यह तो वस्तु का स्वरूप ही है, और इसी कारण अस्तित्व और नास्तित्व धर्म का सहानवस्थान विरोध नही है और ये दोनो धर्म जब एक वस्तु मे एक साथ रहते हैं तो इनकी प्रधानता और अप्रधानता मे क्रम विवक्षा और यौगपद्य विवक्षा मे ७ भग हो ही जाते हैं।

सत्व असत्व धर्मो मे प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धकभावरूप विरोध का अनवकाश—अब शकाकार कहता है कि अस्तित्व नास्तित्व धर्म मे सहानवस्थान विरोध भी न रहे किंतु प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भावरूप तो विरोध है और इस विरोध के कारण अस्तित्व नास्तित्व का एक साथ एक वस्तु मे ठहरना नही हो सकता। उत्तर—अस्तित्व और नास्तित्व मे प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भाव रूप भी विरोध नही है। प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भाव का अर्थ है कि एक तो है प्रतिबन्ध करने वाला और एक हो प्रतिबन्ध मे आने वाला, एक रोधक है, प्रेरक है और एक रुध जाता है जैसे आम का फल वजनदार है और उसमे नीचे गिरने का स्वभाव है। जो जो भी वजनदार वस्तुवें हैं उनमे नीचे गिरने का स्वभाव पडा है। किंतु आम जब तक डाल के डठल मे लगा है तब तक वह सयोग प्रतिबन्धक है कि वह आम को नीचे नही गिरने देता। तो यहा आम्रफल और डण्ठल का सयोग तो प्रतिबन्धक है, और वजनदार होने पर भी आम का अध पतन नही हो पाता। यह उस समय प्रतिबन्ध्य है। कुछ वैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि पृथ्वी मे आकर्षण स्वभाव है सो चीजो को पृथ्वी अपनी ओर खीचे रहती है। पर यह तो एक कल्पना की ही बात है। प्रत्यक्ष सिद्ध यह ही बात है कि जो वजनदार पदार्थ है उसके नीचे गिरने का स्वभाव है इसलिये नीचे गिरकर

पृथ्वी पर पड जाता है व पडा रहता है। यदि पृथ्वी का आकर्षण करने का स्वभाव हो और वस्तु मे अधः पतन स्वभाव न हो तो यह बतलाये कोई कि पत्ते जो जरा सी हवा मे उडते रहते हैं उन पत्तो जैसे कम वजनदार पदार्थों को तो पृथ्वी और भी जल्दी आर्कषित कर ले, वजनदार चीजो को खीचने में देर भी लग सकती है मगर हल्के पदार्थ को खीचने मे क्यो देर लगती, या क्यो नही खीचती। सो भाई आकर्षण शक्ति पृथ्वी मे नही किंतु गुरु पदार्थ मे नीचे गिरने का स्वभाव होता है। तो आम का फल गुरु (वजनदार) है, उसका नीचे गिरने का स्वभावहै, पर जब तक डन्ठल से सम्बध है। डाल से सयोग है तब तक अधःपतन नही होता। तो यह कहलाया प्रतिबन्ध्यप्रतिबधकभाव। और जब डण्ठल से फल का सयोग टूट जाता हैं तब वह फल नीचे गिर जाता है। तो वह गुरुपना नीचे गिरा देने का कारण है। सयोग के अभाव मे गुरुत्व पतन का कारण होता है, ऐसा वैशेषिक आदिक ने भी अपने सूत्र मे कहा है। किंतु प्रकृत मे देखिये—अस्तित्व और नास्तित्व इन दो धर्मों मे कहाँ प्रतिबन्ध्य और प्रतिबन्धक भाव है ? इसमे यह विरोध तब कहलाता जब अस्तित्व तो नास्तित्व के प्रयोजन का प्रतिबन्ध करता हो, और नास्तित्व आस्तित्व के प्रयोजन का प्रतिबन्ध करता हो, सो ऐसा प्रतिबन्ध रच भी नही है। क्योकि अस्तित्व के काल मे ही पर स्वरूप से नास्तित्व बना हुआ है। प्रतिबन्ध कहा हो सका ? प्रतिबन्ध का अर्थ यह है कि अस्तित्व नास्तित्व के काम को रोक दे और नास्तित्व अस्तित्व के काम को रोक दे, पर यहा किसी का प्रयोजन रुका हुआ नही है। वस्तु निरन्तर स्वरूप से सत् है, पररूप से असत् है। तो इस तरह इन धर्मो मे प्रतिबन्ध्य प्रतिबन्धक भावरूप विरोध नही है। और यो भले प्रकार से सिद्ध होता है कि पदार्थ अनेकान्तात्मक है। यह जीव भी अनेकात्मक है।

जीवतत्व के विज्ञान से आत्मकल्याण मे लगन को प्रेरणा—चतुर्थ अध्याय के समापन के समय यह जिज्ञासा की गई थी कि जीव वास्तव मे है भी या नही, तो जीव पदार्थ को भावात्मक और एकानेकात्मक सिद्ध करने के लिए यह सप्तभगी का प्रकरण चला। यहाँ जीव पदार्थ अस्तित्व को जान कर और साथ ही जब यह है तो निरन्तर परिणमन करता रहता है ऐसा जानकर अपनी आत्मभावना करें कि मेरा परिणमन दु ख रूप न हो, किंतु निरन्तर शातिरूप हो। ऐसी भावना रखना चाहिये। पवित्र परिणमन यह है कि मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा मात्र ज्ञान की ही वृत्ति को करता रहूँ। उसमे विकार का प्रसग न आने दे। आत्मा मे विकार क्या है, सो उपादानतया देखो तो वह विकार यह है कि ज्ञान का अनेक विध अज्ञान रूप से परिणमन चल रहा है। और यह हुआ क्यो ? कर्म के अनुभाग का सम्बन्ध पाकर। आत्मा मे स्वय कभी विकार नही होता। यदि जीव मे स्वय विकार होने लगे तो वह स्वभाव हो जायेगा, पर स्वभाव तो ज्ञान का है, विकार का नही। सो जब तक कर्म उपाधि के सम्बन्धवश यह जीव अपने ज्ञान को अज्ञानरूप परिणमाता है तब तक ससार है, जन्म मरण है। चतुर्गतिभ्रमण है और जब यह जीव अपने ज्ञानस्वरूप को अपने मे ही समझकर समग्र परके उपयोग से निवृत्त होता है और आत्मा मे एकाग्र होता है तब इसके ज्ञान की प्रगति होती है। तो गत द्वितीय, तृतीय चतुर्थ अध्यायो मे जीव की सर्व तरह की दशायें बताई गई हैं। उन सब विभाव दशाओ से हटने के लिए अपने ज्ञानस्वभाव का आलम्बन लेना चाहिए।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

सप्तदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्याय तीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार कर्म भूभृताम्
ज्ञातार विश्वतत्वाना वन्दे तद्गुण लब्धये ॥

मोक्षशास्त्र मे मोक्ष का मार्ग बताया गया है कि किस उपाय से संसारी जीव समस्त सकटो से छूटकर मुक्त हो जाते हैं। वह उपाय है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र का एकत्व। जैसा कि मोक्षशास्त्र के सर्वप्रथम सूत्र मे कहा गया है। उससे आगे सम्यग्दर्शन के विषयभूत ७ तत्त्वो का वर्णन है। उनमे ये जीव पदार्थ का तो वर्णन हो चुका। अब अजीव पदार्थ विचार प्राप्त है, उसके भेद नाम बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

अजीवकाया धर्माधर्माकाश पुद्गला ……॥५-१॥

अजीवकायो की सज्ञा व अजीवकाय शब्द का वृत्यर्थ—धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये ४ अजीवकाय हैं। धर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो जीव और पुद्गल के चलने मे निमित्तभूत हो। अधर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो चलते हुए जीव पुद्गल के ठहरने मे निमित्त कारण हो। आकाश द्रव्य उसे कहते हैं जो समस्त द्रव्यो का अवगाह देने में कारण हो, और पुद्गल द्रव्य उसे कहते हैं जिसमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाये जायें। तो ये धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये ४ जीवकाय हैं। अजीवकाय का अर्थ है, अजीव होते हुए काय है अर्थात अजीव है और अस्तिकाय है। यहा यह समानाधिकरण वृत्ति है, कर्मधारय समास है। विशेषण विशेष्य के साथ जहा समास होता है वहा अन्य की व्यावृत्ति होती है। जैसे अजीवतो ५ हैं मगर वे सभी अस्तिकाय नही हैं। और अस्तिकाय भी ५ हैं मगर वे सभी अजीव नही है। तो अजीव होते हुए काय हो, ऐसे ये ४ पदार्थ ही हैं। जीव और काल अजीवकाय नही हैं। यद्यपि जीव अस्तिकाय है किंतु अजीव नही। कालद्रव्य अजीव है किंतु अस्तिकाय नही। अजीव होते हुए जो अस्तिकाय है वह ये ४ द्रव्य ही हैं।

अजीवकाया. पद मे भिन्नाधिकरण वृत्ति समास मे भी अनापत्ति का सोदाहरण विवरण—यहा यह जिज्ञासा होती है कि अजीव काय का समास समानाधिकरणरूप मे किया है। यदि भिन्नाधिकरण रूप मे समास किया जाय तो क्या हानि है? भिन्नधिकरणपने का अर्थ है जिसमे दोनो भिन्न हो। जैसे राजपुरुष, इसमे समास है राजा का पुरुष। तो ऐसे ही अजीवकाय, यहा समास कर दीजिए,

जीवो की काय। तो इस प्रकार भिन्नाधिकरण करने से क्या हानि है। तो उत्तर यह हो सकता है कि भिन्नाधिकरण करने पर इसमे भिन्नता आ जायेगी। अजीव के काय, ऐसा बोलने पर अजीव कोई अलग चीज है, अस्तिकाय कुछ अलग चीज है, ऐसा अर्थ हो सकता है। जैसे राजपुरुष राजा अलग मनुष्य है और नौकर आदिक अलग मनुष्य है, ऐसी भिन्नता का प्रसग हो जायेगा। शकाकार कहता है कि भिन्नाधिकरण करने पर भी भिन्नता का प्रसग नही आता। जैसे कोई कहता है कि स्वर्ण की मुदरी (अगूठी) तो समास तो है भिन्नाधिकरण करने वाला, तत्पुरुष समास, मगर स्वर्ण और अगूठी ये जुदी-जुदी चीजें नही है। तो इसी प्रकार यहा भी अजीव की काय ऐसा कह देने पर भी भिन्नता न आयेगी। अब इस शका का समाधान करते हैं कि यहा दृष्टान्त मे भिन्नाधिकरण वाला जो समास है वह अन्य विशेषो की निवृत्ति के लिये है। जैसे स्वर्ण की अगूठी अर्थात् यह चादी की अगूठी नही है। न अन्य धातु की है। तो इसी तरह भिन्नाधिकरण समास भी कर दीजिये, और अर्थ यह लगा कि अजीव के काय, तो इस विशेषण से भी यह अर्थ हो गया कि ये चार अजीव के काय है, जीव के काय नही हैं, और इस तरह अगर तत्पुरुष समास भी करें तो भी कही कुछ विरोध नही आता। अब यहाँ भेद, अभेद की बात का विचार किया जाता है। ये चार पदार्थ अजीव भी है और अस्तिकाय भी है। यो अभेद होने पर भी कथञ्चित इनमे भेद जाना जाता है। यदि सर्वथा अभेद हो तब कुछ व्यवहार भी न बन सकेगा। तो अजीव और अस्तिकाय इनमे सज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदिक के द्वारा भेद उत्पन्न होता है। जैसे स्वर्ण की अगूठी ऐसा कहने पर स्वर्ण तो हुआ एक सामान्य और अगूठी हुआ स्वर्ण का विशेष तो सामान्य और विशेष मे सज्ञा लक्षण आदिक की अपेक्षा से कथञ्चित भिन्नता हैं। जो स्वर्ण सामान्य है वह सब अगूठी कहाँ है, और जो अगूठी है वह स्वर्ण सामान्य कहाँ है? यद्यपि स्वर्ण से अगूठी भिन्न नही है, स्वर्ण की रची हुई परिणति है फिर भी सज्ञा और लक्षण की अपेक्षा इनमे भेद है। यदि स्वर्ण और अगूठी मे सर्वथा एकत्व हो जाये, पूर्णतया अभेद हो तो जैसे स्वर्ण सामान्य अगूठी मे हुआ तो अब स्वर्ण सामान्य कुण्डल आदिक मे नही पहुँच सकता, क्योकि यहाँ अभेद कर दिया। जो अगूठी है सो ही सारा स्वर्ण है। अब आगे स्वर्ण रहा नही, अथवा जैसे स्वर्ण सामान्य सभी गहनो मे पाया जाता है इसी तरह अगूठीपना भी सभी गहनो मे पाया जाना चाहिये, क्योकि शकाकार तो यहाँ स्वर्ण और अगूठी को सर्वथा एकत्व बता रहा है इस कारण अन्य की निवृत्ति के लिए ही यह प्रयोग बनता है। यह अगूठी स्वर्ण की है। यह अगूठी स्वर्ण की है चादी आदिक की नही, ऐसी निवृत्ति तब ही की जा सकती है जब इसमे कथञ्चित भेद माना जाता है। यदि सर्वथा एकत्व हो जाए तब तो नाम भी नही लिया जा सकता। क्या लिया जाये?

भिन्नाधिकरण वृत्ति मे भी अजीवकाय पद की सार्थकता—उक्त दृष्टान्त की तरह अजीवकाय मे भी अजीव की काय है, ऐसा कहने पर सज्ञा, लक्षण आदिक के द्वारा कथञ्चित भिन्नता ज्ञात होती है अन्यथा यदि अजीव और काय इन दो शब्दो के वाच्य सर्वथा एक हो जायें तो जैसे धर्मादिक द्रव्यो में एकपना है ऐसे ही प्रदेशो मे भी एकपना हो जायेगा, क्योकि काय नाम प्रदेश प्रचय का है। उस प्रदेश प्रचयपने को और अजीव को सर्वथा एक मान ले तो प्रदेश भी अनेक न रह सकें। जैसे कि आगे बताया जायेगा कि धर्मादिक द्रव्यो मे असख्यात प्रदेश होते हैं। दूसरा दोष यह है कि अजीव और काय इन दोनो मे सर्वथा एकत्व मान लिया जाये तो जैसे प्रदेश बहुत हैं ऐसे ही धर्मादिक

भी बहुत हो जायेंगे । इस कारण अन्य की निवृत्ति के लिये यह प्रयोग युक्त है कि धर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य, ये अजीव के काय हैं, जीव के काय नही हैं। यदि इनमे सर्वथा एकत्व हो जाये तब फिर नाम व्यवहार भी नही बन सकता । तो संज्ञा लक्षण आदिक की दृष्टियो से इनमे भेद बनता है इस कारण भिन्नाधिकरण वृत्ति वाला समास भी युक्त है। अब यहा शकाकार कहता है कि अभेद होने पर भी तो लोक मे व्यवहार देखा जाता है । जैसे कोई कहता कि यह केतु का शरीर है, यह राहु का सिर है । तो शरीर मात्र ही तो केतु है या सिर मात्र ही राहु है, कुछ भेद नही है। जो धड है वही केतु है, फिर भी उसमे भेद व्यवहार देखा गया या नाम भेद देखा गया कि केतु का शरीर राहु का सिर। उत्तर देते हैं कि भाई सर्वथा अभेद वहा भी नही है, वहा पर भी भेद है। वह किस प्रकार ? शक्तियो से देखिये—जो अनेक क्रियायो को बनावे ऐसे शक्ति भेद से सर्वथा भिन्न तो केतु है और उसका यह शरीर एक क्रिया विषयक है। ऐसा शब्द कल्पना से या बुद्धि भेद से इनमें भी कथचित भेद समझ मे आता है । भेद कुछ जाने बिना व्यपदेश व्यवहार नही बन सकता, तो वहाँ पर भी अन्य की निवृत्ति के लिये विशेषण है कि यह शरीर केतु का है, मनुष्यादिक का नही । जैसे कहा कि यह सिर राहु का है तो अन्य निवृत्ति यहाँ भी है, किसी दूसरे मनुष्यादिक का नही । सो मात्र चित्त भेद समझे बिना व्यवहार नही बन सकता, तीर्थ प्रवृत्ति नही बन सकती । यदि सर्वथा एकान्त मान लिया जाये—अभेद, तो अन्य की निवृत्ति नही हो सकती । जैसे कोई प्रयोग करे - स्वर्ण का स्वर्ण, सोने का सोना है, तो इसमे अन्य की निवृत्ति नही कही जाती कि अन्य का सोना नही है। वह तो एक वचन मात्र की बात है।

अजीव शब्द का पर्युदास अर्थ—अब अजीव शब्द के अर्थ पर एक शकाकार कहता है कि अजीव का यह अर्थ किया जाना चाहिये कि अजीव, जीव नही और ऐसा अर्थ करने पर अभाव मात्र ही समझा जायेगा। कोई वस्तु न जानने मे आयेगी । उत्तर कहते हैं कि भेद मात्र अर्थ न लेना, जीव नही, इतना ही अर्थ न लेना किन्तु जीवन क्रिया से भिन्न क्रिया वाले ये पदार्थ हैं। पुद्गल द्रव्य सद्-भूत पदार्थ हैं । सब सामने दिख रहे हैं और ये अजीव कहलाते हैं, और ये दिख रहे हैं तो इनको सिर्फ इतना न समझना कि जीव का अभाव मात्र है यह किन्तु रूप, रस, गन्ध स्पर्श के पिण्डभूत ये पदार्थ हैं। जैसे अनश्व याने अश्व नही अघडा, घडा नही, ऐसा कहा जाये तो यह अर्थ होगा कि यह अश्व नही हैं, किन्तु और कोई जानवर है। कही अभाव मात्र का बोध नही होता । कुछ है ही नही, अभाव का जहा प्रयोग होता है वहाँ अन्य है, यह ध्वनित होता है, आवान्तर मे अभाव की प्रत्पत्ति होती है । जैसे गधा और घोडा दोनो करीब-करीब एक शकल के होते हैं । खच्चर, गधा तो प्राय बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं । फर्क उनमे थोडा होता है । तो वहा खडा तो था गधा और किसी ने कहा घोडा तो दूसरा समझाता है कि यह घोडा नही है । अनश्व है, तो उसका अर्थ यह नही है कि कुछ है ही नही । अर्थ उसका यह है कि घोडे से अतिरिक्त कोई है। इसी प्रकार यहा जीव शब्द कहा है। धर्मादिक पदार्थ अजीव हैं । तो जीव का प्रतिबन्ध करने से तुच्छाभाव अर्थ न लेना कि कुछ भी नही है, जिसका उपयोग लक्षण नही किन्तु अन्य लक्षण हैं, ऐसे धर्मादिक द्रव्य हैं, यह अजीव का अर्थ है। यहाँ शकाकार कहता है कि गधे मे अनश्व कहा तो कुछ सदृशता थी, उस सदृशता से भ्रम होता था। जब कहा कि यह घोडा नही । अगर जीव की और धर्मादिक द्रव्यो मे कुछ सदृशता ही नही है तो वहाँ कैसे अजीव शब्द से उसका बोध हो जायेगा। समाधान यह है कि जीव मे और धर्मादिक

अजीव पदार्थों मे सदृशता है किसी दृष्टि से। जैसे सत्त्व जीव मे है, सत्त्व उन धर्मादिक द्रव्यो मे भी है। द्रव्यपना जीव मे है तो द्रव्यपना उन अजीव पदार्थों मे भी है। ऐसी सदृशता पायी जाती है। सो अभाव शब्द कहने से जीव का अभाव याने शून्य अर्थ नही है, किन्तु जीव न होकर अन्य लक्षण वाले पदार्थ हैं, यह अर्थ है।

काय शब्द का प्रकाश - यहाँ काय शब्द का अर्थ है—काय की तरह जो हो वह काय। काय मायने शरीर। जैसे—शरीर मे अनेक प्रदेश हैं, परमाणु हैं उसकी तरह जो बहुत प्रदेश हो उसे काय कहते है। जैसे औदारिक आदिक शरीर नामकर्म के उदय से पुद्गल के द्वारा जो इकट्ठे होते हैं वे काय हैं ऐसे ही धर्मादिक पदार्थो मे अनादि पारिणामिक भावतः असख्यात प्रदेश का प्रचय है इसलिये उन्हे काय कहते हैं। इस सूत्र में काय शब्द का ग्रहण प्रदेश रूप अवयवो की अनेकता जतलाने के लिये है। याने धर्मादिक द्रव्यो मे अनेक प्रदेश है। यद्यपि प्रदेश नाम स्थान की इकाई का है याने आकाश का सबसे छोटा अविभागी एक हिस्सा प्रदेश कहलाता है लेकिन वह प्रदेश एक नाप मे आया, बुद्धि मे तो उस बुद्धि के द्वारा उस आकाश प्रदेश की नाप से उनमे असख्यात आदिक प्रदेश स्वीकार किये जाते हैं और प्रदेशो की बहुतायत बताने के लिये इस सूत्र में काय शब्द का ग्रहण किया गया है।

सूत्र मे काय शब्द के ग्रहण की अनर्थकता का प्रश्न—यहाँ एक जिज्ञासु प्रश्न करता है कि जब आगे एक सूत्र आयेगा—असख्येया: प्रदेशा' धर्माधर्मैक जीवानां' ? तो उस सूत्र से ही बहुप्रदेशपना सिद्ध हो जाता है, फिर इस सूत्र में काय शब्द का ग्रहण करना निरर्थक है। कदाचित कोई यह कहे कि प्रदेश की सख्या का निश्चय हो जाये इसके लिये उस सूत्र की उपयोगिता होगी, सो भी बात नही, क्योकि उस सूत्र से भी पदार्थो का समूह है, इतनी मात्र प्रतीत होती है। कोई यहाँ यह दलील देवें कि इस सूत्र मे कही तीनो का मिलकर असख्यात प्रदेश न समझ लेवे इस कारण कि एक-एक मे असंख्यात प्रदेश होते हैं। इस प्रसिद्धि के लिये यहाँ काय का ग्रहण किया है। यहाँ काय का ग्रहण करने पर भी निश्चय नही बनता है। काय कहा तो उससे भी इतनी ही सिद्धि होगी कि बहुत प्रदेश हैं, फिर किस तरह निश्चय होगा। और सुनो—एक सूत्र आगे आयेगा - लोकाकाशेवगाहः उस सूत्र से निश्चय हो जायेगा, कैसे ? जब यह मालूम पड गया कि धर्म, अधर्म द्रव्य का लोकाकाश में अवगाह है और वह भी "धर्माधर्मयो कृत्सने" इस सूत्र से धर्म, अधर्म द्रव्यो के प्रदेशो के परिमाण का निश्चय भी हो जाता है। कोई कहे कि सूत्र मे काय ग्रहण न करने से अप्रदेशी एकपने का प्रसग आ जायेगा, सो भी नही आ सकता, क्योकि आगे के असख्येया' आदिक सूत्र से बहुप्रदेशपना सूचित हो ही जाता है। एक बात और भी विशेष यह है कि ५ अस्तिकाय हैं, ऐसा आगम उपदेश प्रसिद्ध है। इसके लिये काय शब्द का ग्रहण सार्थक हो जायेगा। कोई ऐसा कहे तो भी ठीक नही, क्योकि असख्येया सूत्र से ही बहुप्रदेशपना सिद्ध हो जाता है। कोई कहे कि कही कोई यह न समझ ले कि बहुप्रदेशीपना का स्वभाव छूट जायेगा इसलिये काय शब्द का ग्रहण किया है, तो यह भी सोचना ठीक नही है क्योकि अभी ही सूत्र आयेगा कि यह नित्य अवस्थित है। इससे ही यह सिद्ध हो जायेगा कि यह अपना स्वभाव कभी छोडता नही है।

सूत्र मे काय शब्द के ग्रहण की सार्थकता का कथन—अब उक्त पूर्व पक्ष का समाधान करते है। तब इस सूत्र मे काय शब्द का ग्रहण किया है और उससे यह सिद्ध हो गया कि इन अस्तिकायो मे

अथवा पाचो ही अस्तिकायो मे बहुप्रदेशपना है, अर्थात् जब बहुप्रदेशपना सिद्ध हो गया तब ही तो असखेया आदिक सूत्र से उसके प्रदेशो का अवधारण बन सकेगा। इन पदार्थों मे असंख्यात ही प्रदेश है। न संख्यात हैं और न अनन्त हैं, क्योकि पहले सामान्यतया विधिपूर्वक अवधारण तो बन जाये कि यह द्रव्य बहुप्रदेशी है, अस्तिकाय है, फिर तो आगे के सूत्र उनकी गणना बतायेंगे। साथ हो फिर यह जानना कि काल द्रव्य बहुप्रदेशी नही है। सो काल द्रव्य के अस्तिकायपना का निषेध करने के लिये इस सूत्र मे काय का ग्रहण करना बिल्कुल उपयुक्त है, क्योकि काल द्रव्य एक प्रदेशी है और इसीलिए द्वितीय आदिक प्रदेश न होने के कारण अप्रदेशी भी कहते हैं। तो सामान्यतया सर्वप्रथम अस्तिकाय के द्रव्यो को कायपना सिद्ध करने के लिये इस सूत्र मे काय शब्द का ग्रहण किया गया है। आगे अभी तीसरा सूत्र आयेगा—जीवाश्च, सो वह भी अस्तिकाय है। यह सिद्ध हो ही जायेगा।

सूत्रोक्त धर्म, अधर्म आदिक शब्दों के वाच्य का निर्णय—अब यहा धर्मादिक द्रव्यो के विषय मे यह जानना कि वे जो नाम धरे गये है सो वे रूढ शब्द है। आगम मे दो शब्दो से उन द्रव्यो का बोध कराया गया है, अथवा यदि व्युत्पत्ति पूर्वक देखें तो इन सज्ञाओ का अर्थ भी ठीक बैठता है। जैसे धर्म का अर्थ है जो धारण करे सो धर्म। क्या धारण करे ? स्वय क्रिया परिणत जीव और पुद्गल को जो साचित्य धारण करे अर्थात् सहायक हो वह धर्म है। ता इसी प्रकार स्थिति मे जो साचित्य धारण करे सो धर्म द्रव्य है। आकाश का शब्दार्थ है कि जहाँ पर जीवादिक द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायो के साथ प्रकाशमान हो जो खुद भी अपने को प्रकाशित करे वह आकाश है। या यह अर्थ कर लिया जाये कि जो अन्य सब द्रव्यो को अवकाश दान दे वह आकाश है। यहाँ कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि लोकाकाश मे तो अन्य द्रव्यो का अवगाह है नही फिर वहा आकाश का लक्षण कैसे घटित होगा, तो उसका उत्तर दो तरह से समझें। एक तो शक्ति की दृष्टि से उस आकाश मे भी अवकाश दान की योग्यता है, भले ही धर्म द्रव्य के वहाँ न होने से जीव और पुद्गल का गमन नही है और काल द्रव्य भी नही है, पर आकाश तो आकाश ही है, उनमे जो शक्ति है सो तो वह है ही। दूसरी बात यह समझें कि आकाश द्रव्य अखण्ड द्रव्य है जब अवगाह हो रहा है लोकाकाश मे तो वह आकाश है और अखण्ड द्रव्य होने से वे सभी है। पुद्गल का अर्थ है पूरण गलन को प्राप्त हो वह पुद्गल है। पूरण का अर्थ है मिलकर, गलन का अर्थ है घटकर कम हो जाये उसे पुद्गल कहते हैं। सो जो स्कन्ध दिखते हैं उनमे यह बात स्पष्ट पायी जाती है कि अनेक परमाणुओ का बध होकर वह परिणाम मे बढ जाता है और परमाणुओ का विच्छेद होकर वह घट जाता है। यह पूरण गलन स्वभाव स्कन्धो मे तो स्पष्ट है, अब शक्ति अपेक्षा परमाणुओ मे भी पूरण गलन स्वभाव है। परमाणुओ मे भी गुणो का परिणमन होता रहता है, गुण वृद्धि और गुण हानि होती रहती है, सो वहाँ भी पूरण गलन व्यवहार मानने मे कोई बाधा नही है। अथवा पुद्गल का यह भी अर्थ कर सकते—पु मायने पुरुष अर्थात् जीव उसके द्वारा जो निगले जायें सो पुद्गल हैं। जीव, शरीर, आहार, विषय आदिक के रूप मे पुद्गल को निगलते ही हैं, और जब स्कन्ध दशा मे वे निगले गये तो परमाणु भी निगले गये समझिये। तो व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा भी ये सब नाम अन्वर्थक हैं।

धर्मादिक द्रव्यों की स्वतन्त्रता व सूत्र मे नामक्रम के कारणो का प्रकाश—इस सूत्र मे धर्मा-धर्माकाश पुद्गलाः यह बहुवचन का पद हैं जिसमे सबका स्वातन्त्र्य जाना जाता है, अर्थात् ये सभी द्रव्य अपने आप मे स्वय परिणत होते हैं अथवा धर्माधर्म आदिक द्रव्य जीव पुद्गल की गति आदिक

मे स्वय निमित्त होते हैं। जीव का पुद्गल उन द्रव्यो को प्रेरणा नही देते। इस सूत्र मे चार द्रव्यो के नाम दिये गये हैं। तो पहले-पीछे जैसे नाम दिये गये हैं उनका कारण है। तो सबसे पहले धर्म का नाम दिया है। तो धर्म शब्द की लोक मे बहुत बडी प्रतिष्ठा है, इस कारण सूत्र मे धर्म का पहले नाम दिया, इसके बाद अधर्म का नाम लिया। सो एक तो धर्म का प्रतिपक्षी शब्द है इस कारण बाद मे नाम दिया, दूसरा दोष यह है कि धर्म द्रव्य के कारण इस लोक मे पुरुषाकार आकृति व्यवस्थित रहती है इस कारण अधर्म का उसके बाद नाम दिया है। यदि अधर्म द्रव्य न माना जाता तो जीव और पुद्गल अलोकाकाश मे भी पहुँचता, तब लोक का कोई आकार न रहता। इस कारण जो कि लोकालोक के विभाग का कारण अधर्म द्रव्य का रहना है इससे अधर्म द्रव्य को धर्म के बाद कहा है फिर आकाश द्रव्य को कहा, क्योकि धर्म-अधर्म के द्वारा ही आकाश का विभाग बनता है। यह लोकाकाश है और यह अलोकाकाश है और यह अलोकाकाश है। जहाँ तक धर्म अधर्म द्रव्य है वह लोक है, और इसके बाद अलोक है, और फिर अमूर्त होने से आकाश मे धर्म अधर्म के साथ सजातीयपना है, इसके अन्त मे पुदगल का ग्रहण पारिशेष न्यायपर्क है और फिर आकाश मे पुद्गल अवकाश पाते हैं जो कि स्पष्ट है इसलिए आकाश के पास पुद्गल का नाम रखा।

आधार होने के कारण आकाश शब्द को सूत्र मे नामो मे सर्वप्रथम कहने की आशंका का समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि सूत्र मे नामो मे सर्वप्रथम आकाश का ग्रहण करना चाहिये, क्योकि धर्म-अधर्म और पुद्गल ये सभी आकाश मे ही तो रहते हैं; सबका आधार आकाश है। अत आकाश का ही प्रथम ग्रहण उचित था। इसका समाधान करते हैं कि निश्चय से देखा जाये तो किसी भी द्रव्य का आधार कोई दूसरा द्रव्य नही होता। समस्त लोक के अतिरिक्त समस्त द्रव्यो की रचना अनादि से है। प्रत्येक पदार्थ अपने आप सत् है। इसमे आधार आधेय भाव या कुछ पहले, कुछ बाद यह रच भी नही है, क्योकि जब किसी द्रव्य की आदि नही तो यह कैसे कहा जा सकेगा कि यह आधार है यह आधेय है ? जिनकी आदि होती है उनका ही आधार आधेय पहले ये बातें उसमे सिद्ध होती है। जैसे बर्तन और दूध। तो दूध की आदि है, अब निकलता है तो कहेगे कि बर्तन तो आधार है और दूध आधेय है। बर्तन पहले है, दूध बाद मे है। तो वहाँ तो यह बात सम्भव होती है मगर जहा सभी पदार्थ अनादि से हैं वहाँ कैसे बताया जा सकता कि यह तो आधार है और यह आधेय है ? भले ही आगम मे लिखा है कि घनोदधि वातवलय तनुवात वलय के आधार है, तनु वात वलय आकाश के आधार है, और आकाश अपने आपके आधार है। ऐसा इसी मोक्ष शास्त्र के तृतीय अध्याय मे सर्वप्रथम सूत्र मे कहा गया है। सो इसका भी विरोध नही है, और प्रत्येक द्रव्य अपने आपके आधार है, इसका भी विरोध नही, उसका कारण यह है कि आधार आधेय भाव का सर्वथा निषेध नही है और सर्वथा विधान नही है, किन्तु जब द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता से देखते हैं तो वहाँ सभी द्रव्य अपने-अपने आधार विदित होते हैं। सो द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि मे आधार आधेय भाव नही है, फिर भी पर्यायार्थिकनय की प्रधानता मे आधार आधेय भाव है। इस प्रकार व्यवहारनय से आकाश को आधार कहते, अन्य द्रव्य को आधेय कहते।

वस्तुत प्रत्येक द्रव्य का स्वय स्वय मे ही आधाराधेय भाव—द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता किस तरह है ? छहो द्रव्यो मे पर्याय दृष्टि से आदि विदित होता है क्योकि पर्यायें नई-नई अपने समय मे उत्पन्न होती रहती हैं। तो पर्याय की दृष्टि से तो जब आदि हो गई और आकाश को देखा

कि यह तो है ही पहले से तो अब यहाँ आधार आधेय की कल्पना हो गई। तब एवं भूतनय से देखा तो यह लोकरचना अनादि से पारिणामिक है, स्वय है, किसी के द्वारा की गई नही है, वहाँ आधार आधेय भाव नही है, व्यवहार मे तनु वात वलय का आधार आकाश को माना है और आकाश को स्वप्रतिष्ठित माना है। वहाँ यह शका नही की जाना चाहिये कि फिर तो आकाश का आधार भी अन्य बताया जाना चाहिये। फिर उस आकाश का जो आधार हो उसका भी आधार कोई अन्य आकाश होना चाहिये। और इस तरह आधार आधेय भाव के निरखने मे सर्वथा दोष हो जायेगा। सो यह शका यो ठीक नही कि आकाश तो सर्वव्यापी है और अनन्त है, उसमे अन्य आधार की कल्पना नही बनती। जो सर्वगत न हो, जो अत्यन्त सत् हो, जो मूर्तिमान हो, जिसमे अवयव हो, ऐसे पदार्थ मे ही अन्य आधार की कल्पना हो सकती है। तो द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखा जाए तो सभी द्रव्य अपने-अपने आधार मे है। अनादि से ही आकाश है, अनादि से ही सब द्रव्य है, और सब द्रव्यो के समूह का नाम लोक है इसलिए वहा आधार आधेय की कल्पना नही बनती, पर पर्याय दृष्टि मे व्यवहार मे आधार आधेय भाव है। तो व्यवहार से भी आकाश अन्य आकाश के आधार हो, यह बात नही है, क्योकि आकाश सर्वव्यापी है, इस कारण से उसका आधार नही कहा जा सकता।

जीवद्रव्य व कालद्रव्य की वक्ष्यमाणता का सकेत—इस सूत्र मे काल द्रव्य का नाम नही लिया गया। काल अजीव पदार्थ है और अजीव का इसमे वर्णन चल रहा, पर काल का नाम यहां इस कारण नही दिया कि वह अस्तिकाय नही है। छह द्रव्य बताये गये है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। इस सूत्र मे जीव का भी नाम नही है क्योकि अजीवकाय के ही नाम इस सूत्र मे लिये गये हैं। जीव तो अजीव नही है और काल का भी नाम नही है, क्योकि काल अस्तिकाय नही है। इसका लक्षण आगे बताया जायेगा और वहा ही यह भी दिखाया जायेगा कि काल द्रव्य एक प्रदेशी है, इस कारण अस्तिकाय नही है। इस तरह इस प्रथम सूत्र मे अजीव होते हुए जो अस्तिकाय हैं उनका वर्णन किया। इस अध्याय मे वर्णन तो किया जाना है सभी द्रव्यो का, पर सूत्र विधि के अनुसार इस तरह वर्णन चल रहा है कि सूत्र मे शब्द अधिक न बोले जायें और कम शब्दो से सूत्र बनकर सबका अर्थ आ जावे, उस नीति के अनुसार यहा अजीव कायो का वर्णन किया है। अब जो जीव और काल शेष रह गये उनका वर्णन समय पाकर होगा। अब इस समय यह एक जिज्ञासा होती है कि पहले अध्याय मे एक सूत्र आया था —"सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य।" अर्थात केवल ज्ञान का विषय समस्त द्रव्य और समस्त पर्याय है। तो उसमे द्रव्य शब्द बताया गया तो वह द्रव्य चीज क्या कहलाती है ? इस जिज्ञासा के समाधान मे सूत्र कहते हैं—

द्रव्याणि ॥५-२॥

द्रव्य का स्वरूप—प्रथम सूत्र मे जो ४ पदार्थ बताये गये वे सब द्रव्य हैं। द्रव्य तो जीव और काल भी हैं मगर सूत्र नीति के अनुसार इन ४ को द्रव्य कह दिया और जीव को इसके आगे बतायेंगे कि द्रव्य है और काल का भी वर्णन यथा समय किया जायेगा। यहाँ इस सूत्र मे धर्म, अधर्म आकाश और पुद्गल ये द्रव्य हैं जिनका वर्णन ऊपर के सूत्र मे किया गया है वे सब द्रव्य हैं। द्रव्य कहते किसे हैं ? अपने और पर पदार्थों के निमित्तसे जो उत्पाद व्यय की पर्यायो से चलता रहे उसको द्रव्य कहते हैं। जो शाश्वत है, सदा काल रहने वाला है और अनेक पर्यायो मे से चलता रहता है उस एक शाश्वत पदार्थ को द्रव्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य अनन्त हैं इस कारण यहाँ बहुवचन शब्द दिया है। धर्म

द्रव्य एक है, अधर्म द्रव्य एक है, यहआकाश एक है और पुद्गल द्रव्य अनन्तानन्तहैं। और शेष के जीव द्रव्य भी अनन्तानन्त हैं। कालद्रव्य असख्यात है और इस लक्षण मे कि जो स्व पर निमित्तक उत्पाद व्यय की पर्यायो से चलता रहे उसे द्रव्य कहते है।

पर्यायोत्पाद की स्वपर प्रत्ययकता—यहाँ एक यह सिद्धात आया कि उत्पाद व्यय स्वपरप्रत्ययक होता है। स्व प्रत्ययक के मायने स्वय की शक्तियो से होता है, पर प्रत्ययक के मायने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार होता है। तो पर प्रत्यय तो कहलाया द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप बाह्य प्रत्यय और स्व प्रत्यय कहलाया अपने आप का सामर्थ्य। कभी बाह्य पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी मिले और पदार्थ मे स्वय मे वह पर्याययोग्यता नही, तो उस रूप परिणमन नही होता। पदार्थ मे पर्याय योग्यता है किंतु परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि न मिलें तो परिणमन तदनुरूप नही होता। दोनो ही का जब योग होता है तो पर्यायो का तदनुरूप उत्पाद व्यय होता है। एक के अभाव मे उस प्रकार का कार्य नही होता जैसे उडद कोठी मे रखे हैं। उनको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का योग नही है पकने का तो वह नही पकता है। भोजन बनता नही है। और जो कुरडू उडद है वह २४ घन्टे भी पानी में पकाने को रखा जाय तो भी पकता नही है। पकने के योग्य उर्दो मे योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव न रहा और अग्नि पानी आदिक का सयोग मिलने पर भी कुरडू उडद को पकाने मे समर्थ नही है इसी प्रकार स्व और पर के हेतु से होने वाले उत्पाद व्ययो रूप अपनी-अपनी पर्यायो से जो जाते हैं, पर्यायो को प्राप्त होते चलते हैं उन्हे द्रव्य कहते हैं।

पर्याय की द्रव्य से अपृथक्ता—यहां द्रव्य और पर्याय भिन्न-भिन्न नही हैं फिर भी भेद विवक्षा करके कर्ता और कर्म का निर्देश किया गया है अर्थात पदार्थ अपनी पर्यायो को उत्पन्न करते है। यहां द्रु धातु से द्रव्य शब्द बना है। य प्रत्यय लगा है, जिसका अर्थ है द्रवति, गच्छति इति द्रव्य। अर्थात उत्पाद विनाश आदिक अनेक पर्यायो के होते रहने पर भी जो संतति से, द्रव्यदृष्टि से गमन करता जाय मायने तीनो काल मे रहे उसे द्रव्य कहते हैं। अथवा द्रव्य का भव्य अर्थ मे भी भाव समझना चाहिये। अर्थात जो पर्यायो रूप हो सके उसे द्रव्य कहते हैं। होता ही है पर्यायोरूप। जैसे कोई सीधी लकडी बढई के प्रयोग से टेबुल, कुर्सी आदिक अनेक आकारो को प्राप्त होती है उसी प्रकार द्रव्य भी स्व और पर प्रत्ययो से उन-उन पर्यायो को प्राप्त होता रहता है। द्रु नाम लकडी का भी है। उसकी तरह जो अनेक पर्यायोरूप होता रहे उसको द्रव्य कहते हैं।

द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य होने के सिद्धान्त की मीमांसा—यहाँ शकाकार कहता है कि द्रव्य शब्द का जो अर्थ बताया और यह सिद्ध किया कि कोई एक पदाथ है और वह अनेक पर्यायो को प्राप्त होता रहता है, सो यह ठीक जचता नही है कि उसमे पर्यायें होती हैं, और इस कारण से उसका नाम द्रव्य रखा गया है। किंतु यह मानना चाहिये कि द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य कहलाता है। जैसे डण्डे के सम्बन्ध से कोई पुरुष डण्डी कहलाता है। छतरी के सम्बन्ध से कोई पुरुष छतरी वाला कहलाता है। ऐसे ही द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य कहलाता है। द्रव्यत्व सामान्यरूप भी है। पृथ्वी आदि पदार्थो मे द्रव्य, द्रव्य ऐसा ज्ञान और शब्द की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसमे वे पृथ्वी आदिक भी द्रव्य विशेष हैं और चू कि पृथ्वी आदिक सभी मे द्रव्य शब्द का प्रयोग होता है तो द्रव्य सामान्य भी है और वह द्रव्य, गुण और कर्म से जुदा है। द्रव्यत्व के योग से द्रव्य कहलाता है, न कि पर्याय को पाने से द्रव्य कहलाता है यहां शकाकार का यह अभिप्राय है कि द्रव्य जैसे स्वतन्त्र पदार्थ

है ऐसे ही गुण और कर्म भी स्वतन्त्र पदार्थ हैं। गुण और पर्यायो को पाने से द्रव्य कहलाये सो बात नही, किंतु द्रव्यत्व के सम्बन्ध द्रव्य से कहलाता है, तो उसमे पर्याय की कोई बात नही आती। अब इस शका के समाधान मे कहते हैं कि उक्त शका ठीक नही है, उसका कारण यह है कि द्रव्यत्व के सम्बध से द्रव्य कहलाता है यह बात सिद्ध नही हो सकती। हाँ यह तो सिद्ध ही नेगा कि दण्ड के सम्बन्ध मे पुरुष दण्डी कहलाता है। दण्डी मे सम्बन्ध तो सिद्ध इस कारण होता है कि दण्ड का जब तक सम्बध न हुआ था तब तक भी वह देवदत्त था और डण्डा जुदा था। दण्डा अपने स्वरूप से है, देवदत्त अपने स्वरूप से है और अपने-अपने स्वरूप से स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पदार्थ हैं। इनका सयोग हो गया तो देवदत्त दण्डी कहलाने लगा, पर इस तरह द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले द्रव्य पाया नही जाता।

द्रव्य और द्रव्यत्व को भिन्न मानने और फिर सम्बन्ध बनाकर व्यवहार बनाने की अटपट कल्पनाओ का चित्रण—शकाकार ही बताये कि द्रव्यत्व का सम्बन्ध जब द्रव्य मे हुआ तो उससे पहले द्रव्य पाया गया या नही? यदि यह कहो कि द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले भी द्रव्य है तब द्रव्यत्व का सम्बन्ध हुआ तो सम्बन्ध से पहले भी जब द्रव्य है तो अब सम्बन्ध की जरूरत ही क्या रही? सम्बन्ध की कल्पना अनर्थक है। तो द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले द्रव्य नही है और द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले द्रव्यत्व भी नही है क्योकि द्रव्य के सम्बन्ध बिना द्रव्यत्व नाम कैसे बोलेंगे? वह चीज क्या है? तो जो यहाँ माने कि द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य कहलाता है तो उसके यहाँ न द्रव्य सत् रहेगा और न द्रव्यत्व सत् रहेगा, तो इस प्रकार असत् का सम्बन्ध हो ही नही सकता है, और कथञ्चित मान लो कि द्रव्य और द्रव्यत्व ये सम्बन्ध से पहले भी सत् हैं तो जब ये अलग-अलग पडे हुये हैं तब द्रव्य मे द्रव्यत्व की शक्ति नही है। द्रव्यत्व मे द्रव्यत्व की शक्ति नही है। सम्बन्ध से पहले कदाचित सत् भी मान लें तो वे दोनो शक्तिहीन ही रहे। तो जब यह स्वय शक्तिहीन है तो इसका सम्बन्ध होने पर भी उत्पादन शक्ति नही हो सकती है। जैसे कि जन्म के अन्धे दो पुरुष हैं तो वे अलग-अलग कुछ देख नही सकते और उनको इकट्ठे भी बैठाल दिया जाये तो भी वे देख न सकेंगे, क्योकि उनमें देखने की शक्ति है ही नही, तो मिलकर भी शक्ति कहाँ से आयेगी? ऐसे ही द्रव्य और द्रव्यत्व मे जब शक्ति नही है तो दोनो का सम्बन्ध होने पर भी वह व्यवहार न बन सकेगा। वह उत्पाद न बन सकेगा, याने द्रव्यत्व बना पडा हुआ द्रव्य द्रव्यपने का काम कैसे कर सकेगा? द्रव्य के बिना पडा हुआ द्रव्यत्व अपने द्रव्यपना का क्या व्यवहार बना सकेगा? यदि द्रव्यत्व के सम्बन्ध के पहले भी द्रव्य अपने मे द्रव्य का व्यवहार करा सके तो सम्बन्ध की अवश्यकता ही क्या रही और द्रव्यत्व की कल्पना ही निरर्थक रही।

द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले असत् रहे द्रव्य व द्रव्यत्व मे सम्बन्ध मानने का अज्ञानमय दुराग्रह—द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले यदि द्रव्य सत् स्वरूप भी होता तो द्रव्यत्व का सम्बन्ध मानना उचित होता, किंतु द्रव्य स्वत सत् भी तो नही है, क्योकि इन शकाकारो ने द्रव्य को सत् सत्ता के समवाय से माना है। अब द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले द्रव्य सत् है ही नही, असत् रहा तो उस असत् मे सत्ता का समवाय भी कैसे पहुँच जायेगा? अगर असत् मे सत्ता का समवाय होने लगे तो जो असत् कल्पित है खरविषाण आकाश पुष्प इनमे भी सत्ता का समवाय सम्बन्ध हो जाना चाहिये। तो लो कितनी विडम्बना है। सत् अलग है, द्रव्य अलग है, द्रव्यत्व अलग है। उनके सम्बन्ध से फिर पदार्थ का व्यवहार है। कितने आश्चर्य की बात है। सीधा जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा न मानकर

उनके खण्ड करना, विभाग बनाना यह कहाँ का न्याय है।

भिन्न माने गये द्रव्यत्व का गुण कर्म सामान्य आदि सब मे सम्बन्ध होने का प्रसग—और भी देखिये – द्रव्यत्व सामान्य सर्वगत है, ऐसा शकाकार ने माना है। अत. यदि अतदात्मक द्रव्य मे वह द्रव्यत्व समवाय सम्बन्ध से रहता है तो गुण और सामान्य आदिक मे भी द्रव्यत्व को समवाय सम्बन्ध से रह जाना चाहिये, याने द्रव्य अलग है, द्रव्यत्व अलग है, तो इसके मायने यह ही तो हुआ कि द्रव्य द्रव्यमय नहीं है। तो जो द्रव्यत्वमय नही है ऐसा द्रव्य मे द्रव्यत्व का तो समवाय सम्बन्ध बन जायेगा और द्रव्यत्वमय गुण भी नही है। कर्म भी नही है, उनमे द्रव्यत्व का सम्बन्ध न बने, इसका कारण तो बताये कोई। याने द्रव्यत्व का सम्बन्ध द्रव्य मे ही क्यो होता है ? द्रव्य का सम्बन्ध गुण आदिक मे क्यो नही हो जाता, जब कि द्रव्य द्रव्यत्वमय नही, गुण भी द्रव्यत्वमय नही है। तो द्रव्यत्व का सम्बन्ध जुटाने के लिये द्रव्य और गुण एक ही समान हो गए। यदि शकाकार यह कहे कि द्रव्य तदात्मक है याने वह द्रव्यत्वमय है इस कारण द्रव्य मे ही द्रव्यत्व का समवाय होता है तो उत्तर यह है कि जब द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले द्रव्य तादात्मक रहा, द्रव्यत्वमय रहा तो अब द्रव्यत्व के समवाय की कल्पना करना बिल्कुल निरर्थक है।

भिन्न द्रव्यत्व का समवायी कारण द्रव्य को मानने की असिद्धि—अब शकाकार कहता है कि द्रव्यसमवायी कारण है इस कारण द्रव्यत्व का समवाय द्रव्य मे ही होता है, गुण मे नही, खरविषाण आदिक असत् मे नही। उत्तर यह है कि द्रव्यत्व के सम्बन्ध से पहले जब द्रव्य का कोई स्वरूप ही न बना तो फिर द्रव्य का समवायी कारण कैसे कहा जा सकता ? यदि स्वरूपरहित द्रव्य समवायी कारण माना जाय तो खरविषाण आकाश पुष्प आदिक को भी समवायी कारण क्यो नही माना जाता ? क्योकि जब स्वरूप नही है तो उसका कुछ तथ्य भी नही है,. कदाचित यह शकाकार कहे कि खरविषाण आदिक तो असत् है, गधे का सीग कुछ है ही नही, तो असत् होने से वह समवायी कारण नही हो सकता। तो अर्थ इसका यह है कि असत् तो शकाकार का द्रव्य भी है क्योकि उनके सिद्धात मे द्रव्य स्वय असत् नही, किंतु सत्ता के समवाय से असत है। जैसे यहा द्रव्यत्व के समवाय से द्रव्य बता रहे हो ऐसे ही सत्ता के समवाय से उसको सत् बताया था। तो जब सत्ता का समवाय नही है उस स्थिति मे द्रव्य असत ही तो रहा, सो यही समस्या यहाँ रहती कि द्रव्य असत् है तो वह द्रव्य का समवायी कारण कैसे हो सकता ? साराश यह है कि कुछ भी कारण सोचे जिस कारण से द्रव्यत्व का द्रव्य ही समवायी कारण माना जाये, गुण कर्म आदिक न माने जायें तो जिस कारण से द्रव्य का समवायी कारण माना उस ही कारण से यह क्यो नही मान लेते कि द्रव्य का निज स्वरूप ही आत्मा है याने द्रव्यत्वमय द्रव्य है। द्रव्य के धर्म को द्रव्यत्व कहते है और उस ही द्रव्य स्वरूप से द्रव्यो का व्यवहार होता है। क्यो इतनी टेढी लाइन चलते जा रहे हैं कि द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य होता है और फिर एक झूठ को ठीक करने के लिये साथ मे ५० झूठ बोले जाये ? तो सीधा ही मान लेना चाहिये कि द्रव्य का यह स्वरूप अनादि है। पारिमाणिक है, द्रव्य से बाहर कोई द्रव्यत्व नाम का तत्त्व नही है कि जिसके सम्बन्ध से इसको द्रव्य कहा जाये।

द्रव्य को द्रव्यत्व का आधार बताकर द्रव्य को समवायी कारण मानने की कल्पना की निरर्थकता—शकाकार कहता है कि द्रव्य एक ऐसी विशेषता है कि जिसके कारण द्रव्य ही द्रव्यत्व का समवायी कारण होता है। गुण कर्म आदिक समवायी कारण नही होते और इसी वजह से द्रव्यत्व

समवाय सम्बन्ध से द्रव्य मे ही रहता है, अन्य मे नही रहता, और वह विशेषता है आधार। द्रव्यत्व का आधार द्रव्य है इस कारण द्रव्यत्व का समवायी कारण द्रव्य रहा। इसका समाधान यह है कि द्रव्य मे द्रव्य का आधार यह शकाकार सिद्ध नही कर सकता, क्योकि द्रव्य स्वत सिद्ध ही नही। जो स्वत. सिद्ध हो वही तो किन्ही आधेयो का आश्रय हो सकता है। जैसे जल आदिक का आश्रय घट है तो घट कोई चीज है तो वहाँ जल आधेय हो गया, ऐसे ही द्रव्यत्व कोई वस्तु नही है तो द्रव्यत्व का आधार कैसे बन जायेगा ? तो द्रव्यत्व बिना द्रव्य क्या चीज रही ? और अगर द्रव्यत्वमय है तो फिर द्रव्यत्व के सम्बन्ध की कल्पना ही क्यो करते ? तो जैसे आधार कह रहे शकाकार उसका सिद्धि ही नही कर सकते, फिर द्रव्यत्व का आधार कैसे बनेगा ?

भिन्न-भिन्न द्रव्य व द्रव्यत्व की कल्पना करने वालो के "द्रव्य" शब्द बोलने का भी अशक्यपना—अब दूसरी बात सुनो कि यह शकाकार 'द्रव्य' इतना शब्द भी नही बोल सकता, क्योकि द्रव्यत्व अलग है, द्रव्य अलग है तो द्रव्यत्व के बिना अन्य कुछ भी द्रव्य कैसे कहा जा सकता है ? तो जो लोग द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य मानते हैं उनको तो द्रव्य शब्द बोलना भी न चाहिये, बोला ही न जा सकेगा। कैसे ? सो सुनो—उसको द्रव्य कैसे कहते हैं ? द्रव्यत्व का अभेद है इस कारण द्रव्य कहते हो या द्रव्यत्व तो द्रव्य से भेद रूप से रहता है। इन दो पक्षो मे से क्या स्वीकार करते हो ? यदि कहो कि द्रव्यत्व का द्रव्य मे अभेद है और उससे द्रव्य नाम पड गया है तो सुनो—यदि किसी अन्य के सम्बन्ध से, द्रव्यत्व के सम्बन्ध से वहा द्रव्य नाम बोलते हो तो सम्बन्ध होने से द्रव्यत्व नाम कहो, द्रव्य नाम क्यो कहते ? जैसे लाठी से सहित पुरुष लाठी वाला कहा जाता है ऐसे ही द्रव्यत्व से सहचरित कुछ भी 'द्रव्यत्व' इस नाम से कहा जाना चाहिये। 'द्रव्य' इस शब्द से न कहा जाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे शकाकार यदि ऐसा कहे कि द्रव्यत्व शब्द का वाच्य जैसे द्रव्यत्व है ऐसे ही द्रव्यत्व का वाच्य द्रव्य भी है। तब द्रव्यत्व के सम्बन्ध से उसे द्रव्य का भी व्यवहार हो सकता है। ऐसा कहना शकाकार का यो युक्त नही है कि यदि द्रव्यत्व की द्रव्य सज्ञा स्वत मान ली गई तो द्रव्य को स्वत मानने मे क्यो असतोष होता है याने यह सज्ञा स्वत मान लेना चाहिये। यदि किसी अन्य पदार्थ के सम्बन्ध से 'द्रव्य' यह नाम माना जाये तो फिर वह ही दोष आयेगा, जैसे कि अब तक देते आये है। वह अभेद है या भेद है, दोनो की सिद्धि नही हो सकती है। फिर एक बात और भी सोचो कि द्रव्यत्व का वाच्य द्रव्य नाम माना शकाकार ने और द्रव्यत्व भी माना, तो जैसे 'द्रव्य' इस सज्ञा की हठ कर रहे हैं ऐसे ही उसे द्रव्यत्व भी क्यो नही बोल डालते।

द्रव्य व द्रव्यत्व का व्यपदेश भेद मूलक मानने की आरेका का समाधान—अब यदि शकाकार भेद मूलक व्यपदेश माने अर्थात् जैसे लाठी वाला ऐसा कहने मे लाठी अलग मालूम होती है और लाठी वाला पुरुष अलग मालूम होता है। इस शब्द से दो का ज्ञान होता है कि ये जुदे हैं पुरुष और लाठी, फिर सम्बन्ध से लाठी वाला कहा। तो ऐसा भेद मूलक अगर द्रव्य सज्ञा मानते हो तो उसे द्रव्य न कहना चाहिये किन्तु द्रव्यत्व वाला। जैसे लाठी के सम्बन्ध से लाठी वाला कहा जाना चाहिये। 'द्रव्य' यह न कहा जाना चाहिये, यदि शकाकार यह समाधान देने का प्रयत्न करे कि जैसे शुक्ल गुण के सम्बन्ध से कपडा भी शुक्ल कहा जाता, शुक्लवान कोई नही कहता, यह कपडा शुक्ल है। ऐसा कोई नही कहता कि यह कपडा शुक्ल वाला है। तो जैसे शुक्ल गुण के योग से कपडे को भी शुक्ल कहा जाता वहा वाला साथ मे कोई नही लगाता और है वहाँ भेद। कपडा अलग नही है,

शुक्ल गुण अलग नही है, कपडा ही शुक्ल है तो उस अभेद मे भी वाला शब्द का प्रयोग हुआ। संस्कृत मे कहते हैं इसे मतुप् प्रत्यय, जैसे बुद्धिमान हिन्दी मे कहेंगे बुद्धिवाला। तो शकाकार यह कह रहे हैं कि जैसे शुक्ल पट मे शुक्ल गुण के सम्बन्ध से शुक्ल कहा जाता है, वहाँ वाला शब्द का प्रयोग नही होता ऐसे ही द्रव्यत्व गुण के सम्बन्ध मे यह द्रव्य कहा जायेगा, द्रव्यत्व वाला ऐसा वाला शब्द का प्रयोग न होगा। उत्तर यह है कि शकाकार का यह समाधान करना निष्फल चेष्टा है, क्योकि व्याकरण मे गुणवाची शब्द से तो मतुप् प्रत्यय का लोप माना है सो शुक्ल पट मे मतुप् प्रत्यय बोले बिना ही तो काम चल गया पर यह भी तो समझें कि शुक्ल द्रव्यवाची भी है और गुणवाची भी है। तो द्रव्यवाची होने मे वहाँ मतुप् की जरूरत नही है, किन्तु यह द्रव्यत्व शब्द गुणवाची नहीं है इसलिये द्रव्यत्व का सम्बन्ध लगाकर मतुप् प्रत्यय बोलना ही पडेगा, फिर बोला—द्रव्यत्व वाला। और ऐसा भी नही है कि द्रव्यत्व मे से तो हो जाये जो सम्बन्ध के कारण इसलिए झट यह व्यपदेश हो नही सकता।

भेदैकान्तवाद मे "द्रव्यत्व" शब्द बनने की असमवता—एक बात यह भी सोचना चाहिये कि द्रव्यत्व शब्द बना कैसे लिया गया है। द्रव्य शब्द से भाव अर्थक त्व प्रत्यय लग ही नही सकता, क्योकि वे यह बतायें कि द्रव्यत्व का भाव द्रव्येत्व है सो वह भाव द्रव्य से क्या अभिन्न है या भिन्न है ? यदि भाव द्रव्यो से अभिन्न है तो मायने वह भाव द्रव्य का ही आत्म स्वरूप हुआ। सो अनादि पारिणामिक द्रव्य रूप ही कहलाता है। तो द्रव्य से द्रव्यत्व भिन्न रहा नही, फिर द्रव्यत्व के समवाय की कल्पना ही खत्म हो जाती। यदि शकाकार कहे कि द्रव्य का भाव द्रव्य से भिन्न है तो वह द्रव्य का कैसे कहा जा सकता ? द्रव्य से भिन्न अनेक पदार्थ पडे हैं, लेकिन वे एक द्रव्य के तो न कहलायेंगे। जो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं उन्हे यह नही कहा जा सकता कि यह इसकी चीज है, और भी समझिये। जिस प्रकार द्रव्य का भाव द्रव्यत्व माना जाता है तो द्रव्यत्व का भी भाव होना चाहिये। यदि उसमे एक त्व और लगा दिया जाये 'द्रव्यत्वत्व' फिर उसका भी भाव तो यो त्व लगाते जाइये, उसका कही विराम ही न हो पायेगा, अनवस्था दोष आता है। यदि कोई कहे कि द्रव्यत्व का कोई भाव नही होता इस कारण एक त्व लगाने की जरूरत नही। तो जिसका कोई भाव नही है वह तो स्वभाव शून्य कहलायेगा। द्रव्यत्व का भाव नही तो द्रव्यत्व भी कुछ न रहा। स्वभाव शून्य होने से द्रव्यत्व का अभाव हो जायेगा।

नित्य एक निरवयव द्रव्यत्व का पृथिवी जल आदिक सब पदार्थों में सम्बन्ध की असिद्धि—अब शकाकार यह बतलाये कि जिस द्रव्यत्व के समवाय से द्रव्य कहा जा रहा है वह द्रव्यत्व शकाकार ने माना नित्य एक निरवयव, तो वह द्रव्यत्व अनेक पृथ्वी आदिक मे कैसे रह सकता है ? द्रव्यत्व एक है और वह पृथ्वी मे भी है, जल मे भी है। तो पृथ्वी पडी किसी जगह, जल है दूर। पत्थर मे है, आदमी मे है। तो ये भिन्न-भिन्न पदार्थों मे एक द्रव्यत्व कैसे रह सकता। द्रव्यत्व कही टूट तो न जायेगा कि बीच मे द्रव्यत्व न रहा। तो द्रव्य एक नित्य पृथ्वी आदिक मे सम्भव नही। पृथ्वी आदिक मे माना ही है कि द्रव्यत्व तो एक है पर वह कहलाता है समस्त पदार्थों मे तब तो वह रूप आदिक की तरह द्रव्यत्व भी अनेक बन जायेगा। जैसे पृथ्वी मे जो रूप है वह पृथ्वी का है, जल मे जो रूप है वह जल का है, ऐसे ही पृथ्वी में द्रव्यत्व पृथ्वी का है, पत्थर आदिक मे द्रव्यत्व पत्थर आदिक का है, काठ मे द्रव्यत्व काठ आदिक का है। तो यो द्रव्यत्व अनेक तरह का हो जायेगा।

अमहत् द्रव्यत्व को सर्वव्यापक सिद्ध करने के लिये आकाश का दृष्टान्त देने की असगतता— यदि शकाकार ऐसा कहे कि जैसे आकाश अनेक द्रव्यो को व्याप करके रहता है ऐसे ही द्रव्यत्व अनेक द्रव्यो को व्याप करके रहता है। आकाश भी तो नित्य एक निरवयव है और वह सब पदार्थों मे व्यापकर रहता है, ऐसे ही द्रव्यत्व भी सब द्रव्यो मे व्यापकर रह लेगा सो यह बात यो नही बनती कि आकाश तो महापरिमाण वाला है। उसका तो एक साथ अनेक द्रव्यो को व्यापन करना बन जायेगा, परन्तु द्रव्यत्व सामान्य मे यह बात नही। एक व महापरिमाण वाला आकाश तो सबको व्यापता है किन्तु गुण तो द्रव्य मे रहते हैं तो अमहत् द्रव्यत्व सबको कैसे व्याप सकता है। यदि शकाकार यह कहे कि एकत्व सख्या के गुण की तरह उपचार से द्रव्यत्व महापरिमाण वाला बन जायेगा सो यह बात यो ठीक नही कि यह तो सब असिद्ध के द्वारा ही सिद्ध करने का प्रयास चल रहा है क्योकि उपचरित पदार्थ मुख्य कार्य नही कर सकता। आकाश तो अनन्त प्रदेश वाला है सो प्रदेश भेद होने से आकाश का सर्वत्र वर्तन बनता है। सब द्रव्य उसमे व्याप जाते हैं, किन्तु द्रव्यत्व मे तो यह बात नही है। अनेक कपडो मे जैसे रंग भिदाया गया, मानो नीले रग से कपडा रगा गया तो वहा वह पीला द्रव्य एक नही हैं। कपडे का जितना विस्तार है उसका एक-एक अश मे अलग-अलग रग पडा हुआ है, ऐसे ही द्रव्यत्व का सम्बन्ध बनाया जाये तो द्रव्यत्व सबमे अलग-अलग ही कहलायेगा। वह एक नित्य निरवयव नही हो सकता।

भिन्न द्रव्यत्व की सिद्धि के लिये असंगत वचन बोलने की व्यर्थ माथापच्ची—अब यहा शकाकार एक तर्क उपस्थित करता है कि जैसे अग्नि की उष्णता सिद्ध करने के लिये कोई दृष्टान्त नही मिल रहा, फिर भी यह खूब समक्ष में है कि अग्नि स्वभाव से उष्ण है, तो दृष्टान्त न मिलने पर भी अग्नि की उष्णता, स्वभाव से है, यह बात माननी पडती है, इसी प्रकार एक पदार्थ अनेक जगह रहता है ऐसा सिद्ध करने मे दृष्टान्त न भी मिले तो भी एक स्वभाव से सिद्ध समझ लेना चाहिये। तो द्रव्यत्व की बात कही जा रही कि द्रव्यत्व एक है और वह एक होकर निरवयव और नित्य होकर भी अनेक जगहो मे उसकी वृत्ति है पर उसका दृष्टान्त नही मिलता सो न मिले दृष्टान्त, तो भी स्वभावत यह सिद्ध हो जायेगा, जैसे कि अग्नि की गर्मी स्वभावत सिद्ध हो जाती है. ऐसा शकाकार का तर्क करना भी असगत है, क्योकि दृष्टान्त के अभाव मे भी काम सिद्ध होता है, इसको सिद्ध करने के लिये आपने एक दृष्टान्त स्वतन्त्र दिया है इसलिये स्ववचन विरोध है, दृष्टान्त के अभाव मे भी साध्य सिद्ध होता है इसका निर्णय दृष्टान्त दिये बिना नही कर सकते आप, सो ऐसे ही यहाँ युक्ति के अभाव होने पर भी द्रव्यत्व से अनेक की स्थिति मानते हो तो द्रव्य को ही स्वत द्रव्य क्यो नही मान लेते ? समवाय कोई सम्बन्ध नही है, सम्बन्ध तो भिन्न-भिन्न पदार्थों मे होता है। शेष तो तादात्म्य है। द्रव्य ही द्रव्यत्व धर्म मे तन्मय है फिर समवाय की कुछ आवश्यकता नही। सयोग सम्बन्ध मे भिन्न पदार्थो का सयोग बनता है और सयोग शब्द से वाच्य सयोग बराबर समझ मे आता है, उसकी आदि है, पर द्रव्य मे द्रव्यत्व का प्रारम्भ नही है कि कब से द्रव्य मे द्रव्यत्व आया ? त्रिकाल द्रव्य है, द्रव्यत्व है, वह द्रव्य के ही स्वरूप को द्रव्यत्व कहा है, सो द्रव्य को अनेक का सम्बन्धी मानने का परिश्रम व्यर्थ करते हो, द्रव्य को ही स्वतः द्रव्य क्यो नही मान लेते ?

सर्वथा एकान्त पक्ष मे "जो गुणों को प्राप्त हो सो द्रव्य है" इस लक्षण की अनुपपत्ति— अब शकाकार कहता है कि द्रव्यका लक्षण यह है सही गुण सद्राव द्रव्य, अर्थात् जो गुणो को प्राप्त हो

वह द्रव्य कहलाता है। इसके सम्बन्ध मे समाधान यह है कि गुणो को प्राप्त होना सो द्रव्य है। इसमे यह बतलाओ कि वे गुण द्रव्य से अभिन्न हैं या भिन्न हैं। जिन गुणो को प्राप्त करने वाला द्रव्य है वे गुण और ये द्रव्य ये भिन्न है या अभिन्न हैं ? यदि गुणो से द्रव्य को अभिन्न मानोगे तो यह भी द्रव्य कर्ता है ऐसा कर्ता रूप कर्म से बोल न सकेंगे। अभेद पक्ष मे तो कोई बात एक ही होती है, दो नही होती, दो हैं तो भेद है, याने गुणो से द्रव्य को अभिन्न मानने पर या तो द्रव्य ही रहेगा या गुण रहेगे। तो यदि यह कहे कोई कि गुण ही रह जाये तो इसमे क्या आपत्ति है ? तो देखिये निराश्रय गुणो का अभाव हो जायेगा। गुण ही रहे, द्रव्य साथ नही तो गुणो का आश्रय तो कुछ रहा नही, तो आश्रयरहित गुण कभी होता ही नही, गुणो का अभाव हो जायेगा। यदि कहा जाये कि द्रव्य ही रहा आवे अभेद करने मे कुछ भी एक बोलना चाहिये ना, चाहे द्रव्य बोले चाहे गुण बोले तो द्रव्य ही बोला जाये वही कहलाता है, तो सुनो। द्रव्य और गुण को अभेद करने पर द्रव्य को ही रहना माना है, गुण रहे नही तो गुण से ही तो लक्षण समझा जाता है, गुण से ही स्वभाव जाना जाता है। गुण तो रहे नही, एक द्रव्य मात्र ही रहा तो यह लक्षण या स्वभाव के बिना उस द्रव्य का कुछ भी अस्तित्व नही रह सकता। सो यदि द्रव्य और गुणो को भिन्न माना जाये याने गुणो को जो प्राप्त करे सो द्रव्य है- ऐसे कथन मे दो बातें ध्यान मे आयी, गुण और द्रव्य, सो उन्हे अगर भिन्न माना जाये तो गुण के बिना द्रव्य की कोई सत्ता नही है और द्रव्य के बिना गुण की भी सत्ता नही है। तो स्वरूपरहित होने से दोनो का ही अभाव हो जायेगा। इस कारण गुणो का सगम द्रव्य है अर्थात् जो गुणो को प्राप्त होवे सो द्रव्य है। द्रव्य का बाहरी लक्षण सही नही होता।

जो गुणो के द्वारा प्राप्त किया जाय सो द्रव्य है, इस लक्षणकी सर्वथा एकांत पक्ष में अनुपपत्ति- यहाँ शकाकार कहता है कि द्रव्य का लक्षण हम यह करेंगे—जो गुणो के द्वारा प्राप्त किया जाता है वह द्रव्य कहलाता है। इस शका का उत्तर बताया है कि गुणो को तो निष्क्रिय माना गया है। वैशेषिक दर्शन मे ५वें अध्याय के दूसरे पद मे २१वें, २२वें सूत्र मे बताया हैं कि दिशा, काल और आकाश ये निष्क्रिय हैं क्योकि क्रियावान पदार्थों से विलक्षण है, और इस ही से कर्म और गुण भी निष्क्रिय कहे गये हैं। तो यो जब गुण निष्क्रिय हैं तो वे द्रव्य के प्रति किस तरह से प्राप्त होगे ? यदि यह कहा जाय कि द्रव्य का लक्षण हम यो कर देगे कि जो गुणो को प्राप्त करता है वह द्रव्य है सो यह भी नही बन सकता, क्योकि द्रव्य भी निष्क्रिय है। तो गुणो के प्रति कहे जायेंगे अथवा गुण तो निष्क्रिय माने ही गये हैं। उन गुणो के प्रति द्रव्य कैसे पहुँचेगा ? दूसरी बात यह देखिये कि गुण तो स्वत: असिद्ध हैं। गुण का लक्षण ही नही बन सकता। जहाँ भेदवाद है वहाँ तो द्रव्य गुण किसी का भी लक्षण नही बनता। तो जब स्वत. सिद्ध नही है गुण तो गुण व द्रव्य मे प्राप्यप्रापकभाव कैसे बन सकता। कोई भी मनुष्य अगर ग्राम आदिक को प्राप्त होता है तो स्वत: सिद्ध हैं ना ग्राम आदिक तब ही तो उनको प्राप्त होते हैं। गुण तो स्वत सिद्ध हैं नही तो द्रव्य उनको कैसे प्राप्त करेगे ?

सर्वथैकांतवाद द्रव्य व गुण मे प्राप्यप्रापकभाव की असिद्धि—शकाकार कहता है कि हम गुणो की सिद्धि इस तरह से करते हैं कि जैसे लोक मे कच्चे घडे को पकाने से रग बदलता है तो वहाँ यह कह सकते हैं कि उस घडे ने कालेपन को छोडकर लालपन को प्राप्त किया है। तो लो यो गुणो के द्वारा द्रव्य प्राप्त हो गया। इसका उत्तर यह है कि यदि इस तरह से व्यवहार द्वारा गुण और द्रव्यो की प्राप्ति का सम्बन्ध बन गया तो इसमे पृथक सिद्धपने का प्रसग आयेगा। जो पृथक सिद्ध हो वही

तो प्राप्य प्रापकभाव बनता है। जैसे देवदत्त ने गाँव को प्राप्त किया तो देवदत्त एक पुरुष है, गाँव अपनी जगह है, तो भिन्न सिद्ध है तभी तो पाने की बात बनती है। जब द्रव्य तो ठहरा रहता है और रूपादिक नष्ट होते हैं, पैदा होते हैं तो यही तो सिद्ध हुआ कि द्रव्य और रूपादिक पृथक सिद्ध भये। यदि इनको अभेद माना जाये तो जैसे द्रव्य नित्य है तो ये लाल पीले आदिक गुण भी नित्य होने चाहिये। अथवा जैसे लाल, पीला रग आदिक गुण अनित्य हैं ऐसे ही द्रव्य भी अनित्य होना चाहिए। अत यह लक्षण ही ठीक नही बैठता कि जो गुणो के द्वारा प्राप्त किया जाय सो द्रव्य है या जो गुणो को प्राप्त करता है सो द्रव्य है।

समवायीकारण द्रव्य व गुणों का एकत्र रहने मे विरोध—और भी देखिये—जैसे पडित और मूर्ख मे परस्पर विरोध है। जो पण्डित है वह मूर्ख नही, जो मूर्ख है वह पण्डित नही। इसी तरह समवायी कारण द्रव्य से, रूपादिक को अपृथक माना जायेगा तो वे द्रव्य की तरह न तो उत्पन्न ही होगे और न विनष्ट ही होगे। यदि विनष्ट भी होगे और उत्पन्न भी होगे और द्रव्य स्थिर रहेगा। तो मानना चाहिये कि यह अभेद नही है। भेद रूप से है तब ही तो गुण नष्ट विनष्ट उत्पन्न हुए और द्रव्य ज्यो का त्यो रहा। यहाँ द्रव्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे विचार चल रहा है। वास्तविक बात तो यह है कि प्रत्येक सत् द्रव्य है। और ये सब सत् की विशेषतायें हैं कि उनमे गुण और पर्याय की समझ बनती है और इस समझ के द्वारा उस सत् द्रव्य को पहिचाना जाता है पर समझने की पद्धति मे अभेद को परमार्थ मान लिया उस शकाकार ने इस कारण द्रव्य का लक्षण वहाँ मत मे ठीक नही बैठ रहा। गुण और द्रव्य दो सत् मानकर वहाँ सम्बन्ध बनाना यह सिद्ध नही हो पाता। अगर वह अभेद है तो सम्बन्ध नही बनता और लक्षण यदि गुण और द्रव्य पृथक हैं तो सम्बन्ध नही बनता और लक्षण भी नही बनता। गुणो के द्वारा द्रव्य का प्राप्त होना भेदवाद मे उसी तरह असम्भव है जैसे कि जैसे घट के द्वारा पट का लाभ नही।

सर्वथा भेदभाव मे द्रव्य व गुण मे प्राप्यप्रापकभाव की असिद्धि—अब शकाकार कहता है कि प्राप्यप्रापकभाव भेदभाव मे ही देखा जाता है। जैसे अनुमान बनाते हैं कि धूम से द्वारा अग्नि पहिचानी गई तो जब यहाँ भेद है तब तो लक्ष्य-लक्षण बना। तो द्रव्यो ने गुण को पाया या गुणो ने द्रव्य को पाया, यह बात तब ही बने जब ये दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। अभेद मे प्राप्यप्रापकभाव नही बनता, क्योकि अभेद है, एक ही हैं तो उसमे वृत्ति का विरोध है। जैसे अगुली का अग्र भाग अपने अग्र भाग को छू नही सकता, अगुली का अग्र भाग दूसरे भाग को ही तो छुवेगा या अन्य पदार्थ को। तो जैसे अगुली का अग्र भाग अपने आप को नही छूता क्योकि अभेद हो एक है इसी तरह जो भी एक होगा वह एक दूसरे को प्राप्त नही कर सकता। शका के समाधान मे कहते हैं कि आप का कहना ही आप की बात को काट रहा है। अग्नि और धूम आदिक भिन्न-भिन्न हैं। उनमे लक्ष्य लक्षण भाव बनता है। वह पृथकसिद्ध है यह तो सही है, पर द्रव्य और गुण की पृथक प्रसिद्धि नही है। वे जुदे जुदे सत् नही हैं, क्योंकि भिन्न-भिन्न रूप से ये दोनो पाये नही जाते और फिर जो यह कहा है कि अपने आपमे अपना व्यापार नही होता, सो इसकी भी हठ ठीक नही है। अपने आप मे भी अपना व्यापार होता है। जैसे दीपक अपने आप को प्रकाशित करता है तो खुद ने खुद पर अपना प्रभाव किया ना! और यह बात बिल्कुल सिद्ध है। सभी पहचानते है कि दीपक खुद अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है। अगर दीपक अपने प्रकाश करने मे अन्य दीपक की मदद ले

याने दूसरे दीपक के द्वारा कोई दीपक देखा जाय तो वह दीपक ही न रहा, क्योकि स्वय प्रकाशक नही है ना : जैसे घट, पट आदिक स्वय प्रकाशक नही है तो वे दीपक की अपेक्षा रखते हैं। सो कोई भी दीपक किसी अन्य दीपक की अपेक्षा नही रखता, क्योकि वह स्वय जल रहा है प्रकाशमान है।

स्वात्मवृत्तिका विरोध करने वालो के स्ववचन विरोध—अच्छा, स्वात्मामे वृत्ति का विरोध करने वाले जरा इस तत्त्व के उपदेष्टा शकाकार यह बतलायें कि वह उपदेष्टा अपने आपको जानता है या नही ? यदि नही जानता है तो स्ववचन का विरोध है, क्योकि उन्ही वैशेषिको ने वैशेषिक दर्शन के ६वें अध्याय के पहले बाद के ११वे सूत्र मे बताया गया है कि आत्मा मे आत्मा मन के सयोग विशेष से आत्म प्रत्यक्षता होती है। तो अपने आप को प्रत्यक्ष जानना माना है ना : किन्तु स्वात्मवृत्ति का विरोध करने वाले लोग जानते है और यह नही कह सकते, और यदि आत्मा अपने आपको नही जानता तो असर्वज्ञपने का प्रसग आयेगा, क्योकि यदि यह अपने को ही नही जानता तो अन्य को कैसे जानेगा ? जब स्व पर किसी को भी नही जानता तो सर्वज्ञ कैसे कहलायेगा ? अब यदि यह कहा जाय कि आत्मा अपने आप को जानता है तब तो जो पहले यह कहा था कि किसी पदार्थ का अपने आप मे व्यापार नही होता तो यह कथन गलत हुआ। तब तो यह सिद्ध हुआ कि अपने आप मे भी अपने व्यापार का विरोध नही है। तब द्रव्यात्मक ही पर्यायें हैं। गुण पर्याय द्रव्य सब एक है। सो ये पर्यायें द्रव्य को लक्षित कर लेती हैं अर्थात प्रतिबोध करा देती हैं।

एकान्तवाद मे 'गुणसन्द्राव: द्रव्यम्' इस लक्षण की अनुपपत्ति—अब शकाकार कहता है कि द्रव्य तो गुण का समुदाय मात्र है। गुणसमुदाय से भिन्न अन्य कुछ भी द्रव्य नही है। इस शका का समाधान यह है कि किसी दृष्टि मे बात तो ठीक है, मगर भेद एकान्त मे यह कथन भी बनता नही है। जो यह लक्षण कहा गया है भेदवादियो का कि गुणो का समुदाय द्रव्य है, यह बात यो नही बनती कि फिर कर्ता कर्म का भेद ही नही बन सकता। गुण समुदाय मात्र द्रव्य है, ऐसा कहने पर गुणतो कोई पृथक रहे नही और न समुदाय कुछ अलग है। जब कुछ भेद ही न रहा तो कर्ता कर्म भाव को कैसे कहा जा सकता ? शकाकार कहता है कि नही भेद रहा, अभेद मे भी तो कर्ता कर्मभाव देखा गया है। जैसे दीपक अपने को प्रकाशित करता है तो यहाँ अभेद होने पर भी कर्ता कर्मभाव प्रकट हुआ है। उत्तर मे कहते हैं कि यहाँ पर भी कथञ्चित भेद होना ही चाहिये। दीपक अपने को प्रकाशित करता है, ऐसे कर्ता प्रयोग की हालत मे दीपक एक द्रव्य के स्थानीय है और वह प्रकाश भासुर रूप कर्म के स्थानीय है, सो यदि सर्व प्रकार से इनमे भेद माना जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि समस्त द्रव्य भासुररूप हो जायेंगे और भासुर द्रव्य सदा भासुर रूप वाला ही बना रहे मगर देखो ना कि जिसको दीपक कहते हैं उसमें कालापन भी आ जाता है। कज्जल आदिक उसी से ही पैदा होते है, और सीधी सी बात यह है कि जब गुण और द्रव्य को किसी भी दृष्टि से पृथक नही समझा जा रहा है तो उनके समुदाय की कल्पना भी निरर्थक है।

सर्वथा अभेद या सर्वथा भेद मे गुण समुदाय की अशक्यता—गुण का अर्थ है विशेषण याने द्रव्य की विशेषता जो बताया उसी का नाम विशेषण है और द्रव्य हुआ विशेष्य। गुणी कहो या द्रव्य कहो तो गुणी के बिना गुणो से गुणपना कैसे आ सकता ? और फिर वह गुणो का समुदाय गुणो से यदि अभिन्न है तो यो तो समुदाय ही रहा या गुणी ? और यदि भिन्न है तो यह गुणो का समुदाय है, यह व्यवहार नही बन सकता। और, यदि अवक्तव्य है तो सर्वथा अवक्तव्य होने पर अवक्तव्य

शब्द से भी कथन नही हो सकता, क्योकि यह समुदाय है तो अवक्तव्य नही और यदि अवक्तव्य है तो समुदाय नही। इसका कारण यह है कि जो भी सज्ञा होती है वह विद्यमान पदार्थों मे ही होती है। सर्वथा अवक्तव्य अगर कुछ है तो वह स्वरूपरहित ही है। यदि कहो कि वक्तव्य अर्थात गुण है, समुदाय अवक्तव्य है तो यो यही लक्षण भेद है। समुदाय का ढग और है, वक्तव्य का ढग और है। जब यही भेद बन गया तो समुदाय कैसे बन सकता है? शकाकार की ओर से जो यह प्रस्ताव आया था कि गुणो का समुदाय मात्र को द्रव्य मान लिया जाय सो उनके गुण शाश्वत शक्ति से मतलब नही रखते, किंतु काला, पीला, नीला आदिक पर्यायो को भी गुण कहा करते हैं। ऐसे गुण के समुदाय की बात चल रही थी। अब उसी समुदाय विषयक एक बात और कही जा रही है कि रूपादिक परमाणु को समुदायात्मक द्रव्य माना जाय, जैसे कि घट पट आदिक पदार्थ या इन स्कधो को द्रव्य कहा जाता तो यो रूपादिक परमाणु को मात्र समुदाय द्रव्य है ऐसा मानने पर उस स्कन्ध मे कोई नवीन पर्याय की उत्पत्ति नही हो सकती, क्योकि अणु है अतिन्द्रिय स्वभाव याने इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य नही होते तो परमाणु अपने स्वभाव का उल्लघन न करेगा और अदृश्य परमाणुओ का समुदाय कहा गया है स्कन्ध, तब जो कुछ दिख रहा है यह सब भ्रम कहना पडेगा। अदृश्यो का समुदाय भी अदृश्य ही रहेगा। यदि स्कध प्रतोति से भ्रात माने जाते है तो प्रत्यक्ष और प्रत्यक्षभास मे फिर कोई भेद न रहा और अनुमान तथा अनुमानाभास मे भी कोई भेद न रह पायेगा।

सर्वथैकातवाद मे द्रव्य के भवनयोग्य लक्षण की अनुपपत्ति—अब शकाकार कहता है कि हम द्रव्य का लक्षण भव्य अर्थ मे मानते हैं याने जो द्रवण के योग्य हो, प्राप्ति के योग्य हो उसका नाम द्रव्य है। उत्तर—एकातवादियो के यहाँ द्रव्य सम्भव ही नही है क्योकि जब द्रव्य स्वतः असिद्ध है तो असत् मे भव्य अर्थ कैसे लग सकता है? वैशेषिको के यहा द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, ये सब जुदे-जुदे माने गये हैं। जब द्रव्य गुण आदिक से सर्वथा भिन्न है तो वह असत् हो गया। गुणरहित पर्यायरहित द्रव्य की चीज क्या रही? जब स्वय असत् हो गया तो जो होने योग्य है ऐसा कैसे कहा जा सकता? भवन क्रियाओ का कर्ता असत् नही बन सकता। जो स्वय सत् है उसमे समवाय सम्बन्ध की कल्पना करके स्वरूप की कल्पना करना एक विडम्बना है, ऐसा सम्भव ही नही है। सो गुण समुदाय द्रव्य है, इस पक्ष मे एकातवादियो का समुदाय काल्पनिक है, गुणो का कोई पृथक स्वरूप है हो नही। तो गुण भी असत् द्रव्य भी असत्। वहाँ फिर भवन क्रिया की बात करना तो बिल्कुल ही अनुचित है। हा अनेकातवादियो के गुण समुदाय द्रव्य हैं या भवन योग्य द्रव्य हैं यह सब सिद्ध होता है। क्योकि इसमे कथञ्चित भेद और कथञ्चित अभेद जाना जाता है। अभेद तो है ही क्योकि इसके प्रदेश अलग नही हैं। वही एक सत् है और पर्याय और पर्यायी मे सज्ञा लक्षण आदिक से भेद है, इस कारण सूत्र मे कहे गए पदार्थ द्रव्य हैं सो उसका अर्थ यही है कि ये सब सत् हैं और गुणपर्यायमय हैं।

धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्य की पदार्थता का कथन—यहा कोई ऐसी जिज्ञासा कर सकता है कि धर्म और अधर्म तो आत्मा के गुण हैं। जैसे वैशेषिको मे २४ गुण जो माने गये हैं उनमे धर्म-अधर्म भी गिनाये गये हैं। तो धर्म-अधर्म भो आत्मा के गुण हुये। ये द्रव्य नही माने जा सकते। और कुछ लोग ऐसा कह सकते है कि आकाश भी कोई द्रव्य नही है, आकाश के मायने है मूर्त द्रव्यो का अभाव, याने कुछ न होना उसका नाम आकाश है, किंतु उन दोनो को सोचना अविचारित है।

यहाँ धर्म, अधर्म, गुण, रूप नही किंतु गुणी हैं। जो जीव पुद्गल के गमन और स्थिति में निमित्त कारण मात्र है ऐसे पुण्य पाप को यहाँ नही बताया जा रहा किंतु सद्भूत धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य कहा जा रहा है, जोकि जीव पुद्गल की गति स्थिति मे कारण है। इसी प्रकार आकाश भी तुच्छाभावरूप नही है, किंतु वह भी सद्भूत है गुणवान होने से।

सूत्रपद के वचन के प्रयोग का प्रयोजन—इस सूत्र मे एक पद है द्रव्याणि, और वह भी बहुवचन है, जिससे यह सिद्ध होता है कि पूर्व सूत्र मे कहे गये धर्म अधर्म द्रव्य बहुत है, उन्ही का सामानाधिकरण्य रूप से यह द्रव्य है अर्थात वे सब द्रव्य हैं। यहाँ द्रव्य शब्द नपु सकलिङ्ग मे प्रयुक्त है। वह अजहल्लिङ्ग है अर्थात अपने लिङ्ग को छोड नही सकता। द्रव्य शब्द नपु सकलिङ्ग है सो इससे प्रथमसूत्र मे अजीवकाय का सामानाधिकरण होने से पु लिंग मे प्रयोग है। किंतु यह सूत्र नपु सकलिंग मे प्रयुक्त किया गया है। अब यहाँ तक ४ पदार्थों को द्रव्य बताया गया है। धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल। सो ये चार ही द्रव्य नही है किन्तु और भी द्रव्य हैं। सो उस अन्य का ग्रहण करने के लिये सूत्र कहते हैं।

जीवाश्च ॥ ५—३ ॥

जीव पदार्थ की स्वसवेद्यता—और जीव भी द्रव्य है। जीव को द्रव्य मानने और गिन लेने पर अब तक ५ द्रव्यो का वर्णन हुआ। इसके अतिरिक्त काल भी द्रव्य है किंतु अस्तिकाय न होने से इस काल को यहाँ न कह कर आगे किसी अवसर मे कहा जायेगा। जो चैतन्य प्राण से जीवे उसे जीव कहते हैं और व्यवहारत दस प्राणो से जीवे उसे जीव कहते है। जीव पदार्थ सभी पदार्थों की भांति अनादि अनन्त है। कही पृथ्वी जल आदिक के सयोग से जीव बना हो ऐसा नही है। जीव पदार्थ अमूर्त ज्ञानस्वरूप है, किन्तु इस पर मोह राग द्वेष का आवरण होने से यह अपने आपको नही जान पाता है और इन्द्रिय के द्वार से बाह्य पदार्थों को जानता है और इसी कारण अपना बोध न होने से अनेक पुरुषो को जीवतत्त्व की सत्ता के विषय मे सदेह रहता है, पर बाह्य पदार्थों का लक्ष्य छोडकर जो जान रहा है, जो जानना हो रहा है उस ही का स्वरूप जानूँ, ऐसे आग्रह से जो अपने स्वरूप मे समाधिस्थ होता है वह अपने ही ज्ञान द्वारा अपने को समझ लेता है।

जीवत्व के सम्बन्ध से जीव मानने की कल्पना की असगतता—यहाँ एक शकाकार कहता है कि जीव तो वह है जिसमे जीवत्व का सम्बन्ध हो। यह शकाकार वह ही है जो द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य मान रहा था। यहाँ विशेष पदार्थ की बात चल रही है। तो जीव को भी जीवत्व के समवाय से जीव मान रहे है, किंतु उनका यह कथन सही नही है। जैसा द्रव्य और द्रव्यत्व के सम्बन्ध मे इससे पहले वर्णन किया है उस तरह जानकर यहाँ भी उसका प्रतिषेध समझ लेना चाहिये। शकाकार कहता है कि इसमे जीव है ऐसे ज्ञान का कारण तो जीवत्व का सयोग ही है। यदि जीवत्व का सम्बन्ध न होता तो इसे जीव कैसे कहा जा सकता है ? तो वह शकाकर यहाँ यह पूछने योग्य है कि जो प्रत्यय होता है, ज्ञान होता वह किसी अन्य के सम्बन्ध से होता है। यही तो कहा जा रहा है कि जीवत्व के सम्बन्ध से जीव का ज्ञान होता है, तो यह बतलाओ कि जीवत्व के ज्ञान के लिये फिर किसका सम्बन्ध करना चाहिये ? क्या जीवत्वत्व का सम्बन्ध जोडा जाय ? अगर ऐसा मनोगे तो उसमे भी किसका सम्बन्ध होवे ? फिर त्व मानते जायें, इस तरह तो अनवस्था दोष होगा, और यदि यह कहा जाय कि जीवत्व का प्रत्यय जान स्वय हो जाता है तब यह बात तो न रही कि अन्य के

सयोग से ज्ञान हुआ करता है। और यदि जीवत्व का बोध स्वय अपने आप हो गया तो ऐसे ही जीव का भी बोध सीधा क्यो न मान लिया जाये ? जीव नामक पदार्थ है और उसको समझने के लिये इसमे स्वभाव है, शक्ति है, पर्याय है, जीवत्व है आदिक विवेचन चलता है।

अनादिसिद्ध पारिमाणिक जीव से स्वरूप को भिन्न पदार्थ मान कर बात बनाने का जोग जुगाड़ करने की व्यामूढ़ता—शकाकार कहता है कि जीव मे तो जीवत्व के सयोग से ज्ञान होता है, किंतु जीवत्व का परिचय दीपक की तरह स्वत ही हो जाता है। सो उत्तर यह है कि जैसे जीवत्व मे स्वत प्रत्यय माना प्रदीप की तरह। इसी तरह जीव मे भी स्वत प्रत्यय मानने मे कोई बाधा नही होती। शकाकार यदि ऐसी तर्क करे कि जीव और जीवत्व ये दोनो भिन्न पदार्थ हैं इस कारण उनमे यह समानता नही लायी जा सकती कि जैसे जीवत्व मे स्वत. प्रत्यय होता है ऐसे ही जीव मे भी हो जायेगा। यह तर्क यो ठीक नही कि जीव और जीवत्व भिन्न पदार्थ नही है जो दर्शन ज्ञानमय है, चैतन्य स्वरूप है वह जीव है और उसके स्वभाव को जीवत्व कहते हैं और फिर शकाकार के मत से तो दूसरे पदार्थ का धर्म दूसरे पदार्थ मे आ जाता है क्योकि इन एकान्तवादियो ने ऐसा कहा है कि सत्ता लक्षण यह है जो द्रव्य गुण पर्याय मे सत् प्रत्यय का कारण रूप बनना है उसका नाम सत्ता है। सो यह भी एक कल्पना ही है। यदि सत्ता का सम्बन्ध होने पर भी सत् प्रत्यय हेतुता द्रव्य, गुण मे नही किंतु सत्ता मे होती है तब द्रव्य गुण असत् ही कहलायें तो जीवत्व के सम्बन्ध से जीव कहलाता है। वह बात किसी तरह नही कही जा सकती। जीव स्वय सत है और उसके परिचय के लिये जीवत्व शक्ति पर्याय यह सब विदित की जाती है। वास्तविकता यह है कि जीवन क्रियाओ से परिणत जो एक द्रव्य है वह जीव है और वह अनादि से है, स्वभावभूत है, सत् है।

द्रव्यों की इयत्ता का नियम—एक शकाकार यहाँ प्रश्न करता है कि द्रव्य का अस्तित्व तो द्रव्य लक्षण के सम्बन्ध से है, क्योकि खुद ही ग्रन्थकार आगे सूत्र कहेंगे—'उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्तसत्' तो यह तो हुआ सत् का लक्षण। और उस लक्षण का सम्बन्ध होने से यह कहलाया द्रव्य। फिर उस लक्षण के योग से ही धर्मादिक मे द्रव्यपना सिद्ध होता है, फिर इस प्रकृत सूत्र के बनाने से क्या लाभ है ? उत्तर मे कहते हैं कि यह सूत्र एक नियम बताने के लिये प्रतिपादित हुआ है। क्या नियम ? कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और आगे कहा जायेगा काल उस समेत ये सब ६ ही द्रव्य हैं। कम या अधिक नही हैं। ६ द्रव्यो का मतलब है कि ६ प्रकार के द्रव्य हैं। द्रव्य तो अनन्तानन्त हैं किंतु सभी द्रव्य असाधारण गुण की दृष्टि से ६ प्रकारो मे आते हैं। सो द्रव्य ६ ही हैं, अन्य एकान्तवादियो के द्वारा माने गये दिशा आदिक अलग से द्रव्य नही हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व द्रव्यमन की एक पुद्गल द्रव्यरूपता व भावमन की आत्मपर्यायरूपता—वैशेषिको ने ९ द्रव्य माने—(१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) मन (६) आत्मा (७) दिशा (८) आकाश और (९) काल। इसमे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये तो पुद्गल द्रव्य ही हैं क्योकि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाला होने से। पुद्गल का लक्षण यह ही है कि जिसमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पाये जायें वह पुद्गल है। सो इन चारो मे ये चारो ही बातें पाई जाती हैं। भले ही किसी मे कोई गुण व्यक्त है, कोई नही है, पर हैं सभी मे। जैसे वायु मे रूप गुण किसी को नही मालूम होता, पर वहाँ रूप है, क्योकि स्पर्श वाला है ये चारो गुण एक साथ ही रहा करते हैं। इन ४ मे कोई एक गुण समझ मे आये तो समझना चाहिये कि यहाँ चारो ही गुण हैं। भले ही कोई

आकाश मे किया जाता है। दिशा कोई अलग पदार्थ नही है, किन्तु सूर्य के उदय आदिक की अपेक्षा आकाश प्रदेश पक्तियो मे यहाँ यह दिशा है ऐसा व्यवहार बनाया जाता है। जैसे सूर्य उदय, जैसे आकाश प्रदेश पक्तियो से होता है उस ओर मुख करके खडे हो जायें तो जिस ओर मुख है वह पूर्व है, जिस ओर पीठ है वह पश्चिम है, जिस ओर दाहिना हाथ है वह दक्षिण है और जिस ओर बाँया हाथ है वह उत्तर है। तो सूर्य के उदय आदिक की अपेक्षा ये सब दिशाओ के व्यवहार चलते हैं। इस तरह ९ द्रव्यो मे अनेक द्रव्य जीव और पुद्गल मे ही अन्तर्भाव हो गये और धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य की उसमे चर्चा ही नहीं है। तो द्रव्य ६ ही हैं, कम या अधिक जाति के द्रव्य नही हैं।

बहुवचनान्त प्रयोग से जीवो की अनन्तता का समर्थन—जीवाश्च, इस सूत्र मे जीवा जो वह बहुवचन प्रयोग है वह जीवो की विविधता बताने के लिये है। जीव गणना मे भी अनन्तानन्त हैं और जाति की अपेक्षा भी नाना प्रकार के हैं, जैसे जीव ससार भी है और दिखता भी है। ससारी जीव, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद कषाय आदिक मार्गणाओ की अपेक्षा भिन्न-भिन्न प्रकारो मे पाये जाते हैं। जैसे कोई नारकी है, कोई तिर्यन्च है, मनुष्य है, देव है, कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो इन्द्रिय आदिक है किसी के कैसा ही योग है, किसी के कैसो ही कषाय है आदिक अनेक भेद मिथ्यात्व आदिक गुण स्थानो की अपेक्षा भी ससार नाना प्रकार के हैं, सूक्ष्म बादर एकेन्द्रिय आदिक १४ जीव समासो की अपेक्षा भी अनेक प्रकार के हैं। मुक्त जीवो मे भी किन्ही अपेक्षाओ से भेद पड जाता है। जैसे एक ही समय मे गुण सिद्ध हुये। दो समय मे दो समय के अन्तर से गुण सिद्ध हुये। ऐसे काल की अपेक्षा भेद किये जा सकते कि अमुक सिद्ध इस जगह से हुये हैं। या मुक्ति से पहले जो शरीर था उस शरीर के आकार उनका प्रमाण अब भी है। उस अवगाहना के भेद से भी इनमे भेद परखा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव नाना प्रकार के है, यह बताने के लिये जीव , ऐसे बहुवचन का प्रयोग किया है।

अनन्त पूर्वोक्त व प्रकृत सूत्र को मिलकर एक सूत्र न बनाने का प्रयोजन—यहाँ शकाकार कहता है कि इस सूत्र से पहले द्रव्याणि सूत्र आया था। वहाँ ही जैसे जीवा' यह प्रयोग और कर देते तो अलग सूत्र न बनाना पडता द्रव्याणि जीवा' यह सूत्र बन जाता, लघुता भी हो जाती। उत्तर इसका यह है कि यदि इन दोनो का मिलाकर ऐसा ही एक सूत्र कर दिया जाता तो यह अर्थ होता कि जीव द्रव्य है, पर अन्य भी द्रव्य हैं, यह सिद्ध न होता। शायद यह कहो कि द्रव्याणि बहुवचन है इस कारण धर्मादिक द्रव्य भी ग्रहण मे आ जाते। तो यह भी कहना यो ठीक नही कि बहुवचन होने पर भी चू कि जीवा यह भी तो बहुवचन है, सो द्रव्याणि बहुवचन माना जाता, फिर भी यह ही अर्थ होता कि समस्त जीव द्रव्य हैं। यदि यह कहा जाये कि अधिकार तो धर्मादिक द्रव्यो का चल रहा है। सर्वप्रथम सूत्र मे बताया ही गया था तो दोनो का एक सूत्र बनाने पर भी अधिकार के कारण जीवो का भी ग्रहण होता, और जीव उसके साथ हैं ही। यो सभी ग्रहण मे आ जाते। उत्तर इसका यह है कि द्रव्याणि शब्द जीव से बध गया एक सूत्र बनाने से। सो जीव की ही द्रव्य सज्ञा बनती। अधिकार की बात नही मानो जा सकती। इस प्रकार यहा तक धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव इन पञ्च अस्तिकायो का इस अध्याय मे निर्देश किया गया है। अब इन द्रव्यो की विशेषता बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥५-४॥

द्रव्यों की नित्यता—ये सब द्रव्य नित्य अवस्थित हैं और अरूपी हैं। इनके तीन विशेषण भी किये जा सकते हैं। उक्त सब द्रव्य नित्य है, अवस्थित हैं और अरूपी हैं। यहा नित्य शब्द ध्रौव्य का वाची है ? ध्रुव धातु से ध्रुव अर्थ मे त्य प्रत्यय हो जाता है। उससे नित्य बनता है। नित्य मायने शाश्वत, सदैव रहने वाला। किस प्रकार से सदैव रहने वाला ? ऐसी जिज्ञासा होने पर एक सूत्र आगे कहा जायेगा—तद् भावाव्यय नित्य। उसके आधार से समझायेंगे। द्रव्य जिस स्वरूप से उपलक्षित है याने उसका जो असाधारण गुण है उस स्वरूप से उस भाव का विनाश न होना नित्यपना कहलाता है। जैसे धर्म द्रव्य, गतिहेतुत्व लक्षण वाला है, अधर्म द्रव्य स्थितिहेतुत्व लक्षण वाला है, आकाश अवगाहनहेतुत्व लक्षण वाला है, पुद्‌गल रूपादिक गत्व लक्षण वाला है और जीव चैतन्यस्वरूप बताया गया है। तो द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से इस स्वभाव से और अस्तित्वादिक गुणो से कभी भी व्यय को प्राप्त नही होते अर्थात् नष्ट नही होते। इस कारण ये सब द्रव्य नित्य हैं।

द्रव्यो की अवस्थितता—अवस्थित शब्द का क्या अर्थ है ? धर्मादिक ६ द्रव्य हैं, कभी भी ६ सख्या का व्याघात नही है। उतना ही है। यह बताने के लिये अवस्थित शब्द कहा है। पदार्थ जितने हैं उतने ही अवस्थित है। जाति अपेक्षा भी और व्यक्ति अपेक्षा भी। सत् कभी असत् नही होता। असत् कभी सत् नही होता। अथवा प्रदेश की अपेक्षा देखें तो जिसके जितने प्रदेश कहे गये हैं उतने ही होते हैं, उनका भी विनाश नही होता। जैसे धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, लोकाकाश एक जीव इनके समान असख्यात प्रदेश हैं। अलोकाकाश के अनन्त प्रदेश हैं। आकाश दोनो ही एक ही हैं पर सम्बन्ध भेद से भेद किया है। पुद्‌गल मे परमाणु की अपेक्षा एक ही प्रदेश है पर उपचार से शक्ति अपेक्षा स्कन्ध अपेक्षा अनन्त प्रदेशीपना है। तो इन प्रदेशो का भी उल्लघन न होने से अवस्थित कहा है। यहाँ शकाकार कहता है कि अवस्थित का जो कुछ भी भाव होता है वह तो नित्य शब्द के कहने से ही जान लिया गया है। फिर अवस्थित शब्द यहाँ न कहना चाहिये, क्योकि नित्यपने का उल्लघन करके अवस्थितपना नही होता। अतएव नित्य शब्द कह देने पर अवस्थित शब्द की आवश्यकता नही रहती। इसका उत्तर यह है कि अवस्थित शब्द का भाव यह है कि द्रव्य मे अनेक परिणाम होने पर भी उनके असाधारण स्वभाव का परिणाम किसी अन्य के रूप से नही हो जाता। यह भी अवस्थित शब्द का भाव लेना है। जैसे—धर्म, अधर्म आकाश, काल इनके कितने ही परिणमन होते रहते है, पर यह मूर्तिमान बन जाये या उपयोग स्वभाव का बन जाए यह नही हो पाता। जीव के भी कितने ही परिणाम होते हैं, पर वह अधर्म बन जाए या रूपादिमान बन जाए, यह भी कभी नही होता। पुद्‌गल के नाना परिणमन होते हैं, पर इन परिणमनो के कारण कभी मूर्तपना भी बदल जाये और अमूर्तपना आ जाये यह भी कभी नही होता। यह बात प्रसिद्ध करने के लिये अवस्थित कहना आवश्यक है।

परिणमन होते रहने पर भी वस्तु के नित्य अवस्थित रहने का वस्तु स्वरूप—शकाकार कहता है कि इसमे परिणाम अनेक होते रहे और अवस्थित भी कहलायें, ये दो बातें एक साथ कैसे हो सकती है ? जिनके परिणाम अनेक होते हैं वे अवस्थित कैसे ? तो उत्तर इसका यह है कि द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से तो उनकी स्थिति है और पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से उनका उत्पाद विनाश है, तो चूकि समस्त पदार्थ द्रव्य पर्यायात्मक है इस कारण नय विवक्षा मे दोनों ही बातें एक साथ हैं, परिणमन अनेक होते रहते हैं फिर भी ये ज्यों के त्यो अवस्थित रहते है। अथवा यो मानो

कि अवस्थित का विशेषण है नित्य मायने ये सभी पदार्थ नित्य अवस्थित हैं, कुछ काल के लिये अवस्थित हो सो नही याने स्व पर प्रत्ययक उत्पादक विनाश होते रहने पर भी जिन-जिन पदार्थों का जो-जो स्वरूप है वे पदार्थ अपने उस स्वरूप को कभी भी नहीं छोडते। इस कारण ये समस्त द्रव्य नित्य अवस्थित हैं, यह अर्थ लेना चाहिये।

सूत्रोक्त अरूप शब्द का विवरण और प्रकरण प्रोक्त द्रव्य सख्या का लक्ष्य—प्रकृत सूत्र मे जो अवस्थित शब्द दिया है वह क्रियावानपने की निवृत्ति के लिये है। ऐसी शका होने पर उत्तर दिया जा रहा है कि अवस्थित वचन निष्क्रिय बताने के लिये नही है। भले सूत्रनिर्दिष्ट ये द्रव्य निष्क्रिय हैं, पर आगे सूत्र आयेगा— निष्क्रियाणि च। उस सूत्र से सिद्ध होगा कि ये पदार्थ निष्क्रिय हैं। सूत्र मे जो अरूप शब्द का ग्रहण है वह द्रव्य के स्वतत्त्व के बताने के लिए है याने यह द्रव्य अरूपी है। इसका स्व-रूप अरूप है। और, रूप नही है इसके स्वरूप मे, ऐसा कहने से रस, गन्ध, स्पर्श भी ग्रहण मे आता कि ये भी नही हैं। तो अरूप का अर्थ रूप रहित यह अर्थ न रहा किंतु अमूर्त है मायने रूप, रस, गध स्पर्श इन चारो से रहित है। इस सूत्र तक ५ द्रव्यो का वर्णन चला। इससे यह न समझना कि जो ६ द्रव्य बताये गए हैं वह बताना गलत है, क्योकि यहा मतलब है अस्तिकायो का। ५ अस्तिकाय हैं, उनका प्रकरण चल रहा है। एक द्रव्य जो शेष रह गया उसको बताने के लिये आगे स्वय कालश्च ऐसा सूत्र कहा जायेगा। सो उसे न देखकर केवल अब तक कहे हुए द्रव्य पर ही दृष्टि देकर जानना कि यहाँ तक ५ कहे गए हैं। सो यहाँ से इन ५ अस्तिकायो के वर्णन मे और ६ द्रव्यो के बताने मे किसी भी प्रकार का विरोध नही है।

पुद्गल द्रव्य के अरूपित्व के प्रतिषेध के लिये पृथक सूत्र की वक्ष्यमाणता—अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि प्रकृत सूत्र मे सभी द्रव्यो को नित्य अवस्थित बताया गया है। वह तो सही है, पर साथ ही इन सबको अरूपी बताया गया है याने अब तक जिन-जिन पदार्थों का वर्णन हुआ धर्म, द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, पुद्गल द्रव्य और जीव, सो इन पाचो की ही बात इस सूत्र मे कही गई है। तो अरूपी भी कहा गया है तो क्या पुद्गल भी अरूपी है? उसका समाधान यो करना कि यह अभी सामान्य कथन है। उसका अपवादरूप सूत्र आगे आयेगा। सूत्र रचनापद्धति मे लाघव आदि की दृष्टि से इस प्रकार वर्णन चलता है कि कोई बात पहले बोल दी और उसमे कोई अपवाद है, तो आगे सूत्र स्वय कह दिया करते हैं। तो उस अपवाद के लिए सूत्र कहा है।

रूपिण पुद्गलाः ॥ ५-५ ॥

प्रकरण मे अरूपित्व शब्द का वाच्य अमूर्तत्व—पुद्गल द्रव्य रूपी होते हैं यद्यपि रूप शब्द के अनेक अर्थ हैं। पर यहा रूपी से मतलब मूर्त का ही ग्रहण करना। रूप शब्द के क्या-क्या अर्थ होते हैं? रूप शब्द का कही तो द्रव्य अर्थ होता है। जैसे कोई कहे कि गोरूप, तो उसका अर्थ है गोद्रव्य। कही रूप का अर्थ स्वभाव बनता है—जैसे चैतन्य पुरुषस्यस्वरूप। चैतन्य पुरुष का स्वरूप है। तो स्वरूप मायने स्वभाव। आत्मा का स्वरूप ज्ञानदर्शन है। मायने ज्ञान दर्शन आत्मा का स्वभाव है। कही रूप शब्द अभ्यास अर्थ मे आता है। जिसे दस रूप अध्ययन करना चाहिए जिसका अर्थ होता है कि १० बार तक अभ्यास करना चाहिए। कही रूप शब्द श्रुति मे आता है अर्थात श्रवण विषयभूत बने उसमे आता है। जैसे स्वरूप शब्दस्य स्वश्रुतिरित्यर्थ याने शब्द का स्व रूप है मायने श्रवण का विषयभूत बने वही शब्द का रूप है। रूप शब्द का प्रयोग महाभूतो के लिए भी किया जाता

अभेद होने पर भी मतुप् प्रत्यय की योजना का व्यवहार होने से भी रूप शब्द मे इन् प्रत्यय लगने का औचित्य—दूसरी बात यह है कि लोक मे ऐसा प्रकट व्यवहार दिखता है कि अभेद होने पर भी वान शब्द लगा करता है। जैसे आत्मा आत्मावान है, अपने स्वरूप वाला है। आत्मा कोई भिन्न वस्तु तो नही है लेकिन प्रतिपादन विधि से इसी प्रकार से प्रयुक्त होता है। जैसे कोई कहना कि यह काठ सारवान है। कोई मोटी कडी पडी थी। जिसे छत के नीचे लगाते हैं, वह है कडी तो वह कडी सारवान है, सार वाली है। अब देखिये सार अभिन्न है सारमय ही तो है वह वृक्ष, मगर सारवान इस प्रकार का शब्द का प्रयोग अभेद होने पर भी देखा जाता है। कही सार वृक्ष से अन्य नही है। तो भी व्यपदेश देखा गया ऐसे ही रूपी है पुद्‌गल ऐसा कहने पर यद्यपि रूप शक्ति पुद्‌गल मे अभेद रूप है फिर भी लोक मे ऐसा व्यवहार देखा हा जाता है।

सूत्र मे विविधता की प्रसिद्धि के लिये पुद्‌गल शब्द का बहुवचन मे प्रयोग—इस सूत्र मे दो पद हैं। पहला पद है— रूपिण और दूसरा पद है –पुद्‌गला'। पहले पद के सम्बन्ध मे वर्णन हुआ है। अब द्वितीय पद पुद्‌गल के विषय मे सुनो। सूत्र मे पुद्‌गला ऐसा बहुवचन कहा गया है, सो यह बहुवचन भेद का प्रतिपादन करने के लिए है याने पुद्‌गल के अनेक प्रकार बताने के लिए बहुवचन मे प्रयोग किया गया है। पुद्‌गल नाना प्रकार के हैं। पहले तो देखिये–परमाणु और स्कन्ध। स्कध नाना तरह के हैं, दो परमाणुओ का समुदाय भो स्कन्ध कहलाता है। अनन्त परमाणुओ का समुदाय भी स्कन्ध है। सो पुद्‌गल के अनेक भेद आगे बताये जायेंगे। यहाँ केवल इतना ही निर्देश किया जाता है कि सूत्र मे पुद्‌गला शब्द बहुवचन मे प्रयुक्त होता है, तो उससे विदित होता है कि अनेक जाति के पुद्‌गल मूर्तिमान हैं, यह अर्थ बनता है। ये पुद्‌गल एक-एक परमाणु रूप भिन्न-भिन्न हैं और ये अनन्तानन्त परमाणु हैं। समस्त परमाणु कितने हैं इसका अन्दाज बनावें इस ढग से कि पहले जीव द्रव्य के द्वारा ग्रहण किये गये पुद्‌गल की ही गणना समझ लीजिये। जो जीवविकास मे अत्यन्त हीन हो। जैसे कोई सूक्ष्म जीव, छोटी से छोटी अवगाहना वाला जीव के भी साथ जो शरीर लदा है औदारिक शरीर उसमे अनन्त परमाणु हैं और उससे अनन्तगुणे शरीर के आहार वर्गणा के विश्रासोपचय परमाणु है। उसे अनन्त गुणे तैजस परमाणु हैं। उससे अनन्तगुणे कार्माण परमाणु हैं और उससे अनन्तगुने कार्माण वर्गणा के विश्रासोपचय परमाणु हैं। इतने परमाणु तो लगे हैं सूक्ष्म जीव के साथ। एक इन्द्रिय के साथ, पर जो दो इन्द्रिय जीव हैं तो उतने परमाणु तो उसके साथ हैं ही। पर भाषावर्गणा के परमाणु भी उस जीव से अधिष्ठित हैं। फिर ३ इन्द्रिय को देखिये तो उतने तो हैं ही और भाषावर्गणा के परमाणु उसके साथ हैं, इसी प्रकार ४ इन्द्रिय मे व ५ इन्द्रिय मे हैं सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के मनोवर्गणा के परमाणु भी लग गए। यह तो जीव के द्वारा गृहीत का वर्णन है—जोकि ग्रहण मे आ गये। अब देखो वे परमाणु और हैं जिन्हे जीव ने ग्रहण करके छोड दिया। वे और जो जीव के द्वारा ग्रहण मे नही आ सकते वे परमाणु और हैं। तो इस प्रकार अनन्तानन्त परमाणु विदित होते हैं। सो ये सब परमाणु एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं तो क्या इसी तरह से और द्रव्य भी भिन्न-भिन्न अनेक हैं उसके उत्तर मे कहते हैं—

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ५–६ ॥

अभिविधि अर्थ मे आङ्‌का प्रयोग—आकाश पर्यन्त एक द्रव्य होते हैं। यहाँ आ शब्द का जो अलग प्रयोग है उसका अर्थ है अभिविधि, मायने व्यापना जिसका अर्थ है उसे भी शामिल करना।

तो इस अर्थ से धर्म, अधर्म और आकाश ये ३ द्रव्य आ गए। प्रथम सूत्र मे इनका नाम दिया गया है। उस क्रम से आकाश पर्यन्त लेना, मायने आकाश को भी लेना। कही आ शब्द का प्रयोग मर्यादा अर्थ मे होता, उस मूड मे यह भाव बनता कि उससे पहले-पहले तक लेना। किंतु यहाँ मर्यादा अर्थ मे आ का प्रयोग नही है। किंतु अभिविधि अर्थ मे है। जिससे प्रथम सूत्र के क्रम के अनुसार बना कि धर्म, अधर्म और आकाश ये ३ एक-एक द्रव्य हैं। एक शब्द अर्थ यहाँ समान आदिक नही है किंतु गणना-वाचक है। सख्या बताई जा रही है कि वह द्रव्य केवल एक एक ही है।

सूत्र में एक द्रव्याणि बहुवचनान्त कहने का प्रयोजन—अब यहाँ शकाकार कहता है कि जब यह सब केवल एक द्रव्य है तो द्रव्य शब्द का बहुवचन प्रयोग न करना चाहिए। एक द्रव्याणि की जगह एक द्रव्य यह प्रयोग करना चाहिये। उत्तर देते हैं कि एक द्रव्याणि कहने से धर्म की अपेक्षा बहुत्व की सिद्धि हुई है। सामानाधिकरण की दृष्टि से ३ पृथक-पृथक एक-एक द्रव्य हैं। शकाकार कह रहा था कि द्रव्य शब्द का एकवचन मे प्रयोग होना चाहिये। पर वह शका ठीक नही है, क्योकि धर्मादिक की अपेक्षा यहा बहुत्व की सिद्धि की गई है। धर्मादिक बहुत द्रव्य हैं, उस अपेक्षा से बहुवचन का उपयोग किया है। एक मे अनेक अर्थ के रहने का सामर्थ्य है। अब शकाकार कहता है कि अगर एक द्रव्य कहने से धर्म की अपेक्षा बहुत्व सिद्ध नही होता तब एकैक ऐसा कह लीजिये कि ये तीन द्रव्य एक-एक हैं और उसमे सूत्र का लाघव भी हो जाता है, और रहा बहुत बताने का सवाल सो यह प्रसिद्ध ही है कि द्रव्य ६ प्रकार के होते है, सो उन द्रव्यो का सही ज्ञान होता ही रहता है। पर एक-एक है, इस कारण से एकैक ऐसा सूत्र कह दिया जाना चाहिये। इसके उत्तर मे कहते हैं कि एक द्रव्याणि, ऐसा शब्द देना अनर्थक नही है क्यो कि इन पदार्थों मे द्रव्य की अपेक्षा, एकत्व की प्रसिद्धि की है सो हो एकैक ऐसा कहने पर नही जाना जा सकता कि द्रव्य से एक है, क्षेत्र से एक है कि भाव से एक है ? यह समझ मे नही आ सकता था तो उसका सन्देह मिटाने के लिये एक द्रव्य का बहुवचन मे ग्रहण किया गया है।

एक द्रव्याणि बहुवचनान्ता शब्द से ध्वनित तथ्य—सूत्र मे एक द्रव्याणि कहने से अर्थ ग्रहण करना चाहिये कि गति स्थिति परिणाम वाले अनेक प्रकार के जीव पुद्गल द्रव्यो के अनेक परिणामो का निमित्तपना होने से भावो से बहुत्व होने पर भी प्रदेश भेद से अनेक क्षेत्रपना होने पर भी धर्म द्रव्य व अधर्मद्रव्य, द्रव्य से एक-एक ही हैं। यहाँ अवगाही अनेक द्रव्यो को अवगाहने मे निमित्तपना होने से अनन्त भावपना होने पर भी, प्रदेश भेद होने से अनन्त क्षेत्रपना होने पर भी द्रव्य से एक ही आकाश है, इसलिये इस सम्बन्ध मे उथल-पुथल न करना। और इसी प्रकार जीव पुद्गलो मे एक द्रव्यपना नही है—जैसे कि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, ये एक-एक हैं। तव सूत्रो पर द्रव्यो मे एक-एक ही का ग्रहण बना। अब यहाँ तक धर्म, अधर्म आकाश, पुद्गल, जीव इन ५ पदार्थों का वर्णन चला है, तो इस सम्बन्ध मे यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि काल द्रव्य फिर कैसे है ? यहाँ तो बताया नही गया ? सो उसका उत्तर यह है कि वह एक-एक है और असख्यात सख्या मे है, इसका निर्णय आगे किया जायेगा। तो यहाँ तक ५ अस्तिकायो की बात कही गई है, जो कि आत्महित मे कैसे उनका ज्ञान साधक होता है, यह सब बात विचार लेना चाहिये। तो इस सूत्र मे जीव और पुद्गल छोड दिये गये। और आकाश तक लिया गया है, क्योकि जीव और पुद्गल मे अनेकपना है। यदि उनमे अनेकपना न हो तो देखे गये क्रिया कारक के भेद का विरोध होगा, वृक्ष से पत्ता गिरा

इसमे कारक भिन्न-भिन्न है। तथा जीव पुद्‌गल अनेक न हो तो अनुभावन ससार और मोक्ष की क्रियाओ का विस्तार यहाँ सिद्ध ही न हो सकेगा। अब अधिकार प्राप्त इन एक-एक द्रव्यो की विशेषता प्रतिपादित करने के लिये सूत्र कहते हैं।

निष्क्रियाणि च ॥ ५-७ ॥

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य व आकाश द्रव्य की निष्क्रियता का परिभाषण—धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य ये निष्क्रिय हैं। क्रिया का लक्षण है अन्तरग और बहिरग निमित्त की अपक्षा से जो द्रव्य का अन्य देश मे प्राप्ति का हेतुभूत पर्याय विशेष होता है उसको क्रिया कहते हैं। आभ्यतर कारण क्या है ? क्रिया रूप मे परिणमने की शक्ति सहित द्रव्य। स्वय द्रव्य मे क्रिया रूप से परिणमने की जो योग्यता है वह अन्तरग कारण है, और बहिरग कारण क्या है ? जिनके सम्पर्क अभिघात आदिक की अपेक्षा करके पदार्थ के देशान्तर की प्राप्ति का हेतुभूत परिणमन विशेष उत्पन्न होता है वह बाह्य कारण है। बाह्य कारण होता है अन्य पदार्थों के सम्पर्क वाला। अन्तरंग कारण होता है क्रिया रूप से परिणमने वाली स्वय द्रव्य की शक्ति। तो ऐसा अन्तरग और बहिरग निमित्त सापेक्ष क्रिया हुआ करती है। यहाँ दोनो को निमित्त कहा है। इस विशेषण से यह सिद्ध होता है कि परिणमने वाले द्रव्यो मे क्रिया करते रहने का स्वभाव नही होता। यदि क्रिया रूप परिणमने का द्रव्य स्वभाव होवे तो द्रव्यो को हमेशा ही निरन्तर क्रिया करते ही रहना चाहिये। क्रियावान द्रव्यो मे भी कभी क्रिया होती है, कभी नही होती है। जो भी सक्रिय द्रव्य हैं—जीव और पुद्‌गल, इनमे कभी क्रिया है कभी नही है। जब अन्तरग बहिरग निमित्त का योग है तब क्रिया होती है अन्यथा नही होती। सो यदि क्रिया करना द्रव्य का स्वभाव बन जाये तो सदैव क्रिया करते रहना चाहिये।

क्रिया के लक्षण के विशेषण शब्दो से ध्वनित तथ्य—यहाँ जो क्रिया का लक्षण किया गया है उसमे बताया है कि द्रव्य का पर्याय विशेष है क्रिया। इस विशेषण से यह सिद्ध हुआ कि वह क्रिया भिन्न वस्तु नही है। यदि क्रिया द्रव्य से भिन्न वस्तु बन जाये तो द्रव्य तो निश्चल बन जायेगा, और जब द्रव्य निश्चल हो गया तो कोई भी भिन्न क्रिया हो उसका इस पर कोई प्रभाव नही होगा। अथवा यदि क्रिया का पर्याय विशेष न हो किन्तु अन्य ही हो कुछ तो न क्रिया रहेगी न द्रव्य मे क्रिया परिणाम बताया जा सकेगा। क्रिया का जो लक्षण किया गया है उसमे बताया है कि अन्य देश की प्राप्ति का कारण क्रिया होती है। इससे ज्ञानादिक परिणमनो की निवृत्ति हो गई, याने ज्ञानादिरूप परिणाम विशेष हो उन्हे क्रिया नही कहते। वह सब तो भावरूप परिणमन हैं किन्तु जो एक देश से अन्य देश को प्राप्त कराये, ऐसा परिणाम विशेष क्रिया कहलाती है। निष्क्रियाणि, इस शब्द मे निर् तो उपसर्ग है और क्रिया सज्ञावाचक है। जिसका यह अर्थ होता है कि जो क्रिया से निष्क्रान्त हो वह निष्क्रिय कहलाता है, याने जहाँ क्रिया नही है ऐसा द्रव्य निष्क्रिय कहलाता है।

निष्क्रिय द्रव्यों मे भी उत्पाद व्यय की निरन्तरता—यहाँ शका होती है कि यदि पदार्थ निष्क्रिय हो गये तो उनमे कोई पर्याय उत्पन्न न हो सकेगी। तब वह ध्रुव कूटस्थ अपरिणामी हो जायेगा। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि ऐसी बात नही है कि निष्क्रियपना होने से पर्यायो के उत्पाद का अभाव हो जायेगा, क्योकि पर्यायो का उत्पाद और ढग से ही होता है। जो निष्क्रिय पदार्थ मे भी है और क्रियावान पदार्थ मे भी है। धर्मादिक द्रव्य यद्यपि निष्क्रिय हैं तो भी उनमे उत्पाद व्यय होता रहता है। वहाँ यह सदेह न करना चाहिये कि जैसे घट आदिक का उत्पाद क्रियापूर्वक

देखा गया। चाक चलता है, क्रिया होती है तो उसमे से घट पर्याय की उत्पत्ति होती है। तो जहाँ क्रिया नही है वहाँ उत्पाद कैसे होगा और जहाँ उत्पाद नही है वहाँ व्यय भी नही होगा और जहाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्य सब खत्म हो गये तो फिर वस्तु ही क्या रही। ऐसा सदेह निष्क्रिय होने वाले पदार्थों मे न करना, क्योकि उनका उत्पाद और ढग से है, हाँ क्रिया नाम का उत्पाद नही हैं यह तो सत्य है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और आगे कहा जाने वाला काल द्रव्य ये निष्क्रिय हैं। क्रिया नामक उत्पाद इनमे नही है, फिर भी धर्मादिक द्रव्यो मे उत्पाद निरन्तर चलता ही रहता है। यह कैसे सो निरखिये उत्पाद दो प्रकार का होता है—(१) स्वनिमित्तक और, (२) पर निमित्तक, स्वनिमित्तक उत्पाद तो पदार्थों मे स्वभावत: अपने ही अगुरुलघुत्व गुण के षड्गुण वृद्धि हानि से चल रहे सभी पदार्थों का उत्पाद और व्यय देखा गया है। यह हुआ स्वनिमित्तक उत्पाद और परनिमित्तक उत्पाद क्या ? जैसे घोडा, मनुष्य आदिक चल रहे हैं तो उनका निमित्त पाकर या उनके उपलक्ष्य से धर्म द्रव्य का नवीन-नवीन परिणमन रूप उत्पाद माना है। स्थित होने से अधर्म का उत्पाद, अवगाहन होने से आकाश का उत्पाद। सो क्षण-क्षण मे उनकी गति, स्थिति, अवगाहन मे फर्क हो रहा है तो उनका हेतुभूत जो कुछ भिन्न चल रहा है उसकी अपेक्षा से वह परनिमित्तक उत्पाद विनाश है, ऐसा व्यवहार से समझा जायेगा।

निष्क्रिय द्रव्यो की अन्य पदार्थ परिणाम के प्रति उदासीन निमित्त मात्रता—अब यहाँ शकाकार कहता है कि जो द्रव्य निष्क्रिय है वह दूसरों की गति, स्थिति, अवगाहन और क्रिया के कारणभूत कैसे हो सकता है ? जो क्रियावान जल आदिक हैं वे मछली आदिक के गमन के कारण देखे गये है, पर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जब निष्क्रिय ही मान लिये गये तो वे दूसरे की क्रिया के कारण कैसे हो सकते हैं ? इस शका का उत्तर है कि यह द्रव्य दूसरे द्रव्य की गति, स्थिति अवगाहन मे प्रेरक नही है, किन्तु बलाधान मात्र है, उदासीन सहायक है इन्द्रिय की तरह। जैसे—कोई रूप को देखने की इच्छा कर रहा है तो उस पुरुष के चक्षुइन्द्रिय रूप के निरखने मे बलाधान मात्र है, सहायक निमित्त मात्र है, किन्तु वह देखना चक्षुइन्द्रिय के सामर्थ्य की चीज नही है। चक्षुइन्द्रिय तो जड पौद्गलिक है, वह समझने का काम कभी कर ही नही सकती, किन्तु जो रूप को समझने का प्रयास करता है उसको रूप के समझने के लिये चक्षुइन्द्रिय सहायक निमित्त होते हैं, इसे कहते हैं बलाधान मात्र, याने जिसकी उपस्थिति से उपादान अपने मे बल प्रकट कर सके उसे बलाधान मात्र कहा है। चक्षुइन्द्रिय देखती नही है, अन्यथा किसी अन्य द्रव्य मे उपयोग लग रहा हो और आँखें खुली भी हो तो भी सामने का कोई पदार्थ दिखता नही, है, अथवा ये चक्षुइन्द्रिय जो शरीर मे नाक के दोनो ओर लगी रहती हैं जड पौद्गलिक वे सत् समझने वाले पदार्थ हो तो आयु का क्षय हो जाने से जब आत्मा शरीर से निकल जाता है तब ये द्रव्येन्द्रियाँ तो हैं मगर रूपादिक की उपलब्धि मे समर्थ नही होती। इससे यह समझना कि देखना, सूँघना आदिक इन सब ज्ञानो के उत्पत्ति करने में सामर्थ्य आत्मा का ही है। इन्द्रिय तो बलाधान मात्र है।

उदासीन निमित्तमात्र का एक अन्य दृष्टान्त से समर्थन—जैसे कोई दूसरी मंजिल पर भवन है अथवा कही भी हो और उसमे चारो ओर अनेक खिडकिया लगी हैं उस हौल मे रहने वाले पुरुष खिडकियो से चारो ओर की बात देख लेते हैं, समझ लेते है तो क्या वह देखना और समझना उन खिडकियो का सामर्थ्य है ? नही। देखना, समझना पुरुष का ही सामर्थ्य है। खिडकिया तो बलाधान

मात्र हैं। उनके द्वार से कोई पुरुष अपनी सामर्थ्य से बाहर देख ले तो देख ले। तो जैसे देखना आदिक आत्मा का ही सामर्थ्य है और इन्द्रियाँ बलाधान मात्र है ऐसे ही स्वय ही गति, स्थिति, अवगाहना पर्याय रूप से परिणमने वाले जीव और पुद्‌गल का धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य गति आदिक की रचना मे बलाधान मात्र है। परिणमता वह द्रव्य स्वय है। जीव पुद्‌गल ये धर्म, अधर्म आदिक स्वय क्रिया रूप से नही परिणमते। तात्पर्य यह हुआ कि न चलता हुआ धर्म जीव पुद्‌गल के चलने मे निमित्त कारण है, ऐसे ही अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य अपना कोई व्यापार न करते हुये भी, क्रिया न करते हुये भी पदार्थों की स्थिति और अवगाहना मे निमित्त मात्र हैं। कैसे समझा जाये ? तो उसका उत्तर है कि द्रव्य की सामर्थ्य से यह बात समझी गई। जैसे आकाश न चलता हुआ सर्व द्रव्यो के साथ सम्बद्ध है। आकाश कही किसी द्रव्य के पास जाकर उसको अपने मे छिपाता हो ऐसा नही है। तो जीव पुद्‌गल आदिक अवगाही हो जायें, उनकी अवगाहना बन जाये तो अवगाहना परिणमन मे सामर्थ्य आकाश का ही है, अन्य का नही है, ऐसे ही धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य निष्क्रिय है तो भी यह अन्य द्रव्यो की गति, स्थिति आदिक क्रिया की रचना के प्रति बलाधान मात्र है। तो वह नियत-नियत होने से असाधारण समझना चाहिये।

तीन अस्तिकायो की निष्क्रियता के कथन से शेष दो अस्तिकायों के क्रियावत्त्व की सिद्धि—निष्क्रियाणि च। इस सूत्र मे च शब्द के देने से अधिकार प्राप्त उन तीन का सकेत हो जाता है। वे तीनो एक-एक द्रव्य हैं और निष्क्रिय हैं। धर्मद्रव्य लोकाकाश मे है, असख्यात प्रदेशी है, वह एक द्रव्य है, अधर्मद्रव्य भी ऐसा ही है, आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है और एक द्रव्य है। वे सब तीनो एक-एक द्रव्य निष्क्रिय हैं, ऐसा कहने से यह अपने आप सिद्ध हो जाता है कि जीव और पुद्‌गल स्व और पर के सापेक्ष होकर क्रिया परिणाम वाले हो जाते हैं। सापेक्ष के मायने पराधीनता नही है, किन्तु सहज योग है कि योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होने पर यह उपादान क्रिया परिणामयुक्त होता है।

सर्वगत बताकर आत्मा को सर्वथा निष्क्रिय बताने की विफल चेष्टा—अब यहाँ शकाकार कहता है कि आत्मा तो सक्रिय नही हो सकता, क्योकि वह सर्वव्यापी है। जो-जो सर्वव्यापी होता है वह स्वय निष्क्रिय होता है, पर जब उनमे क्रिया के हेतुभूत आत्म प्रयत्न गुण का समवाय सम्बन्ध होता है अर्थात् प्रयत्न का सयोग होता है तब हस्तादि सक्रिय हो पाते हैं। इस शका का उत्तर यह है कि यदि आत्म द्रव्य मे क्रिया रूप से परिणमने का सामर्थ्य न होता तो अन्य शरीरादिक पदार्थों मे क्रिया न उत्पन्न हो सकती थी। जैसे कि वायु स्वय क्रिया रूप परिणत है तो पत्ते, फूल आदिक वनस्पतियो को क्रिया का कारण हो जाता है, ऐसे ही आत्मा क्रिया पर्याय के स्वभाव वाला है, सो जब वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम हुआ, ज्ञानावरण का क्षयोपशम हुआ, अगोपाग नामकर्म का उदय हुआ तब विहायोगतिनाम कर्म के उदय से एक शक्ति विशेष उत्पन्न होती है। उस समय किसी क्रिया रूप से चल रहे आत्मा के हाथ आदिक मे क्रिया का उत्पन्न होना युक्त है, याने जो क्रिया रूप परिणमने का स्वय स्वभाव रखता है वह होगा अन्य की क्रिया का निमित्त कारण, तब ही हस्तादिक क्रियाओ की उत्पत्ति देखी जा रही है, और यदि आत्मा को निष्क्रिय मान लिया जायेगा तो अन्य पदार्थों मे भी क्रिया का हेतुभूत वह नही हो सकता। सो आत्मा स्वय क्रिया रूप से परिणमने का स्वभाव रखता है और योग्य कारण कलाप मिलने पर क्रिया रूप से परिणमता है, तो उसका सम्पर्क पाकर हाथ-पैर आदिक अगो मे भी क्रिया होने लगती है, निष्क्रिय पदार्थ अन्य की क्रियाओ का

कारण नही बन सकता है। उसके लिए आकाश का दृष्टान्त रख लीजिये। आकाश क्रिया रूप परिणत नही हो सकता तो वह आकाश, मिट्टी, घट, पट आदिक पदार्थों मे सयुक्त है तो वह क्रिया का कारण नही बन पाता। उसी तरह यहाँ परखिये कि आत्मा को यदि निष्क्रिय मान लिया जाये तो आत्मा का शरीर के साथ सयोग होने पर भी हाथ आदि अगो मे वह आत्मा क्रिया का कारण नही हो सकता। और भी देखिये जो यह बतला रहे हैं शकाकार कि आत्माके क्रिया हेतुभूत प्रयत्न गुण का सयोग होने पर क्रिया बनती है तो यह बतलायें शकाकार कि आत्मा को तो निष्क्रिय कहते ही हैं और जो सयोग हुआ है वह सयोग सक्रिय है या निष्क्रिय ? सक्रिय तो होता नही, क्योंकि वह द्रव्य नही हैं तो निष्क्रिय ही कहना पडेगा। तो सयोग निष्क्रिय, प्रयत्न निष्क्रिय तो इस निष्क्रिय के होने पर भी अर्थात् आत्मा सयोग प्रयत्न इन तीन निष्क्रिय का जमघट होने पर भी क्रिया बन ही न सकेगी।

अग्निसयोग के दृष्टांत से सयोग को क्रियाहेतु बताकर आत्मा को सर्वथा निष्क्रिय बताने की विफल चेष्टा—अब शकाकार तर्क करता है कि जैसे अग्नि के सयोग से घट आदिक पदार्थों मे रूप से रूपातर बन जाता है तो वह केवल अग्नि से नही बन जाता किंतु सयोग से बनता है। सो ऐसे ही आत्मा मे सयोग और प्रयत्न इनका सम्बन्ध होने से हाथ आदिक मे क्रिया बन जाती है। हा आत्मा मे कोई क्रिया नही होती, और वह सयोग प्रयत्न आत्मा के अदृष्ट के अनुसार होता है। इस शका के उत्तर मे तथ्य अनुरूप भरा है, इस कथन मे तो हमारे इष्ट की सिद्धि होती है। किस प्रकार? जैसे कि अग्नि का सयोग रूपादिमान्द्रव्य का गुण है सो अन्य घट आदिक मे जोकि स्वय रूपादिमान हैं उनमे अन्य-अन्य रूपादिको की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। तो अग्नि के सयोग से घट मे एक रूप से दूसरा रूप जो बना सो यह तब ही तो बना कि अग्नि भी रूपादिमान, घट भी रूपादिमान। तो उनके सयोग से अन्य रूप की उत्पत्ति हो गई। तब ऐसे ही यहाँ समझ लीजिये कि आत्मा भी क्रियावान और सयोग प्रयत्न भी हस्तादिक क्रियाओ के करने वाले क्रियावान हैं। इसलिए क्रिया होती रहती है। तो आत्मा निष्क्रिय नही है। हाँ स्वभाव मे तो निष्क्रिय है। स्वय अपने आप अकेला ही रहे तो निष्क्रिय है। भले ही जब इसका मोक्ष होता है तब ऊर्ध्वगमन स्वभाव के कारण एक समय को लोक पर्यन्त गति होती है, सो वह उस काल का प्रभाव है कि जैसे छिलके मे बँधा हुआ एरन्ड का बीज बधन मे रहने से वही पेड पर चिपका रहता था और बन्धन के खुलने से वह बीज ऊपर उछलता है तो ऐसे ही कर्म बन्धन मे रहने पर जीव ससार मे ही भ्रमण करता रहता है। कर्मबन्ध बिल्कुल छूट जाने पर जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव से ऊपर चला जाता है। यह उस एक समय का वियोगजन्य प्रभाव है। पर वहाँ तो आत्मा के स्वभाव से क्रिया नही पडी हैं। हाँ अन्तरग, बहिरंग निमित्त-सापेक्ष क्रिया हो जाती है। सो आत्मा का क्रियावानपना होना यह आश्रव है। यहाँ जो अग्नि सयोग का दृष्टात कहा गया है सो उस सयोग का सामर्थ्य नही है यह, क्योंकि सयोग न उष्ण है, न शीत है, न प्रेरक है, न निरोध या उपघात करने वाला है। न चिपकने वाला है। उस सयोग को अन्य रूप के उत्पाद विनाश का कारण नही कह सकते। तो यहा प्रकृत बात के विरोध करने मे शकाकार ने जो दृष्टात दिया है वह उचित नही बन रहा।

गुरुत्व दृष्टांत से निष्क्रियो में क्रिया हेतुत्व बताकर आत्मा को निष्क्रिय प्रसिद्ध करने की विफल चेष्टा—यहाँ कोई यह कहे कि जैसे वजनदार होना यह गुण निष्क्रिय है और ऐसा गुरुत्व लोहे

के गोले मे वर्तमान है, उसका सम्पर्क तृण आदिक की क्रियाओ का कारण बन जाता है। जैसे गोला वजनदार है, स्वय निष्क्रिय है और वह कोई नीची जमीन को पाकर ही सरके या कोई वलवान पुरुष सरकाये, तो जहा से गया वहा के सम्पर्क मे आये तृण आदिक मे भी क्रिया हो गई। ऐसे ही आत्मा, सयोग और प्रयत्न ये निष्क्रिय होकर भी हस्तादिक अंगो मे क्रिया के कारण हो जाते हैं, ऐसा सोचना ठीक नही है। यह तो अग्नि सयोग के दृष्टात के समान हो गया। कैसे कि क्रिया परिणमन करने वाला है वह लोहे का गोला और उसका गुण है गुरुत्व। वह दूसरे की क्रियाओ का कारण बन जाता है ऐसे ही आत्मा के सयोग और प्रयत्न ये भी क्रियारूप परिणमने वाले आत्मद्रव्य के गुण हैं। इसमे भी आत्मा का सक्रियपना सिद्ध होता है। खाली गुरुत्व को देखा तो वह निष्क्रिय है। स्पर्श भी नही कर सकता, प्रेरक भी नही, ठोकर देने वाला भी नही अर्थात गुरुत्व गुण क्रिया का कारक नही बन पाता, तब यह समझना चाहिये कि क्रिया रूप से परिणमने वाला द्रव्य ही क्रिया का हेतुभूत है।

निष्क्रिय अस्तिकायों के निर्देश का प्रकरण—यह मोक्ष शास्त्र का पञ्चम अध्याय चल रहा है। पञ्चम अध्याय मे पहला सूत्र था—**अजीवकायाः धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ ५-१ ॥**

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य और पुदगल द्रव्य ये अजीव होते हुए अस्तिकाय हैं अर्थात अजीव भी हैं और अस्तिकाय भी हैं। इसके बाद बताया गया है कि ये द्रव्य हैं, फिर बताया गया जीव भी द्रव्य है। फिर उनकी विशेषता बता-बताकर इस निष्क्रियाणि सूत्र मे यह बात कह रहे हैं कि ये सब निष्क्रिय हैं। इससे पहले सूत्र आया था—'आ आकाशादेक द्रव्याणि'। आकाश पर्यंत यह एक-एक द्रव्य है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य एक-एक ही हैं। इनकी सख्या अनेक नही है। और ये तीनो निष्क्रिय हैं, इनमे क्रिया नही है। सिद्धात की बात यह है कि जीव और पुद्गल इनमे तो क्रिया होती है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इनमे क्रिया नही होती। तो सूत्र ग्रन्थ मे सूत्रो की पद्धति केअनुसार वर्णन चलता है। यहाँ बतला रहे हैं कि ये निष्क्रिय द्रव्य हैं और इससे यह सिद्ध हुआ कि ये ३ तो निष्क्रिय है किंतु जीव और पुद्गल ये सक्रिय हैं। इनमे क्रिया होती है। एक देश से दूसरे देश मे पहुँचना इसका नाम है क्रिया। परिणमन तो सबमे होता है। चाहे क्रिया वाला हो चाहे वे क्रिया का हो। जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचना इसका नाम क्रिया है। तो इस क्रिया मे परिणमन हुआ या नही? हुआ है। और एक स्थान पर ही रहे दूसरे स्थान पर न पहुँचे मगर उसमे क्रोध, मान, माया, लोभ होते। रूप रग बदल रहे या धर्म अधर्म आकाश के परिणमन चल रहे तो भी परिणमन है या नही? है पर क्रिया नही है। तो जीव और पुद्गल इनमे क्रिया है, बाकी किसी द्रव्य मे क्रिया नही है। यह एक सिद्धात है।

क्रिया के परिचय के सम्बन्ध मे शका समाधान की प्रस्तावना—अब क्रिया कैसे होती है इस सम्बन्ध मे कुछ विवाद चल रहा है। तो उसी से सम्बन्धित कुछ बात बतलाते हैं ताकि विषय अच्छी तरह समझ मे आयेगा। विषय कठिन है। उपयोग आपका ऐसा बन जाये कि यह तो कठिन विषय है, क्या सुनना? उपयोग को ढीला कर दिया तो कुछ समझ मे नही आता, पर यह ध्यान मे रख कर सुनें कि हम भी तो ज्ञानस्वरूप पदार्थ हैं। जिसका जानना काम है, क्यो न ज्ञान मे आयेगा?

ज्ञान मे आना ही पड़ेगा, ऐसा भीतर का उत्साह हो, श्रद्धा हो। जब हम ज्ञानस्वरूप पदार्थ हैं तो हमारे ज्ञान से दूर कैसे हो जायेगा? सब ज्ञान मे आयेगा। जो ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्व की आस्था रखते हैं वे उससे इतना ज्ञानबल पाते हैं कि ज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है, और ज्ञान बढ़ता है। और इस ही ज्ञानस्वरूप आत्मा की दृष्टि के प्रताप से केवलज्ञान होता है। ज्ञानावरण का पूर्ण क्षय होता है और ३ लोक ३ कालवर्ती समस्त पदार्थ उनके ज्ञान मे आ जाते हैं। तो द्रव्य के सम्बन्ध मे पदार्थ के सम्बन्ध मे भेदवादियो का क्या सिद्धान्त है वह थोडा सा सुनो—"वैशेषिकवाद मे मानते हैं ६ भावात्मकपदार्थ और एक अभावात्मकपदार्थ। द्रव्य, गुण,कर्म, सामान्य,विशेष, समवाय ये ६ तो भावात्मक हैं। अभाव पदार्थ सो अभावात्मक है ही। यहाँ ऐसी भेदवाद की दृष्टि हुई, जिससे यह जाहिर किया कि द्रव्य अलग पदार्थ है। गुण अलग पदार्थ है। द्रव्य से गुण, गुण से द्रव्य न्यारा नहीं है। जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है, पर इन वैशेषिको के यहा आत्मा ज्ञानस्वरूप नही है, आत्मा अलग है, ज्ञान अलग है। ज्ञान के सम्बन्ध से आत्मा ज्ञानी कहलाता है। इसे कहते हैं भेदवाद याने भेद को भी करना, कुछ भेद की ऐसी धुन करना कि थोडा भी वचन का भेद हो तो भी भेद कर देना। सो इस सिद्धांत मे द्रव्य निराला है, गुण निराले हैं, कर्म निराला है, कर्म मायने क्रिया। सो द्रव्य गुण कर्म ये ३ तो मुख्य सत् है, और उपचार से सत् तीन और हैं। सामान्य, विशेष, समवाय। जैसे कहते ना कि आत्मा आत्मा सब एक समान हैं। यह किस बात से पहिचाना? सामान्य स्वरूप से पहिचाना। तो इनका कहना है कि वह सामान्य भी एक अलग पदार्थ है यह मनुष्य पशु से भिन्न है। तो उनका कहना है कि वह भिन्नता भी एक अलग पदार्थ है, और जब ये सब अलग-अलग पदार्थ हो गये तो अलग अलग ही रहे तब तो कुछ भी काम न चलेगा। तो इनको इकट्ठा भी तो करना पड़ेगा। तो यह कहते हैं कि द्रव्य और द्रव्य मे तो सयोग से इकट्ठापन होता और बाकी तो सब मे समवाय से एक होता है। दो का सम्बन्ध माने, जैसे पृथ्वी और जल इनका तो सयोग होगा। और, पृथ्वी मे रूप इनका समवाय होगा। उनसे कोई पूछ कि जब ये अलग-अलग हैं सब तो किन्ही मे सयोग कहना और किन्ही मे समवाय कहना यह अन्तर कैसे? तो वे विवश होकर यह उत्तर देंगे कि क्या बतायें? द्रव्य से गुण निराला करने मे दिखने मे नही आता, अलग क्षेत्र मे नही हैं। इस कारण हम उन्हे समवाय से लेते हैं और जो भिन्न-भिन्न जगह मे हैं उन्हे हम सयोग से लेते हैं। तात्पर्य यह है कि उन्होने ६ पदार्थ यो माने।

भेदवाद मे पदार्थ सख्या का पूर्वपक्ष—अब जरा स्याद्वाद दर्शन से वैशेषिकोक्त पदार्थो का मिलान करें तो देखो ये ६ कहते तो हैं, मगर ये ६, ६ नही हैं किन्तु एक द्रव्य है न गुण है, न कर्म है, न सामान्य है, न विशेष है, न समवाय है। ये कोई पृथक नही हैं, किन्तु द्रव्य मे द्रव्य की जो खासियत है वह गुण है। उस द्रव्य को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाते हैं सो द्रव्य की वह पर्याय क्रिया है। कुछ मिलते हुये धर्म देख करके कह दिया कि यह सामान्य है। सामान्य भी द्रव्य का पर्याय हुआ। फिर एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य मे कुछ धर्म मिलते नही दिखे तो कहते कि यह विशेष है। तो यह विशेष भी द्रव्य का पर्याय हुआ। आत्मा मे क्रोध आया तो आत्मा मे क्रोध का समवाय है मगर समय बीतते ही क्रोध अलग हो गया। तो लो क्रोध का समवाय भी अलग हो गया। यो समवाय भी द्रव्य का ही परिणाम है। एक ही चीज है द्रव्य, सो कभी ,किसी की एक ऐसी विचित्र धुन हो

जाती है कि जो कहना चाहिये सो कह नही पाये और जो न कहना चाहिये उस पर जोर डाल दिया। क्या कहना चाहिये था उन्हे ? द्रव्य ६ हैं— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, द्रव्य के भेद किया—वैशेषिकोने, उनमे कुछ छूट गये कुछ पुनरुक्त आये हैं। तो यह है सिद्धान्त, जीव एक द्रव्य है, वह जीव योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के मिलने पर एक देश से दूसरे देश मे पहुँच जाता है। जीव क्रियावान है और इस सम्बन्ध मे ये विशेषवादी यह कहते हैं कि आत्मा निष्क्रिय है। जीव मे क्रिया नही होती। पर जीवो मे प्रयत्न का सयोग होता है तब हाथ पैर आदिक की क्रिया का वह प्रयत्न कारण बनता है, जीव कारण नही बनता।

क्रिया (कर्म) परिचय सम्बन्धित प्रकरण— यहां सूत्र बतलाया जा रहा है निष्क्रियाणि च। प्रत्येक दस लक्षण पर्व मे मोक्ष शास्त्र प्राय बचता है, उसमे एक या डेढ घण्टे का समय लगता है, जिसमे एक अध्याय पूरा करना पडता है और उसमे भी साधारण रूप से भी अर्थ समझ मे आया या नही, इसका कोई निर्णय नही रखा। आचार्य महाराज के तत्त्व विज्ञान को देखो, एक ही बात मे कितने भेद कर-करके उसको निखार रहे हैं, जब यह सुना गया कि धर्म-अधर्म, आकाश ये निष्क्रिय हैं और इनके अलावा जीव और पुद्गल सक्रिय हैं। काल द्रव्य आगे कहा जायेगा। वह भी निष्क्रिय हैं। तो यहां कोई पूछता है कि पुद्गल को तो कह दो कि क्रियावान है, यह तो हम मान लेंगे झट, परन्तु जीव मे क्रिया न होती है यह नही समझ सकते, क्योकि जीव चलता हुआ कहां नजर आता ? पुद्गल मे तो क्रिया होती है। ढेला उठाकर रख दिया, हाथ भी चला लिया मगर जीव मे क्रिया कैसे हुई ? कैसे समझें कि जीव क्रिया करता है ? उसका उत्तर यह है कि यदि जीव क्रिया न करता होता तो शरीर मे भी क्रिया न हो सकती थी। शरीर मे क्रिया होने का कारण है जीव की सक्रियता। इससे यो अनुमान बनाइयेगा कि आत्मा क्रियावान् है, क्योकि अन्य द्रव्यो मे क्रिया होने का कारण है। यो जीव शक्ति है।

तत्त्व ज्ञान के आधिक्य से तत्त्व बोध की अधिक स्पष्टता—आप सोचते होगे कि इन बातो के कहने से कौन सा हमारा काम बनेगा ? फालतू बात क्यो कही जा रही है ? अच्छा तो जिन बातो से काम बने जरा वही करके दिखा दो। जो आत्मतत्त्व की कथनी है सो बोलते जायेंगे घण्टे दो घण्टे और रोज बोलेंगे, पर रोज का बोलना, वैसा ही बोलना, वह एक आदत बन जाती है, और जब सर्वज्ञ के शासन मे कहे हुये करणानुयोग चरणानुयोग, प्रथमानुयोग के तत्त्व का भी अध्ययन साथ चलता हो तो एक ऐसा उत्साह बनता है और एक ऐसी नवीनता आती है कि अध्यात्म चर्चा मे उसको फिर आनन्द आने लगता है। इससे जो केवल दो ही बातो की कथनी मे अपना पूरा जीवन लगाकर और समझ लें कि हमने सब कुछ पाया उनमे वह उमग नही आ पाती आत्मानुभव करने के लिये। फिर अनभ्यस्त पुरुष को क्या करना चाहिये ? भोजन मे आप क्या करते हैं ? कभी यह खाया, कभी वह खाया, तो आप ज्ञान की दिशा मे भी क्या करें ? कुछ करणानुयोग की बात भी जानें। यह प्रकरण चल रहा है द्रव्यानुयोग का। आप कहेगे कि कठिन तो लग रहा, फिर द्रव्यानुयोग कैसे ? द्रव्यानुयोग तो बडा सरल हुआ करता है कि जीव न्यारा पुद्गल न्यारा। और यह ही बात चाहे कितने ही लोगो से बुलवा लीजिये, सब हा-हां कहते चले जायेगे कि द्रव्यानुयोग तो बडा सरल होता हैं। अरे भैया, द्रव्यानुयोग उनको अत्यन्त सरल है जिन्होने आत्मा के सहज ज्ञान स्वरूप का ज्ञान द्वारा अनुभव कर लिया बाकी के लिये तो गोरख धन्धा है। जैसे गोरख धन्धे मे क्या होता कि एक

दूसरे से तार फसे हुये होते, उसमें एक छल्ला देना पडता, उनको छू कर जरा भी उलझा दिया तो उनका सुलझाना अत्यन्त कठिन होता है, ऐसा ही अत्यन्त कठिन होता है द्रव्यानुयोग उनके लिये जो कि ज्ञान स्वरूप का अनुभव नही कर पाये। जिन्होने ज्ञान स्वरूप का अनुभव कर लिया उनके लिये यह द्रव्यानुयोग अत्यन्त सरल है। एक सेकेण्ड के लाखवें हिस्से मे वह परमात्मतत्त्व के दर्शन कर सकता है और सत्य सहज आनन्द का अनुभव कर सकता है। पर यह बात जब न बन रही हो या हर समय नही बनती है तो शेष समयो मे द्रव्य के स्वरूप का ज्ञान कीजिये

विशेष तत्त्व बोध के बीच दर्शन ज्ञान सामान्यात्मक अन्तस्तत्त्व के दर्शन से सहजानन्दलाभ—भैया देखने-देखने मे फर्क होता है। जैसे कोई दूर देश का पुरुष एक दिन मे आपके इस मेरठ शहर को घूम कर देख सकता है एक तो उसका देखना और एक यहा के स्थानीय पुरुष का देखना जिसका कि अनेको लोगो से परिचय है, जिसका रोज-रोज सारे शहर मे आना-जाना रहता है बताओ, इन दोनो प्रकार के लोगो के ज्ञान मे कुछ फर्क है कि नही ? हाँ है फर्क। अरे दोनो की जानकारी मे दृढता का फर्क है, ऐसे ही एक व्यक्ति तो द्रव्य के स्वरूप सामान्य को सुन-सुनकर निर्णय बनाता है कि जीव न्यारा पुद्गल न्यारा, ज्ञान मेरा स्वरूप आदिक कुछ बातें सुन लिया और एक व्यक्ति ऐसा जो कि न्याय, युक्ति, तर्क और हेतुओ से सही-सही जानकारी कर द्रव्य के स्वरूप का अवधारण करता है एक वह है दृढ निर्णय करने वाला। आत्मा क्या है, कैसा है, उसमे कैसी शक्तिया हैं, क्या प्रवृत्तियाँ होती हैं, क्यो होती हैं इन सबका उत्तरोत्तर विशेष परिचय होने से वस्तु का स्वरूप बहुत स्पष्ट हो जाता है। यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि जीव क्रियावान है क्योंकि अन्य द्रव्यो मे क्रिया का कारण बनता है। बहुत काम करने के बाद जैसे आप एक क्षण को कार्य की निष्पत्ति होने पर संतोष की श्वास लेकर बैठते हैं और आराम अनुभव करते हैं ऐसे ही द्रव्य का सूक्ष्मतया परीक्षण का काम करने के बाद लक्ष्यभूत अन्तस्तत्त्व की दृष्टि होने पर यह भव्य पुरुष एक क्षण सहज आराम करता है।

जीव के क्रियावत्त्व की सिद्धि—यहाँ यह बतलाया जा रहा था कि जीव क्रियावान है क्योकि वह शरीरादिक की क्रिया का कारण बनता है। बताओ हाथ यहाँ से उठाकर यहाँ कैसे पहुँचा ? आत्मा ने किया ज्ञान कि हाथ यहाँ धरना और इच्छा की तो ज्ञान और इच्छा होने पर आत्मा के प्रदेशो मे परिस्पद हुआ और उस प्रयत्न का निमित्त पाकर एक क्षेत्रावगाह मे रहने वाले शरीर मे वायु चली, जिसका वात, पित्त, कफ मे नाम कहते हैं। और उस वायु के चलने का निमित्त पाकर यह हाथ चल उठा। तो मूल मे तो वह आत्मा का प्रयत्न कारण पडा। आत्म प्रदेश परिस्पद हुये बिना शरीर मे परिस्पद नही हो सकता और क्रियावान आत्मा हुआ ना, क्योकि वह अन्य द्रव्य मे क्रिया का कारण पडता है, तो एक जिज्ञासु कह उठा कि तुम्हारा हेतु शुद्ध नही है, क्योकि काल द्रव्य ऐसा है कि अन्य द्रव्यो की क्रिया का कारण है और फिर भी क्रियावान नही है काल द्रव्य। तो जो यह कह रहे हो कि अन्य द्रव्य मे जो क्रिया का कारण हो वह सक्रिय होता है। जैसे जीव पुद्गल, मगर काल द्रव्य तो अन्य पदार्थों की क्रिया मे कारण है और काल सक्रिय नही है, इनका उत्तर बहुत काम का है। उत्तर यह आयेगा कि क्रिया के कारणभूत या किसी विकार के कारणभूत दो प्रकार के पदार्थ होते हैं—एक प्रेरक और एक उदासीन। यह प्रसग आगे आप सुनेंगे। काल द्रव्य को बताया है कि यह उदासीन कारण है। प्रेरक कारण जितने भी होगे वे क्रियावान होगे।

प्रेरक और उदासीन निमित्त की स्थिति—यद्यपि चाहे प्रेरक कारण हो चाहे उदासीन कारण

हो, किसी भी निमित्त कारण का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादान मे नही जाता, यह पक्की बात है। मगर उससे बहुत तथ्य ज्ञान होगा कि प्रेरक निमित्त किस वातावरण मे होता है ? केवल एक यह दृष्टि बनाकर कि किसी भी निमित्त कारण का गुण पर्याय उपादान मे होता है और उदासीन निमित्त किस कारण मे कभी भी नही पहुँचता और यह बात सत्य है, लेकिन इस आधार पर सभी कारणो को एक समान उदासीन कहना यह ठीक नही बैठता, अन्यथा आप कार्य भेद की दृष्टि मे नही कर सकते। तो काल द्रव्य क्रिया रूप से परिणमने वाले पदार्थों का स्वय निमित्त मात्र है, उदासीन निमित्त है। जैसे बुड्ढे के चलने मे लाठी उदासीन निमित्त है और क्यो जी। बुड्ढे को एक लडका पकडकर ले जाये और उस बुड्ढे को एक लाठी मिली चलने के लिये तो इन दो निमित्तो मे निमित्त की दृष्टि से अन्तर है कि नही ? है। एक उदासीन है और एक प्रेरक। और यद्यपि न उदासीन का कुछ उपादान मे गया और न कुछ प्रेरक का उपादान मे गया। यहाँ बात एक समान है। फिर से देखें तो सही, सक्रिय पदार्थ अन्य पदार्थ की क्रिया का हेतु होता है और निष्क्रिय लाठी बुड्ढे की क्रिया का कारण नही बना किन्तु बुड्ढे के चलने मे उदासीन निमित्त रहा। इस बात को आगे के प्रसग मे कहेंगे।

निमित्त के सान्निध्य मे ही विकारभाव की उपपत्ति—पदार्थों के जितने भी स्वभाव परिणमन होते हैं उनमे निमित्त केवल काल द्रव्य है और वह कहलाता है उदासीन निमित्त, क्योंकि काल द्रव्य सक्रिय नही है। विभाव परिणमन केवल जीव और पुद्गल मे होता है। सो जितने विभाव परिणमन होते हैं उनमे काल द्रव्य तो सबका उदासीन निमित्त कारण है ही, पर वहाँ उपादान कारण के साथ और भी कोई विशेष निमित्त कारण है। यदि विभाव परिणमन, विकार भाव निमित्त के न होने पर भी हो जाये तो वह स्वभाव परिणमन कहलायेगा, और जो स्वभाव परिणमन होता है उसकी धारा कभी मिटती नही है, सदा विकार होता रहेगा। तो यह आवश्यक है कि विकार परिणमन निमित्त के सन्निधान में ही होता है। अब उन विकार परिणमनो मे जो पुद्गल मे विकार परिणमन हैं उनमे तो उपादान व निमित्त कारण है और जीव मे जो विकार परिणमन है सो वे विकार परिणमन दो प्रकार के हैं—(१) व्यक्त विकार, (२) अव्यक्त विकार। व्यक्त विकार होने मे उपादान, निमित्त व आश्रयभूत ३ कारण हैं. अव्यक्त विकार में उपादान व निमित्त दो कारण हैं।

व्यक्त और अव्यक्त विकार तथा उनके कारणो का सक्षिप्त दिग्दर्शन—व्यक्त विकार उसे कहते हैं जो बुद्धि मे आये, जिसका अनुभव बने, महसूस हो वह है व्यक्त विकार। और अव्यक्त विकार वह कहलाता है जो बुद्धि मे न आये किन्तु इस उपयोग पर्दे पर पड जरूर गया है। इस आत्म-भूमि पर पुद्गल कर्मोदय का प्रतिफलन हो गया, पर बुद्धि मे नही आ पाता, वह कहलाता है अव्यक्त विकार। व्यक्त विकार के लिये तो कुछ दृष्टान्त देना ही नही है, सब लोग समझते हैं कि यह व्यक्त विकार है, इसमे महसूस होता, पीडा होती, हर्ष होता, बुद्धि मे आता, वह सब व्यक्त विकार है। अव्यक्त विकार—जैसे श्रेणी मे रहने वाले मुनियो के रागादिक विकार आते हैं। रागादिक विकार ९वें गुणस्थान तक चलते हैं, १०वें मे सूक्ष्म राग है, पर वह सब अव्यक्त है। वह तो शुक्ल ध्यान मे है, शुक्ल ध्यान कहते ही उसे हैं कि जहाँ राग न हो या महसूस न हो जहाँ द्वेष न हो या द्वेष महसूस न ,हो अनुभूति हो वही तो शुक्ल ध्यान है। तो बुद्धि मे नही है राग द्वेष इस कारण उसे शुक्ल ध्यान कहते हैं। उस श्रेणी मे रहने वाले मुनियो के अव्यक्त विकार हैं। अप्रमत्त दशा मे अव्यक्त विकार हैं, प्रमत्त दशा मे भी किसी का गुणस्थान मे नीचे उपयोग उसका लग रहा हो दूसरी ओर

और रागादिक विकार सो निरन्तर उदय मे आते ही रहते, पर कोई समझ मे ही नही आ पाया, क्योकि लगा था उपयोग दूसरी ओर। सम्यग्दृष्टि के लिये जब वह स्वानुभव मे है तो उपयोग तो सहज शुद्ध आत्मस्वरूप मे लगा है, कर्मोदय तो निरन्तर चल रहा है और उनका प्रतिफलन भी निरन्तर हो रहा है। तो वहाँ हो गया अव्यक्त विकार। तो अव्यक्त विकार मे तो दो कारण हैं—(१) उपादान कारण और, (२) निमित्त कारण, किन्तु व्यक्त विकार मे तीन कारण होते हैं—(१) उपादान कारण, (२) निमित्त कारण और, (३) आश्रयभूत कारण। किसी भी इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ पर उपयोग लग रहा हो तब वह विकार व्यक्त होता है, नही तो उसकी क्या मुद्रा? कुछ उसका रूपक नही बन पाता। ऐसा यह विकार परिणमन निमित्त सन्निधान मे हुआ करता है। वहाँ भी यह ही बुद्धि रखना कि निमित्त के सन्निधान मे तो हुये विकार अगर निमित्त को परिणति मे उपादान मे विकार नही हुये।

प्रेरक निमित्त और उदासीन निमित्त—निमित्त के दो प्रकार बनते—(१) प्रेरक निमित्त, (२) उदासीन निमित्त। जो अनुरूप व्यापार कर रहा है वह तो है प्रेरक निमित्त और जो व्यापार नही कर रहा किन्तु उपस्थित है वह है उदासीन निमित्त। जैसे घडा बनाया कुम्हार ने। लोक वचन ऐसे ही कहे जाते है। सो कहते ना। कुम्हार निमित्त कारण है घडा बनने का। और यदि कुम्हार चाक के पास बैठा है, लेटा है, आराम कर रहा है तो वह कुम्हार निमित्त बनता क्या? नही बनता। घडा भी नही बन रहा। बैठा है, जैसे गधा या लडके बच्चे जैसे वहाँ खेलते हैं वैसे ही कुम्हार भी बैठा है तो कुम्हार यदि उदासीन है तो घडा क्यो नही बन रहा? तब यह ही तो कहा जायेगा कि जिस प्रकार घडा बन सकता है उस प्रकार का व्यापार करता हुआ कुम्हार, हाथ चलाता हुआ कुम्हार हो तो वह निमित्त कारण है, तब इसका अर्थ क्या हुआ कि प्रेरक निमित्त कारण है। जैसे प्रकाश हो रहा है इस समय सूर्य के सान्निध्य मे तो सूर्य तो जमीन पर प्रकाश होने का निमित्त कारण है पर क्या वह प्रेरक कारण है या उदासीन कारण है? वह उदासीन कारण है। उपस्थित भर है और प्रकाश हो रहा है। सूर्य कुछ ऐसा व्यापार नही कर रहा है कि इस जीव के भीतर अपनी कुछ चेष्टा करके प्रकाश करे। वह तो केवल उपस्थित मात्र है। जो कोई व्यापार नही कर रहे, ऐसा निमित्त तो कहलाता है उदासीन और जो व्यापार करते हुये हो, जिस व्यापार सम्पन्नता के होने पर विचार भाव होता हो जीव मे या पुद्गल मे वह कहलाता है प्रेरक निमित्त।

क्रियावती शक्तिमान पदार्थों मे ही क्रिया की समवता—यह प्रकरण चल रहा है कि आत्मा क्रियावान है। यदि यह क्रियावान न होता तो शरीरादि के अगो मे क्रिया न हो सकती थी, क्योकि सक्रियता का निमित्त कारण सक्रिय होता है। इस प्रकरण मे एक शका हो रही है कि आत्मा को सक्रिय सिद्ध कर दिया। जीव क्रियावान है, और सिद्धान्त भी यह बताता है कि जीव मे क्रियावती शक्ति और भाववती शक्ति दोनो ही हैं, ऐसे ही पुद्गल मे भी क्रियावती शक्ति और भाववती शक्ति दोनो ही हैं। शेष द्रव्यो मे सिर्फ भाववती शक्ति है, क्रियावती नही। जिसमे क्रियावती शक्ति नही वह निष्क्रिय है। जिसमे क्रियावती शक्ति है वह कभी निष्क्रिय होता कभी सक्रिय होता। खैर जब यह शक्ति सिद्ध कर दिया तो एक शका हुई कि जीव अगर सक्रिय है तो मोक्ष होने पर भी जीव को सक्रिय रहना चाहिये, चलते रहना चाहिये। उसका उत्तर यह है कि यह बात तो स्पष्ट ही है—जीव अष्ट कर्मों से मुक्त होने पर ऊर्ध्वगमन स्वभाव से ऊपर जाता है, अब यह बात अन्य है कि धर्म-अधर्म

द्रव्य का सद्भाव जहाँ तक है वहाँ ही तक इसकी गति स्थिति है। किन्तु यहाँ एक बात ध्यान मे लेना कि जिस प्रकार की क्रिया ससारी जीवो मे होती है उस तरह की नही होती क्रिया। कर्मों के प्रेरे ये ससारी जीव तिरछे चलते, नचते फिरते। विग्रह गति हो तो भी ये किन्ही दिशाओ मे चलते। पर मुक्त जीव केवल ऊर्द्ध गमन स्वभाव से ऊपर ही जाते हैं। अथवा यह समझना चाहिये कि फिर आगे क्रिया का निमित्त न होने से जाना भी नही जाता। क्रियावती शक्ति का अब वहाँ स्वभाव परिणमन हो रहा है, विभाव परिणमन नही है, सो जैसे पुद्गल की क्रिया मे, शरीर के अग की क्रिया मे कारण-भूत यह आत्मा क्रियावान है, तो पुद्गल भी सक्रिय हुआ और जीव भी सक्रिय हुआ, और इसमे क्रिया स्वपर निमित्तक होती है, उत्पाद व्यय स्वपर निमित्तक होता है जैसे पदार्थ मे अपनी योग्यता से और अन्य का निमित्त सन्निधान होने पर कर्म व उत्पाद व्यय हुआ करता है।

क्रिया और क्रियावान मे सर्वथा भेदैकान्त की असिद्धि—यहाँ यह बात बतायी गई कि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य ये तीन तो निष्क्रिय हैं अस्तिकाय, काल द्रव्य भी निष्क्रिय हैं उसका वर्णन आगे होगा और जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य ये क्रियावान हैं, तो वैशेषिको की शका यह चल रही थी कि क्रिया पदार्थ से अलग वस्तु है। देखो किसी को अलग समझ मे नही आ रहा कि हाथ अगर चला तो हाथ की क्रिया हाथ से अलग है। कोई मान सकता क्या यह बात ? हाथ की क्रिया हाथ मे ही है। तो बात तो ऐसी ही है कि जीव की क्रिया जीव मे ही है। उस काल जीवमय है। मेरे जीव से निराली मेरी क्रिया नही है। पर विशेषवाद मे तो जरा भी शब्द का फर्क हुआ तो भेद कर डालते। ऐसा उन्होने व्रत ले रखा है। यह हाथ क्रिया कर रहा है तो ऐसा शब्द सुनकर यो लगेगा कि जैसे कोई कहता है कि यह बालक पेंसिल बना रहा है। तो बालक अलग है, पेंसिल अलग है ऐसे ही हाथ क्रिया कर रहा है तो हाथ अलग है, क्रिया अलग है। यो कुछ समझ भेद से क्रिया को क्रियावान से अलग बताते हैं। लेकिन क्रिया से क्रियावान अलग है ऐसा किसी की समझ मे नही आता। अगर क्रियावान अलग है, क्रिया अलग है, क्रिया करने वाला हाथ अलग है और क्रिया अलग है तो अब न क्रिया कुछ रही न हाथ कुछ रहा, पदार्थ यह निष्क्रिय हो गया। जैसे अग्नि मे उष्णता यह अलग है क्या ? इसे भी वैशेषिक लोग अलग मानते हैं। उनका कहना है कि गर्मी के सम्बन्ध से अग्नि गर्म हुई। अगर गर्मी अलग है और अग्नि अलग है तो गर्मी तो दूर है, अग्नि दूर है तो अग्नि तो गर्मी बिना रह गई ना ? तो फिर अग्नि क्या ? और गर्मी अग्नि बिना रह गई अथवा दोनो ही न रहे, अग्नि बिना गर्मी कैसे रहे, गर्मी बिना अग्नि कैसे रहे ? ऐसी ही क्रिया की बात है। क्रिया बिना क्रियावान पदार्थ क्या कहलायेंगे और क्रियावान बिना क्रिया क्या कहलायेगी ? इस प्रकार के व्यापार के होते हुये पदार्थ मे यह व्यवहार देखा जाता है।

किसी भी युक्ति से क्रिया व क्रियावान मे सर्वथा भेद की सिद्धि की अशक्यता—कुछ यहाँ वैशेषिक लोग, अन्य मतावलम्बी भेद सिद्ध करने को कहते हैं कि क्रिया और क्रिया का आश्रयभूत पदार्थ ये दोनो भिन्न हैं, क्योकि इनका भिन्न-भिन्न रूप से ज्ञान हुआ ना ? क्रिया, क्रिया कहलाती है, पदार्थ, पदार्थ कहलाता है। जैसे दो पर्वत दूर-दूर हो तो उनका भेद रूप से ज्ञान हुआ ना ? जैसे हिमा-लय पर्वत या विन्ध्याचल पर्वत दो अलग-अलग हैं तो अलग अलग ही हैं, इसकी अलग समझ बनती है।—तो ऐसे ही क्रिया और पदार्थ इनकी समझ जुडी बनती है। ज्ञान मे तो आ रहा कि क्रिया, क्रिया कहलाती, पदार्थ, पदार्थ कहलाता। अगर ये एक होते तो सदा क्रिया चलती जैसे घोडा मे

घोड़ा है, कोई क्रिया नही हो रही, अब चलने लगा क्रिया हो गई। तो जब इनमे भेद है ऐसी समझ बनें तो ये जुदे ही हैं, पर यह शका यो ठीक नही कि क्रिया क्रियावान से सर्वथा भिन्न नही हो सकती। कथञ्चित भेद है। जैसे अभी मनुष्य खडा, अब चल दिया। अगर एक ही होता तो ये दो रूप न बनते कि अभी खडा था, अभी चल दिया, पर भेद पूर्वक जाने नही जाते ये, इसलिये इनमे भेद न समझना और फिर सर्वथा एकान्तवाद तो कही भी नही है। दो पर्वत जुदे-जुदे पडे हैं मगर सर्वथा भिन्न नही है वे। सत्त्व सामान्य से एक हैं, यह भी सत् है, वह भी सत् है। कही ऐसा नही है कि यह तो सत् है वह असत है। लो सत् से अभेद तो रहा। तो मतलब यह है कि सर्वथा एकान्त के अभिप्राय मे किसी भी वस्तु की सिद्धि नही होती।

अभिन्नैकदेश स्थितत्व हेतु से क्रिया को क्रियावान से सर्वथा अभिन्न मानने की एक आरेका— एक शकाकार यह कह रहा है कि क्रिया से क्रियावान भिन्न नही है। तो सर्वथा अभिन्न ही मान लो, क्योकि वही क्रिया है, वही पदार्थ है, हाथ चला तो वही पदार्थ है, वही क्रिया है तो उन्हे एक मान लीजिये। शका किस बात की चल रही है ? देखो—द्रव्य, गुण, पर्याय, इन तीन के बोध बिना तत्त्व-ज्ञान स्पष्ट नही होता। जैसे आत्म द्रव्य है तो आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक गुण हैं। और, आत्मा मे उन गुणो की अवस्थायें बनना, यह भाववान पर्याय है और एक देश से दूसरे देश मे जाना, यह क्रियावान पर्याय है। तो इसी के बारे मे शका चल रही है कि गुण और क्रिया, गुण और पर्याय ये द्रव्य से अभिन्न है। उत्तर— सर्वथा अभिन्न भी नही, कथञ्चित् अभिन्न है, किन्तु वैशेषिक यह मानते हैं कि ये तीन चीजें बिल्कुल अलग अलग हैं। द्रव्य अलग पदार्थ है, गुण अलग पदार्थ है, कर्म अलग पदार्थ है, तो उस ही की यहाँ चर्चा चल रही। कोई कठिन या नया विषय नही है, जैसे रोज-रोज बोलते रहते है, द्रव्य, गुण, पर्याय, उस ही की यह चर्चा है। चर्चा यहाँ यह चल रही है कि पर्याय द्रव्य से अत्यन्त जुदी है या एकमेक है ऐसा कोई कोई मानते हैं, पर्याय दो किस्म की होती है—एक एक भाववान, दूसरी क्रियावान पर्याय। तो यह क्रिया पर्याय की बात चल रही है कि क्रिया क्रियावान पदार्थ से सर्वथा अभिन्न है। ऐसा एक नया शकाकार कह रहा है, तो उसका हेतु दे रहे कि भिन्न देश मे स्थित है। जहाँ हो क्रिया है वहाँ ही वे पदार्थ हैं।

लोकदृष्टि से क्रिया को क्रियावान से सर्वथा अभिन्न मानने की आरेका का समाधान—उक्त शका का समाधान यह है कि यह जो हेतु दे रहे हो यह एक ही देश मे है, एक ही प्रदेश मे है, क्षेत्र में है इस कारण दोनो एक हैं। तो एक ही देश मे रहते हैं यह आप लौकिक दृष्टि से कह रहे हैं या शास्त्रीय दृष्टि से ? अगर लौकिक दृष्टि से कह रहे हो जैसे कि एक गिलास मे शर्बत बनाया, पानी है, बूरा है, काली मिर्च है, इलायची है, कई चीजें डाली है उसमे तो यो कह दिया करते लोग कि वह एक चीज है, क्योकि एक ही जगह है सब। मगर लोकदृष्टि से भी देखे तो भी एक जगह नही हैं वे सब। चाहे कितना ही घुल-मिल गई हो वे सब चीजें हैं गिलास मे, मगर कालीमिर्च के अश काली मिर्च मे ही है, इलायची के अश इलायची मे ही हैं। वे इतने सूक्ष्म हो गये हैं कि जुदे एकदम नही मालूम पडते, मगर जुदे-जुदे जानने की मशीनें हैं, जीभ से भी चखकर जाना जा सकता। कि यह तो कालीमिर्च है, यह इलायची है, यह बूरा है वहाँ स्वादभेद है ना ? एक तो शर्बत को पीकर भी उनमे भेद जाना जा सकता, दूसरे मशीनो द्वारा भी इनको अलग-अलग किया जा सकता।

तो जैसे शर्बत मे मिल जुल कर भी सब चीजें अलग अलग हैं ऐसे ही अन्य अन्य चीजें भी जान लें कि जीव है तो एक देश मे रहने के कारण एक हो जाये इसके लिये दृष्टान्त दिया सो यह बात नही बनी।

शास्त्रीय दृष्टि से क्रिया को क्रियावान से अभिन्न मानने की आरेका का समाधान—अगर शास्त्रीय विधि से पूछते हो तो शास्त्रीय विधि का अर्थ यह है कि जैसे एक ही जगह पर हवा भी चल रही, धूप भी हो रही। अब यह बतलाओ कि एक ही आकाश प्रदेश मे धूप भी है, हवा भी है, धूप मे हवा है। हवा मे ही धूप है। तो शर्बत की अपेक्षा इनमे अधिक मिक्सचर है, मगर धूप अपने धूप अवयवों मे रहती है और वायु अपनी वायु मे रहती है कभी बडी धूप भी पड रही हो, और हवा भी चल रही हो, कुछ ठड के दिन हो और आप कोई खेस ओढकर बैठ जायें तो आपको हवा न लगेगी धूप लगेगी। उसके जानने के उपाय भी हैं। तो ऐसे ही समझिये कि क्रिया है क्रियावान के आश्रय मे और क्रियावान पदार्थ है अपने अवयवो के आश्रय मे। जैसे घोडा चल रहा है तो चलना तो घोडे मे है और घोडा अपने अवयवो मे है, ऐसा आश्रयभूत भी भिन्न मिल गया, इससे भी जाना जाता कि वह एक नही है।

क्रिया व क्रियावान के भेद अभेद की समस्या का स्याद्वाद से समाधान—स्याद्वाद का सहारा लिये बिना कोई भी तत्त्व सिद्ध नही किया जा सकता है। अब यह बतलाओ कि प्राण जीव से भिन्न हैं या अभिन्न ? अगर कहो कि जीव से भिन्न हैं प्राण तो फिर जीव को कुचलते जाओ, प्राण का क्या बिगडेगा ? वह तो न्यारा पडा है, हिंसा कुछ नही होने की। अगर कहो कि जीव से प्राण न्यारा नही है तो जीव तो अमर है। सो कुचलने से प्राण भी कभी खतम न होगे, क्योकि वे एक हो गये। क्या उत्तर बनेगा ? तो उत्तर देंगे स्याद्वादी कि कथञ्चित भिन्न हैं कथञ्चित अभिन्न हैं। क्रिया क्रियावान से भिन्न है या अभिन्न ? कोई कहता है कि भिन्न है तो उसमे भी दोष और कोई कहता है कि अभिन्न है उसमे भी दोष। स्याद्वाद उत्तर देता है कि कथञ्चित भेद हैं और कथञ्चित अभेद। तो यह भी सिद्ध न हो सकेगा कि क्रिया क्रियावान से अत्यन्त अभिन्न होती है।

क्रम प्राप्त अजीव द्रव्यो के वर्णन के प्रसग मे निष्क्रिय अजीवकायों का प्रकृत सूत्र मे कथन—निष्क्रियाणि च, यह सूत्र कहा जा रहा रहा है, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य ये तीन अस्तिकाय तो निष्क्रिय हैं, रच भी हिलते-डुलते नही। आकाश अनन्त है, सर्वव्यापी है उसमे हिलना डु न। बोलने का क्या सवाल ? धर्म अधर्म द्रव्य भी लोकाकाश प्रमाण है, लोकाकाश मे सर्वव्यापी हैं, उसकी भी क्रिया कुछ नही। तो ये तीन अस्तिकाय निष्क्रिय बताये गये तो उसका अर्थ यह हुआ कि शष बचे दो अस्तिकाय, जीव और पुद्गल। ये क्रियावान पदार्थ हैं। मोक्ष शास्त्र मे ७ तत्त्वो का विवेचन किया गया है। जैसे कि प्रथम अध्याय मे बताया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्ष मार्ग है। और सम्यग्दर्शन क्या ? प्रयोजनभूत तत्त्वो का यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तो वह तत्त्व क्या है ? कितना है। उत्तर बताया गया था कि जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्त्व हैं। इन ७ तत्त्वो में से जीव का वर्णन चतुर्थ अध्याय तक हुआ था, यह पचम अध्याय चल रहा है। इसमे अजीव तत्त्व का वर्णन है। अजीव पदार्थ कैसे-कैसे होते हैं यह बात यहा समझायी जा रही है। कही ऊल जलूल विषय नही आ रहा कि क्यो यह विषय रख दिया, उसका नम्बर है, क्रम प्राप्त है, सो इस अजीव पदार्थों के बारे मे यह सब कथन चल रहा है।

जीव व पुद्गलो की सक्रियता व धर्म अधर्म, आकाश व काल द्रव्य की निष्क्रियता—इस पचम

ध्याय मे अजीव पदार्थों का वर्णन चल रहा है। अजीव पदार्थ हैं ५। (१) पुद्गल, (२) धर्म, (३) धर्म, (४) आकाश और, (५) काल। अजीवो मे से अस्तिकाय हैं ४—पुद्गल, धर्म, अधर्म और ाकाश। और जीव द्रव्य भी अस्तिकाय है। तो यो अस्तिकाय की दृष्टि से ५ द्रव्य है (१) जीव, २) पुद्गल, (३) धर्म, (४) अधर्म और, (५) आकाश। इनमे जीव और पुद्गल तो क्रियावान है, र्म, अधर्म, आकाश ये क्रियावान नही हैं। जीव क्रियावान है, इस सम्बन्ध मे बहुत चर्चा चली, पर न्त मे यह बात निष्कर्ष मे आयी कि जीव अगर निष्क्रिय होता तो शरीर के अगो मे क्रिया का ारण न बन सकता था। तो जीव भी सक्रिय है और मुक्त हो जाने पर एक समय का ऊर्द्धगमन वभाव से क्रिया करके मोक्ष में पहुँचता है। तो वह है स्वाभाविक गति। मोक्ष मे अब क्रिया तो ही होती। तो यो समझिये कि क्रियावती शक्ति का शुद्ध परिणमन चल रहा है। पर अन्य गुणो मे रिणमन रूप क्रिया हो रही है। इस तरह से कथञ्चित् सक्रिय वहाँ भी कह सकते, पुद्गल भी सक्रिय है और उनमे क्रिया स्वाभाविक भी होती है और प्रयोग के कारण भी होती है। जैसे एक पुद्गल अणु गति करता है, स्वभाव है। ये स्कन्ध ढेला पत्थर ये चलाये चलते है, फेंकने से फिकते हैं। तो यह प्रायोगिक हुआ। प्रायोगिक कैसा कि जैसे स्पष्ट दिखता है कि इञ्जन चल रहा, एक की क्रिया में दूसरा निमित्त हो रहा, यह सब प्रयोग की क्रिया कहलाती है।

क्रियावान से क्रिया का कथंचित् भेद व कथंचित् अभेद—इस क्रिया के बारे मे बतलाया कि यह क्रिया क्रियावान से सर्वथा भिन्न नही है कि क्रिया कही पडी हो और क्रिया होने वाला अलग हो। यदि भिन्न हो तो क्रिया हो ही नही सकती, क्योकि उनमे सयोग तो होता नही। समवाय की टेक करते है वैशेषिक। तो वह समवाय एक तरह का तादात्म्य है अभेद है। कथनमात्र का भेद है। तो सर्वथा अभेद भी नही बनता, क्योकि एक ही हो जाये तो क्रिया और क्रियावान ये सज्ञा नही हो सकती। सर्वथा भेद भी नही है कि क्रिया अलग पडी हो, क्रियावान अलग पडा हो। जैसे डडा और डडी ये अलग है तो सयोग बन जाने पर एक कहा से हो ?

क्षणिक पदार्थो में क्रिया की असभवता की आशंका—अब एक शका और हो सकती है क्षणिकवादियो की ओर से। एक क्षणिकवाद सिद्धान्त है। यह मानता कि प्रत्येक पदार्थ एक समय को रहता है और नष्ट हो जाता है। नया ही उत्पन्न होता है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है। यो क्षणिकवाद का कहना है कि जब सर्वपदार्थ अनित्य है, एक क्षण को हुये और बाद मे मिट गए तो उनमे क्रिया कैसे बनेगी ? क्रिया तो तब बने जब कुछ समय ठहरे। तो यह चल रहा, परन्तु पदार्थ तो ठहरता ही नही, क्षण-क्षण मे नया-नया होता जाता है। जैसे कि जैन सिद्धान्त मे मानते ना कि क्षणिकवर्ती पर्याय एक क्षण को पर्याय हुई और वह मिट गई तो वह पर्याय मे ही पदार्थ है, ऐसा क्षणिकवादियो का कथन है और वह क्षण भर को हुई और खतम हो गई। फिर क्रिया कैसे बनेगी, इसलिये सभी पदार्थ क्रियारहित हैं। सिद्धान्त के अनुसार जो कि सभी पदार्थ क्षणिक हैं, तो जैसे कोई एक घोडा दौड रहा है, तो वहाँ यह बात नही है कि कोई एक घोडा है और वही दौड रहा है। इस प्रदेश मे घोडा है, वह दूसरा है। दूसरे प्रदेश मे घोडा है वह दूसरा पैदा हुआ, तीसरे अगुल पर घोडा आया तो अन्य पैदा हुआ। इस तरह नये-नये घोडे पैदा होते रहते हैं और लोगो को भ्रम हो रहा है कि एक ही घोडा जा रहा है। यह सब शकाकार की तरफ से कह रहे हैं, वह कैसी युक्ति दे रहा। उसकी एक युक्ति और भी देखें जैसे सनीमा के पर्दे पर दौडते हुये चलते हुये चित्र नजर आते

मगर वे चित्र जो नजर आये वे क्या फिल्म की रील पर दौड रहे ? जैसे एक यह हाथ है, इसको इधर से उधर करके १०० बार उस हाथ के फोटो लिये गए तो १०० तरह के फोटो नजर आये मगर वह फोटो रील मे अपनी जगह निष्क्रिय हैं। उनका चलाव नही है, पर उनको जो लगातार दिखाया जाता है तो चलता हुआ नजर आता है। तो चलते हुये जो नजर आता है वह तो भ्रम है कि सच है ? वह भ्रम है। एक-एक फोटो मे एक-एक ही फोटो है और अपनी जगह उतनी ही है वहां क्रिया रच भी नही है। तो उनका जो चित्रण हुआ सनीमा के पर्दों पर तो वहाँ पर भी एक-एक ही अक्स आ रहा है। उनकी क्रिया नही हो रही है मगर जो पास-पास के वे चित्र हैं सो एक सतान लगने लगते हैं कि हाँ चलो ऐसे ही जो पदार्थ चल रहे हैं सो हर एक प्रदेश पर नया-नया पदार्थ उत्पन्न हुआ है और वे निकट-निकट होने से उसमे भ्रम हो गया कि ये चलते हैं। क्षणिकवादी कहते हैं कि सभी पदार्थ क्षणिक है। सो निष्क्रिय ही हैं, क्रिया किसी मे नही है।

सर्वथा क्षणिकत्व का निराकरण होने से पदार्थों की सक्रियता का समर्थन—उक्त शका का समाधान यह है कि ऐसा किसी को प्रतीति मे नही आ रहा कि पदार्थ क्षण-क्षण मे नष्ट होता है। वही-वही पदार्थ है, उसका परिणाम बदलता है। जैसे आप यह एक जीव हैं। बचपन गुजरा, जवानी गुजरी, बुढापा आया और उस बीच घण्टे-घण्टे मे हजारो तरह के विचार चले तो ये परिणमन तो हुए आपके पर ये अलग पदार्थ नही हैं। यदि ये अलग-अलग पदार्थ हो—८ बजे दूसरा जीव, ८ बजकर एक मिनट बाद दूसरा जीव, तो उस एक मिनट पहले वाले जीव की बात दूसरे मिनट मे होने वाले जीव को याद क्यो रहती है ? और उससे अपना सिलसिला क्यो जोडता है ? जैसे कि दूसरे शरीर मे रहने वाले जीव की बात दूसरे मे कुछ नही है क्योकि वह अलग-अलग हैं। ऐसे ही यहाँ भी अलग-अलग हैं, फिर तो कुछ व्यवहार ही नही हो सकता। लेन-देन दूकान, आपसी व्यवहार बोलचाल सब खतम हो जायेगा। वस्तुतः पदार्थ क्षणिक नही है। अब सिद्धान्त क्या निकला कि सभी पदार्थ द्रव्य दृष्टि से नित्य हैं, पर्याय दृष्टि से अनित्य हैं, प्रत्येक पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक है, सर्वथा नित्य भी कुछ नही है। कोई सोचे कि सर्वथा नित्य मान लें निष्क्रिय बन जाएगा तो ऐसा कोई पदार्थ होता ही नही है कि पर्याय शून्य हो। उसका कोई व्यक्त रूप नही होता। तो सभी पदार्थ कथञ्चित् सक्रिय हैं और कथञ्चित् निष्क्रिय हैं, और इस दृष्टि मे परिणमन को क्रिया मानना।

क्रिया की अपेक्षा सक्रिय निष्क्रिय द्रव्यो का परिचय—यह प्रकरण चल रहा है एक देश से दूसरे देश मे पहुँचने वाली क्रियाओ का। क्रिया की अपेक्षा सभी सक्रिय नही हैं किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य तो निष्क्रिय हैं और जीव पुदगल ये दो द्रव्य सक्रिय हैं, इस प्रकार अजीव पदार्थ मे निष्क्रिय और सक्रियपने का एक निर्णय हुआ। अब सर्वप्रथम सूत्र मे बताया था किसी अध्याय मे कि ये अजीवकाय हैं धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल अस्तिकाय हैं, उससे यह तो जानने मे आ गया कि यह बहुप्रदेशी है जो बहुप्रदेशी होता है उसको अस्तिकाय कहते हैं। तो यह तो ज्ञान हो गया पर यह नही मालूम पडा कि किस द्रव्य मे कितने प्रदेश होते हैं। सो अब प्रदेशो की इयत्ता याने परिमाण बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

असख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैक जीवानाम् ॥५-८॥

असख्यात प्रदेश वाले द्रव्यों का निर्देश—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीव, इसके असख्यात प्रदेश होते हैं। कैसे जाना कि इसके असख्यात प्रदेश होते हैं ? तो धर्म और अधर्म द्रव्य का परिमाण

देखिये—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य का आदि अन्त परिमाण है। आकाश की तरह अनन्त नही हो सकता, क्योकि यह लोकाकाश मे ही रहता है, और लोक का परिमाण है। पृथ्वी, ढेला, पत्थर आदिक जो कुछ बने हैं, यह ही तो समस्त लोक है, तो इन का अन्त जरूर है कही। चाहे कितना ही बडा विस्तार हो, पर लोक का अन्त कही जरूर है। तो धर्म द्रव्य लोक काश मे है। जहाँ तक लोक है वहाँ तक धर्मद्रव्य है, या कहो कि जहाँ तक धर्मद्रव्य है वहाँ तक लोक है, तो धर्मद्रव्य का भी कही अन्त है इसलिये अनन्त प्रदेश तो हो नही सकते, पर इतना विशाल है कि उनके प्रदेश गिने नही जा सकते, इस कारण सख्यात भी नही है और सकोच विस्तार भी नही होता। भैया, मूल गणनायें ३ होती हैं—(१) सख्यात, (२) असख्यात और, (३) अनन्त। धर्म अधर्म द्रव्य के प्रदेश अनन्त तो हैं नही, सख्यात भी नही, तब असख्यात हैं यह अपने आप सिद्ध होता है। धर्म द्रव्य के असख्यात प्रदेश है। अधर्मद्रव्य के असख्यात प्रदेश हैं। और एक जीव के असख्यात प्रदेश हैं।

लोक पूरण समुद्घातकी स्थिति से जीव के असख्येय प्रदेशो का स्पष्ट परिचय - एक जीव के ये प्रदेश कैसे समझे गए ? तो यो समझिये कि किसी अवस्था मे यदि यह जीव फैल जाये तो उतना ही फैल पाता है जितना कि धर्म द्रव्य का परिमाण है, लोकाकाश का परिमाण। इतना फैलता कब है ? केवली समुद्घात अवस्था मे। जब किसी मुनिराज के चार घातिया कर्म का क्षय हो जाता है तो वह सयोग केवली अरहत कहलाता है। उनके अभी चार अघातिया कर्म बाकी हैं—(१) वेदनीय, (२) आयु, (३) नाम और, (४) गोत्र। सो आयु तो बहुत थोडी होती है उन तीन कर्मों के मुकाबले मे और शेष तीन कर्म लाखो करोडो वर्षो के या उससे भी अधिक के होते हैं। तो यहाँ एक समस्या यह आती है कि आयु तो है मानो थोडी, मान लो चार मिनट की रह गई और तीन कर्म हैं लाखो करोडो वर्ष के तो आयु का क्षय होने पर फिर यह शरीर तो रहेगा नही, तो तीन का क्या हाल होगा ? तीन कर्म तो सत्ता मे हैं। तो बात यह है कि जिस समय आयु कर्म अन्तर्मुहूर्त रह जाता है उस समय मे सयोग केवली भगवान के समुद्घात होता है अर्थात् वे जीव प्रदेश शरीर से बाहर फैलते हैं और पहले तो वे दण्डाकार फैलते हैं। पद्मासन मे विराजे हो अरहत भगवान तो उस आकार फैलते है। षड्गासन से विराजे हो उस ढग से फैलते हैं, तिगुने आकार फैलते है, मगर लोक है १४ राजू तो वह सीक से भी पतला जैसा समझ लीजिए हो गया। डडे के आकार हो गया फिर अगल बगल फैलता है फिर कपाट (किवाड) के आकार हो गये प्रदेश। फिर आगे पीछे फैलते हैं, प्रतर हो गया, फिर बाकी जो वातवलय बचा है उसमे फैलते है, उस समय सारे लोक मे जीव के प्रदेश फैल चुकते है। उसके बाद घटते भी उस ही क्रम मे हैं, फिर शरीर प्रमाण रह जाते हैं। इस क्रिया मे बाकी के जो तीन अघातिया कर्म है वे आयु कर्म के करीब बराबर हो जाते हैं। जो कुछ अन्तर रहता है तो बाद मे अपने आप नष्ट हो जाता है। तो चारो कर्म एक बराबर के हो गए। तो एक साथ क्षय हुआ और मोक्ष उनका हुआ। तो यहाँ यह बात जानना कि जिस समय लोक पूरण समुद्घात हुआ उस समय लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर जीव का एक-एक प्रदेश हो गया, और जीव के मध्य के जो ८ प्रदेश हैं वे मेरु पर्वत के नीचे बीचोबीच मध्य मे जो ८ प्रदेश हैं वहा है और शेष सर्वत्र एक एक प्रदेश पर प्रदेश-प्रदेश ठहरकर ऊर्ध्वलोक मध्यलोक अधोलोक मे समग्र लोकाकाश को व्याप लेते हैं। तो जीव धर्मद्रव्य के प्रदेश बराबर हो गये लोक पूरण अवस्था मे, उससे जाना गया कि ये जीव के भी असख्यात प्रदेश होते है। अब जीव के प्रदेश तो सकोच मे आ जाते कि यह देह बराबर हो

गया मगर धर्म द्रव्य के प्रदेश सकोच मे नही आते। वे नित्य अवस्थित हैं। जैसे हैं वैसे ही हैं। तो इस प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और एक जीव इनके असख्यात प्रदेश होते हैं।

असख्यात को असंख्यात रूप मे ही जानने मे सर्वज्ञता—यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जब इसके प्रदेश गिनने मे ही नही आते तो फिर उन प्रदेशो की कोई जानकारी ही नही रहती। कितने हैं प्रदेश ! उनकी कुछ गणना ही नही है तब फिर उनको कोई जान ही नही सकता। तो कोई फिर सर्वज्ञ नही रहा। कहते हैं जो सबको जाने सो सर्वज्ञ। जीवके सब प्रदेशोको कहाँ जाना ? वे गिनती मे ही नही आते। तो इस तरह तो असर्वज्ञता आ जायेगी। उत्तर मे कहते हैं कि यह शका करना ठीक नही, कारण यह है कि जानने मे आया, मगर वह असख्यात, असख्यात रूप से जानने मे आया, ये गिने नही जा सकते। इतने है इस रूप से जानने मे आये तो जान लिया ना सबको। और ठीक ही जाना। असख्यात को असख्यात रूप से जानना यथार्थ जानना है। अनन्त को अनन्त रूप से जानना यथार्थ ज्ञान है। यदि असख्यात को गिनती रूप मे जाना जाता तो झूठा ज्ञान है। और जो जैसा अवस्थित है उसको उस तरह से जानना यह है सम्यग्ज्ञान। तो इस प्रकार सिद्ध हुआ कि धर्म द्रव्य के असख्यात प्रदेश, अधर्मद्रव्य के असख्यात प्रदेश और एक जीव के असख्यात प्रदेश होते हैं।

प्रदेश का प्रदेशन—प्रदेश का अर्थ क्या है ? प्रदिश्यन्ते प्रतिपाद्यन्ते इति प्रदेश जो प्रतिपादित हो, जो समझाया जाये वह प्रदेश है, यह कैसे प्रतिपादित किया गया ? एक परमाणु जितनी जगहको घेरे उसे कहते हैं एक प्रदेश। परमाणु नाम है अविभागी पुद्गल द्रव्य का। जो कुछ ये दिखते हैं ये सब स्कन्ध है, इनमे अनन्त परमाणु हैं। असख्यात, सख्यात या दो चार परमाणु का कोई स्कन्ध बना हो तो वह आँखो से दिखने मे न आयेगा। अर्थात जब अनन्तानन्त परमाणु हैं तब दृश्य होते है। फिर भी वे सब एक एक ही तो हैं। वे बिखर जायें और बिखरते बिखरते उनमे एक परमाणु रह जाये तो वह एक प्रदेश है। परमाणु परमाणु एक प्रदेशी। अब ऐसा ध्यान मे लीजिए कि सूई की नोक से जितना गड्ढा हो सकता है कागज में या पृथ्वी पर उतनी जगह मे अनगिनते प्रदेश होते हैं आकाश के। इतनी जगह मे पडा हुआ कोई स्कन्ध है तो वह भी अनगिनते परमाणुओ का स्कन्ध है अनन्त का भी हो सकता है एक परमाणु कितना होता है ? आज के विज्ञान मे अणु बम, परमाणु बम कहते तो है मगर वह अणु नही है वह परमाणु नही है। अणु का कभी प्रयोग नही किया जा सकता। वह तो अपने आप जो कुछ हो सो हो। ये अणु बम परमाणु बम, यह भी अनन्त परमाणुओ का स्कन्ध है। मगर शस्त्र विद्या मे कम से कम जो कुछ स्कन्ध उनमे तैयार हो उसका नाम परमाणु रखा। यही उनकी दृष्टि मे छोटा है।

प्रदेश लक्षण के आधार पर असख्येय प्रदेश वाले पदार्थों का निरूपण—एक परमाणु जितनी जगहको घेरे उसे कहते हैं एक प्रदेश। एक परमाणु दो प्रदेशो को नही घेर सकता। हाँ एक प्रदेश मे कई परमाणु रह सकते हैं। वह तो एक अवगाहना की बात है, किन्तु एक परमाणु दो प्रदेशो को नही घेर पाता। तो एक परमाणु द्वारा जितने प्रदेश घिरे उसका नाम है प्रदेश। तो ऐसे ऐसे असख्यात प्रदेश है धर्म द्रव्य मे। और ठीक उतने ही अधर्म द्रव्य मे प्रदेश हैं और ठीक उतने ही एक जीव मे प्रदेश हैं। चाहे चीटी के शरीर का जीव हो, चाहे हाथी के शरीर का जीव हो, प्रदेश सबके बराबर हैं, असख्यात हैं। यह छोटे बड़े का जो अन्तर लग रहा है यह सकोच और विस्तार के कारण है। तो इन तीन मे जिसके असख्यात प्रदेश बताये गये, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य तो निष्क्रिय हैं और लोकाकाश

बराबर व्यापकर अवस्थित हैं, किन्तु जीव उतने प्रदेश वाला है जितने कि धर्म द्रव्य मे प्रदेश हैं, फिर भा उसके सकोच विस्तार का स्वभाव है। यह स्वभाव भी अन्य द्रव्य मे न मिलेगा। परमाणु का भी सकोच विस्तार नही है, वहा तो बध है, मिलना-जुलना है, बिछुडना है। अलग-अलग हो जाते हैं। घम द्रव्य मे भी सकोच विस्तार नही, अघर्म मे भी नही आकाश मे भी नही और कालद्रव्य मे भी नही।

जीव पदार्थ में ही कर्मोपाधिवश सकोच विस्तार—जीव एक ही ऐसा पदार्थ है कि जिसके प्रदेश का परमाणु सकुचित भी हो जाये और विस्तार भी हो जाये तो इस सकोच और विस्तार का कारण क्या हैं ? कर्मोदय। पुद्गल कर्म के उदय का निमित्त पाकर जैसी शरीर रचना हुई है उसमें फैल गया, अथवा सिकुड गया। तो जीव के प्रदेशो का सिकुडना या फैलना यह कर्मोदय का निमित्त पाकर होता है और यही कारण है कि जो जिस शरीर से मुक्त होता है वह उसी शरीर प्रमाण रहता है मोक्ष मे। कुछ लोग पूछते हैं कि वे सिद्ध वटबीजप्रमाण या सर्वव्यापकयो क्यो नही रहते हैं। तो कोई जवाव देवे कि उससे घटकर रहे या बढकर ? घट जाये इसका कारण क्या ? बढ जाये इसका कारण क्या ? घटने-बढने का कारण तो कर्मोदय था। अब कर्मक्षय हो गया तो न घट सकता और न बढ सकता। जिस प्रमाण मे था, मुक्त हुआ, मोक्ष होने पर वही प्रमाण रहता है। इस प्रकार इस अस्तिकाय के प्रमाण मे प्रदेश बताये हैं—धर्म, अधर्म और एक जीव के असख्यात। और वह असख्यात भी न जघन्य असख्यात न उत्कृष्ट असख्यात, किन्तु मध्यम असख्यात। असख्यात भी असख्यात तरह का होता है, उसमे जघन्य असख्यात भी नही है, उत्कृष्ट असख्यात भी नही है किन्तु मध्य का असख्यात और वह भी एक नियत। उसकी गणना नही है इस कारण स्पष्ट ध्यान मे नही आता मगर युक्ति से, आगम से यह भले प्रकार सिद्ध है कि इसमे असख्यात प्रदेश होते हैं।

एक द्रव्य मे प्रदेशपरिमाण निरूपण की संगतता मे आशका—पञ्चम अध्याय के प्रथम सूत्र मे अजीव अस्तिकायो के नाम लिये और उसके बाद जीव अस्तिकाय को भी बताया था। तो अस्तिकाय शब्द से इतना तो बोध हुआ कि ये द्रव्य बहुप्रदेशी हैं, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गल भी भी लिया गया है, स्कन्ध के नाते से और जीवद्रव्य, ये सब बहुप्रदेशी है। अब यहाँ प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशो की गणना बता रहे हैं। इस सूत्र मे बताया गया है कि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्य असख्यात प्रदेशी होते हैं। यहाँ एक शका यह हो सकती है कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य तो एक द्रव्य है और एक जीव भी एक द्रव्य है। तो एक द्रव्य मे प्रदेश की कल्पना करना उपचार सा मालूम होता है। जैसे बडी चीज हो, चौकी है तो कह सकते हैं कि इसमे अनन्त प्रदेश हैं, अनन्त परमाणु है। इसके अनन्त हिस्से हैं मगर एक द्रव्य के बारे मे हिस्सा बताना, प्रदेश बताना, अवयव बताना यह कैसे ठीक हो सकता है। और उपचार की जो बात है वह मिथ्यावचन है और मिथ्यावचन का तत्त्वपरीक्षा मे कोई अधिकार नही। लोकव्यवहार मे तो उपचार चलेगा, किन्तु जहा तत्त्व परीक्षण हो रहा वहाँ उपचार से कोई प्रयोजन नही। झूठ बात की क्या चर्चा बढाना ? पानी से तो प्यास बुझेगी, मृग-तृष्णा से नही इसलिये एक द्रव्य मे असख्यात प्रदेश बताना यह उपचार से कही हुई बात है, वास्तव मे नही है। जो एक द्रव्य है सो एक है, उसमे अवयव की क्या कल्पना ?

एक द्रव्य मे मुख्य क्षेत्र विभाग प्रतिपाद्य होने से प्रदेश परिणाम निरूपण की सगतता का समाधान—उक्त शका का उत्तर देते हैं। कल्पना नही, उपचार नही किन्तु मुख्य क्षेत्र का विभाग है।

एक धर्मद्रव्य है जो असख्यातप्रदेशी कहा गया है। तो धर्मद्रव्य का निज का है। सो तो युक्त ही है। हाँ दोनो कहो, अन्य कहो। तो धर्मद्रव्य के वर्णन में जब यह कहा जाए कि धर्मद्रव्य के द्वारा अवगाहित जो आकाश प्रदेश है तो वह प्रदेश अन्य है, पर धर्मद्रव्य के स्वय के क्षेत्र मे जो असख्यात प्रदेश बताये हैं वे तो द्रव्य के ही मुख्य हैं। ऐसे ही अधर्मद्रव्य के और एक जीव द्रव्य के उसके जो प्रदेश कहे गए है वे मुख्य हैं। निजका द्रव्य, निजका क्षेत्र, निजका काल और निजका भाव वह तो निज द्रव्य का ही है। तो निज केवल द्रव्य का जो क्षेत्र है उस ही को असंख्यात रूप से बताया।

मुख्य क्षेत्र विभाग होने से एक द्रव्य की निरवयवता की अनुपपत्ति की शका व समाधान—अब इसी से सम्बन्धित एक शका और हो सकती है कि यदि धर्मद्रव्य मे असख्यात प्रदेश मान लिया, अधर्म मे एक जीव मे असख्यात प्रदेश मान लिया तब तो यह निरवयव न होगा याने इसके अवयव बन गए। जसे शरीर के अवयव है, पैर हैं, हाथ हैं, पेट है, सिर है तो इसके बाद क्षेत्र मे है ना यह शरीर। इतना ही बडा परिमाण जब धर्म, अधर्म और एक जीव का है तो वह अवयव रहित नही कहलाया। निरवयव नही बनेगा। उनमे भी अवयव बन गये। जैसे कुर्सी टेबुल मे अवयव हुए क्योकि अब तो प्रदेश को मुख्य विभाग मान लिया कि उसके विभाग हैं। वह मुख्य मान लिया गया। तो फिर अब यह ही बन जाएगा। इस शका का उत्तर यह है कि एक द्रव्य मे मुख्य विभाग तो माना है, पर द्रव्यदृष्टि से नही माना, क्षेत्र दृष्टि से है वह बात। अवयव नाना तो तब कहलाते जब कि द्रव्य दृष्टि से यह नानापन होता। जैसे चौकी मे द्रव्य नाना हैं, अनन्त परमाणु हैं तो उनके अवयव बन जायेंगे। यह निचला अवयव है, यह चौडाई मे है, यह पाया मे है। यो अवयव बन जायेंगे, मगर जो एक ही द्रव्य है उस एक का अवयव कुछ नही हो सकता। भले ही क्षेत्र से असख्यात प्रदेश है मगर वह एक है। देखिये जो अवयवी हो, जिसमे बहुत अवयव होते तो वहाँ यह बात बना करती है कि एक अवयव मे कुछ घटना घटी तो अन्य अवयव मे नही घटती। चौकी का एक हिस्सा जला तो बाकी हिस्सा नही जल रहा। बुझा दीजिए उतनी जल चुकी, बाकी चौकी सही है, क्योकि यह चौकी अनेक द्रव्य है। एक द्रव्य मे ही यह बात नही घटी। अब जैसे एक जीव है तो उसमे यह न बन पाएगा कि पैर के प्रदेशो मे तो मौज माना जा रहा और हाथ के प्रदेश कष्ट मान रहे। कष्ट होगा तो समग्र भाव मे होगा क्योकि वह एक है, मौज होगा तो समग्र जीव मे होगा। धर्मद्रव्य मे भी जो अगुरुलघुत्वगुण की षड्गुण हानि वृद्धि से जो एक परिणमन होता है वह एक ही समग्र मे है, किन्तु घट पट आदिक पदार्थो मे ऐसी बात नही बनती। इससे सिद्ध है कि स्कन्ध तो अवयव वाला है, पर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य एक जीव आकाश भी प्रत्येक एक-एक द्रव्य निरवयव है।

सूत्रगत एक शब्द की सार्थकता—यह सूत्र चल रहा धर्म, अधर्म और एक जीव के प्रदेश परिमाण का। तो इस सूत्र मे एक जीव शब्द दिया। उसका तात्पर्य यह है कि एक जीव के हैं असख्यात प्रदेश। जीव तो अनन्तानन्त हैं। उनके प्रदेश तो मिलने-जुलने से अनन्तानन्त बनेगे फिर। फिर मिलने जुलने का क्या सवाल ? प्रत्येक जीव का सत्त्व अलग अलग है, और उनमे से एक जीव के असख्यात प्रदेश हैं। इसी कारण इस सूत्र मे एक जीव शब्द दिया है। जैसे धर्म द्रव्य एक है, दो या अनेक हैं ही नही तो वहाँ एक शब्द देने की जरूरत नही पडती। अधर्मद्रव्य भी एक है, अनेक नहीं है, इस कारण अधर्म के साथ ही एक शब्द बोलने की आवश्यकता नही हुई। किन्तु जीव हैं अनन्तानन्त। परन्तु एक एक जीव मे यह असख्यात प्रदेशी है, यह बताने के लिए इस जीव के एक शब्द

दिया है। जीव कितने होते हैं ? देखिये—मनुष्यो की सख्या चारो गतियो मे सबसे कम है। और मनुष्यो से असख्यात गुने नरक गति के जीव है और नारकियो से असख्यातगुने देवगति के जीव हैं। देवगति के जीवो से असंख्यातगुने त्रस जीव हैं। जितने अभी बताये ये तो आ ही गए और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ये भी मिल गये तो ये सभी त्रस जीव कहलाते है, और इन त्रस जीवो से असंख्यातगुने निगोद को छोडकर बाकी के सब स्थावर जीव हैं। पृथ्वीकाय जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय और जितने जीव अभी बताये है स्थावर तक के उन सबसे अनन्त गुने सिद्ध भगवान है, और सिद्ध भगवान से अनन्त गुने निगोदिया जीव हैं। अब जीवो की सख्या जान लो इन अनन्तानन्त जीवो मे से एक एक प्रत्येक जीव के असख्यात प्रदेश होते हैं।

सूत्र मे असख्येयाः प्रदेशा इन दो पदों को समास न करके अलग अलग प्रयुक्त करने का प्रयोजन—सूत्र मे तीन पद दिये हैं, असंख्येयाः प्रदेश. धर्माधर्मैक जीवाना, यह जो सम्बन्ध विवक्षा की है, इसके प्रदेश असख्यात हैं। तो प्रदेश तो पदार्थ से जुदे नही हैं, मगर कथञ्चित् भेद पूर्वक कहे बिना समझ ही न आयेगी और उसी के वास्ते यहाँ सम्बन्ध का निर्देश किया है। इसके प्रदेश होते हैं समझने के लिये। एक जो सम्पूर्ण द्रव्य है वह तो द्रव्य है और एक क्षेत्र की दृष्टि से परमाणु मे देखें तो यहाँ यह प्रदेश है। तो कथञ्चित् प्रदेश के भेद का परिचय बन रहा है अन्यथा समझाने का व्यवहार भी खतम हो जायेगा। इसी तरह यहाँ सम्बन्ध का निर्देश किया, अन्यथा सूत्र यो बना सकते थे—असख्येयप्रदेशा धर्माधर्मैक जीवानां या असंख्येयप्रदेशाः धर्माधर्मैकजीवाः एक दो अक्षर कम हो गये। और सूत्र मे जितने अक्षर कम हो उतना ही महत्त्व माना जाता है। पर ऐसा क्यो न किया गया ? सम्बन्ध बुद्धि की और असख्येय प्रदेश इनको भिन्न-भिन्न पदों मे रखा, इसका एक कारण यह भी है कि यदि इस सूत्र मे असख्येयाः प्रदेशाः, यो अलग-अलग न बोलते तो आगे जितने सूत्र बताये जाते प्रदेश बताने के लिये सभी सूत्रो मे प्रदेश शब्द देना पडता। असख्यात प्रदेशी तो ये हैं तो अनन्त प्रदेशी आकाश है और सख्यात असख्यात, अनन्तप्रदेशी पुद्गल हैं, यों बोलना पडता, तो यहाँ ही एक शब्द की ही तो बात है। इतना लाघव न किया तो उसका लाभ यह हुआ कि आगे जितने सूत्र कहे जायेंगे सबमे लाघव बन जायेगा। लाघव कहते हैं छोटे सूत्र को, सब छोटे सूत्र बन जायेंगे। इसलिये यहाँ कर्मधारय समास न करके भिन्न-भिन्न पदो मे यह बात रखी गई।

बालक को उपचार से सिंह बताने की तरह निरवयव एक द्रव्य को उपचार से ही बहुप्रदेशी कहे जाने की आरेका—अब पुनः एक शका बनती है कि जब इतना वर्णन चल रहा है जीव के बारे मे और इसका प्रमाण जाना जा रहा है तिस पर भी आपने बताया कि यह निरवयव है—यह एक-एक द्रव्य, इसमे विभाग नही है, टुकडे नही है। आधा पाना नीचा-ऊँचा ये कोई विभाग नही है। निरवयव है, तब तो प्रदेश कल्पना बिल्कुल उपचार की है, वास्तविक नही है। समझाने के लिये प्रदेश की कल्पना है कि लोग समझ जाए कि यह एक द्रव्य इतना बडा है। वास्तव मे प्रदेश तो परमाणु मे हैं। स्कन्धो मे खूब समझ मे आ रहा। बाकी जो सबमे बहुत प्रदेश बताये जाते हैं वह तो एक उपचार की बात है, अन्दाज की बात है। कैसे कि वास्तव मे द्रव्य है पुद्गल और पुद्गल की तरह समझा गया इसको तो यह उपचार है। जैसे किसी बच्चे को कहते हैं कि यह तो सिंह है तो यह बात सचमुच है या उपचार की बात है ? अगर सचमुच है तो बस घर खतम हो जाएगा। फिर तो

कोई न बचेगा। वह बच्चा सबको खा जाएगा। और उपचार की बात है तो यही अपनी बात आयी कि वास्तव मे सिंह तो कुछ और है और उसकी तरह इस बच्चे को बता रहे, तो ऐसे ही यहाँ यह बात नजर आती है कि प्रदेश तो वास्तव मे पुद्गल मे ही होते हैं, मगर उसकी तरह इसे समझाया जाता है। जैसी शूरवीरता, क्रूरता, तेज सिंह मे है वैसे ही लक्षण उस बच्चे मे नजर से आये तो जैसे वहा सिंह का उपचार कर दिया ऐसा ही उपचार इस एक द्रव्य के प्रदेश भेद मानने मे है।

उक्त शका के समाधान मे सोपपदता होने से धर्म अधर्म आकाश पुद्गल जीव सभी मे स्वतन्त्र मुख्य प्रदेशो का औचित्य—उक्त शका का यह उत्तर है कि एक द्रव्य के प्रदेश के लिये सिंह बालक का दृष्टान्त उचित नही बैठता, क्योकि वहाँ तो यह बात है कि दो को एक विशेष्य विशेषण की तरह रखा जा रहा है। बालक सिंह है इस एक जीव के प्रदेशो का पुद्गल के साथ एक समान रूप से वर्णन नही है, किन्तु वहा पर स्वतन्त्र स्वतन्त्र बात है। पुद्गल के इतने प्रदेश हैं, धर्मद्रव्य के इतने हैं। सबमे स्वतन्त्र-स्वतन्त्र बात कही गई, यह तो उपपद सहित है जैसे घट के प्रदेश ऐसे ही धर्मद्रव्य के प्रदेश। बालक सिंह इस तरह पुद्गल धर्म यह कुछ उपचार नही बन गया, सबमे स्वाधीन प्रदेश है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके क्षेत्र मे है, अपने आपके भाव मे है, किसी अन्य के क्षेत्र मे नही है और इस दृष्टि से यह भी वास्तविक बात नही है कि हम आप सब आकाश मे रह रहे। हम आकाश मे रहते हैं यह बात तो तब कही जायेगी कि पहले तो हम आकाश से अलग धरे हो, और फिर उठाकर आकाश मे धरे गये हो, तब यह कहना ठीक था कि हम आकाश मे हैं। भले ही हम छोटे हैं और आकाश बडा है, फिर भी आकाश आकाश मे है, हम हम मे हैं। सभी एक जगह रह रहे है वह बात है मगर आधार आधेय तो तब समझा जाता है कि जब पहले आधार से अलग हो, फिर आधार मे रखे हो। जैसे बोरे मे चने भर दिये, ये चने बोरे में हैं यह बात ठीक है। चने पहले बोरे से अलग रखे, फिर उन्हे बोरे में रख दिया, पर ऐसा हम आप लोगो के लिए किसी भी द्रव्य के लिए नही है कि वह द्रव्य पहले आकाश मे न था फिर किस तरह यह आकाश मे आ गया ? अनादि से समस्त द्रव्य हैं, अपने-अपने स्वरूप मे हैं, अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मे है, इसलिये एक को दूसरे का आधार नही बताया जा सकता।

अत्यन्त परोक्ष होने से धर्म द्रव्य आदि अमूर्त द्रव्यो मे प्रदेशो का सव्यवहार प्रत्यक्ष न होने पर भी प्रदेशो की मुख्यता—यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि जैसे घट की बात बिल्कुल स्पष्ट है, चौकी की बात बिल्कुल साफ है कि इस चौकी मे इतने अवयव हैं, इतने अश हैं, ऐसे धर्म या अधर्म, या एक जीव मे तो विदित नही होता। तो स्वत कोई अवधारण नही हो रहा। कोई यहाँ स्पष्ट बात नही चल रही। कैसे मानें कि धर्मादिक मे प्रदेश होते हैं सो खुद ही को प्रकट होगा। अभी यहाँ यह बताते कि जितना आकाश का हिस्सा एक परमाणु रोके उतने को प्रदेश कहते हैं, और ऐसे-ऐसे प्रदेश धर्म मे असख्यात हैं तो यह तो दूसरे के द्वारा कथन बना। अगर इसमे खुद प्रदेश होते तो अपने आप ही कथन बनना चाहिये था। इस कारण से उतने प्रदेश मुख्य नही कहे जा सकते। उत्तर यह है इनका कि भाई धर्मादिक द्रव्य अमूर्त हैं, ये आँखो से देखे नही जा सकते, इसलिये परोक्ष हैं, तो इनको कैसे कहा जाए, कैसे निरखा जाए ? घट आदिक तो प्रत्यक्ष हो रहे। चौकी टेबुल वगैरह साफ दिख रहे है, इसमे तो प्रदेश बताये जा सकते हैं, पर धर्मादिक तो सब अत्यन्त परोक्ष हैं। सो उनमे प्रदेश

मुख्य होने पर भी अपने आप में कही इन्द्रिय आदिक के द्वारा निश्चय नही कराया जा सकता। उन्हे तो युक्ति से समझना होगा।

आगम प्रामाण्य से एक द्रव्य के बहुप्रदेशित्व का अवगम – आगम से भी धर्मादिक द्रव्यो का बहुप्रदेशित्व जानना होगा। अरहन्त भगवान के आगम की प्रमाणता से यह ही बात सिद्ध होती है। भगवान कौन ? जो समस्त पदार्थों को स्पष्ट जाने ऐसे ज्ञान का अतिशय जहाँ प्रकट हो उसे कहते हैं सर्वज्ञ। उनके द्वारा कहा गया आगम जिसको गणधरो ने सुनकर उसकी द्वादशाङ्ग रचना की और उनके शिष्य उनकी बुद्धि के प्रसार से परम्परा से आज आगम पाया जा रहा है। उसमे उपदेश किया। धर्मादिक के क्षेत्र बताना मुख्य ही है, ऐसा जानना चाहिये। दूसरी बात एक जीव के बारे मे स्थित प्रदेश और अवस्थित प्रदेश का आगम मे वर्णन है। जीव असख्यात प्रदेशी है। जैसे आज इस शरीर मे है, तो इस शरीर प्रमाण जीव है। तो इतना विस्तार तो बना, मगर एक-एक प्रदेश करके विस्तार देखा जाये तो असख्यात प्रदेश हैं। और जब यह लोक भर मे फैलता तब भी असख्यात है। आकाश प्रदेश की अपेक्षा से तो ये अनेक प्रकार के असख्यात बन गये, जो जीव के द्वारा क्षेत्र प्रदेश रोके गये और स्वक्षेत्र की दृष्टि से सभी जीवो मे एक समान नियत असख्यात प्रदेश होते हैं। सकोच विस्तार के कारण छोटे बडे का प्रमाण नजर आता है।

स्थित और अस्थित आत्म प्रदेशो के निरूपण से एक जीव के बहुप्रदेशित्व की सिद्धि—आत्म-प्रदेशो को बताया गया है स्थित और अस्थित। जीव के मध्य के ८ प्रदेश इनमे योग नही होता, ये चचल नही होते, यहाँ परिस्पद नही होता, ये सर्वदा स्थित रहते हैं। और इसके अतिरिक्त भगवान अयोग केवली १४वे गुणस्थान में तो उनके सारे प्रदेश सिद्ध होते हैं और सिद्ध भगवान के सब प्रदेश स्थित है, वहाँ हलन-डुलन नही, परिस्पद नही। यहाँ हम आप ससारी जीवो के प्रदेशो उन ८ प्रदेशो के अतिरिक्त बाकी प्रदेश चचल हैं, उनमे परिस्पद है, व्यायाम किया किसी ने तो प्रदेश का बहुत परिस्पद है। दु ख सताप आया तो बडा परिस्पद, पर उन ८ प्रदेशो को छोडकर शेष प्रदेशो में यह परिस्पद है और वह अवस्थित है। तो शेष अन्य प्राणियो के कभी स्थित है कभी अस्थित। तो ऐसा जो विशेष रूप से निरूपण है उससे ही सिद्ध हुआ कि जीव मे असख्यात प्रदेश मुख्य ही है। इस तरह यहाँ यह बतलाया गया कि धर्म द्रव्य मे असख्यात प्रदेश, अधर्मद्रव्य मे असख्यात और जीव द्रव्य मे असख्यात प्रदेश हैं। दुनिया मे क्या-क्या है, उनकी विशेष विवरण के साथ जब जानकारी होती है तो स्वपर का भेद विज्ञान बडा दृढ होता है कि यह तो सब पर है और यह मैं स्वय ज्ञानस्वरूप स्व हूँ। स्वपर भेद विज्ञान से ही आत्मकल्याण होता है। इस पचम अध्याय के प्रथम सूत्र मे धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार पदार्थ बताये गये थे—इसके आगे जीव को भी अस्तिकाय कहा है। इन ५ अस्तिकायो मे किसके कितने प्रदेश हैं यह प्रकरण चल रहा है। तो धर्म, अधर्म एक जीवद्रव्य इनके प्रदेश कितने हैं वह वर्णन हो चुका। अब आकाश द्रव्य के कितने प्रदेश हैं, यह वर्णन करते हैं।

आकाशस्यानन्ताः ॥५-९॥

आकाश के प्रदेशो का परिमाण – आकाश द्रव्य के अनन्त प्रदेश होते हैं। सूत्र मे दो पद है—आकाशस्य और अनन्ता जिसका अर्थ है कि आकाश के अनन्त है। अब क्या अनन्त हैं ? तो यहाँ प्रदेश शब्द लेना। इससे पहले जो सूत्र था उसमे प्रदेशा आया है और वहाँ से अनुवृत्ति ली गई है। अनुवृत्ति लेने का लोक मे भी कायदा है और शास्त्रो मे भी कायदा है। जैसे कहा कि शिखर फि

अमुकचन्द, अमुकलाल जायेंगे और मैं भी, बस इतना बोला तो अर्थ निकल आया कि मैं भी जाऊ गा। तो जो पहले शब्द बोले जाते हैं उस वाक्य से जिन जिन शब्दो की आवश्यकता है अनुवृत्ति कर ली जाती है। तो पहले सूत्र मे प्रदेशा. शब्द आया था। उस प्रदेश शब्द की अनुवृत्ति यहाँ की गई। और यही कारण है कि पूर्व सूत्र मे असख्येय प्रदेशा ऐसा समास न करके अलग अलग शब्द रखे गये हैं। जैसे कि उसी पूर्व सूत्र के कथन मे यह बात बतायी गई थी। अनन्त का अर्थ क्या है? जिसका अन्त नही, अवसान नही, समाप्ति नही उसे अनन्त कहते हैं। आकाश के उतने प्रदेश हैं जो अनन्त हैं। जिस जगह यह अगुली खडी है उस जगह मे असख्यात प्रदेश हैं, अनन्त नही, क्योकि उसका अन्त है। और समूचे आकाश के कितने प्रदेश हैं? अनन्त। उसका अन्त नही। अनन्त भी अनेक प्रकार के होते हैं, और देखिये आकाश प्रदेश का अन्त नही है, सो अनन्त है। मगर इस अनन्त से भी बडा अनन्त कोई है क्या? तो केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद, ये आकाश से भी अधिक अनन्त हैं। अन्त दोनो का नही है फिर भी कमी बेशी है। केवल ज्ञान मे इतने अविभाग प्रतिच्छेद हैं कि ऐसे लोकालोक कितने ही होते तो भी ज्ञान उन्हे जानता।

आकाश के प्रदेशो के कथचित् भेद का दिग्दर्शन—आकाश के अनन्त प्रदेश हैं। ऐसा कहने मे भेद जच रहा है। जैसे कोई कहता कि यह इसका लडका है, तो इसमे भेद जचा ना? वह पुरुष अलग है, लडका अलग है। आकाश के अनन्त प्रदेश है। ऐसा कहने मे भेद जचा। वह भेद कथञ्चित् है, सर्वथा नही है। प्रदेश और प्रदेशी इन दो बातो को समझने के लिये भेद डाला है। प्रदेशी तो है आकाश और प्रदेश हैं उसके अनन्त। समग्र आकाश पर दृष्टि देने से जो ज्ञेय बना और आकाश के इन असख्यात प्रदेशो पर दृष्टि देने से जो ज्ञेय बना उसमे अन्तर है या नही? अन्तर है। यह हिस्सा-हिस्सा है, वह पूरा है, पर सर्वथा भेद यो नही है कि अनन्त प्रदेश होने पर भी आकाश एक ही द्रव्य है। उसके हिस्से नही हैं, टुकडे नही हैं। भाग जच रहे हैं फिर भी आकाश के टुकडे नही हैं। तत्त्व ऐसा ही है और भले प्रकार समझने से ज्ञात भी होगा कि बात सही यही है। आकाश एक है, उसके अनन्त प्रदेश हैं, फिर भी हिस्से नही हैं। तो आकाश के अनन्त प्रदेश हैं, ऐसा कहने मे भेद का निर्देश हुआ सो जसे आकाश के प्रदेश सर्वथा भिन्न नही हैं ऐसे ही आकाश और प्रदेश सर्वथा अभिन्न भी नही है। यह भी एक अनोखा तत्त्व देखिये—अगर आकाश और उसके प्रदेश अभिन्न हो जायें, एक ही चीज सर्वथा हो जाए तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रदेश और प्रदेशी दोनो एक कहलायें। चाहे तो प्रदेश कहो, चाहे आकाश कहो, सर्वथा अभेद हो गया। जब सर्वथा अभेद हो गया तो मानो एक प्रदेश आकाश के बराबर कहो या सारा आकाश एक प्रदेश के बराबर कहो, जो सर्वथा अभिन्न है वह पूर्णतया एक कहलाता है। सो अगर आकाश पूरा एक प्रदेश हो गया तो आकाश प्रदेशी न रहा। प्रदेशी उसे कहते हैं जिसके बहुत प्रदेश हो। जब प्रदेशी न रहा तो प्रदेश भी न रहा। फिर कुछ भी न रहा। फिर चर्चा किस बात की?

आकाश अन्य अमूर्त पदार्थों जैसा अमूर्त पदार्थ है, फिर भी आकाश के बाबत कुछ-कुछ परिचय चलाया तो है। जैसे अन्य अमूर्त मे उतनी गति नही कुछ समझने की विशेष। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य इनके बारे मे कुछ अनुमान करते हैं, भीतर को अधिक नहीं समझ पाते, हाँ जीव के बारेमे हम खूब समझ लेते हैं क्योकि जीव हम खुद हैं ना? हम पर सब बातें बीतती हैं। तो अमूर्त होने पर भी जीव के बारे मे समझ बहुत अच्छी बनती है। तो अमूर्तों मे समझ का दूसरा नम्बर

आकाशद्रव्य का बनता है, बाकी तो सब उतना स्पष्ट मन द्वारा नहीं बन रहा, पर हाँ अनुमान द्वारा बन रहा है। यही तो आकाश है। जिसे लोग पोल कहते हैं, कुछ ध्यान मे आया मगर पोल कहने से लोग सोचते ऐसा कि जो कुछ नहीं है यही तो आकाश है किन्तु आकाश एक सत्तात्मक पदार्थ है। सद्भूत है और एक द्रव्य है। अब इस समझ मे कुछ बुद्धि चक्कर खा जाती है। जब इसको हम एक सत् स्वरूप कहते है और उसमे अगुरुलघुत्व गुण की षड्गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन कहते हैं तो कुछ अधिक विचार करने की जरूरत पड जाती है। यह आकाश एक पदार्थ है और उसके अनन्त प्रदेश हैं। यहाँ भेद निर्देश करके बताया है, पर सर्वथा भेद न समझना। यदि आकाश जुदा है और प्रदेश बिल्कुल जुदे है तो इसके मायने भिन्न भिन्न सत् हो गये। अब भिन्न भिन्न सत् हो गये तो ये प्रदेश क्या कहलाये ?

वैशषिक दर्शन और स्याद्वाद—वैशेषिक दार्शनिको को समझाया जा रहा है, वे लोग ७ पदार्थ मानते है—(१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म, (४ सामान्य, (५) विशेष, (६) समवाय और, (७) अभाव। नाम कुछ अटपट से लग रहे होगे मगर ये सब जैन दर्शन ने भी माने है, किन्तु पदार्थ रूप मे नही माना। जैन दर्शन ने किस तरह माना कि द्रव्य वह है जो सत् है। चाहे जीव हो, परमाणु हो, कुछ भी हो, वह द्रव्य है। उस द्रव्य में रहने वाला जो स्वभाव है, शक्ति हैं, स्वरूप है वह गुण है। जैसे आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द ये गुण हैं, मगर ये गुण अलग पदार्थ नहीं, किन्तु वैशेषिको ने कहा कि जब कुछ समझ में आ रहा कि ये कुछ एक-एक हैं तो ये अलग-अलग ही हैं, उन्होने पदार्थ मान लिया, यह अन्तर आया। आत्मा मे गुण है और आत्मा मे क्रिया भी है, आत्मा मे पर्याय भी है, परिणमन भी है तो वह परिणमन और क्रिया वैशेषिको के यहाँ जुदे पदार्थ हैं। देखो जो अन्य दार्शनिको ने माना सो एकदम गलत न थे। जो कहा वह एक समझने की बात है, और वहाँ वह बात बनती है, समझ भी आती है, पर स्याद्वाद का सहारा छोडने से, वे अत्यन्त अन्धकार मे पहुँच गए। जो दार्शनिक मानते हैं उसमे बल न हो, तथ्य न हो, वह बात तो नही है, पर तथ्य होकर भी स्याद्वाद के बिना अतथ्य बन गया।

स्याद्वादसम्मत द्रव्य गुण पर्यायो का वैशेषिकदर्शन मे भेदभ्रांतिसे कथन—पदार्थ के बारे मे जो वैशेषिक सिद्धात ने कहा है वह सब जैन सिद्धात मे भी कहा है, और उसका घटन इस तरह है—द्रव्य जैसे जीव—इसमे गुण है इसमे सदा रहने वाली शक्ति। ज्ञान दर्शन आदिक उन गुणो को वैशेषिको ने अलग मान लिया स्याद्वाद मे द्रव्य गुणमय कहा। पर्याय क्रिया एक देश से अन्य देश मे पहुँचे यह कहलाती है क्रिया। और देशान्तर में तो न जाय, किंतु बदल चलती रहे उसे कहते हैं एक भाववाला परिणमन। भाववाले परिणमन को कुछ को तो गुण में डाला वैशेषिको ने और क्रिया के परिणमन को एक अलग पदार्थ माना सो ये पर्याय को भी अलग पदार्थ माना। पर जैन सिद्धात बतलाता है कि जो द्रव्य जिस काल मे जिस पर्याय से परिणम रहा है वह पर्याय उस काल मे उस द्रव्य मे अभेद है।

स्याद्वादसम्मत सामान्य विशेष नित्यतादात्म्य व अनित्य तादात्म्य का वैशेषिकदर्शन मे भेद भ्रांतिसे कथन—अब रहे वैशेषिकों के सामान्य, विशेष समवाय। जैन सिद्धात ने सामान्य बुद्धिगोचर तथ्य माना है। अलग पडा हुआ पदार्थ नही है। जो धर्म अनेक मे पाया जाय वह सामान्य है। जरा ध्यान से सुनेंगे बात स्पष्ट होगी। आपमे जो बात पाई गई वही हममे पायी गई, वही और मे पाई

गई, वह धर्म सामान्य कहलाता है। जैसे चैतन्य ज्ञानस्वरूप आप मे भी है, हममे भी है। सब जीवो मे है तो ज्ञानस्वरूप सामान्य कहलाता है। मगर यहाँ भी यह बात देखियेगा कि एकात करने मे यह सिद्ध होगा कि जो ज्ञानस्वरूप आपमे है वही ज्ञानस्वरूप हममे है, ऐसा तो नही है। आप का ज्ञानस्वरूप आपमे तन्मय है। आप के प्रदेशो से बाहर नही है। हमारा ज्ञानस्वरूप हममे तन्मय है। हमारे प्रदेश से बाहर नही है। तो फिर सामान्य का अर्थ क्या है? समाने भव सामान्य, समान मे होने वाली बात को सामान्य कहते हैं समान कोई एक चीज न हुई, किन्तु बुद्धि मे एक बोध जगे कि ऐसा यहाँ भी है, ऐसा यहाँ भी है, यह तो है सामान्य का अर्थ। और वही एक, यह सामान्य का अर्थ नही है सामान्य को वैशेषिको ने अलग पदार्थ माना कि सामान्य एक है, सर्वव्यापी है, उसका सम्बन्ध होता है द्रव्यादिक मे। तो जो वैशेषिक वाद मे माना गया है वह कुछ तथ्य पर है मगर किस प्रकार है, यह स्याद्वाद समझायेगा। विशेष पदार्थ—कोई बात हमसे आपमे अधिक दिखी तो वहा विशेष आ जाता है। इससे यह चीज विशेष है। गाय से भैंस विलक्षण है। और वह विलक्षणपना, वह विशेषपना वैशेषिको के यहा एक पदार्थ माना गया है, पर यह विशेष कोई पदार्थ है क्या? सत् है क्या? एक बुद्धि मे आया हुआ तथ्य है। यह धर्म इसमे नही पाया जाता, इसमे पाया जाता। जब ये बातें वैशेषिको ने अलग-अलग मान ली तो अलग-अलग पडे रहने से तो कुछ बात बनेगी नही। कोई बताये कि गुण कहा अलग पड हैं, द्रव्य कहा अलग पडा है, अनेक दोष आते हैं। उन दोषो को दूर करने के लिये माना समवाय, हैं तो न्यारे-न्यारे, मगर समवाय सम्बन्ध है। इसको जैन शासन ने कहा तादात्म्य सम्बन्ध। तादात्म्य कोई सम्बन्ध नही। सम्बन्ध तो वह कहलाता है कि पहले तो अलग-अलग हो और फिर मिल गये हो, ऐसा तो है ही नही। हा कथञ्चित तादात्म्य होता है पर्याय के साथ। तो इस तरह ये वैशेषिको मे पदार्थ माने गये हैं और स्याद्वाद मे द्रव्य की तारीफ मानी गई है।

स्याद्वादसम्मत अभावधर्म का वैशेषिक दर्शन मे भेदभ्रांति से कथन—एक माना है अभाव पदार्थ वैशेषिकदर्शन मे। घट नही है, घट का अभाव है। जो नही है उसका अभाव है। तो ऐसा अगर अभाव पदार्थ वैशेषिकोने माना तो कुछ गलती की क्या? आपको नही जचता क्या कि अभाव है। यह घट का अभाव है यहा हाथी का अभाव है? हा समझ मे आता है कि अभाव है मगर वैशेषिको ने अभाव को एक भिन्न पदार्थ माना। यह अभाव एक वस्तु है। जब कि जैन शासन ने अभाव को अलग पदार्थ नही माना किंतु अभाव को अन्य के भावस्वरूप माना है जैसे कि हाथी का अभाव है। मन्दिर मे हाथी नही है तो हाथी के अभाव का अर्थ क्या हुआ? हाथी से रहित यह मन्दिर। हाथी शून्य इस मन्दिर का नाम हाथी का अभाव है। अभाव किसी अन्य के सद्भावरूप है। जहा अभाव बतला रहे वह वस्तु। जिसका अभाव बतला रहे हैं उससे शून्य वह वस्तु उस अभाव का विषय है। जैसे किसी से कहा कि जरा जाकर देख आना कि इस हाल मे चाँदी का कलश रखा था कि नही? तो वह जाता है, वहा रखा था नही, सो देख करके आता और कहता कि वहा कलश नही है। "तो क्या अच्छी तरह देख आये।" हा, हाँ अच्छी तरह देख आये।" बताओ अच्छी तरह क्या देखा? जिसको देखने के बाद यहा आकर कह रहे कि वहा कलश नहीं है। वहा आख से क्या देखा? फर्स, किवाड, भीट, रोगन, भवन भवन ही देखकर आया और यहा कहता है कि हम खूब देख

कर आये कि वहाँ कलश नही है। तो इससे सिद्ध हुआ कि कलश से रहित जो भवन है उस भवन का नाम कलश का अभाव है। जैन शासन मे अभाव के विषय मे बहुत बडा वर्णन है अष्टसहस्री मे, मगर आजकल तो जैनो मे भी कुछ लोग ऐसे बन गये अज्ञानवश कि उस अभाव की चर्चा तुच्छभाव-रूप में करने लगे जैसा कि अन्य दर्शन मे की जाती है। जैसे पूर्वपर्याय सयुक्त द्रव्य उत्तर पर्याय का कारण नही, क्योकि उत्तर पर्याय के समय मे वह पूर्व पर्याय है ही नही। जब है नही तो कारण मानें कैसे ? यह प्रश्न उठने लगा जैन सिद्धात की अनभिज्ञता से। और इसके लिये क्या कहा जाये ? यह कोई निर्णय नही है कि बहुत सा धनिक वर्ग असयम मे ही मोक्ष मिलने की कल्पना करके किसी बात को कहने लगे तो वह बात ठीक ही है। जो ठीक है सो ठीक है।

ऋजुसूत्रनय की दृष्टि मे मात्र क्षणवर्ती पर्याय का ही परिचय—एक दृष्टि है जैन सिद्धांत मे ऋजुसूत्रनय की। और ऋजुसूत्रनय की विवक्षा मे बडी हैरान बुद्धि हो जाती है। कुछ कह नही सकते। कुछ व्यवहार ही नही चल सकता। जैसे कही रुई जल रही है किसी की दुकान मे और वह स्याद्वादी नही है। वह आजकल का जैसा नये दिमाग का जैन हो या क्षणिक वादी बौद्ध हो तो मुख से यह न कह सकेगा कि रुई जल रही है। उसकी रुई खतम हो जायेगी। क्यो नही कह सकता ? इसलिये कि जो रुई है वह जल नही रही और जो जल रही वह रुई नही। बताओ जो जल रही उसे आप रुई कह सकते क्या ? अरे वह तो आग है, रुई नही है, और जो रुई हैं वह जल नही रही। तो लोग कहेगे कि यह तो झूठ बक रहा रहा। रुई कभी जल नही सकती। जो रुई है वह जल नही रही और जल रही वह रुई नही। स्याद्वाद का कितना उपकार है। आज उसके विरोध के कारण लोग चचल बन गये। उनका मार्ग एक नही रह सका। वे लक्ष्य में क्या लेवें ? हमको एक भीट दिख रही है सामने की। तो सामने की भीट दिखने से यदि हम ऐसा एकान्त कर बैठें कि दूसरी भीट इस कमरे मे है ही नही और ऐसा कहने के अनुसार बात हो जाये तब तो फिर छत गिर जायेगी और हम आप सब भी दबकर मर जायेंगे। तो जरा ढग से सोचो कि इस भवन मे चारो तरफ भीट है। खम्भा है, सब कुछ है मगर यह भीट हमे अधिक पसद आयी, क्योकि इसका चित्राय अच्छा है। ढग अच्छा है, इसलिये देख रहे हैं तब तो गुजारा चल जायेगा और अगर यह कहा जाय कि अन्य भीट है ही नही और अगर भवन भी हमारी आज्ञा मे हो कि जैसा हम कहे वैसा हो जाय तो बस अभी गिर जायगा सब भवन। यह हालत चलेगी।

स्याद्वादशासन के अनभ्यस्त की हालत—वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है इसके विषय मे जैसा अन्य दार्शनिको ने किया कि किसी ने पर्याय को न मानकर द्रव्यको ही मानकर वर्णन किया और किसी ने द्रव्य को न मानकर पर्याय का ही वर्णन किया। ऐसा ही आज के प्रसार मे है कि कोई पुस्तकरूप लबा कथन द्रव्य को न मानकर केवल पर्याय को ही मान करके कहा। जैसे—सारे जीवन रटन लगाना—पर्याय अकारणक है। उसका कोई कारण नही है, क्योकि अन्य चीज है ही नही, जिस समय जो पर्याय है उस समय मे पूर्व पर्याय है ही नही। यह कथन क्षणिकवादियो का है। जिसे अपनी प्रसिद्धि के लिये यह बात जरूरी है वह कुछ विचित्र कहेगा तभी मनोरथ पूरा होगा तो यहा द्रव्यको बिल्कुल नही माना, केवल पर्याय को ही पूरा पदार्थ मानकर कथन है। और कही वह आत्मतत्त्व अपरिणामी ध्रुव है, जिसमे पर्याय है ही नही, पर्याय व्यवहार है और व्यवहार सब झूठा है वहाँ कुछ परिणमन ही नही ऐसा एकात करके कहना तो वहा पर्याय नही माना। सिर्फ द्रव्य माना। यही बात अन्य दार्शनिको

ने की। वे अन्य दार्शनिक उल्टे तो चले। पर पागल न बने क्योंकि उन्होने एक ही बात कही। जो पर्याय नही मानता और केवल द्रव्य ही मानता उसने शुरू से लेकर अन्त तक वही बात कही। मगर यहा द्रव्य को न मानकर अन्वयका निषेध कर पर्याय को ही पूर्ण वस्तु बनाकर बात कहना, कभी पर्याय को न मानकर द्रव्य की ही कल्पना की बात करना, जैसे कभी माँ की स्त्री कहना, स्त्री को मां कहना। हाँ गौण मुख्य का तो उपदेश है, पर जैन शासन मे द्रव्यपर्यायात्मक सत् मे एक का 'न' करके दूसरे का 'ही' करने का उपदेश नहीं है। इस जगह आप ऐसा विश्वास करके बैठें कि इस भवन मे चारो तरफ उसका आधार है और फिर एक को देखते रहें तो आप आराम से मौज लेंगे। आप की प्रतीति तो है कि चारो तरफ आधार है, पर अन्य का निषेध करके केवल एक को ही मान कर चलने मे एक भीतर की शल्य खतम नहीं हो सकती।

आकाश और आकाश के प्रदेशो की चर्चा—यहाँ बात चल रही है कि वैशेषिक लोग ७ पदार्थ मानते हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव और इन सबके सबको जैन शासन भी बताता है, मगर के सातो के सातो एक ही पदार्थ हैं। ये ७ पदार्थ नही हैं। द्रव्य की ही शक्ति गुण है, द्रव्य की ही परिणति कर्म है, द्रव्य की समानता सामान्य है, द्रव्य की विलक्षणता विशेष है, और भेद है ही नही और भेद करके समझाया जा रहा तो ऐसा भेद करने पर भी अभेद समझना। यह सकेत समवाय का है। और विवक्षित द्रव्य अन्य सबके अभावरूप हैं सो यह अभाव बन गया। एक ही चीज ७ रूप से समझी जाती है मगर वैशेषिकदर्शन मे पृथक-पृथक रूप से माना उसके आधार पर यहाँ आकाश के प्रदेशो के बारे मे चर्चा चल रही है। आकाश मे कितने प्रदेश हैं, कितना विस्तार है, यह वर्णन चलेगा।

आकाश से आकाशप्रदेशो को सर्वथा भेद मानने वालों के भिन्न प्रदेश को द्रव्य मानने की असिद्धि—जो दार्शनिक आकाश के प्रदेशो को आकाश से सर्वथा भिन्न मानते हैं वे यह बतायें कि आकाश के प्रदेश जो आकाश द्रव्य से भिन्न है वे प्रदेश क्या द्रव्य कहलाते हैं या गुण, कर्म आदिक कहलाते है। यदि उन प्रदेशो को द्रव्य माना जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि जितने भी प्रदेश हैं वे सब एक एक आकाश द्रव्य हैं। और यो अनेक आकाश द्रव्य बन जायेंगे। क्योंकि यहाँ भेद करने पर एक एक प्रदेश का आदि अन्त बन गया। जब आदि अन्त बन गया तो प्रत्येक प्रदेश एक-एक आकाश द्रव्य हो गये किंतु शकाकार ने भी आकाश को एक द्रव्य माना है। अनेक द्रव्यो से मिलकर कोई एक द्रव्य नही कहलाता है। तो इन प्रदेशो को द्रव्य तो कह नही सकते। द्रव्य तो वह एक आकाश ही है। प्रदेश तो उसका माना गया अवयव है। अवयव दो किस्म से निरखा जाता है—(१) एक तो द्रव्य-रूप से अवयव—जैसे घट, पट आदिक मे १-१ परमाणु उसका भाग है। कुछ-कुछ परमाणुओ के छोटे-छोटे स्कन्ध के घट के अवयव है तो वे सब स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किंतु एक अखण्ड द्रव्य जो बहुत विस्तृत हो उसके स्वक्षेत्र के अवयव माने जाते है। लेकिन यहाँ शकाकार प्रदेशो को आकाश से सर्वथा भिन्न मान रहा है। तो उनके यहाँ यो अनेक आकाश द्रव्य बन बैठेंगे।

आकाश से आकाश प्रदेशो को सर्वथा भेद मानने वालो के यहाँ भिन्न प्रदेश को गुण मानने की असिद्धि—अब शकाकार यदि यह कहे कि हम उन प्रदेशो को गुण मानते है। आकाश एक है और उसके अनन्त प्रदेश हैं अर्थात अनन्त गुण हैं, तो यह कहना बिल्कुल युक्त नही है। कारण यह है

कि दो द्रव्य पदार्थों का संयोग माना जाता है। जो भी पदार्थ आकाश मे हैं तो आकाश भी द्रव्य है, पदार्थ भी द्रव्य है, उन दो का सयोग माना गया है। तो एक विस्तृत आकाश के साथ दूसरे पदार्थ का सयोग हो सकता नही। ऐसा कोई मूर्तिमान पदार्थ है ही नही जो सारे आकाश मे पडा हुआ हो, और यह देखा जाता है कि जैसे कलश यहाँ रखा है। अब और उठाकर दूसरे प्रदेश मे रख देवें तो यह सब देखा ही जा रहा है। तो उन प्रदेशो के साथ सयोग देखा जा रहा है ना। अभी यह घट इस कमरे के आकाश मे है, तो यह ही उठाकर दूसरे कमरे मे रख दिया तो वह उन प्रदेशो पर आ गया। तो यो प्रदेश पर सयोग हो रहा है, किंतु अब प्रदेश को मान लिया गया गुण, तो गुण मे और गुण या द्रव्य का सयोग नही हुआ करता। आकाश प्रदेश को गुण मान लिया गुणान्तर का आश्रय फिर गुण मे नही बन सकता। वैशेषिको ने सयोग, वियोग, सख्या, परिमाण, द्रव्यत्व, परत्व, अपरत्व इन्हें साधारण गुण माना हैं। और ये सब साधारण गुण आकाश प्रदेश मे पाये जाते है। लेकिन शकाकार के इस पक्ष से कि आकाश के प्रदेश गुण है तो उन प्रदेशो मे फिर ये गुण नही बन सकते हैं।

आकाश के प्रदेशो को आकाश से सर्वथा भिन्न और गुणरूप मानने पर प्रदेशो मे सयोग विभाग आदि की असिद्धि का सक्षिप्त विवरण —प्रदेशो मे सयोग किस तरह हो रहा कि एक कलश यहाँ रखा है। उसे उठाकर दो हाथ दूर रख दिया तो अभी इन प्रदेशो मे सयोग था अब उन प्रदेशो मे सयोग हो गया तो यह सयोग स्पष्ट दीखता है। पर प्रदेशो को गुण मानने पर फिर सयोग न बन सकेगा। विभाग की भी बात देखिये। कोई दो चीजें इकट्ठी रखी हो या हाथ से कलश पकडा हुआ है। बाद मे छोड दिया तो यह विभाग बन गया। इन विभागो का अर्थ यह ही तो रहा कि घडा उन प्रदेशो मे रहा अब यह हाथ इन प्रदेशो मे आ गया। तो विभाग भी उन प्रदेशो के साथ लग रहा है, लेकिन विभाग गुण अब प्रदेश मे बन न सकेगा। क्योकि शकाकार ने प्रदेश को गुण मान रखा है। सख्या की भी बात देखो, आकाश का एक प्रदेश, आकाश के दो प्रदेश, सख्या प्रदेश आदिक सख्याये भी तो हुआ करती है। सख्या को वैशेषिको ने गुण माना है और आकाश के प्रदेशो को यहाँ गुण मानने का पक्ष कर रहे है तो कैसे अब प्रदेशो की सख्या बन सकेगी ? सख्या द्रव्य की हुआ करती। जैसे सयोग और विभाग द्रव्यो मे हुआ करता है ऐसे ही सख्या भी द्रव्य की होती है। गुणो मे सख्या का सयोग नही बनता। प्रदेशो मे पृथक्त्व भी देखा जाता है। जैसे मानलो दिल्ली अपनी जगह के आकाश प्रदेशो मे है तो कानपुर अन्य आकाश प्रदेशो मे है। तो प्रदेश पृथक-पृथक हैं ना, लेकिन अब शकाकार जिस प्रदेश को गुण समझ रहा है तो अब वहाँ पृथक्त्व न पाया जा सकेगा, क्योकि वैशेषिको के यहां पृथक्त्व एक गुण है और गुण द्रव्य मे ही रहते हैं, गुणो मे गुण नही रहते। उन्होने स्वय माना है—निर्गुणा गुणाः और साथ ही यह भी कहते हैं— गुणादिनिर्गुणः क्रिया याने गुण आदिक कर्म सामान्य समवाय आदिक ये गुण रहित होते हैं और क्रियारहित होते है। तो अब प्रदेशो को गुण मानने के बाद इसमे कोई गुण न होना चाहिये और देखा जाता है अगर न हो तो कोई सिद्ध ही नही बन सकता। आकाश प्रदेशो मे परिमाण भी देखा जाता है। जैसे इस चौकी के आकाश प्रदेशो से तखत का आकाश प्रदेश महान है। परिमाण भी स्पष्ट नजर आ रहा है, पर परिमाण शकाकार के यहाँ गुण है। और अब प्रदेशो को भी गुण मानने का पक्ष किया है तो प्रदेशो मे परिमाण नही बन सकता है। परत्व अपरत्व गुण भी प्रदेशो मे नही बन सकते। जैसे विदित होता है कि अमुक नगर इस नगर से पास है, इस नगर से दूर है। ऐसा जो उनमे परत्व अपरत्व मालूम हो रहा है सो अब

यह बात न मालूम हो सकेगी, क्योंकि आकाश के प्रदेशो को शकाकार ने गुण मानने का पक्ष लिया है। तो गुणो मे परत्व अपरत्व ये गुण नही आ सकते है। तो यो प्रदेशो को गुण मानने पर कुछ भी सिद्ध नही हो सकता। तो यो आकाश के प्रदेशो को आकाश से भिन्न मानने वाले शकाकर प्रदे ो को गुण भी सिद्ध नही कर सकते।

अवयव सयोगपूर्वक अवयवी सयोग होने के कारण आकाश प्रदेशों के साथ पदार्थों का सयोग होने पर अवयवी आकाश मे पदार्थों के अवगाह की सिद्धि—अब यहाँ शकाकार कहता है कि जो सयोग विभाग आदिक गुण ऊपर चर्चा मे लाये हैं वे गुण तो प्रदेशी आकाश मे रहते हैं। प्रदेशो मे नही रहते, फिर यह सयोग विभाग न बन सकेगा, यह दोष कैसे दिया जायेगा ? तो इसके उत्तर मे कहते हैं कि प्रदेश तो हैं अवयव और प्रदेशी आकाश है एक द्रव्य। तो अवयव के सयोगपूर्वक अवयवी का सयोग देखा जाता है, तो अवयवो मे सयोग होने के मायने अवयवी से ही सयोग हुआ। जैसे हाथ से किसी ने पुस्तक ग्रहण की, तो पुस्तक का सयोग हाथ के अवयव से हुआ, पर इसी के मायने यह हुआ कि पुस्तक का सयोग शरीर से हुआ। तो पुस्तक और हाथ इनका सयोग तो कहलाया अवयव सो चूकि अवयव अवयवी से पृथक नही है इस कारण वह सयोग अवयवी से ही कहलाया। तो ऐसे ही आकाश के प्रदेशो मे ये सयोग विभाग आदिक देखे जाते हैं, कही समूचे आकाश मे नही देखे जाते। तो अवयव के सयोगपूर्वक अवयवी का सयोग स्वय शकाकार ने माना है तो वह अवयवो का ही सयोग कहलाया यदि प्रदेशी का ही सयोग कहा जाये, अवयवो का सयोग न कहा जाये तो संयोग बन ही नही सकता है।

आकाश से आकाशप्रदेशों को सर्वथा भिन्न मानने पर व उन्हे गुण मानने पर पदार्थों के साथ तीनों ही प्रकार के सयोगो की अनुपपत्ति—सयोग वैशेषिक दर्शन में तीन प्रकार के माने गये हैं। कर्म जन्य सयोग, उभयकर्मजन्य सयोग और सयोगज सयोग। जैसे कोई पक्षी आकर वृक्ष की डाल पर बैठ गया तो यह एकान्यतर कर्मजन्य सयोग हुआ। पक्षी ने कर्म किया, क्रिया की, उडकर आया पक्षी और इस आकाश प्रदेश पर ठहर गया। तो यहाँ क्रिया एक ही ओर से हुई। प्रदेश तो जहाँ था वहाँ ही है। तो यह कहलाया एक ही ओर से क्रियाजन्य सयोग, किन्तु जो प्रदेशो मे सयोग न माने और पूरे प्रदेशी आकाश मे सयोग माने उनका यह सयोग बन ही नही सकता। दूसरा सयोग माना है उभयकर्मजन्य सयोग। जैसे दो बकरे दूर दूर खडे हैं और एकदम चले और लडने लगे तो उन दो बकरो का जो सयोग हुआ है या उस आकाश मे जो दो का सयोग बना है सो दोनो बकरो की क्रिया के बाद बना है। दूर दूर खडे थे वे बकरे और दोनो ही क्रिया करके आये और यह सयोग बना। तो यह प्रदेशो मे ही तो सयोग रहा। अगर प्रदेशो मे सयोग न माने और एक प्रदेशी आकास मे ही सयोग माने इस पूरे आकाश को व्यापकर सयोग होता तो प्रदेशी का सयोग कहा जाता। सो जो आकाश के प्रदेशो को आकाश से भिन्न मानते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं कि पदार्थों का सयोग प्रदेशी मे होता है प्रदेश मे नही। तो यह एकदम प्रत्यक्ष विरोध है। तीसरा सयोग होता है सयोगज सयोग। जैसे हाथ का सयोग चौकी से हुआ तो इसके मायने शरीर से ही सयोग हुआ, यह कहलाया अवयव सयोगपूर्वक अवयवी का सयोग। तो यह तो तब माना जाए जब पहले अवयवो मे सयोग समझ लिया जाये। तो जो आकाश के प्रदेशो को आकाश से सर्वथा भिन्न मानते है उनका यह सयोग विभाग आदिक नहीं बन सकता।

आकाश प्रदेशो को आकाश के सर्वथा भिन्न मानने वालों के प्रदेशों को कर्म आदि भी मानने की असिद्धि—प्रदेशो को सर्वथा भिन्न मानने वाले प्रदेशो को द्रव्य माने तो युक्त नही है, प्रदेशो को गुण माने तो युक्त नही है। अब यदि शकाकार उन प्रदेशो को कर्म माने तो यह तो बिल्कुल ही अयुक्त है। इन प्रदेशो मे क्रिया कहाँ हो रही ? वे तो नित्य अवस्थित है, तो उनकी क्रिया भी नही कह सकते हैं। सामान्य भी नहीं कह सकते। कही कोई प्रदेश अनुगत नही हो रहे। किसी एक पूरे मे वही नही जा रहा है विशेष भी नही मान सकते, समवाय भी नही कहा जा सकता, क्योकि जैसे उन प्रदेशो मे यह प्रदेश यही प्रदेश है, अनुवृत्ति नही बनती, ऐसे ही यह इससे जुदा है, यह इससे जुदा है, यह विशेष भी नही बनता। ये सब बातें द्रव्य मे हुआ करती हैं, और जब यह कुछ नही बन रहा तो समवाय की जरूरत क्या रही ? अभाव कहा हो नही जा सकता। तो आकाश के प्रदेश आकाश से भिन्न नही माने जा सकते हैं, और यह भी नही माना जा सकता कि वह कोई अन्य पदार्थ है, क्योकि शकाकार वैशेषिक ने पदार्थ ६ ही माने हैं। ७वा कोई भावात्मक पदार्थ नही है।

निरंशत्व व व्यापकत्व दोनो की एक द्रव्य मे सभवता न होने से व्यापक आकाश के सांशत्व की सिद्धि—अब शकाकार कहता है कि पदार्थ ६ ही होते, उसके नियम का विरोध नही है और वे द्रव्य, गुण, कर्म आदिक भी नही है प्रदश, सो इसीलिए यह मान लीजिए कि आकाश के प्रदेश मुख्य चीज नही है, वे कल्पित हैं, उपचरित हैं। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यह कहना बिल्कुल अयुक्त है कि आकाश के प्रदेश मुख्य नही है, क्योकि मुख्य कार्य देखा जा रहा है। प्रदेशो का मुख्य कार्य है पदार्थों का अवगाह। सो जब पदार्थ अवगाहित हैं, आकाश मे चौकी रखी, तखत रखा, पुस्तक रखी, यो जब इन पदार्थों का अवगाह है तो उन्हे उपचरित पदार्थ कैसे कहा जा सकता ? अगर प्रदेशो को मात्र कल्पित माना जाये तो मुख्य कार्य जो अवगाहन है फिर उसका योग नही बन सकता है। कही कल्पित अग्नि से रोटी बन सकती है क्या ? नही। ऐसे ही कल्पित प्रदेशो मे कही पदार्थों का अवगाह हो सकता है क्या ? नही। इस कारण यह तो न कहना कि आकाश के प्रदेश मुख्य नही हैं किन्तु उपचरित हैं। अब शकाकार कहता है कि आकाश तो निरश है और निरश होने पर भी व्यापक है इसलिए पदार्थों का आकाश मे अवगाह हो जाया करता है। तो उत्तर इसका यह है कि कोई पदार्थ निरश हो और फिर व्यापक हो, इन दोनो बातो का विरोध है। शकाकार पुन कह रहा है कि यह बात तो प्रमाण सिद्ध है। आकाश व्यापक है, इसका कोई निषेध नही कर सकता। और साथ ही वह निरश भी है। आकाश निरश है, क्योकि यह सर्व जगह मे व्यापक है। जो निरश नही होता वह सर्वलोक मे व्यापक नही हो सकता। जैसे घट पट आदिक ये निरश नही हैं, इनके अलग हिस्से हैं। तो ये व्यापक भी नही है। आकाश सर्व जगह मे व्यापक है तो वह निरश है, ऐसी शका को पुष्ट करने के लिये शकाकार कहे तो वह भी युक्त नही है, क्योकि देखो परमाणु निरश है ना। परमाणु के और अश नही होते मगर वह शकाकार व्यापक कहता है तो जो यह प्रतिज्ञा कर रहे थे कि जो निरश है सो व्यापक है देखो व्यभिचार, परमाणु तो निरश है, पर वह व्यापक नही है। यदि शकाकार उस परमाणु को भी मानने लगे याने उसे भी पक्ष बना लिया जाए जिससे कि हेतु मे दोष न आये तो यह कहना भी अयुक्त है। परमाणु एक प्रदेशी है। यह परमाणु पूर्ण शुद्ध है और जब अनन्त परमाणुओ का पिण्ड वह सान्त देखा जा रहा है तो उनमे एक परमाणु कैसे व्यापक कहला

सकेगा ? तो यह नही कहा जा सकता कि आकाश व्यापक है और निरश है। आकाश व्यापक तो है मगर एक प्रदेशी नही है। वह अनन्त प्रदेशी है।

आकाश प्रदेशों के अकल्पित मुख्यत्व की सिद्धि—शकाकार कहता है कि आकाश के प्रदेश मुख्य नही हैं क्योकि वे स्वय स्वत प्रतिपाद्य नही हो सकते परमाणु की तरह। जैसे परमाणु स्वय समझा नही जा सकता ऐसे ही आकाश के प्रदश भी स्वय समझे नही जा सकते। प्रदेश तो मुख्य घट पट आदिक पदार्थ जो सामने भौतिक नजर आ रहे हैं उनमे ही मुख्य प्रदेश कहे जा सकते हैं। शका के समाधान मे कहते है कि यदि आकाश के प्रदेश मुख्य नही हैं, तो फिर परमाणुओ का समूह रूप स्कन्ध भी, उसके अवयव भी फिर मुख्य न होना चाहिये। तो यह नही कहा जा सकता कि जो प्रदेश स्वत समझ मे न आये वे मुख्य नही कहलाते। यदि यह कहा जाए कि परमाणु का एक प्रदेश अत्यन्त परोक्ष है, वह हम लोगो को स्वत समझ मे नही आता तो यह ही उत्तर तो आकाश प्रदेश मे है। आकाश प्रदेश भी अत्यन्त परोक्ष है। वह भी हमको स्वत समझ मे नही आ सकता। सर्वज्ञ देव को जो अतीन्द्रिय पदार्थों की दृष्टि है उनको तो जैसे परमाणु मे प्रदेश हैं ये स्वत ज्ञान मे आ रहा है ऐसे ही आकाश आदिक के प्रदेश भी स्वत ज्ञान मे आ रहे है। तो इससे ही सिद्ध हुआ कि आकाश के प्रदेश मुख्य है और वे सब अश हैं। जरा श काकार यह बतायें कि जैसे उन्होने माना है कि कर्णेन्द्रिय आकाश है याने कर्णबिल मे अदृष्ट जो सद्भूत आकाश के प्रदेश है उनको श्रोत्र माना है, तो वे यह बतलाये कि उस कर्णेन्द्रिय मे सारा आकाश है या नही ? यदि कहो कि सारा आकाश है तो सारी दुनिया के शब्द सुनाई देना चाहिए, क्योकि उन्होने शब्द को आकाश का गुण माना है, और यदि कहो कि सारा आकाश नही है तो प्रदेश सिद्ध हो ही गया। प्रतिनियत प्रदेश है। थोडे प्रदेश हैं, और भी देखिये कि एक परमाणु सारे आकाश से सयुक्त है या नही। अगर कहो कि सारे आकाश से सयुक्त है तब तो आकाश परमाणुमात्र रहे या परमाणु आकाश बराबर हो जाये। सो यह कुछ भी नही है। यदि कहो कि सारे आकाश से सयुक्त नही है तो उसका यह ही तो अर्थ हुआ कि वह भी प्रदेशो से सयुक्त है। तो यो प्रदेश मुख्य ही तो कहलाया। स्पष्ट ही तो देखा जाता कि कुछ प्रदेशो से हटकर पीछे अन्य प्रदेशो मे पहुँच गया तो सारा आकाश का सयोग तो नही कहलाया। जिन प्रदेशो का सयोग हुआ वे उतने ही प्रदेश हैं। तो इस प्रकार आकाश के प्रदेश बहुत हैं, और इस दृष्टि से आकाश साश है। अनुमान से भी सिद्ध होता है कि आकाश कथञ्चित् अशो से सहित है, क्योकि अनेक परमाणु आकाश के एक-एक प्रदेश करके सयुक्त होते रहते हैं। घट कही है, यह कही है, वहाँ यह सिद्ध होता है कि आकाश साश है और कुछ अवयवो मे वे पदार्थ रखे हैं। यदि आकाश को साश न माने तो अनेक आकाश मानने पडेंगे। घट किसी अन्य आकाश मे रह रहा, पट किसी अन्य आकाश मे रह रहा तो यो आकाश ही आकाश पूरा अनेक अनन्त द्रव्य बन जायेगा। इससे यह मानना ही चाहिये कि आकाश तो द्रव्य है और उसके अनन्त प्रदेश हुआ करते है। उन अनन्त प्रदेशो मे जितनी जगह मे सारा लोक पडा हुआ है वह तो असख्यात प्रदेश है और उससे अतिरिक्त लोक के बाहर जितना भी आकाश पडा है वह अनन्त प्रदेशी है। इस प्रकार सूत्र मे जो कहा जा रहा है कि आकाश के अनन्त प्रदेश हैं वह पूर्णतया सही कथन है।

आकाश तत्त्व विषयक सिद्धान्त—सिद्धान्त यह है कि आकाश व्यापक एक अखण्ड पदार्थ कथञ्चित् अश सहित होता, क्योकि परमाणुओ के साथ एक देश से उनका सयोग है स्कन्ध की तरह,

जैसे चौकी चटाई आदिक स्कन्ध आकाश के एक देश मे संयुक्त हैं इसी प्रकार परमाणु भी आकाश के एक हिस्से मे सयुक्त है, इससे जाना जाता है कि आकाश अश सहित है। तो परमाणु का समस्त आकाश के साथ सयोग मानने पर दो दोप आते है, या तो समग्र आकाश परमाणुमात्र बरावर हो जायेगा या आकाश असख्यात हो जायेगे। जितने जितने एक प्रदेश हैं अर्थात् परमाणु के द्वारा रोके गये क्षेत्र हैं उतने ही उतने आकाश मानने पडेगे। अत यह ही स्वरूप है कि आकाश है तो एक अखण्ड द्रव्य किन्तु वह है अनन्त प्रदेशी। एक अखण्ड द्रव्य का परिचय यह है कि एक परिणमन उस पूरे द्रव्य मे होता है। आकाश मे जो भी परिणमन होते, होते सूक्ष्म अगुरुलघुत्व गुण के हानि वृद्धि रूप से, पर जो भी परिणमन है वह समग्र आकाश का परिणमन है। जैसे यहाँ देह मे एक अगुली मे कुछ परिणमन हो तो पूरे देह मे नही होता। अगुली सड गई और और सारा देह नही सडा या चौकी का एक हिस्सा जल गया तो सारी चौकी भस्म नही हुई, इससे यह जाना जाता हैं कि देह चौकी आदिक एक पदार्थ नही हैं, यह अनेक पदार्थो का सयोग है, किन्तु आकाश या अन्य अखण्ड द्रव्य मे ऐसा न हो सकेगा कि कोई परिणमन उसके एक हिस्से मे हो और वाकी हिस्से मे न हो, यह है एक द्रव्य के समझने को कुञ्जी। तो इस तरह यहाँ आकाश एक द्रव्य है, साथ ही वह अश सहित है।

आकाश को बहुप्रदेशी माने बिना सयोग विभाग क्रिया सभी के अभाव का प्रसंग—अव यहाँ वैशेषिक शकाकार शका करता है कि हम न तो परमाणु के साथ आकाश को एक देश से सयुक्त मानते और न सर्वरूप से सयुक्त मानते किन्तु है उसका सयोग घट आदिक के साथ। जैसे कि कोई अवयवी अवयव के साथ सयुक्त है अथवा सामान्य अपने आश्रयभूत पदार्थ के साथ सयुक्त है इसी तरह आकाश भी घटपट आदिक के साथ सयुक्त है। इसके समाधान मे कहते हैं कि यह बात तो ज्यो की त्यो रही। उदाहरण मे भी यही बात समस्या की बनी रहती है कि अवयवी का अवयवो से जो सयोग मानते हो तो अवयवी को मान रहे निरश और अवयवो के साथ मान रहे सम्बन्ध, तो प्रथम तो यह ही बात गलत है और फिर अवयव रहे भिन्न, अवयवी रहा भिन्न, मायने कोई एक पदार्थ—वह तो रहा जुदा और उसका हिस्सा रहे जुदा तो जो एकान्त से भिन्न है उसमे सम्बन्ध सिद्ध नही हो सकेगा, क्योकि वहाँ पर भी ये ही विकल्प उठेंगे कि एकदेश के साथ अवयवो का सयोग हुआ है या समग्र अवयवी के साथ हुआ है? अगर अवयवी के एकदेश मे सयोग हुआ है तो वह अश सहित सिद्ध हो गया और यदि सर्वदेश मे सम्बन्ध है तो पहले दिये गये दोप आते हैं।

अखण्ड बहुप्रदेशी द्रव्य के प्रदेशो का कथचित् तादात्म्य मानने मे विवाद की समाप्ति—उक्त दोषो के भय से यदि शकाकार कहे कि हम तो कथचित् तादात्म्य मानते हैं और उसी को ही सम्बन्ध स्वीकार करते हैं तो यह तो स्याद्वाद का सिद्धान्त हुआ। सामान्य और सामान्यवान मे कथचित् तादात्म्य माना गया है। तादात्म्य ही है मगर जब सज्ञा दो कर दी, सामान्य और सामान्यवान, तो सज्ञा आदिक की दृष्टि से कथचित् भेद बना और इसीलिए कथचित् तादात्म्य कहा जा रहा। इसी प्रकार अवयव और अवयवी का कथचित् तादात्म्य माना गया है। जैसे आकाश एक द्रव्य है और उसके अवयव मायने प्रदेश अनन्त है तो उन अनन्त प्रदेशो का आकाश से तादात्म्य सम्बन्ध है और इस तरह जब कि आकाश साश बन गया तो आकाश के किसी हिस्से मे परमाणु स्कन्धो का सयोग बन जाता है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि आकाश अश सहित है। अब अन्य घट-

नाओ से आकाश को अशसहित समझियेगा। आकाश अशसहित है, अन्यथा पक्षी मेढा आदिक का कर्मजन्य सयोग विभाग नही बन सकता। अर्थात् कोई एक पक्षी किसी वृक्ष से उडकर दूसरे वृक्ष पर बैठ गया तो जिस वृक्ष से हटा उन आकाश प्रदेशो से वियोग हुआ और जिस वृक्ष पर बैठा वहा के आकाश प्रदेशो से सयोग हुआ। तो आकाश के प्रदेश अनेक हैं, और आकाश अश सहित है, यह माने बिना सयोग वियोग नही बन सकता। अथवा दो बकरे दूर-दूर खडे हैं। उन दोनो को क्रोध आया तो एकदम एक दूसरे से भिडने लगते है, लडने लगते हैं, कुछ देर लडकर फिर हटकर वैसे ही पीछे लौट जाते हैं, तो दो मेढो मे जो कर्म हुआ, क्रिया हुई सयोग के लिए तो वह क्रिया यह सिद्ध करती है कि आकाश के अश हैं, और आकाश के अन्य अशो मे वे दोनो ठहरे थे। अब क्रिया करके उन अशो को बदलकर अन्य अशो मे पहुँच गए, फिर वहाँ से भी हटकर अन्य आकाश के प्रदेशो पर पहुँच गए तो यदि आकाश मे अश न होते, केवल एक ही निरश आकाश होता तो यह एक की क्रिया से सयोग वियोग होना न बनता और न दोनो की क्रिया से सँयोग वियोग होना बनता। एक बात यह भी देखिये कि यदि आकाश मे प्रदेश न होते तो कोई भी क्रिया न बनती। क्रिया का अर्थ यह है कि एक देश से अन्य देश मे पहुँच जाने का जो उपाय है उसका नाम क्रिया है। जब प्रदेश ही नही मानते कोई तो एक देश और अन्य देश ये घटित हो नही हो सकते और इसी कारण यह गाँव पहले हैं वह गाँव, बाद मे है या इस पर्वत से दूसरा पर्वत बहुत अलग है, यह कोई भी व्यवहार न बन सकता था। तो भले प्रकार से विचार करने पर यही सिद्ध होता है कि आकाश आदिक अश सहित हैं।

आकाश के अनन्त प्रदेशों का परिचयन—अब प्रश्न होता है कि आकाश के अनन्त प्रदेश हैं यह किस तरह सिद्ध होता है ? प्रदेश तो कही सख्यात भी होते कही असख्यात भी होते, पर यहाँ आकाश के अनन्त प्रदेश कह रहे हैं यह कैसे सिद्ध हो सकेगा ? तो इसके समाधान मे कहते हैं कि सब ओर से आकाश के प्रदेश अनन्तानन्त होते हैं, क्योकि तीन लोक से बाहर कोई नियत प्रान्त नही है, अर्थात् लोक से बाहर कुछ पदार्थ नही। जो अनन्त प्रदेशी नही होता उसका तीनो लोको से बाहर सब ओर प्रान्त का अभाव नही पाया जाता। जैसे परमाणु घटपट आदिक ये सब पदार्थ नियत स्थान मे ही रहते हैं। तात्पर्य यह है कि लोक की सीमा है, आगे कुछ पदार्थ पाया नही जाता, फिर इसके मायने यह ही हुआ कि आकाश पाया जाता। यदि आगे आकाश न पाकर और कुछ है तो उसका नाम बताओ क्या है ? अगर कोई द्रव्य है तो उसका भी आखिर है, जो पदार्थ हैं द्रव्य रूप परिमित उनका अन्त होता है। तो उन द्रव्यों के बाद भी कुछ है, वह आकाश है अन्यथा बताओ क्या है। कोई कहे कि और कोई पदार्थ है तो उनका भी अन्त है। आखिर यह मानना ही पडेगा कि लोक के बाहर केवल आकाश ही आकाश है। कल्पना मे यह लाओ कि चाहे कितने ही लोक हो—अर्द्धलोक, मध्यलोक अधोलोक या अन्य लोगो के द्वारा माने गये तीन लोक, १४ लोक हैं वे मान लिये जायें, हजारो, लाखो भी मान लिये जायें तो भी इनकी अवधि जरूर मानी जायेगी। ये मूर्तिक पिण्डभूत पदार्थ हैं ये अवधि सहित हैं। तो जब अवधि सहित हैं तो उन अवधि सहित पदार्थों का जो समूह है वह हो गया लोक, तो उससे बाहर क्या है ? अगर लोक है तो उसका भी अन्त है, उसके बाहर क्या है ? तो मानना ही पडेगा कि लोक के बाहर कोई भावात्मक अनन्त प्रदेशी पदार्थ है।

लोकबहिर्गत आकाश प्रदेशों का अखण्डाकाश स्वरूपता—लोक के बाहर मात्र अभाव है, इतने से काम न चलेगा, क्योकि लोक के बाहर जो कुछ भी भावात्मक पदार्थ है उनमें यह योग्यता है

कि वहाँ कोई लोक पहुँचे तो अवगाह कर सकता। पहुँचता नही यह बात अलग है, क्योंकि लोक से बाहर धर्म द्रव्य व किसी अधर्मद्रव्य का सद्भाव नही है, मगर अवगाहन की योग्यता कही नही चली गई और इसी कारण वह अर्थ क्रिया करने मे समर्थ है। अगुरुलघुत्व गुण की हानि वृद्धि के कारण होने वाली अर्थ क्रिया तो चलती ही रहती है, पर अवगाहन योग्यता का अभाव भी नही हो सकता। वह भावात्मक पदार्थ है। तो इस अवधि सहित लोक के बाहर जो भी भावात्मक है वह आकाश के सिवाय अन्य कुछ द्रव्य नही हो सकता क्योंकि अन्य द्रव्य मानेंगे तो उसका भी अन्त है। फिर आगे क्या है यह प्रश्न चलता जायेगा। तो लोक से बाहर यदि गुण ही माना जाये, द्रव्य कुछ न माने तो वह गुण किसके आश्रय है जिसके आश्रय हो वह वह मानना ही पडेगा। सो जो माने कि बाहर द्रव्य कुछ है ही नही तो गुण भी नही है। इसी तरह कर्म सामान्य विशेष कुछ भी न माना जा सकेगा ? आकाश द्रव्य ही सीधा है और फिर आकाश के नाते सामान्य विशेष प्रदेश से उसके ये सब चल सकते हैं। परिणमन भी चलेगा मगर द्रव्य नही है कुछ और गुण कर्म आदिक हैं वहा यह बात बिल्कुल सगत नही है। तो जब वैशेषिक सम्मत गुण कर्म आदिक नही हो सकते लोक से बाहर तो वहा यह बात सिद्ध हुई कि लोक से बाहर आकाश है।

अनन्त लोक धातुओं के होने पर आकाश की अनावश्यकता—अब शकाकार कहता है कि लौकिक धातुये अनन्तान्त हैं, सख्यात हैं, असख्यात हैं, अनन्त हैं। वहाँ आकाश ही है, यह बात कैसे कहते हो ? सब चीजें हैं और अन्त तक हैं। जैसे चलते जा रहे है तो वहा यह स्थान प्रमाण साथ है, क्योंकि अनन्त लोक धातु हैं। इनकी सिद्धि मे कोई प्रमाण नही। जो प्रमाण, प्रमाण से दूर हो उनका निश्चय करना सम्भव नही है, यदि प्रमाण के बाद सिद्ध हुये बिना अपने मन से किसी भी पदार्थ का सद्भाव मान लिया जाए तो फिर चाहे जो कुछ कह दो उसी मे ही प्रमाण मानना पडेगा। तो प्रत्यक्ष से या अनुमान से लोकाकाश की सिद्धि नही है। पच द्रव्यो का समुदाय या कहो ६ द्रव्यो का समुदाय बस यही लोक है और इसकी मर्यादा है। इससे बाहर कोई लोक नही है और कहना कि कुछ भी नही है ऐसा ही मान लो, सो ऐसा तुच्छाभाव भी नही है, किन्तु आकाश द्रव्य है।

अनगिनत लोक धातुओ के होने पर भो अन्तराल से आकाश पदार्थ की सिद्धि—अब एक बात का विचार करो कि जिन्होने अनगिनत लोक माना है और निषेध करते है कि आकाश सर्वव्यापी कही नही है। पदार्थ पडे हैं, लोक पडे हैं वे यह बतावें कि मान लो हजारो, लाखो लोक हो तो उनमे एक लोक का दूसरे लोक के बीच कुछ अन्तराल पड़ा है या नही ? है, क्योंकि यदि अन्तर रहित है तो उनके मध्य मे पडे हुये अन्तराल की प्रतीति न होनी चाहिये। जैसे इस चौकी से दूसरी चौकी के बीच मे अन्तर पडा है तो यहाँ भी अन्तर मालूम हो रहा। और फिर यदि वे सारे लोक एक दूसरे से अन्तर रहित हो जायें तो फिर एक ही लोक रह गया, फिर तुम हजारो लोक कैसे कहते ? मान लो किसी जगह १२ केले रखे हैं तो एक केले के बाद दूसरे केले के बीच मे कुछ अन्तर है ना ? चाहे मामूली अन्तर हो चाहे अधिक। यदि अन्तर बिल्कुल न हो तो वे १२ केले न कहलायेंगे। वे तो एक ही कहलायेंगे। ऐसे ही कितने ही लोक मान लिए जायें तो भी एक लोक से दूसरे लोक के बीच मे कुछ अन्तर है ना, नही तो वे अनेक न कहलायेंगे, एक ही लोक कहलायेगा, क्योंकि जब अन्तर रच भी नही है तो एक मे सबका प्रवेश हो गया, और यदि एक लोक से दूसरे लोक के बीच मे एकदेश रूप से अन्तर माने तो सिद्ध हो गया कि आकाश अन्त सहित है। आकाश के उतने अंशो मे कोई चीज नही

पडी हुई है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आकाश द्रव्य एक है और वह अनन्त प्रदेशी है। वही प्रदेश मे कुछ अन्य पदार्थ रहे और लोक से बाहर के प्रदेशो मे कोई भी अन्य पदार्थ नही पाया जाता और एक लोक से दूसरे लोक के बीच जो अन्तर मालूम पडता है उससे आकाश ही सिद्ध होता है। अब यहाँ शकाकार कहता है कि एक चीज मे और दूसरी चीज रूप मे जो अन्तर है सो आकाश नही है वहाँ किन्तु प्रकाश है। अन्धकार है इसका अन्तर पडा हुआ है। जैसे इस चौकी से उस चौकी में अलग प्रकाश का अन्तर है। अगर रात्रि है तो अन्धेरे का भी अन्तर है। वहाँ कैसे आकाश सिद्ध करोगे? तो इसके उत्तर में कहते है कि वह प्रकाश न तो कोई अलग तत्त्व है, न उसका कोई अन्तर देखा जाता है। प्रकाशमय परमाणु पुद्गल द्रव्य ही हैं अन्धकार के परमाणु भी पुद्गल हैं। उनका भी अन्तर होगा। अगर अन्तर न हो तो सब एक हो जायेंगे। और जो उसके अन्तर हैं सो ही आकाश के प्रदेश कहलाये।

अनन्त आकाश को अनन्त रूप से ही जानने मे सर्वज्ञता—अब यहाँ एक शका उपस्थित होती है कि कोई यह बतलाये कि समग्र आकाश को किसी ने सर्वज्ञ ने जान पाया या नही? अगर भगवान ने आकाश को जान लिया तो उसका अन्त आ गया और आकाश को यदि न जाना तो वह सर्वज्ञ ही न रहा। तो चूकि सर्वज्ञ देव के द्वारा समस्त पदार्थ ज्ञात हैं तो इसके मायने है कि उनका अन्त है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यह कोई व्यक्त नही है कि जो जो ज्ञान के द्वारा जान लिया जाये उसका अन्त जरूर होता है। स्वय शकाकार ने वेद को अनन्त कहा है और उस वेद का ज्ञाता ब्रह्म या कुछ उपदेश हैं तो लो खुद के वचन के विरूद्ध है। जान गये वेद पर उसका अन्त नही मानते या इसमे प्रकृति यह भी ज्ञात है और इसे अनन्त भी मानते फिर दूसरी बात यह है कि सर्वज्ञदेव ने आकाश को जाना तो है, पर जैसा है वैसा जाना। आकाश अनन्त प्रदेशी है याने जिसका कही भी अन्त नही है, इस ही रूप को जाना है। अनन्त को अनन्त रूप से जानना सम्यग्ज्ञान है और अनन्त का सान्त रूप से जानना मिथ्याज्ञान है। सो ज्ञान मे आ जाने से पदार्थ अन्त सहित नही कहलाता। पहले सूत्र मे बताया था कि धर्मादिक पदार्थों मे असख्यात प्रदेश होते हैं। यहाँ कह रहे हैं कि आकाश के अनन्त प्रदेश होते। तो असख्यात और अनन्त मे अन्तर है, एक न कहलायेंगे। असख्यात का तो अन्त होता है मगर वह गिनती मे नही आ सकता कि इतना है, और अनन्त गिनती मे भी नही आ सकता और उनका अन्त भी नही हो सकता। तो आकाश के अनन्त प्रदेश हैं। मान लो कोई बहुत बडा समर्थ आकाश मे किसी ओर चलता चला जाये ऐसे वेग से तो क्या उसका अन्त मिल जायेगा? कल्पना करो कि यदि आकाश का अन्त है तो क्या है सो बतलाओ? अगर आकाश का अन्त है तो कहेगे कि कोई ठोस पदार्थ है। तो जहाँ पदार्थ ठोस है वही तो आकाश है और फिर उस ठोस पदार्थ का भी अन्त है तो उसके बाद फिर क्या है? आकाश है, आकाश को कितना ही निरखते चले जाओ उसका कही अन्त हो ही नही सकता। ऐसा अपरिमित आकाश अनन्त प्रदेशी है। सर्वज्ञदेव ने यह सब अत्यन्त स्पष्ट जाना है। तीन लोक, तीन काल का स्पष्ट ज्ञेय सर्वज्ञ के ज्ञान मे होता है। सर्वज्ञ ने अपनी इच्छा से कुछ नही जाना या जैसा कुछ जान डाला वैसा पदार्थ बनना पडेगा, ऐसा नियम नहीं है, किन्तु जो पदार्थ जितना जैसा अवस्थित है उतना वैसा ही पदार्थ सर्वज्ञ द्वारा जाना गया है। तो आकाश के प्रदेश अनन्त हैं और आकाश अविभागी पदार्थ है, इस प्रकार परम विज्ञान के द्वारा जाना गया है। यहाँ तक धर्म, अधर्म एक जीव और आकाश इन चार अमूर्त

द्रव्यो के प्रदेशो का परिमाण बताया जा चुका है। अब मूर्त पुद्गलो के प्रदेशो का परिमाण कितना है, ऐसी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार सूत्र कहते हैं।

सख्येयासख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ ५-१० ॥

पुद्गल स्कन्धो के प्रदेशो का परिमाण पुद्गलो के सख्यात असख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं। यहाँ पुद्गलो से मतलब स्कन्धो का है। कोई स्कन्ध सख्यात प्रदेशी है, कोई असख्यात प्रदेशी है, कोई स्कध अनन्त प्रदेशी भी हैं। इस सूत्र मेप्रदेशा: शब्द की अनुवृत्ति दो तीन सूत्रो पहले से आ रही है, और च शब्द के देने से 'अनन्त' प्रदेश ग्रहण किए गये हैं, इससे पहले सूत्र था "आकाशस्यानन्ता." उस प्रकृत सूत्र मे च शब्द कहकर अनन्त शब्द ग्रहण किया है। जैसे कि उस सूत्र का अर्थ होता था कि आकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं, और इस प्रकृत सूत्र का अर्थ होता है कि पुद्गलो के प्रदेश सख्यात असख्यात व और भी होते हैं अर्थात् अनन्त भी होते हैं। और ८वें सूत्र मे प्रदेशा: शब्द आया उससे प्रदेशा शब्द की अनुवृत्ति की गई है। अब यहाँ बतलाते हैं कि पुद्गलो के संख्यात असख्यात और अनन्त प्रदेश कैसे हो जाते हैं। इसकी सिद्धि एक अनुमान द्वारा की जानी चाहिये। अनुमान भी पूर्ण प्रमाण होता है। जैसे कि लोक मे अनुमान को अन्दाज अथवा सशय के रूप मे लेते हैं कि हाँ हो सकता है, ऐसा यह अनुमान का अर्थ नही है। अनुमान प्रमाण पूर्ण प्रमाण है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण प्रत्यक्षता मे पूर्ण है और वह सही बात को बतलाता है ऐसे ही अनुमान प्रमाण परार्थ अनुमान मे परोक्ष रूप पूर्ण प्रमाण है और वह सही बात को बतलाता है। यहाँ अनुमान किया जा रहा है कि पुद्गल द्रव्य के प्रदेश सख्यात असख्यात और अनन्त हो सकते हैं क्योकि पुद्गलों के अनेक प्रकार के स्कन्धो की भली भाँति सिद्धि है। स्कन्ध बना करते हैं पुदगल परमाणुओ से। तो जितने परमाणुओ से जो स्कन्ध बनते हैं उस स्कन्ध मे उतने परमाणु अवगाही कहे जाते हैं। पुद्गल स्कन्धो में आकाश प्रदेश की भाँति लम्बाई चौडाई के अनुसार प्रदेश नही माने गये। अर्थात् स्कन्ध अखण्ड-द्रव्य नही है और उसके अखण्ड के ये प्रदेश बताये गये हो ऐसा नही है, किन्तु स्कन्धो मे सख्यात असख्यात अनन्त परमाणु है और प्रत्येक परमाणु एक प्रदेशी होता है। तो पुद्गलो मे अर्थात् स्कन्धो मे परमाणुओ की गिनती के अनुसार प्रदेशो की सख्या नियत की गई है। यहाँ यह बात और जानना कि आकाश के असख्यात प्रदेशो मे अनन्त प्रदेश वाले स्कन्ध ठहर सकते हैं। आकाश का क्षेत्र भले ही थोडा हो पर वहाँ अधिकाधिक परमाणुओ की सख्या बराबर है। सो थोडे क्षेत्र मे ये सख्यात प्रदेशी असख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी स्कन्ध ठहर रहे हैं। कोई भी स्कन्ध आकाश के अनन्त प्रदेशो मे ठहर ही नही सकता। उतने बडे स्कन्ध होते ही नही हैं, और लोकाकाश प्रमाण असख्यात प्रदेशो में भी अनन्त प्रदेशी स्कन्ध नही है, भले ही एक महास्कन्ध माना है तो वह स्कन्धो के समूह का नाम महास्कन्ध है। महास्कन्ध कोई एक ही पिण्ड होता है और वह लोकाकाश प्रमाण असख्यात प्रदेशो में ठहरता हो ऐसा नही है। तो चूकि सख्यात असख्यात अनन्त परमाणु वाले स्कन्धो की भली भाँति सिद्धि प्रत्यक्ष से भी देखी जा रही है इस कारण सूत्र मे जो प्रदेशो का परिमाण बताया है वह युक्ति सगत है।

अवयव और अवयवी के अभाव की आरेका—अब यहाँ जो अवयवी को नही मानते ऐसे क्षणिकवादी शका करते हैं कि स्कन्ध तो भ्रम है, वास्तविक चीज नही है। यदि इसे कोई वास्तविक माने कि अनेक परमाणुओ का मिलकर स्कन्ध बना है तो यह बताए कोई कि स्कन्ध का ग्रहण क्या

उस स्कन्ध को बनाने वाले अवयवो के ग्रहणपूर्वक होता है या उन अवयवो को ग्रहण न करके शीघ्र ही अवयवी का ग्रहण हो जाता है ? यहाँ ऐसे दो पक्ष रखे गये हैं कि जिन परमाणुओ का बन्धन होकर स्कन्ध बना है तो स्कन्ध का ग्रहण जो हो रहा है वह उन परमाणुओ को जानकर हो रहा है या परमाणुओ को जाने बिना स्कन्ध का ज्ञान हो रहा है। यदि यह कहा जाये कि उन परमाणुओ का ग्रहण करने पर उस स्कन्ध का ज्ञान हो रहा है तो वे परमाणु तो अतीन्द्रिय हैं, एक एक परमाणु प्रत्येक अतीन्द्रिय है। तो अतीन्द्रिय चाहे अनन्त भी मिल जायें तो भी वे इन्द्रिय ग्राह्य कैसे हो सकेंगे ? सो जब परमाणु अतीन्द्रिय हैं और उनका ग्रहण हो ही नही सकता तो स्कन्ध का ग्रहण कैसे हो सकता है ? और जब स्कन्ध का ग्रहण न बने तो अवयवी याने पिण्ड स्कन्ध की सिद्धि भी नही हो सकती। तो अवयवी जो परमाणु हैं उनका ग्रहण तो हुआ नहीं और अवयवी कुछ होता नही तो इसके मायने यह हुआ कि कुछ भी नही है जगत मे। न परमाणु हैं और न स्कन्ध। अब यदि कोई कहे कि उन परमाणुओ का ग्रहण हुये बिना पिण्ड का अवयवी का ग्रहण हो जाता है तब यहाँ यह दोष आता है कि जब परमाणुओ का ग्रहण हुये बिना अवयवी स्कन्ध का ग्रहण हो गया तो जिस चाहे जगह रीती जगह मे जहाँ कुछ नही है वहा भी स्कन्ध का ग्रहण हो जाना चाहिये क्योकि अब तो अवयवो के ज्ञान बिना भी अवयवी का ज्ञान मान लिया। तो रीती जगह मे भी अवयवो के ज्ञान की आवश्यकता तो न रही, तो यहा भी अवयवो का बोध हो जाना चाहिये।

आरेका मे निरशवादियो द्वारा स्कन्ध के निराकरण का प्रयास—अवयवी को न मानने वाले एकान्तवादी ही कह रहे हैं कि यदि कोई यहां यह तर्क करे कि कुछ थोडे से अवयवो का ग्रहण पहले हो जाता है तत्पूर्वक स्कन्धो का ग्रहण हुआ करता है तो इस पर यह आपत्ति आती है कि थोडे अवयवो का ग्रहण करने से स्कन्धो का ग्रहण मानने पर सभी अवयवो या अवयवियो का ग्रहण नही हो सकता है। इसका कारण यह है कि उस स्कन्ध के अवयव रूप हो रहे अनन्त परमाणुओ को जैनादिक के यहा व्यवस्था बनायी गई है इस कारण वास्तव मे अवयवभूत अनन्त परमाणुओ का ग्रहण करना असम्भव है। तो कुछ अवयवो का ग्रहण करके ही तो स्कन्धो का ज्ञान माना है सो वास्तविक रूप से तो स्कन्ध की सिद्धि न हो सकी, क्योकि सभी परमाणुओ का ग्रहण होने पर स्कन्ध का ज्ञान मानना सच्चा होता। हाँ अनादि काल से लोगो को अविद्या लगी है, भ्रम बना है इसलिये अत्यन्त निकट हो रहे उन परमाणुओ को एक स्कन्ध रूप से मान लेते हैं और वस्तुत वे सब परमाणु एक दूसरे से बन्धन रूप सम्बन्धित नही हैं, इस कारण वह सब कोरा भ्रम है। जैसे कि सिर पर रहने वाले केश या नीचे पडे केशो का झु ड वे एक दूसरे केश से बधे हुये तो नही हैं, सर्व स्वतन्त्र रह रहे हैं, पर अति निकट रह रहे हैं, इस कारण उनमे भी एक पिण्ड का भ्रम हो जाता है। या जैसे बालू के कण का ढेर पडा हुआ है तो वहाँ भी बालूका प्रत्येक कण जुदा जुदा ठहर रहा है और एक कण का दूसरे कण के साथ बन्धन भी नही है, किन्तु वे सब अतिनिकट होकर रह रहे है, इस कारण वहाँ भी पिण्ड जैसा भ्रम हो जाता है। ऐसे ही परमाणु तो हैं सब न्यारे न्यारे। उनका परस्पर एक दूसरे से बन्धन नही है मगर वे समीपवर्ती हो जायें तो भ्रमवश लोग उन्हें स्कन्ध कह देते है। वास्तव मे तो सूक्ष्म असाधारण क्षणिक परमाणु ही पदार्थ है और जो कुछ लोगो को प्रतीत हो रहा है कि अनेक समय तक ठहर रहा यह स्कन्ध, यह स्थूल है, अवयवी है, सो वह वास्तविक पदार्थ नही है। इस प्रकार

यहां तक क्षणिकवादियो ने अवयवी का अर्थात् स्कन्ध का खण्डन किया और जब स्कन्ध कोई चीज ही नही है तो सख्यात असख्यात अनन्त प्रदेश बताने वाला सूत्र निरर्थक है।

परमाणु व स्कन्धों की सिद्धि मे उक्त आरेका का समाधान—अब उक्त शंका के समाधान मे कहते हैं कि इन शकाकारो के यहां भी तो अवयवी पदार्थ की सिद्धि नही हो पाती है और बहिरङ्ग अन्तरङ्ग जो परमाणु हैं, स्वलक्षणमात्र है, वे अतीन्द्रिय हैं, वे बुद्धि के विषयभूत हो नही सकते। तो जब परमाणुओ का मिला हुआ अवयवी पदार्थ निरशवादियो ने माना नही और परमाणु सभी स्वलक्षण मात्र हैं वे बुद्धि मे आते नही, अतीन्द्रिय है, तो वहाँ भी तो बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग पदार्थो का ग्रहण नही हो सकता। सो इन निरशवादी बौद्धो के यहाँ भी किसी पदार्थ का ग्रहण न हो पायेगा, इस पर यदि शकाकार यह कहे कि हम तो परमाणुओ की प्रतिक्षण उत्पत्ति मानते रहते हैं, कोई कोई इकट्ठे हुये परमाणु ही अपने कारणो की विशेषता से इन्द्रियजन्य ज्ञानो से जानने योग्य स्वभाव वाले बन जाते हैं, अर्थात् उनका ग्रहण होना सिद्ध हो जाता है। इस कारण सम्पूर्ण पदार्थो का ग्रहण नही हुआ, किंतु कुछ दृश्य परमाणुओ का इन्द्रिय द्वारा ग्रहण हुआ है, ऐसी तर्कणा यदि शकाकार प्रकट करे तो उनका यह मतव्य भी सही नही है, क्योकि कभी भी कही भी किसी भी अल्पज्ञ व्यक्ति को परमाणुओ की प्रत्यक्ष प्रतीति नही हो रही है, जब कि यह स्कन्ध एक ही अकेला ज्ञान मे स्थूल रचना को धारण करने वाला प्रतीत हो रहा है। याने अलग-अलग परमाणुओ के प्रतिबिम्बो को आकारो को शकाकार के यहाँ ज्ञान नही धारण करता और स्व को जानने वाला ज्ञान भी अनाकार है, पर सविकल्प ज्ञान के द्वारा स्थूल आकार वाला एक अवयवी स्पष्ट जान लिया जाता है।

स्कन्ध के स्थूल आकार के दर्शन को भ्रान्त कहने की शका व उसका समाधान—यहाँ यदि शकाकार यह कहे कि परमाणु तो चैतन्य आत्मा मे विद्यमान नही हो रहे फिर भी भ्रान्ति ज्ञान से अतिस्थूल आकार को ये परमाणु दिखला देते हैं। जैसे कि एक स्थूल दर्शक काँच होता है उसको आँख के आगे लगाने से छोटा पदार्थ भी बहुत बडा दिखने लगता है। ऐसे ही ये परमाणु निकटवर्ती होकर जो मोटे रूप मे दिखने लगता है सो वह केवल ऐसा समझ लेना भर है। वास्तव मे अवयवी, स्थूल पदार्थ कोई नही होता, ऐसा तर्क करने वाले शकाकार से यह पूछा जा रहा है कि वह परमाणु किसी न किसी प्रकार प्रतिभासित हो जाये तब स्थूल आकार को दिखलाता है या किसी भी प्रकार प्रतिभासित नही होता तो भी वे अविद्यमान स्थूल आकार को चेतन आत्मा मे दिखला देगें। इन दो पक्षो मे कौन सा पक्ष स्वीकार है? दूसरे पक्ष की बात तो स्पष्ट है कि यदि परमाणु किसी भी प्रकार प्रतिभासित नही हो रहा तो वे स्थूल आकार को कैसे ग्रहण करा देगें? क्योकि कुछ भी प्रतिभासित न हो और दिखला दें, ऐसा माना जाये तो जहाँ कुछ नही है वहाँ पर तो कुछ प्रतिभास नही हो रहा, फिर तो उनके सभी तरह के स्कध दिख जाने चाहिए। अब यदि पहले पक्ष के अनुसार शकाकार यह कहे कि किसी न किसी प्रकार परमाणु प्रतिभासित हो जाये, तो वह अपने आप स्थूल आकार दिखला देता है। जैसे कि सत्त्व वस्तुत्व आदिक से तो परमाणुओ का ज्ञान हुआ है तो वे स्थूल आकार को दिखला देगें। तो इस शका का समाधान यह है कि जब यह शकाकार परमाणुओ को सर्वांगीण प्रतिभासित कर चुका है तो परमाणु रूप से सूक्ष्म रूप से, क्षणिक रूप से भी उन परमाणुओ का प्रतिभास

हो जाना चाहिए किंतु ऐसा हो रहा नही , किसी भी अल्पज्ञ को परमाणु का परमाणुपन आदिक रूप से स्पष्ट प्रतिभास नही होता।

परमाणु की अप्रतिभा समानता और स्थूल आकार की भ्रान्ति से ज्ञायकला की शका का शकाकार द्वारा समर्थन—अब यहाँ शकाकार निरशवादी कह रहे है कि बस यही कहना सत्य है कि परमाणुपन आदिक स्वभाव से नही प्रतिभासित हो रहे, परमाणु समूह से उस आकार को दिखला देता है। सो हम तो इसी दूसरे पक्ष को मानते हैं क्योकि हम निरशवादियो के ग्रन्थ मे भी ऐसा ही कथन है कि अर्थ के एक स्वभाव का जब स्वतः ही प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया है तो उस पदार्थ का कौन सा अन्य भाग देखा नही जा चुका अर्थात् पदार्थों मे अनेक स्वभाव तो हैं नही सो किसी भी पदार्थ का एक बार प्रत्यक्ष कर लेने पर उस पदार्थ का पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। याने कोई भाग न देखा गया नही रहता। सिर्फ इतनी ही कसर रहती है कि उस निर्विकल्प प्रत्यक्ष से निश्चय की उत्पत्ति नही होती, सो उन परमाणुओ को अप्रतिभासित कह दिया जाता है। सो निश्चय करने वाला ज्ञान अप्रमाण माना गया है, निर्विकल्प प्रत्यक्ष ही प्रमाण माना गया है। सो इस प्रकार निर्विकल्प प्रत्यक्ष के द्वारा पदार्थ के सम्पूर्ण गुण देखे जा चुकते हैं, परन्तु कदाचित् भ्रान्ति हो जाने से यदि किसी गुण का निश्चय नही किया जा सकता है तो अनुमान की प्रवृत्ति होती है और वहाँ साधन के द्वारा अनिर्णीत गुण का निश्चय कर लिया जाता है। जैसे परमाणु स्वरूप का ज्ञान निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा उसी समय हो चुका था जब कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष हुआ, वह परमाणु असाधारण है, सूक्ष्म है, स्वलक्षणमात्र है। इस प्रकार सब कुछ जाना जा चुका था तो उस पदार्थ मे कोई अलग-अलग अनेक अश तो हैं नही । पदार्थ तो निरश होते हैं। सो उस निर्विकल्प प्रत्यक्ष के समय यह न था कि कुछ अशो को तो जान लिया गया और कुछ स्वभाव को छोड दिया गया। वहाँ तो निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा पदार्थ का सर्वांगीण प्रत्यक्ष हुआ था किंतु अनादिकाल से जीवो को भ्रम सस्कार की वासना लगी है तो वहाँ भ्रान्तिज्ञान बना क्षणिक पदार्थ मे चू कि यह अनेक समय रहता है या पदार्थ स्थूल है ऐसी भ्रान्ति होने लगती है। उस भ्रान्ति को दूर करने का सामर्थ्य निर्विकल्प ज्ञान मे नही है, क्योंकि निर्विकल्प ज्ञान का विषय तो यथार्थ दर्शन है। सो उस भ्रान्ति को दूर करने के लिये फिर अनुमान प्रमाण बनता है। जैसे अनुमान बना कि समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत्त्व होने से। तो इस अनुमान द्वारा उसी का ही निर्णय किया गया है कि जो निर्विकल्प ज्ञान मे प्रत्यक्ष किया था सो यो परमाणु को जान चुकने पर भी उसके कुछ गुणो का निश्चय नही हुआ था। सो परमाणुओ को अप्रतिभासित कह दिया जाता है। सो जो अप्रतिभासित होने लगे उन्ही के निश्चय के लिये विकल्पज्ञान जगता है। सो उसमे अभ्यास, प्रकरण, बुद्धि पातव और अर्थित्व इन ४ के कारण निश्चय बनता है। सो परमाणु के सूक्ष्मपने क्षणिकपने के स्वभाव का अभ्यास अधिक नही है, ऐसे उसका शीघ्र स्मरण नही हो पाता और इसी तरह एक परमाणु मे भी यह अज्ञानी प्राणी स्वभाव भेद समझ बैठता है। अतः जो बात कही गई थी कि अप्रतिभासित परमाणु भी अपने मे अविद्यमान स्थूल आकार को किसी भ्रम से दिखला देता है अत अवयवी याने पिण्डभूत पदार्थ कुछ नही है। वह तो भ्रममात्र है।

सविकल्पज्ञान से किये गये निर्णय को अवास्तविक कहने पर प्रमाणता के निर्णय के अभाव का प्रसग बताते हुये उक्त शका का समाधान—शकाकार की उक्त शका का समाधान यह है कि जब शकाकार ही स्वय कह रहा है कि जाने गये परमाणु मे कुछ निश्चितपना है कुछ धर्मों मे अनिश्चित-

पना है। तो जब निश्चय और अनिश्चय का निर्णय हो रहा है तो परमाणु अनेक स्वभाव वाला अपने आप सिद्ध हो गया। यहाँ यह समाधान न चलेगा कि निश्चय ज्ञान तो वस्तु को विषय नही करता और निर्विकल्प प्रत्यक्ष वस्तु को विषय करता है। सो निश्चय द्वारा कल्पित अश जाना जाता। सो निश्चय अवस्तुभूत को जानता है, सो स्वभाव भेद नही हो सकता। शकाकार यदि उक्त समाधान दे तब तो निश्चय की उत्पत्ति द्वारा जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष को प्रमाणपन सिद्ध करते हैं तो प्रमाणपन अप्रमाणपन की व्यवस्था उस सविकल्प ज्ञान से कैसे हो सकेगी, क्योकि निर्णय करने वाले ज्ञान को अवस्तु विषयक बताया है। वह यथार्थ वस्तु को नही जानता। तो यथार्थ वस्तु को न जानने वाले सविकल्प ज्ञान से तो निर्विकल्प प्रत्यक्ष की प्रमाणता कैसे सिद्ध करेंगे ? तो अवस्तुभूत ज्ञान से निर्विकल्प प्रत्यक्ष का प्रमाणपन सिद्ध कर बैठते है तो विपर्यय ज्ञान की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति के द्वारा उस दर्शन के प्रमाणपने और अप्रमाणपने की व्यवस्था बन बैठेगी। यहाँ यह बात स्पष्ट समझियेगा कि क्षणिकवाद के सिद्धान्त मे निर्विकल्प प्रत्यक्ष को तो वस्तु का यथार्थ दर्शक बताया है परन्तु उसमे निश्चय कुछ नही बना। उसका निश्चय किया सविकल्प ज्ञान ने। तो उस सविकल्के ज्ञान को मानते है अवस्तु विषयक ज्ञान। तो यहाँ परस्पर विरोध हो रहा है। जो झूठा ज्ञान है उसका प्रमाणपन मानते और वस्तु को विषय करने वाला नही मानते। सो जो वस्तु का निर्णय करे उसे तो खोटा मानते और जहाँ निर्णय नही है उसे सम्पूर्ण ज्ञान मानते। तो ऐसे झूठ ज्ञान से प्रमाणता का निर्णय करने वाले फिर विपरीत ज्ञान का भी निर्णय कर बैठे। तब तो कोई सही व्यवस्था न बन सकेगी।

अब यहाँ निरंशवादी शकाकार कहता है कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष मे प्रमाणपना बताने वाला सविकल्प ज्ञान ही है। क्योकि सविकल्प ज्ञान ने निर्विकल्प प्रत्यक्ष के द्वारा जाने गये पदार्थ का ही निर्णय कराया है, किन्तु विपर्यय ज्ञान और सशयज्ञान ये निर्विकल्प प्रत्यक्ष की प्रमाणता के सम्पादक नही हैं, क्योकि ये खोटे ज्ञान दृष्ट अर्थ का निर्णय नही कराते। ऐसी निरशवादियो का शका रूप यह कहना युक्त नही है, क्योकि एक ओर तो यह कहा जा रहा है कि सविकल्प ज्ञान स्वलक्षण को अर्थात् पदार्थ को विषय नही करता और दूसरी ओर कहा जा रहा जा रहा है कि सविकल्प ज्ञान निर्विकल्प प्रत्यक्ष द्वारा देखे गये पदार्थ का निर्णय करता है तो यह तो यो हुआ कि जैसे कोई पुरुष अपने को अज्ञानी मानता हुआ भी स्वय को सर्वज्ञ कह बैठे। भला जो सविकल्प ज्ञान अर्थात् निर्णायक ज्ञान वास्तविक पदार्थ को न जानेगा तो वह दृष्ट अर्थ का निर्णय करने वाला कैसे हो सकता है ? पदार्थ को विषय करने वाला ही पदार्थ का निर्णय कर सकता है। इस प्रकार निर्णायिक ज्ञान सविकल्प ज्ञान वास्तविक पदार्थ का जाननहार है। तो उसी निर्णायिक ज्ञान से कुछ अश प्रतिभासित हुये और कुछ अश अप्रतिभासित हुये। तो यो वस्तु के स्वभाव का भेद बन जायेगा। तब निरशवाद का यह कहना ठीक नही है कि परमाणु ही अविद्यमान स्थूल आकार को भ्रम से दिखला देता है। यदि ये निरशवादी पुरुष परमाणुओ के सर्वथा अनिश्चय होने पर भी उनमे भ्रान्ति ज्ञान स्वीकार करने लगे तब तो रेत आदि कुछ भी न हो वहाँ भी जल का भ्रम हो जाना चाहिये। बात तो यह है कि जहा जल नही है, मात्र रेत है वहाँ जल का भ्रम होता था, मगर सर्वथा अनिश्चय मे भी भ्रम माना जाये तो रेत के बिना भी एकदम जल का भ्रम हो जाना चाहिये। पर ऐसा तो नही होता। कोई लम्बी रस्सी पडी हो तो साप का भ्रम हो जाता, पर कुछ भी न हो और भ्रम बनता हो, ऐसा तो नही होता। अत. यह बात अवश्य ही मानना चाहिए कि परमाणु भले ही इन्द्रियगम्य नही है

मगर उन परमाणुओ मे मूर्तपना तो है। जहाँ अनेक परमाणु जब बद्ध हो जाते हैं तो वहाँ आकार फिर स्थूल हो जाने से इन्द्रियगम्य हो जाता है।

पुद्‌गल स्कन्धो की सावयवता की सिद्धि का उपसहार—यह हठ करना ठीक नही है कि परमाणु इन्द्रियगम्य नही है, तो परमाणु का सयोग होने पर भी पिण्ड इन्द्रियगम्य नही हो सकता। सभी को अनेक परमाणुओ का पिण्डरूप स्कन्ध मानना ही पड रहा है और जब स्कन्ध हैं ये सब, तो उनमे कुछ स्कन्ध सख्यात प्रदेश वाले है, कुछ असख्यात प्रदेश वाले हैं, कुछ अनन्त प्रदेश वाले हैं। यहाँ प्रदेश शब्द से परमाणु का ग्रहण किया गया है। अनेक स्कन्धो का चक्षु इन्द्रिय द्वारा सम्व्यवहार प्रत्यक्ष हो ही रहा है। अब जो सूक्ष्म स्कन्ध हैं या मात्र परमाणु ही हैं उनको अनुमान या आगम ज्ञान से जान लिया जाता है। वस्तु की व्यवस्था प्रतीति के अनुसार होती है और प्रतीतियाँ उसी प्रकार होती जैसी कि वस्तु है। सो किसी पदार्थ मे कोई तथ्य जान लिया उसके द्वारा उसके अज्ञानतत्त्व को जानने मे कोई दोष नही आता। यो पुद्‌गल स्कन्ध कोई इन्द्रियगम्य हो जाता है और कोई इन्द्रियगम्य नही हो पाते। और ये सब स्कन्ध सख्यात, असख्यात और अनन्त परमाणुओ के पिण्ड रूप हैं इसी कारण इनमे ये अनेक प्रकार के प्रदेश बताये गये है। अब पुद्‌गल के प्रदेश इस सूत्र मे कहे गये तो वहाँ एक आशका हो जाती है कि पुद्‌गल परमाणु के भी ये प्रदेश होते हैं क्या ? तो उसका उत्तर इस सूत्र मे कह रहे हैं।

नाणो ॥ ५-११ ॥

परमाणु का एक प्रदेशित्व—सूत्र का अर्थ तो इतना ही है कि परमाणु के नही है। इस सूत्र मे दो पद है। न और अणो। न शब्द तो अव्यय है और अणो अणु शब्द की षष्ठी विभक्ति का एक वचन है, पर पूर्व सूत्र से शब्दो की अनुवृत्ति करने पर इसका यही अर्थ बनता है। वह अर्थ है कि परमाणु के सख्यात असख्यात और अनन्त प्रदेश नही होते हैं। अर्थात् परमाणु केवल एक प्रदेश परिमाण वाला है। आकाश का एक प्रदेश का जितना परिमाण है उतना ही परिमाण परमाणु का है। क्योकि परमाणु पुद्‌गल के अविभागी अश को कहते हैं। परमाणु से छोटा पदार्थ जगत मे कुछ नही है इसलिये अणु वह अविभागी पुदगल द्रव्य परमाणु है कि जिसका विभाग नही हो सकता, अर्थात् उसी परमाणु को तो आदि कहो, उसी को अन्त कहो और उसी को मध्य कहो, ऐसा परमाणु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण मे नही आ सकता। इस सूत्र का सामान्यतया यह अर्थ हो जाता कि परमाणु के प्रदेश नही हैं सो उससे यह न समझना कि परमाणु अप्रदेशी है, अनुवृत्ति से अर्थ लगाया गया कि परमाणु के अनेक प्रदेश नही होते। अगर परमाणु एक प्रदेशी भी न हो है तो वह असत् हो जायेगा। प्रदेश-रहित कोई भी पदार्थ नही होता। यहाँ कोई एकान्तवादी कहता है कि परमाणु एक प्रदेश वाला भी नही होता। परन्तु उनका यह कहना उचित नही है, क्योकि प्रदेशरहित परमाणु अवस्तु बन जायेगा। जैसे आकाश पुष्प खरविषाण ये कोई सत् पदार्थ नही है। इसमे प्रदेश ही नही हैं। यहाँ यह भी शका न करना चाहिये कि यदि परमाणु को एक प्रदेश स्वरूप मान लिया जायेगा तो फिर वह प्रदेशी कैसे कहला सकेगा ? प्रदेश मायने प्रदेश है और प्रदेशी मायने प्रदेश वाला है। धन और धन वाला जब ये एक तो नही कहलाते। तो प्रदेश और प्रदेश वाला ये भी एक न हो सकेंगे। यह शका करना यो ठीक नही है कि एक प्रदेश वाला परमाणु स्पर्शन, रसना आदिक गुणो का आश्रयभूत है। सो परमाणु की दृष्टि से देखा तो वह प्रदेशमात्र है और जब गुणो के आश्रय की दृष्टि से देखा तो गुणाश्रय

प्रदेश परमाणु का ही प्रदेश कहलाया। यह बात इस तरह भी समझ लेना चाहिये कि परमाणु मे प्रदेशीपन स्वभाव से विद्यमान है। यदि परमाणु मे प्रदेशीपन स्वभाव न हो तो स्कध अवस्था होने पर उन परमाणुओ के प्रदेशीपन की सिद्धि नही हो सकती। परमाणु मे प्रदेशीपना तो आत्मभूत है, स्वलक्षण है तब ही तो अनेक परमाणुओ का बध होने पर स्कध दशा मे वह प्रदेशीपन एकदम प्रकट हो जाता है, इन्द्रियग्राही भी हो जाता है। केवल एक पुद्गल परमाणु एक प्रदेश स्वरूप है फिर भी वह प्रदेशी कहा जाता। यदि केवल एक प्रदेश वाले परमाणु को प्रदेशी न माना जायेगा तो अनेक परमाणु मिलकर भी प्रदेशी न हो पायेंगे। प्रदेश के बिना प्रदेशो होना असम्भव है।

परमाणु को प्रदेशी व प्रदेश स्वरूप न मानने पर परमाणु मे द्रव्यत्व की असिद्धि का प्रसग— अब यहाँ कोई शकाकार कहता है कि परमाणु को प्रदेश स्वरूप भी न माना जाये क्योकि प्रदेश और प्रदेशी अविनाभावी है तो हमारे नैयायिक सिद्धान्त मे परमाणु न प्रदेशी है, न प्रदेश स्वरूप है। इसका समाधान यह है कि यदि परमाणु न प्रदेश स्वरूप है, न प्रदेशी है तो वह द्रव्य भी नही हो सकता। जैसे कि इन्ही नैयायिक वैशेषिक के गुण कर्मादिक पदार्थ प्रदेश शून्य है अतः उन्हे द्रव्य नही माना तो ऐसे ही परमाणु भी प्रदेशरूप नही है तो वे भी द्रव्य न रह सकेंगे, पर नैयायिक ने भी तो परमाणु को द्रव्य माना है क्योकि वह गुणसहित है। स्पर्श आदिक गुण परमाणु मे माने गये है। अत: प्रदेश और प्रदेशी स्वभाव से होते है, अन्यथा जगत मे कोई द्रव्य ही सिद्ध नही होगा। शकाकार यहाँ यह तर्क भी सिद्ध नही कर सकता कि आकाश आत्मा आदिक द्रव्य प्रदेश स्वरूप नही हैं और प्रदेशी स्वरूप नही है और वे द्रव्य हैं। यह तर्क उनका इस कारण सगत नही है कि आकाश के अनन्त प्रदेश कहे गए हैं। आत्मा आदिक के भी असख्यात प्रदेश सिद्ध किए गए हैं। वे प्रदेशरहित नही हैं।

परमाणु के अनेक प्रदेशित्व की असभवता— अब यहा कोई शकाकार कहता है कि यदि परमाणु को प्रदेश वाला मानते हो तो उसे अनेक प्रदेश वाला भी मानो और हम यहा अनुमान से सिद्ध करते हैं कि परमाणु अनेक प्रदेश वाला है, क्योकि यह द्रव्य है। जैसे घट, आकाश, आत्मा ये अनेक प्रदेश वाले हैं, क्योकि द्रव्य हैं। इसके समाधान मे कहते हैं कि शकाकार का यह अनुमान इस कारण ठीक नही है कि जिसको परमाणु कहा जा रहा है वह शब्द मे भी यह बतला रहे कि परमाणु बहुप्रदेशी नही है। परमाणु का अर्थ है उत्कृष्ट विभाग वाला छोटा पदार्थ। जिस किसी को भी परमाणु का नाम देकर अनेक प्रदेश वाला मानोगे तो चूँकि वह अनेक प्रदेशो मे है सो उसके भी विभाग बन सकेंगे और यो विभाग कर करके जो अन्तिम एक प्रदेश वाला ज्ञात होगा वही परमाणु कहलायेगा। और वह परमाणु द्रव्य है, सो द्रव्य होने पर भी कोई एक प्रदेशी है, कोई अनेक प्रदेशी है। काल द्रव्य भी तो एक प्रदेशी है और कहलाता है। देखो शकाकारो ने भी तो शब्द को द्रव्य माना हैं और शब्द को प्रदेशरहित स्वीकार किया है। तो यह अनुमान ठीक तो न रहा कि जो द्रव्य है वह अनेक प्रदेश वाला है। शब्द विषयक वास्तविकता तो यह है कि शब्द भी अशुद्ध द्रव्य है और वह अनेक प्रदेशी है और परमाणु चूँकि उत्कृष्ट छोटा पदार्थ है जिसका कि फिर भेदन नही हो सकता, वह अनेक प्रदेश वाला न हो सकेगा।

परमाणु को अष्टप्रदेशी मानने के मन्तव्य की मीमांसा का प्रारम्भ— परमाणु के बारे मे कुछ दार्शनिक ऐसा मन्तव्य रखते है कि परमाणु मे कम से कम ८ प्रदेश तो मानना ही चाहिये क्योकि ८ दिशाओ मे से किसी भी दिशा मे और कोई परमाणु लगे, तो यो ही तो स्कध बन पायेगा। सो

उस परमाणु की ८ दिशाओ मे अन्य परमाणु के लग सकने के कारण परमाणु के ८ प्रदेश हैं। उनका यह कहना यो सिद्ध नही है कि फिर तो वह परमाणु न रहा, स्कध बन गया, क्योकि ८ अश मानने वाले को ऊपर और नीचे के भी अश मानने पडे और कोई ८ पैर वाला पदार्थ हो, उसके आसपास ८ पैर वाले पदार्थ रखे ज यें तो निश्छिद्र वध नही हो सकता याने उनके बीच अन्तर रहेगा या गोल-गोल माना जाये तो। उनके समूह मे भी अन्तर रहेगा। इस कारण परमाणु के ८ अश या १० अश या गोलाकार मानना ठीक नही जचता। परमाणु तो एक प्रदेशी ही है।

परमाणु को अष्ट प्रदेशी मानने पर ही स्कन्ध बन सकने का शंकाकार द्वारा समर्थन— परमाणु को ८ प्रदेश वाला मानने वाले शकाकार कहते है कि यदि परमाणुओ को अनेक प्रदेश वाला न माना जायेगा तो दूसरे परमाणु के वध होने के प्रसग मे दो ही तो विकल्प हैं, या तो सर्वांग रूप से सयोग हो या एक देश रूप से सयोग हो, सो सर्वांग रूप से दूसरे परमाणु का सयोग होने पर वह पिण्ड एक परमाणु बरावर ही रहेगा क्योकि यहाँ वधन सर्वांग रूप से हुआ है और इस तरह एक क्या, सख्यात असख्यात अनन्त परमाणु एक से वधे तो भी एक परमाणु रूप से रहेगा, और इस तरह सुमेरु पर्वत भी परमाणु के बरबार छोटा बन बैठेगा। अब यदि एक देश से परमाणुओ का सयोग माना जाये तब तो अवयव सहित परमाणु कहलाने लगा। याने परमाणु के एकदेश मे वध होता है, बाकी देश मे तो नही होता। तो यो परमाणु अवयव सहित बन गया। ता जैसे पदार्थ के अनेक अवयव होते हैं उसी पदार्थ मे कई एकदेश बन गये, और वहाँ उसके एकदेश से सयोग माना। तो पहले तो वह अकेला ही परमाणु अवयवी कहलाया और फिर उस अवयवी परमाणु के अवयवो मे सयोग बनाया तो यो तो अवयवो के कल्पना की लम्बी धारा बढती चली जायेगी। और अनवस्था हो जायेगी, और तीसरी बात यह है कि चाहे सर्वात्मरूप से सयोग मानो, ८ प्रदेश वाला न मानने पर बडे स्कध की प्रतीति हो ही नही सकती। इस कारण ८ प्रदेश वाला वह रूपाणु उत्तरोत्तर विभाग हो होकर अन्त मे अविभागी के परमाणु बन जायेंगे। लेकिन वह परमाणु भी अशो से रहित नही है। हम लोगो को प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ज्ञात नही हो पाता इसलिये अश सहित परमाणु को भी हम निरश रूप मे कल्पना कर लेते हैं। इससे चूँकि दिशायें ८ हैं, चार दिशायें, चार विदिशायें, एक नीचे, एक ऊपर, सो प्रदेश भी ८ प्रदेश वाले माने जाना चाहिये।

परमाणु को अष्टप्रदेशी मानने पर परमाणुत्व की असिद्धि और सयोग विधि का स्याद्वाद से समाधान— उक्त शका का समाधान करते हुये आचार्य देव कहते हैं कि अनेक तर्क वितर्क से क्या लाभ है? स्याद्वाद सिद्धान्त के अनुसार विचार करने पर सर्व समस्यायें हल हो जाती हैं। एकप्रदेश वाले परमाणु का किसी का सर्वात्मरूप से सयोग होता, किसी का एकदेश रूप से सयोग होता, सो कभी अणु-अणु मात्र भी स्कध हो सकता याने छोटे स्कध हो जायेंगे और कोई बडे स्कध भी बन जाते, इसमे कोई दोष नही है। सो एक प्रदेशमात्र परमाणु को मानने पर कोई दोष नही है। बल्कि ८ प्रदेश वाले परमाणु मानने पर उसके फिर टुकडे किये जा सकते और वह अनुमान प्रमाण से सिद्ध होता है कि रूपाणु टुकडे किये जाने योग्य है, क्योकि मूर्त होकर भी अनेक अवयवो वाला है। जैसे घटपट आदिक ये मूर्त हैं और अनेक अवयवो वाले हैं तो इनके टुकडे किये जा सकते, ऐसे ही जो लोग परमाणु को ८ प्रदेश वाला मानते हैं सो वे मूर्त हैं और अनेक अवयवो वाले है इस कारण उनका भेदन

हो सकता। अनेक अवयवो वाला तो आकाश भी है पर वह मूर्त नही है इसलिये इस हेतु मे कोई दोष नही है. निष्कर्ष यह है कि अन्तिम सबसे छोटा अवयव केवल एक प्रदेश स्वरूप है।

परमाणु के अष्टप्रदेशित्व की असिद्धि का विवरण—जब यहाँ परमाणु को ८ प्रदेश वाला मानने वाले शकाकार पुनः शका रख रहे है कि परमाणु को एक ही प्रदेशमात्र मानने पर तो बडे स्कधो की प्रतीति न हो सकेगी, क्योकि परमाणु के प्रदेश अनेक तो माने नही, ऐसी दशा में अनेक परमाणुओ का भी सयोग हो जाये तो भी वह पिण्ड अणुमात्र ही बना रहेगा। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि ऐसी समस्या तो तुम्हारे ८ प्रदेश वाले परमाणु मे भी आ खडी हो सकती है। भला ८ प्रदेश वाले परमाणु का एकदेश से अन्य का सयोग बनता है तो उस बीच छिद्र रह जाते हैं। ऊपर नीचे की जगह न भर पायेगी और एकदेश सयोग मानने पर अनवस्था दोष भी आयेगा और सम्पूर्ण रूप से फिर आप सयोग मानने की कहेगे। तो भले ही ८ प्रदेश वाला परमाणु है शकाकार जैसा मानता है फिर भी सर्वांग रूप से अन्य परमाणु का सयोग होगा तो वह पिण्ड भी अणुमात्र रह जायेगा, बडे पिण्ड की प्रतीति न हो सकेगी। भला ८ प्रदेश वाला परमाणु मानने वाले यह बतायें कि पूर्व आदिक दिशाओ मे प्राप्त हो रहे अन्य परमाणु क्या एकदेश से सम्बन्धित होगे या पूर्ण रूप से सम्बन्धित होगे ? दोनो ही पक्षो मे जैसे कि शकाकार ने एक प्रदेश वाले परमाणु मे दोष दिया था वे ही दोष यहाँ आ सकते हैं इस कारण स्याद्वाद सिद्धान्त से ही यह बात सिद्ध होती है कि कभी परमाणु सर्वांगरूप से सयुक्त हो तो उसका आकार नही बढता, कोई एकदेश से सयुक्त होता तो उसका आकार याने स्कध पिण्ड बढ जाता है।

परमाणु परमाणु के परस्पर बन्धन का कारण स्निग्धत्व रूक्षत्व गुण की विशेषता—परमाणु परमाणु के बन्धन के सम्बन्ध मे वास्तविकता यह है कि न तो एकदेशसयोग की बात प्रश्न मे उठती है न सर्वांगरूप से सयोग की बात प्रश्न मे उठती है। किंतु इन दोनो प्रकारो से अतिरिक्त तीसरे ढग से ही बन्धन होता है। और वह है स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण बन्धन। और, चाहे दोनो परमाणु स्निग्ध हो या रूक्ष हो या एक स्निग्ध हो एक रूक्ष हो वहाँ एक से दूसरे मे दो अधिक डिग्री का गुण हो तो वहा बन्ध हो जाता है। जो कि एक देश से ससर्ग कराता हुआ बडा पिण्ड बना देता है और कभी सर्वात्मरूप से ससर्ग हो तो अणु मात्र ही रह जाता है। ऐसे उन परमाणुओ मे भी अवगाह शक्ति है तब ही तो इस छोटे से लोक मे अनन्तानन्त परमाणु निरापद विराजमान हैं। तो स्याद्वाद सिद्धान्त मे परमाणुओ का परस्पर एकदेश से भी सयोग होता है, व सर्व देश से भी सयोग होता है। तब स्कन्धो मे परमाणु तो अवयव कहलाता और स्कन्ध अवयवी कहलाता। फिर उनमे कार्यकारण भाव आदिक सब विधिया ठीक प्रकार से निर्णीत हो जाती हैं।

सभी वस्तु धर्मों की स्याद्वाद से सिद्धि का सकेत—इस पञ्चम अध्याय के प्रथम सूत्र मे बताया था कि धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये अजीव काय हैं। और द्वितीय सूत्र मे बताया था कि ये द्रव्य है फिर आगे के सूत्र मे बताया कि जीव भी काय है और द्रव्य है सो इन सब के सम्बन्ध मे मे द्रव्यपना, नित्यपना, रूपीपना, निष्क्रियपना आदिक स्वभाव से भी घटित किया था। सो यहाँ एक एक बात यह जानना कि जिसको द्रव्य कहा था वह एक दृष्टि से द्रव्य रूप है। पर किसी अपेक्षा से पर्यायरूप भी है। यदि हम केवल एक सत् को मूल आधार मानते है याने सत् कहकर सबका सग्रह

मानते हैं तब तो उस सत् का भेद कर जो बताया जाय वह पर्यायरूप बनता है। भेद को भी पर्याय कहा गया है। किंतु कितने ही भेद करके बताया जाय प्रत्येक पदार्थ अपने सत्त्व सेसत् रूप है और वह स्वय द्रव्यपर्यायात्मक है। नित्यानित्यात्मक है। अत वे सभी द्रव्य हैं। और, जो कुछ भी बात कही गई जैसे कि ये सब नित्य अवस्थित हैं, तो किसी अपेक्षा से यह अवस्थित है, निष्क्रिय है, इसकी गति नही होती इसलिए आकाश आदिक द्रव्य निष्क्रिय है पर उनमे स्वय मे परिणमन होने का, द्रव्यपना होने का ये सब क्रियायें चलती हैं इस कारण कथञ्चित सक्रिय भी हैं। इस तरह प्रत्येक द्रव्य मे अनेक स्वभावमयता की सिद्धि होती है। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप से चलित नही है इसलिए अचल है, निष्क्रिय है, पर किसी मे हलन चलन आदिक क्रियायें पायी जाती और जिनमे हलन चलन आदिक क्रियायें नही पाई जाती वहा अवस्थितपन, परिणमनपन आदिक क्रियायें भी तो है। परि-स्पन्द न होना याने अपरिस्पन्द होना यह भी एक क्रिया है। तो यो क्रिया सहितपना भी सिद्ध होता है। जीवद्रव्य मे असख्यात प्रदेश बताये हैं। पर किसी अपेक्षा जैसे प्रदेश का सहार विसर्प है उन अपेक्षाओ से उनमे सख्यात असख्यात विभाग भी बन सकते। स्याद्वाद से अनेक विधि की सिद्धि होने पर भी प्रधान का प्रधानतया कथन होता है। तात्पर्य प्रकरण मे यह है कि परमाणु के एक देश सयोग सर्व देश सयोग या पदार्थों का द्रव्यपना पर्यायपना आदिक सभी बातें स्याद्वाद से सिद्ध कर ली जाती हैं। यहाँ तक अस्तिकायो के सम्बन्ध मे स्वरूप, प्रदेश आदिक का वर्णन हुआ। अब जिज्ञासा होती कि ये सब कहा हैं सो उनका अधिकरण बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

लोकाकाशेऽवगाहः ॥५ १२॥

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म व काल द्रव्यों का लोकाकाश मे अवगाह – लोकाकाश मे अवगाह है, सूत्र का शब्द के अनुसार इतना ही अर्थ है, पर किसका अवगाह है, यह बात समझने के लिये पूर्व सूत्र देखने होगे। अनन्तर पूर्व के सूत्र देखने से तो पुद्गल का अवगाह आपतित होता है। इतना ही अर्थ निकलेगा, पर इतना अर्थ यहाँ नही है। समुदाय की यहाँ अपेक्षा है इस कारण लोकाकाश मे धर्म अधर्म आदिक सभी द्रव्यो का अवगाह है, यह इस सूत्र का अर्थ होता है।

आकाश की स्वप्रतिष्ठता व परमार्थ से सभी द्रव्यों की स्वप्रतिष्ठता—यहाँ एक शका होती है कि सब द्रव्यो का अवगाह तो लोकाकाश मे हुआ, पर इस लोकाकाश का भी क्या आधार है, वह भी तो कहना चाहिये। लोकाकाश कहो या आकाश कहो। आकाश किसके आधार रहता है, यह भी बताना चाहिये। उत्तर इसका यह है कि आकाश का अन्य कोई आधार नही होता। आकाश अपने ही आधार मे रहता है, अर्थात् आकाश आधेय है और आकाश ही आधार है। इसका कारण यह है कि आकाश से अधिक परिमाण वाला अन्य कोई द्रव्य है ही नही। आकाश सर्वव्यापक है, इस कारण से आकाश का आधार अन्य कुछ नही होता। यदि आकाश का आधार भी ढूढने चलेगे, कल्पनायें करेंगे तो फिर उसका भी आधार बताना चाहिये, फिर उसका भी आधार बताना चाहिये तब तो अनवस्था-दोष आ जायेगा। पर यहाँ अनवस्था दोष है ही नही। आकाश अपने आधार है, उसका आधारभूत अन्य कोई द्रव्य नही है। तथा वस्तु स्वरूप की भी बात देखिये परमार्थ दृष्टि से तो सभी पदार्थ अपने अपने आधार मे रहते है। एव भूतनय की दृष्टि मे सभी द्रव्य परमार्थ रूप से अपने आपके आधार मे हैं। तो इस परमार्थ बात के कहने से कही यह एकान्त न कर लेना तो फिर अन्य से अन्य के आधार बताना यह सब खण्डित हो जायेगा। सो खण्डित नही होता। क्योंकि व्यवहार से

आधार आधेय की सिद्धि है। हा परमार्थ से तो आकाश की तरह सभी पदार्थ अपने-अपने आधार मे है, इसका कारण यह है कि क्रियायें दो तरह की देखी जाती हैं एक कर्ता मे रहने वाली क्रियायें और एक कर्म मे रहने वाली क्रिया। जैसे एक वाक्य बोला—कि देवदत्त ठहर रहा है या देवदत्त जा रहा है तो ठहरने और जाने की क्रिया का समवाय देवदत्त कर्ता मे है और जैसे कोई कहता है कि रसोइया चावल को पका रहा तो यहाँ पकने रूप क्रिया का समवाय कर्मकारक रूप चावल मे है। तो वहाँ व्यवहारनय की दृष्टि से क्रिया का आधार द्रव्य रहा, और क्रिया सहित द्रव्य का आधार द्रव्यान्तर रहा लेकिन परमार्थ दृष्टि से एव भूतनय की अपेक्षा क्रिया क्रियात्मक मे ही रहेगी, द्रव्य भी स्वात्मा मे ही रहेगा। तो यहाँ सूत्र मे जो लोकाकाश मे धर्मादिक द्रव्यो का अवगाह कहा गया है वह व्यवहार-नय के आदेश से कहा गया है। परमार्थत देखा जाये तो सभी द्रव्य अपने-अपने आधार मे रहते है।

अयुत सिद्ध मे भी आधाराधेयत्व का व्यवहार—अब यहाँ एक शकाकार कह रहा है कि आकाश का तो बता रहे आधार और धर्मादिक द्रव्यो को कह रहे हैं आधेय तो आधार और आधेय तो भिन्न-भिन्न रूप से होते है अर्थात पहले धर्मादिक आकाश मे न हो, पीछे आकाश मे चले हो, यह बात बन बैठेगी। जैसे मटके मे बेर है तो बेर पहले मटके मे न थे, पीछे मटके मे डाले गये अथवा ये दोनो भिन्न ही तो हो गये, तब तो आधार आधेय समझ मे आयेगा। इस शका के उत्तर म कहते हैं कि पृथक् सिद्ध मे ही आधार आधेय की कल्पना हो यह नियम नही है। जो आयुक्त सिद्ध है अभिन्न है वहाँ भी आधार आधेयपना देखा जाता है। जैसे कहते हैं कि हाथ शरीर मे है। यहाँ शरीर को आधार कहा और हाथ मे आधेय कहा फिर भी हाथ शरीर से कुछ जुदी चीज नही। सिर्फ हाथ और शरीर पूर्वापर दृष्टि से ये उत्पन्न तो नही हुये कि पहले शरीर हो, पीछ हाथ हो तो अयुत सिद्ध मे भी आधार आधेय देखा जाता इसी प्रकार आकाश धर्मादिक पदार्थ अनादि से एक साथ सिद्ध हैं, इनमे पूर्वापर भेद नही है फिर भी आधार आधेय हो जाता है, इस कारण कही पृथक् सिद्ध मे भी आधार आधेय का व्यवहार है, कही अयुत सिद्ध मे भी आधार आधेय का व्यवहार है। सर्व समस्याओ का हल अनेकान्त दृष्टि से समझ लेना चाहिये।

लोक व लोकाकाश का अर्थ—अब यहाँ लोकाकाश का अर्थ कहा जाता है। लोक कहते किसे हैं ? तो लोक शब्द के व्युत्पत्ति के अनुसार अनेक प्रकार से अर्थ बनते है। पहला अर्थ यह है कि पुण्य पाप कर्म का सुख दु ख रूप फल जहा देखा जाये उसे लोक कहते है। इस अर्थ से लोक नाम आत्मा का रहा, क्योकि पुण्य पाप कर्म का फल आत्मा मे लिखा जा रहा है फिर भी रूढि से लोक शब्द द्वारा सब द्रव्यो का ग्रहण होता है। दूसरा अर्थ है जो पदार्थ को प्राप्त करता है, लोकता है, देखता है उसे लोक कहते हैं। इस अर्थ मे भी लोक नाम आत्मा का ही कहलाया, क्योकि आत्मा ही पदार्थों की उपलब्धि करता है पर शब्द मे ऐसी व्युत्पत्ति होने पर भी रूढि से सभी द्रव्यो का नाम लोक कहलाता है। याने धर्मादिक द्रव्य सभी जहाँ पाये जाते वह लोक है। रूढि के स्थान मे क्रिया की मात्र व्युत्पत्ति कुछ समझने के लिये की जाती है। जैसे गौ शब्द कहा तो शब्द के अर्थ से तो गौ यह अर्थ निकलेगा कि जो जावे सो गौ है। तो क्या बैठी हुई गाये गौ न कहलायेंगी ? यहाँ समभिरूढ की प्रधानता है, इसी प्रकार जो लोकन करे, जाने सो लोक है। इस व्युत्पत्ति मे भी धर्मादिक की लोकता की हानि नही है, क्योकि यह सब समभिरूढि से ही सिद्ध हुआ है। अथवा लोक का यह तीसरा अर्थ किया जाये कि सर्वज्ञ भगवान के द्वारा जो देखा गया

सो लोक है। लोक्यते य स लोक, तो सर्वज्ञ के द्वारा समस्त ही पदार्थ जाने गये हैं इसलिये धर्मादिक समस्त पदार्थों के लोकपना सिद्ध होता है। इस तीसरे अर्थ मे यह शका न करना चाहिये कि फिर तो आत्मा छूट गया। देखने मे जो आये सो लोक तो देखने मे वे धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल आये, तो इनमे लोक न रहेगा यह शका न करना, क्योकि देखने मे स्वात्मा भी आया है। छहो प्रकार के द्रव्य सर्वज्ञ के द्वारा जाने गये हैं। अब यहाँ यह भी शका उत्पन्न कर सकते हैं कि इस तीसरे अर्थ की दृष्टि मे अलोकाकाश भी लोक बन बैठेगा, क्योकि अर्थ तो अब यह किया कि जो सर्वज्ञ द्वारा देखा जाये सो लोक है, तो सर्वज्ञ के द्वारा तो अलोक भी जाना गया क्योकि यदि अलोक नही जाना गया तो वह सर्वज्ञ न रहेगा। यह शका न करना, क्योकि इस तीसरे अर्थ मे भी रूढि विशेष से छहो द्रव्य जहाँ पाये जाते है, छहो द्रव्यो का जो समूह है वह लोक कहलाता है, अथवा तीसरे अर्थ मे एक यह विशेषण और लगाना चाहिये कि जहाँ रहते हुये सर्वज्ञ के द्वारा जो देखा जाये वह लोक है। तो सर्वज्ञ तो अलोक मे हैं नही इस कारण समस्त अलोक-लोक से अलग कहलाने लगेगा। अथवा चौथा अर्थ यह करना चाहिये कि धर्म, अधर्म, पुद्गल, काल और जीव जहाँ देखे जायें वह लोक है। कहाँ देखे जाते ? लोकाकाश मे। लोकस्य आकाश लोकाकाश लोक का जो आकाश है वह लोकाकाश है और यह लोकाकाश धर्म द्रव्य के समान असख्यात प्रदेशी है। यहा सब द्रव्यो का अवगाह है, उसके बाहर चारो ओर अनन्त अलोकाकाश है। समस्त द्रव्यो का अवगाह स्थान बताया है। अब उस ही लोकाकाश मे किन-किन द्रव्यो का कितनी-कितनी जगह मे अवगाह है यह बतला रहे हैं।

धर्माधर्मयो कृत्स्ने ॥५-१३॥

धर्म व अधर्म द्रव्य का समस्त लोकाकाश मे अवगाह—सूत्र का शब्दार्थ तो इतना ही है कि धर्म और अधर्म द्रव्य का समस्त मे। अब इस सूत्र मे पूर्व सूत्र से दोनो पदो की अनुवृत्ति ग्रहण की जा रही है। जिससे अर्थ हुआ कि धर्म और अधर्म द्रव्य का समस्त लोकाकाश मे अवगाही है। यहाँ धर्म और अधर्मद्रव्य का लोकाकाश के समस्त प्रदेशो मे अवगाह बताया गया है। इनका लोक के एकदेश मे अवगाह नही है। ये धर्म और अधर्मद्रव्य समस्त लोकाकाश मे अवगाही है, यह अनुमान प्रमाण से सिद्ध करते है। धर्म और अधर्मद्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश मे अवगाही हैं क्योकि गमन कर रहे और ठहर रहे, समस्त पदार्थों का उपकार किया जा रहा होने से। समस्त लोकाकाश मे गमन कर रहे पदार्थ का उपकार धर्मद्रव्य से हो रहा और ठहर रहे पदार्थ का ठहरा देना यह उपकार अधर्मद्रव्य से हो रहा, इस हेतु से यह सिद्ध होता है कि दोनो द्रव्य लोकाकाश मे ठसाठस रूप से अवगाह करने वाले हैं। तीनो लोक के जितने भी पदार्थ हैं उन सभी गति परिणाम वाले और स्थिति परिणाम वाले का जो गति और स्थिति में निमित्त रूप उपकार है, यदि धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य लोक मे एक देशवर्ती द्रव्य होते तो न हो सकता था, क्योकि एकदेशवर्ती होकर धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य यदि जीव पुद्गल के गमन करने और ठहरने मे निमित्त हो जायें तब तो इनका गमन और ठहरना अलोकाकाश में भी होना पडेगा। सो युक्ति सगत नही है। इस कारण लोकाकाश मे ही समस्त द्रव्य हैं और जीव पुद्गल का गमन और ठहरना लोकाकाश मे ही है, यह बात तब ही सिद्ध हो सकती है जबकि लोकाकाश मे धर्म-द्रव्य व अधर्मद्रव्य सर्व देशो मे व्यापी हो। यहाँ कृत्स्न शब्द देने से यह समझना कि धर्म और अधर्म द्रव्य का लोकाकाश मे ऐसा अवगाह है जैसे कि तैलका तिलो मे होता है। तेल तिलो के किसी एक जगह मे नही रहते। वे सर्व देशो मे व्याप्त हैं, ऐसे ही धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य समग्र लोकाकाश मे

व्याप्त है। ऐसा नही है कि जैसे घर के एकदेश मे कलश आदिक का अवस्थान होता हो। यहाँ यह शका न रखना चाहिये कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य और आकाश भी वही के वही ठहर रहे हैं। इनका परस्पर मे विरोध क्यो नही। जहाँ एक ठहरा है वहाँ दूसरे का प्रवेश न होना चाहिये। यह शका इस कारण से सगत नही है कि ये द्रव्य अमूर्तिक हैं। अमूर्त द्रव्य का परस्पर प्रवेश मे विरोध नही होता। विरोध तो मूर्तिक स्थूल द्रव्यो का हो सकता है, किन्तु जो अमूर्त द्रव्य है उसमे विरोध का प्रसग ही नही है अथवा ऐसा द्रव्य का अवस्थान अनादि काल से भी चला आ रहा है। वहाँ विरोध का कोई अवकाश नही, इस प्रकार लोकाकाश मे अमूर्त हो रहे धर्म, अधम द्रव्यो का अवगाह बताया। अब जो मूर्तिमान है अर्थात् पुद्गल द्रव्य है उनके अवगाह का ज्ञान कराने के लिये सूत्र कह रहे हैं।

एक प्रदेशादिषुभाज्य पुद्गलानाम् ॥५-१४॥

पुदगलों का लोकाकाश के एकप्रदेश आदि मे अवगाह—सूत्र के शब्दो का अर्थ है कि पुद्गलो का एक प्रदेश आदिक लगा लेना चाहिये। इस सूत्र मे भी लोकाकाशेवगाह इन दोनो ही पदो की अनुवृत्ति ली जा रही है जिससे कि सूत्र का पूर्व अर्थ बना—पुद्गलो का लोकाकाश के एक प्रदेश आदिक मे अवगाह लगा लेना चाहिये। यहाँ लोकाकाशेवगाह इस सूत्र से लोकाकाश की अनुवृत्ति तो ली, किन्तु अर्थ के वश से विभक्ति का परिणमन हो जाता है। लोकाकाशे शब्द को सप्तमी विभक्ति लगी है किन्तु यहाँ षष्ठी विभक्ति का अर्थ होता है और जिससे अर्थ बना यह कि लोक के एक प्रदेश आदिक मे अवगाह है। अब एक प्रदेश आदिक मे अवगाह कैसे जाना जाये उसकी युक्ति यह है कि उस ही लोकाकाश के एक प्रदेश मे जैसे एक परमाणु का अवगाह हो रहा है उसी प्रकार अनेक अणु का अथवा अनेक स्कधो का भी सूक्ष्म परिणमन हो जाने से अवगाह हो जाता है और इस प्रकार किन्ही स्कन्धो का कुछ प्रदेशो मे अवगाह है, किन्ही का असख्यातवें भाग मे अवगाह है। और असख्यात भी असख्यात प्रकार के होते हैं, सो यो उनके विविध क्षेत्रो मे अवगाह है। यह बात पहले बता दी गई थी कि एक परमाणु के साथ अन्य परमाणु का सम्बन्ध कही सर्वदेश से होता है तो वह एक प्रदेशमात्र रह जाता है और कुछ परमाणुओ का सम्बन्ध परमाणु के एकदेश मे होता है। तो वह पिण्ड दो आदिक प्रदेशो मे रहता है। पुद्गल स्कन्धो मे इस तरह का सूक्ष्म परिणमन होना असिद्ध नही है क्योकि सूक्ष्म व स्थूल मे स्कन्धो मे सूक्ष्म व स्थूल परिणमन होता देखा जा रहा है जैसे बहुत सी रूई बिखरी पडी है उस समग्र रूई को यदि दबा दिया जाये और यन्त्र से उसका केन्द्रीकरण हो जाये तो वह पिण्ड थोडे प्रदेशो को घेरने वाला वहाँ ही स्पष्ट दिख रहा है। स्थूल पदार्थों मे दूसरे स्थूल पदार्थ भी प्रविष्ट हो जाते है, यह भी देखा जा रहा है। जैसे घर मे सैकडो दीपको के प्रकाश एक ही जगह समा जाते हैं अथवा ऊटनी के दूध से भरे हुये बर्तन मे उतना ही मधु डालने से समा जाता है या जैसे दूध मे बूरा घुलकर उतने मे ही समा जाता, बुझाया हुआ पारा सोने को समा लेता है और बोझ उतना ही रहता है। बालू रेत या राख मे पानी भी समा जाता है, जब यहाँ स्थूल पदार्थ भी अनेक स्थूल पदार्थो को समा लेते हैं तो सूक्ष्म परिणमन वाले परमाणुओ का अवगाह हो जाये और वह भी सूक्ष्म पिण्ड होकर आकाश के थोडे से प्रदेश मे रहे तो इसमे कोई आश्चर्य नही। अब पुद्गल का अवगाह बताकर जीवो का अवगाह बतला रहे हैं कि जीव आकाश के कितने हिस्से मे रहता है।

असख्येय भागादिषु जीवानाम् ॥५-१५॥

लोकाकाश के असख्येय भाग आदि मे जीवो का अवगाह—इस सूत्र मे भी लोकाकाशे अवगाह इन दो पदो की अनुवृत्ति ली जाती है और अर्थवश से लोकाकाश का विभक्ति परिणमन हो जाता है षष्ठी विभक्ति हो जाती है। तब इस सूत्र का अर्थ होता है कि जीवो का लोकाकाश के असख्याते भाग आदिक मे अवगाह है। असख्यात असख्याते प्रकार के होते हैं। इसलिये लोकाकाश का असख्यातवा भाग भी अनेक प्रकार का होता है। कोई जीव सर्व जघन्य शरीर वाला हो नित्य निगोदी उसका अवगाह लोक के असख्यात भाग प्रमाण असख्यात प्रदेश मे है और किसी जीव शरीर का अवगाह ऐसे दो असख्यात भागो मे है, किसी का ऐसे तीन आदिक असख्यात भागो मे है। कोई भी जीव शरीर अथवा जीव किसी भी पर्याय मे असख्यात प्रदेशो से कम प्रदेश मे नही ठहरते। कितने से छोटे आकाश के हिस्से मे असख्यात प्रदेश पाये जाते हैं इसका अनुमान इस तरह कर लेना चाहिये कि आगम मे बताया है कि सूच्यगुल के असख्यातवें भाग मे भी असख्याते उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय से अधिक प्रदेश विद्यमान हैं। गणना की अपेक्षा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल मे जितना समय होता और वह भी असख्याते उत्सर्पिणी अवसर्पिणी का उतने से अधिक प्रदेश तो सूच्यगुल के असख्यातवें भाग की जगह मे हैं।

छोटे-बड़े जीव शरीरो का दिग्दर्शन—सबसे छोटी जघन्य अवगाहना कब होती है जीव की सो सुनो सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव जब उत्पन्न होते हैं तो उसके तीसरे समय मे घनागुल के असख्यातवे भाग रूप सबसे छोटी जघन्य अवगाहना है, फिर इस अवगाहना से एक प्रदेश, दो प्रदेश सख्यात प्रदेश असख्यात प्रदेश बढ बढकर बडी अवगाहना बनती है। केवली समुद्घात मे लोकपूरण समुद्घात के समय ऐसा अवसर होता है कि जीवो के प्रदेश समग्र लोकाकाश मे व्याप्त हो जाते हैं। इस अवसर के अतिरिक्त किसी भी अवसर मे जीव के प्रदेश समग्र लोकाकाश मे नही व्याप पाते। इन जीवो के शरीर मे भी ऐसी अवगाहने की योग्यता है कि थोडे से स्थान मे कहिये सर्व जघन्य शरीर रह रहा है उसी स्थान मे अनन्त निगोदिया जीव समा जायें। जब साधारण नामकर्म प्रकृति का उदय होता है तो वहा ऐसे साधारण जीव होते हैं कि जिनका शरीर तो एक है और उस आश्रय से अनन्त जीव बस रहे हैं। उन अनन्त जीवो का आहार, श्वास उच्छ्वास जन्म मरण साधारण है अर्थात् एक साथ होता है। इस लोक मे ऐसा स्कन्ध देह असंख्यात लोक प्रमाण है जिन एक-एक स्कन्धो मे असख्यात लोक प्रदेश के बराबर अन्डर होता है और एक-एक अन्डर मे असख्यात लोकप्रमाण आवास होते हैं और एक-एक आवास मे असख्यात पुलवियाँ होती हैं और एक-एक पुलवी मे असख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर होते हैं और एक-एक शरीर मे सिद्ध राशि से अनन्त गुने निगोदिया जीव रहते हैं। तो अब ध्यान मे लाओ कि थोडी सी जगह मे कितने अनन्त जीव बसे हुये हैं। यद्यपि मोटे रूप मे यही कहा जा रहा है कि सर्व जीवो का स्वरूप सर्व जीव लोक के असख्यातवें भाग मे रहता है किन्तु इसमे सब जीवो का देहो का परिमाण एक सरीखा न समझना चाहिये। असख्यात तो असख्यात प्रकार के होते हैं और इस शरीर मे थोडा-थोडा बढ-बढकर इतने भेद हो जाते हैं कि सर्व जघन्य शरीर तो घनागुल के असख्यातवें भाग मे है और सबसे बडा शरीर १००० योजन का लम्बा, ५०० योजन का चौडा और २५० योजन का मोटा मच्छ का शरीर है जो कि स्वयभूरमण समुद्र मे पाया जाता है और इस बीच सख्यात प्रदेश बढ-बढकर असख्यात प्रकार के हो जाते हैं।

सब द्रव्यों के प्रदेशों के परिणाम के कथन की समाप्ति का संकेत—यहाँ तक काल द्रव्य को छोड कर सभी द्रव्यो का अवगाह और प्रमाण ज्ञात हुआ है और उन सब वर्णनो से निष्कर्ष रूप यह समझ लेना चाहिए कि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु का अवगाह है, क्योकि अन्य द्रव्यो का भिन्न-भिन्न रूप में अवगाह बताया जा चुका। जैसे धर्म अधर्म द्रव्य का अवगाह सम्पूर्ण लोकाकाश मे है। पुद्गल का अवगाह एक प्रदेश आदिक मे है। जीवो का अवगाह लोकाकाश के असख्येय भाग आदिक मे है तो उससे अब और क्या बचता है ? सो वह अपने आप सिद्ध हो जाता है कि काल द्रव्य का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश पर है। ऐसे असख्याते काल द्रव्य हैं और उन सब का एक-एक प्रदेश पर ही अवगाह है।

लोक प्रदेश प्रमाण असख्यात प्रदेशी अनन्त जीवो का असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश मे कैसे अवगाह हो जाता है की जिज्ञासा—इस अध्याय मे पहिले यह बताया गया था कि एक जीव लोकाकाश के बराबर असख्य प्रदेश प्रमाण वाला है और ऐसे जीव अनन्तानन्त हैं। तब एक ही जीव का प्रदेश प्रमाण लोकाकाश के बराबर है और ऐसा ही प्रमाण है समस्त अनन्त जीवो का तो वे सभी जीव एक लोकाकाश मे कैसे समा जाते ? जीवो को साधारण रूप से सख्या इस तरह समझ लेना चाहिए कि सबसे कम जीव मनुष्य गति मे पाये जाते हैं लेकिन वे भी असख्यात हैं। जो पर्याप्त मनुष्य है उनकी सख्या तो करीब २१ अक प्रमाण है, किंतु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य हैं कर्मभूमिज महिलाओ के काख आदिक अवयवो मे उत्पन्न होते रहते हैं। एक श्वास मे १८ बार जन्म मरण करते हैं ऐसे लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य असख्यात है। इस तरह मनुष्य गति के जीव हैं तो अधिक किंतु अन्य गतियो मे सबसे कम हैं। उनसे अधिक जीव नारकियो मे हैं। नरकगति के जीव मनुष्य गति से अधिक है। उनसे अधिक देवगति मे हैं। उनसे अधिक त्रस जीव है, उनसे अधिक निगोद को छोडकर शेष स्थावर जीव हैं। उनसे अनन्तगुने सिद्ध जीव हैं और उनसे भी अनन्तगुने निगोदिया जीव हैं। इतने अनन्तानन्त जीव एक लोकाकाश मे कैसे ठहर जाते हैं ? यह एक आशका होती है। उसके समाधान मे अब सूत्र कहते हैं।

प्रदेशसहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥५-१६॥

जीव प्रदेशो का सकोच विस्तार होने के कारण लोकाकाश मे अनन्त जीवो के अवगाह की सिद्धि—जीव का लोकाकाश के असख्यात भाग आदिक मे अवगाह है इसका कारण यह है कि जीव के प्रदेशो का सहार और विसर्प होता है अर्थात प्रदेशो का सकोच और फैलाव हुआ करता है। जैसे दीपक का प्रकाश। यदि घडे मे दीपक हो तो उतने मे रहेगा। कमरे मे दीपक हो तो उतने मे रहेगा बहुत बडी हाल मे दीपक हो तो उतने मे रहेगा। तो जैसे आधार के कारण दीपक के प्रकाश मे सकोच और विस्तार होता है इसी प्रकार जीव के प्रदेशो का निमित्तवश सकोच और विस्तार होता है। वह निमित्त क्या है सो अभी बतायेंगे ? यहाँ सूत्र के अर्थ के समय तत्काल यह जानना चाहिये कि जीवो का लोक के असख्यातवे भाग आदिक मे अवगाह होने का विरोध नही है। क्योकि जीवो के प्रदेशों का संकोच और विस्तार हुआ करता है, जैसे कि दीपक। यद्यपि प्रत्येक आत्मा का स्वभाव अमूर्तपना है रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से रहित अमूर्त है यह आत्मा, तो भी अनादि काल से कर्मों का सम्बन्ध चला आ रहा है। सो उस पुद्गल कर्म के साथ तथा पुदगल कर्म के विपाक प्रतिफलन के साथ मोही जीव का एकपना हो रहा है। इस कारण आत्मा कथञ्चित मूर्त बन रहा है सो यह

आत्मा यद्यपि लोकाकाश के प्रदेशो के बराबर असख्यात प्रदेशी है। किंतु कार्माण शरीर के वश से जो सूक्ष्म स्थूल शरीर ग्रहण मे आया उस सूक्ष्म शरीर के मिलने पर सूखे चमडे की तरह प्रदेशो मे सकोच हो जाता है जैसे कोई चमडा गीला व फैला हुआ है और सूखने पर सिकुड जाता है। ऐसे ही छोटा शरीर मिलने पर जीव के प्रदेश सिकुड जाते है और स्थूल शरीर मिलने पर उसके बराबर फैल जाते है। जैसेकि जल मे तेल गिरे तो वह तेल जल के बराबर फैल जाता है। इस सूत्र मे दृष्टात दिया है दीपक का। वह बिल्कुल स्पष्ट है। सबको इसमे निर्विवाद ज्ञान है कि दीपक को जैसा आधार मिले वैसा ही सकुचित अथवा विस्तृत हो जाता है।

आत्मा के आधार का निश्चय व व्यवहार से निर्देशन—इस कथन मे यह जाहिर हो रहा है कि आत्मा का आधार शरीर है अथवा आकाश प्रदेश है। पर निश्चयतः देखा जाय तो कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधार मे नही है। यह सब व्यवस्था व्यवहार से बताई जा रही है और व्यवहार से ही अनेक घटनाओ का बोध होता है। स्पष्टतया एक ही भव मे देखा जाता कि जब कोई छोटा बालक है, शिशु है तब उसका आत्मा बहुत छोटे देह प्रमाण है। वही जब बडा हो जाता है, युवक हो गया तो उससे चौगुने प्रमाण आत्मा का फैलाव हो जाता है।

जीव के प्रदेशों के सकोच विस्तार की मीमासापूर्वक समर्थन—यहाँ शकाकार कहता है कि एक अनुमान प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि आत्मा के प्रदेशो मे सकोच और विस्तार नही हैं। वह प्रमाण क्या है कि आत्मा अपने प्रदेशो के सकोच और विस्तार को नही धारण करता, अमूर्त द्रव्य होने से, जैसे कि आकाश। आकाश, अमूर्त द्रव्य है तो उसमे सकोच विस्तार नही होता। तो आत्मा भी अमूर्त द्रव्य है, अत उसके प्रदेशो मे सकोच विस्तार नही हो सकता। इस पूर्व पक्ष के समाधान मे कहते हैं कि उनका यह पक्ष अनुमान और आगम प्रमाण से बाधित हो जाता है। देखिये अनुमान प्रमाण। आत्मा अपने प्रदेशो के सकोच और विस्तार को तादात्म्य होकर धारण करता है क्योकि बडे परिमाण वाले और अल्प परिमाण वाले देशो मे यह आत्मा व्यापक हो जाता है। दीपक के समान। जैसा कि यहां ही स्पष्ट हो रहा है कि बालक के शरीर मे थोडे देश मे आत्मा रह रहा है। वही जब युवक होता है तो बहुदेश मे आत्मा व्यापक हो जाता है। यहाँ कही ऐसा नही है कि शिशुअवस्था का जीव न्यारा हो और कुमार अवस्था का जीव न्यारा हो। जीव वही एक है, अनुभव सिद्ध है, और जो सत् है वह अनादि अनन्त होता है। वही जीव एक ही भव मे क्या उसके जितने भी भव होते हैं सभी भवो मे वे जीव वही वही एक एक रहते हैं। अपने आप को व हम आप सभी कोभी यहप्रत्यभिज्ञानहो रहा है किजो उसबालकमे था वही अब युवा हुआ। जो पहले पतला था वही अब मोटा हुआ है इसलिए इस ही एक देह मे उस ही एक जीव का ज्ञान होता है। सो अनुमान बाधित है—शकाकार का पूर्वपक्ष तथा आगम बाधित भी है। स्याद्वाद शासन मे ससारी जीवो के प्रदेशो का सकोच और विस्तार बताया गया है। उनका यह कथन अप्रमाण नही है। आगम की प्रमाणता अनेक प्रमाणो से अनेक बार सिद्ध की जा चुकी है।

आत्मा के सर्वव्यापकत्व की बात रखकर व बटवृक्षफल की तरह अतीव अल्पत्व की बात रखकर आत्मप्रदेशों मे सहार विसर्प न होने के पूर्वपक्ष व उनके समाधान—यहाँ शकाकार कहता है कि आत्मा तो सर्वव्यापी है। सो सर्वव्यापी होने के कारण प्रदेशो का सकोच और विस्तार नही हो सकता। जैसे कि आकाश सर्वव्यापी है तो आकाश के प्रदेशो का सकोच और विस्तार नही

होता। ऐसा शकाकार का कथन युक्त नही है, क्योकि आकाश तो सर्वव्यापक है, किंतु आत्मा सर्वव्यापक नही है। अब यहाँ दूसरा शकाकार कहता है कि आत्मा सर्वव्यापक नही है। तो यह मानो कि आत्मा वट वृक्ष के फल की तरह अत्यन्त छोटा है अथवा हजारो बार टुकडे किये गए बाल के अग्र भाग प्रमाण अत्यन्त छोटा है, फिर भी आत्मा के प्रदेशों का सकोच और विस्तार मानने का कोई अवकाश नही रहता। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि ऐसा मानने मे तो प्रत्यक्ष विरोध है। सभी जीवो को अपने पूरे शरीर मे एक साथ आत्मा का अनुभव होता है। यदि आत्मा अत्यन्त छोटा है तो शरीर के जिस हिस्से मे आत्मा होगा उतने हिस्से मे ही आत्मा का सम्वेदन हो सकेगा। हाथ, पैर, पेट, मस्तक आदिक अनेक अग हैं। सब जगह आत्मा का सवेदन न हो सकेगा। दु ख-सुख भी शरीर के किसी एक हिस्से मे ही अनुभूत हो पायेंगे। पूर्ण हिस्से मे अनुभूत न होगे। जैसे कि इस शरीर मे यह पूर्ण आत्मा बना हुआ है उसमे सुख-दु ख का सवेदन न होगा। यहाँ यह शकाकार यह कहे कि आत्मा तो वटफल की तरह छोटा ही है मगर उस आत्मा का शीघ्र भ्रमण होते रहने से सारे शरीर मे दु ख सुख ज्ञान का स वेदन होता रहता है। जैसे कि किसी एक गोल चाक मे कोई काली बू द लगी हो तो उसके भ्रमण के समयका ली बू द सब ओर दिख जाती है। यह कहना भी सगत नही है। यदि इतने बडे शरीर मे वट के बीज बराबर आत्मा माना जा सकता है और वही एक आत्मा खूब तेज चक्कर लगाकर सारे शरीर मे आत्मा का अनुभव कराता है तो फिर सारे लोक भर मे सिर्फ एक ही आत्मा वट बीज की तरह छोटा क्यो नही मान लिया जाता ? जैसे एक आत्मा इतने बडे शरीर मे तेजी से चक्कर लगाता है तो ऐसे ही उनका एक आत्मा ससार के सब जीवो के शरीर में तेजी से चक्कर लगाता रहे और उससे सब अनुभव चलते रहेगे। यदि शकाकार यह कहे कि सम्पूर्ण शरीरो मे एक ही आत्मा का चक्कर लगाना मानने पर जब वह आत्मा किसी शरीर मे पहुचता है तो चू कि बाकी जितने शरीर है वे सब व्यक्त हो जायेंगे, मृतक हो जायेंगे इस कारण एक आत्मा सारे जीव शरीरो मे चक्कर नही लगाता। वह तो एक ही शरीर मे चक्कर लगाता है। इसका उत्तर यह है कि यह ही प्रसग यहाँ भी आ जायेगा। इस शरीर मे भी चक्कर लगाता हुआ आत्मा जिस क्षण हाथ मे पहुँचा उस क्षण बाकी शरीर मृतक हो जाना चाहिये। दूसरी बात यह भी देखिये कि जैसे शीघ्र भ्रमण कर रहे हुये चाक पर काली बू द चारो ओर दिखती है तो रीता स्थान भी तो दिखता रहता है। तो इसी तरह के वे रीते स्थान शरीर के वे रीते अग चेतन विहीन हो जायेंगे लेकिन सभी जीवो को अपने सवेदन प्रत्यक्ष से यह प्रतीत हो रहा है कि आत्मा शरीर प्रमाण है।

पर्यायार्थिक दृष्टि से अनित्यभूत आत्मा के प्रदेशों के सकोच विस्तार का समर्थन—अब यहाँ शकाकार कहता है कि यदि यह जीव मिले हुये विभिन्न शरीरो के अनुसार अपने प्रदेशो का सकोच विस्तार करता है तो जीव अनित्य बन जायेगा। जैसे कि दीपक। उसके आकाश का सकोच विस्तार होता है—तो वह अनित्य होता है, इस शका के उत्तर मे समाधान यह है कि यह बात तो स्याद्वाद मे इष्ट ही है पर्यायार्थिकनय की दृष्टि मे आत्मा अनित्य है, हाँ द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से आत्मा नित्य है, दीपक की तरह। जैसे वही दीपक पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से तो नित्य है, प्रदीप, प्रकाश पर्याय की दृष्टि से अनित्य है। प्रत्येक वस्तु नित्यानित्यात्मक होती है। जो भी सत् है वह नियम से नित्यानित्यात्मक होता है। चाहे उसकी अनित्य पर्यायें सूक्ष्म होने से विदित न हो, पर द्रव्य

सदा रहता है और पर्यायें बदलती रहती हैं। यह पूर्व तथ्य है। यदि ऐसा न हो तो वह वस्तु ही न रहेगा।

जीव के प्रदेशो के टूट जाने व अलग हो जाने की शका और उसका समाधान—अब शकाकार एक शका और कर रहा है कि जीव के प्रदेश माने हैं और प्रदेश मानने के मायने यह हैं कि वह अवयव सहित है। और अभी यह बताया ही है कि वह अनित्य है। तो जो अवयव सहित होता और अनित्य होता है उसके अवयव फैलकर मिट जाते हैं घट की तरह। जैसे घट अवयव सहित है और विनाशीक है तो घट फूटकर खपरियाँ या छोटे छोटे कण के रूप मे उनके अवयवो का टूट जाना हो जाता है। इसके उत्तर मे आचार्यदेव कहते हैं कि यह शका सगत नही है क्योकि इस मन्तव्य का, हेतु का आकाश के साथ व्यभिचार होता है। आकाश भी तो अनन्त प्रदेशी है, याने शकाकार के शब्दो मे अवयव सहित है और साथ ही द्रव्य होने के कारण क्षणभगुर है— पर्याय दृष्टि से, मगर उसके अवयवो का तो टूटना नही होता है, पर्यायार्थिक दृष्टि से आकाश भी कथञ्चित् अनित्य है और अनन्त प्रदेश होने से अवयवो सहित तो है ही मगर आकाश के अवयव तो टूटते फूटते हैं नही, इस कारण यह हेतु दूषित रहा कि जो अवयव सहित हो और विनाशीक हो उसके अवयव सब टूटकर खिर जाते हैं। तो जीव अखण्ड द्रव्य है। असख्यात प्रदेशी है नित्य है और पर्याय दृष्टि से पर्यायें उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं अतएव अनित्य है, फिर भी जीव के प्रदेशो का कभी टूटना नही होता।

आत्मा के अखण्डत्व की सिद्धि—अब आत्मा के अखण्ड होने का एक अनुमान और सुनो, आत्मा के कुछ भी अवयव विशीर्ण नही होते, क्योकि आत्मा के प्रदेश अकारणपूर्वक हैं जो कारणपूर्वक पिण्ड बनता हो अवयव बनता हो उसके अवयव तो खिर सकते हैं मगर जो अनादि काल से बिना ही कारण अनेक प्रदेशी है उसके प्रदेश कभी खिरते नही हैं, घटपट, पुस्तक आदिक पदार्थ जो बिखरते देखे जा रहे हैं उनके वे अवयव अथवा स्कन्ध पिण्ड तो कारणपूवक हुये हैं। मिट्टी का लोधा बनाया, उसको विधि से घडा बनाया तो घट जो अवयवी बना। वह कारणपूर्वक बना है, इस कारण उसके अवयव टूट जाते हैं। मगर आत्मा आकाश की तरह बहुप्रदेशी है। उसके प्रदेश कभी खिरते नहीं है अथवा वस्तुत: जीव के प्रदेश अवयव नही कहलाते, वस्तु होने के कारण प्रदश तो कह सकते, किन्तु उन्हे अवयव नही कह सकते, क्योकि अवयव शब्द का अर्थ है जो चारो ओर से मिले और खिरे उसे अवयव कहते हैं। अवयव शब्द मे अव उपसर्ग है और यु धातु है जिसका अर्थ है मिश्रण और अमिश्रण। तो इस यु धातु से अप् प्रत्यय हो जाने पर अवयव शब्द बनता है। तो अवयव शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमे विश्लेषण हो वहाँ अवयव कहा करते हैं, पर आत्मा आकाश एक परमाणु इनमे अवयव नही कहा जा सकना और आत्मा आदिक मे जो बहुत प्रदेश मानते हैं सो कही स्कध की तरह मुख्य प्रदेश नही हैं, अवयव रूप नही हैं किन्तु एक अखण्ड द्रव्य विस्तार मे कितना बडा है उसके प्रदेशो की नाप से उसे परखा जाये तो जीव असख्यात प्रदेशी सिद्ध होता है। आकाश अनन्त प्रदेशी है, यह व्यवहार बनता है। जीव की अखण्डता का साधक एक अनुमान यह भी है कि जीव के अवयवो का विसरण नही होता। क्योकि जीव अविभागी द्रव्य है। जो अविभागी द्रव्य होते हैं उनके अवयवो का टूटना नही होता। जैसे आकाश आत्मा त्रिकाल मे भी कभी विभाग को प्राप्त नही होता। अमूर्तपन होने के कारण यह भी एक अनुमान है कि आत्मा अमूर्त है और

अमूर्त जितने भी द्रव्य हैं उनके जितने भी प्रदेश माने गये हैं उन प्रदेशो का विसरण नही होता। अत आकाश के समान आत्मा के प्रदेशो का भी फटना, टूटना, फूटना आदिक प्रसग स्याद्वादियो के यहाँ नही आ सकता है।

आकाश और अन्य द्रव्यो के आधाराधेयपन का दिग्दर्शन—यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, जीव आकाश ये बहुप्रदेशी हैं, तिस पर भी ये अखण्ड हैं, और इनका आधार लोकाकाश है। तो इसका अवगाह आवास लोकाकाश मे है। यहाँ कोई शका करता है कि आकाश और धर्म अधर्म जीवादिक का आधार आधेय सम्बन्ध घटित नही होता, क्योकि वह सहभावी है। जैसे गाय के बायें दायें जो दो सीग हैं वे सहभावी हैं। और सहभावी होने के कारण वहाँ यह नही कहा जा सकता कि बायें सीग का आधार दाहिने सीग या दाहिने या आधार बाया सीग है। इस अनुमान से जीव मे और आकाश मे आधार आधेयता सिद्ध नही हो सकती। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यदि सहभावी होने के कारण उनमें आधार आधेयता नही मानो जाती तो नित्य जो गुण गुणी हैं उनके साथ दोष आता है। जैसे आकाश तो गुणी है और आकाश मे रहने वाला परम महत्त्व गुण बताया गया है, और हैं वे दोनो सहभावी। जब से आकाश है तब ही से वहाँ महत्त्व है किन्तु उनका आधार आधेय विदित होता है। आकाश मे परम महत्त्व है, और भी देखिये—आत्मा द्रव्य है, गुणी है और उसमे द्रव्यत्व वस्तुत्व आदिक नित्य गुण सदा ही रहे हैं तो जीव और जीव के गुण ये अनादि से सहभावी हैं, परन्तु इनमे आधार आधेय भाव तो विदित हो रहा है इस कारण शकाकार के द्वारा कहा गया सहभावीपन हेतु दूषित हो जाता है, याने ये जो सहभावी है उनमे आधार आधेयता नही होती, यह नियम नही बनता है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि जीव अखण्ड है। असख्यात प्रदेशी है, और उसका लोकाकाश मे अवगाह है। इस अनुमान प्रमाण से भी जीव के अवयवो का विसरण नही होता। वह अनुमान प्रमाण यह है कि जीव के अवयवो का विसरण नही हो सकता, क्योकि यह अविभागी द्रव्य है, जो-जो अविभागी द्रव्य होते है उनके अवयवो का विसरण नही होता, जैसे आकाश परमाणु आदिक। आत्मा अविभागी द्रव्य है इसका कारण है कि यह अमूर्त हो रहा है। अमूर्त है आत्मा यह भली भाँति सिद्ध है। इसमे रूप, रस, गन्ध स्पर्श नही। ये तो केवल चेतनामात्र स्वरूप वाले अमूर्त पदार्थ हैं।

द्रव्यो के अवगाह, आधार व आधेयपने की प्रसिद्धि—यहाँ तक यह सिद्ध हुआ कि धर्म, अधर्म, जीवादिक द्रव्यो का यथासम्भव लोक के एकदेश मे अथवा पूर्ण देश मे अवगाह है। यहाँ धर्मादिक द्रव्य आधेय है और लोकाकाश आधार है, यह व्यवहारनय के आश्रय से समझना। निश्चयत तो आकाश आकाश के आधार है, धर्मादिक द्रव्य अपने-अपने द्रव्य के आधार हैं। यहाँ एक शका हुई थी कि आकाश और धर्मादिक द्रव्यो मे आधार आधेय सम्बन्ध नही बन सकता। क्योकि ये सहवर्ती हैं, जैसे कि बछडे के बायें और दायें सीग। वे सहवर्ती हैं इस कारण उनमे परस्पर आधार आधेय नही है कि बायें सीग पर दाहिना सीग बैठा हो या दाहिने सीग पर बाया सीग बैठा हो, ऐसे ही जब अनादि काल से आकाश धर्मादिक द्रव्य एक साथ विद्यमान हैं फिर किसको आधार और किसको आधेय कहा जा सकता है? आधार और आधेय का पता तो वहाँ चलता है जहाँ आधार तो पहले रह रहा हो और आधेय बाद मे आकर उस आधार मे बैठ जाये। ऐसा इन द्रव्यो के सम्बन्ध मे है नही

इस कारण आधार आधेय सम्बन्ध ठीक नही है। इसके समाधान मे बताया कि शकाकार का उक्त कहना इस कारण ठीक नही बैठता कि आत्मा और ज्ञान ये दोनो सहभावी हैं, फिर भी इनमे आधार आधेय विदित होता है। आकाश और उसका महत्त्व गुण ये दोनो सहभावी हैं फिर भी इनमें आधार आधेय भाव देखा जा रहा है तो ऐसे ही जीव और धर्मादिक द्रव्य सहभावी हैं फिर भी इनमे आधार आधेय भाव सिद्ध होता है। यह सब व्यवहारनय की दृष्टि से समझना है।

युतसिद्ध, समवेत, असमवेत, सहभावी पदार्थों मे भी आधार आधेयपन की सिद्धि—अब यहाँ शकाकार कहता है कि चूंकि आकाश धर्मादिक द्रव्य ये युतसिद्ध पदार्थ हैं अर्थात पृथक-पृथक हैं, इस कारण इनमे आधार आधेय नही बन सकता। जैसेकि अनेक कालद्रव्य। कालद्रव्य असख्यात हैं और वे एक के पास एक धरे हुए अवस्थित हैं इस कारण वहाँ यह कल्पना नही बनती कि इस काल द्रव्य पर अमुक काल द्रव्य बैठा है। ऐसे ही चूंकि धर्म अधर्मादिक द्रव्य ये सब भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं, आकाश भी भिन्न द्रव्य है इस कारण आकाश आधार है और यह पदार्थ आधेय है। यह बात नही बन सकती। समाधान मे कहते हैं कि शकाकार का उक्त कथन ठीक नही है। क्योकि आधार आधेय भाव का परिचय तो भली भाति भिन्न-भिन्न द्रव्यो मे ही होता है। जैसे बर्तन अलग है, दही अलग है तो यहाँ आधार आधेय विदित हो जाता है कि बर्तन मे दही है। गेहू अलग हैं, बोरा अलग है, बोरे मे गेहूँ भरने पर आधार आधेय भाव स्पष्ट विदित है। बोरे मे गेहूँ हैं। तो जो हेतु दिया है वही हेतु साध्य से विरुद्ध बात को सिद्ध करता है। साधारण शरीर ही जिसका है ऐसे जीवो मे भी परस्पर आधार आधेयपना विदित होता है अथवा घोडे पर मनुष्य बैठा है। घोडा जुदी चीज है, मनुष्य जुदी चीज है और वहाँ जुदी दोनो चीजो मे आधार आधेय भली भाति विदित हो रहा है इस कारण युतपने का हेतु देकर आकाश और धर्मादिक धर्मों मे आधार आधेय का खण्डन करना सगत नही है। अब शकाकार पुन कह रहा है कि धर्मादिक द्रव्यो आधार का लोकाकाश नही है। क्योकि सर्वदा समवाय सम्बन्ध से सहित नही हो रहे ये पदार्थ सदा एक साथ रहते हैं। यहाँ हेतु मे दो बातें एक साथ कही गई हैं कि जो पदार्थ समवाय सम्बन्ध से न रहे और सदा रहे उनमे आधार आधेय भाव नही बनता है। जैसे घोडे पर पुरुष बैठा है, यहाँ आधार आधेय भाव इस कारण बन रहा कि घोडे का मनुष्य के साथ समवाय सम्बन्ध नही है और फिर सहभाव है। समाधान—शकाकार का यह हेतु देना युक्ति सगत नही है। देखिये जो पदार्थ जिस आधार मे आधेय हो रहे हैं, वे सभी पदार्थ जिस आधारमे सदा समवाय सम्बन्ध से रह रहे हो और सहभाव रखने वाले न हो ऐसा कोई नियम नही है। आकाश आत्मा आदिक अधिकरणो मे महत्त्व संख्या गुण आधेय हो रहे हैं और उनमे ये गुण सदा समवाय सम्बन्ध से रह रहे हैं तो ऐसा सदा समवाय की सिद्धि होते हुए भी वहाँ आधार आधेय भाव नही होता, ऐसा प्रतीत नही होता। सहभाव है और आधार आधेय है। और जैसे मटके मे बेर यहाँ एक साथ रह रहे हैं, यों सहभाव तो देख रहे हैं पर मटके मे बेर का सदा समवाय से न रहते हुए जो सहभावी हो उनमे आधार आधेय नही होता। यह कहना सगत न बन सका और साथ ही इसमे व्यभिचार दोष भी आता है। और पुद्गल इन दोनो मे ही बात देख लीजिए। आकाश और पुद्गल का सदा समवाय सम्बन्ध है ही नही और सहभाव पाया जा रहा है और आधार आधेय भाव का अभाव नही है याने आकाश आधार है और पुद्गल

आधेय है। ऐसी ही सब लोगो को प्रतीति हो रही है। ये दिखने वाले पुद्गल के बडे-बडे स्कध आकाश मे हैं ऐसा सबको ज्ञात हो रहा है। तो आकाश का और इस पुद्गल का समवाय बताया नही है। सहभावपना है फिर भी आधार आधेयभाव का अभाव नही है। यहाँ शकाकार कहता है कि हम आकाश और पुद्गल को भी अपने पक्ष कोटि मे रख लेंगे तो उसमे भी आधार आधेय भाव नहीं है यह सिद्ध मानेंगे इसलिए कोई दोष नही आएगा याने आकाश और पुद्गल मे हेतु भी हो गया कि सदा समवाय नही, पर ये सहभावी है। सो इसमे साध्य भी मान लिया जावे कि आकाश और पुद्गल मे आधार आधेय भाव नहीं है। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यह हेतु बाधित है क्योकि आकाश और पुद्गल द्रव्य का आधार आधेयपना छोटे-छोटे बालको तक को भी प्रतीत हो रहा है। कुछ विचारशील पुरुष आकाश और पुद्गल को आधार आधेय से अलग कर देते हैं। यहाँ यह भी शका न करना कि घट पट आदिक पदार्थ जो आकाश मे दिख रहे है सो वे अब पुद्गल की पर्याय हैं। हम पुद्गल द्रव्य की बात कह रहे हैं कि द्रव्य का आकाश मे आधार आधेयभाव नही है। समाधान मे कहते हैं कि पर्याय द्रव्य से कथञ्चित अभिन्न है। पर्याय द्रव्य के प्रदेशो से दूर नही होती इसलिये उनमे सर्वथा भेद नही है। तो जब आकाश मे घट पट आदिक पुद्गल पर्यायें मान रहे हो तो चूकि पर्याय पुद्गल द्रव्य से सर्वथा भिन्न नही है इस कारण पुद्गल ही आधेय कहलाया, इस प्रकार यह भली भाति कथन सिद्ध है कि लोकाकाश और धर्मादिक द्रव्यो का परस्पर आधार आधेय भाव व्यवहारनय के आश्रय से जान लेना चाहिये।

निश्चयनय से एक द्रव्य का अन्य द्रव्य मे आधार आधेयपने का अभाव—निश्चयनय की दृष्टि से किसी भो द्रव्य मे परस्पर आधार आधेयभाव नही है क्योकि सब अपने अपने स्वरूप से अवस्थित होते हैं। यदि कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य मे स्थित हो जाये। निश्चयत. आधय बन जाये तो स्वरूप सकर का दोष लगेगा अर्थात फिर दोनो का स्वरूप मिश्रित कुछ विचित्र हो जायेगा। सो निश्चयनय से आधार आधेय भाव नहीं है और एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ आश्रय आश्रयी भाव भी नही है। जो पदार्थ स्वय अपनी स्थिति रखने के स्वभाव को धारण किये हुये है उसको अन्य पदार्थ द्वारा स्थिति रखने की बात सोचना व्यर्थ है क्योकि कोई भी पथार्थ अपनी सत्ता रखने किसी भी अन्य द्रव्य की अपेक्षा नही रखता। और जो पदार्थ स्वय अपना सत्त्व रखे हैं उसका सत्त्व दूसरे मे नही पहुँच सकता। अब यहाँ व्यवहारनय का पक्ष रखने वाले यदि ऐसा कहे कि जो पदार्थ स्वय स्थिति होने के स्वभाव वाला है उस ही पदार्थ की अन्य अधिकरण द्वारा प्रकटरूप से स्थिति कर दी जाती है याने आधार आधेय भाव जिसका प्रकट नही है तो पर्याय रूप से उनका प्रकट कर दिया जाता है अर्थात अप्रकटरूप से तो पदार्थ स्वय स्थितिशील है, अपने आप मे ही रहता है, पर प्रकट रूप से वह अन्य आश्रय से आधार आधेय भावरूप धारण करता है। तो इस शका के समाधान मे यह द्रष्टव्य है कि शक्ति रूप से स्थित पदार्थ को जो कि दृश्यरूप प्रकट स्वरूप सत्त्व कर दिया जाता है तो क्या वह अधिकरण प्रकट स्थिति स्वभाव वाले को प्रकट सत्ता बनाता है या प्रकट सत्ता स्वभाव से रहित पदार्थ की सत्ता बनाता है? अगर कहो कि प्रकटरूप से भी स्वरूप सत्त्व की स्थिति है, ऐसा स्वभाव है पदार्थ का तो फिर अन्य का आधार आधेय बताना व्यर्थ है। यदि कहो कि पदार्थ मे प्रकट सत्ता का स्वभाव नही है तो वह कभी किया भी नही जा सकता। यहाँ बात

यह सिद्ध की जा रही है कि व्यवहारनय से तो एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ आधार आधेय आदिक सम्बन्ध देखा जाता है किंतु निश्चयनय से प्रत्येक पदार्थ का सत्त्व स्वयसिद्ध है, इस कारण उनमे आधार आधेय भाव नही बनता । सो जो शकाकार ने शक्ति और व्यक्ति से स्थिति स्वभाव का भेद करके आधार आधेयपन की बात ला दी है सो वह निश्चयनय की दृष्टि मे सगत नही होती । अब शकाकार उसी शका का सम्बन्ध लेकर एक प्रसग दोष दे रहा है कि स्थितिशील पदार्थ का अन्य पदार्थ के द्वारा नवीन स्थिति नही मानी जाती तब तो किसी पदार्थ का उत्पाद विनाश भी किसी प्रकार न बन सकेगा । क्योकि यहाँ भी प्रश्न किया जा सकता है कि क्या उत्पन्न स्वभाव वाले पदार्थ वा उत्पन्न स्वभाव को न रखने वाले पदार्थ को किसी उत्पादक कारण द्वारा उत्पन्न माना जायेगा ? तो जो जो दोष पदार्थों की स्थिति के सम्बन्ध मे दिये गये हैं वे सभी दोष दोनो पक्ष मे आते हैं । कहा जा सकता है कि पदार्थ मे यदि उत्पन्न होने का स्वभाव पडा है तो उत्पादक कारण द्वारा क्या किया जायेगा ? यदि उत्पाद स्वभाव रहित को उत्पादक कारण उत्पन्न करें यह माना जाये तो कितने ही कारण मिल जायें तो भी उत्पत्ति नही हो सकती । ऐसे शकाकर द्वारा दोष दिया जाना विल्कुल व्यर्थ है, क्योकि निश्चयनय से सभी पदार्थों का स्वभाव से ही उत्पाद व्यय और ध्रौव्य की व्यवस्था है । व्यवहार नय की दृष्टि से ही पर्याय का उत्पाद व्यय देखा गया है और उन्हे सहेतुक माना गया है कि पदार्थ का उत्पाद व्यय किसी हेतु के द्वारा हुआ करता है तो ऐसे ही यहाँ भी मान लेना चाहिए कि समस्त पदार्थों का स्वरूप सत् अपने आप है और इस कारण निश्चयनयतः द्रव्यो का परस्पर आधार आधेय भाव नही है किंतु व्यवहानय से यह सब देखा जा रहा है कि आकाश मे घट, पट आदिक का अवगाह है । आधार आधेय भाव व्यवहारनय से परखा जाता है ।

निरशवादियो की आधाराधेयपन की असिद्धि की शका और उसका समाधान—अब यहाँ निरशवादी दार्शनिक शका करता है कि पदार्थ तो केवल एक समय मे जो है सो ही है। वह दूसरे समय मे नही ठहरता इसलिए उनके आधार आधेय भाव की कल्पना करना व्यर्थ है । शका का उत्तर यह है कि यदि पदार्थ क्षणक्षय एकान्त मान लिया जाय, अर्थात प्रत्येक पदार्थ एक समय को ही रहता है । दूसरे समय मे पदार्थ का अभाव हो जाता है । ऐसी हठ करने पर तो पदार्थ का सर्वथा अभाव ही हो जायेगा । कोई भी पदार्थ केवल एक क्षण रहता हो और उसका सत्त्व मूलत नष्ट हो जाता हो, ऐसा है ही नही और फिर क्षणक्षय के एकान्त मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य का अभाव हो जायेगा । जैसे कि जो लोग पदार्थ को सर्वथा नित्य मानते हैं उनके मत मे पदार्थ का उत्पाद व्यय सम्भव नही है । कूटस्थ नित्य का उत्पाद और विनाश नही होता । यह क्षणिकवादी भले प्रकार मानते हैं और जब उत्पाद विनाश नही है तो उसकी धारा मे पदार्थ सदा रहे सो ध्रौव्य कहलाता सो ऐसा ध्रौव्य क्षणिकवाद मे नही बनता । और ऐसे ही क्षणिक एकान्तवाद मे भी किसकी उत्पत्ति है ? जब पदार्थ एक क्षणवर्ती है तो उनका कोई उपादान कारण ही नही बन सकता याने पदार्थ किसके उपादेय स्वरूप से परिणमे ? जैसे यहाँ देखा जाता है कि घडे का उपादान कारण मिट्टी है तो घडा मिट्टी की ही अवस्थारूप से परिणमता है । अब क्षणिकवाद मे उपादान कारण तो कुछ रहा ही नही तो वह किस रूप परिणमे और किससे किसका विनाश हो सके ? पूर्व आकार का परित्याग करने

उत्तर आकार को ग्रहण करने में उत्पाद व्यय सिद्ध होता है सो क्षणिकवाद मे उत्पाद व्यय तो बन सका, तो यो ध्रौव्य भी नहीं बन सकता। ध्रौव्य भी पर्याय अंश है। हां जो पदार्थ कालान्तर मे रह रहे हैं उनके उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनो घटित हो सकते हैं। शकाकार यदि यह मन्तव्य रखे कि हम उत्पत्ति केवल कल्पना से मानते हैं। विनाश तो बिना कारण के हो जाता है। ऐसा पदार्थ का स्वरूप है। पर उसकी उत्पत्ति कारणो की अपेक्षा रखती है किंतु वह सब सम्वृत्ति से है, व्यवहार से है, कल्पना से है। यहाँ समाधान मे कहते है कि उन क्षणिकवादी दार्शनिको की अपनी मनमानी कथनी है। जैसी रुचि हुई वैसा वहाँ कथन हो जाता है। यदि व्यवहारनय से उत्पत्ति का कारण मान लिया जाता है तो स्थिति और विनाश का भी कारणो से ही स्वरूप मानना पडेगा। परमार्थतः यदि विनाश और स्थिति को अहेतुक मान रहे हो तो उत्पाद को भी अहेतुक मानना पडेगा। इस कारण कल्पनाओ का व्यायाम मिटाकर पदार्थों मे जो सीधी बात पायी जाती है उस प्रकार मानना चाहिये। प्रत्येक पदार्थ अनादि से अनन्त काल तक है, और प्रति समय परिणमता रहता है। परिणमन की दृष्टि से उनमे उत्पाद व्यय विदित होता है और उत्पाद व्यय करते हुए सभी पदार्थ सदा काल सत्त्व रखते है यो पदार्थ का स्वरूप ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। सो जब सभी पदार्थ स्वरूप से सिद्ध है तो निश्चय से उन पदार्थों मे आधार आधेय भाव नही हो सकता। इसी तरह निश्चयनय की दृष्टि मे कार्य कारण भाव भी घटित नही होता। और इतना ही क्यो? गुरु शिष्यभाव, जन्यजनक भाव आदि ये भी निश्चयनय मे नहीं हैं। सभी ये सम्बन्ध व्यवहारनय के अनुसार हैं। सो व्यवहारनय की दृष्टि से आकाश और अधर्म आदिक द्रव्यो मे आधार आधेय भाव है। निश्चय से नहीं है। इस प्रकार इस प्रकरण तक द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य के प्रदेश और द्रव्य का अवगाह भली भांति सिद्ध किया गया है। इन सब परिचयो से अपने आत्मा के स्वरूप की स्थिति जानना यह सब कथनों का प्रयोजन है।

अनेक गुणो से समान एकत्र अवस्थित पदार्थों मे अभेद की आशका और उसका समाधान करके सूत्रो द्वारा लक्षण भेद की प्रसिद्धि का प्रयास—यहाँ एक शका होती है कि जहाँ धर्मद्रव्य है वही अधर्मद्रव्य है, आकाश है, अन्य पदार्थ भी हैं, उनका देश एक है। आकार भी धर्म अधर्म का एक है, समय भी एक है। तो इन सब बातो के कारण उनमे नानापन न होना चाहिये, अर्थात् वह सब एक ही वस्तु होनी चाहिये। समाधान यह है कि चू कि इन सबका देश, सस्थान काल आदिक एक समान है इसी कारण ये नाना कहे जाते हैं, जिनकी आपस मे समानता हो वे पदार्थ एक नही कहे जाते, किन्तु वे न्यारे-न्यारे हैं। जैसे गेहूँ का ढेर हो तो वे सब दाने एक समान है। एक समान हैं इस ही कारण से वे नाना कहलाते हैं। इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्य ये भिन्न-भिन्न सत्ता रखने वाले हैं और उनके प्रदेश आदिक भी अपने-अपने कहलाते हैं। अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि ये सब जब एक ही जगह विराजे है और उनमे जैसे घटपट आदिक पदार्थ हैं वे भिन्न-भिन्न देखे जाते हैं, सो नानापन सही है पर धर्मादिक द्रव्यो मे कुछ भी विशेषता को लाने वाला कुछ समझ मे नही आता। तो अब इन शकाओ को दूर करने के लिये पदार्थों का लक्षण कहा जायेगा और यह लक्षण व्यावहारिक ढग से कहा जायेगा जिसका कि अनुमान प्रमाण से भी यह सिद्धि चलेगी कि हाँ यह पदार्थ है, तो सर्वप्रथम धर्म और अधर्म द्रव्य का लक्षण जाहिर करने के लिये सूत्र कहते है।

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥५-१७॥

धर्म व अधर्म द्रव्य के उपकार के निर्देश से उनके लक्षण की व लोक व्यापित्व की सिद्धि— गति और स्थिति उपग्रह ये धर्म और अधर्म द्रव्य के उपकार हैं, यहाँ पुद्गल आदिक का एक प्रदेश आदिक मे अवगाह बताया था। वह तो ठीक समझ मे आता था पर धर्म और अधर्म द्रव्य के जीवो की तरह असख्यात प्रदेश होने पर भी ये धर्म अधर्म द्रव्य लोकव्यापी हैं, लोकाकाश मे सम्पूर्ण प्रदेशो मे रहते हैं, यह बात समझ मे नही आयी, ऐसी यदि कोई पुन जिज्ञासा करे तो उत्तर उसका यह है कि जैसे जल मछली के तैरने मे उपकारक है अर्थात् जल के अभाव मे मछली का तैरना सम्भव नही है उसी प्रकार जीव और पुद्गल की गति मे और स्थिति मे धर्म और अधर्मद्रव्य सहायक होते हैं। तो अब यहां यह समझना चाहिये कि जीव और पुद्गल की गति समस्त लोक मे होती है तो उपकारक कारण भी सर्वगत होना चाहिये और इस ही कारण धर्म अधर्म द्रव्य समस्त लोक मे व्यापक हैं। अब गति और स्थिति के लक्षण कहे जा रहे हैं। बाह्य और अन्तरग कारणो से परिणमन करने वाले द्रव्य को जो अन्य देश मे प्राप्त कराने वाली परिणति है उसको गति कहते हैं। जो पदार्थ गति कर रहा है वह अपने मे नाना परिणमन कर रहा है और वे परिणमन सब अन्तरग कारण उपादान की योग्यता से होते हैं, और बहिरग कारण काल द्रव्य तो साधारण है ही, पर जो विषम परिणमन हुये उनमे अन्य कारण भी पडते हैं, तो ऐसे बाह्य और अन्तरग कारणो से परिणमन करने वाले द्रव्य जो एक देश दूसरे देश मे पहुँचते हैं, वह भी तो एक एक परिणति है तो उसकी इस परिणति का नाम गति है। स्थिति क्या कहलाती है ? अपने प्रदेश से च्युत न होने का नाम स्थिति है। स्थिति के दो अर्थ हैं—एक तो यह कि कोई चल रहा है और उसकी चलन क्रिया रुक गई, लो उसका ठहरना हो गया, अब इसके बाद जो ठहरना है वह इस रूप है कि अपने प्रदेशो से अब वह हिल नही रहा। वही का वही अवस्थित है। सो स्थिति का जो यह लक्षण है कि अपने देश से न हटना सो स्थिति है, यह लक्षण दोनो ही दशाओ मे पाया जा रहा है और उसका व्यक्तिकरण चलते हुये पदार्थ का जो अपने देश मे ठहरना है उस स्थिति से प्रकट होता है। तो गति और स्थिति ये दो उपग्रहण हैं अर्थात् जीव पुद्गल की गति और स्थिति की जो शक्ति है उस शक्ति के आविर्भाव करने मे धर्म अधर्म निमित्त कारण पड रहे हैं।

सूत्रोक्त प्रथम पद के अर्थ का विवरण— अब इस सूत्र मे कहे गये पहले पद का व्याकरण समास आदिक के अनुसार अर्थ प्रकट किया जा रहा है। प्रथम पद है, गतिस्थित्युपग्रहौ, इस पद मे नाना प्रकार के विग्रह सम्भव हैं। यह भी कहा जा सकता कि यह बहुब्रीहि समास वाला पद है अर्थात् "गति और स्थिति उपग्रह हैं, जिनके" ऐसा भी समास किया जा सकता है, लेकिन यह बहुब्रीहि समास यहाँ नही है। यदि इस पद मे बहुब्रीहि समास किया गया होता तो धर्माधर्मयो यह पद षष्ठी मे न रहकर प्रथमान्त हो जाता। धर्माधर्मौ यह शब्द बन जाता, क्योकि इस समास से ऐसा ही सगत बैठेगा कि गति और स्थिति उपग्रह हैं जिनके ऐसे ये, धर्म और अधर्मद्रव्य हैं। किन्तु यहाँ धर्माधर्मौ नही कहा गया। इससे सिद्ध है कि यह बहुब्रीहि समास वाला पद नही है। यह भी सोचा जा सकता है कि यह षष्ठी तत्पुरुष होगा याने गति और स्थिति का उपग्रह, सो यह समास भी सम्भव नही है। यदि इस सूत्र मे, इस पद मे षष्ठी तत्पुरुष अभिप्रेत होता तो अवग्रहौ शब्द द्विवचन न होता किन्तु एकवचन होता। गति और स्थिति रूप उपग्रह और ऐसी ही सगति बैठती है कि धर्म

और अधर्म का उपकार है। सो यहाँ द्विवचनान्त कहा जाने से यह सिद्ध होता है कि यह तत्पुरुष समास भी नही है तब कौन सा समास है, सो देखिये—यहाँ समानाधिकरण की वृत्ति है इस कारण कर्मधारय समास है याने गति और स्थिति वे उपग्रह है। इस प्रकार ये दोनो धर्म और अधर्मद्रव्य के उपकार है, यह सगति सही वैठती है।

सूत्रोक्त विभक्तियो की सगति से धर्म व अधर्मद्रव्य के साधारण कारणपने का समर्थन—अब यहाँ उपकार शब्द की मीमासा की जाती है कि इसकी व्युत्पत्ति किस तरह है ? क्या भावसाधन मे है या अन्य प्रकार है ? तो उपकार शब्द से यहाँ भावसाधन की प्रधानता न देकर कर्ता मे यह गुण है, इस प्रकार कर्तृसाधन प्रसिद्ध किया जाता है, क्योकि यह उपकार कर्तृस्थ क्रिया है। याने जीव पुद्गल की गति और स्थिति रूप जो उपग्रह है सो यह उपकार याने ऐसी निमित्तरूप बात यह धर्म और अधर्मद्रव्य मे पायी जाती है। और उपग्रह याने गति स्थिति रूप परिणमन यह जीव पुद्गल मे पाया जाता है। सो कर्मस्थ क्रिया हो गई। सो दोनो साधनो मे सूत्रोक्त विभक्ति सगत नहीं होती ? समाधान–जैसे कहा जाये कि साधु का कार्य क्या है ? तो उसका उत्तर होता है—तप और अध्ययन। तो कार्य तो एक पूछा गया है और उत्तर मे दो बातें आयी है। तो ऐसे ही यहाँ उपकार शब्द तो एक वचन है। धर्म और अधर्म का उपकार क्या है ? तो उत्तर में आया है गति और स्थिति रूप उपग्रह। उपग्रहौ दो वचन मे आया है। अथवा उपग्रह शब्द को भावसाधन मान लीजिये और इसी तरह उपकार को भी मान लीजिये जिससे कि अर्थ होता है कि गति और स्थिति रूप उपग्रहण और धर्म और अधर्म का उपकरण। अथवा इन दोनो को कर्मसाधन भी मान लीजिये। किन्ही भी प्रकारो से माने, उसके एकान्त मे कुछ न कुछ सिद्धान्त में कमी रह जाती है। अतः वास्तविकता तो यह है कि सामान्य कारण मानना चाहिये और सामान्य का ग्रहण भी करना चाहिये। तो परिणमनरूप या पूर्व पक्ष रूप मे तो सामान्य का अर्थ है कि धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार और उत्तर मे विशेष अर्थ है कि गति और स्थिति रूप उपग्रह।

एक वचनान्त उपकारः व द्विवचनान्त उपग्रहौ शब्द मे वचन विषमता रखने का कारण—धर्म व अधर्म द्रव्य के भिन्न भिन्न उपकार का प्रदर्शन—अब यहाँ एक शका यह होती है कि उपकार' शब्द एक वचन मे है तो उपग्रह शब्द क्यो नही एक वचन मे हुआ ? उत्तर यह है कि दोनों द्रव्यों के कार्य जुदे-जुदे है अर्थात् धर्म द्रव्य का उपकार तो जीव और पुद्गल की गतिरूप उपग्रह है और अधर्म द्रव्य का उपकार जीव और पुद्गल की स्थिति रूप उपग्रह है, इस कारण उपग्रह शब्द मे द्विवचन का प्रयोग ही ठीक है। यदि एक वचन का प्रयोग किया जाता तो उससे यह अर्थ जाहिर होता कि धर्मद्रव्य ही तो जीव और पुद्गल को गति और स्थिति कराता है और अधर्मद्रव्य भी जीव और पुद्गल की गति और स्थिति कराता है पर यह अर्थ अभीष्ट नही है, जुदा-जुदा उपकार है, इस कारण उपग्रहौ शब्द मे द्विवचन लगाना ही सगत वैठता है। यह अर्थ बनता है कि स्वय गति रूप परिणमे हुये जीव और पुद्गल को उस गति के उपग्रह के कारण रूप से अनुमान किया गया धर्मास्तिकाय है और इसी प्रकार स्थिति रूप से परिणमने वाले जीव पुद्गल के बाह्य उपग्रह के कारण रूप से अनुमान किया गया अधर्मास्तिकाय है और चूँकि यह गति और स्थिति रूप उपग्रहण समस्त लोकाकाश मे होता है, इस कारण ये दोनो लोकाकाश मे पूर्णतया व्याप्त हैं।

उपकार' शब्द से ही अर्थ सम्भव होने पर उपग्रहौ शब्द कहने की व्यर्थता की शका—अब

यहा एक शका उपस्थित होती है कि जब उपकार शब्द इस सूत्र मे दिया गया है तो उसका अर्थ ध्वनित हो जाता, तो उपग्रह शब्द कहना व्यर्थ है। अर्थ भी वही हो जाता कि धर्म और अधर्म का उपकार गति और स्थिति है। और सूत्र भी छोटा बन जाता—गति स्थिति धर्माधर्मयोरुपकार, यहाँ कोई यह भी शका न करे कि यदि उपग्रह शब्द न देते और सूत्र मे लघुता बनावें तो कर्ता का प्रसग आ जाता कि धर्म और अधर्म द्रव्य जीव पुद्‌गल की गति और स्थिति के कर्ता हैं। तो इस प्रकार कर्तृत्व के प्रसग का सदेह न करना, क्योंकि उपकार शब्द यहाँ कहा गया है। गति और स्थिति को धर्म अधर्म जबरदस्ती नही कराता किन्तु गति और स्थिति मे धर्म अधर्म का उपकार है अर्थात् अवलम्बन है, और इस प्रकार स्वतन्त्र कर्तापन भी गति स्थिति का धर्म अधर्म मे नही आता जैसे कि कोई अन्धा पुरुष चल तो रहा है अपनी जधा के बल से पर, लकडी उसके लिये उपकारक हो रही है तो इसका अर्थ यह है कि वह अन्धा पुरुष लकडी से प्रेरित नही हो रहा, किन्तु स्वय चले तो उसमे लकडी बलाधान रूप है, प्रेरक नही है, इस प्रकार अपनी शक्ति से ही चलने वाले और ठहरने वाले जीव और पुद्‌गल का धर्म अधर्म उपकारक है, किन्तु प्रेरक नही है। चलना और ठहरना तो जीव और पुद्‌गल का अपनी शक्ति मे ही हो रहा है, उसको धर्म और अधर्म नही करते। मगर स्वय चलें और ठहरें तो उनकी इस क्रिया मे धर्म और अधर्मद्रव्य बलाधान रूप हैं अर्थात् अवलम्बनमात्र हैं और फिर सूत्र जो लघु बना है उससे ही यह साबित होता है कि धर्म और अधर्मद्रव्य गति और स्थिति का प्रधानतया कर्ता नही है। यदि प्रधान कर्ता बताना होता तो सूत्र यो बनाते कि गति स्थिति धर्माधर्मकृते, किन्तु ऐसा सूत्र नही किया, इससे ही यह सिद्ध है कि प्रधानकर्ता नही कहा जा रहा। तो इस प्रकार उपग्रह शब्द कहना यह व्यर्थ पडता है।

यथार्थ अर्थ की सगति के लिये उपग्रह शब्द की सार्थकता बताते हुये उक्त शंका का समाधान—उक्त शका का उत्तर कहते हैं कि उपग्रह शब्द कहना यह व्यर्थ नही है, व्यर्थ सा मालूम पड रहा। यह उपग्रह शब्द इस बात को सिद्ध करता है कि यहाँ शब्द का क्रम स उठाकर अथ न लगाना कैसा कि आत्मा की गति रूप परिणमन का उपकार तो धर्म का है और पुद्‌गल की गति परिणाम का उपकार धर्म का नही है, इस प्रकार पुद्‌गल की स्थिति रूप परिणमन का उपकार अधर्मद्रव्य मे है, आत्मा की स्थिति रूप परिणमन का नही है, इस तरह क्रम वाली बात नही लेना है। इसको सिद्ध करता है उपग्रह शब्द। यदि शकाकार यह कहे कि उसका व्याख्यान बना दिया जायेगा। उससे यह सिद्धान्त का अर्थ कह दिया जायेगा सो यह बात भी सगत नही, क्योंकि इस तरह तो व्याख्यान विशेष कहना पडेगा और उसमे समझ मे विलम्ब भी होगा। बुद्धि मे खेद न हो इस कारण उपग्रह वचन ही कह दिया ताकि आगे कुछ सोचने का व्यायाम ही न करना पडेगा।

जीव और पुद्‌गलो की गति व स्थिति मे धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य की ही साधारण कारण रूपता—अब यहाँ शकाकार कहता है कि चलना, ठहरना यह सब तो हमको आकाश का उपकार दिख रहा, ये जीव पुद्‌गल आकाश मे ठहर रहे, आकाश मे चल रहे, आकाश बिना कैसे चलना, कैसे ठहरना ? सो सारा उपकार आकाश का ही है, और धर्म, अधर्म की कल्पना करना व्यर्थ है। समाधान इसका यह है कि आकाश तो धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आत्मद्रव्य, पुद्‌गलद्रव्य इन सबका आधार रूप है, गति और स्थिति का निमित्त रूप नही है। जैसे किसी नगर के अन्दर जो मकान आदिक खडे हैं उनका आधार नगर है ऐसे ही धर्मादिक ५ द्रव्यो का आधार आकाश है। तो किसी

एक पदार्थ का धर्म दूसरे पदार्थ मे नही जोडा जाता, धर्म अधर्म द्रव्य का गति स्थिति मे उपकार रूप धर्म आकाश मे न जोडा जा सकेगा। यदि एक का धर्म दूसरे द्रव्य मे जोड दिया जाये तो जल और अग्नि मे गुण जो द्रवण और दहन हैं उन्हे पृथ्वो के हा मान लिये जाये। फिर शकाकार पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक को अलग-अलग पदार्थ क्यो मानता है ? और इस तरह भी निरखिये कि ये जैसे मछली का गमन जल के उपग्रह से होता है यदि जल न हो तो जमीन पर तो मछलो नही चलती। सो जैसे यहाँ यह सोचा जा सकता है कि जल आकाश का कार्य है तो आकाश तो पृथ्वी पर भी है, वहा क्यो नही मछली चल पाती ? तो इससे मालूम होता है कि भले ही आकाश मे मछली का अवस्थान है लेकिन मछली के चलने मे सहायक जल है, और जल मछली को जबरदस्ती चलाता नही है किन्तु गति रूप परिणमने वाली मछली को जल अवलम्बन है, ऐसे ही यहाँ यह समझना कि गति और स्थिति रूप परिणमने वाला आत्मा और पुद्गल का धर्म और अधर्म के उपग्रह से चलना और ठहरना होता है, आकाश के उपग्रह से नही। यदि आकाश के उपग्रह से जोव और पुद्गल का चलना ठहरना होता ता अलोकाकाश मे भी जीव और पुद्गल का चलना ठहरना होने लगता फिर तो लोक और अलोक बराबर रहे। अरे जहाँ तक वे द्रव्य रहते हैं वह लोक है और जहाँ मात्र आकाश है अन्य द्रव्य जहाँ नही रहता वह अलोक है। लोक है तो अलोक भी है, यह सिद्धि भी इस तत्त्व का साधन करती है कि लोकाकाश मे धर्म और अधर्म द्रव्य हैं, जिनके अवलम्बन से जीव और पुद्गल का चलना और ठहरना होता है। सो धर्म अधर्म द्रव्य हैं जिनके आलम्बन से जीव और पुद्गल का चलना और ठहरना होता है। सो धर्म अधर्मद्रव्य होने पर भा ये जीव और पुद्गल को जबरदस्ती नही चलाते और न ठहराते, किन्तु ये मात्र बाह्य कारण रूप ही पडते हैं और वहाँ यह अन्वय व्यतिरेक बन जाता है कि जीव व पुद्गल चले तो धर्मद्रव्य के सन्निधान मे ही चल सकता है, धर्मद्रव्य के अभाव मे नही, इसी प्रकार जोव व पुद्गल ठहरे ता अधर्मद्रव्य के सन्निधान मे ही ठहर सकता है। अधर्मद्रव्य के अभाव मे नही। जैसे कि मछली चले तो जल के सन्निधान मे ही चल सकती है जल के अभाव मे नही। तो यहाँ इस दृष्टान्त मे कही यह न समझना कि मछली के चलने मे धर्मद्रव्य सहायक है, यह कैसे सिद्ध होगा ? क्योकि जल ही सहायक दिख रहा है। सो बात यह है कि कोई साधारण कारण होता है, कोई विशेष कारण होता है, जीव और पुद्गल के चलने मे साधारण कारण धर्मद्रव्य है, इसी तरह मछली के चलने मे भी साधारण कारण धर्मद्रव्य है। पर विशेष कारण जल है। तो कही धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव सिद्ध नही किया जा सकना। जैसे मनुष्यो के अवस्थान मे यह भूमि कारण पड रही है पर आकाश न हो तो कहाँ रहे ? तो आकाश तो हुआ साधारण सब जगह है और भूमि हुई विशेष। सो ऐसे ही मछलो के चलने मे धर्मद्रव्य तो साधारण कारण है, वह तो है ही, पर विशेष कारण जल आदिक हैं, सो स्वय गति, क्रिया रूप से परिणम रहे जोवो का पुद्गलो को धर्मद्रव्य आलम्बन रूप कारण होता है।

विभुपना होने से आकाश का ही गति स्थिति उपकार मानने की हठ करने वाले वैशेषिकों के दिशा काल व्यवहार का उपकार आकाश का ही माना जा सकने से अन्य पदार्थों की मान्यता की व्यर्थता—यहा निमित्तपने को मुख्यता से धर्म और अधर्म द्रव्य का लक्षण कहा जा रहा है जिससे कि यह प्रकट हो कि धर्म अधर्म आदिक द्रव्य एक क्षेत्र मे एक साथ सर्वत्र रहते हुये भी ये परस्पर भिन्न पदार्थ हैं। तो यहाँ उपकार बताया गया कि धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार गति और

स्थिति रूप उपग्रह करना है। उपग्रह क्रिया तो जीव और पुद्गल में पायी जाती है और उपकारपने का निमित्तपना धर्म व अधर्म द्रव्य मे पाया जाता है, और इस प्रकार जीव पुद्गल की गति और स्थिति मे हेतुपना होने के परिचय से धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्य का लक्षण प्रसिद्ध होता है। इस विषय मे यहाँ एक शंकाकार कहता है कि गति और स्थिति के होने मे आकाश ही पर्याप्त है याने आकाश के ही कारण जीव पुद्गल की गति हो रही है और आकाश व्यापक भी है। वही सर्व द्रव्यो की गति और स्थिति का साधारण कारण रहा आये। धर्म और अधर्म द्रव्य के मानने की कुछ आवश्यकता नही। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यदि इस प्रकार विभुपना होने से आकाश को ही सबका साधारण कारण मान लिया जाये तो इसमे सभी दार्शनिको के सिद्धान्त मे विरोध आता है। जैसे कि कोई दार्शनिक मानते हैं कि आकाश, काल, दिशा, आत्मा ये सर्वगत होकर भी अपने-अपने लक्षण मे नियत हैं, तो यहाँ यह कह सकते हैं कि दिशा के निमित्त से जो व्यवहार होता है कि यह तीन तरफ है। तो वह तो आकाश का ही भाग बताया गया। आकाश के इस भाग से आकाश के इस भाग तक है। तो दिशा का जो काम है वह आकाश से ही निकल आया, फिर दिशा मानने की उन दार्शनिको को जरूरत नही रहती है। इस प्रकार काल के निमित्त से यह व्यवहार होता है कि यह जेठा है, यह लघु है, यह आगे है, यह पीछे है, सो यह व्यवहार आकाश के बिना तो हो ही नही सकता। यदि आकाश का ही यह सामर्थ्य मान लिया जाये तो लो यो काल का भी अभाव हो गया और सभी आत्मा एक बन बैठेंगे। यदि व्यापी होने से आकाश का ही काम गति और स्थिति का उपग्रह मान लिया जाये तो एक ही आत्मा व्यापक होने से सभी जगह चेतन को बनाता रहे तो सब आत्मा एक बन बैठेंगे। फिर तो जो बुद्धि सुख दु ख आदिक अनेक अन्तर बताकर आत्मा को नाना बताया है वह उनके विरूद्ध हो जायेगा। सो यदि आकाश को ही व्यापक होने से गति और स्थिति का कारण माना हुआ है तो लो यहाँ इन वैशेषिको के दिशा, काल आदिक कुछ न रहे। आत्मा भी नाना न रहे, सो इन दोषो को दूर करने की अभिलाषा है तो उन्हे यह भी मान लेना चाहिए कि गति और स्थिति का उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्य के निमित्त से होता है।

विभुपना होने से जीव पुद्गलों की गति स्थिति को आकाश का ही उपकार मानने की हठ करने वाले सांख्यो के व्यापक सत्व मे ही रजो तमो गुण का अन्तर्भाव होने से त्रिगुणात्मकता की मान्यता का खण्डन—अच्छा, और देखिये—सांख्य सिद्धान्त वाले मानते हैं तीन गुण-सत्त्व, रज और तम। और जिसके काम बतलाते हैं—प्रसार और लाघव तो सत्त्व गुण का काम है, शोषण और आताप करना रजोगुण का काम है और आवरण तथा विघात करना तमोगुण का काम है, ऐसा भिन्न स्वभाव भी मान रखा है। अब ये दार्शनिक भी हठ करें कि व्यापी होने से आकाश ही गति और स्थिति का उपग्रह करने वाला है तो यहा भी यह ही कहा जा सकता कि सत्त्व गुण व्यापी है सो शोषण व ताप जो रजोगुण के धर्म हैं व विघात और आवरण जो तमोगुण के धर्म हैं वे सत्त्व के ही मान लिये जाना चाहिये और इसी प्रकार रजोगुण मे इन दोनो को मान लेना चाहिये क्योंकि व्यापी होने से किसी को भी किसी का कारण मानने की अब स्वच्छदता व्यक्त कर दी है। सो यदि इन दार्शनिको को अपने सत्त्व रज और तम गुण ज्यो के त्यो व्यवस्थित रखना है तो उन्हे यह भी हट

छोड देना चाहिये कि व्यापी होने से आकाश ही जीव और पुद्गल की गति और स्थिति का अनुग्राहक है।

आकाश का ही उपकार गति स्थिति मानने का हठ करने वाले क्षणिकवादियो के विभु विज्ञान मे ही रूप वेदनादि आस्रव गर्भित हो जाने से रूप वेदनादि आस्रवों के अभाव का प्रसग व रूपवेदनादि आस्रवो के अभाव में विज्ञान स्कन्ध के भी अभाव का प्रसग—और भी देखिये क्षणिकवादी दार्शनिक ५ स्कन्ध मानते हैं–(१) रूप, (२) वेदना, (३) सज्ञा, (४) सस्कार और, (५) विज्ञान और लक्षण भी जुदे-जुदे माने है। देखने मे रूप है, अनुभवने मे वेदना आती है, निमित्त के ग्रहण मे सज्ञा बनती है और बार बार भावना के सस्कृत होने से सस्कार होता है और जाननरूप आलम्बन से विज्ञान बनता है। तो अब यहाँ ऐसा कहा जा सकता है कि विज्ञान के न होने पर अनुभव आदिक सम्भव हो ही नही सकते, इस कारण ये सारे आश्रव विज्ञान के ही मान लेना चाहिये, और ऐसा अगर मान लिया तो फिर ५ स्कध न रहे, एक विज्ञान रहा, सो जब चार न रहे तो विज्ञान न रहेगा, क्योकि अब तो एक ही पदार्थ मे सारे धर्म कल्पना करने की ठान ली है। आकाश को उदाहरण बनाकर कि आकाश ही जीव पुद्गल की गति और स्थिति का उपग्राहक है सो ऐसी हठ वाले के यहाँ ये ५ स्कध नही बन सकते हैं। सो यदि भिन्न-भिन्न लक्षण वाले ५ स्कधो को यथावत बनाये रखने की अभिलाषा है तो यहाँ भी धर्म अधर्म द्रव्य को गति और स्थिति का उपग्राहक मानो। आकाश तो सर्व पदार्थों के अवगाह का निमित्त है।

धर्म व अधर्मद्रव्य के व्यापी और गति स्थिति के उपग्राहक होने से परस्पर प्रतिबन्ध की शकाकार द्वारा शका—अब यहाँ शकाकार कहता है कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य जब समान रूप से समग्र लोकाकाश मे फैले हैं और उनका काम परस्पर भिन्न है। धर्मद्रव्य का उपकार तो जीव पुद्गल की गति कराना है और अधर्मद्रव्य का उपकार जीव पुद्गल की स्थिति कराना है। तब तो इन दोनो मे खीचातानी हो जायेगी, धर्मद्रव्य उन्हे गति कराने मे कटिबद्ध रहेगा और अधर्मद्रव्य जीव पुद्गल को ठहराने मे ही कटिबद्ध रहेगा, फिर तो इनका परस्पर प्रतिबन्ध हो जायेगा। जैसे कि समान बल वाले दो मल्ल लडते हो तो वहाँ प्रतिबन्ध है या दो पक्षी किसी मासपिण्ड को खीच रहे हो तो एक ने जितने क्षेत्र मे खीच लिया उतने क्षेत्र मे वह दूसरा हार गया और जितने क्षेत्र मे दूसरे पक्षी ने खीच लिया उतना यह पहला हार गया, तो ऐसे ही धर्म अधर्मद्रव्य तो लोकव्यापी है, सो जब धर्मद्रव्य के उपग्रह से जीव पुद्गल की गति हो रही है तो उस ही समय अधर्मद्रव्य के उपग्रह से स्थिति हो रही। ऐसी अगर स्थिति हो जाये तो गति रुक जायेगी और जब गति का जोर पड गया तो स्थिति रुक जायेगी। तो इस तरह जीव पुद्गल मे न गति रह पायेगी और न स्थिति रह पायेगी। दोनो का अभाव हो जायेगा।

स्वय गति स्थिति परिणाम सामर्थ्य से गति स्थिति रूप परिणमने वाले जीव पुद्गलो के गति स्थिति परिणमन मे मात्र सन्निधान रूप साधारण कारणपना धर्म व अधर्मद्रव्य मे होने से प्रतिबन्ध का अवसर न आने का दिग्दर्शन कराते हुये उक्त शका का समाधान—अब उक्त शका के समाधान मे कहते है कि ऐसा प्रतिबन्ध का सदेह करना युक्त नही है, इसका कारण यह है कि जो स्वत गति और स्थिति रूप परिणमन मे सामर्थ्य रखते हैं और गति और स्थिति रूप परिणमते हैं उनके लिये धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है। सामर्थ्य सिर्फ उपग्रह का आकाक्षी होता है। जैसे कि कोई

वृद्ध पुरुष गमन करने का सामर्थ्य रख रहा है पर उसके लिये उपग्राहक लाठी होती है, पर लाठी उस वृद्ध पुरुष का गमन कराने वाली नही है उसमे यदि सामर्थ्य है गमन करने का तो लाठी सहायक हो गयी। यदि सामर्थ्य न होने पर भी किसी पुरुष की गति के करने वाली लाठी बन जाये तो जब कोई पुरुष मूछित है या सोया हुआ है तो उससे लाठी चिपका दी जाये, वह तो फिर एकदम भाग खडे होना चाहिये, पर ऐसा होता कहां है ? दूसरा उदाहरण देखिये कि जिसके नेत्र मे देखने का सामर्थ्य है उसके लिये दीपक या चश्मा ये उपग्राहक हैं, पर चश्मा या प्रदीप नेत्र की दर्शन शक्ति के करने वाले नही हैं। यदि चश्मा असमर्थ पुरुष के भी, अन्धे के भी या शक्तिहीन के भी दृष्टि का करने वाला बन जाय तो जो प्राणी मूछित हैं, सोये हुये हैं, जन्म के अन्धे हैं उनको भी यह दीपक या चश्मा दर्शन करा बैठे, मगर ऐसा कहां होता ? बात सही तो यह है कि स्वय दिखने की सामर्थ्य रखने वाले पुरुष को ही दीपक उपग्राहक है, चश्मा भी उपग्राहक है ऐसे ही स्वय गति और स्थिति रूप परिणमने की सामर्थ्य रखने वाले और गति स्थिति, रूप परिणमने वाले जीव और पुद्गल को भी धर्म और अधर्म द्रव्य मात्र उपग्राहक है पर वे जीव और पुद्गल की गति और स्थिति के करने वाले नही हैं। यदि धर्म अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल की स्थिति के कर्ता माने गये होते तो प्रसग दोष दिया जा सकता था कि गति और स्थिति का विरोध हो जायेगा। सो धर्म अधर्म द्रव्य गति और स्थिति के मात्र अनुग्राहक हैं इस कारण दोष नही लगता।

अन्य उपग्राहको का अनियम होने से धर्म व अधर्मद्रव्य के ही गति स्थिति हेतुत्व का परिचयन—और भी देखिये—कही तो उपग्राहक न भी हो तो भी गति और स्थिति देखी जाती है जैसे पक्षी उडता है तो पक्षी के गमन करने के लिए मछली के गमन करने मे जल की तरह कोई बाह्य उपग्राहक नही है फिर भी वह जहां चाहे उड गया, जहाँ चाहे बैठ गया। सो बात क्या है कि धर्म और अधर्म द्रव्य ये सर्वत्र है, वे निमित्त कारण हैं पक्षियो के गमन और स्थिति मे। तो ऐसे ही सब द्रव्यो का समझ लेना चाहिये। जो द्रव्य गति स्थिति करते हैं उनका यह गमन और ठहरना धर्म और अधर्म द्रव्य के निमित्त अवलम्बन से होता है। शकाकार कहता है कि पक्षी आदिक जो उडते हैं, गमन करते हैं, ठहरते है और जल आदिक की तरह कोई बाह्य कारण नहीं मिलाने पडते हैं तो वहा आकाश उपग्राहक है, तो आकाश से ही गति स्थिति बन रही है पक्षी की। तब धर्म अधर्म द्रव्य मानने की क्या आवश्यकता ? इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यह बात तो भली भांति सिद्ध की जा चुकी है कि आकाश गति और स्थिति के उपग्रह मे कारण नही है। आकाश का लक्षण तो अवगाहन है। सर्व पदार्थ समा जायें इसका निमित्तभूत है आकाश। अब देखिये कि यह कोई एकान्त भी नही है कि बाहरी उपग्राहक हो तब ही गति स्थिति हो या कार्य हो। किसी के बाहरी उपग्राहक मिलने पर भी कार्य होता है और किसी के बाह्य उपग्रह न मिलने पर भी कार्य होता है। जैसे—मनुष्य बाहरी प्रकाश आदिक के उपग्रह से रूपादिक को देखते हैं किन्तु सिंह, बिलाव आदिक किसी बाह्य दीपादिक के उपग्रह के बिना अपनी ही शक्ति बल से रूप को देख लेने मे सामर्थ्य रखते हैं, और मनुष्यो के उस प्रकार देखने की शक्ति नही है सो वहाँ दीपक आदिक का निमित्त होना पडता है। तब यह एकान्त न रहा कि बाह्य स्थूल कारण मिलने पर ही सभी कार्य बनते हैं। हा अन्तरग कारण का होना बहुत आवश्यक है, इसी तरह यहाँ भी देखिये कि यह कोई एकान्त न रहा कि सभी गमन करने वाले पुरुष लाठी आदिक के सहारे गमन करते हैं। देखने की जिसके शक्ति है, पञ्चेन्द्रिय का

पूरा सामर्थ्य चल रहा है वह पुरुष बाहरी लाठी आदिक उपग्रह के बिना भी धर्म द्रव्य के निमित्त से गमन कर लेता है, पर जो अन्धा है सो गमन तो वह अपनी शक्ति से करता है लेकिन उसमे साधारण निमित्त कारण धर्म द्रव्य है, पर जब तक उसे यह न मालूम पडे कि यह आगे की जमीन बराबर है या ऊँची नीची है ऐसे भूमि प्रदेश न दिखें तो चल ही न सकेगा सो उस भूमि प्रदेश का ज्ञान कराने के लिये वह लाठी सहायक है। वह अन्धा पुरुष लाठी से टटोलकर यह समझता है कि यह जमोन सही है, चलने लायक है तो उसको लाठी का सहारा लेना पडा, पर सभी मनुष्य लाठी का सहारा तो नही लेते, ऐसे ही यहां भी एकान्त नही है कि सभी जीव पुद्गलो का बाह्य उपग्रह कारण होना ही चाहिये। देख लीजिये—पशु आदिक के गमन के लिये धर्म और अधर्म द्रव्य ही निमित्त कारण हैं। उन्हे बाह्य उपग्रह न चाहिये और मछली आदिक के धर्म और अधर्म द्रव्य तो गति स्थिति मे साधारण कारण है ही, पर जल आदिक भी बाह्य उपग्राहक चाहिये। इस प्रकार सबकी गति स्थिति मे चाहे किसी को लाठी की जरूरत हो या न हो, पर धर्म और अधर्म द्रव्य मे अनिवार्य सहायक कारण होते ही है।

धर्म व अधर्मद्रव्य की सत्ता सिद्ध करने का शका समाधानपूर्वक विवरण शकाकार कहता है कि धर्म और अधर्म द्रव्य हैं कहाँ ? जिनका नाम लेकर चर्चा बढायी जा रही है। जो चीज दिखती नही, प्राप्त होती नही उसकी चर्चा करके समय क्यो खोया जाये ? धर्म और अधर्म द्रव्य तो गधे के सीग की तरह है ही नही। जो हो लाठी आदिक, उनकी उपलब्धि हो ही रही है और यह भी समझ मे आ रहा कि लाठी का यह उपकार है कि नीचे ऊँचे भू भाग मे भेद बता दिया कि यहाँ नीचा भू भाग है यहाँ ऊँचा भू भाग है, पर धर्म और अधर्म द्रव्य तो उपलब्धि मे नही आ रहे और न उनका उपकार भी देखने मे आ रहा इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य का सत्त्व ही नही है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यदि लोग ऐसी प्रतिज्ञा करके बैठ जाये कि जो-जो हमको उपलब्धि मे न आये, आँखो से न दिखे वे वे सब असत् है, ऐसी प्रतिज्ञा करके कोई रह जाये तो वहाँ तीर्थ, गुरू, देव, स्वर्ग, नरक आदिक सबका अभाव बन बैठेगा। कहा जा सकता है कि जैसे गधे का सीग उपलब्ध नही है तो उसकी कोई सत्ता नही, ऐसे ही तीर्थंकर पुण्य, पाप, परलोक, स्वर्ग नरक आदिक भी उपलब्ध नही होते तो इनकी भी सत्ता नही है। मुख्य बात यह है कि धर्म और अधर्म द्रव्य की उपलब्धि नही है, यह हेतु ही असिद्ध है। भगवान अरहत सर्वज्ञदेव के प्रत्यक्ष ज्ञान मे यह आया है कि धर्म और अधर्म द्रव्य है और उन भगवान के द्वारा प्रणीत परम आगम मे वर्णित है, सो आगम प्रमाण से भी गम्य है कि धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य है और फिर उनके अनुसार कार्य देखा जा रहा है, सो उसके अनुमान के द्वारा भी वह सिद्ध है। जो धर्म और अधर्म द्रव्य अनुपलब्ध से हैं यह हेतु देना गलत है। जो हेतु स्वय असिद्ध है, वह अपनी साध्य सिद्धि नहीं कर सकता और अनुपलब्धि हेतु तो निर्णायक नही होता किन्तु विवादकारक हो सकता है कि धर्म अधर्म द्रव्य चूँकि हम लोगो को अनुपलब्ध हैं तो क्या गधे के सीग की तरह तुच्छाभाव रूप हैं वह या परमाणु आकाश आदिक की तरह सूक्ष्म हैं वे इतने कि वे हम लोगो को उपलब्ध नही होते। तो अनुपलब्धि हेतु से विवाद तो हो सकता है, पर उससे निर्णय नही किया जा सकता कि वे है ही नही। उनका सद्भाव जो लोक मे कार्य देखा जा रहा है उससे जान लिया जाता है क्योकि कार्य अनेक उपकरणो द्वारा साध्य हुआ करते हैं। जैसे मृत् पिण्ड यह सामर्थ्य रखता है कि वह घटरूप परिणम जाये पर बाहरी कुम्हार, दण्ड, चक्र, सूत्र,

पानी आदिक अनेक उपकरणो की अपेक्षा रखता हुआ घट पर्याय रूप से प्रकट होता है। खाली एक मृत् पिण्ड ही कुम्हार आदिक बाह्य सन्निधानो के बिना घट रूप से प्रकट होने मे समर्थ नही है, ऐसे ही पक्षी आदिक गति और स्थिति के परिणमन करने के अभिमुख हैं पर बाह्य अनेक कारणो के सन्निधान के बिना गति और स्थिति रूप परिणमने के लिये सामर्थ्य नही हैं, उनमे गति स्थिति के उपग्रह का का कारणभूत धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य है, यह भली-भाँति सिद्ध होता है। इस प्रकार जीव पुद्गल की गति और स्थिति रूप कार्य देखा जाने से सिद्ध होता है कि उनके साधारण कारण भूत कोई द्रव्य होना ही चाहिये, अन्यथा ये चलकर लोकाकाश के बाहर भी पहुँच सकते हैं, तो वे कारण है धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य।

ससर्ग को कार्योत्पत्ति मे हेतु मानने पर भी कार्य की अनेक कारण साध्यता की सिद्धि—यहाँ धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य के अस्तित्व के बारे मे शका समाधान चल रहा था जिसमे एक यह भी बात आयी थी कि जब जोव और पुद्गल के गमन और स्थिति मे भूमि, जल, आकाश आदिक कारण देखे जा रहे हैं तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को मानने की क्या आवश्यकता है? दूसरी चर्चा यह भी चल रही थी कि धर्म और अधर्मद्रव्य की तो उपलब्धि हो ही नही रही, इस प्रकार शकाओ का समाधान किया था। अब धर्म अधर्मद्रव्य की सिद्धि के लिये प्रथम शका से सम्बन्वित यह बात कही जा रही थी कि इस लोक मे कार्य अनेक कारणो द्वारा साध्य होता हुआ देखा जाता है। जैसे घट कार्य बनने मे कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिक अनेक कारण देखे गए हैं तो ऐसे ही भले ही गति और स्थिति मे भूमि जल आदिक कारण पडते हैं वे भी रहे आयें लेकिन साधारण कारण धर्म अधर्मद्रव्य भी होते हैं, और इस प्रकार धर्म अधर्मद्रव्य की सिद्धि की गई थी। उसी विषय मे यहाँ शकाकार यह कहता है कि अनेक कारणो से कार्य नही बनता किन्तु अनेक पदार्थो के ससर्ग से कार्य बनता है, अर्थात् कार्य उत्पन्न होने मे ससर्ग ही कारण है। कारण अन्य कुछ नही है, जैसे कपडा बनता है तो अनेक डोरो का सम्बन्ध होना ही कपडे के कार्य को पूरा करता है। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यदि ससर्ग को ही कारण माना जाये तब तो कारण का नियम ही न बन सकेगा। जिस चाहे पदार्थ का ससर्ग होने से कपडे की उत्पत्ति होने लगेगी। और ससर्ग मानने वाले भी यदि यह कहे कि खास पदार्थों के ससर्ग से कार्य होता है तो बस इसी से अनेक कारणपने की सिद्धि हो गई। जब ससर्ग अनेक पदार्थों का है तो ससर्ग भी अनेक हो गये। और जिनका ससर्ग है वे पदार्थ ही तो कारण रूप हैं, इस प्रकार कार्य के अनेक कारणो से सिद्धि होती है। और इस तरह गति और स्थिति के परिणमन मे लाठी दीपक भूमि चश्मा जल आदिक भी कारण कहे जायें, पर धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ये मूल साधारण कारण हैं। अन्य कारणो मे तो कमीबेशी होती रहेगी, किसी मे कुछ कारण हैं किसी मे कुछ नही है, पर धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य सभी के लिये साधारण कारण हैं।

सभी दार्शनिको के प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष अर्थ की मान्यता होने से अनुपलब्धि हेतु धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य के असत्त्व की असिद्धि—जो पुरुष यहाँ यह हठ करते हैं कि जो आँख आदिक प्रत्यक्ष से नही प्राप्त होता है वह है ही नही। तो जिनका ऐसा अभिप्राय है उनका तो अपने मत से ही विरोध आता है। जितने भी दार्शनिक हैं वे सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अर्थ को बताने वाले हैं। जैसे क्षणिकवादी दार्शनिक कहते हैं कि प्रत्येक रूप परमाणु अतीन्द्रिय है और अप्रत्यक्ष है किन्तु उन रूप परमाणुओ का समुदाय बने, अनेक परमाणुओ का ससर्ग बने तो वह ही इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो जाता है। साख्य

लोग कहते हैं कि पृथ्वी आदिक जो दिख रहे हैं ये तो प्रकट प्रधान के परिणाम है, वे तो प्रत्यक्ष हो रहे है, पर उनमे जो सत्त्व आदिक गुण हैं वे गुण अप्रत्यक्ष हैं, तो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार के अर्थ सभी दार्शनिक मानते हैं। वैशेषिक लोग कहते है कि अनेक परमाणुओ के समुदायरूप से उत्पन्न हुए पृथ्वी आदिक प्रत्यक्ष हैं उनके विषय रूपादिक भी प्रत्यक्ष हैं, उनका समवायो सख्या प्रमाण, सयोग, विभाग आदि भी प्रत्यक्ष हैं। पर यहाँ अणु और आकाश आदिक अप्रत्यक्ष हैं। तो प्रत्येक दार्शनिको के यहाँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार के पदार्थ माने गये हैं। यदि अनुपलब्धि होने से धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य का अभाव माना जाय तो जो अप्रत्यक्ष अर्थ ऊपर कहे गये हैं विज्ञान सत्त्व परमाणु आदि उनका भी अभाव मान लेना चाहिए, क्योकि वे प्रत्यक्ष हैं। उनके बारे मे यदि यदि यह कहा जाये कि एक अप्रत्यक्ष पदार्थ का कार्य देखा जाता है, उस कार्य से उनका अस्तित्व जाना जाता है तो फिर धर्म और अधर्म द्रव्य के बारे मे यही बात मानने मे ईर्ष्या क्यो की जा रही है? धर्म और अधर्म द्रव्य का कार्य गति और स्थिति भी तो देखा जा रहा है।

परस्पराश्रय से रचना मानने पर भी साधारण हेतु होने की अनिवार्यता की भांति गति स्थिति के साधारण हेतुभूत धर्म व अधर्म द्रव्य की अनिवार्यता—अब यहाँ शकाकार कहता है कि जैसे ज्ञानादिक आत्मपरिणामो का और दही आदिक पुद्गल परिणामो का निर्माण एक दूसरे के आश्रय से हो रहा है, जैसे दूध मे जामन पडने पर दही का निर्माण हो गया, उस ज्ञान के कारण आत्मा का अस्तित्त्व जाना गया। आत्मा का ज्ञान जाना गया तो ऐसे ही जीव और पुद्गल की जो गति और स्थिति बनती है वह भी परस्पर के आश्रय से बन जाती है। उसमे धर्म द्रव्य और अधर्म कैसे सिद्ध हो जाता ? इस शका के उत्तर मे कहना इतना ही है कि यह भले प्रकार सिद्ध कर दिया गया कि पक्षी आदिक की जो गति स्थिति होती है उसमे कारण अनेक है। कुछ असाधारण कारण हैं कुछ साधारण कारण हैं। तो साधारण कारण धर्म अधर्म द्रव्य हैं। अन्य तो पक्षी आदिक की गमन स्थिति की योग्यता के प्रकट करने वाले आश्रयभूत हैं, और जैसे शकाकार ने अभी अभी दृष्टात दिया कि ज्ञानादिक या दधि आदिक विकार की रचना परस्पर के आश्रय से है। सो भले ही ये असाधारण कारण रहे, मगर उन सबकी रचना का वाह्य साधारण हेतु काल नामक द्रव्य मानना ही पडता है। इस प्रकार धर्म द्रव्य और अधर्म का अस्तित्त्व प्रमाण सिद्ध है।

गति स्थिति का हेतु अदृष्ट को मानने पर अनेक दोषापत्तियां होन से धर्म व अधर्म द्रव्य के ही गति स्थिति हेतुत्व की सिद्धि—अब यहाँ कोई शकाकार कहता है कि आत्मा का एक अदृष्ट नाम का गुण है जिसके भाग्य, कर्म, आदिक पर्यायवाची शब्द हैं। उस अदृष्ट गुण के कारण सुख दु ख आदिक फल मिला करते हैं। और उसी अदृष्ट गुण के कारण सुख दु ख के साधनभूत—धन स्वर्णादिक साधन मिला करते है। वैशेषिक सूत्र मे इस विषय को काफी विवरण से बताया गया है। अग्नि मे ज्वाला ऊपर उठती है। हवा सीधी तिरछी चलती है ये सब अदृष्ट द्वारा ही कराये गए हैं, और भी जितने कार्य है जन्म मरण नये-नये शरीर का सयोग वह सब अदृष्ट द्वारा कराया है। तो इसी प्रकार आगम और स्थिति ये भी अदृष्ट के कारण ही माने जावें। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य नामक पदार्थ की कल्पना क्यो की जाये। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि जितनी गति और स्थिति मे अदृष्ट को कारण माना जाता है, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य को नही तो पुद्गल की गति स्थिति कैसे बनेगी ? अदृष्ट तो आत्मा का गुण है सो आत्मा की गति स्थिति का हेतु बताया जा सकता,

पर पुद्गल मे गति और स्थिति का कारण अदृष्ट तो नही हो सकता क्योंकि ये अचेतन हैं, वे न पुण्य कर सकते न पाप कर सकते। तो जब उसके अदृष्ट नही बन सकता तो अदृष्टकृत गति स्थिति यहाँ कैसे हो सकती ? इस पर शकाकार यदि यह कहे कि ये पुद्गल पदार्थ जिनके उपयोग में आये उन आत्माओ के अदृष्ट के कारण इन पुद्गलो की गति स्थिति मान ली जायेगी। तो यह कहना भी सगत नही है, क्योंकि आत्मा का गुण है अदृष्ट। उसके द्वारा पुद्गल मे क्रिया का आरम्भ नही हो सकता। किसी गुण का सामर्थ्य अन्य मे क्रिया करने का नही होता, और फिर देखिये—जब यह जीव कर्म से मुक्त होता है, सिद्ध भगवान बनता है तो उसके न तो पुण्य रहा न पाप रहा। कोई अदृष्ट ही न रहा फिर भी उनकी ऋजुगति होती है जिससे वे एक ही समय मे लोक के अन्त मे पहुँच जाते हैं और अधर्मद्रव्य के द्वारा वहाँ उनकी स्थिति बनी रहती है। तब गति स्थिति अदृष्ट के कारण होते हैं यह बात सगत नही रही।

अमूर्त होने पर भी धर्म व अधर्मद्रव्य के गति स्थिति हेतुत्व की सिद्धि—अब यहाँ कोई शकाकार कहता है कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य तो मूर्त पदार्थ हैं, इसमे रूपादिक गुण नही हैं ऐसा जैनो ने माना है, तो अमूर्त जो होगा वह जीव, पुद्गल की गति और स्थिति का कारण नही बन सकता। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि अमूर्त होने से गति और स्थिति की कारणता दूर होती है इसको सिद्ध करने मे कोई दृष्टान्त शकाकार नही दे सकता और अमूर्त होकर भी उनके कार्य देखे जाते हैं, इसके उदाहरण अनेक मिलते हैं। जैसे—आकाश अमूर्त है सो वह अमूर्त होकर भी समस्त पदार्थों की अवगाहन क्रिया को करता है, अथवा साख्य सम्मत प्रधान अमूर्त है, वह अमूर्त होकर भी भी पुरुष प्रयोजन की प्रवृत्ति से महान् आदिक विकारो को उत्पन्न करके पुरुष का उपकार करता है, अथवा बौद्ध सम्मत विज्ञान अमूर्त होकर भी नाम रूपादिक की उत्पत्ति मे निमित्त होते हैं, अथवा मीमासको के द्वारा माने गये अपूर्व नाम का धर्म क्रिया से प्रकट होता हुआ अमूर्त होकर भी पुरुष का उपकारी होता है। तो ऐसे ही धर्म और अधर्मद्रव्य अमूर्त होकर भी गति और स्थिति मे उपकारी होता है अब यहाँ अतीन्द्रिय धर्म अधर्मद्रव्य का उपकारमुखेन अस्तित्व जानने के बाद जिज्ञासा होती है कि धर्म अधर्मद्रव्य के बाद कहे गये आकाश का जो कि अतीन्द्रिय है उसके समझने के लिये हम क्या उपकार परिचय मे लायें, इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये सूत्र कहा जा रहा है।

आकाशस्यावगाह ॥५-१८॥

अवगाह्य अवगाही मे अनादि सम्बन्ध न हो सकने की आरेका व समाधान—आकाश का अवगाह उपकार है यहा अवगाह शब्द भाव साधन मे प्रयुक्त हुआ है, जिसकी व्युत्पत्ति है—अवगाहन अवगाह, अवगाह का अर्थ होता है अनुप्रवेश अर्थात प्रविष्ट हो जाना। इस सूत्र मे उपकार शब्द की पूर्व सूत्र से अनुवृत्ति ली है, जिससे कि पूर्ण अर्थ बना आकाशद्रव्य का उपकार है सब द्रव्यो का अवगाह होना। यहाँ शकाकार कहता है कि आकाश धर्म अधर्म आदिक-पदार्थों के अवगाह का कर्ता है, तब इसका अनादि काल से सम्बन्ध नही बन सकता। जसे कहा जाता कि हस जल मे प्रविष्ट हुआ है तो हस और जल का अनादि सम्बन्ध तो न रहा। वे जुदे जुदे थे या हस कही से आया और जल मे प्रवेश कर गया तो ऐसे ही जब यह कहा जाता कि आकाश धर्म और अधर्म आदिक द्रव्यो को अवगाहता है तो आकाश का और सब द्रव्यो का अनादि सम्बन्ध तो न रहा। इस शका के उत्तर मे कहते है कि यहाँ शका यो न करना चाहिए कि यह अवगाह औपचारिक है, क्योंकि यहाँ

कुछ क्रिया नही हो रही, किन्तु इन सब पदार्थों की व्याप्ति है यहाँ आकाश मे। जैसे आकाश गमन नही करता फिर भी आकाश को सर्वगत कहा जाता। सर्वगत का सीधा अर्थ है—जो सब जगह गया हो। तो आकाश मे तो क्रिया ही नही है, वह तो कही जाता ही नही है, फिर भी जो सर्वगत कहा है वह व्याप्ति के कारण कहा है कि आकाश बहुत बडा व्यापक पदार्थ है, ऐसे ही मुख्य अवगाह क्रिया के न होने पर भी अर्थात् पदार्थ कही से आकर लोकाकाश मे प्रवेश करते है, ऐसा न होने पर भी लोकाकाश मे सब जगह व्याप्ति देखी जा रही है धर्म अधर्मद्रव्य की, इस कारण कहा जाता कि धर्म अधर्म द्रव्य का लोकाकाश मे अवगाह है।

अयुत सिद्धो मे भी आधाराधेयत्व की उपपत्ति की सभवता होने से लोकाकाश मे धर्म व अधर्मद्रव्य के अवगाह की असिद्धि की असिद्धि—अब शकाकार यह बात रख रहा कि जहाँ आकाश है वहाँ ही धर्म, अधर्मद्रव्य हैं, और अनादि से सम्बन्ध है, ये कभी अलग रहे नही लोकाकाश से, तो जब ये अयुत सिद्ध हैं तो इनमे आधार-आधेय भाव नही बन सकता। जो पृथक् सिद्ध पदार्थ हैं उनमे ही आधार आधेय भाव देखा गया है। जैसे मटके मे गेहूँ भरा तो गेहूँ पृथक् सिद्ध है, गेहूँ अलग पदार्थ हैं, मटका अलग वस्तु है, तो वहाँ आधार आधेय भाव बन गया, किन्तु आकाश धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य ये तो अयुत सिद्ध है, याने पहले ये एक जगह न थे बाद मे ये एक जगह आये हैं, ऐसी बात तो है नही, इस कारण इनमे आधार आधेय भाव नही बन सकता। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि युत सिद्ध पदार्थो मे भी आधार आधेय भाव देखा जाता है और अयुतसिद्ध पदार्थों मे भी आधार आधेय भाव देखा जाता है। जैसे हाथ और हाथ की रेखाये कही अलग तो नही है फिर भी कहा जाता है कि हाथ मे रेखाये हैं तो अयुतसिद्ध मे लो आधार आधेय भाव देखा गया ना। और भी देखिये—ईश्वर का जो ऐश्वर्य है वह अलग चीज तो है नही कि ईश्वर अलग पडा और ऐश्वर्य अलग बना है, अयुत सिद्ध है दोनो फिर भी आधार आधेय भाव बताया जाता है कि ईश्वर मे ऐश्वर्य है। तो इसी तरह लोकाकाश मे धर्मद्रव्य है यह आधार आधेय भाव सिद्ध हो जाता है।

धर्म अधर्म लोकाकाश आदि मे कथचित् युतसिद्धत्व अयुतसिद्धत्व अनादि सम्बन्धत्व आदि सम्बन्ध आदि की सिद्धि—यह भी बात एकान्त की नही है कि धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य आकाश के साथ अनादि से सम्बन्ध किये हुये हैं। यहाँ भी अनेकान्त घटाया जायेगा, कथञ्चित् अनादि सम्बन्ध है, कथञ्चित् अनादि सम्बन्ध नही है इसी प्रकार ये दोनो द्रव्य कथञ्चित् अयुतसिद्ध हैं और कथञ्चित् अयुतसिद्ध नही है, वे इस प्रकार है कि जब पर्यायार्थिकनय को गौण करके द्रव्यार्थिक की प्रधानता से निरखते हैं तो उनमे उत्पत्ति व्यय नही विदित हुआ। उस समय यह अनादि सम्बन्ध है और अयुतसिद्ध है, किन्तु जब पर्यायार्थिकनय को गौण करके पर्यायार्थिकनय की प्रधानता से निरखते है तो पर्यायो का उत्पाद व्यय देखा जा रहा है सो इस दृष्टि से न अनादि सम्बन्धी है और न अयुतसिद्ध है और इसी विधि से धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य का आकाश मे कथञ्चित् अवगाह है और कथञ्चित् आधार आधेय भाव है, यह सिद्ध होता है। हाँ जीव और पुद्गल का मुख्य अवगाह एकदम प्रकट विदित होता है, क्योकि इनमे क्रिया परिणमन है। जैसे हस कही से उडकर जल मे आ गया तो जल मे अवगाह किया यह स्पष्ट जाना जाता है। ऐसे ही जीव पुद्गल आकाश के किसी भाग से चलकर किसी भाग मे आया तो क्रिया परिणमन होने से इनके अवगाह को प्रकट जान लिया जाता। इस प्रकार क्रिया परिणामी द्रव्य अथवा निष्क्रिय द्रव्य उनकी व्याप्ति आकाश मे है

अतएव सबका अवगाह आकाश मे हुआ है। इस तरह आकाश द्रव्य का उपकार सर्व पदार्थों को अवगाह देना है। ऐसा उपकार की दृष्टि से आकाश का लक्षण कहा गया है।

सर्वको अवगाह देने के सामर्थ्य वाले आकाश मे एक पदार्थावरुद्ध क्षेत्र मे अन्य पदार्थ का अवगाह न होने के कारण की मीमासा—यहाँ शका होती है कि आकाश का सामर्थ्य बताया है कि वह सबको अवगाह दे दे तो जब यह सामर्थ्य आकाश मे है तो वस्तुओ का परस्पर मे प्रतिघात न होना चाहिये, जैसे कि एक बज्र मे दूसरा पत्थर नही प्रवेश करता या गाय आदिक भीट से छिड जाते हैं तो यह प्रतिघात क्यो होता है? जब आकाश सवत्र है तो सबको सब जगह समा जाना चाहिये और प्रतिघात देखा जा रहा है इससे सिद्ध होता कि आकाश मे दूसरे को अवगाह देने का सामर्थ्य नही है। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि आकाश का सामर्थ्य तो बराबर है कि सभी पदार्थों को अवगाह दे दे और दे ही रहा है, मगर जो स्थूल पदार्थ है वे परस्पर प्रतिघात कर देते हैं। सूक्ष्म पदार्थ हो तो वे प्रतिघात नही करते। वहाँ तो एक दूसरे का प्रवेश होता है। तो जो यह स्थूल पदार्थों का प्रतिघात देखा जा रहा है सो आकाश के अवकाशदान के सामर्थ्य की कमी से नही किंतु उन स्थूल पदार्थों का ऐसा ही स्वभाव है कि उनमे परस्पर प्रतिघात होता रहता है। इससे आकाश सर्व पदार्थों को अवगाह देने मे समर्थ है, इनमे रचमात्र भी सदेह नही है। तब ही तो आकाश के थोडे से प्रदेशो मे अनन्तानन्त परमाणुओ के पिण्ड समाये रहते हैं तो आकाश नही दूसरे को रोकता किन्तु जो पदार्थ स्थूल हैं वह दूसरे को रोक लेता है।

आकाश के सर्वसाधारणावगाहरूप असाधारण गुण का समर्थन—यहाँ शका होती है कि यदि सूक्ष्म पदार्थ सूक्ष्मता के कारण अन्य पदार्थों को अवगाह दे देते हैं तब तो पदार्थों का अवगाह देना, यह आकाश का असाधारण लक्षण नही कहलाया। यदि आकाश ही अवगाह देता रहता, सूक्ष्म पदार्थ अन्य कोई भी अवगाह नही देते तब तो अवगाह आकाश का असाधारग गुण कहलाता, पर आकाश मे ही तो ये गुण नही हैं। सूक्ष्म पदार्थों मे भी गुण हैं, इस कारण से अवगाह आकाश का गुण नही और जब अवगाह आकाश का असाधारण लक्षण नही तो आकाश की भी कोई सत्ता न रही। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि अवकाश देना तो आकाश का ही काम है, और सूक्ष्म पदार्थ का यह काम है कि वह दूसरे पदार्थों का प्रतिघात नही कर सकता पर सूक्ष्म पदार्थ दूसरो का प्रतिघात न करे जिस पर भी जो पदार्थ का अवगाह हुआ है वह आकाश द्रव्य के नाम से हुआ है। तो आकाश का सभी को अवगाह देना यह विशेष लक्षण पाया जाता है। जैसे कि जल मे ठहरने में भूमि आदिक भी कारण देखे जाते हैं। गाडी चलती है भूमि पर ठहरती है भूमि पर। तो भूमि आदिक मे यद्यपि गति और स्थिति का उपग्रह देखा जा रहा है तो भी समस्त द्रव्यों को गति और स्थिति का उपग्रह कर सके, यह लक्षण भूमि मे नही है। किंतु धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य मे यह असाधारण लक्षण है कि जो चल सकें उन सभी द्रव्यो को चलने और ठहरने मे असाधारण कारण पडता है। तो इस प्रकार सर्व द्रव्यो का अवगाहन करना यह विशेष लक्षण आकाश मे पाया जाता। इससे आकाश का अस्तित्त्व युक्तिसगत है।

अलोकाकाश में आकाशातिरिक्त अन्य द्रव्य न होने पर भी अवगाहरूप असाधारण गुण का सद्भाव—यहाँ शका होती है कि यदि अवकाश दान देना आकाश का असाधारण लक्षण है तो अलोकाकाश मे चूकि अवकाश दान नही हो रहा। कोई अवगाही पदार्थ भी नही है तो वहाँ यह लक्षण

तो नही पाया गया फिर अलोकाकाश का अभाव ही मानना चाहिए । जिसमे असाधारण लक्षण न पाया जाय वह लक्षण फिर नही ठहरता। इस शका का उत्तर देते हैं कि अलोकाकाश मे भी अवकाश देने का सामर्थ्य है। भले ही वहाँ अवगाह लेने वाले पदार्थ नही हैं मगर आकाश द्रव्य का जो स्वभाव है वह कभी नही छूट सकता। जैसे कि नदी या समुद्र का स्वभाव है कि हस आदि को अवगाह देना, मायने वहाँ हस आये और उस जल मे केलि करता रहे, पर जब समुद्र या नदी मे कोई हस नही आ रहा तो अवगाही हस का अभाव होने से जल का अवगाह्यपना खतम हो जाता। मायने जल मे जो यह सामर्थ्य है कि कोई पक्षी आदिक आये तो उसमे बसा करे तो ऐसे ही अलोकाकाश मे अवगाह लेने वाले पदार्थ मौजूद नही हैं तिस पर भी अलोकाकाश भी आकाश ही तो है। उसमे यह सामर्थ्य तो बराबर है कि वह अन्य पदार्थ को अवकाश दे सके और आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। लोकाकाश दूसरा आकाश है और अलोकाकाश दूसरा आकाश है ऐसा भेद नही है किन्तु उस ही एक अखण्ड आकाश मे यह भेद बनाया गया है कि जहाँ ६ द्रव्य पाये जायें वह लोकाकाश है और जहाँ केवल आकाश पाया जाये वह अलोक काश है। तो आकाश का जो सामर्थ्य है वह तो आकाश मे है ही।

आकाश की भी उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मकता होने से सत्ता की प्रसिद्धि—यहाँ शकाकार कहता है कि आकाश उत्पन्न नही हुआ, सो उत्पन्न न होने से आकाश का अभाव ही है। जैसे गधे के सीग भी उत्पन्न नही होते तो उनका अभाव ही है। इस शका के उतर मे कहते हैं कि शकाकार का हेतु असिद्ध है। शकाकार का कहना था कि आकाश उत्पन्न नही होता ? सो किसी दृष्टि से देखे तो आकाश की उत्पत्ति विदित होती है। प्रथम तो आकाश का जातपना सीधे हो सिद्ध है कि जब द्रव्यार्थिकनय को गौण करके पर्यायार्थिकनय की प्रधानता से देखा जाये तो अपने ही कारण से अगुरुलघुत्व गुण की वृद्धि हानि के भेदो की अपेक्षा से आकाश मे उत्पाद होता रहता है और दूसरे ढग से यो देखिये कि अवकाश करने वाले जीव पुद्गल जो पर पदार्थ हैं उनके कारण से जो अवगाह के भेद होते रहते हैं, अभी इस भाग मे अवगाह है, अब यहाँ न रहा वह पदार्थ अन्यत्र पहुँच गया। कभी अधिक क्षेत्र मे अवगाह है किसी पदार्थ का तो कुछ कम क्षेत्र मे रह गया या अधिक मे हो गया। इन भेदो की अपेक्षा से अवगाह भेद से आकाश का उत्पाद सिद्ध होता है। तीसरे इस ढग को देखिये कि जैसे क्षीण मोह गुणस्थानवर्ती जीव का जो अन्तिम समय है वह सर्वज्ञपने से ही है याने वहाँ भी यह आत्मा सर्वज्ञ नही है और उसके बाद सर्वज्ञपना आयेगा। १३वें गुणस्थान मे सर्वज्ञ होता ही है। तो जैसे यहाँ निरखा जाता है कि असर्वज्ञ रूप से तो व्यय हो गया और सर्वज्ञरूप से उत्पाद हो गया तो ऐसे ही आकाश के बारे मे देखिये कि वह चरम समयवर्ती असर्वज्ञ १३वें गुणस्थान के अन्तिम समय वाला मुनि आकाश को साक्षात नही जान पा रहा था, उसके लिये आकाश साक्षात अनुपलम्भ था। अब एक समय बाद जैसे कि वह सर्वज्ञ हुआ तो यह अनुपलम्भ आकाश अब साक्षात प्रत्यक्ष हो गया। तो वहा यह आकाश उपलम्भ रूप से उत्पन्न हो गया, अनुपलम्भ रूप से नष्ट हो गया। यदि इस प्रकार उपलम्भ रूप से आकाश को उत्पन्न न कहा जाय और अनुपलम्भ रूप से नष्ट न कहा जाय तो आत्मा की सर्वज्ञता ही नही ठहर सकती। फिर कोई सर्वज्ञ ही न रहेगा। तो इस प्रकार आकाश मे भी व्यय उत्पाद देखा जाता है तो शकाकार का हेतु असिद्ध हो गया। चौथी बात यहाँ यह देखो कि शकाकार ने जो दृष्टात दिया कि खरविषाण उत्पन्न नही होता इस कारण उसका

अभाव है तो यह बात भी एकान्त से नही कही जा सकती। खरविषाण इस समय अर्थरूप से तो है पर बुद्धि और शब्द रूप से तो है ही। खरविषाण मे तो शब्द हुए और इन शब्दो को सुनकर कल्पना मे आया कि यह कहा जा रहा तो वह बुद्धि मे आ गया तो इस समय अर्थरूप से तो नही है फिर भी तो इस दृष्टात मे किसी दृष्टि से साध्य भी नही है और साधन भी नही है। जैसे कि कोई गधा मरा और गाय बन गया तो जीव तो वही है और वही जीव होने से गाय के भव मे भी उसे गधे का जीव कहा जा सकता है और वहाँ सीग पाये गये तो कह सकते कि गधे के सीग हो गये। तो जैसे गधे का सीग यद्यपि उस भव मे अर्थरूप से नही है तो भी ऐसी दृष्टि से उसको भी उत्पन्न कहा जा सकता है। फिर आकाश मे तो कोई ऐसी कल्पना भी नही बनाई जा रही। आकाश चूकि द्रव्य है इस कारण प्रति समय उसमे उत्पाद होता रहता है।

आकाश की सत्तात्मक पदार्थ लो—अब एक शकाकार कहता है कि आकाश कोई पदार्थ नही है किंतु कोई आवरण नही रहता। रुकावट की चीज न होना, ऐसी पोल पोल का ही नाम आकाश कह दिया जाता है। तो आवरण के अभावमात्र का नाम आकाश है। आकाश कोई सद्भूत द्रव्य नही है। इस शक के उत्तर मे कहते हैं कि यद्यपि आकाश प्रत्यक्ष नही हो रहा फिर भी वास्तविक सत् है। आवरण के अभाव मात्र नही है जैसे कि नाम वेदना आदिक जो बौद्ध सिद्धात मे स्कध माने गए हैं वे अमूर्त हैं और आवरण रहित हैं तो भी उनकी सत्ता मानी गई है ऐसे ही आकाश भी यद्यपि अमूर्त हैं तो भी वह वास्तविक है।

आकाश का अवगाह लक्षण से ही परिचय—अब पुन एक शकाकार कह रहा कि आकाश का लक्षण अवगाह बताया है। पर अवगाह मे आकाश का ज्ञान नही होता। आकाश का अनुमान नही बनता फिर किससे बनता है सो सुनो—शब्द नाम हेतु से बनता है, याने आकाश है क्योकि शब्द गुण प्रकट हो रहा है। शब्द आकाश का गुण है और वह वायु के अवघातरूप बाह्य निमित्त के वश से सब जगह उत्पन्न होता हुआ विदित होता है। इन्द्रिय से प्रत्यक्ष भी होता है और ऐसा यह शब्द गुण अन्य द्रव्य मे पाया नही जाता। तो यही शब्द गुण गुणी आकाश को सिद्ध करता है, क्योकि शब्द यह गुण है और जो गुण होता है वह द्रव्य के ही आधीन होता है। सो जिसके आधीन यह शब्द गुण है वह है आकाश। तो आकाश का परिचय शब्द गुण से होता है अवगाह से नही। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि शब्द को आकाश का गुण कहना अयुक्त है। शब्द आकाश का गुण नही है, क्योकि वह पौद्गलिक है। शब्द पुद्गल द्रव्य का विकार है। आकाश का गुण नही है और ये शब्द पौद्गलिक हैं। इसकी पहिचान यो जानी जाती कि इनका पुद्गल से अभिघात होता है। शब्द छिड जायें। शब्द किसी चीज मे रोक दिये जायें तो ये मूर्तिमान पुद्गल से छिडते हैं। इससे मालूम होता है कि शब्द आकाश का गुण नही है किन्तु पुद्गल द्रव्य का विकार है।

आकाश प्रधान विकाररूप न होकर स्वतन्त्र सत्तात्मक पदार्थ—अब यहाँ साख्य सिद्धातानुयायी शका करते है कि आकाश कोई अलग चीज नही, किंतु वह प्रधान का विकार है। तत्त्व दो है— (१) पुरुष और (२) प्रधान। प्रधान सत्त्व रज, तम गुण का एक पिण्ड है और उत्पन्न होने के स्वभाव वाला है और मोह महत आदिक मे प्रधान के विकार हैं सो उन्ही विकारो का विशेष कोई कोई आकार है। कोई अलग पदार्थ नही है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि प्रथम तो प्रधान मे परिणाम ही नही माना गया है, जैसे कि परमात्मा मे कोई परिणाम नही माना क्योकि वह नित्य

है, निष्क्रिय है। आविर्भाव तिरोभाव यहाँ होता नही है। तो जैसे परमात्मा के परिणमन नही माने ऐसे ही प्रधान के भी परिणाम नही हो सकते। क्योकि प्रधान को भी नित्य माना है, निष्क्रिय माना है। अतएव परिणाम नही हो सकते, और जब प्रधान मे परिणाम नही है तो प्रधान के विकार को आकाश कहना यह कल्पना भी नही ठहरती, और यदि आकाश को प्रधान का विकार मान लिया जाय तो ऐसे घट पट आदि जो कि प्रधान के विकार माने गए है उनमे जैसे अनित्यता है। ये नष्ट हो जाते हैं और मूर्त हैं व एक देश मे रहते हैं, तो ऐसे ही आकाश भी अनित्य हो जायेगा। मूर्तमान और एकदेश व्यापी हो जायेगा अथवा जैसे आकाश नित्य अमूर्त सर्वगत है ऐसे ही प्रधान के विकार घट पट आदिक भी नित्य अमूर्त सर्वगत हो जायेंगे। इस कारण आकाश एक स्वतन्त्र द्रव्य है। वह किसी अन्य द्रव्य का विकार नही है। अब पुद्गल द्रव्य का उपकार कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥५–१९॥

शरीर और वचन पुद्गलो का उपकार तथा उनको पूर्वापर नाम रखने का कारण— पुद्गल द्रव्य का उपकार शरोर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास है। विकार के मायने यहाँ कार्य है और वह किसके प्रयोजन के लिए है यह प्रश्न होने पर उत्तर आता है कि जीव के लिए है, क्योकि इन सबका उपभोग जीव करता है। सामान्यतया अर्थ है कि शरीर तो जीवो के जैसे शरीर पाये जाते वे शरीर हैं। वचन जो शब्दवर्गणा के विकार हैं वे वचन हैं। मन—जिससे हितोपदेश ग्रहण करने की शिक्षा मिल पाती है वह मन है। और श्वासोच्छ्वास तो प्रकट है कि जीवो को श्वास होती है और उच्छ्वास होती है याने श्वास निकलती है और ग्रहण की जाती है। इसका विशेष अर्थ आगे कहेंगे पर इस समय यह जानना युक्त है कि सूत्र मे शरोरादिक का यह क्रम क्यो रखा गया है? सबसे पहले शरीर शब्द इस कारण रखा है कि शरीर के होने पर ही वचन, मन और श्वासोच्छ्वास हुआ करता है। तो उन आधेयो की प्रवृत्ति इस शरीर के आधार से है तब शरीर प्रधान हुआ और इसी कारण उसका सर्वप्रथम ग्रहण किया गया। शरीर बाद वचन कहा है। उसका कारण यह है कि वचन पुरुष हित की प्राप्ति का मूल कारण है। पुरुष के वचन हित मे लगाने वाले है याने ये वचन पुरुष को हित प्रवर्ताते हैं।

वचन के निर्देश से तथा अग्रिम सूत्र मे च शब्द के ग्रहण से अन्य इन्द्रियों की भी पुद्गल के उपकार मे अन्तर्निहितता—यहाँ वचन चूंकि मुखसे ही बोला गया, जिह्वा से ही बोला गया, जिसके जिह्वा नही, वह वचन नही बोलता तो यह रसना इन्द्रिय का प्रतीक जैसा है। ऐसा समझकर एक शकाकार कहता है कि जैसे वचन पुरुष के उपकारक हैं ऐसे ही चक्षु आदिक इन्द्रियाँ भी तो पुरुष के उपकारक हैं। फिर उनका भी ग्रहण करना चाहिये। तो उसका उत्तर यह है कि यह तो हमे इष्ट ही है, पर इसका ग्रहण जो इससे अगला सूत्र आयगा उसमे च शब्द पडा है उससे ग्रहण हो जाया करता है। यहाँ यह शका होती है कि चक्षु आदिक इन्द्रियां तो आत्मा के प्रदेश रूप है। उन्हे पौद्गलिक कैसे कह दिया ? और पुद्गल का विकार कैसे बता दिया ? उसका उत्तर है कि यद्यपि वह आत्म प्रदेश रूप है। चक्षु, कर्ण आदिक, पर इन इन्द्रियो की रचना दो प्रकार की है–(१)बाह्य और (२) आभ्यातर तो आभ्यतर रचना मे आत्मप्रदेश का योग माना है। तथापि जितनी बाह्य रचना है, द्रव्येन्द्रिय है, वह तो एकदम पौद्गलिक ही है, क्योकि अंगोपाग नामकर्म केउदय से ये द्रव्येन्द्रिय रूप परिणमन होते

हैं सो इसका कारण भी पुद्गल है और ये स्वय आहार वर्गणा के परिणमन हैं। औ ये जीव के सांसारिक उपग्रह मे रहते हैं।

मन उपग्रह भी पुद्गलों का उपकार—मन भी पुद्गलो का उपकार है यद्यपि मन आत्मप्रदेशो मे है और नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। पर द्रव्य मन की रचना तो मनोवर्गणा का ही परिणमन है। वह भी पौद्गलिक है। यहाँ यह सन्देह न करना कि चक्षु आदिक जो आत्मप्रदेश हैं या इन्द्रियाँ हैं वे तो अवस्थित हैं। जिस जगह हैं वही हैं पर मन तो अवस्थित नही है तो उसका यहाँ ग्रहण क्यो किया है ? या वह भी गौण होने से अन्तर्भूत हो जाता। उत्तर देते हैं कि यद्यपि मन अनवस्थित है, क्योकि जहाँ-जहाँ प्रदेशो मे उपयोग जाता है वे ही प्रदेश अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण मन नामक हो जाते हैं, किंतु वह मन भी नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम के निमित्त से होता है सो वह भी पुद्गल का उपकार है यहाँ यह कहा जा रहा था कि यदि आत्मा का परिणाम होने से चक्षु आदिक का ग्रहण न किया जाय तो वचन का भी ग्रहण न किया जाना चाहिये। क्योकि वचन भी ज्ञानावरण के क्षयोपशम से और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ है इस कारण वह भी आत्मपरिणाम कहलायगा। इस प्रकार शकाकार समाधान देता है कि जो बाहर निकल गये वचन हैं वे पुद्गल हैं, वे आत्मा के परिणाम नही होते इसलिए वचनो का पृथक ग्रहण करना तो उचित है और वचन ग्रहण नही कर सकता। ऐसा प्रसग देकर चक्षु आदिक इन्द्रिय का अग्रहण मे आपत्ति देना युक्त नही है, और यह बात सर्वत्र है कि शरीरमे रहने वाले चक्षु आदिक इन्द्रिया तो पौद्गलिक ही हैं। वे द्रव्येन्द्रियाँ कहलाती। तो इस प्रकार यह बात बिल्कुल युक्त है कि अन्य इन्द्रिय का भी ग्रहण यहाँ होता है और वह अगले कहे जाने वाले सूत्र मे च शब्द से विदित होता है।

शरीर आदि शब्दो को इस क्रम से रखे जाने का कारण और सूत्र मे उपकारज्ञापन—सूत्र मे सबसे प्रथम शरीर कहा क्योकि वह सबका आधार है। उसके बाद वचन कहा क्योकि हित अहित का साधन है और उसके बाद यहाँ मन का ग्रहण किया क्योकि जिसके शरीर है और जिसके वचन हैं उसी के ही मन हो सकता है इसलिये तीसरे नम्बर पर मन कहा। अन्त मे प्राणापान शब्द कहा है। वह सर्व ससारी जीवो का कार्य है इसलिए इसको अन्त मे कहा है। यहाँ शकाकार कहता है कि यह जो सूत्र बनाया है, शरीर, वचन, मन ,श्वासोच्छ्वास ये पुद्गल के उपकार है। सो वास्तव मे उपकार बताने के लिये यह सूत्र नही हो सकता, किंतु पुदगल द्रव्य का लक्षण बताने के लिये है। और बहुत पहले सूत्रो की उत्थानिका मे भी कहा कि उपकार के कथन से द्रव्य का लक्षण कहा जा रहा है। सो मुख्यतया तो यह लक्षण यहाँ ही बता रहे हैं। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि पुद्गल द्रव्य का लक्षण तो आगे स्वय बताया जायगा। सूत्र आवेगा पुद्गल के लक्षण वाला। उसमे स्पष्ट बताया जायगा कि जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाले पदार्थ हैं वे पुद्गल कहलाते हैं। इस सूत्र मे तो आत्मा के उपकारक होने से उपग्रह के प्रकरण मे पुद्गल का कार्य अथवा उपयोग कहा जा रहा है।

शरीर वचन आदि की प्रत्यक्षता व अप्रत्यक्षता दोनो हो सकने से इनके उपदेश की सगतता—यहाँ शकाकर कहता है कि ये शरीर वचन आदिक तो एकदम प्रत्यक्ष हैं। सबको स्पष्ट विदित हो रहा है, दिख रहा है। इस कारण से उपदेश न करना चाहिये। बात वह बताई जाती है जो

लोगो को प्रत्यक्ष न हो और उसका ज्ञान आवश्यक हो। जैसे कि धर्म अधर्म द्रव्य का उपकार बताया था कि गति और स्थिति का उपग्रह करते है तो वह बात तो सही जची, क्योकि वह प्रत्यक्ष नही है तो उसका ज्ञान इस उपयोग से, कर्मों से किया गया है। किंतु शरीरादिक जो उपग्रह बताये हैं पुद्गल के उनके उपदेश निरर्थक है। क्योकि वे तो प्रत्यक्षभूत हैं। जैसे कोई बहुत बोलने लगे कि पहले सूर्य उदित होता है पीछे अस्त होता है, गुड मीठा होता है तो ऐसा बोलने से क्या फायदा है ? वह तो लोगो को प्रत्यक्ष है ही। इनका उपदेश थोडे ही किया जाता है। तो ऐसे ही शरीरादिक प्रत्यक्ष हैं तो इनका उपदेश न किया जाना चाहिये। इस शका के उत्तर में कहते है कि शरीरादिक जो बताये गए हैं ये भी कोई कोई प्रत्यक्ष हैं, कोई कोई प्रत्यक्ष नही हैं। कोई शरीर प्रत्यक्ष होता है कोई शरीर प्रत्यक्ष नही होते। शरीर ५ बताए गए—(१) औदारिक (२) वैक्रियक (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्माण। सो ये शरीर जब सूक्ष्म हो तो प्रत्यक्ष नही होते। जैसे सूक्ष्म जीवो का शरीर है वह हमको कैसे प्रत्यक्ष हो और यहाँ पशु पक्षी आदिक स्थूल शरीर ये प्रत्यक्ष हो रहे है। वचन भी है। जो अन्तर्जल्य हैं या मन्द आवाज मे है और दूसरे को विदित नही होता। मोटे वचन प्रत्यक्ष हैं। मन तो प्रत्यक्ष है ही नही। श्वासोच्छ्वास भी कोई प्रत्यक्ष होता है, कोई अप्रत्यक्ष भी होता है। किसी का श्वास विदित हो जाता है, किसी का श्वास इतना हल्का है कि वह विदित नही हो पाता तो ये सब कोई प्रत्यक्ष हैं और कोई प्रत्यक्ष नही है। इस कारण इनका भी ग्रहण करना युक्ति सगत है और इसीलिए पुद्गल का उपकार स्पष्ट बताने के लिए शरीरादिक का उपदेश किया गया। इस प्रकार औदारिक आदिक शरीर का व्याख्यान पूर्ण होता है।

कार्मण शरीर की पौद्गलिकता—यहाँ शकाकार कहता है कि शरीरो मे एक कार्माण शरीर का भी नाम लिया है सो वह तो पौद्गलिक नही है, क्योकि वह अनाकार है, उसके अगोपाग हाथ-पैर नही हैं, जो आकार वाले हो औदारिक आदिक शरीर उनको पौद्गलिक कहना तो युक्त है पर कार्माण शरीर तो अगोपाग से रहित है, अनाकार है, उसे पौद्गलिक कैसे कहा जा सकता ? इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि कार्माण शरीर का जो विपाक है, फल है वह पौद्गलिक पदार्थ के सम्बन्ध के निमित्त से होता है इसीलिये कार्माण शरीर पौदगलिक है, यह निश्चय होता है। देखिये—जैसे चावल आदिक है तो जल आदिक के सम्बन्ध से उनका पाक होता है, पचते हैं, फल देखा जाता है तो वे पौद्गलिक कहलाये। जिसका फल पुद्गल के सम्बन्ध से हो, वह पौद्गलिक होता है, तो कार्माण शरीर का भी फल जो सुख-दु.ख आदिक है सो वह सुख-दु ख के साधनभूत गुड, भोजन, काँटा आदिक पौद्गलिक द्रव्यो का समागम होने पर ही मिलता है। याने कार्माण शरीर का विपाक पौद्गलिक पदार्थ के समागम से होता है, इस कारण ये शरीर भी पौद्गलिक हैं। ऐसा कोई अमूर्तद्रव्य नही है, जो मूर्तिमान के सम्बन्ध होने पर पकता हुआ देखा जाये, और कार्माण शरीर का विपाक मूर्तिमान पदार्थ के सम्बन्ध से होता है, काँटा लग गया दुःखी हुये, मिठाई खाया सुखी हुये तो यो पुद्गल के सम्बन्ध से कर्म का फल प्राप्त होता इस कारण कर्म पौद्गलिक हैं।

वचन की पौद्गलिकता—वचन भी दोनो प्रकार के वचन पौद्गलिक हैं। वचन के दो प्रकार ये हैं—(१) भाव वचन और, (२) द्रव्य वचन। सो भाववचन तो वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से, मति श्रुत ज्ञानावरण के क्षयोपशम से और अगोपाग नामकर्म की प्रकृति के उदय से प्राप्त हुये अगो के सयोग वियोग से अन्तर मे हुआ सो वह पौद्गलिक है। पुद्गल सम्बन्ध हुये बिना भाव वचन भी नहीं बनते इस कारण वह पौद्गलिक है। मति श्रुत ज्ञानावरण के क्षयोपशम से वीर्यान्तराय के क्षयो-

पशम से सामर्थ्य पैदा हो तो क्रियावान आत्मा के द्वारा प्रेरे गए पुद्गल ही वचन रूप से परिणमते हैं। सो द्रव्य वचन पौद्गलिक हैं यह बात अत्यन्त स्पष्ट है और ये वचन श्रोत्रइन्द्रिय के विषयभूत हैं, इससे भी जाना जाता है कि ये पौद्गलिक हैं। यह शका होती कि कोई सा भी वचन श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण मे आये फिर भी मिट क्यो जाता है ? और तुरन्त ही मिट जाता है। वह श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण मे आते ही रहना चाहिये। इस शका का उत्तर कहते हैं कि वचन अपने क्षण प्रकट हुआ उसके पश्चात् वचन की वर्गणायें विशीर्यमाण हो जाती हैं, अलग-अलग हट जाती हैं इस कारण श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा पुन शब्द ग्रहण मे नही आता। जैसे कि बिजली चमकी, चक्षुइन्द्रिय के द्वारा जान लिया गया, बाद मे वह चक्षु इन्द्रिय के द्वारा हमेशा जाना ही क्यो नही जा रहा ? उसका कारण यह है कि बिजली प्रकाशरूप हुई और अनन्तर ही वह बिखर जाती है, तो आंख से भी बिजली नही दिख रही अब, ऐसे ही शब्द आया श्रोत्र इन्द्रिय से जाना गया फिर बिखर गया तो शब्द भी श्रोत्र इन्द्रिय से सदैव नही जाना जा रहा। यहाँ यह भी जानना कि शब्द श्रोत्र इन्द्रिय का विषय है मगर शेष इन्द्रिय का नही है सूक्ष्म होने से जैसे कि गन्ध द्रव्य घ्राणेन्द्रिय से जाना जाता है और जैसे द्रव्य मे गन्ध है उसमे उसका अविनाभावी रस आदिक भी है मगर घ्राण इन्द्रिय से रस आदिक का ग्रहण नही हो रहा, तो ऐसे ही शब्द का श्रोत्रेन्द्रिय से ही ग्रहण होता अन्य इन्द्रिय से ग्रहण नही होता।

शब्द की मूर्तिमत्ता के विषय मे शका व समाधान—अब यहाँ शकाकार कहता है कि शब्द तो अमूर्त हैं, पुद्गल की चर्चा तो दूर रही, पर वह मूर्त ही नही है, क्योकि शब्द अमूर्त का गुण है। आकाश अमूर्त है और उसका गुण शब्द है और इस कारण से वचन पुद्गल का उपकार नही कहा जा सकता। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि शब्द आकाश का गुण नही है क्योकि मूर्तिमान पदार्थ से यह ग्रहण मे आता, मूर्तिमान पदार्थ से शब्दोत्पत्ति की प्रेरणा होती, मूर्तिमान पदार्थ से शब्द का रुकाव देखा जाता। तो चूँकि शब्द मूर्तिमान इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण मे आते हैं इसलिये अमूर्तिक नही, मूर्तिक ही है, गुण भी अमूर्त पदार्थ इन्द्रिय द्वारा ग्रहण मे नही आ सकते। अच्छा दूसरी बात यह है कि मूर्तिमान जो हवा है उसके द्वारा शब्द से प्रेरणा होती है और इस ही वजह से ये अन्य देश मे स्थित हुये जीवो के द्वारा ग्राह्य होते हैं। जो-जो अमूर्त होगा उसको मूर्तिमान प्रेरित नही कर सकता। तो शब्द मूर्तिमान के द्वारा प्रेरित होता है इस कारण पौद्गलिक ही है, अमूर्त नहीं है शब्द का अवरोध भी देखा जाता। जैसे कोई कमरे के अन्द बोल रहा और भीट किवाड खिडकी आदि बद कर दिया तो उसके शब्द का अवरोध हो गया याने शब्द बाहर नही पहुँच रहा। कोई भी अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ के द्वारा अवरुद्ध नही हो सकता।

शंकाकार द्वारा शब्द की मूर्तिकता के साधक हेतुओ मे दोष का प्रख्यापन—अब यहाँ शकाकार कहता है कि शब्द को मूर्तिमान सिद्ध करने के लिये जो हेतु दिये गये हैं वे सब सही नहीं हैं। एक हेतु यह दिया कि चूकि शब्द इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हैं इस कारण से मूर्तिक हैं, सो बात यह है कि शब्द श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य तो है पर श्रोत्र मूर्ति या पौद्गलिकता नही है। श्रोत्रइन्द्रिय तो आकाशमय है और अमूर्तिक है, सो अमूर्त आकाश के द्वारा याने श्रोत इन्द्रिय के द्वारा अमूर्त शब्द का ग्रहण हो जाना युक्त ही है। इसमे क्या विरोध आता है। और भी देखिये—दूसरा हेतु दिया गया है प्रेरणा का याने शब्द की प्रेरणा होती है। हवा चली तो शब्द बढ गया सो यह हेतु भी ठीक नही है क्योकि गुण का गमन ही नही होता, प्रेरणा क्या होगी ? कोई पूछे कि फिर अन्य देश मे स्थित पुरुषो के

द्वारा शब्द ग्रहण मे कैसे आयेंगे यदि गमन नही होता तो ? तो उसका उत्तर यह है कि सयोग से, विभाग से और शब्द से शब्द की निष्पत्ति होती है, तो शब्द से शब्द बनता गया और वह दूर देश मे रहने वाले पुरुषो के द्वारा जाना गया। तीसरा हेतु जो दिया है कि शब्द का अवरोध होता है सो कोई भी अमूर्त पदार्थ किसी मूर्तिमान के द्वारा रोका हुआ नही देखा गया तो शब्द भी कैसे रुकेगा ? इस कारण यह समझना कि शब्द आकाश का गुण है अतएव शब्द अमूर्तिक हैं, उसे पुद्‌गल न कहा जाना चाहिये।

शब्दों की मूर्तिकता के साधक हेतुओ मे शकाकार द्वारा दिये गये दोषों का निवारण करते हुये शब्दो की मूर्तिकता का समर्थन—अब उक्त शका के समाधान मे कहते है कि शकाकार द्वारा किया गया दोष निवारण यहाँ एक भी लागू नही होता श्रोत्र आकाशमय है, ऐसा जो शकाकार का मन्तव्य है सो भी ठीक नही बैठता। अमूर्त आकाश किसी अन्य कार्य को करने की शक्ति से रहित है याने अन्य कार्य करने की शक्ति आकाश मे नही है। यदि शकाकार यह सोचे कि अदृष्ट की वजह से ऐसा हो लेगा, अन्य कार्य को शक्ति आकाश मे आ जायेगी, इस पर आचार्यदेव कहते है कि इस सम्बन्ध मे तो बहुत-बहुत विचारणीय बातें हैं। अच्छा यह बतायें शकाकार कि वह अदृष्ट जो एक सस्कार बनाता है तो क्या वह आकाश मे सस्कार बनाता है या यह अदृष्ट आत्मा मे सस्कार बनाता है या यह अदृष्ट शरीर के एक देश मे सस्कार बनाता है ? आकाश मे सस्कार बनाता है, ऐसा कथन तो युक्त नही है, क्योकि आकाश अमूर्तिक है और अन्य के गुण होने से यह सम्बन्ध से रहित भी है। तो आकाश मे तो सस्कार न बना सकेगा अदृष्ट। यदि कहा जाये कि आत्मा मे सस्कार बना देगा तो आत्मा तो शरीर से अत्यन्त भिन्न है, अखण्ड है, उसमे सस्कार डाल दे अदृष्ट यह बात सम्भव नही है, सो आत्मा नित्य है, अखण्ड है, उसमे सस्कार अदृष्ट नही डाल सकता, शरीर के एक देश मे अदृष्ट सस्कार डाल दे, यह भी बात युक्त नही है, क्योकि अन्य का गुण अन्य मे सम्बन्धित नही होता। और भी जो उपाय श्रोत्रइन्द्रिय को मूर्तिक पौद्‌गलिक सिद्ध करने के लिये बताये हैं सो भी नही बनते। बात यह कि मूर्तिमान पदार्थ के सम्बन्ध से विपत्ति सम्पत्ति जो देखी जा रही है उससे यह सिद्ध है कि श्रोत्र मूर्तिक ही हैं, याने कान मे तेल डाला तो उससे उस कान को लाभ हुआ, कान मे घाव आ गया उससे दु ख हो रहा तो यह कैसे कहा जायेगा कि श्रोत्र इन्द्रिय आकाशमय है, वह तो पौद्‌गलिक ही है। और जो शकाकार अपने दर्शन मे ऐसा कहता है कि स्पर्शवान द्रव्य के अभिघात से शब्दान्तर का आरम्भ नही होता सो यह तो मन की ही बात कही, क्योकि इसीलिये तो शब्द मूर्तिक हैं और पौद्‌गलिक हैं मूर्तिमान पदार्थ के द्वारा कोई भी अमूर्त पदार्थ दबता नहीं है और चूँकि भीट आदिक से ये शब्द दब जाते हैं इस कारण से सिद्ध हुआ कि शब्द पौद्‌गलिक हैं। आकाश का गुण नही है।

पुद्‌गलों के उपकारभूत वचन उपग्रह की पौद्‌गलिकता—पुदगलो का उपकारभूत वचन के विषय मे चर्चा चल रही है। यहाँ शकाकार कह रहा था कि शब्द अमूर्तिक है, आकाश का गुण होने से तो यह सिद्ध किया गया कि शब्द आकाश का गुण नही है क्योकि वह मूर्त है। और कैसे समझें कि मूर्त है ? तो शब्द का अभिभव आदिक देखा जाता है। जैसे ताराओ के प्रकाश का सूर्य के प्रकाश से अभिभव देखा जाता, सूर्य के प्रकाश मे तारागण नही दिखते तो इससे सिद्ध है कि वे सब तारायें मूर्तिमान पौद्‌गलिक हैं। इसी प्रकार वन मे सिंह, हाथी, भेडिया आदिक का शब्द होने पर

चिडियो के शब्द नही सुनाई देते है। बडे-बडे घटाओ के सामने छोटे शब्द नही सुनाई देते है। कुओ, गुफाओ मे कोई आवाज बोली जाये तो उसकी झाई (प्रति ध्वनि) आती है, तो आवाज टकराकर कुछ थोडा वापिस सुनाई देती है, इन बातो से सिद्ध है कि शब्द मूर्त है, आकाश के गुण नही हैं। यदि शकाकार कहे कि अमूर्त पदार्थ का भी तो अभिभव देखा जाता है जैसे शराब आदिक पीने से विज्ञान का अभिभव देखा जाता। विज्ञान तो अमूर्त है और शराब मूर्त है तो मूर्त के द्वारा अमूर्त का भी तो अभिभव हो जाता है, तो इस प्रकार शब्द अमूर्तिक रहे। और मूर्त के द्वारा उसका अभिभव भी होता रहे इसमे कौन सा अपराध है ? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे विज्ञान का अभिभव बताया है कि शराब के द्वारा विज्ञान का अभिभव होता है। सो विज्ञान पौद्गलिक है क्योकि कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। तो जितने भी क्षयोपशमिक भव हैं वे भी पौद्गलिक कहलाते हैं। यदि यह विज्ञान पौद्गलिक न होता तो आकाश की तरह विज्ञान का भी अभिभव न हो सकता था।

पुद्गल के उपकारभूत मन उपग्रह का परिचय—अब सूत्र मे कहे गये तीसरे निर्देश के विषय मे कहते है कि मन दो प्रकार का होता है–(१) द्रव्य मन (२) और भावमन। सो ये दोनो ही प्रकार के मन पौद्गलिक हैं। द्रव्य मन तो पुद्गल उपादान से ही परिणत हुआ है। वह भी पौद्गलिक है और भाव मन पुद्गल का अवलम्बन लेकर बनता है, किसी भी बाह्य पदार्थ का ध्यान लेता है, द्रव्य मन का सहारा लेता है और वह भी कर्मों के क्षयोपशम से होता है अत भाव मन जीव की परिणति होने पर भी पौद्गलिक है। यहाँ शकाकार कहता है कि मन तो आत्मा से अत्यन्त ही भिन्न वस्तु है क्योकि आत्मा अलग पदार्थ है और मन अलग पदार्थ है, भले ही मन का आत्मा मे सयोग होता है और विज्ञान क्रिया चलती है, पर हैं पृथक् द्रव्य। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यहाँ स्याद्वाद से सिद्ध करना चाहिये। अर्थात एक दृष्टि से तो मन आत्मा से भिन्न नही है, दूसरी दृष्टि से मन आत्मा से भिन्न है। यही बात इन्द्रिय के विषय के भी हैं। जैसे वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होने पर तथा ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर आत्मा को ही इन्द्रिय परिणाम के आदेश से देखा जाये तो इन्द्रिय आत्मा से अन्य नही है और इस दृष्टि से देखें कि उस इन्द्रिय की निवृत्ति होने पर भी आत्मा बराबर रहता है। जैसे कि कोई पञ्चेन्द्रिय जीव मरा और चतुरिन्द्रिय मे जन्म लेता है तो उसका वह पञ्चेन्द्रियपना समाप्त हो गया। अब यदि चतुरिन्द्रियपन हुआ तो पहले इन्द्रिय की निवृत्ति हो गयी और आत्मा फिर भी रहा आया। इस दृष्टि से देखा जाये तो इन्द्रिय आत्मा से अन्य चीज हैं। ऐसे ही क्षयोपशम की अपेक्षा से आत्मा का ही मन रूप परिणाम होने से आत्मा से मन अन्य नही है, अर्थात भावमन आत्मा की ही एक परिणति है, किन्तु मन की निवृत्ति होने पर आत्मा रहता है इस दृष्टि से देखा जाये तो मन आत्मा से भिन्न है। जैसे कोई सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव था और मरकर वह चौइन्द्रिय आदिक मन रहित मे उत्पन्न हुआ तो मन की तो निवृत्ति हो गई और आत्मा बराबर रहा तो इससे मालूम हुआ कि मन भिन्न चीज है। यहा कोई ऐसा प्रश्न कर सकता है कि मन भी अवस्थायी है, उसकी निवृत्ति कैसे होती ? तो उन्हे यह जानना चाहिये कि अनन्तर समय मे मन की निवृत्ति हो जाती है; और की तो बात क्या ? एक ही जीवन मे मन रूप से परिणत पुद्गल गुण दोष के विचार स्मरण का कार्य करके उसके अनन्तर समय मे ही मन रूप से हट जाता है अर्थात अब मन रूप रचना नही रहती है, अथवा इस विषय मे भी स्याद्वाद का आश्रय लेना चाहिये कि मन कथ-

ञ्चित् अवस्थायी है और कथंचित् अवस्थायी नही है, द्रव्यार्थिक के आदेश से मन अवस्थायी है और पर्यायार्थिक के आदेश से मन अवस्थायी नही है।

मन की एक द्रव्यरूपता, अणुरूपता व प्रत्यात्मवर्तिता के सिद्धान्त की मीमासा—यहाँ कोई शकाकार कहता है कि मन तो एक द्रव्य है और वह प्रत्येक आत्मा मे रहता है ऐसा वैशेषिक सिद्धान्त मे कहा गया है कि कोई जैसे रूप के देखने का प्रयत्न कर रहा है तो उस समय चू कि ज्ञान उसका ही हो रहा है, अन्य का ज्ञान नही हो रहा है, इससे जाहिर होता है कि मन एक है। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि एक मन मे सबके जानने का सामर्थ्य नही हो सकता। प्रत्येक आत्माओ की बात एक मन कैसे कर सकता है और फिर उस मन को माना है परमाणुमात्र, अत्यन्त छोटा मन, सो वह परमाणुमात्र मन आत्मा और इन्द्रिय के साथ सयुक्त होकर अपने प्रयोजन के प्रति व्यापार करता है। ऐसा इस शकाकार का मत है। तो वहा यह विचार करना चाहिये कि वह मन जो आत्मा और इन्द्रिय के साथ सयुक्त होता है तो क्या सर्वदेश अथवा एकदेशसे सयुक्त होता है ? यदि कहे कि सर्व रूप से सयुक्त होता तो आत्मा और इन्द्रिय से भिन्न मन न रहा, अगर कहो कि अन्य एक देश सेआत्मा के साथ मन का सम्बन्ध होता है और अन्य किसी देश से इन्द्रिय के साथ मन का सम्बन्ध होता है तो ऐसा पक्ष मानने पर तो मन मे प्रदेशपना आ गया मायने मन अब बहुत अवयवो वाला बन गया, सो ऐसा शकाकार मानते नही। मन को परमाणुमात्र मानते है, और भी देखिये - यदि आत्मा मन के साथ सर्वरूप से सयुक्त होता है तो मन तो अणु है, अत. अत्यन्त छोटा है, तो आत्मा भी अणु बन बैठेगा, क्योकि आत्मा बडा हो और मन छोटा हो तो सर्वरूप से सयोग कैसे हो सकता ? अथवा जितना व्यापक आत्मा है उतना ही व्यापक मन बन बैठेगा, यदि सर्वदेश के सयोग माना जाये तो, यदि एक देश से आत्मा मन के साथ सयुक्त होता है तो आत्मा मे प्रदेशत्व सिद्ध हो गया और इस गृह ज्ञान का, सुख का, दु ख का भिन्न-भिन्न प्रदेश मे रहना हो गया। सो यो बन बैठेगा कि आत्मा मे कोई प्रदेश तो ज्ञानसहित हैं और कोई प्रदेश ज्ञानरहित हैं। तो जो ज्ञानरहित प्रदेश हैं उनमे आत्मा का चिन्ह रहा नही। आत्मा का चिन्ह है ज्ञान। तो ज्ञानरहित प्रदेश या तो कहो अचेतन हो गया या कहो कि आत्मा के उन प्रदेशों का अभाव हो गया, फिर सर्वज्ञतापना तो न रहा। इस प्रकार मन यदि इन्द्रिय के साथ सर्वदेश से सयुक्त होता है तो मन अब परमाणु प्रमाण न रहा, क्योकि इन्द्रियाँ परमाणु प्रमाण नही है। और इन्द्रियो के साथ सर्वदेश से मन का सयोग होता है तो मन छोटा न रहेगा। और भी देखिये—गुण और गुणी इनमे भिन्नता है और मन को नित्य माना है तो फिर इस मन का आत्मा के साथ वा इन्द्रिय के साथ सयोग विभाग परिणमन बन न सकेगा। फिर जानना कैसे सिद्ध हो ? यदि यो स्वीकार किया जाये कि सयोग विभाग रूप से मन परिणमता है तो मन नित्य न रहा और गुणी गुण मे अन्यपना भी न रहा। दूसरी बात यह है कि मन तो अचेतन है तो उसका आत्मा और इन्द्रिय के साथ सयोग करने का ज्ञान तो नही है कि अब इस इन्द्रिय के साथ या इस आत्मा के साथ सयोग करना चाहिये अब अन्य इन्द्रिय से या अ य आत्माओ से सयोग न करना चाहिये। तो मन मे जब विशेष ज्ञान ही नही जग सकता तो विभिन्न प्रतिनियत आत्मा और इन्द्रिय के साथ सयोग का अभाव हो जाता है।

अचेतन अणु व एक मन का आत्माओ और इन्द्रियों के साथ संयोग की असम्भवता—यहाँ शकाकार कहता है कि जैन लोग भी तो अचेतन कर्म को इस ही तरह मानते हैं कि कर्म अचे-

तन हैं और वे आत्मा के साथ सयुक्त हैं इन्द्रिय के साथ सयुक्त है और रचना भी करते रहते हैं तो ऐसे ही हमारे मन पदार्थ की बात भी समझिये कि हमारा मन भी अचेतन होकर इन सारी रचनाओ को करता रहता है। तो इसका उत्तर यह है कि कर्म मे भी किसी दृष्टि से चेतनत्व स्वीकार है क्योकि वह कर्म पौरुषेय परिणामो से अनुरजित है याने आत्मा के जैसे भाव होते हैं उस भाव से अनुरजित होकर पुण्य व पाप कर्म का बन्ध होता है तो इस दृष्टि से कर्मों मे कथञ्चित चेतनता है और पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से देखा जाय तो कर्म मे अचेतनता है। तो अनेकात बल से कर्म मे केवल अचेतनता ही न रही, अथवा कर्म दो प्रकार के हैं— (१) भावकर्म और (२) द्रव्यकर्म। भावकर्म तो जीव की विकृत परिणति का नाम है। सो जीव चेतन है तो उस चेतन की ही यह परिणति मन है और द्रव्य मन से देखा जाय तो वह पुद्गल द्रव्य के उपादान मे ही हुआ है इस कारण अचेतन है। शकाकार के यहाँ एक आपत्ति यह आती कि उन्होने मन को माना अत्यन्त सूक्ष्म, ता अत्यन्त सूक्ष्म होने से मनका चक्षु आदि इन्द्रिय के रूपादिक ग्रहण की योग्यता नही रहती है। क्योकि मन तो है छोटा, अब वह इन्द्रिय के साथ जुडे तो समग्र इन्द्रिय से कैसे जुड सकता ? एक ही इन्द्रिय मे पूरा कैसे जोड सकते ? तब जितने प्रदेश चक्षुओ ने अणुमन रोका है उनमे रागादिक के ग्रहण की सामर्थ्य रहती है। सब इन्द्रिय मे यह सामर्थ्य न रही, मगर देखा यह गया है कि जब भी किसी वस्तु का ग्रहण होता तो पूरा ही ग्रहण होता है। देखिये यह बात सिद्ध है कि मन, अणु प्रमाण नही होता। यहाँ शंकाकार यदि यह कहे कि मन तो है अणु प्रमाण ही, मगर उसकी सीधी गति है इसलिए समग्र के ग्रहण का कारण हो जाता है तो उसका उत्तर यह है कि मन अचेतन है और अचेतन मन के बुद्धि पूर्वक सब जगह व्यापार नही हो सकता। यदि शकाकार कहे कि अदृष्ट के कारण उस मन का सब जगह व्यापार हो जायगा, जैसे कोई पुरुष 'दण्ड चक्र को चला रहा, प्रेरणा कर रहा और उस तरह वह शीघ्रता से चला रहा तो वे चक्र के आरे सब जगह प्राप्त होते हैं ऐसे ही अदृष्ट की प्रेरणा से मन का व्यापार होता है और उस भ्रमण से सर्व मे व्यापक विदित हो जाता है। इस शका के उत्तर मे कहते कि भाई जिस पुरुष ने उस चक्र की प्रेरणा की है वह पुरुष क्रियावान है और क्रियावान पुरुष के द्वारा प्रेरित किया गया वह चक्र सर्वत्र दिखता है, किंतु अदृष्ट तो आत्मा का गुण है। इस कारण वह स्वय निष्क्रिय है। जो स्वय क्रियारहित है वह अन्य में क्रिया करने का कारण कैसे हो सकता है।

मन का आत्मा से अनादि सम्बन्ध की असिद्धि—यदि शकाकार यह कहे कि आत्मा के साथ मन का सम्बन्ध अनादि काल से चल रहा है तो यह कथन उनका योग्य नही है, क्योकि अब तो आत्मा और मन का सयोग मान लिया है और सयोग होता है तब जब कि पहले तो उस चीज की प्राप्ति न हो और पीछे प्राप्त हो जाय उसे कहते हैं सयोग। जैसे पहले घडा रखा था, बाद मे उसमे पानी भर दिया तो अब पानी का घडे का सयोग हो गया ऐसा शकाकार ने स्वय माना है। तो अब मन द्रव्य का आत्मा के साथ इस तरह का सम्बन्ध बताओ अनादि हो सकता है क्या कि पहले मे मन न था और पीछे आ गया तब तो वह कहलायेगा सयोग और ऐसा अगर होता है तो वह अनादि सम्बन्ध न रहा। अरहन्त भगवान के आगम मे बताया है कि मन क्षायोपशमिक है और आत्मा पारिणामिक भाव रूप है। उसके साथ मन का अनादि सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? यदि अनादि सम्बन्ध वाला मन रहे तो इसका परित्याग भी नही किया जा सकता और परित्याग देखा जाता है। इससे सिद्ध है कि मनका आत्मा से अनादि सम्बन्ध नही है। शकाकार कहता है कि जैनो ने फिर कर्म

का आत्मा के साथ अनादिसम्बन्ध कैसे मान लिया ? पहले आत्मा मे कर्म न लगे हो और पीछे कर्म आकर लगे तब तो सयोग कहा जायेगा। जैसा कि हमारे सिद्धात मे आपत्ति दी है ? तो जैसे जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध है और कर्म के परित्याग का विरोध भी नही है ऐसे ही मन का भी जीव के साथ अनादि सम्बन्ध सिद्ध हो जायेगा। इसके उत्तर मे कहते है यह कथन भी तुम्हारा युक्त नही है। यहा भी तथ्य स्याद्वाद से समझें —जीव और कर्म के बारे मे ऐसा एकात नही है कि जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध हो, किन्तु यथार्थ बात क्या है कि मिथ्यादर्शन आदिक परिणामो के द्वारा जो कर्मबन्ध हुआ उसकी अपेक्षा से तो कर्मबन्ध अनादि नही है। जिस समय कर्म बधा उसके बधने का प्रारम्भ समय वह है पर कर्मबध की सतति की अपेक्षा देखा जाय तो अनादि सम्बन्ध है और इसी कारण जब कर्म बन्ध न हो ऐसा शुद्ध भाव बढता है तो कर्म का प्रक्षय भी हो जाता है। अब यहाँ शकाकार कहता है कि मन तो इन्द्रिय का सहकारी कारण है। चक्षु आदिक इन्द्रिय ने इष्ट अनिष्ट रूप रस आदिक विषयो की उपलब्धि की। उस समय जिस जीव को सुख दुःख का अवगम होता है वह मन के सन्निधान मे होता है इस कारण दूसरा पदार्थ दूसरे के व्यापार रूप नही होता। वह मन इन्द्रिय का ही सहकारी कारण है। उत्तर मे कहते हैं कि मन को इन्द्रिय वेदनाओ का सहकारी कारण नही कहा जा सकता क्योकि इन्द्रियाँ अचेतन स्वभावी है वे स्वय इन्द्रियाँ अपने आप अपने मे इष्ट अनिष्ट रूप रस आदिक की ज्ञप्ति करती रहती हैं।

गुण दोष विचार स्मरणरूप कार्य से मन के अस्तित्व की सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि मन है ही नही क्योकि मनका पृथक उपकार कुछ नही देखा जा रहा। इन्द्रिय ने भी अपना अनुभव किया तो अब मन का उपकार क्या रहा ? देखने, सू घने, चखने वाली तो ये इन्द्रियाँ हैं, मन और करता क्या है ? और जब मन कुछ अर्थ क्रियाकारी न रहा तो उसे हो न समझिये। इसके उत्तर मे कहते है कि मन का कार्य देखा जाता है और उससे मन की सत्ता की सिद्धि होती है। मन का काम है गुण और दोषो का विचार करना आदिक। जिनको मनोलब्धि प्राप्त है वे सज्ञी कहलाते हैं और उनके मन रूप से परिणामित हुए पुद्गल गुण दोष का विचार करना, स्मरण करना आदिक कामो मे वह सहायक होता है। चाहे अधकार हो, बाह्य इन्द्रिय का प्रतिघात हो, कैसी भी स्थिति हो, मन का काम इन्द्रिय से अलग है इस कारण यह मन वास्तविक पौद्गलिक है।

मन को क्षणिक विज्ञानरूप मानने के सिद्धात की मीमासा—यहाँ शकाकार कहता है कि मन कोई अलग चीज नही है। विज्ञान का ही नाम मन रख लिया है। ५ इन्द्रिय ज्ञान और मनोज्ञान के बाद जो नष्ट हुआ विज्ञान है वही मन कहलाता है। ऐसा क्षणिकवाद सिद्धात मे कहा गया है और उसके अनुसार विज्ञान का ही नाम लोग मन रख देते हैं। इसके उत्तर मे कहते हैं कि शका ठीक नही है। क्योकि शकाकार के उस विज्ञान मे यह सामर्थ्य नही कि वह पदार्थ को जान सके। क्षणिकवाद मे जो विज्ञान माना गया है, वह विज्ञान वर्तमान ही बाह्य अर्थ को जानने के लिये समर्थ नही है। फिर वह अतीत को कैसे जाने ? क्योकि निरशवादसम्मत विज्ञान क्षणिक है और वह पूर्व और उत्तर विज्ञान से कुछ सम्बन्ध रखता नही है। ऐसा क्षणिकवाद मे माना है। तो वह वर्तमान विज्ञान जो एक क्षण को हुआ और पूर्व और भावीविज्ञान से कुछ सम्बन्ध नही वह विज्ञान गुण और दोष के विचार मे, स्मरण मे कैसे सहायता कर सकता है, क्योंकि यह स्मरण न तो स्वय अनुभूत अर्थ का बन सकता है, न अननुभूत अर्थ का बन सकता है और न दूसरे के द्वारा अनुभूत अर्थ का बन सकता

है। क्षणिकवाद मे स्मरण बन ही नही सकता है। यहा शकाकार कहता है कि विज्ञान क्षणिक जरूर है मगर एक सतान मे पतित होने से स्मरण की उपपत्ति हो जायेगी अर्थात एक देह मे लगातार आत्मा पैदा हो रहे हैं। विज्ञान उत्पन्न हो रहे हैं तो उनकी ही एक धारा चली है। उस धारा मे आने के कारण स्मरण की उपपत्ति बन जाती है। उत्तर मे कहते हैं कि यह सिद्ध नही किया जा सकता, क्योकि विज्ञान तो अवस्तुरूप है। एक सतान मे पतित हुआ भी विज्ञान पदार्थ की जानकारी स्मृति कैसे कर सकता है। जैसे अतीत देवदत्त वर्तमान पौत्रादिक का क्या उपकार कर सकता? जैसे एक वंश परम्परा मे बाबा देवदत्त था और उनके लडके और लडके के लडके उत्पन्न हो गए और वह देवदत्त गुजर गया तो वह गुजरा हुआ देवदत्त इन वर्तमान पोतो का क्या उपकार कर सकता, ऐसे ही अतीत जो विज्ञान है वह गुण दोष विचार का स्मरण कैसे कर सकता है? भले ही एक सतान मे आया है मगर गुजरा हुआ विज्ञान आगे की बात का उपकार नही करता। शकाकार कहता है कि जो विज्ञान अतीत हो गया, नष्ट हो गया वह विज्ञान बीज शक्ति रूप होकर अवस्थित सत् का आलम्बनरूप होता है। जैसे धान का बीज बो दिया और वह बीज अतीत हो गया, नष्ट हो गया मगर वह भविष्य मे होने वाले अंकुर फल आदिक का आलम्बन तो बन जाता, तो ऐसे ही जो विज्ञान नष्ट हो गया वह आगे के गुण दोष विचार आदिक का आलम्बन बन जाता है। इसके उत्तर मे कहते हैं कि जो आलम्बन विज्ञान है उस एक का अन्य काल मे अगर अवस्थान माना जाता है तब तो क्षणिकवाद न रहा और कालान्तरमे अवस्थान नही माना जाता तो आलम्बन भी नही बन सकता। इससे विज्ञान को ही मन कहना सिद्ध नही होता, किन्तु मन अन्त एक पौद्गलिक रचना है और ज्ञानावरण के क्षयोपशम से द्रव्य मन का आलम्बन लेकर ज्ञान किया करता है।

मनको प्रकृति विकाररूप मानने के सिद्धात की मीमासा—अब यहाँ दूसराशकाकार कहता है कि मन पौद्गलिक नही है किन्तु वह प्रधान का (प्रकृति का) विकार है। सांख्य सिद्धान्त मे दो तत्त्व माने गए हैं—(१) पुरुष और (२) प्रधान। पुरुष तो जीव हुआ और प्रधान अचेतन हुआ। उनमे प्रधान ऐसा तत्त्व है कि जिससे सारी रचना चलती है। तो प्रधान का जो महान अहकार आदिक रूप मे परिणमन होता है उसी प्रधान का कोई विकार विशेष मन कहलाता है। मन कोई स्वतन्त्र पदार्थ नही है। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यह मन्तव्य ठीक नही है क्योकि प्रधान अचेतन है। तो अचेतन के जो विकार होगे, परिणमन होगे वे भी अचेतनात्मक होगे। जैसे मिट्टी अचेतन है तो मिट्टी से घडा, सकोरा आदिक जो बनेंगे वे भीअचेतनात्मक होगे। मन को यदि प्रधानका विकार माना जाय तो मन अचेतन रहा फिर वह गुण दोष के विचार स्मरण आदिक कार्य मे सहायक हो ही नही सकता। अच्छा यह ही बताओ कि जो मन है सो उसे तो करण माना है मन के द्वारा जानता है, पर जानने वाला कौन है? गुण दोष का विचार करने वाला कौन है? क्या पुरुष है अथवा प्रधान है? पुरुष को तो निर्गुण माना है इसलिएवहाँ विचार आदिक कुछ सम्भव ही नही हो सकते। ऐसा स्वय सांख्यो मे स्वीकार किया है, क्योकि गुण दोष का विचार आदि ये तो सत्त्व गुणमय हैं। और सत्त्व, रज, तम ये गुण पुरुष मे याने आत्मा मे नही होते। तो विचार आदिक का कर्ता पुरुष नही माना जा सकता। और विचार आदिक का कर्ता प्रधान भी नही हो सकता, क्योकि प्रधान अचेतन माना गया है। लोक मे कोई भी अचेतन पदार्थ गुण दोष के विचार आदिक का कर्ता नही देखा गया है। अब सांख्यानुयायी यह बतायें कि जो प्रधान और प्रधान के परिणाम अहकार

आदिक माने हैं सो यहाँ अब दो बातें आयी। एक तो प्रधान तत्त्व, दूसरा उसका परिणमन। तो वह परिणमन प्रधान से भिन्न है या अभिन्न ? यदि बुद्धि अहंकार आदिक परिणमन प्रधान से भिन्न हैं तो जो यह प्रतिज्ञा की जाती है कि कार्य और कारण मे एकत्व रहता है, याने एक ही पदार्थ में कार्य कारण भाव देखा जाता है, यह प्रतिज्ञा खण्डित हो जायेगी, और यदि बुद्धि, अहकार, शरीर आदिक परिणमनों को प्रधान से अभिन्न माना जाय तो वह सब प्रधान ही कहलाये, परिणमन कुछ न रहे, तो जब परिणमन ही न रहा और प्रधान ही रहा तो मन कहाँ रहा ? निष्कर्ष यह है कि मन पौद्गलिक है और वह पुद्गलो का उपकार है। यहाँ उपकार का अर्थ भलाई से नही है। चाहे भला हो चाहे बुरा हो पर जीव के काम आ रहा है मन इसलिए यह पुद्गलो का उपकार कहलाता है।

पुद्गल के उपकारभूत प्राणापान उपग्रह का परिचय—अब सूत्र मे कहे गयें चौथे प्राणापान का विवरण करते हैं। प्राण और अपान ये दोनो पुद्गल के उपकार हैं। प्राण क्या है कि नाली से याने शरीर के भीतर रहने वाले कोठे से जो निकलने वाली वायु है उसको प्राण कहते हैं। इसका नाम उच्छ्वास है अर्थात निकलने वाली वायु उच्छ्वास प्राण कहलाती। इसका निर्माण कैसा है कि वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम हो, ज्ञानावरण का क्षयोपशम हो और अंगोपाग नाम कर्म का उदय हो, ऐसी स्थिति मे उस जीव के शरीर कोष्ठ से निकलने वाली जो वायु है उसे प्राण कहते हैं। अपान का अर्थ है बाहरी हवा को भीतर करना। उस ही आत्मा के द्वारा जो बाहरी वायु भीतर को जाती है वह अपान कहलाती है। इसे श्वास कहते हैं। ये दोनो ही जीव के उपकारक हैं, क्योंकि जीव उस भव मे जीवन बनाये रहने मे कारण हैं। जब तक प्राण और अपान है तब तक जीव उस भव में जीवित है, प्राण अपान नष्ट हो जाने पर वह जीव उस भव में जीवित नही रहता। इसे मरण कहते हैं और मरकर यह आगे बढ देता है। तो ये प्राण और अपान मूर्त और पौद्गलिक हैं, क्योंकि इनका भी प्रतिघात देखा जाता। जैसे हाथ को मुख के सामने कर ले तो निकलती हुई वायु का प्रतिघात हो जाता। वह आगे नही जा पाती। कफ भीतर बढ जाये तो उससे भी श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात हो जाता। तो मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा अभिघात आदिक मूर्त के ही होगे अमूर्त के नही होते और इस श्वासोच्छ्वास की परीक्षा हर एक लोग करते हैं। मरणहार पुरुष के मुख और नाक के आगे हाथ रखकर परीक्षा किया करते कि श्वासोच्छ्वास हैं या नही। तो जिसका अभिघात होता है वह मूर्त होता है, पौद्गलिक होता है।

प्राणापान से आत्मा के अस्तित्व का अनुमान—प्राण और अपान की क्रिया से तो आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। सभी लोग श्वासोच्छ्वास को देखकर कहते हैं कि अभी यह जिन्दा है। जब श्वासोच्छ्वास नही रहती तो कहते हैं कि बस मृतक हो गया है। तो प्राण और अपान मे आत्मा का अस्तित्व इस तरह जाना जाता है जैसे यन्त्र की प्रतिमा या कोई मशीनरी की चेष्टा हो तो वह ड्राइवर का याने उसके प्रयोक्ता का अस्तित्व जनाता है इसी तरह श्वासोच्छ्वास के कार्य भी इस क्रियावान आत्मा को सिद्ध करते हैं। क्योंकि प्राण और अपान अगर न हो तो क्रियावान आत्मा नही है ऐसा स्पष्ट निर्णय रहता है। प्राण और अपान ये अकस्मात नही हो जाते क्योंकि इनका नियम देखा गया है। अकस्मात होने वाले का कुछ नियम नहीं होता और यह प्राण अपान क्षणिकवादसम्मत विज्ञान आदिक के द्वारा भी किया गया नही है, क्योंकि विज्ञान तो अमूर्त है। वह प्रेरणशक्ति से रहित है। वह कहीं प्रेरणा नही कर सकता। ये प्राण और अपानरूप और स्कंध के द्वारा भी किए

गये नही हैं, क्योकि वे रूप स्कध भी अचेतन हैं। यहाँ यह शका न रखना कि कुछ भी पदार्थ होता है तो वह निरीहक होता है। प्राण अपान या जो भी माना जाये उनमे ईहा व क्रिया तो होती नही, बुद्धि तो लगाई नही जाती, फिर व्यापार कैसे सम्भव है ? क्रिया कैसे सम्भव हो ? इसके उत्तर मे कहते हैं कि यदि क्रिया का अभाव माना जाय तो एक देश से दूसरे देश मे जो मनुष्य आदिक का जाना देखा जाता उसका अभाव हो बैठेगा। शकाकार कहता है कि वायु नामक धातु की विशेषता से देशान्तर मे पहुँचना, प्रादुर्भाव होना क्रिया है। यह बात उपचार से मानी जाती है। मुख्य क्रिया नही है। उत्तर मे कहते हैं कि वायु धातु विशेष मे भी यह सामर्थ्य नही है कि वह अन्य देश मे किसी मनुष्यादिक को ले जाय, क्योकि वायु धातु भी क्षणिकवादियो के यहाँ निष्क्रिय है। मतलब प्राण और अपान ये आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं और क्रियावान आत्मा को सिद्ध करते हैं। तो प्राण और अपान ये पुद्गल के उपकार हैं।

सूत्रोक्त प्रथम पद मे द्वन्द्व समास—यहाँ यह आशका की जा रही है कि सूत्र मे जो ४ बातें कही हैं—शरीर, वचन, मन और प्राणापान। ये सब प्राणी के अग हैं और इनका द्वन्द्व समास किया है तो इनका एकवद्भाव अर्थात समाहार हो जाना चाहिये। बहुवचन न आना चाहिये। जैसे कि समाहार द्वन्द्व समास मे अनेक शब्दो के साथ समास बन जाता है और एकवचन का प्रयोग रहता है। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यहाँ ये चार सभी अग नही हैं। यहाँ अग और अगी ये २ बातें पाई जाती हैं। सो जहाँ अग और अगी ऐसी दो बातें पायी जायें वहाँ समाहाररूप द्वन्द्व नही होता किंतु बहुवचन वाला द्वन्द्व होगा। प्राणियो के अगो मे ही द्वन्द्व समास उनका एकवद्भाव होता है। अग कहो अथवा अवयव कहो या एक देश कहो। ये एकार्थवाचक शब्द हैं। तो शरीर तो अगी है और वचन, मन, प्राणापान ये सब अग हैं, मायने शरीर का ही हिस्सा तो वचन है, मन है और श्वासोच्छ्वास है अथवा वचन आदिक ये अग भी नही कहे जा सकते क्योकि ये अवस्थित नही हैं। जैसे शरीर मे दांत हैं, जहाँ हैं वहाँ ही हैं, उन्हे अग कह सकते, पर वचन, मन, श्वासोच्छ्वास, ये अवस्थित कहाँ हैं, और फिर ये चारो नाना प्राणियो की अपेक्षा कहे गये हैं। एक प्राणी के विषय मे कहे जाते तो भी समाहार की युक्तता मानी जा सकती थी। तो इस प्रथम पद मे द्वन्द्व समास है और एकवद्भाव नही है यानेसमाहार नही है किंतु बहुवचन वाला द्वन्द्व समास है।

पुद्गल और उपग्रह का अर्थ—यहाँ पुद्गल का उपकार बताया जा रहा है। पुद्गल कहलाता है वह पदार्थ कि जिसमे पूरण और गलन होता है, अथवा जो पुरुष के द्वारा गिले जाते हैं, ग्रहण किये जाते हैं वे पुद्गल कहलाते हैं। पुद्गलाना इस पद मे षष्ठी विभक्ति इस कारण है कि उपग्रह शब्द जिसकी अनुवृत्ति आ रही है वह भावसाधन है अर्थात उपग्रहण करना उपग्रह है, उपकार है याने जीव के लिये शरीरादिक परिणमनो के द्वारा पुद्गल उपग्रह किया करते हैं। यदि एकात से इस पुद्गल को निष्क्रिय माना जाय या आत्मा को निष्क्रिय माना जाय और उस आत्मा को अत्यन्त शुद्ध माना जाय तो शरीरादिक के साथ आत्मा का बन्ध नही हो सकता। जब बन्ध नही है तो पुद्गलकृत उपकार भी न रहा या प्रकृतिकृत उपकार न रहा। जब क्रिया हेतुपना कुछ न रहा तो ससार का अभाव हो गया। ससार का अभाव होने से फिर मोक्ष कैसे हो सकता है ? सो यह शरीरादि पुद्गलो का उपकार है, इनका वियोग होना मोक्ष है। अब पुद्गल का अन्य उपकार भी बतला रहे हैं।

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥५—२०॥

सुख दु ख, जीवित व मरण उपग्रह का परिचय—सुख, दुःख जीवन, मरण ये उपग्रह पुद्गल के उपकार हैं, क्योकि पुद्गल के सम्बन्ध के बिना सुख दु ख जीवन, मरण नही होता है। कही सयोग से कही वियोग से। दु ख सुख किसे कहते हैं कि बाह्य कारण के वश से और सातावेदनीय के उदय से आत्मा मे जो प्रसाद पैदा होता, हर्ष प्रीति रूप परिणाम होना उसका नाम सुख है। तो जो आनन्द है वह तो पुद्गल का उपकार नही है, पर सुख पुद्गल का उपकार है। आनन्द तो आत्मा में मग्नता के कारण स्वभाव से उत्पन्न होता है और सुख बाह्य विषय का आलम्बन हो, सातावेदनीय का उदय हो तो सुख होता है, इस कारण सुख पुद्गल का उपकार है। दु ख किसे कहते हैं ? बाह्य कारणो की वजह से असातावेदनीय के उदय से जो सक्लेश से भरा हुआ आत्मा का परिणाम है वह दु ख कहलाता है। दुःख भी पुद्गल का उपकार है। जैसे कटक लगा या विषय का बाधक पुरुष सामने आया उस पर दृष्टि जाकर असातावेदनीय का भीतर उदय चल रहा है तो जो सक्लेश भाव है वह दु ख है। यद्यपि वह सक्लेश भाव और हर्ष भाव जीव का ही परिणमन है मगर पुद्गल के उपकार बिना नही हो सकता। पुद्गल का आलम्बन आवश्यक है, जीवन किसे कहते हैं ? भव की स्थिति का निमित्तभूत आयुकर्म है। उसके उदय से भव की स्थिति प्राप्त होती है। जितने समय का आयु कर्म का उदय है उतने समय यह जीव उस भव मे रहता है। तो उस जीव की श्वासोच्छ्वास रूप क्रिया विशेष नष्ट न होवे उसका नाम जीवन है। यह प्राणापान याने श्वास लेना और निकलना यह प्रत्येक ससारी जीव मे चलता है। जो एकेन्द्रिय जीव है उसके भी श्वासोच्छ्वास है। पृथ्वी हो, जल हो, अग्नि, वायु, वनस्पति, पेड वगैरह इनके भी श्वासोच्छ्वास होता है, और यह श्वासोच्छ्वास मुख्यता से तो मुख और नाक से लेने और निकालने की वायु का नाम है। मगर शरीर मे सब जगह से जो वायु निकले, वायु ग्रहण करे या नाडी वगैरह चले तो वह सब श्वासोच्छ्वास कहलाता है। तो एकेन्द्रिय जीव के मुख नही है मगर उनके सारे शरीर से श्वास और उच्छ्वास चलता रहता है, मरण किसे कहते हैं ? जीवन के विनष्ट होने का नाम मरण है, श्वासोच्छ्वास खतम तो जीवन खतम, आयु का उदय समाप्त हुआ तो इसे कहते हैं मरण।

सूत्र निहित सुख आदि शब्दों के क्रम का कारण और समासविधि का विवरण—अब इस सूत्र मे चार उपग्रह बताये गये, तो उनका नाम जिस क्रम से रखा, उसका कारण बतलाते हैं। सबसे पहले सुख शब्द रखा। वह यह जाहिर करता है कि सर्वप्राणियो का जो कुछ भी परिस्पद होता है, क्रिया होती है, चेष्टा होती है वह सुख की प्राप्ति के लिये होती है और इसी कारण सूत्र मे सुख का ग्रहण सबसे पहले किया है। उसके बाद दु ख शब्द कहा है, तो दु ख सुख का प्रतिपक्ष है, क्योकि सुख तो प्रीति का कारणभूत है, दु ख अप्रीति का कारणभूत है, और सुख के साथ दुःख तो सारी दुनिया बोलती है, जैसे—अजी शरीर मे सुख दु ख तो लगे हैं, दु ख सुख शायद ही कोई बोलता हो। तो सुख का प्रतिपक्ष होने से सुख के बाद दु ख का नाम लिया है। सुख दु ख दोनो शब्दो के निर्देश के बाद जीवित शब्द दिया है। उसका प्रयोजन यह है कि सुख और दुःख ये जीवित रहने वाले प्राणियो के हुआ करते हैं इसलिये इन दोनो के बाद जीवित शब्द का ग्रहण किया है। अन्त मे मरण शब्द कहा है। सबसे अन्त मे मरण ही होता है। तो अन्त मे प्राप्य होने से मरण का अन्त मे निर्देश किया गया है। आयु के क्षय के निमित्त से मरण होता है तो वह उस भव की आखिरी चीज है इस कारण अन्त मे निर्देश किया है। यहाँ पहले द्वन्द्व समास किया है फिर कर्मधारय समास हुआ याने यह ही

उपग्रह है, ऐसा कहकर इसमे विशेष्य विशेषण वाला समास हुआ है। यह उपग्रह किसका है ? तो पुद्गलाना, इसकी अनुवृत्ति पहले कहे गये सूत्र से आती है। वह पूर्व सूत्र है 'शरीर वाङ्मन प्राणापानाः पुद्गलानाम' शरीर, वचन, मन और प्राणापान ये उपग्रह पुद्गलो के उपकार है।

प्रकरण सिद्ध होने से सूत्र मे उपग्रह शब्द कहने की आवश्यकता न होने पर भी उपग्रह शब्द के कथन का रहस्य—यहाँ एक शका है कि जब पुद्गलो के उपकार का प्रकरण चला आ रहा है और पुद्गल का ही उपकार इस सूत्र मे बताया जा रहा है। फिर उपग्रह शब्द कहने की आवश्यकता तो न थी। उत्तर—बात सही है उपग्रह शब्द कहने की आवश्यकता न थी और फिर भी कहा है तो उसमे एक नई बात जाहिर होती है। वह यह बात जाहिर होती कि धर्म अधर्म और आकाश जिसके कि उपकार पहले बता दिये गये वह द्रव्य तो दूसरो का ही उपग्रह करता है, याने धर्मद्रव्य जीव पुद्गल के गमन का निमित्त है, तो दूसरे का ही तो कार्य किया, अधर्मद्रव्य ने भी दूसरे का किया और आकाश ने भी दूसरे को अवकाश दिया तो ये तो दूसरो का ही उपकार करते हैं, किन्तु इस तरह ये पुद्गल नहीं हैं, ये दूसरे का भी कार्य करते हैं। और खुद का भी कार्य करते हैं। वह किस प्रकार कि जसे कोई बर्तन मलना है तो राख से बर्तन मले तो वह राख भी पुद्गल और बर्तन भी पुद्गल, तो पुद्गल ने पुदगल का उपकार किया और पुद्गल ने जीव का भी उपकार किया, तो पुद्गल के लिए जीव तो पर पदार्थ हुये और पुद्गल के लिये पुद्गल स्व पदार्थ हुये। जैसे कोई जल है या कोई गदा पानी है उसमे कतक या फिटकरी डाल दी जाये तो वह गन्दा जल साफ हो जाता। तो इस तरह ये पुद्गल पुदगल का भी उपकार करते हैं और जीवन का भी कार्य करते हैं। तो दोनो बातें जाहिर करने के लिये इस सूत्र मे उपग्रह शब्द दिया है।

अब यहाँ कोई शका करता है कि सुख दु ख जीवन ये तो पुद्गल के उपकार हुये, पर मरण कैसे उपकार कहलायेगा ? मरण तो बुरी चीज है, उसे कहते हो कि यह पुद्गल का उपग्रह है, उपकार है, वह कैसे सिद्ध होगा, क्योकि वह तो अनिष्ट है, किसी को भी मरण इष्ट नही है, उसे उपकार कैसे कहा जा रहा ? तो शका के उत्तर मे कहते हैं कि मरण भी किसी को प्रिय होता है, जैसे जो विरक्त पुरुष है, जिसकी आयु क्षीण होने को है, ज्ञानी पुरुष है तो मरण का उत्सव तक मनाता है, समाधि मरण समारोह मनाया जाता है और वहाँ वह प्रसन्नता भी पाता है, तो व्याधि होने की वजह से या पीडा आदिक होने से अत्यन्त बुढापा होने से, शरीर के जीर्ण हो जाने से जीवन मे जिसका आदर नही रहा और जो विरक्त है उस पुरुष को मरण भी प्रिय देखा जाता है, अथवा एक प्रयोजन बताने के लिए मरण को एक कार्य बताया है। चाहे इष्ट हो चाहे अनिष्ट हो, पर पुद्गल के आलम्बन से ये सब कार्य होते हैं, यह बात बताने के लिये मरण को उपकार कहा है।

पुद्गलो का उपकार बताने के प्रकरण में पृथक् पृथक् दो सूत्र बनाने का रहस्य—अब यहाँ एक शका हो रही है कि यहाँ दो सूत्र कहे गये पुदगल के उपकार मे। पहला सूत्र था कि शरीरवाङ्मन प्राणापाना पुद्गलानाम्। और दूसरा सूत्र है सुख दु ख जीवित मरणो प्रग्रहाश्च। तो जब ये दोनो सूत्र पुद्गल का उपकार बतला रहे हैं तो दो जगह क्यो रखे ? एक ही सूत्र मे दोनो शामिल कर लेते, कुछ लाघव भी हो जाता। इसके उत्तर मे कहते हैं कि यहाँ दो सूत्र कहने से यह परिस्थिति आती है कि पहले सूत्र में कहे गये शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास ये तो कारणभूत हैं, और इस सूत्र मे कहे गये सुख दु ख जीवन मरण ये फल हैं सो कभी कोई इनमे ऐसा क्रम न लगाने लगे

कि शरीर से तो सुख होता है, वचन से दु ख होता है, मन से जीवन होता है और श्वासोच्छ्वास स मरण होता है। उन चार को इन चार के साथ क्रम का मेल न बैठा ले, क्योकि क्रम का मेल नही बैठता है। शरीर ही सुख, दुःख, जीवन, मरण इन चारो का कारण है और श्वासोच्छ्वास भी चारो का कारण है, अच्छा बिना कष्ट के श्वांस निकले सो सुख हुआ, रुक-रुककर निकले ता दु:ख हुआ। जब तक जोवन है, जीवन है, और खतम हो गये तो मरण हो गया। तो कही कोई क्रम की कल्पना न कर बैठे इस कारण से दो सूत्र पृथक बनाये गये हैं। दूसरा कारण यह है कि इसके आगे एक सूत्र आयेगा "परस्परोपग्रहो जीवानाम्। जिसका अर्थ यह है कि जीवो का उपकार परस्पर का कार्य करना है। तो वह परस्पर का कार्य क्या है। यह सुख दु ख जीवन मरण। तो इसका सम्बन्ध अगले सूत्र से भी जुड जाये, इसके लिये इस सूत्र को अलग कहा गया है।

नित्यैकान्तवाद व क्षणिकैकान्तवाद मे सुख दु खादि की अनुपपत्ति—अब यहाँ एक बात और समझना कि पुद्गल और जीव इनको जो कोई सर्वथा नित्य बनाता है उसके यहाँ सुख दु ख जीवन मरण घटित नही हो सकते। जो सर्वथा नित्य बनता है वहाँ भी सुख दु.ख आदि नही हो सकते। जैसे कोई कहे कि जीव सदा नित्य अपरिणामी है, उसकी कुछ बदल ही नही होती, ऐसा ध्रुव है तो सुख दु ख कहाँ से आयेंगे। सुख दु ख तो बदल के ही नाम हैं और जब नित्य मे पूर्वकाल और आगे का काल मे एक ही बात रह गई और अन्य परिणाम न माना गया, कोई विकार न माना गया तो सुख दुःख नही बन सकते, और जो लोग जीव को सर्वथा अनित्य कहते हैं, एक क्षण को पैदा हुआ और दूसरे क्षण नष्ट हो गया तो उसमे भी सुख दु ख कैसे होगा ? जब कुछ बाहर ठहरे तब तो सुख दु ख की कल्पना बने। एक ही क्षण मे उत्पन्न हुआ, दूसरे मे रहा नही, तो जब अवस्थान ही न रहा तो सुख दु ख आदिक का सम्बन्ध भी नही बन सकता। पुद्गल मे भी कोई चोज अवस्थित हो इष्ट अनिष्ट पदार्थ, उनके शब्द, उनका रूप, उनका स्पर्श हमारे ग्रहण मे आये तो सुख दु ख आदि हो सकते। अब जिसके दर्शन मे पुद्गल भी एक क्षण को ठहरते तो उबका सम्बन्ध ही नही बन सकता। तो जब पुदगल भी क्षणिक है तो उनका समागम न रहेगा। जीव अगर क्षणिक है तो उसमे ये सुख दु ख आदिक के अनुभव न बनेंगे। तो सर्वथा अनित्य मानने मे उसके भी सुख दु ख आदिक नही बनते किन्तु स्याद्वाद विधि से जो जीव को और पुदगल को नित्यानित्यात्मक माने कि द्रव्यार्थिक दृष्टि से तो ध्रुव है, पर्यायार्थिक दृष्टि से विनाशीक है, वहाँ सुख दु ख आदिक का सम्बन्ध बन सकता है, क्योकि सुख दु ख आदिक अकस्मात् नही होते। कही भी किसी के किसी क्षण हो जायें सो नही है, किन्तु वे शुभ अशुभ भावनापूर्वक होते हैं। और शुभ अशुभ की जो भावना है या शुभ अशुभ रूप इष्ट अनिष्ट की भावना यह बनती जाये यह तब बने जब स्मरण से कुछ सम्बन्ध बने, और स्मरण क्षणिकवाद मे हो नही सकता। एक क्षण को हुआ, नष्ट हो गया। स्मरण तो उसी कहेगे कि पहले था, अब भी है और उसने पहले का ख्याल किया पर क्षणिकवाद मे स्मरण न बनेगा। स्मरण न बने तो शुभ अशुभ भाव की सम्भावना नही रहती और शुभ अशुभ रूप सम्भावना न रहे तो सुख दु ख आदिक नही हो सकते। तो ये सारी बाते नित्यानित्यात्मक आत्मा मे होती हैं और नित्या-नित्यात्मक पुद्गल के सम्बन्ध से होती है। यहाँ तक चार अजीव पदार्थों के अनुग्रह बताये गये – धर्म, अधर्म आकाश और पुद्गल। तो जैसे ये चार पदार्थ पर पदार्थ के कार्य करते हैं वे पर के कार्य मे निमित्त होते हैं तो क्या ऐसे ही जोवो का भी उपग्रह है कि वे पर पदार्थ का उपग्रह करें मायने अजीव

का उपकार करें ? इसके समाधान मे हम कहते हैं।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥५-२१॥

परस्परोपग्रह जीवों का उपकार—जीव का उपकार जीवो मे ही परस्पर उपग्रह करना है, वह परस्पर का कार्य किस प्रकार है ? जैसे मालिक और नौकर इनका भी परस्पर उपग्रह है। नौकर के द्वारा मालिक का उपकार होता और मालिक के द्वारा नौकर का उपकार होता। गुरू के द्वारा शिष्य का उपकार होता, शिष्यो को अध्ययन आचरण सिखलाता है और शिष्य के द्वारा गुरू का कार्य होता सेवा, विनय, व्यवहार के वचन, उनसे ही गुरू प्रसन्न होते, यह भी उपग्रह है। तो इस तरह जीवो का परस्पर उपकार चलता है। जैसे मालिक तो धन के त्याग आदिक से सेवको के उपकार मे रहता है और सेवक हित की बात कहने मे और अहित की बात का निषेध करने मे मालिक का उपकार करता है। यहाँ यह बात भी जानना कि कोई यह सोचे कि मालिक सेवक का उपकारी है सो यह एकान्त ठीक नही, सेवक मालिक का भी उपकारी है। दूसरी बात यह जानना कि वास्तविक सेवक वह है जो मालिक के हित की बात करे और अहित की बात का त्याग कराये। तो इस प्रकार मालिक और सेवक मे परस्पर उपग्रह हुआ। गुरू और शिष्य मे कैसे उपकार हुआ ? तो गुरू तो इह लोक परलोक के फल देने वाला उपदेश देता है कि ऐसे कार्य करने से इस लोक मे यह मिलता है, परलोक मे यह फल मिलता है, और उस उपदेश मे बनायी गई क्रियाओ का आचरण करवाते हैं—तुम इस तरह से व्रत पालो, आचरण करो, यह तो है गुरू का शिष्य पर उपकार और शिष्यजन गुरू के अनुकूल अपना आचरण रखने से विनय व्यवहार वचन बोलने से उनको मानसिक प्रसन्नता उत्पन्न कराते हैं। तो इस प्रकार गुरू और शिष्य ये परस्पर उपग्रह करते हैं।

प्रकरण सिद्ध होने पर भी सूत्र मे उपग्रह शब्द देने का रहस्य—अब यहाँ एक शका होती है कि कई सूत्रो से ये उपग्रह की बातें बतायी जा रही हैं कि किसके द्वारा किसका कैसा कार्य बनता है, तो यह तो प्रकरण की ही बात थी, फिर इस सूत्र मे उपग्रह शब्द क्यो कहा ? वह तो अपने आप जाहिर हो जाता। जिसका उपकरण है उसकी बात अपने आप लग जाती है फिर उपग्रह कहना तो निरर्थक रहा। इसके उत्तर मे कहते हैं कि यहाँ उपग्रह शब्द के कह देने से यह बात जाहिर होती है कि इससे पहले सूत्र मे जो चार बातें बतायी थी उस सुख, दु ख, जीवन, मरण रूप से उपग्रह होता है जीवो का परस्पर मे, यह बात समझाने के लिये यहाँ उपग्रह शब्द का ग्रहण किया है। अथवा यहाँ एक बात यह भी समझना कि जीवो का परस्पर उपग्रह केवल दो के बीच भी कहा जा सकता है। लेकिन यहाँ केवल दो जीवो का ही परस्पर कार्य न लेना, जैसे स्त्री पुरुष रमण क्रिया मे एक साथ एक के द्वारा दूसरे को सुखी देखते इस तरह की बात नही, किन्तु एक जीव के द्वारा एक, दो या बहुतो के भी सुख दु:ख आदिक हो जायें। एक ही जीव के द्वारा दो, चार अनेक का जीवन बने, अनेक का मरण बने तो ऐसी अनेकता बताने के लिये यहाँ उपग्रह शब्द दिया है, जैसे कोई जीव अपना सुख कर रहा है और दूसरे के एक का सुख कर रहा, कभी दो का कर रहा, कोई बहुतो का कर रहा, ऐसे ही दु.ख, जीवन, मरण का भी समझना चाहिए। तो इस तरह से जीव जीवो के ही उपग्रह के काम आते हैं। अब यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि जो भी सत् होता है उसे उपकारी अवश्य होना चाहिए। यह बात अब तक जाहिर हुई है। तो सत् तो काल भी है, तो काल का क्या उपकार है। सो काल का उपकार अगले सूत्र मे कहते हैं।

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥५-२२॥

काल के उपकारभूत वर्तमान उपग्रह का परिचय—वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये उपग्रह काल के उपकार हैं, वर्तना शब्द वृतु धातु से युच् प्रत्यय होने पर वर्तना शब्द बना है और इसका प्रयोग कर्मसाधन और भावसाधन मे हुआ है, जिससे अर्थ यह निकला कि प्रति समय स्वसत्तानुभूति होना यह काल का उपकार है। प्रत्येक पदार्थ प्रति समय मे अपनी सत्ता की अनुभूति करते है। तो ऐसी वर्तना मानने मे एक क्षण का। परिणमन यह काल द्रव्य का उपकार है। वर्तना शब्द इस तरह भी बन सकता था कि जिसके द्वारा वर्ते सो वर्तना या जिसमे वर्ते सो वर्तना ऐसा विग्रह करके वर्तना शब्द बनाया जा सकता था मगर उस विग्रह मे वर्तना शब्द नही बनता, वर्तनी शब्द बनता है। नदी की तरह ङीप् प्रत्यय लगाकर। तो यहाँ व्युत्पत्ति के अनुसार वर्तना का अर्थ यह है कि जो सत्ता की अनुभूति है सो वर्तना अथवा जो वर्तनाशील हो उसका नाम है वर्तना। वर्तना का लक्षण क्या है सो सुनो। द्रव्य की पर्याय के प्रति अन्तर्नीत मायने भीतर मे प्रकट हुई एक समय की जो स्वसत्तानुभूति है उसे वर्तना कहते हैं मायने एक समय का परिणमन। चूंकि परिणमन कोई अलग पदार्थ नही है। वह द्रव्य की परिणति है इसलिए एक समय के परिणमन मे जो सत्ता की अनुभूति हो रही है, वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य की एकता वाली अनुभूति है, जिसका कि विधि से, शब्द से, अनुमान से, हेतु से अस्तित्व जाना जाता है क्योंकि एक समय की परिणति हम आपको प्रत्यक्ष नही हो पाती। यद्यपि सत्ता सर्व पदार्थों की एक समान है, तो सादृश्य के विचार से सत्ता को एक भी कह दिया जाये लेकिन प्रत्येक पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, जीव अजीव आदिक भेद प्रभेदो से सम्बन्ध को पाकर विशिष्ट शक्तियो के साथ अपनी अपनी सत्ता का सम्बन्ध है, उसकी अनुभूति होना वर्तना है। जैसे एक अविभागी समय मे धर्मादिक छहो द्रव्य अपनी पर्यायो से उत्पाद व्यय ध्रौव्य विकल्पो से रहते हैं तो ऐसी एक समय मे जो स्थिति होती है उसको वर्तना कहते हैं। एक समय इतना सूक्ष्म है कि आंख की पलक जल्दी गिरने में जितना समय लगता है उसमे असख्यात समय होते हैं। उनमे से एक समय की परिणति रूप सत्ता अनुभूति को वर्तना कहते हैं।

वर्तना का अनुमान द्वारा ज्ञापन—यह वर्तना अविभागी समय की स्वसत्तानुभूति है। उसका ज्ञान कैसे हो ? तो अनुमान द्वारा उसका ज्ञान होगा। जैसे चावल पकाये गये तो वे आधा घण्टा में पके तो बताओ क्या वे २९ मिनट तक कुछ भी नही पके और ३०वें मिनट मे ही एकदम से पक गए ऐसा है क्या ? प्रति मिनट पके और एक मिनट मे होते ६० सेकण्ड, तो प्रति सेकण्ड मे पके और एक सेकण्ड मे होते हैं असख्यात समय, तो प्रत्येक समय मे पके। अब एक समय का जो पकना है वह वर्तना जैसी स्थिति है, क्योंकि यदि प्रथम समय में नही पका तो द्वितीय समय मे भी नहीं पका, तो फिर कभी पकेगा ही नही। चावल पक रहे है तो प्रति समय पक रहे हैं। अब नये-नये समय बटते है तो पके के बाद पकना फिर पके के बाद पकना सो बाद मे मालूम पड़ता है कि पका, मगर जिस क्षण आग पर रखा उसी क्षण से पकना प्रारम्भ हुआ। तो ऐसे ही समस्त द्रव्यो मे जो उनकी पर्याय रची हुई है सो प्रति समय उनकी निष्पत्ति हुई है। वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा जाना जाना कठिन है, पर अनुमान द्वारा भले प्रकार समझा जाता है।

काल की वर्तना का निर्देश—वर्तना जिसका लक्षण हो उसे काल कहते हैं। अब समय आदिक जो क्रिया विशेष है, जो इन समयो में रचे गए हैं उन पर्यायों का अपने आपकी सत्ता मे

अनुभव चल रहा है और उनकी इस रचना का बहिरङ्ग कारण समय है और वह समय अन्य पदार्थों मे वर्तना रूप है, पर समय नामक पर्याय किसकी है ? काल द्रव्य की। काल द्रव्य मे प्रति समय स्वतन्त्र स्वतन्त्र समय नामक पर्याय चलती रहती है। यहाँ जो घडी घण्टा आदिक समय कहते हैं वह तो मिलाकर समुच्चय करके एक कल्पना किया हुआ सम्बन्ध वाला समय है। वास्तविक समय एक है और वह काल द्रव्य की पर्याय है। तो वर्तना काल द्रव्य मे भी हुई और अन्य समस्त द्रव्यो मे भी हुई, मगर परिणाम क्रिया आदिक काल द्रव्य मे नही होते, यह अन्य द्रव्यो मे होता है।

सूर्य गति, आकाश आदि मे वर्तना की निमित्त कारणता का प्रतिषेध—यहाँ कोई यह शका कर सकता है कि काल द्रव्य से निकला ऐसा कुछ दिखता नही है, पर यह बात कुछ सामने दिख रही है कि सूर्य की गति से समय निकला। सूर्य जैसे चलता है उसका निमित्त पाकर पदार्थों मे वर्तना होती है। एक समय के परिणमन को वर्तना कहते हैं। सो काल द्रव्य मानने की जरूरत नही, सूर्य की गति से समय बना और पदार्थों का परिवर्तन समय गुजरने से हुआ। यह शका यहाँ यो ठीक नही है कि सूर्य की गति से हमने समय तो जाना, पर सूर्य मे जो खुद वर्तना हो रही है, खुद परिणमन हो रहा है उसका कौन सा निमित्त है ? तो वह निमित्त है काल द्रव्य अर्थात काल द्रव्य की समय समय की परिणति। कोई शका कर सकता है कि सूर्य की गति वर्तना मे, पदार्थ के परिणमन मे कारण न मानो तो आकाश प्रदेश को कारण मान लो। आकाश मे पदार्थ है और अपनी योग्यता से परिणमता है तो सब पदार्थों के परिणमने का निमित्त कारण आकाश के प्रदेश हुये। काल नामक कोई हेतु न मानना चाहिये। यह शका भी यो ठीक नही है कि काल द्रव्य तो इन सब पदार्थों की वर्तना के प्रति आधारभूत है। निमित्त कारण तो काल द्रव्य है। जैसे बटलोही मे चावल पकाया तो चावल पकने का कारण बटलोही नही। बटलोही तो उसका आधार है, पर चावल पकने का कारण तो अग्नि का स योग है। यद्यपि बटलोही आदिक न होते तो पकना न बनता मगर वे आधारभूत है। निमित्तभूत नही हैं। तो आकाश सभी पदार्थों की और सूर्य की गति आदिक की वर्तना मे आधार है, पर आकाश पदार्थों की वर्तना नही बनाता, परिणति नही बनाता। परिणति होना तो काल द्रव्य का उपकार है। कोई यह भी शका कर सकता है कि सर्व पदार्थों मे अपनी अपनी सत्ता बनी हुई है और उस सत्ता के ही कारण वर्तना होती रहती है यानी प्रति समय वर्तना चलती रहती है। इस काल द्रव्य के मानने की जरूरत नही है। यह शका यो ठीक नही कि सत्ता का भी अनुग्रह काल द्रव्य करता है क्योकि सत्ता मायने क्या ? काल के द्वारा सत्ता की वर्तना बनने मे कोई अन्य ही निमित्तभूत होना चाहिये। वह है काल द्रव्य। अनेक जगह ऐसा बोला जाता है कि काल द्रव्य का वर्तना लक्षण है। सो यह यो कहा गया कि काल द्रव्य मे परिणाम आदिक नही हैं, वर्तना ही मात्र है और वह एक समय की परिणति है, सो पर्याय मुखेन काल द्रव्य का परिचय कराया गया है। जिसकी प्रति समय वर्तना परिणति हो उससे जाना जाता है काल द्रव्य। तो वर्तना एक काल द्रव्य के निमित्त का उपग्रह है।

कालद्रव्य के उपकारभूत परिणाम उपग्रह का परिचय—अब वर्तना के बाद आया है परिणाम। परिणाम का अर्थ है कि द्रव्य मे अपनी-अपनी जाति का उल्लघन न करके कोई उपयोग आ जाना, कोई बदल आ जाना इसको परिणाम कहते हैं यह परिणाम एक समय मे नही होता। एक समय की तो वर्तना है। अब यह था, अब यह बदल गया। ऐसा जो एक व्यक्त परिणमन है वह तो अनेक समय मे होगा। ऐसे विकार परिणाम कही तो प्रायोगिक होते हैं। किसी दूसरे की प्रेरणा से

होते है और कही पदार्थ मे स्वभाव से ही होते हैं। तो परिणाम हुआ, बदल हुई। जीव अजीव द्रव्यो मे बदल होती। चेतन द्रव्य हो या अचेतन द्रव्य हो, उसमें जब हम द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा से देखते हैं तो यह विदित होता है कि द्रव्यो की जाति को नही छोडता। और, पर्यायार्थिकनय से देखते हैं तो वहाँ यह जाहिर होता कि किसी पर्यायरूप से तो उत्पन्न हुआ है सो पूर्व पर्याय की अनुभूति पूर्वक विकार हुआ है। कही किसी पदार्थ की प्रेरणा से हुआ है तो कही पर की प्रेरणा बिना हुआ है। प्रत्येक पदार्थ मे परिणमन होता है, पर जो व्यक्त होवे, समझ मे आये परिणमन तो वह परिणमन विषम होगा। एक सा परिणमन अपनी बुद्धि मे न आयगा। जैसे प्रभु मे केवलज्ञान केवलज्ञानरूप परिणमन प्रति समय होता रहता है तो वह विषम नही होता। ससारी जीवो मे रागद्वेष क्रोधादिक भाव परिणमन होते हैं। ये विषम होते हैं। परिणमन दो प्रकार के होते हैं। कोई तो अनादि परिणमन और कोई सादि परिणमन। यद्यपि परिणमन कोई भी अनादि नही होता मगर ऐसा ही परिणमन चलता रहे ऐसी परम्परा देखकर अनादि परिणमन कहा जाता है जैसे लोक का आकार, मेरु का आकार, अकृत्रिम चैत्यालय अकृत्रिम प्रतिबिम्बये अनादि परिणमनहैं और आदि परिणमनदो प्रकार के होते हैं—(१) कोई प्रयोगिक और कोई (२) वैश्रसिक। जैसे चेतन द्रव्यो मे औपशमिक आदिक भाव हुए वे कर्म के उपशम आदिक के निमित्त से हुए। सो हुए तो नैमित्तिक, मगर वे परिश्रम से नही हुए, प्रयत्न से नही हुए इसलिए वैश्रसिक कहलाते हैं। और अध्ययन करना, ध्यान करना, भावना करना ये पुरुष के प्रयोग से होते है इसलिए ये प्रायोगिक हैं, अर्थात अन्य गुरु आदिक के उपदेशो से प्रेरित होकर जीव करता है सो वह प्रायोगिक हैं। अचेतन मे देखिये – घडा, सकोरा आदिक परिणमन तो प्रयोगिक हैं। कुम्हार आदिक पुरुष के प्रयोग के निमित्त से बनते हैं और आकाश मे कभी इन्द्र धनुष हो गया आदिक जो नाना परिणमन हैं वे वैश्रसिक हैं याने किसी पुरुष ने वहाँ कोई प्रयत्न नही किया।

शकाकार द्वारा परिणाम उपग्रह का प्रतिषेध—अब यहाँ एक शकाकार शका करता है कि परिणाम तो हो ही नही सकता। किसी का भीपरिणमन नही है। कैसे जाना कि यह बतलाओ कि परिणमनजो आप मान रहे हो, बीज का अकुर हो गया, यही तो परिणमनहै, सो बतलाओ अकुर मे बीज है या नही। जो परिणमन हुआ है, बीज बोया, अंकुर हुआ तो अकुर मे बीज है कि नही ? यदि कहो कि अकुर मे बीज है तो बीज है तो अंकुर का अभाव हो गया। दो मे कोई एक ही तो रहना चाहिये। यदि कहो कि अकुर मे बीज नही है तो बीज अकुररूप से परिणमा नही, यह अर्थ हुआ उसका। एक मोटे रूप मे समझिये। जैसे कहा कि दूध खट्टा हो गया तो खट्टा होने मे दूध है कि नही ? है, तब कहते है कि दूध खट्टे रूप मे परिणम गया। तो ऐसे ही बीज तो है नही, फिर कैसे कहा कि बीज अकुर रूप परिणम गया ? क्योकि जब अकुर है तो उसमे बीज का स्वभाव न रहा इसलिए परिणमन कोई चीज नही सिद्ध होती। जो परिणमन बना याने अगलीपरिणति बनी उस परिणति मे यह पूछा जाय कि पहली परिणति मौजूद है या नही। अगर मौजूद है तो परिणमन न हुआ, पूर्वपरिणाम वही परिणाम वहाँ मौजूद है. अगर कहो कि मौजूद नही हैं तो कैसे कहा जाय कि अमुक इस रूपपरिणम गया।

परिणाम की सिद्धि करते हुए उक्त शका का समाधान—उक्त शंका के उत्तर मे कहते हैं कि यह शका युक्त यो नही है कि हम अकुर मे बीज को न तो सत् मानते हैं और न असत् मानते हैं किन्तु एक तीसरी ही बात है। यदि सर्वथा सत् हो तो सत् वाला दोष आवे, सर्वथा असत् हो तो असत्

वाला दोष आवे। लेकिन किसी एकात पक्ष को नही छू रही है वह घटना इसलिये सत् के एकांत का भी दोष नही, असत् के एकात का भी दोष नही। वह तो एक तीसरी बात है और दोनो ही एकात पक्ष भी नही। तो यहाँ शकाकार कहता कि अगर न सत् है न असत् है याने सत् भी है और असत् भी है तो इसमे तो दोनो दोष आ गये। कोई अगर केवल सत् ही माने परिणाम मे पूर्व की बात का तो एक ही दोष आता और असत् ही माने तो एक दोष आता, मगर जो दोनो रूप मान रहा, सत् असत् दोनो मान रहा उसके यहाँ तो दोनो ही दोष लग जायेंगे। उत्तर मे कहते हैं कि नही, दोनो भी नही मान रहे, किंतु वे जात्यन्तर हैं। जैसे नरसिंह का रूप। शायद प्रह्लाद के समय की एक घटना मे आया है कि देवता ने नरसिंह का रूप धारण किया था। तो वह नरसिंह क्या था ? याने न तो नर (मनुष्य) ही और न सिंह (पशु) ही। कोई तीसरी ही जाति का कुछ था। अब समझिये—जो धान्य का बीज है सो उस द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखें तो अकूर मे बीज है क्योकि वही पुद्गल तो अब अकूर रूप परिणमा है। बीज मे जो पुद्गल था वह ही पुद्गल अकुर रूप परिणमकर कुछ नये पुद्गल को ग्रहण कर अकुर बना है। तो द्रव्यार्थिक दृष्टि से अकुर मे बीज है। क्योकि यदि उस अन्वय का उच्छेद कर दिया जाय याने जो पिण्ड बीज है, द्रव्य है, स्कध है सो वह यदि बिल्कुल ही न रहा, किसी भी रूप से उसकी धारा ही मिट गई तो न वह अकुर बनेगा न उसमे कोई फल भी लग सकेंगे। तो चूंकि उस धान्य के बीज से अकुर बनकर धान्य के ही फल लगते है तो उस अन्वय परम्परा से देखें तो अकुर मे बीज है, पर पर्यायिक दृष्टि से देखे तो बीज तो बीज ही रूप होता है। वह अकुर मे नही है, क्योकि बीज बीज ही है। बीज के परिणमन नही होते। तो पर्यायार्थिक दृष्टि से अकुर मे बीज नही है और इस तरह परिणमन सिद्ध हुआ याने द्रव्य वही रहा पर उसकी शकल बदल गई इसलिये उस द्रव्य का परिणाम कहलायगा, और यह परिणाम कालद्रव्य का उपकार है, जैसे कोई चावल आधा घन्टे तक पके तो आधे घन्टे का समय गुजरे बिना पक नही सकते थे। तो यही तो काल का उपकार है। सो समय बीत रहा और परिणमन चल रहे हैं।

परिणाम प्रतिषेध का प्रतिषेध सिद्ध करते हुए शका का समाधान—यहाँ सत्त्व और असत्त्व ऐसे दो विकल्प करके परिणाम का निषेध कर रहा था शकाकार कि अकुर मे बीज है तो परिणमन क्या। अकुर मे बीज नही तो परिणमन किसका ? सो परिणमन नही है। ऐसे सत्व असत्व के विकल्प से परिणाम का निषेध करने वाला शकाकार पूछने योग्य है कि तुम जो निषध कर रहे हो परिणमन का सो सत् परिणाम का निषध कर रहे हो या असत् परिणाम का निषध कर रहे ? यदि सत् मौजूद परिणमन का निषेध करते हो तो वह मौजूद है। निषेध कैसे कर सकते ? और अगर असत् परिणमन का निषध कर रहे तो जो है ही नही तो निषेध किसका करते ? यदि सत् परिणाम का निषेध किया जा सकता होता तो परिणाम प्रतिषेध भी प्रतिषध हो जाता, क्योकि सत् का तो निषेध करते तो शकाकार का परिणाम प्रतिषेध भी सत् है तो वह भी खतम हो गया इस लिए परिणाम का निषेध नही किया जा सकता। यदि असत् परिणाम का निषेध करते तो खरविषाण की तरह जब वह है ही नही तो प्रतिषध हो ही नही सकता।

कालद्रव्य के उपकारभूत परिणाम उपग्रह का साधक उपसहार—वास्तविकता यह है कि जिसके परिणमन नही है वह वक्तापने रूप से भी प्रकट नही होता। उसके वाच्य रूप से भी परिणमन न होगा। उस शब्द का वाचक रूप से भी परिणमन न होगा, तो आप कुछ बोल ही नही सकते।

वक्ता, वाच्य और वचन इन सबका अभाव होने का प्रतिषेध भी नही किया जा सकता और परिणाम तो पदार्थो मे स्पष्ट नजर आ रहा है कि यह बदलता गया है, तो ऐसा यह परिणाम रूप उपग्रह काल द्रव्य का उपकार है मायने कालद्रव्य का निमित्त पाकर हुआ है।

बीज और अकुर मे भेद व अभेद का प्रश्न करके शकाकार द्वारा परिणाम का अभाव सिद्ध करने का प्रयास व उसका समाधान—वस्तु के परिणाम के विषय मे यहाँ चर्चा चल रही है। शकाकार कहता है कि वस्तु का परिणमन होता ही नही है। परिणाम (परिणमन) कोई चीज नही है, क्योकि अगर परिणाम कोई चीज हो तो बतलाओ जैसे कहते कि बीज से अकुर का परिणमन हुआ तो वह अंकुर परिणमन बीज से भिन्न है या अभिन्न ? यदि कहो कि बीज से अकुर भिन्न है तो बीज का परिणाम तो न कहलाया इसका। क्योकि बीज से अकुर भिन्न ही है जैसे भीट और किवाड ये भिन्न है तो भीट का परिणाम किवाड तो नही कहलाया। दोनो ही स्वतन्त्र हैं। तो ऐसे ही यदि अकुर बीज से भिन्न है तो बस बीज का परिमाण न कहलायगा। यदि कहो कि अकुर बीज से अभिन्न है तो मायने बीज ही कहलाया, फिर अकुर ही कुछ न रहा, क्योकि अकुर को बीज से अनन्य बतलाया, याने अन्य नही है, इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि यह शका युक्त नही है कारण कि अकुर से बीज न तो भिन्न है, न अभिन्न है, किंतु एक तीसरी ही बात है। क्या है वह निर्णय कि कथञ्चित अकुर बीज से भिन्न है, कथञ्चित अकुर बीज से अभिन्न है। जैसे अकुर उत्पन्न होने से पहले बीज मे अकूर पर्याय न थी। पीछे हुई है तो इस पर्यायार्थिक दृष्टि से अकुर बीज से अन्य हो गया। धान्य के बीज की जाति से विशिष्ट ही है वह अकुर, उससे कही अन्य नहीं है अकुर, तो धान्य के बीज की जाति स्वरूप द्रव्यार्थिक दृष्टि से अकुर बीज से अनन्य है। और ऐसा विकल्प करके तो कोई कुछ भी सिद्ध नही कर सकता। कोई पूछ डाले कि बताओ प्राण जीव से अन्य है या अनन्य है? अब यदि प्राण का जीव से अन्य बताये, याने भिन्न हैं, अलग है तो प्राण का नाश कर डाले कोई जीव का तो कुछ नही बिगडता क्योकि जीव जुदा है, प्राण जुदे हैं और यदि कहो कि प्राण जीव से अनन्य हैं, एकमेक हैं तो भी मार डाले कोई क्योकि जीव तो अमर है, प्राण भी अमर रहेगे। तो उसके बाद यह ही बनेगा कि प्राण जीव से कथञ्चित अनन्य हैं, कथञ्चित अन्य हैं और उसकी दृष्टि है द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। तो ऐसे ही बीज से अकुर पर्यायदृष्टि से अन्य है और द्रव्यार्थिक दृष्टि से अनन्य है।

बीज मे अकुर की व्यवस्थितता व अव्यवस्थितता का प्रश्न करके शकाकार द्वारा परिणाम का अभाव सिद्ध करने का प्रयास व उसका समाधान—अब शकाकार कहता है कि अच्छा यह बताओ कि बीज अकुर रूप से परिणम गया तो अकुरत्व रूप से परिणमे हुये अकूर मे बीज व्यवस्थित है या नही ? यदि अकुरत्वरूप से परिणमे हुए अकुर मे बीज व्यवस्थित है तो जब बीज वहाँ व्यवस्थित है, पक्का है, सही है। तो बीज का और अकुर का विरोध है, वह पूर्वापर चीज है, तो वहा अकुर नहीं रह सकता। यदि कहो कि अकुरपने से परिणमे हुए अंकुर मे बीज अव्यवस्थित है, नही है, कोई व्यवस्था नही है तो इसके मायने यह हुआ कि बीज अंकुर रूप से परिणमा नहीं, तो दोनो ही बातो मे जब दोष आ रहे है तो परिणाम, परिणमन, पर्याय कोई चीज न रही। इस शंका के उत्तर मे कहते हैं कि यह शका भी सगत नही है, क्योकि यहाँ भी अनेकात से निर्णय है। जैसे एक मनुष्य का उदाहरण लीजिये। जब मनुष्य आयु कर्म का और नामकर्म का उदय है और अगोपाग

पर्याय को वह प्राप्त है तो उस समय एक अगुली जो उपाग है उस रूप आत्मा परिणमा ना ? अचेतन की दृष्टि से देखें तो पुद्गल परिणमे, पर प्रदेश रचना की दृष्टि से देखें तो आत्मा के प्रदेश सर्वअगोपाग मे है, अब उस प्रदेश की दृष्टि से देखें तो अगुली जीव है। इससे क्या समझा कि वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से यह अगुली आत्मा सकोच और विस्तार पर्याय को पाता हुआ जैसे बचपन मे अगुली छोटी थी, अब बढती जा रही तो अगुली सकोच विस्तार को प्राप्त होता हुआ वह अगुली जीव है उस समय वह अनादि पारिणमिक चैतन्यद्रव्य की दृष्टि से सत् है और पुद्गल पर्याय की दृष्टि से देखे तो पौद्गलिक जो खाल है उस रूप से अवस्थित जो अगुली उपाग है उस पर्याय की दृष्टि से भी सत् है और इससे ही सिद्ध है कि वह अनन्य है, अलग नहीं है। अब दूसरे पक्ष की बात देखिये —कि किस ढग से यह अगुली आत्मा से अलग है ? जो इसमे सकोच विस्तार की पर्याय की दृष्टि से जचा उस दृष्टि से यह असत् है इससे सिद्ध हुआ कि कथञ्चित भिन्न है। इसी प्रकार बीज और अकुर मे देखिये एकेन्द्रिय वनस्पति नाम कर्म का उदय है और उस ही प्रकार के तिर्यञ्च आयु का उदय है उससे बीज पर्याय से जो परिणाम हुआ है वह जीव ही तो है। ककड तो नही । सो वह बीज परिणाम से याने उस अकुर से अभिन्न है और वहाँ देखा जा रहा है अनादि पारिणामिक चैतन्य द्रव्य और इस प्रकार पौद्गलिक दृष्टि से भी देखें तो पौद्गलिक जो धान्य का बीज है सो उसमे जो एक इन्द्रिय का रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पर्याय की दृष्टि से देखें तो वहाँ भी दोनो अभिन्न हैं। वही बात बीज मे है वही अकुर मे, इसलिए तो अनन्य हो गया और जब केवल पर्यायदृष्टि से देखे तो धान्य का जो बीज है वह उसी पर्यायरूप है और अकुर है वह अन्य पर्यायरूप है इस कारण से वह भिन्न हो गया। इस कारण यह दोष नही दे सकते कि बीज से अकुर भिन्न है तो परिणाम नही, अभिन्न है तो परिणाम नही । अनेकात से कथञ्चित व्यवस्थित है और कथञ्चित अव्यवस्थित है।

अकुर मे वृद्धि होने से उसे बीज का परिणाम कहने की अशक्यता की एक शका—अब शकाकार कहता है कि परिणाम कोई चीज नही है। वस्तु की बदल पर्याय कोई चीज नही है, क्योंकि अगर परिणाम है बीज का वह, तो उसकी वृद्धि न होना चाहिये। जैसे कि दूध का परिणाम दही है तो दही कही चौगुना अठगुना बढ तो नही जाता। तो ऐसे ही बीज अगर अकुर रूप से परिणमे तो अकुर बीज मात्र ही रहेगा । उसी वृद्धि न होना चाहिए। अनेक दृष्टात हैं ऐसे चीज परिणमती है तो उसका रूप रग बदलता है। वस्तु उतना ही रहता है। यदि कहा जाय कि पृथ्वी पानी के, रस के सम्बन्ध से वह अकुर बढ जाता है तो अगर अकुर बढ गया तो वह बीज का परिणमन तो न रहा। बीज का परिणमन तो वह कहलाया कि जो बीज बराबर हो और ढग दूसरा हो जाय। जैसे बीज सड गया तो वह है बीज का परिणमन, पर अकुर बन जाय तो वह तो बीज का परिणमन नही है। इसलिए परिणाम कोई चीज नही । यदि कोई कहे कि जब खाद और पृथ्वी और जल रस आदिक अन्य द्रव्य का सचय हो गया तो उस सचय होने से बढना ही चाहिये। तो यह शका भी युक्त नही है, क्योंकि अगर अन्य द्रव्य के सयोग होने पर बढा तो उन द्रव्यो का सयोग कहलाया, किंतु बीज का परिणाम तो न कहलाया। जो बढे, जो चीज मिले वह उनका सचय कहलाया। यदि कहो कि बाहरी पदार्थों मे सयोग से बढ-बढकर वे सब बढ जाते हैं तो यह हो तो उल्टी बात है । अगर अने द्रव्यो का सयोग हो जाय तो वह चीज तो मिट जायगी। बढ़ने की बात

तो दूर रही। जैसे पेड मे अगर लाख का सयोग हो गया तो पेड सूख जायगा। ठूठ रह जायगा, दुर्बल रह जायगा। तो अन्य द्रव्यो के संयोग से बढना नही होता बल्कि घटना होती है। अब अकुर बीज परिणाम न रहा, पर्याय न रहा।

अनन्तर क्षण की परिणति को पूर्व की बदल सिद्ध करते हुए उक्त शंका का समाधान—अब उक्त शंका के उत्तर मे कहते हैं कि परिणाम है और उसमे जो वृद्धि है वह अन्य कारण से है। इतना तो शकाकार ने मान लिया यह कह कर कि अंकुर बीज मात्र होना चाहिये। तो परिणाम तो मान लिया दृष्टांत देकर भी मान लिया कि जैसे दूध का परिणाम दही हो, तो बढा तो नही तो परिणाम तो मान लिया, सो परिणाम का निषेध तो न कर सके। रही वृद्धि के अभाव के प्रसग की बात सो उसकी वृद्धि अन्य कारणों से है। जैसे मनुष्य को ही देख लो। जो छोटा बालक उत्पन्न हुआ तो मनुष्यायु कर्म के उदय से और मनुष्य गति आदिक नाम कर्म के उदय से बालक उत्पन्न हुआ तो बालक कितना सा छोटा, अब उसको बाह्य कारण मिलते हैं दुग्धपान आदिक अच्छे मक्खन आदिक के आहार और भीतर मे वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम चल रहा जिससे जठराग्नि उसकी युक्त चल रही है और निर्माण नामक कर्म का उदय साथ है ही तो उससे वह बच्चा बढता जाता है। बडा हो जाता है। तो परिणाम बना कि नही बना। तो यही बात बीज और अकुर मे है। वनस्पति नामक आयु कर्म का या नाम कर्म का उदय है तो वह बीज रूप बना। वह जीव अकुर हो गया आयु कर्म यद्यपि चार कहा पर चार ही न जाने। जैसे तिर्यञ्चायु कहा तो मूल तो हो गई तिर्यञ्चायु, पर जितनी तरह के तिर्यञ्च हैं उतनी तरह के आयु कर्म हैं। ऐसी ही नाम कर्म की बात है, तो वह एक जीव बीज बन गया बीज के आधार से जीव अकुर पर्याय मे उस भव वाला बन गया। अब अकुर बना तो उस समय जो बीज का परिणाम हुआ वह तो छोटी शकल मे हुआ मगर उसे पानी, हवा, पृथ्वी, रस, खाद आदिक मिलने मे और भीतर मे उसके जीव के वीर्यान्तराय का क्षयोपशम होने से और अपने अनुरूप निर्माण नाम कर्म का उदय होने से अब वह अकुर बढ जाता है। तो बढने का तो यह कारण है, पर अकुर परिणाम है बीज का, यह तो मान ही लिया। यहां काल द्रव्य के उपकार मे वर्तना का वर्णन किया गया था। अब परिणाम का वर्णन चल रहा है। तो शकाकार यह सिद्ध कर रहा कि परिणाम तो कुछ है ही नही, उसी के उत्तर मे यह बात कही जा रही है कि शकाकार का जो यह कहना है दूध का परिणाम दही हुआ तो वह कही वह दाल की तरह तो नही बढ जाता। परिणाम हो गया तो बीज का परिणाम अकुर हुआ है तो उसे भी बढना न चाहिए। तो उत्तर यह दिया कि परिणाम तो उस समय की बात है जब बीज मे अकुर रूप बात हुई। अब उसकी बढवारी का कारण अन्य चीज है।

सर्वथा क्षणिकैकान्तवाद मे बदल की असम्भवता—प्रकृत बात यह है कि जो शंकाकार स्याद्वादियो पर दोष मढ रहे थे कि यदि अकुर बीज का परिणाम है तो उसे बढना न चाहिये, और चूंकि वह बढता है इसलिये वह परिणाम नही है। तो यह दोष तो एकातवादियो को लगेगा, स्याद्वादियो को नही लगता। कैसे कि अगर नित्यता का एकान्त कर लिया तो वहां तो परिणमन होता ही नही क्योंकि कुछ विकार नही हुआ। कुछ परिणमन न होना, ज्यो का त्यो कूटस्थ रहना यह ही तो नित्य एकान्त है। तो जो नित्य एकान्त मानते उनके यहां वृद्धि

नही हो सकती, और जो क्षणिक एकान्त मानते उनके यहाँ भी वृद्धि नही हो सकती। वह पदार्थ तो क्षण भर भी न रहा और जन्मा ही जन्मा और नष्ट हो गया। जब अनेक समय रहे तब तो कहा जायगा कि यह वृद्धि को प्राप्त हुआ और फिर क्षणिक एकान्त मे तो सभी चीजें क्षणिक है जो खाद डाला वह भी क्षणिक, जो पानी डाला वह भी क्षणिक। वह चीज ही नही रहती। जो अकुर है वह भी क्षणिक। तो उनका जब विनाश ही हो गया दूसरे समय मे तो वृद्धि कैसे कहेगे ? इससे क्षणिक वाद मे या एकान्त वाद मे यह दोष आता है कि बीज का परिणाम अकुर है तो वह बढ नही सकता, पर स्याद्वाद मे यह दोष सम्भव नही है।

सर्वथा क्षणिक वाद मे प्रबन्ध सिद्धान्त से भी बदल की सिद्धि की अशक्यता—यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि यद्यपि पदार्थ सब क्षणिक हैं मगर उनकी वृद्धि हो सकती है, वह कैसे ? क्षणिकवाद मे तीन तरह के प्रबन्ध माने हैं। (१) सभाग रूप, (२) क्रमापेक्ष और, (३) अनियत। सभाग रूप का अर्थ है सदृशता वाला। जैसे दीपक से दीपक पैदा होते जा रहे तो वे सदृश हैं, वे बढते जा रहे कह सकते हैं या जैसे किसी स्रोत से स्रोत चला आ रहा है तो वह सदृश है ना, बाती भी समान, दीपक की ज्योति भी समान, तो जो समान रूप प्रबन्ध है, बढ रहा है, जैसे बिजली जली और एक घण्टे तक जल रही है तो जो एक घण्टे तक बढी वह सभाग रूप प्रबन्ध है। क्रमापेक्ष प्रबन्ध वह कहलाता जैसे कोई मनुष्य बच्चा है, फिर कुमार बना, फिर जवान बना तो यह क्रमापेक्ष प्रबन्ध है। तो बीज और अकुर का भी क्रमापेक्ष प्रबन्ध है। बीज था अकुर हुआ, अब जवान हुआ अर्थात पेड बन गया तो यह उसमे क्रमापेक्ष प्रबन्ध है। तीसरा प्रबन्ध होता है अनियत। जैसे मेघ मे इन्द्र धनुष की रचना हुई, अनेक वर्ण उसमे बधे हुये हैं तो यह अनियत प्रबन्ध है। तो इन प्रबन्धो की वजह से वृद्धि होती रहती है। तो अकुर मे जो वृद्धि जच रही है वह क्रमापेक्ष प्रबन्ध से जच रही है। स्याद्वादी यहाँ उत्तर देता है कि क्षणिकवादियो का यह कहना शोभा नही देता क्योकि ये बतायें कि जिनका प्रबन्ध बना रहे, तीन प्रकार का बनावें या कितने ही प्रकार का प्रबन्ध वे सत् पदार्थो मे बना रहे कि असत् पदार्थों मे बना रहे ? या सत् असत् दोनो प्रकार के पदार्थों मे बना रहे ? असत् मे तो प्रबन्ध बनता नही। जैसे कि बध्या का पुत्र, अब उसमे क्या प्रबन्ध बनता ? और एक सत् हो एक असत् हो उसमे भी प्रबन्ध नही बनता। जैसे गधा और गधे का सीग। गधा तो है पर खरविषाण नही है तो उन दोनो मे भी क्या प्रबन्ध बनेगा ? और अगर कहो कि सत् मे प्रबन्ध बनता है तो एक क्षण को अगर सत् रहे तो उसमे क्या प्रबन्ध, कौन बढा, क्या हुआ ? और अगर अस्तित्व रहता है तो क्षणिक न रहा, इस कारण एकान्तवाद मे तो यह दोष आता है कि परिणाम मे वृद्धि न होना चाहिये, किन्तु स्याद्वाद मे यह दोष नही है।

सर्वथा नित्यैकान्तवाद मे भी परिणाम की सिद्धि की अशक्यता—अब एक एकान्तवादी यह प्रश्न रख रहा या अपना सिद्धान्त रख रहा कि ध्रौव्य एकान्त मे तो परिणाम बन सकता है। जैसे कि अभी क्षणिकवादियो मे किसी भी तरह वृद्धि सिद्ध करना चाहा था तीन तरह के प्रबन्ध बताकर, तो अब दूसरा नित्य एकान्तवादी भी अपनी बात रख रहा है कि पदार्थ तो नित्य व्यवस्थित है। अब द्रव्य मे अन्य धर्म दूर हो गये और अन्य धर्म आ गये इसी के मायने परिणाम है। वस्तु तो ध्रुव है, कूटस्थ है, नित्य है, उस वस्तु मे अन्य धर्म के आने का नाम परिणाम है। एक धर्म हट गया दूसरा धर्म आ

गया, उसी को परिणाम कहते हैं। वस्तु वही है, वस्तु अवस्थित है, ध्रौव्य है। जो है सो है। जैसे दूध से दही बना तो अब उस रस मे, पुद्गल मे दूध का धर्म तो दूर हो गया और दही का धर्म आ गया तो परिणाम कहलाने लगा। नित्य एकान्त मे परिणाम बन गया। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि नित्य एकान्त मे परिणाम नही बनता। जिसका परिणाम होवे फिर वह पदार्थ सर्वथा अवस्थित तो न रहा। जिसमे बदल आ रही है वह वस्तु सर्वथा ध्रुव न रही, और अगर कोई द्रव्य है उनसे अलग, धर्म से अलग, जिन धर्मों के दूर होने से और जिस धर्म के आने से परिणाम बताते हो उन धर्मों से अलग द्रव्य रहा तो गुणो के समुदाय से अलग कहलाया फिर वह द्रव्य, फिर इसको शकाकार ने यह बताया था कि गुण के समुदाय को द्रव्य कहते है, फिर उनका यह कथन गलत हो जाता, और फिर यह बतलाओ कि उस द्रव्य मे से जो धर्म दूर हुआ और जो धर्म आ गया और जो बना रहा, ये जो तीन बातें हैं ये गुण समुदाय रूप हैं या उससे भिन्न हैं। यदि कहो कि गुण समुदाय रूप हैं तो वही पहिले था वही पीछे रहा ज्यो का त्यो ही रहा फिर कौन किसका परिणाम कहलायेगा, न्याय तो यह कहता है कि निवृत्त तो अन्य होना चाहिये, अवस्थित अन्य होना चाहिये और उत्पन्न कुछ अन्य होना चाहिये। यदि कहा जाये कि निवृत्त होने वाला व उत्पन्न होने वाला तत्व गुण समुदाय से भिन्न कुछ अन्य हैं तो "गुण समुदाय मात्र द्रव्य है" इस प्रतिज्ञा की हानि हो जायेगी। बात यह है किसी एकान्त मे परिणाम नही बन सकता है, ध्रौव्यैकान्त मे कोई धर्म निवृत्त होवे कोई उत्पन्न होवे यह कैसे बन सकता है। अच्छा गुण समुदाय को द्रव्य कहने वाले एकान्तवादी यह बताये कि समुदाय गुणो से अन्य है या अनन्य है ? यदि अनन्य हैं तो गुण ही है ऐसी समुदाय कल्पना न बनेगी गुणो के अभाव से गुणो का भी अभाव हो जायेगा। यदि गुण समुदाय से अन्य है तो गुण समुदाय द्रव्य है यह सगत न रहा फिर परिणाम कैसे सिद्ध होगा।

किसी एकान्त हठ मे परिणाम की सिद्धि न होकर स्याद्वाद सिद्धान्त मे परिणाम की सिद्धि की सभवता—किसी भी एकान्तवाद मे परिणाम नही बन सकता, क्योकि परिणमन नाम है पूर्व परिणमन की निवृत्ति हो, कोई नये परिणमन का आविर्भाव हो तो परिणमन कहलाता। यह न रहा अब यह हो गया, ऐसा जहाँ ज्ञात हो उसे परिणमन कहते हैं। तो जो नित्य एकान्त वाले हैं उनमे तो परिणमन माना ही नही और जो क्षणिक एकान्त वाले हैं उनका जब पदार्थ दूसरे क्षण ठहरता ही नही तो परिणमन कैसे कहलायेगा। दो क्षण ठहरे हुये बिना परिणमन नही बन सकता, इसी प्रकार अन्य भी एकान्त जैसे ब्रह्माद्वैत, ज्ञानाद्वैत आदिक जो अद्वैत एकान्त हैं उनमे परिणमन नही बन सकता, वे केवल एक परमब्रह्म को ही मानते हैं और वह अद्वैत हैं मायने वही मात्र एक है और परिणमन हो जायगा तो दो दिखने लगेंगे। यह कुछ और तरह था, अब यह कुछ और तरह है। तो अद्वैत एकान्त मे भी परिणमन नही बन सकता और कोई प्रत्येक पर्याय को भिन्न भिन्न ही द्रव्य मान ले, नाना मान ले तो भी परिणमन नही बन सकता। परिणमन तो जो सदा रहता है और उसमे समय समय पर अवस्थायें नई बनती हैं उसे परिणाम कहते हैं। सो द्रव्यार्थिकनय से तो अन्य भाव बनता नही मायने वही एक वस्तु है और पर्यायार्थिकनय से भी अन्य अन्य जीव दिख रहे हैं सो जो वस्तु नित्य हो और पर्याय दृष्टि से अनित्य हो वहाँ परिणमन बनता है। सो यह परिणाम काल द्रव्य का उपकार है। काल द्रव्य का प्रतिक्षण मे एक एक समय रूप वर्तना होती रहती है और उनके समुदाय रूप व्यवहार काल गुजरता है तो परिणमन नजर आता है। एक समय की वर्तना मे परि-

णमन नही कहा जा सकता, वह तो उस समय जो है सो ही है। परिणमन तो तब कहा जायेगा जब कि पूर्व समय मे कुछ और अगले समय मे कुछ और हुआ। तो परिणमन अनेक समयो मे ही बनते हैं।

काल द्रव्य का उपकार क्रिया उपग्रह—अब परिणाम के बाद क्रिया के विषय मे बात करते हैं। काल द्रव्य का उपकार क्रिया उपग्रह है। क्रिया मायने क्या है कि अन्तरग और बाह्य कारण के वश से जो परिस्पदात्मक स्थिति होती है उसको क्रिया कहते हैं। हलन चलन यह सब क्रिया कहलाती है। क्रिया गुण तो स्वभाव से ही होता है। कोई किसी के प्रयोग से होता है। जैसे गाडी चल रही है तो यह प्रयोग से क्रिया हो रही। चाहे वहाँ गाडी का प्रयोग हो या यन्त्रो का प्रयोग हो, और मेघ आदिक जो चलते हैं उनकी क्रिया प्रयोग बिना है। भले ही उनमे हवा का निमित्त है मगर बुद्धिमान कोई प्रयोग नही कर रहा है, अतएव मेघादिक की क्रिया विश्रसा निमित्तक क्रिया है। यहाँ एक शका हो सकती है कि परिणाम मे भी परिणमन हुआ है और क्रिया मे भी परिणमन हुआ है, फिर परिणाम को और क्रिया को अलग-अलग क्यो कहा ? इसका उत्तर यह है कि यहाँ परिणाम का अर्थ तो अपरिस्पद वाली क्रिया है याने पदार्थ जहाँ है वहाँ ही ठहरा है, उसको हलन चलन की दृष्टि से नही निरखना है, किन्तु पूर्व पर्याय का त्याग किया, उत्तर पर्याय का उत्पाद हुआ, इस तरह से देखें तो परिणाम तो अपरिस्पद रूप है, किन्तु क्रिया परिस्पद रूप है। एक देश से दूसरे देश मे पहुँचाने का नाम क्रिया है। तो ये दो प्रकार के भाव हैं जुदे-जुदे। परिस्पदात्मक और अपरिस्पदात्मक। जो परिस्पद रूप क्रिया है वह तो क्रिया है और जो अपरिस्पद्र रूप है वह परिणाम है। ऐसा परिणाम और क्रिया मे अन्तर समझना। जैसे व्यवहार काल हुये बिना परिणाम नहीं होता है ऐसे ही व्यवहार काल हुये बिना क्रिया भी नही होगी, अथवा कोई एक समय की क्रिया होती है, सिद्ध जीव एक समय मे सात राजू पहुँचा है और परमाणु मे १४ राजू तक गमन करने की भी क्रिया होती है। तो परिस्पद तो क्रिया है और वही की वही अवस्थित रहते हुये बदलने का नाम परिणाम है।

काल द्रव्य का उपकार परत्व व अपरत्व उपग्रह—अब क्रिया के बाद परत्व अपरत्व देखिये। परत्व मायने जेठा, अपरत्व मायने लहुरा। परत्व, अपरत्व कई दृष्टियो से अनेक प्रकार हैं, किन्तु यहाँ काल दृष्टि का परत्व अपरत्व लेना। जैसे परत्व और अपरत्व जिसे ठेठ भाषा मे बोलते परे और उरे, तो यह क्षेत्र सम्बन्धी बना। जो आकाश प्रदेश से बहुत दूर हो सो पर और पास हो सो अपर। एक ही दिशा मे बहुत से आकाश प्रदेशो को व्यतीत कर जो दूर पहुँचा है वह पर है और जो थोडे प्रदेशो को व्यतीत कर रहा है सो अपर है। पर अपर प्रशसा अर्थ मे भी आता। जैसे धर्म 'पर' है, उत्कृष्ट है क्योकि उसमे अहिंसा आदिक अनेक गुण हैं और अधर्म अपर है, जघन्य है। कही काल हेतुक भी पर अपर होता और १०० वर्ष की आयु का हो वह पर है, जो २० वर्ष की आयु का हो वह उसके आगे अपर है। जेठा और लहुरा, तो यहाँ काल के प्रकरण मे कालकृत पर अपर जानना। और इस काल दृष्टि से एक पुरुष मुनि है और छोटी उमर का है और एक अव्रती वृद्ध पुरुष बैठा है तो काल की अपेक्षा उस अव्रती पुरुष को पर कहेगे, और उस मुनि को अपर कहेगे। तो यहाँ जो परत्व अपरत्व बताया है वह कालकृत बताया है, ऐसे परत्व, अपरत्व भी काल द्रव्य के उपकार हैं

काल द्रव्य की वर्तना भी काल द्रव्य का उपकार—यहाँ एक जिज्ञासा होती कि सब तो काल द्रव्य के उपकार हैं, पर काल द्रव्य का भी उपकार करने वाला कोई जरूर होगा। काल द्रव्य

मे परिणमन कौन करने आयेगा ? अन्य द्रव्यो के परिणमन मे ,काल को निमित्त कहा है तो काल द्रव्य के परिणमन मे कौन निमित्त होगा ? उत्तर यह है कि चूंकि परिणमन मे निमित्त काल द्रव्य होता है सो वही काल अपने परिणमन मे भी निमित्त है और अन्य के परिणमन मे भी निमित्त है। नही तो ऐसे ही और भी प्रश्न हो सकते। आकाश तो दूसरो को अवगाह देने मे निमित्त है। तो आकाश को अवगाह देने मे कौन निमित्त है ? आकाश खुद निमित्त है। आकाश अपना अवगाह भी किये है और पर पदार्थों का भी अवगाह करता है।

वर्तना की एकसमय रूपता व कालभेद रहितता—एक बात यहाँ यह भी समझना कि मूत्र मे जो वर्तना शब्द कहा है उससे ही सारा अर्थ आ जाता, पर परिणाम क्रिया वगैरह कहने की क्या जरूरत थी ? कह देते कि काल द्रव्य का उपकार वर्तना है, परन्तु इन सबके कहने का प्रयोजन यह निकला कि परिणाम परत्व अपरत्व ये परिणमन तो सब द्रव्यो मे पाये जायेंगे और काल द्रव्य मे वर्तना लक्षण है। तब ही कहते हैं कि जिसका वर्तना लक्षण है उसे निश्चय काल कहते हैं। काल दो प्रकार का होता है। (१) परमार्थ काल और, (२) व्यवहार काल। तो परमार्थ काल तो काल द्रव्य है जो कि लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक-एक काल द्रव्य ठहरा हुआ है। और वह वर्तना का उपकारक है। वह समस्त काल द्रव्य अवयव रहित है अर्थात् एक प्रदेशी ही है। जो अनेक प्रदेशी होगा उसमे अवयव की कल्पना हो जायेगी। यह भाग इधर है, यह भाग उधर है, ऐसा काल द्रव्य एक प्रदेश है इस कारण उसमे अवयव की कल्पना नही होती। तो जब अनेक प्रदेश नही होते तो काल द्रव्य को अस्तिकाय नही कह सकते। यह काल द्रव्य रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से रहित है इस कारण अमूर्त है। यह काल द्रव्य अपनी ही जगह पर स्थित है, दूसरे प्रदेश पर नही पहुँच सकता इस कारण निष्क्रिय है और व्यवहार काल परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इस रूप है। कई समयो का परिणमन जाना जाये वह व्यवहार काल से ही जाना जाता है। काल तीन प्रकार का कहा गया है। जैसे तीनो काल परस्पर सापेक्ष हैं। जैसे कोई पुरुष किसी मार्ग से जा रहा है और मार्ग पर अनेक द्रव्य हैं, तो अनेक द्रव्य गुजर गये तो वे भूत हो गये और अनेक द्रव्य अभी आयेंगे वे भविष्य हो गये, और जिस वृक्ष की छाया मे मौजूद है वह उसकी वर्तमान गति हो गई। तो उसमे जैसे यह व्यपदेश होता है कि इतने वृक्ष पा चुके अभी इतने वृक्ष पायेंगे। अब पाया और पायेंगे, इन दोनो के बीच मे जो है वह वर्तमान कहलाता है। तो यह व्यवहार भूत, भविष्य, वर्तमान यह व्यवहार काल मे तो मुख्य है और परमार्थ काल मे गौण है याने काल द्रव्य के सम्बन्ध मे भूत भविष्य की पर्यायें कुछ नही देखी जा रही। वहा तो प्रथम वर्तना मात्र लक्षण परखा जाता है। अब फिर भी इनमे परस्पर अपेक्षा बतलाते हैं कि जो द्रव्य क्रिया परिणत काल परमाणु को प्राप्त होता है अर्थात समय को प्राप्त होता है वह द्रव्य उस काल से वर्तमान समय वाली वर्तना से सहित है और जितने को पा चुका वह भूत है और जितनी वर्तनाओ को पायेगा वह भविष्य है, तो ऐसे ही घड़ी घण्टा, दिन, वर्ष आदिक भी लगाया जा सकता है।

क्रिया के अतिरिक्त अन्य किसी काल द्रव्यपने की असिद्धि की शका—यहाँ कोई शकाकार कहता है कि काल तो क्रियामात्र का नाम कहा जायेगा, अलग कोई द्रव्य नही प्रतीत होता। एक परमार्थ परमाणु मन्द गति से आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर पहुँचे उसे एक समय कहेगे। इसमे काल द्रव्य की क्या जरूरत है और उसके आगे फिर व्यवहार काल बन जायेगा। तो सारा यह

काल का व्यवहार क्रियाकृत है। जो भी समय नाम का परिणमन वर्तना कहा है सो परमाणु के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर जाने मे जो समय गुजरा वह है समय, पर कोई काल द्रव्य मानने की आवश्यकता नही है। समय जाना गया, अब उन समयो का जो समूह होगा वह आवली हो गया और आवलियो का समूह उच्छ्वास हो गया, इस तरह बढाते जाइये तो घण्टा, दिन, महीना, वर्ष, युग ओ सब बढाते चले जाओ। तो क्रिया ही काल रही, काल द्रव्य नामक द्रव्य कुछ अलग न रहा, और लोग बोलते ही हैं—जैसे गाय दुहने के समय आप आ जाना या नास्ता के समय आप आ जाना, ऐसा कहा, तो लोग जानते है कि कोई एक घण्टा दिन चढे नास्ता का समय कहलाता, या सवेरा होते ही गाय दुहने का समय आ जाता, सो वह उस समय पहुँच जाता, तो क्रिया मे भी काल का व्यवहार देखा जाता है।

क्रियामात्र को काल मानने पर अनेक आपत्ति प्रसग बताते हुये उक्त शका का समाधान—उक्त शका का उत्तर यह है कि परिणमन रूप एक समय के अभाव मे इन सब मे काल का व्यपदेश नही हो सकता है। हाँ व्यवहार तो क्रियाकृत है। जैसे लोग कहते हैं कि यह कार्य मुहूर्त भर मे कर लिया तो व्यवहार तो हो गया क्रिया के द्वारा, मगर उस परिणमन मे उस सत्ता की अनुभूति मे जो समय गुजरा उस समय को किसकी पर्याय कहेंगे। दूसरी बात यह है कि अगर वास्तव मे काल कोई मुल्य न होवे तो उपचार से या अन्य किसी से काल शब्द का नाम ही न बोला जा सकेगा। जैसे कहा कि देवदत्त छत्री है मायने छतरी लिये हुये है तो इससे ही तो सिद्ध हो गया कि छतरी का सम्बन्ध है, उसमे तो ऐसे ही किसी भी चीज मे सम्बन्ध का जोर लेते हैं तो समय नाम की कोई चीज सिद्ध तो हो जाती है अन्यथा काल का व्यवहार ही न हो सकेगा। अब यह देखिये कि जिसका मत है कि क्रियामात्र को ही काल कहते हैं, और वर्तना मे लक्षण वाला काल कुछ नही है तो उसके यहाँ वर्तमान काल बन ही नही सकता। कैसे? जैसे कपडा बुना जा रहा है तो जितना सूत बाना बन चुका वह तो अतीत हुआ, जितना सूत आगे आयेगा वह भविष्य हुआ, अब वर्तमान क्या रहा? यदि क्रिया मात्र को काल कहते हैं तो। क्रिया मे इतना गुजरा, इतना गुजरेगा, ये दो भाग होते है। क्रिया स्थिर चीज तो है नहीं जो एक वर्तमान का सकेत कर सके। तो जितना बुना गया वह तो अतिक्रान्त है, जितना बुना जायेगा वह आगामी है। अब वह कौन सी क्रिया है जो न अतिक्रान्त है और न आगामी वाली है, जिसको कि वर्तमान शब्द से कह सके। तो वर्तमान तो न बना, और वर्तमान जब न बना तो वर्तमान की अपेक्षा से ही अतीत और भविष्य बोलतें हैं तो उनका भी अभाव हो गया। इसलिये क्रिया का नाम ही काल है, काल नामक कोई द्रव्य नही है, यह कथन सगत नही है।

कार्य के प्रारम्भ से कार्य की समाप्ति न होने तक की क्रियाओ को वर्तमान कहने और उससे काल द्रव्य की असिद्धि बनाने का व्यर्थ प्रयास—अगर कोई कहे कि जब से कोई काम प्रारम्भ किया और जब तक वह काम पूरा न हो, उसके बीच मे वह सारा क्रिया समूह वर्तमान कहलाता है ऐसी यदि कोई शका करे तो वह युक्त नही है, क्योकि क्रिया समूह तो तब बने कि पहले क्रिया काल कहा जाये तब फिर उनका समूह बनाया जाये और फिर जो क्षणिकवादी हैं उनमे क्रियाओ का समूह बन ही नही सकता। तो क्रिया समूह को काल माने और उसे वर्तमान माने, यह कैसे कोई मान सकता है? वर्तमान जो होगा वह एक ही समय को होगा। जहाँ दो समय आये, तीन समय आये वहा भूत

और भविष्य बनाइये। पर स्याद्वादियो के यहाँ केवल वर्तना को काल मानते हैं। एक समय की स्व-सत्तानुभूति तो प्रथम समय की क्रिया यद् वर्तमान हुई और द्वितीय आदिक समय की जो क्रिया होगी वह अपने-अपने समय मे तो वर्तमान है, पर पूर्व की अपेक्षा भविष्य है, आगे की अपेक्षाभूत है, फिर भी द्रव्य दृष्टि से उन सबकी स्थिति मानकर समूह की कल्पना की जाती। क्रियाओ का समूह एक जगह कैसे हो सकता ? द्रव्यार्थिकनय से उनको एक क्रियापने से स्थित मानकर समूह की कल्पना होती है। एकान्तवादी तो क्रियासमूह कह भी नही सकते और फिर जो यह कहा जाता कि क्रिया होने के बाद और काम पूरा न हो चुकने तक जितनी भी क्रियायें चल रही हैं, उसे वर्तमान कहते हैं। जैसे घडा बनने की क्रिया चल रही है तो वह तो अनेक समयो की बात कही जा रही फिर भी एक द्रव्यार्थ दृष्टि करके वर्तमान का प्रयोग किया जाता है। क्रिया वास्तव मे तो पदार्थ की परिणति विशेष का नाम है और वह परिणति विशेष क्या पदार्थ से जुदा है क्या अलग रहती है ? जैसे सर्प का टेढापन सर्प से जुदा नही है ऐसे ही क्रियावान पदार्थ से क्रिया भिन्न नही है। सो जो क्रिया समूह को काल कहेगे वहाँ न तो क्रिया बन सकती और न क्रिया समूह बन सकता और न एक क्रिया से दूसरी क्रिया का ज्ञान हो सकता, क्योकि क्रिया तो क्षणमात्र को होती है, उसे इकट्ठा किया जा सकता, और कैसे जाना जा सकता ? इस कारण क्रिया का नाम काल नही है, किन्तु काल नाम का द्रव्य है और लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रहता है और उसका परिणमन एक एक समय चलता है।

काल द्रव्य के न होने की कल्पना मे क्रिया की भी असिद्धि—यहाँ बात यह कही जा रही है कि समय का व्यवहार तो क्रियाकृत होता है मगर जो परिणमन हुआ वस्तु मे उस परिणमन का निमित्त कारण काल द्रव्य की समय नामक पर्याय है, क्योकि यदि क्रियामात्र को ही काल कह दिया जाये तो वर्तमान समय कुछ नहीं रह गया, क्योकि वर्तमान मात्र एक समय मे तो क्रिया का सद्भाव नही है और क्रिया समूह को अगर क्रिया कहेगे तो क्रिया का समूह बन कैसे सकता, क्योकि वह तो पहले हुई, बाद मे हुई, और बाद मे हुई। समय के अनुसार होती गई। तो समूह तो तब बनता जब वर्तमान मे वे सब हो, किन्तु क्रियाओ का समूह वर्तमान मे तो नही है, सो वर्तना क्रिया समूह भी नहीं कहा जा सकता। जो रिवाज है बहुत से समयो की क्रिया को वर्तमान मे कहने का वह उपचार से कथन है। जैसे जब से कुम्हार ने चाक पर मिट्टी का लौंधा रखा तब से लेकर जब तक घडा नही बन जाता तब तक १०-१५ मिनट तक कहते हैं कि घट बनाने की क्रिया हो रही। तो उन क्रियाओ का द्रव्यार्थ दृष्टि से याने सामान्य दृष्टि से बुद्धि मे समझकर विचार करके कहा जाता है, काल का अभाव लोग इसी कारण तो करते हैं कि काल कोई भिन्न रूप से उपलब्ध नही हो रहा, सो यदि काल को न माना जाये तो क्रिया और क्रिया समूह भी कुछ नही रहता।

क्रिया से क्रिया का ज्ञान न होने से काल के बिना क्रिया से सिद्धि की अशक्यता—क्रिया से दूसरी क्रिया का ज्ञान नही होता किन्तु स्थिर चीज हो उस स्थिर चीज से तो कुछ ज्ञान बनाया जा सकता है पर अस्थिर और पूर्वापर समय मे होने वाली घटना से अन्य काल की घटना का ज्ञान नही किया जा सकता। जैसे कोई मापने के बर्तन होते हैं, गेहूँ, घी, तेल आदिक जिनमे भरकर ये नाप दिये जाते हैं, उससे नापकर बता देते कि यह इतना हो गया। तो वह जो माप है प्रस्थ वह स्थिर है और उसमे जो गेहूँ आदिक भरे जाते वे भी स्थिर हैं तो स्थिर से स्थिर का विभाग तो जाना जाता परन्तु क्रिया क्षणमात्र ही रहती है, तो क्षणमात्र ठहरने वाली क्रिया से अन्य क्रिया का विभाग और ज्ञान

कैसे किया जा सकता ? जो स्वय अवस्थित नहीं है वह अन्य अवस्थित क्रिया का परिच्छेद कैसे हो सकता ? यदि शकाकार यह कहे कि देखो प्रदीप तो अवस्थित नहीं है और वह भी घटादि का परिच्छेदक होता है। यह कहना यो ठीक नहीं है कि स्याद्वाद शासन मे प्रदीप को या परिणमती हुई किसी वस्तु को सर्वथा क्षणिक नहीं माना गया है। दीपक जल रहा है मगर पदार्थों का जो प्रकाश हो रहा वह निरपेक्ष एक समय के दीपक से नहीं हो सकता। प्रकाशन आदिक कार्य अनेक क्षणो मे साध्य होते हैं, सो अन्य क्रियाओ मे तो बात निभती है पर परिच्छेद्य और परिच्छेदक भाव मायने ज्ञेय ज्ञायक भाव ये समूह मे नहीं बनते, क्योकि क्षणिक तत्त्व का समूह ही नहीं बन सकता।

काल के उपकारो का उपसहार –यहाँ काल द्रव्य के उपकार कहे जा रहे हैं जिससे प्रथम वर्तना को बताया है। वह तो एक समय की जो कुछ पर्याय की अनुभूति है वह वर्तना कहलाती है। यह वर्तना कालद्रव्य मे भी होती है सभी द्रव्यो मे होती है। पर वर्तना लक्षण काल है, यह इस कारण से कहा है कि काल मे परिणाम आदिक नहीं होते उसमे निरपेक्ष प्रति समय एक एक समय की पर्याय होती रहती है इसलिए वर्तना लक्षण काल का कहा गया है। अब आगे वर्तनाओ का जो समूह बनता है वह परिणामो कहलाता है। जैसे कोई वस्तु बदल गया अर्थात पर्याय कुछ हो गया तो यह परिणमन है। यह एक समय मे नहीं बनता, किंतु बदल समझने के लिए पूर्व और उत्तर समय तो जानने ही पड़ेंगे। परिणाम का अर्थ यहाँ लिया गया अपरिस्पन्दरूप परिणमन याने गमन, हलन चलन ये परिणाम मे विवक्षित नहीं हैं, किंतु वस्तु के गुण मे जो बदल होती है पर्यायरूप से वह परिणाम कही गयी है। और जो परिस्पन्द है वह गुणो की क्रिया नहीं किन्तु प्रदेश की क्रिया है। तो परिस्पन्दरूप क्रिया परत्व अपरत्व जो उपकार बताये गये हैं सो व्यवहार मे लोग कैसे कह सकते है कि यह जेठा है यह छोटा है यदि काल द्रव्य का उपकार नहीं। काल द्रव्य का उपकार है तभी यह वहाँ बात है। एक बालक २ साल पहले जन्मा था, दूसरा उससे २ साल बाद जन्मा था तो उनमे परत्व अपरत्व का व्यवहार होता है। ये काल द्रव्य के उपकार कहे गये हैं।

यहाँ उपसहार के समय काल के अभाव की चर्चा की जा रही है कि काल द्रव्य मानने की आवश्यकता क्या ? और उसी प्रसंग मे प्रश्नोत्तर होते होते यह बात बताई गई कि क्रिया का समूह काल नहीं हो सकता। यो उस प्रसग मे शकाकार कहता है कि जैसे वर्णों की जो आवाज है वह तो क्षणिक है और उनका समुदाय पद बन जाता है वाक्य भी बन जाता है तो यह कहना कहाँ तक ठीक है कि क्षणिक क्रियाओ का समूह नहीं बन सकता। किसी ने यदि आत्माराम कहा तो जिस समय आ बोला उस समय अन्य शब्द तो नहीं बोले गये, जिस समय त् बोला गया उस समय आ शब्द खतम हो गया यो अगला अगला शब्द बोला गया तो पहला पहला शब्द खतम हो गया, तो खतम हो गया। क्षणिक भी है पर उन ध्वनियो का समुदाय पद माना गया है। अगर समुदाय का ज्ञान न हो तो जो व्यवहार चल रहा, ग्रन्थलेखन चल रहा वह सब कैसे चलता ? तो जैसे क्षणिक वर्ण ध्वनियो का समुदाय पद और वाक्य बन जाता है वैसे ही क्षणिक क्रियाओ का समूह भी बन जायगा, और उसे ही वर्तमान काल कह दीजिये। तो इसके उत्तर मे कहते हैं कि यह शका यो ठीक नहीं कि वर्ण ध्वनि भी क्षणिक नहीं है। वर्ण भी कथञ्चित नित्य है कथञ्चित अनित्य है। तो वर्णध्वनि अगर क्षणिक होती तो दूर देश मे रहने वाले श्रोताओ को वे कैसे सुनाई देते और बल्कि बोला वर्तमान समय मे और सुनाने वाला सुन रहा है उसके आगे के समय मे तो वर्ण ध्वनियाँ क्षणिक हैं, यह बात नहीं बनती, यदि कोई यह कहे

कि एक शब्द से दूसरे शब्द की उत्पत्ति हुई और ऐसे अन्य अन्य शब्द उत्पन्न हो हो कर दूर देश मे रहने वाले मनुष्यो ने जाना तो जो असली ध्वनि है वह तो नष्ट हो गई, उसने दूसरे शब्द को पैदा कर दिया था, वह भी नष्ट हो गया। उसे तीसरे शब्द को पैदा कर दिया। इस तरह दूर देश रहने वाले श्रोताओ को सुनाई देने लगता है। यह समाधान करना भी ठीक नही है, क्योकि जिस क्षण मे ध्वनि उत्पन्न हुई उसी क्षण मे ही तो अन्य ध्वनि को पैदा नही कर सकते, क्योकि उस क्षण तो वही उत्पन्न हो रही और अगले क्षण मे वह ध्वनि रही नही, तो शब्दान्तर कैसे पैदा किया ? यह क्षणिकवादियो से चर्चा चल रही है क्षणिकवादी एक क्षण को सत् मानते हैं दूसरे क्षण नही। तो जो ध्वनि उत्पन्न हुई है वह वर्तमान क्षण मे तो अपने आप को सत् बना रही है। दूसरे क्षण वह रहती नही है तो वह काल ही क्या करे ? तो इससे शब्दान्तर की उत्पत्ति का व्यवहार नही बन सकता।

एकांतहठ मे सस्कार की असिद्धि व क्रिया के आधार पर वर्तमान की असिद्धि—यदि शकाकार यह कहे कि पहले-पहले ज्ञान हुए, उन ज्ञानो से सस्कार बना, उन सस्कारो के आधारभूत बुद्धि मे समुदाय की कल्पना हो जायगी। जैसे आ सुना और वह मिट गया मगर उससे सस्कार बना। श्रोता की बुद्धि मे तो आया कि यह कहा गया फिर त् कहा, फिर मा कहा। ये मिटते जा रहे मगर सब का सस्कार तो बन रहा है। तो बुद्धि मे उन ५ अक्षरो का समुदाय बना लिया, यह कहना भी ठीक नही है, क्योकि क्षणिकवादी तो बुद्धि को भी क्षणिक मानते। यदि बुद्धि स्थिर होती तो उसमे समुदाय की कल्पना कर लेते कि अक्षरो का समुदाय तो बुद्धि मे आ गया। तो जो लोग केवल नित्य ही मानते हैं, वहा बुद्धि सस्कार का आधार कैसे बन सकती क्योकि सर्वथा नित्य मे कोई परिणमन ही नही है और जो लोग सर्वथा अनित्य ही मानते हैं। क्षण भर को ही रहता है पदार्थ तो उनके यहाँ भी सस्कार का आधार बुद्धि नही बन सकता। स्याद्वाद शासन मे द्रव्यदृष्टि से नित्य और पर्याय दृष्टि से अनित्य माना गया है। तो वहाँ बुद्धि भी नित्य और अनित्य दोनो रूपो को लिये हुए है। वहाँ सस्कार आ सकता है। क्षणिक बुद्धि मे तो सस्कार भी नही बन सकता। तो जो सत् को नित्यानित्यात्मक बताते हैं उनके सिद्धात मे हो शक्ति और व्यक्ति रूप से व्यवस्थित क्रिया समूह के द्वारा काल का व्यपदेश बन जाता कि यह काम वर्तमान मे हो रहा है। वर्तमान काल इतना सूक्ष्म काल है, एक समय वाला काल है कि उसमे कोई क्रिया ही नही बनती। जिन लोगो को क्रिया दिखती है वे असख्यात समय की वर्तनाओ के समूह मे देखते हैं। तो स्याद्वाद शासन मे व्यवहारकाल सिद्ध होता है और उस व्यवहारकाल से, उन क्रियाओं से पदार्थों का ज्ञान होता है, और जब यह सब व्यवहारकाल है तो मुख्य काल भी कोई होना चाहिए। वह मुख्यकाल है कालद्रव्य, और काल द्रव्य की प्रतिक्षण मे वर्तना होती रहती है। एक एक समय बनती रहती है। समयरूप परिणमन काल द्रव्य का है और समूह मे घडी घण्टा दिन आदिक की कल्पना की गई है।

सूत्रोक्त उपकारो की अन्तिम मीमासा यहाँ शकाकार यह कह रहा था कि केवल वर्तना शब्द ही कहा जाता। उससे ही सारी परिणाम क्रिया ज्ञात हो जाती क्योकि उन सब वर्तनाओ का समूह तो है मायने एक समय मे जो पर्याय हुई है वह व्यवहार के काबिल नही है। मगर उनका समूह बना उसमे व्यवहार जगा है। तो आधार तो वर्तना ही हुई। सो वर्तना के सिवाय अन्य और शब्द न कहा जाना चाहिये सूत्र मे। उनकी सिद्धि की कि यदि परिणाम शब्द न कहते तो व्यवहार ही न बन सकता था व्यवहार काल की बात न कहे तो कुछ समझाया ही न जा सकता था। एक समय की

वात किसी की समझ मे नहीं आ सकती। वह केवल अनुमान गम्य है। तो व्यवहार काल की सिद्धि के लिए परिणाम क्रिया वगैरह कहा गया है। अब परत्व अपरत्व की बात सोचे। इनको अलग से ग्रहण करने की क्या जरूरत थी ? कोई बालक दो साल पहले पैदा हुआ, दूसरा बालक उसके २ साल बाद पैदा हुआ। यह तो समझ लिया, बस इसी समझ मे परत्व अपरत्व भी समझ लिया गया। फिर इसके कहने की क्या जरूरत थी ? तो यहाँ उत्तर यह है कि इसमे यह समझना चाहिये कि परत्व अपरत्व अपेक्षाकृत है। एक वस्तु मे परत्व का व्यवहार कैसे हो सकता ? जब तक कोई दूसरा और बुद्धि मे न रखे तब तक परत्व नही कह सकते। जैसे कहते कि यह लडका जेठा है तो बुद्धि मे तो आया कि कोई दूसरे लडके को भी सोच रहा है जो उससे छोटा है और उसकी अपेक्षा बताया जा रहा कि यह लडका जेठा है किसी के एक ही लडका हो तो उसके तो नही कहा जा सकता कि यह जेठा है अथवा लहुरा। तो परत्व अपरत्व व्यवहार परस्पर सापेक्ष है। तो यह बात सूचित करने के लिए परत्व और अपरत्व शब्द का अहां अलग से ग्रहण किया गया है। द्रव्य का का उपकार बताने वाले इस प्रकरण मे यह अन्तिम सूत्र है। इस सूत्र मे वर्तना का सर्वप्रथम ग्रहण इसलिए किया है कि वह आदरणीय है, क्योंकि वर्तना द्वारा ही परमार्थ काल की जानकारी होती है। तो ऐसे अमूर्त पदार्थ सूक्ष्म पदार्थ की जानकारी का जो उपाय है वह आदरणीय क्यो न होगा। और उस वर्तना के अतिरिक्त जितने और उपग्रह कहे गये—परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये सब व्यवहार काल के सूचक हैं। तो व्यवहार काल की सूचना तो अप्रधान है और परमार्थ काल की जानकारी प्रधान है।

अजीव प्ररूपक प्रकृन अध्याय मे अब तक वर्णित अति सक्षिप्त स्मरण—इस अधिकार मे अब तक छहो द्रव्यो की विशेषतायें बताई गई हैं। उनमे कुछ अस्तिकाय हैं, कुछ अस्तिकाय नही हैं कुछ निष्क्रिय हैं कुछ क्रियावान हैं। किस द्रव्य के कितने भेद होते हैं, किस द्रव्य मे केवल एक ही प्रदेश होता है आदिक बातो का सयुक्तिक वर्णन किया। इन सब द्रव्यो का रहना कहाँ हो रहा है, किस जगह अवकाश है और कौन द्रव्य लोक के सर्वदेश मे रहता है, कौन द्रव्य थोडे प्रदेश मे रहता है, इसका वर्णने किया गया। इसके पश्चात उपकार का वर्णन चल रहा था कि कौन द्रव्य का परिणमन किस द्रव्य के किस परिणमन मे निमित्त होता है। यहाँ उपकार का अर्थ निमित्त मात्र होता है। धर्म अधर्म द्रव्य का उपकार गति स्थिति बताया। आकाक्षा द्रव्य का उपकार अवगाह बताया, पुद्गल के उपकार बहुत हैं क्योंकि जितना भी जो कुछ समागम दिख रहा है वह सब पुद्गल का ही तो ढेर है। और उसका निमित्त पाकर जीव में भी जो बात होती है उन्हे भी पुद्गल का उपकार कहा है। इससे मुमुक्षुजनो को यह शिक्षा मिलती है कि सुख, दुःख, जीवन, मरण, वचन, मन आदिक मेरे स्वभाव से नही हुए, ये मेरे मे उपकार नही हैं, किन्तु कर्म विपाक का निमित्त पाकर ये अवस्थाए बनी हैं। निमित्त भाव से हटकर स्वभाव भाव मे आने को यह निमित्त नैमित्तिक भाव और भी प्रेरणा देता है। इसके बाद जीवो का उपकार बताया कि वे एक दूसरे का परिणमन करें, सहयोग दें और अन्त मे यह काल द्रव्य का उपकार कहा है कि किन-किन बातो का निमित्त काल द्रव्य होता है। इस प्रकार सब द्रव्यो का उपकार बताया। अब आगे इन सब द्रव्यो मे सामने आये हुए दृश्य और उनके साथ अदृश्य इन पुद्गलो का लक्षण कहा जायगा।

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

अष्टदश भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त. पुद्गलाः ......॥५-२३॥

पुद्गल का लक्षण व पुद्गल के गुणो मे सर्वप्रथम स्पर्श कहने का कारण—इस सूत्र में पुद्गल का लक्षण कहा गया है। जो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाला है वह पुद्गल कहलाता है। ये ४ गुण हैं। गुण कहते हैं द्रव्य मे रहने वाली शक्तिओ को। गुणरूप से देखे गये ये चारों शाश्वत हैं, एक रूप हैं, सहज हैं, और इनको पर्यायरूप से देखा जाय तो जैसे अभी वर्णन आयगा कि किसके कितने भेद हैं उनकी पर्याय जानी जायगी। वे पर्यायें उस काल मे है, आगे वदल जाती हैं। तो यहाँ मुख्यता है गुणो की। जिनमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये चार गुण पाये जायें उनको पुद्गल कहते हैं। इन चारो में सबसे पहले स्पर्श का ग्रहण किया है क्योकि इनका विषयवल सबसे अधिक है। सभी विषयों में स्पर्श का वल अधिक देखा जाता है। जितनी भी इन्द्रियाँ अपने विषय को स्पर्श करके ग्रहण करती हैं उनमें सर्वप्रथम स्पर्श के ग्रहण की प्रकटता होती है। ऐसी इन्द्रियाँ हैं चार जो पदार्थ का स्पर्श करके जानें। स्पर्शन् इन्द्रिय पदार्थ को छूकर जानती है। रसना इन्द्रिय भी पदार्थ को छूकर ही तो रस ग्रहण करती है। गन्ध भी देखने मे जरूर ऐसा आती कि यह नाक फूल के पास नही गई और दूर से ही सूँघ लिया, किंतु फूल के जो सुगन्धित परमाणु हैं उनमे कई तो वे ही नाक के पास आ जाते और अनेक परमाणु जो अन्तराल मे पड़े हुए हैं सो फूल के परमाणुओ का निमित्त पाकर अन्य परमाणु सुगन्धित होते हैं। इसी परम्परा से अन्य-अन्य परमाणु सुगन्धित होते जाते हैं और नाक मे उनका सयोग होता है तव गन्ध का ग्रहण होता है और कर्ण भी स्पर्श करके ही जान पाते हैं मगर यहाँ शब्द का ग्रहण नही है क्योकि शब्द गुण नही, किंतु पर्याय है। तो यहाँ यह वताया जा रहा कि जितनी भी इन्द्रियाँ छूकर पदार्थ का ज्ञान करती है उनका सबसे पहले स्पर्श होता है इसलिए स्पर्श इन्द्रिय के विषय को वलवान वताया है। फिर दूसरी वात यह है कि स्पर्श तो सर्वससारी जीवो के पाया जाता। एकेन्द्रिय हो तो उनके तो स्पर्श है ही, और कुछ है ही नही, पर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भी स्पर्शन इन्द्रिय तो है ही। तो सर्व ससारी जीवो मे ये स्पर्शन इन्द्रिय पायी जाती हैं और वे स्पर्श का विषय भी करती हैं। इससे भी सूत्र मे सबसे पहले स्पर्श का ग्रहण किया है। यहाँ कोई शंका करता

है कि रस का भी तो बडा बल है। मनुष्य प्राय रसना इन्द्रिय के बहुत वश मे हैं, और पशु-पक्षी तो रात-दिन खाने और स्वाद की ही धुन मे रहा करते हैं। तो रस चूकि बलवान विषय है इसलिए उसका ग्रहण पहले करना चाहिये था ? तो उत्तर इसका यह है कि भले ही रसका एक व्यापक प्रभाव दिख रहा है। कई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि स्पर्श का सुख नही चाह रहे पर रस के ग्रहण मे आसक्त रहा करते हैं। भले ही ये सब बातें दिख रही हैं तो भी यह तो समझना चाहिये कि जो कोई भी रस का ग्रहण करता है तो वह स्पर्श होने पर करता। कोई भी चीज खाये तो उसका जब तक स्पर्श न हो तब तक ग्रहण कैसे होगा ? तो स्पर्श के होने पर ही रस का ग्रहण होता है, इस कारण स्पर्श का ग्रहण करना श्रेष्ठ है पहले।

सूत्र मे रस गन्ध वर्ण शब्द के इस क्रम से रखे जाने के कारण—स्पर्श के बाद रस ही प्रबल दिख रहा है इससे रस का ग्रहण किया है। यहाँ कोई यह सदेह न करे कि वायु मे स्पर्श तो पाया जाता है पर रस नही पाया जाता सो यह कहना बेकार रहा कि सारे पुद्गल चारो गुण वाले होते है। यह शका इसलिए न रखना कि वायु मे भी रस गन्ध वर्ण पाये जाते हैं, हम उनका नही ग्रहण कर पाते पर ये सब अविनाभावी हैं। जहाँ एक रहे वहाँ सभी पाये जाते हैं इसलिये वायु मे भी चारो पाये जाते हैं। हां जैसे स्पर्श का प्रकट ग्रहण होता है उस प्रकार वायु मे रस आदिक का ग्रहण नही होता, क्योकि चक्षु इन्द्रिय स्थूल विषय को ग्रहण करती है। रस आदिक भी स्थूल विषय को ग्रहण करते हैं। तो वायु मे अन्य गुण पर्यायो का ज्ञान नही हो पाता, पर जिसमे स्पर्श है उसमे चारो ही हैं। यह एक अविनाभावी नियम है। अब यहाँ रस के बाद और वर्ण से पहले गन्ध शब्द का प्रयोग किया है। तो शेष दो ही तो रह गए थे—गन्ध और वर्ण। उनमे ही तो छांट होनी है कि पहले कौन कहा जाय तो चूकि रूप चाक्षुष है और गन्ध अचाक्षुष है इसलिए गन्ध को रूप से पहले ग्रहण किया है। तो चार गुणो के क्रम का रखने का यह भी कारण है कि चूकि जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इस क्रमसे इन्द्रियाँ पायी जाती हैं। जो एकेन्द्रिय है उसका स्पर्शन ही है। जो दो इन्द्रिय है उसके स्पर्शन रसना है, तीन इन्द्रिय के स्पर्श, रसना, घ्राण है, चौ इन्द्रिय के स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु हैं। तो उनके विषयभूत पर्यायो के आधार ये गुण नाम भी इसी क्रम से रखे गये हैं। वर्ण का अन्त मे ग्रहण किया है, क्योकि यह स्थूल है। तभी इसकी उपलब्धि होती है। यहाँ द्वन्द्व समास किया गया है। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण इन चारो का द्वन्द्व समास करने पर एक पद बन जाता है। फिर उसमे मतुप् प्रत्यय लगाया जाता है। जिसका अर्थ है इनसे युक्त, याने स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये जिनके पाये जायें उन्हें कहते हैं स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाला। पुद्गल मे ये चारो गुण शाश्वत हैं, सदा रहते हैं, इसलिए इसमे मतुप् बहुत ही सगत लगा हुआ है।

स्पर्श और रस गुण की पर्यायों के मूल प्रकार—अब इन चार गुणो के भेद कहे जाते हैं। स्पर्श के भेद आठ हैं—(१) कोमल (२) कठोर (३) वजनदार (४) हल्का (५) ठण्डा (६) गरम (७) चिकना और (८) रूखा, ये आठ प्रकार के परिणमन होते हैं। यहाँ यह जानना चाहिये कि जो परमाणु हैं उनमे तो चार गुण की ही व्यक्ति है (१) शीत (२) उष्ण (३) चिकना और (४) रूखा। परमाणु मे कोमल कठोरपना नही है अनेक परमाणुओ का पिण्ड हुए बिना कोमल और कठोरपना नही बन पाता, इसी प्रकार परमाणुओ मे कोई परमाणु वजनदार हो, कोई हल्का हो यह भी भेद नही होता। यह भेद होता है अनेक परमाणुओ के पिण्ड मे। तो जो ८ भेद बताये गए

हैं यह परमाणु और स्कन्ध दोनो को ही पुद्गल दृष्टि मे रखकर कहा है। रसके भेद ५ हैं—(१) तीखा (२) कड़वा (३) खट्टा (४) मीठा और (५) कषायला। तीखा रस जैसे नमक मिर्च मे होता है। कडवा रस गुरबेल आदिक कडवी दवाइयो मे होता है अथवा करेले में भी पाया जाता है। चूंकि ये पाचो ही रस इष्ट भी है, अनिष्ट भी हैं। किसी को कुछ इष्ट लगता है किसी को कुछ। तो कई कडवी चीज़े इष्ट भी लगती हुई देखी गई है। कुछ ऐसा भी समझ में आता है कि जो चीज़ प्रकृत्या कडवी नही होती और वह कदाचित कडवी निकल जाय तो वह बहुत अनिष्ट लगती हैं। जैसे बादाम कडवी नही है, पर कोई कडवी निकल जाय तो उससे बहुत व्यग्रता होने लगती है। करेला प्रकृत्या कडवा है और रुचिकर कड़वा है। कोई औषधियां तो प्रकृत्या कडवी होकर भी रुचिकर नही होती। तो इससे जाना जाता है कि पांचों ही रस इष्ट भी हैं, अनिष्ट भी। अम्ल को खट्टा कहते हैं। जैसे कच्चा आम, नीबू आदिक मे होता है। ये अम्ल गुण की पर्यायें हैं। मधुर मायने मीठा, शक्कर आदि मे और कषायला आंवला आदि मे होता है। ये ५ प्रकार के रस हैं। ये पांचो ही किसी को मनोज्ञ हैं और किसी को अमनोज्ञ हैं। मीठा जैसा रस भी अनेक लोगो को इष्ट होता और अनेको को अनिष्ट होता और वे रंच भी मीठा रस नही पसन्द कर पाते। तो ऐसे रसना इन्द्रिय के विषयभूत रूप पर्यायें ५ प्रकार की पाई जाती हैं।

गन्ध और वर्ण गुण की पर्यायों के मूल प्रकार व शब्द के निर्देशन की भूमिका—गन्ध दो प्रकार का है—(१) सुगन्ध और (२) दुर्गन्ध। गुलाब के फूल आदिक में सुगन्ध मानी गई है। मल आदिक मे दुर्गन्ध मानी गयी है। इष्ट अनिष्ट की बात देखो—और सब जीवो की ओर से देखो तो ये दोनो प्रकार के गन्ध किसी को इष्ट होते हैं और किसी को अनिष्ट। वर्ण ५ प्रकार के है—(१) नीला (२) पीला (३) सफेद (४) काला और (५) लाल। यद्यपि रंग सैकड़ों प्रकार के देखने मे आते हैं लेकिन मूल भेद ये पाच ही हैं। इनके मिलावट से अनेक रग बन जाते हैं। जैसे हरा रग मौलिक नही है। नीला और पीला मिलकर हरा बन जाता है। ऐसे अनेक प्रकार के रग एक मिश्रित रग हैं। उन सब रगो के मूल प्रकार पाच हैं। तो जैसे रंगो के भेद अनेक पाये जाते हैं ऐसे ही इन बाकी तीन गुणो की पर्यायें भी अनेक प्रकार की पाई जाती हैं। जैसे ठण्डा कोई कम ठण्डा कोई अधिक ठण्डा अनेक प्रकार के शीत पाये जाते हैं। इसी तरह सभी मे अनगिनते भेद समझ लेना चाहिये। पुद्गल के गुण तो बताये गये हैं। अब कर्णेन्द्रिय के विषयभूत शब्द उनमे नही आये क्योंकि शब्द कोई गुण नही है, शब्द वस्तु मे शाश्वत नही पाये जाते। पदार्थ के टक्कर से, वियोग से शब्द की उत्पत्ति होती है। तो जो शब्द पर्याय होने के कारण छोड़ दिया गया था उसको आदि लेकर और पर्यायें भी ऐसी हैं जो पुद्गल मे पायी जाती हैं उनका वर्णन करते हैं।

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥५—२४॥

पुद्गल द्रव्य की द्रव्य पर्यायो का निर्देश—सूत्र का अर्थ है शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले पुद्गल हैं अर्थात पुद्गल मे ये सब पर्यायें पायी जाती है। इस सूत्र मे जिन पर्यायो का कथन है वे सब द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं। पर्याय दो प्रकार की होती हैं—(१) गुण व्यञ्जन पर्याय और (२) द्रव्य व्यञ्जन पर्याय। गुण की दशा का नाम गुण पर्याय है और पदार्थ के प्रदेशो की विशेषता का नाम द्रव्य पर्याय है। इस सूत्र मे दो पद हैं—अन्तिम

पद है च और शेष सारा पद एक है। इस पूर्व पद मे पहले तो द्वन्द्व समास करके उन सबमे मतुप् प्रत्यय समासित किया है। ये सब १० पर्यायें हैं। इन १० शब्दो का द्वन्द्व समास करके फिर उसमे मतुप् प्रत्यय से सम्बन्ध कराया गया है, जिसका अर्थ होता है कि पर्यायो वाला, पुद्गल होता है। इन सबका शब्दानुसार अर्थ देखा जाये तो उनका अर्थ एकदम स्पष्ट होता है।

शब्द और बन्ध शब्द का निरुक्त्यर्थ—'शब्द' शब्द बना है शप धातु से, जिसकी निरुक्ति है शपयति अर्थं आह्वयति इति शब्द.। जो पदार्थ-को जताये उसे शब्द कहते हैं। पदार्थ के वाचक शब्द हुआ करते हैं। वही अर्थ इस धातु से बनता है। अथवा करण साधन से जो अर्थ किया जाये तो निरुक्ति बनती है—शप्यते येन इति शब्द: जिसके द्वारा व्यवहार किया जाये, सकेत किया जाये उसे शब्द कहते हैं, अथवा भाव वचन से अर्थ किया जाये तो निरुक्ति बनेगी शपनमात्र इति शब्द: याने एक सूचन होना सो शब्द है। यह शब्द पर्याय अनेक स्कधो के मिलने विछुडने से होता है। मुख से भी जो शब्द बोले जाते हैं उनमे भी स्कधो का मिलना विछुडना मालूम पड़ता है। जैसे कठ, ओठ, जिह्वा, मूर्धा, तालू दन्त आदिक साधन हैं, उनका सम्बन्ध होने से सम्बन्ध करके वियोग करने से इन सब शब्दो की उत्पत्ति होती है। तो शब्द पुद्गल की द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं। बध का अर्थ है बन्धन, जो बांधे उसे बन्ध कहते हैं। यह अर्थ निकला, कर्तृ साधन से। बध्नाति इति बन्ध जो बांधे उसे बन्ध कहते हैं। बन्ध ही तो बांधे रहता है अथवा करण साधन से अर्थ निकला बध्यते असौ इति बन्ध:। जो बन्धा करे वह बन्ध है। निश्चय से तो बन्ध ही बन्ध रहा है अथवा भाव साधन से अर्थं है बधनमात्र इति बध, बधने का नाम बध है। दो पुद्गल स्कन्ध बंध जायें या दो परमाणु बध जायें तो उसे बध कहते हैं। बध होता है मिलने से। और यह मिलना बना है प्रदेशो मे इसलिये बध गुण पर्याय नही है किन्तु द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है।

सौक्ष्म्य और स्थौल्य शब्द का निरुक्त्यर्थ—तीसरी पर्याय है सूक्ष्मता। सूक्ष्म शब्द बना है सुच धातु से, जिसकी निरुक्ति है लिंगेन आत्मान सूचयति इति सूक्ष्म., चिन्ह से जो अपनी सूचना दे उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म पदार्थ स्पष्ट तो दिखते नही किन्तु किन्ही चिन्हो से युक्तियो से उसकी पहिचान की जाती है और इसी कारण इसका नाम सूक्ष्म रखा, या करण साधन से अर्थ किया तो सूच्यते असौ इति सूक्ष्म जो सूचित किया जाये सकेतो के द्वारा परिचय मे आये उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म पदार्थ स्पष्ट परिचय मे नही आते किन्तु किन्ही चिन्हो के द्वारा उनका परिचय किया जाता है, युक्तियो से जाना जाता है तो यह कहलाता है सूक्ष्म। अथवा भावसाधन अर्थ करें तो निरुक्ति होगी—सूचनमात्र इति सूक्ष्म, सूक्ष्म हुआ वह पदार्थ जो स्पष्ट तो नही जाना जा सकता किन्तु किन्ही चिन्हो के द्वारा सूचनमात्र है। सूक्ष्म के भाव को सौक्ष्म्य कहते हैं याने सूक्ष्मता अर्थात सूक्ष्मपना होना यह पदार्थ के गुण की पर्याय नही किन्तु यह प्रदेश मे ही पायी जाती है। कभी प्रदेशो का इस रूप से परिणमन हो कि वह सूक्ष्म हो जाये तो प्रदेश परिणमन होने के कारण सूक्ष्मता पुद्गल की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। स्थूलपना, यह भी पुद्गल द्रव्य की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। यहाँ निरुक्ति होती है स्थूलयते परिवृहयति इति स्थूल:, जो सहज मोटा हो उसे स्थूल कहते है। और स्थूल के भाव को स्थौल्य कहते हैं। यह स्थूलपना प्रकट ही समझ मे आ रहा है कि द्रव्य के प्रदेशो का परिणमन है। पुद्गल मे प्रदेश शब्द कहने से परमाणुओ का अर्थ लेना चाहिये। अनेक परमाणु इस रूप से परिणमे कि वह वस्तु मोटा (स्थूल) हो जाये तो वह कहलाता है स्थूलपना।

संस्थान और भेद शब्द का निरुक्त्यर्थ—सस्थान आकार का नाम है। इसकी निरुक्ति है सतिष्ठते इति सस्थानं अथवा संस्थीयते अनेन इति सस्थानं अथवा भावमावन मे मस्थिति: इति मस्थानं, जो ठहरता है, वह सस्थान है। यह बात आकार मे पायी जाती है। अनेक पदार्थो को जो कुछ रहते हुये, ठहरते हुये देख पा रहे हैं वे आकार रूप से देखे जा रहे है। तो मस्थान तो आकार प्रदेश का ही परिणमन है। अनेक प्रदेश किस प्रकार से फैले हैं उन परमाणुओ का किस तरह से विस्तार बना है वही कहलाता है आकार। तो आकार भी पुद्गल की पर्याय है, द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। भेद अर्थात भेदना, मिली हुई चीजो के खण्ड करने का नाम पर्याय है, इनकी निरुक्ति है भिनत्ति भिद्यते भेदनमात्र व भेद:, भेद होना या जो भेद किया जाये जो भेद कर डाले वह भेद कहलाता है। भेद भी पुद्गल स्कन्धो मे प्रदेशो का हुआ, परमाणुओ का हुआ। अनेक परमाणु मिलकर स्कन्ध बने हुये थे उनका विलगाव हो गया, यही भेद कहलाया। तो यह भेद नामक पर्याय भी पुदगल की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है, क्योकि यह प्रदेशो मे प्रकट हुई है।

तम: और छाया शब्द का निरुक्त्यर्थ—अन्धकार के पर्याय मे यहाँ शब्द दिया है तम. अर्थात अन्धकार उसका तम: शब्द बना है तमु धातु से, जिसका अर्थ है ताम्यति अथवा आत्मा+ताम्यते अनेन अथवा तमनमात्र तम., अशुभ कर्मोदय से जो आत्मा को तम दे, जो खिन्न करदे, अभिभूत कर दे उसे तम कहते हैं, या जिसके द्वारा पदार्थ तिरस्कृत हो जाये, ढक जाये, लुप्त सा हो जाये उसको तम कहते हैं। अन्धकार प्राय: इस जीव को प्रिय नही है। अन्धकार मे यह जीव राजी भी नही रहता। इस कारण से इसका नाम तम रखा गया है। यह अन्धकार पुद्गल की द्रव्य पर्यायहै। अर्थात ये ही सब प्रदेश जो अभी प्रकाश रूप से परिणम रहे थे ये ही कारण पाकर प्रकाश परिणमन को छोडकर अन्धकार परिणमन रूप हो गये। तो यह बात प्रदेशो मे ही तो हुई, इस कारण इसे कहते है द्रव्य व्यञ्जन पर्याय। छाया—जैसे पेड की छाया, मनुष्य की छाया। यह छाया एक तरह की एक नई प्रतिमूर्ति है। पृथ्वी आदिक घन परिणामो के सम्बन्ध से देहादिक पर प्रकाश का आक्रमण बनने से उसी के समान आकार द्वारा जो आत्मा को दो रूप करदे वह छाया है। यहाँ आत्मा से मतलब उस मूर्ति से है, उस देह से है, जिसकी प्रतिमूर्ति हुई है उसे कहते हैं छाया। छाया की निष्पत्ति होती किस तरह है कि प्रकाश में कोई पदार्थ रखा है, या कोई पुरुष ही खडा है और उस प्रकाश के निमित्त-भूत पदार्थ और उस मनुष्य के बीच मे कोई कपडा या पाटिया वगैरह आडे आ जाये तब तो छाया नही होती, किन्तु उस देह पर प्रकाश पडने से उसके ऊपर की ओर जो पृथ्वी आदिक घन पदार्थ पडे है वे उस आकार रूप परिणम जाते है। तो मानो यहाँ दो से बन गये, एक खडा हुआ पुरुष और एक छाया का बना हुआ पुरुष। तो छाया शब्द मे जो धातु है उस धातु मे यह अर्थ ध्वनित होता कि यहाँ मानो दो से बन गये। यह छिदिर् द्वैधी करने धातु से बनता है जिसकी निरुक्ति है छिनत्ति आत्मान इति छाया।

आतप और उद्योत शब्द के निरुक्त्यर्थ—आतप—असाता वेदनीय के उदय मे जो आत्मा को सब ओर से तपाये अथवा जिसके द्वारा तपा जाये या तपनमात्र आतप कहलाता है। इसकी निरुक्ति इस प्रकार है—आतपति आत्मानं अथवा आतप्यते अनेन अथवा आतपनमात्रं इति आतप। आतपन द्रव्य पर होता है यह प्रदेशो पर ही तो होता है, गुणो मे नही होता, इस कारण आतप गुण पर्याय नहीं है किन्तु द्रव्य पर्याय है, और यह आतप पुद्गल स्कन्ध की द्रव्य पर्याय है। उद्योत जो उद्योत करे

अथवा जिसके द्वारा उद्योत किया जाये या उद्योतनमात्र उद्योत कहलाता है। उद्योतन शीतल प्रकाश को कहते हैं। इसका निरुक्ति अर्थ यह है कि जो निरावरण उद्योत करे, निरावरण उद्योतयति अथवा उद्योत्यते अनेन अथवा उद्योतनमात्र इति उद्योत । ये सब निरुक्तियाँ कर्तृसाधन, करणसाधन व भावसाधन की दृष्टि से की गई हैं। उद्योत अर्थात शीतल प्रकाश द्रव्य पर हुआ है वह प्रदेशो पर हुआ है गुणो मे नही, इस कारण उद्योत पुद्गल स्कन्ध की द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है।

शब्द के भेद प्रभेद—अब इस सूत्र मे सर्वप्रथम कहे गये शब्द के सम्बन्ध से कुछ विवरण करते हैं। शब्द दो प्रकार का होता है—(१) एक भाषा रूप और एक अभाषात्मक याने भाषा से विपरीत। भाषात्मक शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक अक्षरीकृत दूसरे जो अक्षरीकृत नही हो। अक्षरीकृत शब्द शास्त्र को प्रकट करने वाला है और वे शब्द सस्कृत भाषा हैं तो आर्य पुरुषो मे व्यवहार के कारण बनते हैं, और यदि सस्कृत से विपरीत भाषा मे है तो वे म्लेच्छजनो के व्यवहार के कारण बनते हैं। अब जो अनक्षरीकृत भाषात्मक शब्द हैं अर्थात अवर्णात्मक शब्द हैं जिनमे वर्ण जाहिर नही होते वे दो इन्द्रिय आदिक जीवो के हैं और उनके कुछ ज्ञान का या उनके भाव का अन्दाजा होता है। तो ये भाषात्मक शब्द सभी प्रायोगिक हैं। जिह्वा आदिक स्थानो से प्रयोग किया गया है। अब जो अभाषात्मक शब्द हैं वे दो प्रकार के हैं—(१) प्रायोगिक और, (२) वैश्रसिक। प्रायोगिक का अर्थ है जो किसी वस्तुओ के प्रयोग से सयोग वियोग से कराया जाता है वह प्रायोगिक है, और वैश्रसिक का अर्थ है कि जो किसी पुरुष आदिक के द्वारा प्रयोग तो किया नहीं जाता, किन्तु सहज ही सयोग वियोग होने से शब्द बनते हैं वे वैश्रसिक हैं। वैश्रसिक शब्द के उदाहरण हैं कि मेघ आदिक के रगड से जो आवाज आती है तडकना आदिक वे सब वैश्रसिक शब्द हैं। उनका कोई पुरुष प्रयोग तो कर नही पाता है। प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के होते हैं–(१) तत, (२) वितत, (३) घन और, (४) सुषिर। ये सब शब्द भाषात्मक नही हैं अर्थात किसी ने जीभ कठ आदिक से नही बनाया है किन्तु अजीव पदार्थों के सयोग वियोग से ये शब्द उत्पन्न होते हैं जिन्हे मनुष्यादिक करते हैं वे शब्द प्रायोगिक है और ये चार प्रकार के कहे गये हैं। तत नामक शब्द वे हैं जो चमडे के ढोल आदिक के पीटने से निकलते हैं। वितत शब्द वे हैं जो तारो से उत्पन्न किये जाते हैं जैसे वीणा, तार, वायलन आदिक से जो उत्तम इष्ट प्रिय घोष निकलते हैं वे वितत हैं। घन शब्द घण्टा आदिक के बजाने से उत्पन्न होते है। सुषिर शब्द बाँसुरी शख आदिक के निमित्त से उत्पन्न होते हैं। ये सब शब्द पुद्गल द्रव्य की द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं यह प्रसिद्धि की जा रही है।

शब्द के सम्बन्ध मे कुछ कल्पित धारणाएं और उनका निरसन–कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि शब्द आकाश का गुण है, पर यह बात युक्त नही होती क्योंकि शब्द का टेप आदिक मे भरना, भीट आदिक से अभिघात होना, बिजली आदिक के तारो से उसे बढी आवाज मे फेंकना ये सब पुद्गल मे ही हो सकते हैं। आकाश तो अमूर्तिक है, उस पर यह प्रयोग नही चल सकता। कुछ लोगो को यह सदेह है कि शब्द ध्वनियाँ जो क्षणिक हैं और क्रम से उत्पन्न होती है और प्रत्येक शब्द केवल अपनी ही ध्वनि मे अपने ही स्वरूप को बता पाता है। तो वे शब्द मिलकर भी किसी अन्य अर्थ को बता नही सकते। जैसे किसी ने कमल शब्द कहा तो पहले क फिर म फिर ल बोला गया। जिस समय क बोला तो लोगो ने क समझ लिया और वह ध्वनि खतम हो गई, फिर म बोला गया तो म समझ गया, ल बोलने पर ल समझा गया। अब कोई तालाब मे उत्पन्न होने वाले कमल को इन शब्दो

से कहे—यह कैसे समझा जाये ? यदि इन शब्दो मे यह सामर्थ्य है कि वे किसी पदार्थ का सकेत कर सकते हैं तो यह सामर्थ्य प्रत्येक वर्णों मे हो गई, फिर प्रत्येक वर्णों से ही पदार्थ का ज्ञान हो जाय और जब एक वर्ण के द्वारा पदार्थ का बोध हो जायेगा तो अन्य वर्णों का बोलना या ग्रहण करना निरर्थक हो जायेगा। तोये ध्वनियाँ क्रम से उत्पन्न होती हैं। इन ध्वनियो का एक साथ मिल जाना यह सम्भव ही नहीं हो सकता। जब वे ध्वनियाँ क्रम से निकलती हैं, एक साथ हो नही सकतीं तो उनसे अर्थ का ज्ञान कैसे हो सकेगा। इस कारण उन ध्वनियो से प्रकट होने वाले शब्द अर्थ के प्रतिपादन मे समर्थ नही। अतीन्द्रिय निरवयव निष्क्रिय कोई शब्द स्फोट स्वीकार करना चाहिये। ऐसा कोई सदेह करते हैं या मानते है, उनका यह मानना युक्त नही है, क्योकि ध्वनि और स्फोट मे कोई सम्बन्ध नहीं। जिस शब्द-स्फोट को वे व्यग्य मानते हैं अर्थात ये प्रकट किये जा सकते हैं वे क्या अपने स्वरूप मे हैं या नही ? यदि वे अपने स्वरूप मे हैं. तो यह ध्वनि निकलने से पहिले या बाद मे वह स्फोट क्यो नही पाया जाता, आदिक विचार करने पर यह मानना चाहिये कि शब्द ध्वनि रूप हैं और जिन भाषा वर्गणाओ से ये शब्द निकले हैं उनके मूलभूत अणु नित्य है और ध्वनि अनित्य है। वे पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से नित्य हैं और शब्द पर्याय की दृष्टि से अनित्य है।

वैश्रसिक बन्ध का विवरण - बध नामक जो दूसरी द्रव्य व्यञ्जन पर्याय कही गई है वह बंध दो प्रकार का है—(१) प्रायोगिक और, (२) वैश्रसिक। जो किन्ही पुरुषो के द्वारा प्रयोग करके बधन किया जाता है वह प्रायोगिक है और जो सुगम स्वय बन्धन बन जाता है वह वैश्रसिक है। वैश्रसिक बन्ध दो प्रकार का है–(१) आदिमान और, (२) अनादिमान। स्निग्ध रूक्ष गुण के निमित्त से बिजली, उल्का, जलधारा, इन्द्रधनुष आदिक हो जाना यह बन्ध तो आदिमान है। और जो अनादि वैश्रसिक बन्ध है वह ९ प्रकार का है–(१) धर्मास्तिकाय बन्ध अर्थात जितने धर्मास्तिकाय द्रव्य हैं उस विस्तार मे स्वय वह अनादि से बना हुआ है और वह उसका प्रायोगिक रूप है बिखर नही सकता, (२) धर्मास्तिकाय देश बन्ध, (३) धर्मास्तिकाय प्रदेश बन्ध, (४) अधर्मास्तिककाय बन्ध, (५) अधर्मास्तिकाय देश बन्ध, (६) अधर्मास्तिकाय प्रदेश बन्ध, (७) आकाश अस्तिकाय बन्ध, (८) आकाश अस्तिकाय देश बन्ध, (९) आकाश धर्मास्तिकाय प्रदेश बन्ध। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य ये तीनो नित्य अवस्थित द्रव्य हैं। और जितने विस्तार मे है उतने ही विस्तार मे सतत रहते है। यहाँ जो प्रत्येक अस्तिकाय मे तीन तीन बन्ध भेद किये गये हैं सो बात तो एक ही है द्रव्य अखण्ड है किन्तु दृष्टि और कल्पना के अनुसार सम्पूर्ण वस्तु को देखना वह सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय है। उसका आधा देश कहलाता है और उस देश का आधा प्रदेश कहलाता है। अथवा और भाग भी प्रदेश कहलाते है। इसमे यद्यपि विछोह कभी नहीं होता और इस कारण से बन्ध भी क्या कहा जाये, लेकिन ये सब इतने विस्तार मे हैं इस दृष्टि से निरखकर ये अनादि वैश्रसिक बन्ध कहलाते हैं। काल द्रव्य मे बन्ध नही होता। हाँ वह आकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक कालद्रव्य है और जहाँ है वही ही सदा रहता है, ऐसा वैश्रसिक सम्बन्ध अनादि है। जीव के भी जितने प्रदेश हैं उनका यद्यपि सकोच विस्तार हुआ करता है ऐसा स्वभाव है तो भी परस्पर वियोग नही देखा जाना। इस दृष्टि से वह भी अनादि बन्ध है इसी तरह नाना जीवो की दृष्टि से देखा जाये तो यह सारा लोक अनन्त जीवो से खचित है और पुद्गल द्रव्यो मे भी सामान्यतया स्कधो की दृष्टि से देखें तो वह भी खचित है, इस कारण वहाँ भी अनादि बन्ध कह सकते हैं, पर व्यक्तिगत रूप से नही कहा जा सकता। किन्तु कोई जीव कही भी है, कहीं जन्म

लिया, कहीं विहार करता है पर कहीं भी विहार करे, जीव का खाली क्षेत्र मे तो विहार होता नहीं। यो मनुष्य देव आदिक जीवो की अपेक्षा कहा गया है। इस तरह सभी द्रव्यो मे बन्ध सम्भव है, पर यहां प्रकरण है पुद्गल द्रव्य का। यह बन्ध पुद्गल द्रव्य मे घटित करना है अभी ये सब वैश्रसिक बन्ध कहे गये। विश्रसा का अर्थ है स्वभाव, जो स्वत. हो वह वैश्रसिक है याने स्वाभाविक।

प्रायोगिक बन्ध का विवरण—प्रायोगिक का अर्थ है किसी जीव के द्वारा प्रयोग करके जो विधि बने अर्थात शरीर, वचन, और मन के सयोग से जो बन्धन बनाया जाय वह प्रायोगिक है। और प्रायोगिक बन्धन दो प्रकार का होता है। एक तो अजीव और अजीव में ही बन्धन होना, दूसरा जीव और अजीव मे बन्धन होना। जैसे काष्ठ मे लाख का बन्धन किया, दो कागजो को गोंद से चिपकाया आदिक अजीव अजीव मे जो बन्धन किया जाता है वह है अजीव विषयक बन्धन। कर्मो मे भी परस्पर ही बन्ध होता है और वह है अजीव विषयक बन्धन। पहले से सत्ता मे स्थित कार्माण वर्गणा में नवीन कार्माण वर्गणायें बध जाती हैं तो वह भी वस्तुत. अजीव अजीव मे ही बन्धन हुआ। शरीर मे भी शरीर की ही वर्गणाओ का बन्धन होता है। वे वर्गणायें भी अजीव हैं वह शरीर विषयक बधन है। ये सब बन्धन जो प्रयोग मे आते हैं ये पाच प्रकार के हैं। शरीर बन्ध की दृष्टि से मूल भेद तो औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस और कार्माण इस प्रकार पांच हैं, पर इन्ही को संयोगज ढग बनाकर भेद बनते हैं १५। औदारिक शरीर नोकर्म का अन्य औदारिक शरीर का नोकर्म से बन्ध होने पर (१) पहला भग बना औदारिक औदारिक शरीर नो कर्म बन्ध, (२) दूसरा भग औदारिक और तैजस शरीर के परस्पर सम्बन्ध से बनता है, औदारिक तैजस शरीर नोकर्म बन्ध। (३) तीसरा भग बनता है, औदारिक कार्माण शरीर बन्ध और (४) चौथा औदारिक तैजस कार्माण शरीर बन्ध यहां तीन का सम्बन्ध लिया गया है। (५) ५वा बनता है वैक्रियक वैक्रियक शरीर बन्ध, (६) छठा होता है, वैक्रियक तैजस शरीर बन्ध (७) सातवां होता है वैक्रियक कार्माण शरीर बन्ध और (८)८वां हुआ वैक्रियक तैजस कार्माण शरीर बन्ध (९) नववा हुआ आहारक आहारक शरीर बन्ध (१०) दसवां हुआ आहारक तैजस शरीर बन्ध (११) ग्यारहवां हुआ आहारक कार्माण शरीर बन्ध (१२) बारहवां हुआ आहारक तैजस कार्माण शरीर बन्ध (१३) तेरहवां होता है तैजस तैजस शरीर बन्ध (१४) चौदहवां हुआ तैजस कार्माण शरीर बन्ध और (१५) हुआ कार्माण कार्माण शरीर बन्ध। जैसे कि हम आप मनुष्यो की जो आज स्थिति है, जो शरीर बन्धन हैं। उसमे औदारिक तैजस, कार्माण इन तीन शरीरो का बन्धन है। किसी स्थिति मे कुछ दृष्टि लेकर दो शरीर का सम्बन्ध बनाया, इस तरह शरीर के आहार वर्गणाओ का परस्पर मे एक दूसरे से बन्धन होना यह शरीर बन्ध कहलाता है।

बन्ध के विषय मे स्फुट ज्ञातव्य—अब इसके अतिरिक्त शारीरिक बन्ध के विषय मे देखिये—बन्धन है उस दृष्टि से दो विकल्प बनते हैं कि यह शरीर बन्ध कोई अनादिमान है कोई आदिमान है। जैसे जीव असख्यात प्रदेशी है तो उन असख्यात प्रदेशो मे बीच के प्रदेश ८ बैठते हैं। कोई सख्या समान है चारो तरफ से समान है तो उसका बीच एक न बैठेगा। जैसे सख्या आठ है तो उसके बीच एक नही बैठ सकता। ७ सख्या का बीच एक हो जाएगा क्योकि चौथा, तीन एक तरफ तीन एक तरफ किन्तु जो समान सख्या होगी वहां बीच एक नहीं हो सकता। चारो ओर से बीच देखते हैं तो जीव

के मध्य प्रदेश ८ रहेंगे। वे ८ मध्य प्रदेश ऊपर नीचे ४-४ रूप से स्थित हैं और वे सदा इस ही तरह रहते हैं। तो यह हो गया अनादि बन्ध, पर जीवो के अन्य प्रदेशो मे संकोचविस्तार चलता रहता है। इस संकोच विस्तार निमित्त कारण कर्मविपाक है, पर सकोच तो जीवो के प्रदेशों का हुआ, तो यह सकोच विस्ताररूप जो बन्ध है वह आदिमान् बन्ध है। यहाँ कर्म और नो कर्म के सम्बन्ध मे यह समझना कि जो ज्ञानावरणादिक कर्म हैं वे आत्मा को विकृत परतन्त्र बनाने का मूल कारण हैं और कर्म के उदय से होने वाले जो औदारिक शरीर आदिक हैं, जो कि आत्मा के सुख दुःख मे बाधक होते हैं वे नोकर्म कहलाते हैं। कर्म और नोकर्म मे स्वरूप से भेद है, स्थिति से भेद है। नोकर्म की स्थिति तो आयु के अनुसार है और कर्मों की स्थिति शास्त्रों मे जुदी बताई ही गई हैं वह सागरो पर्यन्त है। औदारिक शरीर अधिक से अधिक तीन पल्य तक टिक सकता है। वैक्रियक शरीर ३३ सागर तक टिक सकता है, आहारक शरीर केवल अर्न्तमुहूर्त रहता है। तैजस शरीर ६६ सागर प्रमाण टिकता है। कर्मो की स्थिति करोड़ों सागर तक हो जाती है। तो बन्ध के प्रकरण मे ये सारे बन्धन दृष्टि मे आ जाते हैं। कर्म का कर्म से बन्धन, शरीर का शरीर से बन्धन, जीव का कर्म शरीर से बन्धन, ये सभी प्रकार के बन्ध हुआ करते हैं, पर यहाँ बन्ध पुद्गल द्रव्य का ही दिखाया जा रहा रहा है। ये पुद्गल स्कंध की द्रव्य व्यञ्जना पर्यायें है।

सौक्ष्म्य स्थौल्य सस्थान के भेद पर्याय के विषय मे स्फुट ज्ञातव्य—तीसरी और चौथी पर्याय बताई है सूत्र मे सूक्ष्मता और स्थूलपना। ये दोनो ही २-२ प्रकार के हैं। एक अन्तिम दूसरा आपेक्षिक। अन्तिम सूक्ष्मपना परमाणु मे है, आपेक्षिक सूक्ष्मपना बेर, आँवला, आम वगैरह मे है। जहाँ अपेक्षा से जाना जाता कि यह इससे सूक्ष्म है, इस प्रकार स्थूलपना तो महास्कंध में है सारा लोक, उससे बडा और क्या। आपेक्षिक स्थूलपना बेर आंवला आदिकमे पाया जाता है। जब मोटाई की ओर दृष्टि होती है तो आपेक्षिक स्थूलता होती है। जब सूक्ष्मता की ओर दृष्टि होती है तो आपेक्षिक सूक्ष्मता विदित होती है। सस्थान दो प्रकार का है—(१) इत्थं लक्षण (२) अनित्थं लक्षण। इत्थ लक्षण का अर्थ है कि जिसके बारे मे बताया जा सकता, मुख से कहा जा सकता कि यह ऐसे आकार का है। जैसे गोल, तिकोण, चौकोण, लम्बा आदिक किसी भी प्रकार का आकार बता सके, वह आकार तो इत्थ लक्षण है और जिसका आकार बताया न जा सके किंतु है, दिखता है वह आकार, अनित्थ लक्षण है। जैसे मेघो का आकार। मेघ ऊपर दिखते है, उडते हैं, उनका क्या आकार बताया जा सकता? भिन्न-२ ढग के हुआ करते हैं। इस प्रकार ये आकार २ प्रकारो मे पाये जाते हैं। पुद्गल द्रव्य का एक द्रव्य पर्याय है भेद याने मिले हुये मे से अलग हो जाना। यह भेद ६ प्रकार का है—(१) पहला भेद है उत्कर जैसे काठ को करोंती आदिक से चीरकर टुकडे किये जाते है वह उत्कर नाम का भेद है। (२) दूसरा भेद है चूर्ण। जैसे जवा गेहूँ आदिक अन्नो का आटा सतुआ आदिक रूप से चूर्ण किया जाता है वह है चूर्ण नाम का भेद। (३) तीसरे भेद का नाम है खण्ड। जैसे घडे की खपरिया बन जाती, अटपट अनेक टुकडे हो जाते, वे खण्ड कहलाते हैं। (४) चौथा भेद है चूर्णिका। मूंग उडद जैसी दालो का जो खण्ड होता है, दाल बनती है। कुछ चूरा भी निकलता है वह चूर्णिका कहलाती है। (५) पाचवें भेद का नाम है प्रतर। जैसे मेघ पटल है और उसमे ही कुछ मेघ टूटकर दूसरी ओर चले गये तो ऐसा जो बादलो का बिखराव हो जाता है वह कहलाता है प्रतर। (६) छठवाँ भेद है अणुचटन। जैसेकि कोई तपा हुआ लोहे का पिण्ड हो और उस पर घन मारे जाते हैं कोई स्फुलिंग से निकलते हैं या कभी

आग कोयला में से चटकर स्फुलिङ्ग बनता है वह अणु चटन नाम का भेद है।

अन्धकार व छाया आतप व उद्योत पर्याय के विषय मे स्फुट ज्ञातव्य—पुद्गल द्रव्य की एक द्रव्य व्यञ्जन पर्याय अधकार कही गई थी। अधकार नाम है उसका जो दृष्टि का प्रतिबन्धक हो, जिसमे देख न सके और इस अधकार का अपहरण करने वाले कोई प्रकाशक पदार्थ ही होते हैं। यह अंधकार वस्तु के प्रदेश का ही परिणमन है। प्रकाशमान पदार्थ का सान्निध्य पाकर वस्तु प्रकाश रूप मे थी। प्रकाशक का अभाव होने पर वस्तु अधकार रूप मे परिणम गई तो यह अंधकार इसी कारण द्रव्य पर्याय कहलाता है। छाया भी पुद्गल की द्रव्य पर्याय है। छाया निष्पन्न कैसे होती कि जहा प्रकाश हो और उस प्रकाश का कोई आवरण आ जाय तो जो आवरण रूप है उसका आकार उस सामने की भूमि छाया रूप हो जाती है। जैसे कोई मनुष्य दीपक के आगे खडा हो गया था पुरुष खडा था, उसके एक ओर दीपक जला दिया तो उस दीपक प्रकाश का आवरण वह शरीर बन गया और उस शरीर की छाया पडती है। छाया दो प्रकार की होती है (१) उसी वर्णादिक के विकार वाली (२) प्रतिबन्ध मात्र। जैसे दर्पण मे या दर्पण जैसे कोई भी निर्मल पदार्थ मे मुख आदिक की जो छाया पडती है सो उस ही वर्णादिक रूप परिणति होती है। बाल काले हैं तो वे काले ही दिखेंगे। रूप जैसा है वैसा ही दिखेगा। जिस रग का कपडा है उस रग का ही दिखेगा, तो यह तो है वर्णादि विकार वाली छाया और जो प्रकाश के आवरण मात्र से जो भूमि पर छाया पड़ती है वह केवल एक प्रतिबन्ध मात्र है। उसका केवल आकार रहता है। वर्ण नही आता। चाहे लाल रग का कपडा हो, किसी रग की वस्तु हो उसकी छाया मे रग न आयेगा। केवल एक उतना अधकार जैसा होगा। यहाँ एक बात जानना चाहिये कि छाया जो पडती है सो वह विपरीत मुख वाली पडती है। जैसे कोई मनुष्य पूरब दिशा की ओर मुख करके खडा हो और सामने दर्पण को देखे तो दर्पण का प्रतिबिम्ब पूरब की ओर मुख वाला न रहेगा। अगर ऐसा होता तो प्रतिबिम्ब मे मुख दिख ही न सकता था। प्रतिबिम्ब मे मुख पश्चिम की ओर हो जाता है। इसी प्रकार सभी आकार प्रकार विपरीत दिशा मे छाया रूप मे रहते हैं। ऐसा क्यो होता है? यह एक निर्मल दर्पण आदिक पदार्थ का परिणमन ही इस प्रकार है। यहाँ एक दार्शनिक शका करता है कि दर्पण देखने से कही दर्पण की छाया नहीं दिखी, किंतु देखने वाले पुरुष के नेत्र से किरणें निकली और दर्पण से टक्कर खाकर वापिस आती हैं तो वे ही वापिस आयी हुई किरणें सीधे अपना मुख देख लेती हैं। दर्पण मे कोई प्रतिबिम्ब नही होता। इस शका के समाधान में प्रथम तो यह कहना है कि यदि वे किरणें वापिस आयें और वे अपना सही मुख देख लें तो वह मुख विपरीत न दिखना चाहिये। जिस दिशा मे है उसी दिशा मे रहते हुए दिखना चाहिए। पर प्रतिबिम्ब वाले दर्पण मे तो मुख दूसरी ओर दिखता है। मनुष्य का मुख पूर्व मे है। दर्पण मे मुख पश्चिम को हो जाता है, तो मुख दर्पण मे ही दर्पण के ढंग से, दर्पण के परिणमन विशेष से प्रतिबिम्ब रूप हुआ है, और यदि किरणें टक्कर खाकर लौटें और वे अपना मुख देख लें तो भीट आदिक से ये नेत्र की किरणें टक्कर खाकर क्यो नही अपने को देख लेती, क्योकि नेत्र की किरणो का आघात तो भींट से भी हो सकता है। तो इससे सिद्ध होता है कि नेत्र से किरणें नही निकलती किंतु ये नेत्र तो बिना भिडे ही दूर ठहरे हुए पदार्थ को देखते हैं। तो पुद्गल द्रव्य की द्रव्य व्यञ्जनपर्याय है छाया। जो प्रतिबिम्ब वाले दर्पण मे छाया हुई है वह दर्पण के प्रदेशो का पर्याय है। जो छाया का प्रतिबन्ध रूप है वह जमीन पर आदि पर हुई है वह जमीन आदि

का परिणमन है आतप भी पुद्‌गल द्रव्य की द्रव्य पर्याय है। यह सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश रूप पुद्‌गल परिणाम होता है। इसी को ही आतप कहते हैं। उद्योत—चद्रमणि, खद्योत, जुगुनू आदिक का प्रकाश उद्योत कहलाता है। उद्योत उष्ण प्रकाशरूप नही होता, किंतु मात्र एक प्रकाश ही उत्पन्न करता है।

क्रिया रूप पर्यायों का कथन—यहाँ एक शकाकार कहता है कि जब पुद्‌गल द्रव्य का परिणमन इस सूत्र मे बताया जा रहा है और वह भी प्रदेश की मुख्यता से तो क्रिया भी तो पुद्‌गल द्रव्य का परिणमन है। उसका यहाँ नाम क्यो नही लिया गया ? इसका उत्तर यह है कि इस सम्बन्ध मे पहले ही सकेत दे दिया था। जब धर्म अधर्म द्रव्य को निष्क्रिय बतला रहे थे तो स्वय ही यह बात सिद्ध सो गई थी कि पुद्‌गल द्रव्य निष्क्रिय नही है। उसमे क्रिया होती है। कोई यहाँ यह शका न करे कि जब धर्म अधर्म आकाश इन ३ द्रव्यो मे क्रिया का निषेध किया, बताया कि ये निष्क्रिय है इनमे क्रिया नही है और उससे यह अर्थ निकाला गया कि पुद्‌गल मे क्रिया होती है। तो यह भी अर्थ निकाल लेना चाहिये कि काल द्रव्य मे भी क्रिया होती है। यह शका यो न करना कि पचम अध्याय के कुछ पहले प्रकरण मे जिन जिनका नाम दिया गया उनही मे से छटनी की गई है। सूत्र कहा गया था—अजीवकाया धर्माधर्माकाश पुद्‌गला.। धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्‌गल ४ की ही चर्चा थी और उस प्रसग से पुद्‌गल ही तो रहा। तो उससे पुद्‌गल मे ही क्रियावानपने की सिद्धि हुई। यदि काल को सक्रिय मानना यहाँ इष्ट होता तो जहाँ द्रव्याणि व जीवा: इतना शब्द दिया था वहाँ काल शब्द भी दे देते, पर काल वहाँ न देकर जो इस अध्याय के अनेक सूत्र निकलने के बाद कालश्च कहा जायगा, करीब-२ अन्त मे तो उससे काल द्रव्य की बात सबसे निराली ही समझी जाती है।

क्रियाओ की दशविधता—क्रिया १० प्रकार की होती हैं। (१) पहली क्रिया है प्रयोग गति जैसे बाण, चक्र आदि प्रयोग किये जाते है या कोई पत्थर आदिक फेंक दिया, यह सब प्रयोगगति कहलाती है। (२) कोई क्रिया बधाभावगतिरूप होती है। जैसे तेदू के बीज, एरण्ड के बीज। इनके ऊपर का छिलका जब फटकता है तो बीज की अपने आप गति हो जाती है। (३) कोई क्रिया छिन्न गति नाम की है। जैसे मृदग, भेरी, शख आदिक के शब्द जो दूर तक जाते हैं वह छिन्नगति कहलाती है। (४) एक क्रिया अभिघात गति नाम की है। जैसे गेंद को पटक दिया तो पहली बार जो गेंद फेंका वह तो प्रयोगगति मे आया मगर जमीन से, भीट से टक्कर खाकर जो गति करती है वह अभिघात गति रूप क्रिया कहलाती है। (५) एक क्रिया है अवगाहन गति। जल मे नौका आदिक तैरते हुए जाते हैं वह अवगाहन गति क्रिया कहलाती है। (६) एक क्रिया है गुरुत्वगति। जो वजनदार पदार्थ है ईंट पत्थर आदिक उनका जो नीचे की ओर गमन है वह गुरुत्व गति कहलाती है। (७) एक क्रिया है लघुगति। जो अत्यन्त हल्के हैं तूमड़ी, रुई आदिक जो कि हवा से उड जायें उनकी गति लघुगति कहलाती है। (८) एकगति है सचारगति। जैसे पानी पर तैल गिर गया तो उस ही पर सचरण करता यहाँ वहाँ डोलता है। (९) एक गति है सयोग गति। सयोग से जो गति होती, जैसे वायु के सयोग से मेघ की गति होती, हाथी के सयोग से रथ की गति होती, गाड़ी मे बैल जुते हो तो गाडी भी चलती है। हाथ के सयोग से मूसल आदिक की भी गति होती है। कोई गेंद का बल्ला हाथ से चला रहा है या कोई मुद्‌गर घुमा रहा है तो हाथ के सयोग से गति है। (१०) एक गति है स्वभावगति। जैसे ज्योतिषी देवो की गति, परमाणु का गमन, मुक्त जीव का गमन, हवा और

अग्नि का गमन। अग्नि मे जो ज्वाला चलती है वह उसके स्वभाव से है। इन्ही सब क्रियाओ मे अन्त र्गत अनेक क्रियायें हैं। एक क्रिया है तिर्यक्गति। यह वायु मे होती है, वायु कभी सीधी गमन नही करती, किन्तु यथा तथा किसी भी प्रकार तिरछी गमन करती है। एक क्रिया है ऊर्द्ध गति। जैसे अग्नि की ज्वाला का गमन ऊपर ही होता है। हाँ कोई कारण मिला, हवामिले या किसी घन द्रव्य का रुकाव हो जाय तो वह ज्वाला अन्य दिशाओ मे जाती है किन्तु स्वयअपने आप ज्वाला ऊपर ही चलती है। एक गति है नियतिगति। जैसे पम्प से हवा भरना, किसी वस्त्रादिक से वायु चलाना यह नियत गति है। एक गति है अनियत गति। परमाणुओ की गति अनियत है, मुक्त जीवो की गति ऊर्द्धगति है। ज्योतिषो का नृलोक मे नित्य भ्रमण है ऐसी अनेक प्रकार की क्रियायें हैं, वे सभी द्रव्य व्यञ्जन पर्याय हैं, क्योंकि वे सब क्रियायें प्रदेशो मे ही हुई हैं।

पर्यायों का द्रव्य से अन्यत्व व अनन्यत्व का प्रकाशन। यहा एक शका होती है कि इस सूत्र मे मतु प्रत्यय लगाया गया है और यह प्रत्यय लगता है भिन्न चीजो के साथ जैसे धनवान, छत्ता वाला। ऐसे जो पदार्थ जुदे हो उनके साथ यह प्रत्यय लगता है तो क्या ये पर्यायें पदार्थ से भिन्न चीज हैं? यदि भिन्न हो तब तो ठीक है, अगर नही है भिन्न तो यहाँ मतुप् प्रत्यय कैसे लगाया? भिन्न हो तो यह है नही, क्योकि इससे अलग कोई पुद्गल नहीं दिखता। इस शका का समाधान यह है कि यह प्रत्यय अभिन्न अर्थ मे भी लगता है। जैसे ज्ञानवान। ज्ञान आत्मा से जुदी चीज नही है फिर भी प्रयोजनवश स्वरूप से कुछ निराला परखकर वान शब्द लगा दिया है। जैसे सारवान लकडी तो लकडी का जो सार है वह अलग चोज नही है फिर भी वान शब्द लगा है। या आत्मवान पुरुष, पुरुष अलग चीज न होने पर भी यहाँ प्रत्यय लगा है। इसी तरह ये पर्यायें पुद्गल से अलग न होने पर भी यहाँ मतुप् प्रत्यय लग सकता है। और दूसरी बात यह है कि पर्याय का लक्षण है अनित्यपना और पुद्गल द्रव्य का लक्षण है नित्यपना। द्रव्य दृष्टि से पुद्गल नित्य है, पर्याय दृष्टि से चूकि ये पर्यायें सदा नही रहती इस कारण अनित्य है। तो कुछ तो भेद पाया गया और इस भेद दृष्टि मे उन पर्यायो को जुदा परख लिया। फिर तो मतुप् प्रत्यय लगाने मे शकाकार के भाव के अनुसार भी कोई शका न रहना चाहिये।

पुद्गल के चिह्नो को बताने के लिए पृथक दो सूत्र कहे जाने के प्रयोजन—यहा शका होती है कि इस सूत्र से पहले सूत्र मे कहा गया कि स्पर्श, रस गन्ध, वर्ण वाले पुद्गल हैं और प्रकृत सूत्र मे शब्द बन्ध आदिक वाले बताया, तो इन दोनो सूत्रो को एक ही क्यो नही कर दिया गया? इसका उत्तर यह है कि सूत्रो को जुदा-जुदा कहने का कोई रहस्य है, और इससे अनेक बातें प्रसिद्ध होती हैं। जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, वण जो इससे पूर्व सूत्र मे बताये हैं वे परमाणुओ के भी होते हैं। और स्कधो के भी होते हैं, किन्तु इस सूत्र मे जो शब्द बध आदिक बताये गये हैं वे स्कधो के ही होते हैं। अणु के नही होते। थोडा कोई यह सोच सकता है कि जो ये १० पर्यायें बताई गई है इनमे सूक्ष्मपना तो परमाणु मे भी पाया जा सकता, पर उन्हे यह समझना चाहिए कि यहाँ जो सूक्ष्म शब्द दिया है वह आपेक्षिक है। बडे से छोटा सूक्ष्म है। उससे छोटा हो तो वह सूक्ष्म है। और फिर स्थूलपना तो बताया ही था, वह तो स्कध मे ही होता है। स्थूल का प्रतिपक्षी होने से सूक्ष्म भी बताया गया है। तो समझना यह चाहिये कि जो आत्यतिक सूक्ष्मता है वह तो परमाणु मे है और जो आपेक्षिक सूक्ष्मता है वह स्कधो मे है। इसके अतिरिक्त यह भी समझना चाहिए कि इससे पूर्व सूत्र मे तो गुणो

वात कही गई है और इस सूत्र मे द्रव्य पर्यायों की वात कही है। इन दो सूत्रो को पृथक कहने का यह भी कारण है कि यह प्रसिद्धि करना था कि स्पर्शादिक गुणो का एक उस ही जाति मे वदल होता है। जैसे स्पर्श गुण अभी कोई शीत पर्याय में है तो प्रायः शीत पर्याय मे ही कम शीत अधिक शीत आदिक रूप से परिवर्तन चलेगा और कभी उष्ण रूप से भी परिवर्तन हो जाता उस पुद्गल जाति का तो भी स्पर्श जाति को छोड़ता नही, इसी प्रकार रस मे भी प्रथम तो किसी एक रस का उसी की डिग्रियो मे परिवर्तन चलेगा, कभी अन्य रस रूप भी हो तो रस रूप ही तो हुआ, रस गुण का ᐟरिणमन किसी अन्य गुण के परिणमनरूप न होगा, ऐसे ही गंध गुण का परिणमन सुगन्ध है तो प्रथम तो सुगन्ध की ही डिग्रियो मे कमो वेशी होती रहेगी और कभी दुर्गन्ध रूप भी वह पुद्गल बन जाय तो गन्ध जाति का उल्लघन नही किया। ऐसे ही कोई भी वर्ण वर्ण जाति का उल्लघन करके नही परिणमता। वह विशेषता भी सूत्र के पृथक कहने से ज्ञात होती है। यह भी एक तथ्य है कि पूर्व सूत्र मे तो लक्षण कहा गया है जो सब पुद्गलो में पाया जाता। इस सूत्र मे पर्यायें कही गई हैं जो कभी किसी के होती हैं।

सूत्रोक्त च शब्द से अवशिष्ट पर्यायों का ग्रहण—यहा यह भी सोचा जा सकता कि पुद्गल के और भी तो परिणाम शेष रह गये हैं जिनका सूत्रो मे उल्लेख नही है। जैसे नोचना, लुच जाना, अभिघात होना, दब जाना आदिक भी अनेक परिणमन हैं जो सूत्र मे नही किए गये हैं। तो यह समझना चाहिए उन सबके सम्बन्ध मे कि जो भी परिणमन और शेष रह गए हैं उनका च शब्द से ग्रहण हो जाता है। इस प्रकृत सूत्र के अन्त मे च शब्द दिया है। तो जो और भी ऐसे प्रादेशिक परिणमन शेष रह गये हैं अब उनका यहा ग्रहण कर लेना चाहिये। सामान्यतया इतने वर्णन के बाद यह जिज्ञासा होती है कि जब ऐसा योग करण बताया गया है, प्रदेश का परिणमन, स्पर्शादिक गुणो का परिणमन बताया गया है वह जिसके परिणमन है वह क्या केवल परमाणु ही है अथवा स्कन्ध भी है, ऐसा उन पुद्गलो के सम्बन्ध मे भेद रूप वर्णन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

अणवः स्कन्धाश्च ॥५-२५॥

अणु और स्कन्ध पुद्गलों का निर्देशन—स्पर्श आदिक परिणाम वाले पुद्गल दो प्रकार के है—(१) अणु और, (२) स्कन्ध। अणु तो सबसे छोटा अविभागी द्रव्य है और स्कन्ध दो या दो से ज्यादह अणुओ के बन्ध मे हुआ पिण्ड है। अणु शब्द अण धातु से बना है। जिसकी निरुक्ति है—अण्यन्ते शब्द्यन्ते इति अणु। प्रदेशमात्र मे रहने वाले स्पर्श आदिक गुणो के द्वारा जो निरन्तर परिणमते रहते है, इस प्रकार जो कहे जाते हैं यो शब्द के जो विषय बनते है वे अणु कहलाते हैं। यह अणु अविभागी एक प्रदेश मात्र परमाणु है, इसी कारण प्रत्येक परमाणु प्रदेशमात्र है यही उनकी आदि है, यही मध्य है और यही अन्त है। यदि अणु का आदि मध्य अन्त कुछ और-और रहे तो वह अविभागी नही रह सकता। ये अणु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण में आ ही नही सकते। स्कन्ध शब्द बना है स्कन्धिद् धातु से। जिसका अर्थ निकलता है कि स्थूलपने से ग्रहण मे रखने आदिक व्यापार मे जो आ सकें उनको स्कन्ध कहते हैं यद्यपि स्कन्ध का अर्थ यह निकलता है तो भी रुढि अर्थ समझना वाले कई स्कन्ध ऐसे होते है जो ग्रहण करने या रखने आदिक व्यापार के अयोग्य हैं, फिर भी वे स्कन्ध कहलाते है। जो दो परमाणुओं का पिण्ड है, तीन-चार आदिक संख्यात परमाणुओं का पिण्ड है, यहा तक कि असंख्यात परमाणुओ का जो पिण्ड है वह ग्रहण और रखने आदिक मे नही आता। जितने

भी ये स्कन्ध हम आपके व्यवहार मे आ रहे हैं वे सब अनन्त परमाणुओ के पिण्ड हैं।

सूत्र मे अणु और स्कन्ध इन दो शब्दों को जुदे-जुदे पद मे व बहुवचन मे रखने का कारण— सूत्र मे अणु और स्कन्ध दोनो शब्दो मे बहुवचन का प्रयोग किया गया है। सो यद्यपि समग्र पुद्गल अणु और स्कन्ध मे आ गये फिर भी अणु अनेक हैं, अनन्त हैं, स्कन्ध भी अनेक हैं। तो उन जाति के आधार मे अनन्त भेद वाले ये पुद्गल है, ऐसी सूचना के लिये इन दोनो शब्दो का बहुवचन मे प्रयोग किया गया है। यहाँ कोई शका करता है कि दो पद अलग-अलग न रखते सूत्र मे और सीधा ही कह देते अणु स्कन्धाः ऐसा समास कर देते, बहुवचन भी रखा रहता तो यह लघु वचन बन जाता और जितना कम से कम वचन कहे जायें सूत्र मे उतना ही उत्तम सूत्र माना जाता है। इस शका के समाधान मे कहते हैं कि यहा अणु और स्कन्ध को जुदा-जुदा रखने का प्रयोजन यह है कि यह ज्ञात होवे कि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण वाले तो परमाणु है और शब्द बन्ध, सौक्ष्म्य आदिक जो पूर्व सूत्र मे द्रव्य पर्यायें कही गई हैं वे सब स्कन्ध हैं। यद्यपि स्कन्ध की परिस्थिति मे भी स्पर्श, रस आदिक रहते हैं मगर स्पर्श रस आदिक सभी अणुओ मे हैं और अणु मिलकर एक पिण्ड बने तो वहा भी स्पर्श आदिक रहे। किन्तु अणु मे न था और स्कन्ध बने तब ही स्पर्श आदिक हो, ऐसी बात नहीं है। इस कारण स्पर्शादिक तो अणु के ही कहलाते हैं। शब्द- बधादिक ये अणु के नही कहला सकते, क्योकि अणुओ मे ये पर्यायें हैं ही नही। वहा तो केवल स्वभाव द्रव्य व्यजन पर्याय है—आकार के नाते, प्रदेश के नाते। और, शब्द बधादिक जो पर्यायें हुई हैं वे स्कन्ध होने पर ही हुई हैं। इससे ही सूत्र मे कहे गये दोनो शब्दो का पूर्व सूत्र जो दो कहे गये है उनके साथ क्रम से सम्बन्ध बनता है, यह सूचना देने के लिये अणु और स्कन्ध दोनो शब्दो का समास न करके जुदे-जुदे पद मे रखा है।

परमाणु कारण कार्योभयरूपता—अब यहा एक शकाकार कहता है कि परमाणु तो कारण रूप ही होता है और वही वास्तविक अन्त्य परमाणु कहलाता है। यह शका करना भी बिना विचारे बोलना है, क्योकि परमाणु कथचित् कार्य रूप भी हैं। जैसे आगे सूत्र आयेगा—भेदादणुः, भेद से अणु परमाणु बनता है। तो वह अणु कार्य रूप ही तो कहलाया। तो अणु केवल कारण रूप ही है, यह कहना सही तो न रहा। यदि शकाकार यह कहे कि हमको कथचित् कार्यरूप परमाणु को मानने मे विरोध नही है, पर परमाणु के कारणपने का निषेध तो नही हुआ, इसके उत्तर मे कहते हैं कि बात तो यह ठीक है, परमाणु कार्य रूप भी है, कारण रूप भी है, किन्तु यहाँ शकाकार तो एकवाद शब्द लगाकर बोलता है कि परमाणु कारण रूप ही है। तो ऐसा कहने से परमाणु के कार्यरूपपने का निषेध तो बन जाता है सो तो सही नही है, परमाणु कारणरूप भी है और कार्यरूप भी है। और, शकाकार ने साथ ही यह कहा अपने सिद्धान्त मे कि कारण परमाणु नित्य ही होता है या परमाणु नित्य ही होता है, सो भी अयुक्त है, क्योकि परमाणु स्निग्ध, रुक्ष आदिक रूप परिणमन होने से अनित्यरूप भी है। कोई परमाणु स्निग्ध मे ही अनेक डिग्रियो मे परिणमन करता रहता है अथवा कभी स्निग्ध से रुक्ष रूप परिणमता है तो एक अवस्था का प्रादुर्भाव हो, एक अवस्था का व्यय हो तो जहा उत्पाद व्यय हो वही तो अनित्यपना कहलाता है। अब शकाकार कहता है कि कारण परमाणु यदि अनादि से ही अणुत्व अवस्था मे रहता है और वह दो अणु आदिक पिण्ड रूप कार्य का कारण भी बनता है तो भी वह कारणरूप ही तो रहा, कार्य न रहा, क्योकि वह भेद से उत्पन्न नही हुआ। वह तो अपनी स्वरूप सत्ता को लिये हुये है ही। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि परमाणु को यदि अनादि से अणुत्व

अवस्था वाला ही माना जाये अर्थात वह अणु से कभी स्कन्ध रूप मे नही आता तो ऐसे अणु मे कार्य-पना हो ही नही सकता। अर्थात जो शकाकार की यह मान्यता है कि द्वयणुक आदिक स्कंदो का हेतु-भूत होने पर भी वह सदा कारणरूप ही रहता है तो दोनो बातें परस्पर विरुद्ध है। यदि अनादि पारिणामिक अणुरूप ही अवस्था मानी जाये तो, उसका कार्य नही हो सकता। कार्य हुआ तो वह अणुत्व स्वभाव न रहेगा। सो कार्यरूप तो स्वीकार करते ही है, क्योकि कार्यरूप न माने तो कारण शब्द भी नही कहा जा सकता। तो जब कार्य मान लिया गया तो एक बार वह स्कन्ध मे आ गया, पिण्ड रूप बन गया। अब जब कभी भी उनका भेद होगा तो उससे अणु की निष्पत्ति होगी इस कारण वह कार्यरूप सिद्ध हो ही जाता है।

छाया आदिको की स्कन्ध कार्यता—यदि शकाकार यह कहे कि छाया आदिक भी परमाणु के कार्य है जो कि अनादि से अणु रूप रह रहा है सो यह कहना भी अयुक्त है, क्योकि छाया जैसा कार्य स्कन्धो के कारण होता है। ये छाया आदिक अनादि परमाणु के कार्य नही हैं, किन्तु अनेक परमाणुओं का मिलकर जो शरीरादिक पिण्ड बना है वह पिण्ड का कार्य है छाया। यहा यह सदेह न कहना कि यह केवल कहने मात्र की चीज है, छाया आदिक स्कन्ध के कार्य है, परमाणु के कार्य नहीं है, यह सदेह यो न रखना कि छाया आदिक तो चाक्षुष हो रहे है, चक्षुइन्द्रिय के विषयभूत हैं। सबको दृष्टि मे आ रहा है कि यह यह अमुक चीज की छाया पड रही है। तो जो भी चाक्षुष है, छाया आदिक वे अचाक्षुष अणु के कार्य नही हो सकते। परमाणु तो स्वय अचाक्षुष है। जब चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण मे आ ही नही सकता तो उसका कार्य कैसे चाक्षुष बन जायेगा ? और जो शरीर आदिक की छाया पड रही है वह शरीरादिक चाक्षुक है तो उनका कार्य छाया आदिक भी चाक्षुष है।

परमाणु की विशेषतायें—यहां यह निष्कर्ष निकला कि वह परमाणु द्रव्य दृष्टि से नित्य है, पर्यायदृष्टि से अनित्य है और इसी प्रकार परमाणु कारणरूप है—और कार्य रूप भी है। परमाणु मे कोई एक रस रहेगा। पांचो रस पर्यायें नही रह सकती। दो गन्ध पर्यायो मे एक गन्ध पर्याय होगा, इसी प्रकार ५ वर्ण पर्यायो मे से कोई एक वर्ण पर्याय होगी। स्पर्श मे दो स्पर्श पर्याय हो सकते हैं। स्निग्ध सूक्ष्म मे से एक शीत और उष्ण मे से एक। इस तरह परमाणु ५ गुण पर्याय वाला हुआ। स्कन्ध तो अनेक परमाणुओ का पिण्ड है, सो उसमे यह देखा जाता है कि उसका कोई हिस्सा चिकना है तो कोई हिस्सा रुखा है। कोई ठंडा है तो कोई गरम है। जैसे एक धूपदान है वह गरम है और उसमे जो डडी है, उठाने की वह डडी है या कोई एक ही काठ है वह एक ओर गरम है, एक ओर ठडा है। स्कन्धो मे तो यह बात देखी जा सकती, पर परमाणु मे यह बात नही हो सकती, क्योकि वह अविभागी पुद्गल द्रव्य है। उसमे तो रस पर्याय कोई एक, गन्ध पर्याय कोई एक, वर्ण पर्याय कोई एक और दो स्पर्श पर्यायें होती है। दो स्पर्श पर्यायें परमाणु में मानने पर कोई विरोध नही है। परमाणुओ मे गुरुलघु, कोमल, कठोर ये स्पर्श सम्भव ही नही है। ये चार स्पर्श पर्यायें स्कन्ध मे ही होती हैं। परमाणु है या नही, उनका अस्तित्व उनके कार्य से जाना जाता है। यदि परमाणु न होते तो शरीर इन्द्रिय और जो जो भी कुछ दृश्य पदार्थ हो रहे है ये कार्य न बन सकते थे। अथवा जो भी दिख रहा है, इसके भाग बनाये जायें, दो भाग हुये, चार भाग हुये, बनाते जायें, जो अन्तिम

भाग है उस भाग के भी सहज अनेक भाग होवेंगे। उन सबमे जो अविभागी पुद्गल है उसी को ही अणु कहते हैं।

अणु की अनेकान्तरूपता— अणु के सम्बन्ध मे जो जो भी दार्शनिक के सिद्धान्त हैं वे किन-किन दृष्टियो को लेकर हैं, इस कारण यदि उसका पूर्णरूप से निर्णय बनाया जाये तो वह अनेकान्त का ही निर्णय बन सकता है और उस दृष्टि से परमाणु कथञ्चित् कारणरूप है, कथञ्चित् कार्यरूप है। क्योकि दो अणु वाला अनेक अणु वाला स्कन्ध बनने का निमित्त है परमाणु। मूल तो परमाणु ही है इस कारण वह कारणरूप है। पर अब स्कन्ध अवस्था मे आ गया, तब कभी भेद होगा तो भेद होते-होते अन्तिम भेद से जो निष्पन्न होगा वह परमाणु है और इसी कारण वह कार्यरूप है। परमाणु का और भेद नही हो सकता और इसका कारण कार्यरूप है। परमाणु का और भेद नही हो सकता इस कारण परमाणु कथञ्चित् अन्त्य है अर्थात् अन्तिम भाग है जिसके कि और विभाग नही हो सकते, फिर भी याने प्रदेशमात्र होने पर भी गुणो का भेद उनमे पाया जाता है। एक प्रदेशी परमाणु मे भी स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णादिक गुणो पर दृष्टि देते हैं तो उन दृष्टियो से इसके भेद बनने से यह अन्त्य नही रहता है। ये परमाणु अपने इस द्रव्य स्वरूप का त्याग नही कर सकते इस कारण ये नित्य हैं। तो बध और भेद पर्याय की दृष्टि से या उनके गुण अन्य-अन्य पर्यायो रूप से परिणमते रहने से ये परमाणु अनित्य कहलाते हैं। ये परमाणु कार्य के द्वारा पहिचान मे आते हैं। इन पिण्डो को देखकर परमाणु का अनुमान ज्ञान बनता है इस कारण परमाणु, कार्यलिङ्ग है, अर्थात कार्य जिसका अस्तित्व बताने वाला चिन्ह हो उसे कार्यलिङ्ग कहते हैं। फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञान में आ सके, ऐसी पर्याय की दृष्टि से वह कार्यलिङ्ग नही है। यहाँ तक परमाणु का कथन हुआ।

अब कुछ स्कन्ध के बारे मे कहते हैं। स्कध कहलाता क्या है ? जिसका बध परिणाम प्राप्त हुआ है अर्थात अनेक परमाणुओ का मिलकर बध होकर जो पिण्ड बना है उसको स्कध कहते हैं। वह स्कध है क्या ? बध को प्राप्त परमाणुओ का ही समूह है। ऐसे ये स्कध तीन प्रकार हैं—स्कध, स्कध देश और स्कध प्रदेश। अनन्तानन्त परमाणुओ का जहा बंध विशेष हुआ है वह पूरा पिण्ड स्कध कहलाता है। उसका आधा भाग देश कहलाता है और उस आधे का भी आधा भाग प्रदेश कहलाता है। वह स्कध ये ही सब पर्यायें तो हैं, जो दृष्टिगोचर हैं, हमारे उपयोग और व्यवहार मे आ रहे हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। अन्य दार्शनिको की दृष्टि के अनुसार वनस्पति भी चू कि पिण्ड रूप है, सो उसे ही अन्य जनो ने पृथ्वी मे ही गर्भित किया है। पृथ्वी घट आदिक है, जो स्पर्श आदिक गुण वाले है, और शब्द बध आदिक द्रव्य पर्याय वाले हैं। जल आदि भी विकार रूप होने से यह भी स्पर्शादिक गुण वाला है और शब्दादिक पर्यायो वाला है।

प्रत्येक भौतिक पदार्थों की स्पर्श रस, गन्ध वर्ण युक्तता—कुछ दार्शनिको की ऐसी दृष्टि है कि पृथ्वी मे तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण चारो पाये जाते हैं, पर जल मे गन्ध नही पाया जाता। अग्नि मे रस और गन्ध दोनो नही पाये जाते, वायु मे रस, गन्ध, वर्ण तीनो नही पाये जाते, पर उनका कथन भी मोटा कथन है। वास्तव मे तो जहाँ स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण मे से कोई एक भी गुण हो तो वहा चारो गुण होते ही हैं। भले ही किसी मे किसी गुण की पर्याय प्रकट न मालूम होती हो तो भी ये गुण सदा चारो ही साथ रहते हैं। वस्तुत. तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भी जुदे-जुदे पदार्थ नही है। पर्यायें सब जुदी-जुदी चल रही हैं। किन्तु वे सब एक पर्याय जाति के ही रूप हैं तब ही तो सूर्यकान्त-

मणि जो पृथ्वी है वह सूर्य की किरणो का सान्निध्य पाकर जल बनता, चन्द्रकान्तमणि चन्द्र की किरणो का संयोग पाकर जल होता। तो पृथ्वी भी जल रूप बन गई। तो ऐसे ही ये चारो पर्यायें भी एक स्कन्ध मे, कालान्तर मे बदलती रहती हैं और इसी कारण जब सब का मूल परमाणु है तो सभी मे स्पर्श, रस, गन्ध याने ये चारो ही गुण पाये जाते है ऐसे अनेक परिणमन अनुभव मे भी आ रहे है। कोई आहार ग्रहण किया, जल पिया उसके फल मे भी वात, पित्त, श्लेष्मा, ये परिणमन होते हैं। जठराग्नि भी है, तेज भी है। उस खाये हुए अन्न मे वायु भी बन गई तो ये सब एक दूसरे रूप परिणमते रहते हैं। तो यो पृथ्वी हो वह भी चारो गुणवान है। इसी तरह जल, अग्नि, वायु भी चारो गुणों से युक्त है। इस कारण जिसका यह दर्शन है, सिद्धांत है कि पृथ्वी आदिक ४, ३, २, १ गुण वाले हैं, वह सिद्धात युक्त नही है।

अणु और स्कन्धों की निष्पत्ति की विधि की जिज्ञासा—अब यहाँ तक अणु और स्कध का लक्षण कहा गया तो वहाँ यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि अणुरूप और स्कधरूप परिणाम क्या अनादि से ही ऐसा है या वह किसी समय बनता है, अनादिमान है ? तो उत्तर तो इसका यही है कि वह अनादिमान है। उनका यह परिणमन, आकार, पर्याय समय-समय पर बनता है। तो जब यह आदिमान है तो यह भी जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि आखिर वह किस निमित्त से उत्पन्न होता है। तो इस जिज्ञासा के समाधान के लिए अणु और स्कधो की निष्पन्नता का कारण बतायेंगे जिसमे सर्वप्रथम सघात की उत्पत्ति का करण बताने के लिये सूत्र कहते हैं।

भेदसघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥५-२६॥

स्कन्ध की निष्पत्ति का विधान—भेद, सघात और भेद संघात से स्कध उत्पन्न होता है। भेद किसे कहते हैं ? मिले हुए स्कन्ध का बाह्य आभ्यंतर कारण के वश से नानापन हो जाना इसे भेद कहते है, और सघात किसे कहते हैं ? अलग-अलग रहने वाले पदार्थों का एकीभाव हो जाना इसे सघात कहते हैं। यहाँ एक शंका हो सकती है कि जब शब्द दो ही दिये हैं—भेद और सघात, और दोनो का समास किया है तो द्विवचन इस पद मे आना चाहिये। बहुवचन क्यो दिया है ? समाधान यह है कि दो शब्द है और उनका समास है और फिर भी बहुवचन है तो उसमे कोई अर्थ विशेष जाना जाता है। अथवा ये ३ शब्द रखना चाहिये। (१) भेद (२) भेदसघात और (३) सघात। तीनो का समास होने पर दो बार प्रयुक्त किये गये भेद शब्द मे एक लुप्त हो जाता है। जिससे तीन जाहिर होता है। कोई सघात बडा है और उसका भेद बना और भेद होने पर भी सघात ही रहा, स्कध ही रहा। तो वह स्कध भेद से उत्पन्न हुआ है, जैसे मानो ८ अणुओं का स्कन्ध है और भेद हो जाने पर ४-४ अणु के दो स्कन्ध हो गये तो स्कन्ध ही तो रहे, तो ऐसे ये स्कन्ध भेद से उत्पन्न हुए हैं। कभी स्कन्धो का भेद हुआ और उसी समय उसमे कुछ स्कध या अणु मिल गये तो वह भेद सघात रहा, भेद भी रहा और सघात भी रहा याने भेद के साथ सघात रहा। यो यह स्कध भेदसघात से उत्पन्न हुआ और केवल सघात से उत्पन्न हुआ, यह तो केवल स्पष्ट ही बात है। अनेक परमाणु मिल गए, स्कध बन गया। यहाँ उत्पद्यन्ते क्रिया है, जिसमे उप तो उपसर्ग है और पदगतौ धातु है। उत उपसर्ग के साथ पद धातु का अर्थ बनता है उत्पन्न होना। स्कंध भेद सघातो से उत्पन्न होता है। यहाँ भेद सघातेभ्य. यह हेतु के अर्थ मे पद प्रयुक्त है। भेद सघातो के कारण यह स्कन्ध उत्पन्न होता है। विभक्ति तो यह पचमी है और पचमी विभक्ति भी हेतु अर्थ मे आती है, लेकिन प्रकरण अनुसार सभी विभक्तियो के हेतु

अर्थ निकल जाते है। स्कन्ध दो अणु का भी होता है। एक-एक बढाते जाइये—सख्यात, असख्यात अणुओ का होता है और अनन्त अणु का भी स्कन्ध होता है। तो दिखने मे जितने भी स्कन्ध आते हैं वे सब अनन्ताणुस्कन्ध हैं। अब स्कन्धो की उत्पत्ति के कारण बताकर अणु की उत्पत्ति का कारण बतलाते हैं।

भेदादणुः ॥५—२७॥

अणु की निष्पत्तिका विधान—अणु भेद से ही उत्पन्न होता है। इससूत्र मे केवल २ पद हैं —भेदात् और अणुः। जिसका सीधा अर्थ है भेद से अणु होता है, किन्तु स्कधो की उत्पत्ति बताने के बाद इस सूत्र से अवधारण होता है, अर्थात् अणु भेद से ही होता है। ऐसे अनेक प्रयोग होते हैं जिसमे एव तो नही लगा रहता, पर उसका अर्थ निकलता है। जैसे किसी के विषय मे कहा जाय कि यह तो पानी खाता है तो उसका अर्थ यह निकलता कि पानी के सिवाय और कुछ खाता ही नहीं है। सो ऊपर सूत्र में कहा गया कि भेद और सघात से ये सब उत्पन्न होते हैं। तो प्रकरणवश तो अणु और स्कध सबके लिए बात आई थी पूर्व सूत्र मे, फिर यहाँ अणु की उत्पत्ति बताने का अर्थ ही यह है कि अवधारण करता है कि अणु भेद से ही होता है। इससे पहले जो सूत्र कहा गया था, जिसमे वर्णन बताया गया स्कधों का और सूत्र जिस सिलसिले से कहा गया है उसके माफिक तो दोनो ही आते हैं। भेद, भेद-सघात और सघात से, अणु और स्कध हुआ करते हैं। अब उसमें जिस तरह जो होता हो उस तरह लगा लिया जाता है। तो जब भेद की बात यहाँ आ गई तो भेद कहना एक अवधारण सिद्ध करता है। और इस ही अवधारण के कारण पूर्व सूत्र मे स्कधो का ही वर्णन है। ऐसा फलितार्थ निकलता है। परमाणु भेद से ही उत्पन्न होता है। न तो भेद साघात से होगा और न संघात से होगा। परमाणु एक प्रदेशी होता है। किसी स्कध का भेद करके साघात किया जाय उससे अणु हो ही नही सकता। अथवा कुछ और मिलता और उससे अणु हो ही नही सकता या स्कधो का भेद होने पर भी अनेक परमाणुओ का स्कध रहे दोनो तो भी अणु नही बना। ऐसा भेद हुआ जिससे एक प्रदेशी अणु अलग हो जाय तो ऐसे भेद से अणु उत्पन्न होता है। अब यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि उत्पत्ति बताने वाले सूत्र मे सघात शब्द से ही स्कध की सिद्धि हो जाती है तो फिर वहाँ भेद साघात ग्रहण करना अनर्थक रहा। तो उस भेदपूर्वक साघात का जो ग्रहण किया गया उसका प्रयोजन बताने के लिए अब सूत्र कहते हैं।

भेदसघाताभ्यां चाक्षुष ॥५—२८॥

अचाक्षुष स्कध से चाक्षुष स्कध की निष्पत्ति का विधान— पहले जो ३ बातें कही गई थी कि स्कन्ध भेद से होता है, भेद साघात से होता है और सघात से होता है तो उनमे कोई आँख से से दिखने वाला स्कन्ध है और उसका भेद हो गया तो भेद हो जाने पर यह नही कहा जा सकता कि वह भेद किया गया स्कन्ध भी आँखो से दिख हो जायेगा। दिख भी जाये ऐसा भी हो सके और न दिखे ऐसा भी हो सके। कोई अचाक्षुष स्कन्ध है जो आँखो से नही दिख सकता। उसके भेद होने पर स्कन्ध तो रहा आयगा, पर वह दिखेगा ही नही। यहाँ यह जानकारी कराई जा रही है कि कोई स्कन्ध चाहे वह अनन्त परमाणुओ के समूह से भी बना हुआ है, यदि अचाक्षुष है तो वह चाक्षुष कैसे हो सकता है? उसके यहाँ दो कारण बताये गये। जो भी अचाक्षुष स्कन्ध भेदसघात और सघात से होता है, केवल भेद से नही होता। कोई स्कन्ध इतने छोटे हैं कि वे आँखो से दिखते ही नही हैं। तो

उसके भेद करने से तो और भी छोटे हो जायेंगे। आँखो से कैसे दिखेंगे ? इस कारण अचाक्षुष स्कध सिर्फ भेद पूर्वक सघात होने से अथवा संघात होने से ही चाक्षुष हो सकता है। अब यहाँ एक स्मरण के साथ जिज्ञासा होती है कि पहले तो यह बताओ कि सभी द्रव्यो का उपकार कैसे होता है ? गति स्थिति, अवगाह, वर्तना शरीरादिक परस्पर जैसे उपकार के द्वारा अनुमान किया गया था, उन द्रव्यों का लक्षण क्या है ? वे द्रव्य हैं यह कैसे निश्चित होता है। उसके उत्तर मे कहते हैं—

सद् द्रव्यलक्षणम् ॥५-२६॥

द्रव्य का लक्षण—द्रव्य का लक्षण सत् है। जो सत् है वह द्रव्य है। अब सत् का लक्षण क्या है, यह भी एक जानना बहुत आवश्यक है, उसके लिए सूत्र कहेगे, उससे लक्षण जाना जायेगा। कोई सत् चाहे इन्द्रिय ग्राह्य हो चाहे अतीन्द्रिय हो, प्रत्येक सत् मे बाह्य और अध्यात्म निमित्त की अपेक्षा उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तता होती है। वही सत् होता है। तो जितने भी ये धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदिक द्रव्य है वे सत्त्व होने के कारण द्रव्य हैं। तो अब यहा सत् का लक्षण कहा जा रहा है।

उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् ॥५-३०॥

सत् का स्वरूप—उत्पादव्यय ध्रौव्य से युक्त हो उसे सत् कहते हैं। यह लक्षण कहना क्यो आवश्यक हुआ कि एक मोटे रूप से कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि जो पदार्थ गति, स्थिति आदिक का उपकार करे वह द्रव्य कहलाता है। तो कदाचित् ये पदार्थ उपकार करते हुये विदित न हो तो क्या ये द्रव्य न कहलायेंगे ? उस प्रश्न के उत्तर मे यह सूत्र आता है कि चाहे किसी को उनका उपकार विदित हो या न हो, लेकिन जो उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त है वह पदार्थ सत् होता है। उत्पाद का अर्थ है अपनी जाति का परित्याग न करके अन्य भावो की प्राप्ति होना उत्पाद है। चेतन अथवा अचेतन द्रव्यो का अपनी जाति न छोडते हुये निमित्त वश से अन्य भावो की प्राप्ति होना उत्पाद है। जैसे मिट्टी के पिण्ड मे मिट्टी जाति को न छोडकर घडा बन गया, यह उत्पाद हुआ, किसी भी पदार्थ में उत्पाद अपनी जाति को त्याग कर नही होता। जैसे मिट्टी से कपडा न बन जायेगा। उस मिट्टी में जो भी उत्पाद होगा वह मिट्टी जाति का ही होगा, किसी जीव मे जो भी उत्पाद होगा तो जीव में जो गुण हैं उन गुणो में ही उत्पाद होगा। कही जीव पुद्गल के रूप से न उत्पन्न हो जायेगा। कोई भी पदार्थ अपनी जाति को त्यागकर नही उत्पन्न हुआ करते, क्योकि उत्पन्न होने के मायने कोई नई चीज बनती नही है, किन्तु जो हैं उसकी ही अवस्थायें बदल जाती हैं। तो अवस्था बदलने का अर्थ ही यह है कि जाति वही ही रहेगी, उसकी अवस्थायें बदल जायेंगी। व्यय किसे कहते हैं ? अपनी जाति का परित्याग न करके पहले भावो का विलय हो जाना इसे व्यय किसे कहते है। जैसे जब घट उत्पन्न हो गया तो मृतपिण्ड के आकार का व्यय हो गया। ध्रुव नाम किसका है ? जो अनादि परिणामिक स्वभाव रूप से न तो व्यय को प्राप्त होता है, न उदय को प्राप्त होता है किन्तु ध्रुव रहता है, स्थिर रहता है उसे ध्रुव कहते है। और ध्रुव के भाव का नाम है ध्रौव्य। जैसे मृतपिण्ड अवस्था हो चाहे घट अवस्था हो, सभी मे मिट्टी का अन्वय रहता है। जैसे जीव की चाहे ससार अवस्था हो या मुक्त अवस्था हो, सब अवस्थाओ मे जीव स्वरूप का अन्वय रहता है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य व सत् का सज्ञा लक्षण प्रयोजनादि की अपेक्षा कथंचित् भेद और पदार्थ के स्वरूप प्रदेश की अपेक्षा अभेद—यहाँ एक प्रश्न होता है कि युक्त शब्द का प्रयोग वहाँ होता है कि पहले तो पदार्थ वे भिन्न-भिन्न हो, फिर उनका सयोग हो तब युक्त शब्द लगता है। जैसे

छतरी से युक्त, घन से युक्त, तो ये पदार्थ पहले अलग-अलग है, फिर इनका सम्बन्ध बना तो ये युक्त कहलायेंगे। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि युक्त शब्द युजि धातु से बना है। जिसके अर्थ मे सत्ता का अर्थ समाया हुआ है। सभी धातु भेद पायी होती हैं, उनका विशेष हो तो भी उसमे सत्त्व गर्भित है। तो इसे सामान्य भेद सत्ता से वे सब विशेष धातुयें अपने अर्थ को और साथ लगाकर विषय किया करती हैं। धातु का जो विशेष अर्थ है उस अर्थ के साथ भी सत्त्व लगा हुआ है। तो यहाँ चाहे उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् कह दिया जाये, चाहे उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत् कहो, एक ही बात है। यहा उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण आदिक भेद से भिन्न भिन्न भी कथञ्चित् हैं और उन द्रव्यो से जुदे प्रदेशो मे नही पाये जाते हैं इससे वे अभिन्न भी हैं। सर्वथा भेद नही सर्वथा अभेद नही, सर्वथा अभेद मानने पर अब प्रतिपादन ही नही हो सकता। सर्वथा भेद मानने पर वस्तु का स्वरूप ही नही हो सकता। इस कारण इस विषय को स्पष्ट करने के लिये इसमे युक्त शब्द दिया गया है। सत् शब्द के यद्यपि अर्थ अनेक होते हैं तो भी अस्तित्व अर्थ यहा सत् शब्द का लिया गया है। सत् का अर्थ सज्जन भी होता, जैसे सत्पुरुष, सत् का अर्थ सत्कार भी होता। जैसे सत्कार मे खुद सत् शब्द जुडा हुआ है। सत् का अर्थ 'होता हुआ' ऐसा भी चलता है। जैसे गच्छत्सन आदि। यहाँ सत् शब्द का अर्थ अस्तित्व लिया गया है। जो जो भी पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त होते है वे सत् है या जो जो भी भी पदार्थ सत् हैं वे सब उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त हैं।

पदार्थों की उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मकता का नियम—जो भी पदार्थ होता है वह प्रति समय नई दशा धारण करता है, पुरानी दशा बिलीन करता है और स्वय बना रहता है। नई अवस्था होने का नाम उत्पाद है, पहली अवस्था विलीन होने का नाम व्यय है और वही पदार्थ रहता है, वही ध्रौव्य है। जैसे कोई जीव मनुष्य है और मरकर देव बना तो देव पर्याय के रूप मे जीव का उत्पाद है। मनुष्य पर्याय के रूप से जीव का नाश है और जीवत्व की दृष्टि से जीव का ध्रौव्य है। ऐसा उत्पाद व्यय ध्रौव्य प्रत्येक पदार्थ मे होता है। यदि कोई पदार्थ निर्मल है शुद्ध है तो उसके उत्पाद व्यय का पता नही पड पाता कि क्या तो उत्पन्न हुआ और क्या चीज नष्ट हुई ? जैसे जब जीव केवलज्ञानी बन जाता है तो केवलज्ञान मे तो तीन लोक, तीन काल के समस्त पदार्थ ज्ञेय हो गये और एक ही समय मे सर्व कुछ जान लिया। अब दूसरे समय मे क्या करता है। यह सब कुछ दूसरे समय मे जानता है। तीसरे समय मे क्या करता है ? यही सब कुछ तीसरे समय मे जानता। तो वहा यही बात जल्दी मे विदित होती है। जो पहले जाना वही अब जान रहा, कुछ नई दशा तो नही बनी, लेकिन दूसरे समय मे वह पूर्णतया नई अवस्था है पर्याय दृष्टि से, क्योकि जानने मे ज्ञान शक्ति का परिणमन तो हो रहा है। तो दूसरे समय मे जो जानन बना वह दूसरे समय का अवस्था होना है। और तब पहले समय की अवस्था न रही, जीव वही है। प्रत्येक पदार्थ चाहे वह शाश्वत, शुद्ध रहता हो, चाहे किसी प्रकार का हो, उत्पाद व्यय तो सदा रहता है।

द्रव्य का द्रव्य रूप से अवस्थान होने मे ध्रौव्यत्व की सिद्धि—इस प्रकरण मे एक शका होती है कि पदार्थ मे जो उत्पाद और व्यय बने याने नई परिणति बनी, पुरानी परिणति विलीन हुई सो ये दो बातें द्रव्य से अभिन्न हैं या भिन्न हैं। नई अवस्था का होना, पुरानी अवस्था का विलीन होना, ये क्या द्रव्य से बाहर हो रहे हैं या द्रव्य मे ही अभिन्न हैं ? उन ही की परिणति है। भिन्न तो हैं नही, क्योकि द्रव्य से बाहर द्रव्य की कोई दशा नही पायी जाती। जैसे एक अगुली सीधी है, उसे टेढी की

गई तो यह वहाँ निरखिये कि अगुली का टेढापन होता है तो उस समय अगुली का सीधापन नष्ट हो जाता। ये उत्पाद व्यय बताओ अगुली से बाहर हो रहे क्या ? बाहर तो कोई नही कह सकता। अंगुली मे ही चल रहे हैं, ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ के उत्पाद और व्यय मे पदार्थ से अभिन्न है तो लो जब उत्पाद व्यय द्रव्य से अभिन्न हो गये तो फिर द्रव्य ध्रुव कैसे रह गया ? उत्पाद हुआ और वह है द्रव्य से अभिन्न तो मानो द्रव्य ही एक नया बन गया। तो ध्रुव तो न रहा, इसके उत्तर मे कहते हैं कि जो द्रव्य को ध्रुव कहा जा रहा है कि द्रव्य सदा रहा करता है सो इस कारण से नहीं कहा जा रहा कि द्रव्य उत्पाद और व्यय से भिन्न है। याने द्रव्य की सत्ता बनी रहने का कारण यह नही है कि द्रव्य उत्पाद व्यय से भिन्न है, किन्तु कारण है कि द्रव्य, द्रव्य रूप से सदा रहता है इसलिये द्रव्य ध्रुव है। द्रव्य उत्पत्ति और विलीनता से अभिन्न है या भिन्न है ? इसका समाधान तो आगे दिया जायेगा, किन्तु यहा यह जानें कि उत्पाद व्यय से द्रव्य को भिन्न मानें। तब ही ध्रुव बने यह कोई सिद्धान्त नही है, द्रव्य मे उत्पाद व्यय खूब होते हैं, प्रति समय होते हैं मगर द्रव्य, द्रव्य रूप से सदा रहता है इस कारण ध्रुव है। जैसे जीव अभी मनुष्य था, अब देव हो गया तो मनुष्य का विलीन होना, देव का उत्पन्न होना और जीव का सदा रहना ये तीन बातें जो कही गई उसमे कोई यह प्रश्न करे कि बत- लाओ मनुष्य का विलीन होना और देव का उत्पन्न होना यह जीव से अभिन्न है ना ? तो हर एक कोई कहेगा कि हाँ अभिन्न है जीव तो आधार बने नही और उत्पाद व्यय बाहर होते रहे ऐसा तो कही नही होता। तो अभिन्न है देव का होना, मनुष्य का विलीन होना, इससे कही द्रव्य अध्रुव नही हो जाता। मनुष्य के विलीन होने से, देव के उत्पन्न होने से भिन्न जीव को माना जाये तब जीव सदा रहे ऐसा सिद्धान्त नही है किन्तु जीव जीवपने से सदा रहता है इस कारण ध्रुव हैं, ऐसे ही प्रत्येक द्रव्य, द्रव्यपने से सदा रहता है इसलिए ध्रुव कहा जाता है, इसके विपरीत कोई कल्पना तो करे कि उत्पाद और व्यय से द्रव्य जुदे हैं इस कारण ध्रुव है तो फिर यो उल्टा भी कोई कह सकता कि चूकि द्रव्य से भिन्न है उत्पाद व्यय इसलिये उत्पाद व्यय भी ध्रुव होना चाहिये, क्योकि अब तो उत्पाद व्यय स्वतन्त्र हो गये। द्रव्य से निराले हो गये। सो भाई अपेक्षा सही जानें। पर्याय दृष्टि से तो उत्पाद व्यय है, पर द्रव्य, द्रव्य रूप से सदा रहता है इस कारण वह ध्रुव है। जब उत्पाद व्यय हो रहा है तब भी द्रव्य स्थिर है। जैसे मिट्टी के लोधे से घडा बन रहा है, घडे का उत्पाद है और मृतपिण्ड का विनाश है। लेकिन इसी समय मिटटी, मिट्टी रूप से है ही है इस कारण वह ध्रुव है। तो यह वस्तु का स्वरूप है। जो सत् है उसका स्वरूप ही यह है कि उसमे अवस्थायें तो बनती जायेंगी और वह चीज अपने स्वरूपत: वही रहेगी।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य व द्रव्य का परस्पर कथंचित् भेद व अभेद का प्रतिपादन—अब इन बातो का अनेकान्त से निर्णय बनाइये। उत्पाद और व्यय द्रव्य से कथञ्चित् भिन्न हैं, कथञ्चित् अभिन्न है। भिन्न तो यो है कि जो व्यय का लक्षण है वह उत्पाद और द्रव्य मे नही। जो उत्पाद का लक्षण है वह व्यय और ध्रौव्य मे नही, द्रव्य मे नही। जो द्रव्य या लक्षण है वह द्रव्य मे है, तो लक्षण की दृष्टि से इनमे भेद है मगर हैं तो सब एक ही पदार्थ की विशेषतायें। एक ही द्रव्य किस रूप मे परि- णमा है और किस रूप मे मिट गया है वह सब एक ही पदार्थ की चीज है। यहाँ सीधा निष्कर्ष यो जाने कि जो भी पदार्थ होते है वे अपनी जाति का त्याग न करके राग द्वेष रूप से उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। और एकान्त का पक्ष लेने से तो कुछ भी वचन नही बोले जा सकते। अच्छा

ये शकाकार ही बताये कि वे अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये जिस हेतु का प्रयोग करते वह हेतु साधक है यह मानते, पर वह हेतु साधकपने से सर्वथा अभिन्न है या भिन्न है ? यदि हेतु साधकपने से मायने अपने लक्ष्य को सिद्ध करता है इस रूप से सर्वथा अभिन्न है तो पर पक्ष का साधक भी बन जायेगा, क्योंकि साधक पर पक्ष मे या दूसरे प्रतिवादियो में भी हुआ करता है। या परपक्ष की तरह अपने पक्ष का भी दूषण करने वाला बन जायेगा। इससे मानना कि ये तीन पर्यायें हैं --उत्पाद व्यय और ध्रौव्य। पर्याय के अनेक अर्थ होते हैं। भाग भी पर्याय कहलाते, अंश भी पर्याय हैं। कभी अखण्ड द्रव्य को समझने के लिये गुणो का भेद किया जाये वह भो पर्याय है। सो यह यहा उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप पर्याय, पर्याय वाले द्रव्य में कथचित् अभिन्न है, कथचित् भिन्न है। प्रयोजन यह है कि जगत मे जो भी पदार्थ हैं वे सदा बने रहते हैं, बनते हैं और बिगडते हैं। इस तथ्य को न जानने वाले लोग कोई तो यह हठ करेंगे कि द्रव्य नित्य विलीन वाला ही होता है। तो कोई यो हठ कर लेगा कि द्रव्य तो क्षण-क्षण मे नया-नया बनता है। वस्तुत. तथ्य स्याद्वाद से सिद्ध होता है। यहां तो यह जानना कि जैसे गुण द्रव्य मे सदा रहते हैं ऐसे ही पर्याय भी द्रव्य मे सदा रहती है। इस तरह से गुण और पर्याय ये सब वही द्रव्य ही कहलाये, पर पर्यायें बाहरी तरफ तो दिखती हैं। अभी घडे रूप मे थी मिट्टी अब उसको मार दिया, खपरिया बन गई, तो लो पर्याय दूर हो गई और पर्याय से अभिन्न है द्रव्य तो द्रव्य भी शून्य हो जाना चाहिये। ऐसी आशका करना ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्य का स्वरूप कभी रहे कभी न रहे, यह नही माना गया है। द्रव्य की अवस्थायें तो कभी रहे कभो न रहे, यह तो हो जाता है पर द्रव्य का स्वरूप कभी रहे कभी न रहे, यह नही होता। तो व्यय और उत्पाद होने पर भी द्रव्य सदा रहता है, यह ही बात अगले सूत्र मे कहते हैं।

तद्भावाव्यय नित्यम् ॥५-३१॥

द्रव्य के नित्यपने का स्वरूप--वस्तु के भाव से च्युत न होना सो नित्य है। कोई चीज नित्य है यह कब समझ मे आता, जब अपने बारे मे यह ज्ञात हो कि यह वही चीज है जो पहले थी, तब तो कह सकते कि यह नित्य है, सदा रहती है। तो ऐसा प्रत्यभिज्ञान पदार्थ मे हो रहा है। जो घट दीखा, जो घट का समूह दोखा, जिन लोगो को दीखा उनको देखने पर वही ज्ञान बनता है कि यह वही है। तो यह वही है, ऐसा भाव बनने का जो कारण है वह सत्भाव कहलाता है। वस्तु सदा रहती है, ऐसा यदि न माना जाये तो लोकव्यवहार सब समाप्त हो जायेगा। उधार लेने वाला व्यक्ति उधार का द्रव्य कहो वापिस भी न दें। यदि उधार देने वाला व्यक्ति अपनी चीज वापिस मागे तो लेने वाला कह देगा कि हमने कहां लिया, उधार लेने वाला जीव कोई दूसरा था, मैं तो कोई दूसरा जीव हूँ। यो गडबड मच जायेगा, पर ऐसा है कहां ? वस्तु तो वही का वही रहता है। भले हो दिखने मे यह बात अटपट सी लगे कि जो ही उत्पन्न हुआ वही नष्ट हुआ, लेकिन इसमे विरोध कुछ नही है। मिट्टी घडा रूप से उत्पन्न हुई, मृत्पिण्ड रूप से विलीन हुई, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है और वह द्रव्य रूप से नित्य बनी रहे। यदि द्रव्य एक हो तब विरोध है। पर्याय दृष्टि से अनित्य है, द्रव्य दृष्टि से नित्य है तो इसमे विरोध क्या ? कोई एक ही पुरुष को पिता कहता है, पुत्र कहता है, मामा कहता है, फूफा कहता है तो सुनने मे हर एक कोई कह सकता है कि इसमे तो बडा विरोध है। जो जुदा-जुदा धर्म है, वह एक पदार्थ मे कैसे हो सकता है ? अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है और अपने पिता के लिये यह पुत्र है, तो उनमे कोई विरोध नही आता। एक ही द्रव्य मे ये

उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते है, और सदा रहते हैं, इनका विरोध सा जचता, पर दृष्टि लगाकर निरखे तो इसमे कोई विरोध की बात नही आती है। इस बात को सूत्र द्वारा कहते है।

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥५—३२॥

विवक्षा व अविवक्षा से पदार्थ मे नाना धर्मों की सिद्धि— गौण और मुख्य मे विवक्षा से वे परस्पर विरुद्ध धर्म एक साथ सिद्ध होते हैं। अर्पित का अर्थ है जिस दृष्टि से कह रहे, जिस धर्म को प्रधानता दी जा रही है वह है अर्पित और जिस धर्म को प्रधानता नही दी जा रही, वह कहलाता है अनर्पित। ये सब बातें वस्तु मे समझने से अपने आत्मा को क्या प्रयोजन मिलता है। वह प्रयोजन यही मिलता कि मैं हूँ और नई नई अवस्थाओ मे आता हूँ और पूर्व-पूर्व अवस्थायें विलीन होती है। मानलो आज मेरी अज्ञान अवस्था है तो मैं हमेशा अज्ञान अवस्था मे ही रहूगा, ऐसी शका न करना चाहिये, क्योकि हममे कभी भी ज्ञान अवस्था आ सकती है। अज्ञान अवस्था नष्ट हो जाती है और वही पदार्थ वही का वही सदा ध्रुव बना रहता है। जैसे मिट्टी का लौंधा, जिसका कुम्हार घड़ा बना रहा है। वहाँ जो भी पदार्थ रखे है उन सबको यही देखे कि ये भौतिक रूप पदार्थ है इस कारण से वे नित्य चीज है, वे तो रहेगी, क्योकि वे पदार्थ अपने द्रव्यपने को, पुद्गलपने को कभी छोडते ही नही हैं। जब उस द्रव्यपने को गौण करदे और घडा पर्याय को दृष्टि मे ले तो वहाँ उत्पाद समझ मे आता। मिट्टी के लौंधे को विवक्षा मे ले तो उससे व्यय समझ मे आता। यो तत्त्व सब नित्य और अनित्य है। केवल नित्य माना जाय तो द्रव्य नही रह सकता और केवल अनित्य माना जाय तो व्यवहार नही, वस्तु नही। इस प्रकार द्रव्य के बारे मे प्रसग पाकर कुछ थोडा खुलासा किया है। अब पहले प्रकरण पर फिर आइये। प्रकरण चल रहा था पुद्गल का। पुद्गल मे गुण होते, आकार होता। बिखर कर वे परमाणु रह जाते, इकट्ठे होकर वे पिण्ड बन जाते। यह सब प्रकरण चल रहा था। अब इस सूत्र मे यह कहा जा रहा है कि कैसे परमाणुओ का सयोग मिलने पर बध दशा बनती है। अलग-अलग परमाणु पडे हैं तो वह कौन सी वजह है जिस कारण वह एक पिण्डरूप बध जाता है? उसके उत्तर मे यह सूत्र है?

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥५—३२॥

पुद्गलों के परस्पर बन्ध का कारण स्निग्धपना व रूक्षपना—इन स्कन्धो मे जो बन्ध होता है वह स्निग्ध और रूक्षता गुण के कारण होता है। प्रकरण मे और भी गुण पर्याय हैं। जैसे परमाणु ठण्डा है, गरम है। पर ठण्डा और गरम होने के नाते से परमाणुओ का बन्ध नही होता, किंतु स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण होता है। जैसी ठण्डी चीज के पास गरम चीज रख दी, इससे वे दोनो एक पिण्ड नही बनते, पर चिकनापन हो, कोई रूखापन हो, उनकी डिग्रियाँ होती हैं। तो उस गुण के कारण उनका बध होता है। चिकनापन और रूखापन के अनन्त भेद होते है। जैसे बुखार की डिग्रियाँ होती हैं, उनमे कई डिग्रियाँ होती हैं और तापमान से बताते जाते कि इसके इतना बुखार है। ऐसे ही स्निग्ध रूक्ष मे भी बहुत प्रकार होते हैं। जैसे एक दूध को ही देखे तो बकरी का दूध जितना चिकना होता है उससे अधिक चिकना गाय का दूध होता है। गाय के दूध से भी अधिक चिकनाई भैंस तथा ऊँट के दूध मे होती है। तो जैसे यहाँ दूध मे चिकनाई की डिग्रियाँ देखी गईं ऐसे ही अनन्त परमाणुओ मे चिकनाई, रूखाई की डिग्रियाँ होती हैं। सो जब उस योग्य डिग्री वाले चिकने या रूखे परमाणु मिलते है तो उनका बन्ध हो जाता है। जैसे लोक व्यवहार मे कहते हैं कि यह दूध १० डिग्री

चिकना अधिक है, यह २० डिग्री चिकना अधिक है। तो उनमे एक (१) डिग्री तो कुछ होती है जिसको मिलकर १० डिग्री कहा। जो एक डिग्री का चिकनापन है वह है जघन्य गुण और उससे अधिक चिकनापन जो है वह बन्ध के योग्य है। सो बतलाते हैं कि उसमे जो वन्ध होता है पुद्गल अणुओ मे सो स्निग्ध और रूक्ष गुण के उस उस प्रकार का होता है। इसी वन्ध को आगे कुछ बतायेंगे कि किसमे कितनी डिग्री चिकनाई रूखापन हो तो उनमे बध हो जाय। यह सब बन्ध व्यवस्था विधि निषेध द्वारा आगे कहेंगे। यहाँ सामान्यतया कहा जा रहा है कि परमाणुओं एक का पिण्डरूप होने का साधनभूत बन्ध जो देखा जाता चिकनाई और रूखेपन के कारण परमाणुओ मे वह बन्ध होता है। स्निग्ध की व्युत्पत्ति है बाहरी और भीतरी कारण के वश से स्नेह पर्याय की प्रकटता होने से जो चिकना हो गया उसे स्निग्ध कहते हैं। सूक्ष्म की परिभाषा है कि बाह्य और आभ्यतर निमित्त के वश से रूखा होना सो रूक्ष है। इस सूत्र मे प्रथम पद मे पहले तो स्निग्ध और रूक्ष शब्द मे द्वन्द्व समास किया गया। फिर इसके बाद भाव अर्थ मे तद्धित प्रत्यय जोडा गया है। जिसकी निरुक्ति हुई—स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौतयो' भावा. स्निग्ध रूक्षत्व। चिकनाई स्निग्ध गुण की पर्याय है और रूखापन रूक्षगुण की पर्याय है। तो इस चिकनाई और रूखापन के गुण के कारण परमाणुओ मे बध होता है। बन्ध होने पर वह स्कध बन जाता है। जैसे दो स्निग्धरूक्ष परमाणुओ का आपस मे मिलना हुआ तो बन्ध होने पर वह दो अणु वाला स्कध कहलाने लगा। इसी प्रकार सख्यात असख्यात अनन्त परमाणुओं वाले स्कन्ध भी हो जाते हैं। एक स्निग्ध गुण मे ही अनन्त प्रकार के अश होते हैं। जैसे एक डिग्री की चिकनाई, दो डिग्री की चिकनाई, ३ डिग्री की चिकनाई, ऐसे बढते-बढते अनन्त डिग्री की चिकनाई भी अविभाग के प्रतिच्छेद होते हैं। और ऐसी अनेक डिग्री की चिकनाई वाले परमाणु होते हैं, इसी प्रकार रूक्ष गुण मे भी समझना कि एक डिग्री का रूक्ष, दूसरी डिग्री का रूक्ष, ऐसे बढते-बढते अनन्त डिग्री की भी रूक्ष पर्यायें होती हैं और ऐसे रूक्ष पर्याय वाले परमाणु होते हैं। जैसे कि पहले बताया था कि बकरी के दूध मे अधिक डिग्री चिकनाई गाय के दूध मे, उससे अधिक डिग्री की चिकनाई भैंस के दूध मे कहा था, उसी प्रकार रूक्ष के विषय मे भी जानना कि जैसे किसी मिट्टी में कोई डिग्री रूखापन है तो उसमे अधिक रूखापन छोटे चावल के कणो मे है, उससे अधिक रूखापन छिलको मे है। उससे अधिक रूखापन बालू मे है। ऐसे रूखेपन की भी डिग्रियाँ बढती जाती हैं। सो जब योग्य डिग्री के स्निग्ध अथवा रूक्ष परमाणु मिलते हैं तो उनका परस्पर एक पिण्ड बन जाता है। सयोग और बन्ध मे अन्तर है। सयोगी होने पर पिण्ड नही बनता, किन्तु बन्ध होने पर पिण्ड बनता है। अब ये स्पष्ट करेंगे कि अब तक यह बात आई कि स्निग्ध और रूक्ष गुण के कारण परमाणुओ मे बन्ध होता है तो इस सामान्य कथन से तो सभी प्रकार कीडिग्रियो के स्निग्ध रूक्ष गुण के कारण परमाणुओ में बन्ध होने का प्रसग आता है। तो किस मे बन्ध नही हो सकता, सबसे पहले यह बात कहते हैं।

न जघन्य गुणानां ॥५—३४॥

एक डिग्री चिकनाई व रूक्षत्व गुण वाले परमाणु के बन्ध का निषेध—जघन्य गुण वाले परमाणुओ का बन्ध नहीं होता है। यहाँ जघन्य गुण से केवल एक डिग्री का ग्रहण करना अर्थात एक डिग्री वाले स्निग्ध अथवा रूक्ष परमाणुओ का बन्ध नही होता। जघन्य शब्द का अर्थ सबसे हल्का छोटा कैसा निकलता है सो शब्द की व्युत्पत्ति से अर्थ देखिये—जघन्यमिव जघन्य यह निरुक्ति है, याने

जो जांघ की तरह हो उसे जघन्य कहते हैं। जैसे कि शरीर के अंगो में सबसे निकृष्ट अग जंघा है उसी प्रकार किसी भी अन्य पदार्थ के बारे मे सबसे निकृष्ट गुण की बात ली जाय तो उसे जघन्य कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से एक शिक्षा ग्रहण करना चाहिये कि पुरुष स्त्री के जघा को कितना निकृष्ट घोषित किया गया है। जैसे किसी पदार्थ को निकृष्ट बताना है, किसी की आयु छोटी हो, गुण खोटे हो, काम खोटा हो तो लोग कहते है कि इसका काम बहुत जघन्य है। इसकी चेष्टा जघन्य है। इसका अर्थ यह है कि इतनी खराब चेष्टा है कि जघा की तरह, जैसे कि शरीर के अगो मे जांघ अतीव निकृष्ट है। अथवा दूसरी व्युत्पत्ति देखिये —जघने भव: जघन्य:, जो ज घा मे हो उसे जघन्य कहते हैं। ज घा मे निकृष्ट चीज क्या होती है जिस पर कामी लोग आसक्त होते है। वह इतना निकृष्ट है कि उसे जघन्य कहते है। उससे भी अधिक निकृष्ट कुछ कार्य अन्य नही होता। तो ऐसे ही जिन घटनाओ के लिये, जिन वस्तुओ के लिये जन्धय की बात कही जाय तो उसका अर्थ है सबसे छोटा, रद्दी, हीन।

एक डिग्री स्निग्ध रूक्ष वाले परमाणु का कितनी ही डिग्री गुण वाले परमाणुओ के साथ बध का अभाव—गुण शब्द के अर्थ अनेक होते हैं। जैसे रूपादिक गुण। तो यहाँ रूप मे गुण शब्द का अर्थ चला। कही हिस्सा अर्थ मे आता है। जैसे दो गुना, तीन गुना। कही उपकार अर्थ मे आता है कि यह कोई पुरुष गुणज्ञ है, अर्थात उपकार का जानने वाला है, कृतज्ञ है। कही गुण शब्द का प्रयोग द्रव्य मे आता है, जैसे यह देश गुणवान है। जिसमे गायें और धान खूब निष्पन्न हैं। कही समता अर्थ मे आता है, समान अवयव मे आता। इससे दुगुनी रस्सी याने जितनी वह है उतनी अथवा उससे तिगुनी रस्सी। तो उनमे से यहाँ हिस्से के अर्थ मे गुण को लेना है अर्थात जघन्य डिग्री का परमाणु बन्ध योग्य नही है। जघन्य गुण है जिन्होके, उन्हे कहते हैं जघन्य गुण। ऐसा परमाणुओ का बन्ध नही है। एक गुण स्निग्ध का, एक गुण स्निग्ध वाले परमाणुओ से बन्ध नही होता। इसी तरह एक गुण की चिकनाई वाले परमाणु का किसी प्रकार की डिग्री वाले, २-४-६ अनन्त डिग्री वाले चिकनाई से युक्त परमाणुओ का भी बन्ध नही होता। इसी प्रकार स्निग्ध का रूक्ष से, रूक्ष का स्निग्ध से, रूक्ष का रूक्ष से अर्थ लगाना याने एक डिग्री वाले चिकने व रूखे परमाणुओ का भी बन्ध नही होता हाँ उनमे उन्ही के अगुरुलघुत्व हानि वृद्धि के अनुसार डिग्रियाँ बढ जाये तो वहाँ बन्ध हो सकता है। तो इस सूत्र मे जघन्य गुण वाले परमाणुओं के बन्ध का निषेध किया है। तो क्या जघन्य गुण के स्निग्ध रूक्ष, गुण को छोडकर अन्य सर्व तरह की डिग्रियो वाले चिकने रूखे परमाणुओ का बन्ध हो ही जाता है। इस कथन से तो सिद्ध होता कि सबका बन्ध हो जाना चाहिये। तो इसमे भी जिनका बन्ध नही होता उनका विवरण करने के लिए सूत्र कहते हैं।

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥५-३५॥

स्निग्धता व रूक्षता के अ शो की समानता होने पर परमाणुओ के बन्ध का अभाव—गुणो की समानता होने पर सदृश परमाणुओ का बन्ध नही होता। गुणो की समानता का अथ है कि समान डिग्री वाले परमाणु तथा सदृश का अर्थ है तुल्य जातीय। जैसे कोई ४ डिग्री का चिकना परमाणु है, तो उनका बन्ध न होगा। यहाँ शका होती है कि गुण साम्ये, इतना शब्द कहने पर ही उसका अर्थ निकल आता है, फिर सदृशाना कहने की क्या जरूरत है? इसका उत्तर यह है कि सदृश शब्द यह सूचना देता है कि समानगुण वाले तुल्यजातीय का बन्ध नही होता, किन्तु भिन्न जाति मे हो

जायेगा। जिससे सार्थकहो जाता है। याने यहाँ सदृश ग्रहण अगर नही करते तो यह अर्थ होता कि गुण वाले स्निग्धो का २ गुणवालेस्निग्ध से बन्धनही होता। यह ध्वनितनही हो पाता। सदृश मायने स्निग्ध और समान डिग्री वाले हो तो भी उनका बन्धनही होता और विसदृशभी समान डिग्री वाले ही तो स्निग्ध ही हो उनका भी बन्धनही होता। सदृशाना शब्ददेकरयहअर्थ बनगया किसमान डिग्री वाला परमाणु सदृश भी हैं तो भी उनका बन्ध नही होता, यह तो इष्ट था ही और यह भी अर्थ हो गया कि समान डिग्री वाले विसदृश याने स्निग्ध रूक्षो का भी बन्ध नही होता। किन्ही के मत से सदृशाना शब्द देकर यह भी अर्थ ध्वनित हो गया कि समान गुण वाले एक जाति के परमाणुओ का याने चिकने ही चिकने या रूखे ही रूखे परमाणुओ का बन्ध नही होता याने विषम गुण हो उन परमाणुओ मे तो बध होता है, किन्तु यह परम्परा सम्मत नही है। यहाँ तक इतनी बात कही गई कि एक डिग्री वाले रूखे चिकने परमाणुओ का बध नही होता और समान डिग्री वाले रूखे चिकने परमाणुओ का भी बध नही होता। तो इतना अर्थ अभी तक निकला कि विषम और अनेक डिग्री वाले परमाणुओ का बध होता तो उसमे भी अनेक प्रकार सम्भव हैं। जैसे ३ डिग्री वाले कोई परमाणु हैं। दूसरे ७ डिग्री वाले हैं। उनका भी बध हो जाना चाहिए। अनेक प्रकार होते हैं, तो उनमे भी नियम बनाने के लिए सूत्र कहते हैं।

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥५-३६॥

दो या दो से अधिक अ श के स्निग्ध रूक्ष परमाणु का उससे दो अधिक अ शों के स्निग्ध रूक्ष परमाणु के साथ बन्ध होने का नियम—सूत्र का अर्थ है कि किन्तु दो अधिक डिग्री वाले परमाणुओ का ही ब ध होता है, अर्थात असमान डिग्री वाले परमाणुओ का परस्पर बध होता है, यह तो युक्त है ही, पर उसमे भी उन दोनो मे केवल दो डिग्रियो का घटाव बढाव होना चाहिए। जैसे एक अणु २ डिग्री का चिकना है और दूसरा अणु ४ डिग्री का चिकना या रूखा है तो उनका बन्ध हो जायेगा। इसी तरह अन्य उदाहरण भी लगाना। कोई १५ डिग्री का रूखा परमाणु है और दूसरा परमाणु १७ डिग्री का रूखा चिकना है तो उनका बध हो तो जायगा। हाँ एक गुण वाले चिकने रूखे के साथ किसी का भी बन्ध नही होता। चाहे २ गुना अधिक हो, जैसे एक डिग्री के रूखे परमाणु का ३ डिग्री के रूखे चिकने परमाणु के साथ भी बध नही होता। तात्पर्य यह है कि चाहे स्निग्ध स्निग्ध हो, रूक्ष रूक्ष हो, स्निग्ध रूक्ष हो, रूक्ष स्निग्ध हो। यदि एक की अनेक डिग्री से दूसरे की २ डिग्री अधिक हो तो उनका बध हो जाता है।

सयोग और बन्ध के अन्तर का विवरण—यहाँ एक शका हो सकती है कि उन परमाणुओ का सयोग हो गया है उसमे बध की बात क्यो कही जा रही है? इकट्ठे परमाणु हो गये, पिण्ड बन गए। जैसे अनेक तिलो का लड्डू बन गया तो वहाँ सयोग ही तो हुआ है और पिण्ड एक हो जायगा। बध की कल्पना क्यो की जा रही? इस शका का उत्तर यह है कि सयोग मे तो केवल प्राप्ति मात्र है। निकट आ गये, पर सयोग मे परस्पर प्रवेश नही होता। और, बध मे उन स्कन्धो का, परमाणुओ का एक एक विशिष्ट प्रकार का बध होता है, जिसका असर यह पडता है कि जिस परमाणु मे जिस जाति का अधिक गुण है तो उस ही रूप दूसरा परमाणु परिणम जाता है। पर यह परिणमन सयोग अवस्था मे नही हो सकता। इसी भाव को कहने के लिए सूत्र कहते हैं।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥५-३७॥

बन्ध होने पर अधिक गुण वालों की पारिणा मकता—बन्ध होने पर अधिक गुण वाले परमाणु पारिणामिक हो जाते हैं अर्थात दूसरे बद्ध परमाणु को अपने गुण रूप परिणमा लेते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि बध अवस्था में अधिक डिग्री के परमाणु की जाति के अनुसार हीन गुण वाले परमाणु परिणम जाते हैं। जैसे कि ५ डिग्री का रूक्ष परमाणु है, उसका बन्ध ७ डिग्री के स्निग्ध के साथ हुआ है तो ५ डिग्री का रूक्ष परमाणु स्निग्ध रूप परिणम जायगा। यह बात बध अवस्था होने पर ही होती है, सयोग होने पर नही होती। बन्ध और सयोग मे यह अन्तर इस उदाहरण से स्पष्ट जान सकते हैं कि जैसे कोई अधिक मीठा गुड हो और उसमे कोई बारीक रेसे या अन्न आदिक गिर जाये तो वे दूसरे पदार्थ भी मीठे हो जाते हैं और जैसे लाल सूत और हरा सूत दोनो सतो के ताने बाने से कपडा बुना जाय तो कोई भी सूत अपने रग को नही छोडता। जो जिस रंग से रगा है वह उसी रग मे रहता है। तो इस प्रकार परमाणुओ का बन्ध होने पर जो अधिक डिग्री वाला परमाणु है उसके अनुसार कम डिग्री वाला परमाणु परिणम जाता है। कभी स्कन्ध स्कन्धो का सयोग हो जाय तो वहाँ यह बात न पाई जायगी या परमाणुओ का भी निकट सयोग रहे तो भी यह परिणमाने वाली बात न पायी जायगी। कोई पुरुष इस सूत्र का ऐसा भी पाठ करता है कि बधे समाधिकौ पारिणामिकौ, पर ऐसा पाठ उचित नही है। उस अन्य पाठ का यह अर्थ होता है कि जैसे दो गुण वाले चिकने परिणमाने वाले २ गुण वाले रूक्ष भी होते है, पर यह पाठ सिद्धांत के विरुद्ध है। आगम मे, वर्गणा खण्ड मे, बन्ध के विधान मे यह सिद्धात आया है कि नोआगम द्रव्य के बन्ध के विकल्प मे जहाँ सादि वैस्रसिक बन्ध का निर्देश हो वहाँ यह जानना कि विषम चिकनाई होने पर और विषम रूखापन होने पर बन्ध तथा समान चिकनाई और समान रूखापन होने पर भेद होता है। और, इसके अनुसार गुण साम्ये सदृशना यह सूत्र कहा गया है। इसमे समान गुण वाले के बन्ध का जब निषेध कर दिया तो बन्धे सम पारिणामिक ऐसा कहना निरर्थक है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती है कि जघन्य गुण वाले परिणामो मे तो बन्ध होता ही नही, किंतु चाहे वह स्निग्ध स्निग्ध हो, या रूक्ष रूक्ष हो, २ अधिक गुण वाले हैं, तो उनका परस्पर बन्ध होता है।

बन्ध विवरण से प्राप्तव्य मूल शिक्षा—इस बन्ध की इतनी बडी लम्बी चर्चा करने का प्रयोजन यह है कि आत्मा के योग व्यापार से आत्मा के प्रदेशो से स्निग्ध रूक्ष परिणाम वाले अनन्त परमाणु कर्म बन्ध को प्राप्त होते है। वहाँ उनका कैसा बन्धन चलता है इस बात का यहाँ विवरण किया गया है। जो कर्म बधते हैं वे अनेक कोडा कोडी सागर तक की स्थिति के होते हैं और घन परिणाम वाले होते हैं कि उनका बन्ध उतने समय तक विघटित नही होता। अध्यात्म प्रयोजन मे बध की कथा कहने का कारण क्या है? वह यही है कि यह ज्ञान में आये कि कर्म परस्पर बधते हैं तो ऐसे ढग से बधते हैं और उनका बध इतना दृढ होता है कि कोडा कोडी सागर की स्थिति तक भी वे अलग नही हो पाते। अथवा जब कभी अलग भी होता है तो वहाँ आत्मा के कैसे परिणाम निमित्त होते हैं ये सब बातें उस बन्ध प्रकरण मे ज्ञात करना चाहिये। यहाँ तक पुद्गल द्रव्यो के बध का विवरण किया गया है। अब इसी अध्याय के बहुत पहिले के प्रकरण पर दृष्टि दीजिए। जब इस अध्याय के पहले सूत्र के बाद २ सूत्र कहे द्रव्याणि और जीवाश्च। तो इन सूत्रो मे द्रव्य का निर्देश तो किया गया, पर सुगम लक्षण नही बताया गया, सो अब द्रव्य का लक्षण कहते हैं।

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ।।५-३८।।

द्रव्य का लक्षण तथा गुण पर्यायों से द्रव्य के भिन्नपने व अभिन्नपने की मीमांसा—गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है । इस सूत्र मे दो पद हैं । प्रथम पद है गुणपर्ययवत् और द्वितीय पद है द्रव्य। प्रथम पद का समास है गुणाश्चते पर्यायाश्च गुणपर्याया. ते यस्य सन्ति इति गुणपर्ययवत् अर्थात गुण तथा पर्याय जिसके हैं वह द्रव्य कहलाता है । यहा एक आशका होती है कि गुण और पर्याय ये द्रव्य से जुदे तो हैं नही । द्रव्य के क्षेत्र मे है, द्रव्य के ही विशेषण हैं, द्रव्य के ही परिणमन हैं। तो जब गुण और पर्याय द्रव्य से भिन्न नही हैं तो उसमे मतु प्रत्यय कैसे लग सकता है ? जैसे धन वाला कहा तो धन जुदी चीज है, पुरुष जुदा है तो वहा वाला शब्द उपयुक्त हो जाता है, मगर गुण पर्याय तो द्रव्य से भिन्न है नही । उसमे वाला शब्द कैसे लगाया जा सकता ? अब इस शका का समाधान करते हैं कि लोक मे अभिन्न पदार्थों के भी मतु प्रत्यय का अर्थ देखा गया है । जैसे कहते हैं कि स्वर्ण की अगूठी या स्वर्ण वाली अगूठी, तो वह अगूठी स्वर्ण से जुदी तो है नही । उस स्वर्ण का ही उस प्रकार का परिणमन है फिर भी वहा वाले शब्द का विशेषण लगा है, और फिर लक्षण से कथञ्चित् भेद भी सिद्ध है। देखिये—गुण और पर्याय द्रव्य से कथञ्चित् अभिन्न हैं और लक्षण भेद से कथञ्चित् भिन्न हैं । जैसे द्रव्य कहने से तो त्रिलोक त्रिकालवर्ती वे समस्त पदार्थ आ गये और पर्याय कहने से एक समय की हालत का ही परिणमन होता है । गुण कहने से द्रव्य की कोई एक विशेषता ही ग्रहण मे आनी है । गुण व पर्याय शब्द से पूरा द्रव्य ग्रहण मे नही है । तो यो लक्षण से उनमे कथञ्चित् भेद भी है उसलिसे मतु प्रत्यय लगना युक्त है ।

गुण शब्द की प्रयोग्यता के विषय की मीमासा—अब एक शकाकार कहता है कि पदार्थ मे गुण नही है, द्रव्य है और पर्याय है । गुण यह सज्ञा तो अन्य सिद्धान्त वालो की कही हुई दी गई है। जैन शासन मे तो द्रव्य और पर्याय ये दो ही तत्त्व हैं और इसी कारण नय भी दो बनाये गये है—(१) द्रव्यार्थिक और, (२) पर्यायार्थिक । यदि गुण भी कुछ होता तो तीसरा नय और बनाया जाता-गुणार्थिक, पर तीसरा नय नही है। क्याकि गुण ही नही है, फिर गुण पर्याय वाला द्रव्य है यह कहना कैसे युक्त हो सकता है ? इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि जैन शासन के हृदय मे गुण का भी उपदेश है। अभो एक सूत्र आयेगा—द्रव्याश्रया निर्गुणागुणा , वहाँ एकदम स्पष्ट हो जाता कि गुण की मान्यता जैन शासन मे भी है। अब शकाकार पुन कहता है कि यदि गुण कहा तो गुण को विषय करने वाला एक गुणार्थिक नाम का तीसरा मूल नय भी प्राप्त होता है। इसके समाधान मे कहते हैं कि द्रव्य के दो स्वरूप हैं-(१) सामान्य स्वरूप और, (२) विशेष स्वरूप । तो उसके सामान्य स्वरूप को उत्सर्ग, अन्वय, गुण, इन शब्दो से कहा जाता है, और द्रव्य का जो विशष रूप है उसे भेद पर्याय इस नाम से कहा जाता है तो गुण सामान्य स्वरूप रहे, पर्याय विशेष स्वरूप रहे और द्रव्य भी एक वस्तु है ही, जिसके दो स्वरूप कहे जा रहे हैं। तो जो सामान्य स्वरूप है वही तो गुण है। असाधारण लक्षण मे द्रव्य का परिचय होता है वह लक्षण असाधारण गुण ही तो है। तो सामान्य को विषय करने वाले नय का नाम द्रव्यार्थिक है। सो जब अभेद दृष्टि से द्रव्यार्थिकनय का प्रयोग होता है तब तो उसका वाच्य द्रव्य ध्वनित होता है और जब भेद दृष्टि से सामान्य को विषय करने वाला द्रव्यार्थिकनय प्रयुक्त होता है तो उससे गुण ध्वनित होता है। पर्यायार्थिकनय मे केवल पर्याय ही ग्रहण मे आता है और इन दोनो नयो का जो समुदित स्वरूप है वही द्रव्य है। तो तीसरा नय गुणार्थिक कहने की आवश्यकता नही। मूल नय दो ही हैं—(१) द्रव्यार्थिक

और, (२) पर्यायार्थिक। उन दोनो नयो का जो समुदयात्मक रूप है वह कहलाता है द्रव्य। अथवा गुण ही पर्याय है ऐसा भी कह सकेंगे। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये पर्यायें कहलाती हैं। पर्याय नाम भेद और अ श का भी है। उनसे भिन्न गुण नही है, इस कारण गुण ही पर्याय है, ऐसा समानाधिकरण्य मान लिया जाये तब सूत्र को गुण पर्ययवत् निर्देश से कहना अयुक्त नहीं है।

गुण की पर्याय स्रोतरूपता का सकेत—अब पुन. एक शका आती है कि यदि गुण ही पर्यायें हैं तो दो विशेषण देना अनर्थक है। या तो गुणवद् द्रव्य कहते या पर्ययवद् द्रव्य कहते। दूसरा विशेषण देना व्यर्थ है, क्योकि अर्थ मे कोई भेद नही है। चाहे गुणवत् कहो चाहे पर्ययवत् कहो, जबकि गुण ही पर्यायें मान ली गई हैं। इस शका के उत्तर मे कहते हैं कि एक दृष्टि से देखे तो गुण ही तो उस परिणमन रूप से जाना गया है इसलिए पर्याय कह सकते हैं, पर गुण को कहना यो आवश्यक हुआ कि अन्य मतो मे गुण पदार्थ को द्रव्य से जुदा माना है। मीमासक सिद्धान्त मे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ऐसे ७ पदार्थ माने गये है। जिसमे द्रव्य, गुण और कर्म ये तो सदा विशिष्ट ही माने गये हैं। तो द्रव्य को गुण से जुदा माना है अन्य दार्शनिको ने, क्योकि गुण अलग स्वतन्त्र सत् पदार्थ नही है, यह जाहिर करने के लिए सूत्र मे गुण शब्द दिया है। अथवा कहो—द्रव्य, गुण, पर्यायमय होता है। इस प्रकार द्रव्य का लक्षण कहकर यहा तक ५ द्रव्यो के बारे मे पूरा वर्णन किया गया है। अब जो एक शेष कालद्रव्य है उसका वर्णन करने के लिये सूत्र कहते हैं।

कालश्च ॥५-३९॥

काल द्रव्य मे द्रव्य स्वरूप का निरखन—और काल भी द्रव्य है। द्रव्य के अब मुख्य दो लक्षण हुए। जो उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त हो वह द्रव्य है। जो गुण पर्याय वाला हो वह द्रव्य है। दोनो ही लक्षण कालद्रव्य मे घटित होते हैं। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है और वह कालद्रव्य एक प्रदेशी है। उसकी पर्यायें समय-समय के रूप मे प्रति समय प्रकट होती रहती हैं तो पर्याय दृष्टि से उत्पाद व्यय रहा और द्रव्य दृष्टि से ध्रौव्य रहा। इस प्रकार काल द्रव्य मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनो ही पाये गये। इसी प्रकार जो ध्रौव्य है वह तो गुणो का है और उत्पाद व्यय पर्यायो का है। तो काल द्रव्य मे भी सामान्य गुण हैं और परिणमन हेतुत्व नामक विशेष गुण भी हैं। तो काल द्रव्य मे गुण पर्ययवद् द्रव्य यह लक्षण भी घटित हो जाता है। जैसे कि आकाश आदिक जो द्रव्य हैं और उनमे द्रव्य के दोनो लक्षण घटित होते हैं ऐसे ही काल द्रव्य मे भी दोनो ही लक्षण घटित होते है। काल द्रव्य में ध्रौव्य क्या है ? सदा बना रहना। यह ध्रौव्य काल-द्रव्य मे अपने आपके स्वरूप के ही कारण है क्योकि स्वभाव सदा काल व्यवस्थित रहता है। अब काल द्रव्य के जो उत्पाद और व्यय हैं वे परद्रव्यनिमित्तक हैं और स्वनिमित्तक भी हैं। अगुरुलघुत्व गुण की हानि वृद्धि की अपेक्षा से देखे तो काल द्रव्य का परिणमन भी, उत्पाद-व्यय स्वनिमित्तक हुआ। अगुरुलघुत्व गुण भी कालद्रव्य का ही तो है और पर पदार्थों के परिणमन को निरखकर काल का ज्ञान होता है और समय व्यवहार परपरिणमन प्रत्ययक हो रहा है इस कारण काल द्रव्य का उत्पाद व्यय परप्रत्ययक भी है। इस प्रकार तो काल द्रव्य मे पर्यायें है। अब इस काल द्रव्य के गुण भी देखिये—साधारण गुण भी हैं और असाधारण भी हैं। साधारण गुण तो अस्तित्व, वस्तुत्व आदिक है। असाधारण गुण वर्तना हेतुत्व है, अर्थात सर्व पदार्थों के परिणमन का निमित्त हुआ। कुछ गुण

साधारण, असाधारण भी होते है। जैसे अचेतनपना काल द्रव्य मे भी है, पुद्गल आदिक अन्य द्रव्य मे भी हैं मगर समस्त द्रव्यो मे नही है। जीव मे अचेतनपना नही है। इस प्रकार काल द्रव्य में साधारण, असाधारण और साधारणासाधारण गुण हैं। तो इन गुण पर्यायो से द्रव्य का परिचय मिलता है तो काल द्रव्य मे भी काल द्रव्य की गुण पर्यायो से काल द्रव्य का परिचय होता है। अब काल द्रव्य की पर्यायो का सकेत करने के लिये सूत्र कहते हैं।

सोनन्तसमयः ॥५-४०॥

काल द्रव्य के समयनामक परिणमन के विषय की मीमांसा—वह काल द्रव्य अनन्त समय वाला है। काल द्रव्य इतना सूक्ष्म पदार्थ है कि जिसके बारे मे सदेह अथवा यह कहना बन सकता है कि काल द्रव्य मानने की जरूरत ही क्या है? समय चल रहा है और उस निकलने वाले समय के अनुसार समस्त पदार्थ स्वय ही परिणम रहे हैं, फिर काल द्रव्य के मानने की क्या जरूरत रही? अनेक दार्शनिको ने काल को पृथक् द्रव्य नही माना। अगर वे यह विचार करें कि एक-एक समय नाम की यदि वास्तविक पर्याय न हो तो उन समयो के बिना जो दिन, महीना, वर्ष आदिक कहते हैं, ये विभाग नही बन सकते। पहले समय नाम की पर्याय तो अवश्य है, और जो भी पर्याय होती है उसका आधार जरूर होता है, वह परिणमन किसमे हुआ? तो समय नामक पर्याय काल द्रव्य मे हुआ है। इससे काल द्रव्य की यह पर्याय है और वास्तव मे काल द्रव्य है। इसमे मुख्य तो काल द्रव्य हैं, और वे असख्यात हैं। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक काल द्रव्य अवस्थित है, पर यह सूत्र व्यवहार काल का परिणमन बताने के लिये कहा गया है। जब वर्तमान एक समय माना जाये तो अतीत और अनागत याने भूत और भविष्य समय भी समझे जा सकते हैं। तो भूत और भविष्य समयो की अपेक्षा अनन्त समय है और वर्तमान की अपेक्षा तो एक ही समय है और काल मे जो परिणमन हो रहा है तो प्रत्येक काल का एक-एक समय परिणमन है, अथवा जो मुख्य काल द्रव्य है उसका ही प्रमाण बताने के लिए यह सूत्र कहा जा रहा क्योकि अनन्त पर्यायो के परिणमन का निमित्त होने से, कारण होने से अथवा उपादान कारण होने से एक-एक प्रत्येक काल द्रव्य भी उपचार से अनन्त कहा जाता है। और समय तो एक अविभागी समय है। उन्ही समयो का समूह बनाकर आवली, घडी, घण्टा, दिन, महीना आदिक बनते हैं। इस प्रकार यहाँ तक काल द्रव्य का व्याख्यान किया गया। अब इस प्रथम सूत्र मे काल द्रव्य के वर्णन से पहले वाले सूत्र मे बताया गया था कि द्रव्य गुण पर्याय वाले होते हैं। तो उनमे गुण क्या कहलाते हैं? गुणो का क्या लक्षण है? यह प्रकट करने के लिये सूत्र कहते हैं।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा ॥५-४१॥

द्रव्य के अंशभूत गुणो का सोपपत्तिक लक्षण—जो द्रव्य के आश्रय हैं और स्वय गुणरहित हैं उन्हे गुण कहते हैं। गुणो मे अगर गुण पाये जायें तो वे गुण न रहकर द्रव्य बन जायेंगे, क्योकि जो गुण वाला है वह द्रव्य कहलाता है। गुण-गुण वाला नही हुआ करता। गुण तो द्रव्य की विशेषता की एक इकाई है, इस कारण गुण-गुणरहित ही होते हैं और वे गुण द्रव्य से अलग नही हैं। द्रव्य की ही यह एक विशेषता है—जैसे जीव द्रव्य। उसके गुण हैं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द। तो यह द्रव्य की ही एक विशेषता हुई। अब ज्ञान गुण मे और गुण नही है। जब कभी ज्ञान गुण को इस निगाह से देखते हैं कि ज्ञान मे अस्तित्व गुण है। ज्ञान में ही श्रद्धा की बात होती है, ज्ञान ही ज्ञान रूप रहता,

उसे चारित्र कहा गया है। तो ज्ञान मे चारित्र भी है। जब इस तरह की दृष्टि करते हैं तो वहां पर वह आधारभूत ज्ञान द्रव्य रूप मे निरखा गया है, तब उसमे अन्य गुणो की सम्भावना की जाती है। वस्तुत गुणो मे गुण नही होते। पारमार्थिक बात तो यह है कि गुण कोई पदार्थ नही, पर्याय कोई पदार्थ नही, इनकी स्वतन्त्र सत्ता नही है क्योंकि गुण की या पर्याय की यदि स्वतन्त्र सत्ता होती तो वह द्रव्य की ही तरह बिल्कुल अलग अपना पूर्ण स्वरूप रखती और उनमे भी गुण पर्याय बन जाती। तो चूकि गुण और पर्याय द्रव्य से भिन्न प्रदेश मे नही है ? उन गुण पर्यायो मे अन्य गुण पर्याय नही पाये जाते इस कारण गुण, पर्याय गुण सहित नही हैं किन्तु एक द्रव्य सत् को ही जब अन्वय दृष्टि से विशेषता सोचते है तो वहाँ गुण विदित होते हैं, और जब काल दृष्टि से विशषता सोचते हैं तो वह पर्याय बन जाती है। तो द्रव्य की ही ये दोनो विशेषतायें हैं। एक ही समय मे इन सब विशेषो को देखें तो गुण कहलाते और समय-समय मे होने वाले द्रव्य की विशेषताओ को पर्याय कहते हैं। इस सूत्र मे गुण का लक्षण कहा जा रहा है। ये गुण द्रव्य के आश्रय हैं। गुण जहां आश्रय पायें वह है द्रव्य। दूसरा विशेषण है निर्गुण। यह विशेषण दिया है कि गुणो मे और गुण नही होते। यह प्रसिद्ध करने के लिये यदि यहाँ निर्गुणाः शब्द न देते और केवल इतना ही कहते—द्रव्याश्रया गुणा' अर्थात जो द्रव्य के आश्रय रहे उन्हे गुण कहते हैं। तो कार्य पर्याय, आकार ये भी तो कारण द्रव्य के आश्रय रह रहे हैं। जैसे गुण द्रव्य के आश्रय मे हैं ऐसे ही पर्याय भी द्रव्य के आश्रय मे है। तो उनको भी गुण मान लिया जाने का प्रसग आता है, क्योकि कारण द्रव्य के आश्रय मे दो अणु वाले आदिक स्कन्ध है। परमाणु तो कारण रूप है और स्कन्ध कार्य रूप है, तो ये स्कन्ध भी गुण कहलाने लगते। इस आपत्ति के निवारण के लिये सूत्र मे निर्गुणा' शब्द दिया है, दो अणु वाले स्कन्ध है तो उसमे भी गुण पाये जाते हैं। दृश्य स्कन्धो मे तो पर्यायद्वार से गुण प्रकट समझ मे आते। तो ये स्कन्ध या परिणमन गुण न कहलाने लगे, इसके लिये सूत्र मे निर्गुणाः शब्द दिया है। यहा एक शका और होती है कि यदि गुणा. द्रव्याश्रया इतना ही गुणो का लक्षण कहा जाये तो इस तरह भी सूत्र लघु हो जाता है। इसका उत्तर यह है कि गुणा द्रव्याश्रयाः ऐसा कहने पर जो पर्यायें हैं घटाकार उनमे गुणपना प्राप्त हो जाता है इसके उत्तर मे कहते हैं कि सूत्र मे जो द्रव्याश्रया कहा है वहाँ अन्य पदार्थ विषयक बहुब्रीहि समास मत्वर्थ मे आया है जिसका भाव है जो नित्य ही द्रव्य मे रहता हो वह गुण है। पर्यायें भी द्रव्य मे रहती हैं, किन्तु वे कदाचित् है। इस कारण द्रव्याश्रया के कहने से पर्यायो का ग्रहण नही होता। यो साधारण व असाधारण सब अन्वयी धर्म गुण है और द्रव्य व्यञ्जन पर्याय व गुणव्यञ्जन पर्याय, सभी व्यतिरेकी धर्म पर्यायें हैं। अब पर्याय अथवा परिणाम का लक्षण कहते हैं।

तद्भावः परिणाम ॥५-४२॥

समस्त पदार्थों मे घटित होने वाला परिणाम अर्थात पर्याय का लक्षण—धर्मादिक द्रव्य जिस स्वरूप से होते हैं वह उनका तद्भाव कहलाता है, और तद्भाव का नाम है परिणाम। परिणाम का स्वरूप पहले उपकार के वर्णन के प्रकरण मे कहा गया है। यह परिणाम दो प्रकार का होता है—(१) अनादि, (२) आदिमान। अनादि परिणाम तो धर्मादिक द्रव्यो के हैं। उनके ऐसा नही है कि धर्मादिक द्रव्य तो पहले हुये हैं। और गति मे उपग्रह करना आदिक उपकार पीछे किया गया हो या पहले गति उपग्रह आदिक होते हो, पीछे धर्मादिक द्रव्यो का अस्तित्त्व बना हो, ऐसा नही, किन्तु

उनका अनादि से सम्बन्ध है। अनादि से ही धर्मादिक द्रव्य हैं और अनादि से ही उनमें गति हेतुता है। सो यह तो है सब अनादि परिणाम और आदिमान परिणाम बाह्य कारण पाकर जिसका उत्पाद होता है वह है। जैसे सुख दु ख, जीवन मरण, श्वासोच्छ्वास आदिक आदिमान परिणाम जीव और पुद्गल के ही होते है। यद्यपि यह बात मोटे रूप से कही जाती है कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यो मे अनादि परिणाम हैं, और जीव और पुद्गल मे आदिमान परिणाम है। ऐसे विशेष परिणाम को देखकर कहा जाता है, पर यह सिद्धान्त नही है, क्योकि सर्व द्रव्यो के द्रव्य पर्यायात्मकपना होने पर ही सत्त्व होता है और सत्त्व अगर उनके उत्पाद व्यय रूप न हो तो नित्यपने का अभाव हो जायेगा, तब फिर किस प्रकार से ग्रहण करना परिणाम को ? यो ग्रहण करना कि सभी द्रव्य दुस्स्वरूप हैं ? द्रव्य और पर्याय दोनो नयो की विवक्षा से सभी द्रव्यो मे अनादि परिणाम और आदिमान परिणाम सिद्ध होता है। जो अनादि से सिद्ध है ऐसे धर्मादिक चार द्रव्यो मे भी अनादि परिणाम तो स्पष्ट है, पर चू कि वह भी उत्पाद व्यय रूप है इस कारण उनमे आदिमान परिणाम आगम से सिद्ध होते है। इसी प्रकार जीव और पुद्गल मे अर्थ पर्याय की दृष्टि से सब आदिमान परिणाम हैं, पर औपाधिक भावो की दृष्टि से उनके सद्भाव अभाव की दृष्टि से उनमे आदिमान परिणाम होते हैं। तो इस सूत्र मे परिणमन का लक्षण बताया है कि द्रव्यो का होना, भाव होना यही परिणाम है। इस प्रकार इस अध्याय मे उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक गुण पर्यायमय जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल का स्वरूप कहा गया है। जैसे कि पहले अध्याय मे ७ तत्त्वो का निर्देश किया गया था और उसके आधार पर जीवादिक तत्त्वो का वर्णन मोक्ष शास्त्र मे चलना ही है तो जीव तत्त्व का वर्णन तो चौथे अध्याय तक हुआ और अजीव तत्त्व का वर्णन इस ५वें अध्याय मे हुआ। अब आगे छठे अध्याय मे आश्रव तत्त्व का वर्णन होगा।